मूल्य : सत्तर रुपये (70.00)
संस्करण 1984
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 द्वारा प्रकाशित
MOHAN RAKESH KI SAMPURNA KAHANIYAN (Short Storie

मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियां



राजपाल एण्ड सन्ज़

भूमिका

सन् 1947 से 1969 के बीच मेरी लिखी छियालिस कहानियों का प्रकाशन चार जिल्दो मे हुआ था। विचार था कि इस तरह प्रायः सभी कहानियां एक जगह उपलब्ध हो सकेंगी। परन्तु चारों जिल्दों के अलग-अलग समय पर प्रकाशित होने के कारण बाद की जिल्दों तक पहले की जिल्दों के सस्करण लगभग समाप्त हो गए जिससे उन्हें एक साथ एक सेट के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य पूरा नही हुआ। क्योकि पहले से प्रकाशित अलग-अलग सग्रह भी अब उपलब्ध नहीं थे, इसलिए बहुत-से पाठको के पत्र आने लगे कि अमुक-अमुक कहानियों की तलाश उन्हें कहा से करनी चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि पूरी कहानियो को एक-साथ प्रकाशित करने की वर्तमान योजना से इस जिज्ञासा का समाधान हो जाएगा। जो पाठक विशेष रूप से मेरे पहले कहानी-संग्रह 'इंसान के खंडहर' की कहानियां पढ़ना चाहते रहे हैं, उन्हें भी अन्यत्र कहीं उन कहानियों को नही खोजना होगा। वे सब कहानियां भी (कुछ सम्पादित रूप में) इनमें सम्मिलित कर दी गई हैं। इनके अतिरिक्त इधर की लिखी 'क्वार्टर' तक की कहानियां भी। आरम्भिक रूप से कौन कहानी किस संग्रह मे प्रकाशित हुई थी, इसका ब्योरा एक तालिका मे दे दिया गया है।

'नये बादल' तथा 'एक और जिंदगी' शीर्षक संग्रहों की भूमिकाए अपने समय-संदर्भ में इस विकसित होती विधा के साथ मेरे सम्बन्ध को रेखांकित करती थी। परन्तु आज के संदर्भ में जबकि कहानी-नयी कहानी की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं के स्तम्भो से आगे कई एक पुस्तको का विषय बन चुकी है, उन भूमिकाओ की वह प्रासगिकता नही रही। इसका एक अर्थ यह भी है कि एक लेखक का वास्तविक कथ्य उसकी रचना है, वास्तविक प्रासंगिकता भी उसके इसी कथ्य की होती है। शेष सब यात्रा का गुबार है जो धीरे-धीरे बैठ जाता है। इसके अतिरिक्त इस विधा की सम्भावनाओ तथा इसके साथ अपनी आज की प्रयोगशीलता के सम्बन्ध को लेकर कई-एक प्रश्न मन मे हैं जो मेरे आज के लेखन को निर्धारित कर रहे हैं। परन्तु वे एक व्यक्ति-लेखक द्वारा अपने ही लिए अपने सामने रखे गए प्रश्न हैं जिन्हे सामान्य प्रश्नों के रूप मे प्रस्तावित करने का मुझे कोई आग्रह नही है।

अपनी कथा-यात्रा का संक्षिप्त विवरण मैंने 'मेरी प्रिय कहानियां' शीर्षक संकलन की भूमिका में दिया है जिसे वहां से देखा जा सकता है।

वर्ष : 1972

—मोहन राकेश

नोट: 'नन्ही' से आरंभ संग्रह की अंतिम बारह कहानियां कमलेश्वर ने संकलित और सम्पादित करके पुस्तक रूप में (संग्रह 'एक घटना' नाम से) पहली बार प्रकाशित कराई थी। उनकी लिखी भूमिका परिशिष्ट-2 में दी जा रही है।

पूर्वा के नाम

क्रम

मिस पाल

वह दूर से दिखाई देती आकृति मिस पाल ही हो सकती थी।

फिर भी विश्वास करने के लिए मैंने अपना चश्मा ठीक किया। नि.सन्देह, वह मिस पाल ही थी। यह तो खैर मुझे पता था कि वह उन दिनों कुल्लू में ही कहीं रहती है, पर इस तरह अचानक उससे भेंट हो जाएगी, यह नहीं सोचा था। और उसे सामने देखकर भी मुझे विश्वास नहीं हुआ कि वह स्थायी रूप से कुल्लू और मनाली के बीच उस छोटे-से गांव में रहती होगी। जब वह दिल्ली से नौकरी छोड़कर आई थी, तो लोगों ने उसके बारे में क्या-क्या नहीं सोचा था!

बस रायसन के डाकखाने के पास पहुंचकर रुक गई। मिस पाल डाकखाने के बाहर खड़ी पोस्टमास्टर से कुछ बात कर रही थी। हाथ में वह एक थैला लिए थी। बस के रुकने पर न जाने किस बात के लिए पोस्टमास्टर को धन्यवाद देती हुई वह बस की तरफ मुड़ी। तभी मैं उतरकर उसके सामने पहुच गया। एक आदमी के अचानक सामने आ जाने से मिस पाल थोड़ा अचकचा गई, मगर मुझे पहचानते ही उसका चेहरा खुशी और उत्साह से खिल गया।

"रणजीत तुम?" उसने कहा, "तुम यहां कहां से टपक पड़े?"

"मैं इस बस से मनाली से आ रहा हूं।" मैंने कहा।

"अच्छा! मनाली तुम कब से आए हुए थे?"

"आठ-दस दिन हुए, आया था। आज वापस जा रहा हू।"

"आज ही जा रहे हो?" मिस पाल के चेहरे से आधा उत्साह गायब हो गया, "देखो, कितनी बुरी बात है कि आठ-दस दिन मे तुम यहा हो और मुझसे मिलने की तुमने कोशिश भी नही की। तुम्हे यह तो पता ही था कि मैं आजकल कुल्लू मे हूं।"

"हां, यह तो पता था, पर यह नही पता था कि कुल्लू के किस हिस्से में हो। अब भी तुम अचानक ही दिखाई दे गईं, नही मुझे कहा से पता चलता कि तुम इस जंगल को आबाद कर रही हो?"

"सचमुच बहुत बुरी बात है," मिस पाल उलाहने के स्वर में बोली, "तुम इतने दिनों से यहां हो और मुझसे तुम्हारी भेंट हुई आज जाने के वक्त···।"

ड्राइवर ज़ोर-ज़ोर से हॉर्न बजाने लगा। मिस पाल ने कुछ चिढ़कर ड्राइवर की तरफ देखा और एकसाथ झिड़कने और क्षमा मांगने के स्वर मे कहा, "बस जी एक मिनट। मैं भी इसी बस से कुल्लू चल रही हूं। मुझे कुल्लू की एक सीट दे दीजिए। थैंक यू। थैंक यू वेरी मच!" और फिर मेरी तरफ मुड़कर बोली, "तुम इस बस से कहा तक जा रहे हो?"

"आज तो इस बस से जोगिन्दरनगर जाऊंगा। वहां एक दिन रहकर कल सुबह आगे की बस पकड़ूंगा।"

ड्राइवर अब और ज़ोर से हॉर्न बजाने लगा। मिस पाल ने एक बार क्रोध और बेबसी के साथ उसकी तरफ देखा और बस के दरवाज़े की तरफ बढ़ती हुई बोली, "अच्छा, कुल्लू तक तो हम लोगों का साथ है ही, और बात कुल्लू पहुचकर करेंगे। मैं तो कहती हूं कि तुम दो-चार दिन यहीं रुको, फिर चले जाना।"

बस मे पहले ही बहुत भीड़ थी। दो-तीन आदमी वहां से और चढ़ गए थे, जिससे अन्दर खड़े होने की जगह भी नहीं रही थी। मिस पाल दरवाज़े से अन्दर जाने लगी तो कण्डक्टर ने हाथ बढ़ाकर उसे रोक दिया। मैंने कण्डक्टर से बहुतेरा कहा कि अन्दर मेरे वाली जगह खाली है, मिस साहब वहा बैठ जाएगी और मैं भीड़ मे किसी तरह खड़ा होकर चला जाऊगा, मगर कण्डक्टर एक बार ज़िद पर अड़ा तो अड़ा ही रहा कि और सवारी वह नहीं ले सकता। मैं अभी उससे बात कर ही रहा था कि ड्राइवर ने बस स्टार्ट कर दी। मेरा सामान बस मे था, इसलिए मैं दौड़कर चलती बस मे सवार हो गया। दरवाज़े से अन्दर जाते हुए मैंने एक बार मुड़कर मिस पाल की तरफ देख लिया। वह इस तरह अचकचाई-सी खड़ी थी जैसे कोई उसके हाथ से उसका सामान छीनकर भाग गया हो और उसे समझ न आ रहा हो कि उसे अब क्या करना चाहिए।

बस हल्के-हल्के मोड़ काटती कुल्लू की तरफ बढ़ने लगी। मुझे अफसोस होने लगा कि मिस पाल को बस मे जगह नही मिली तो मैंने ही क्यो न अपना सामान वहां उतरवा लिया। मेरा टिकट जोगिन्दरनगर का था, पर यह ज़रूरी नहीं था कि उस टिकट से जोगिन्दरनगर तक जाऊ ही। मगर मिस पाल से भेंट कुछ ऐसे आकस्मिक ढंग से हुई थी और निश्चय करने के लिए समय इतना कम था कि मैं यह बात उस समय सोच भी नही सका था। थोड़ा-सा भी समय और मिलता, तो मैं ज़रूर कुछ देर के लिए वहां उतर जाता। उतने समय मे तो मैं मिस पाल से कुशल-समाचार भी नही पूछ सका था, हालांकि मन में उसके सम्बन्ध मे कितना-कुछ जानने की उत्सुकता थी। उसके दिल्ली छोड़ने के बाद लोग उसके बारे मे जाने क्या-क्या बातें करते रहे थे। किसीका ख्याल था कि उसने कुल्लू में एक रिटायर्ड अंग्रेज़ मेजर से शादी कर ली है और मेजर ने अपने सेब के बगीचे उसके नाम कर दिए है। किसीकी सूचना थी कि उसे वहा सरकार की तरफ से वज़ीफा मिल रहा है और वह करती धरती कुछ नही, बस घूमती और हवा खाती है। कुछ ऐसे लोग भी थे जिनका कहना था कि मिस पाल का दिमाग खराब हो गया है और सरकार उसे इलाज के लिए अमृतसर पागलखाने मे भेज रही है। मिस पाल एक दिन अचानक अपनी लगी हुई पाच सौ की नौकरी छोडकर चली आई थी, ससे लोगो में उसके बारे म तरह-तरह की कहानिया प्रचलित थीं।

जिन दिनो मिस पाल ने त्यागपत्र दिया, मैं दिल्ली मे नही था। लम्बी छुट्टी लेकर बाहर गया था। मगर मिस पाल के नौकरी छोडने का कारण मैं काफी हद तक जानता था। वह सूचना विभाग में हम लोगो के साथ काम करती थी और राजेन्द्रनगर में हमारे घर से दस-बारह घर छोडकर रहती थी। दिल्ली मे भी उसका जीवन काफी अकेला था, क्योंकि दफ्तर के ज्यादातर लोगों से उसका मनमुटाव था और बाहर के लोगो से वह मिलती बहुत कम थी। दफ्तर का वातावरण उसे अपने अनुकूल नही लगता था। वह वहां एक-एक दिन जैसे गिनकर काटती थी। उसे हर एक से शिकायत थी कि वह घटिया किस्म का आदमी है, जिसके साथ उसका उठना बैठना नही हो सकता।

"ये लोग इतने ओछे और बेईमान हैं," वह कहा करती, "इतनी छोटी और कमीनी बातें करते है कि मेरा इनके बीच काम करते हर वक्त दम घुटता रहता है। जाने क्यों ये लोग इतनी छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे से लड़ते हैं और अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए एक-दूसरे को कुचलने की कोशिश करते रहते हैं!"

मगर उस वातावरण में उसके दु खी रहने का मुख्य कारण दूसरा था, जिसे वह मुंह से स्वीकार नही करती थी। लोग इस बात को जानते थे, इसलिए जान-बूझकर उसे छेड़ने के लिए कुछ-न कुछ कहते रहते थे। बुखारिया तो रोज ही उसके रंग-रूप पर कोई

न कोई टिप्पणी कर देता था।

"क्या बात है मिस पाल, आज रंग बहुत निखर रहा है!"

दूसरी तरफ से जोरावरसिंह बात जोड़ देता, "आजकल मिस पाल पहले से स्लिम भी तो हो रही हैं।"

मिस पाल इन संकेतों से बुरी तरह परेशान हो उठती और कई बार ऐसे मौके पर कमरे से उठकर चली जाती। उसकी पोशाक पर भी लोग तरह-तरह की टिप्पणियां करते रहते थे। वह शायद अपने मुटापे की क्षतिपूर्ति के लिए ही बाल छोटे कटवाती थी, बगैर बांह की कमीजें पहनती थी और वनावसिंगार से चिढ़ होने पर भी रोज काफी समय मेक-अप पर खर्च करती थी। मगर दफ्तर में दाखिल होते ही उसे किसी न किसीके मुंह से ऐसी बात सुनने को मिल जाती थी, "मिस पाल, इस नई कमीज़ का डिजाइन बहुत अच्छा है। आज तो गजब ढा रही हो तुम!"

मिस पाल को इस तरह की हर बात दिल मे चुभ जाती थी। जितनी देर दफ्तर मे रहती, उसका चेहरा गम्भीर बना रहता। जब पांच बजते, तो वह इस तरह अपनी मेज़ से उठती जैसे कई घंटे की सजा भोगने के बाद उसे छुट्टी मिली हो। दफ्तर से उठकर वह सीधी अपने घर चली जाती और अगले दिन सुबह दफ्तर के लिए निकलने तक वहीं रहती। शायद दफ्तर के लोगों से तंग आ जाने की वजह से ही वह और लोगों से भी मेल-जोल नहीं रखना चाहती थी। मेरा घर पास होने की वजह से, या शायद इसलिए कि दफ्तर के लोगों में एक मैं ही था जिसने उसे कभी शिकायत का मौका नहीं दिया था, वह कभी शाम को हमारे यहां चली आती थी। मैं अपनी बूआ के पास रहता था और मिस पाल मेरी बूआ और उनकी लड़कियों से काफी घुल-मिल गई थी। कई बार घर के कामों मे वह उनका हाथ भी बटा देती थी। किसी दिन हम उसके यहां चले जाते थे। वह घर मे समय बिताने के लिए संगीत और चित्रकला का अभ्यास करती थी। हम लोग पहुंचते तो उसके कमरे से सितार की आवाज आ रही होती या वह रंग और कूचियां लिए किसी तसवीर मे उलझी होती। मगर जब वह इन दोनों में से कोई भी काम न कर रही होती तो अपने तख्त पर बिछे मुलायम गद्दे पर दो तकियों के बीच लेटी छत को ताक रही होती। उसके गद्दे पर जो झीना रेशमी कपड़ा बिछा रहता था, उसे देखकर मुझे बहुत चिढ़ होती थी। मन करता था कि उसे खींचकर बाहर फेंक दूं। उसके कमरे मे सितार, तबला, रंग, कैनवस, तसवीरें, कपड़े तथा नहाने और चाय बनाने का सामान इस तरह उलझे-बिखरे रहते थे कि बैठने के लिए कुरसियों का उद्धार करना एक समस्या हो जाती थी। कभी मुझे उसके झीने रेशमी कपड़े वाले तख्त पर बैठना पड़ जाता तो मुझे मन मे बहुत ही परेशानी होती। मन करता कि जितनी जल्दी हो वहां से उठ जाऊं। मिस पाल अपने कमरे के चारों तरफ खोजकर जाने कहां से एक चायदानी और तीन-चार टूटी प्यालियां निकाल लेती और हम लोगों को 'फर्स्ट क्लास बोहीमियन कॉफी' पिलाने की तैयारी करने लगती। कभी वह हम लोगों को अपनी बनाई तसवीरें दिखाती और हम तीनों — मैं और मेरी दोनों बहनें— अपना अज्ञान छिपाने के लिए उनकी प्रशंसा कर देते। मगर कई बार वह हमें बहुत उदास मिलती और ठीक ढंग से बात भी न करती। मेरी बहनें ऐसे मौके पर उससे चिढ़ जाती और कहतीं कि वे उसके यहां फिर नहीं जाएंगी। मगर मुझे ऐसे अवसर पर मिस पाल से ज्यादा सहानुभूति होती।

आखिरी बार जब मैं मिस पाल के यहां गया, मैंने उसे बहुत ही उदास देखा था। मेरा उन दिनों एपेंडेसाइटिस का आपरेशन हुआ था और मैं कई दिन अस्पताल में रहकर आया था। मिस पाल उन दिनों रोज अस्पताल मे खबर पूछने आती रही थी। बूआ

अस्पताल में मेरे पास रहती थी पर खाने-पीने का सामान इकट्ठा करना उनके लिए मुश्किल था। मिस पाल सुबह-सुबह आकर सब्जियां और दूध दे जाती थी। जिस दिन मैं उसके यहां गया, उससे एक ही दिन पहले मुझे अस्पताल से छुट्टी मिली थी और मैं अभी काफी कमजोर था। फिर भी उसने मेरे लिए जो तकलीफ उठाई थी, उसके लिए मैं उसे धन्यवाद देना चाहता था।

मिस पाल ने दफ्तर से छुट्टी ले रखी थी और कमरा बन्द किए अपने गद्दे पर लेटी थी। मुझे पता लगा कि शायद वह सुबह से नहाई भी नहीं है।

"क्या बात है, मिस पाल ? तबियत तो ठीक है ?" मैंने पूछा।

"तबीयत ठीक है", उसने कहा, "मगर मैं नौकरी छोड़ने की सोच रही हूं।"

"क्यों ? कोई खास बात हुई है क्या ?"

"नहीं, खास बात क्या होगी ? बात बस इतनी ही है मैं ऐसे लोगों के बीच काम कर ही नहीं सकती मैं सोच रही हू कि दूर के किसी खूबसूरत-से पहाड़ी इलाके में चली जाऊं और वहां रहकर संगीत और चित्रकला का ठीक से अभ्यास करूं। मुझे लगता है, मैं खामखाह यहां अपनी जिन्दगी बरबाद कर रही हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरह की जिन्दगी जीने का आखिर मतलब ही क्या है ? सुबह उठती हूं, दफ्तर चली जाती हू। वहां सात-आठ घंटे खराब करके घर आती हू, खाना खाती हूं और सो जाती हूं। यह सारा का सारा सिलसिला मुझे बिलकुल बेमानी लगता है। मैं सोचती हूं कि मेरी जरूरतें ही कितनी हैं ? मैं कहीं भी जाकर एक छोटा-सा कमरा या शैक लू तो थोड़ा-सा ज़रूरत का सामान अपने पास रखकर पचास-साठ या सौ रुपये में गुजारा कर सकती हूं। यहां मैं जो पांच सौ लेती हू, वे पांच के पांच सौ हर महीने खर्च हो जाते है। किस तरह खर्च हो जाते हैं, यह खुद मेरी समझ में नहीं आता। पर अगर जिन्दगी इसी तरह चलती है, तो क्यों मैं खामखाह दफ्तर जाने-आने का भार ढोती रहूं ? बाहर रहने में कम से कम अपनी स्वतन्त्रता तो होगी। मेरे पास कुछ रुपये पहले के हैं, कुछ मुझे प्राविडेंट फण्ड के मिल जाएंगे। इतने में एक छोटी सी जगह पर मेरा काफी दिन गुजारा हो सकता है। मैं ऐसी जगह रहना चाहती हू जहां यहां की-सी गन्दगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकतें न करते हों। ठीक से जीने के लिए इन्सान को कम से कम इतना तो महसूस होना चाहिए कि उसके आसपास का वातावरण उजला और साफ है, और वह एक मेढक की तरह गंदले पानी में नहीं जी रहा।"

"मगर तुम यह कैसे कह सकती हो कि जहां भी तुम जाकर रहोगी, वहां हर चीज वैसी ही होगी जैसी तुम चाहती हो ? मैं तो समझता हूं कि इन्सान जहां भी चला जाए, अच्छी और बुरी दोनों तरह की चीज़ें उसे अपने आसपास मिलेंगी ही। तुम यहां के वातावरण से घबराकर कहीं और जाती हो, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वहां का वातावरण भी तुम्हें ऐसा ही नहीं लगेगा ? इसलिए मेरे ख्याल से नौकरी छोड़ने की बात तुम गलत सोचती हो। तुम यहीं रहो और अपना संगीत और चित्रकला का अभ्यास करती रहो। लोग जैसी बातें करते है, करने दो।"

पर मिस पाल की वितृष्णा इससे कम नहीं हुई। "तुम नहीं समझते, रणजीत," वह बोली, "यहां ऐसे लोगों के बीच और रहूंगी, तो मेरा दिमाग बिलकुल खोखला हो जाएगा। तुम नहीं जानते कि मैं जो तुम्हारे लिए सुबह दूध और सब्जियां लेकर जाती रही हू, उसे लेकर भी ये लोग क्या-क्या बातें करते रहे है। जो लोग अच्छे-से-अच्छे काम का ऐसा कमीना मतलब लेते हों उनके बीच आदमी रह ही कैसे सकता है ? मैंने यह सब बहुत दिन सह लिया है, अब और मुझसे नहीं सहा जाता। मैं सोच रही हू जितनी जल्दी

हो सके यहा से चली जाऊं। बस यही एक बात तय नही कर पा रही कि जाऊं कहां। अकेली होने से किसी अनजान जगह जाकर रहते डर लगता है। तुम जानते ही हो कि मैं…।" और बात बीच में छोड़कर वह उठ खड़ी हुई, "अच्छा, तुम्हारे लिए कुछ चाय-वाय तो बनाऊं। तुम अभी अस्पताल से निकलकर आए हो और मैं हूं कि अपनी ही बात किए जा रही हूं। तुम्हें अभी कुछ दिन घर पर आराम करना चाहिए। अभी से इस तरह चलना-फिरना ठीक नहीं।"

"मैं चाय नहीं पिऊंगा," मैंने कहा, "मैं तुम्हें कुछ समझा तो नही सकता, सिर्फ इतना कह सकता हूं कि तुम लोगों की बातों को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दे रही हो। मेरा यह भी ख्याल है कि लोग वास्तव मे उतने बुरे नही है जितना कि तुम उन्हें समझती हो। अगर तुम इस नज़र से सोचो कि…।"

"इस बात को रहने दो," मिस पाल ने मेरी बात बीच मे काट दी, "मैं इन लोगों से दिल से नफरत करती हू। तुम इन्हे इन्सान समझते हो ? मुझे तो ऐसे लोगों से अपना पिंकी ज्यादा अच्छा लगता है। यह उन सबसे कही ज्यादा सभ्य है।"

पिंकी मिस पाल का छोटा-सा कुत्ता था। वह कुछ देर उसे गोदी में लिए उसके बालों पर हाथ फेरती रही। मैंने पहले भी कई बार देखा था कि वह उस कुत्ते को एक बच्चे की तरह प्यार करती है और उसे खाना खिलाकर बच्चों की तरह ही तौलिये से उसका मुंह पोंछती है। मैं कुछ देर बाद वहा से उठकर चला, तो मिस पाल पिंकी को गोदी मे लिए मुझे बाहर दरवाज़े तक छोड़ने आई।

"अंकल को टा टा करो," वह पिंकी की एक अगली टांग हाथ से हिलाती हुई बोली, "टा टा, टा टा !"

मैं लम्बी छुट्टी से वापस आया, तो मिस पाल त्यागपत्र देकर जा चुकी थी। वह अपने बारे में लोगो को इतना ही बताकर गई थी कि वह कुल्लू के किसी गाव में बसने जा रही है। बाकी बातें लोगो की कल्पना ने अपने-आप जोड़ दी थी।

बस ब्यास के साथ-साथ मोड़ काट रही थी और मेरा मन हो रहा था कि लौट-कर रायसन चला जाऊं। मैं मनाली में दस दिन अकेला रहकर ऊब गया था, और मिस पाल थी कि कई महीनों से वहा रहती थी। मैं जानना चाहता था कि वह अकेली वहां कैसा महसूस करती है और नौकरी छोड़ने के बाद से उसने क्या-क्या कुछ कर डाला है। यूं एक अपरिचित स्थान पर किसी पुराने परिचित से मिलने और बात करने का भी अपना आकर्षण होता है। बस जब कुल्लू पहुंचकर रुकी, तो मैंने अपना सामान वहां उतरवा कर हिमाचल राज्य परिवहन के दफ्तर मे रखवा दिया और रायसन के लिए वापसी की पहली बस पकड़ ली। बस ने पन्द्रह-बीस मिनट मे मुझे रायसन के बाजार में उतार दिया। मैंने वहां एक दुकानदार से पूछा कि मिस पाल कहां रहती हैं।

"मिस पाल कौन है, भाई ?" दुकानदार ने अपने पास बैठे युवक से पूछा।

"वह तो नही, वह कटे बालों वाली मिस ?"

"हां-हा, वही होगी।"

दुकान मे और भी चार-पांच व्यक्ति थे। उन सबकी आंखें मेरी तरफ घूम गईं। मुझे लगा जैसे वे मन मे यह तय करना चाह रहे हो कि कटे बालों वाली मिस के साथ मेरा क्या रिश्ता होगा।

"चलिए, मैं आपको उसके यहां छोड़ आता हूं," यह कहकर युवक दुकान से उतर आया। सड़क पर मेरे साथ चलते हुए उसने पूछा, "क्यों भाई साहब, यहां मिस क्या अकेली

ही है या ··?"

"हां अकेली ही है।"

कुछ देर हम लोग चुप रहकर चलते रहे। फिर उसने पूछा, "आप उसके क्या लगते हैं ?"

मुझे समझ नहीं आया कि मैं उसको क्या उत्तर दूं। पल-भर सोचकर मैंने कहा, "मैं उसका रिश्तेदार नहीं हूं। उसे वैसे ही जानता हूं।"

सड़क से बाईं तरफ थोड़ा ऊपर को जाकर हम लोग एक खुले मैदान में पहुंच गए। मैदान चारों तरफ से पेड़ों से घिरा था और बीच में पांच-छह जालीदार कॉटेज बने थे, जो बड़े-बड़े मुर्गी-खानों जैसे लगते थे। लड़का मुझे बताकर कि उनमें पहला कॉटेज मिस पाल का है, वहां से लौट गया। मैंने जाकर कॉटेज का दरवाज़ा खटखटाया।

"कौन है ?" अन्दर से मिस पाल की आवाज़ सुनाई दी।

"एक मेहमान है मिस, दरवाज़ा खोलो।"

"दरवाज़ा खुला है, आ जाइए।"

मैंने दरवाज़ा धकेलकर खोल लिया और अन्दर चला गया। मिस पाल ने एक चारपाई पर अपना गद्दा लगा रखा था और उसी तरह दो तकियों के बीच लेटी थी जैसे दिल्ली में अपने तख्त पर लेटी रहती थी। सिरहाने के पास एक खुली हुई पुस्तक रखी थी— बर्ट्रेण्ड रसेल की 'कान्क्वेस्ट ऑफ हेपीनेस'। मैं देखकर तय नहीं कर सका कि वह पुस्तक पढ़ रही थी या लेटी हुई सिर्फ छत की तरफ देख रही थी। मुझे देखते ही वह चौंककर बैठ गई।

"अरे तुम ··?"

"हां, मैं। तुमने सोचा भी नहीं होगा कि गया आदमी फिर वापस भी आ सकता है।"

"बहुत अजीब आदमी हो तुम ! वापस आना था, तो उसी समय क्यों नहीं उतर गए !"

"बजाय इसके कि शुक्रिया अदा करो जो सात मील जाकर वापस चला आया हूं···।"

"शुक्रिया अदा करती अगर तुम उसी समय उतर जाते और मुझे बस में अपनी सीट ले लेने देते।"

मैंने ठहाका लगाया और बैठने के लिए जगह ढूंढने लगा। वहां भी चारों तरफ वही बिखराव और अव्यवस्था थी जो दिल्ली में उसके घर दिखाई दिया करती थी। हर चीज़ हर दूसरी चीज़ की जगह काम में लाई जा रही थी। एक कुरसी ऊपर से नीचे तक मले कपड़ों से लदी थी। दूसरी पर कुछ रंग बिखरे थे और एक प्लेट रखी थी जिसमें बहुत-सी कीलें पड़ी थीं।

"बैठो, मैं झट से तुम्हारे लिए चाय बनाती हूं," मिस पाल व्यस्त होकर उठने लगी।

"अभी मुझसे बैठने को तो कहा नहीं, और चाय की फ़िक्र पहले से करने लगी ?" मैंने कहा, "मुझे बैठने की जगह बता दो और चाय-वाय रहने दो। इस वक्त तुम्हारी 'बोहीमियन चाय' पीने का ज़रा मन नहीं है।"

"तो मत पियो। मुझे कौन झंझट करना अच्छा लगता है ! बैठने की जगह मैं अभी बनाए देती हूं।" और कपड़े-अपड़े हटाकर उसने एक कुरसी खाली कर दी। बाईं तरफ एक बड़ी-सी मेज़ थी, पर उस पर भी इतनी चीज़ें पड़ी थीं कि कहीं कुहनी रखने

तक की जगह नहीं थी। मैंने बैठकर टांगें फैलाने की कोशिश की तो पता चला कपड़ों के ढेर के नीचे मिस पाल ने अपने बनाए खाके रख रखे है। मिस पाल फिर से अपने बिस्तर में तकियों के सहारे बैठ गई थी। गद्दे पर उसने वही झीना रेशमी कपड़ा बिछा रखा था, जिसे देखकर मुझे चिढ़ हुआ करती थी। मेरा उस समय भी मन हुआ कि उस कपड़े को निकालकर फाड़ दूं या कहीं आग में झोंक द। मैंने सिगरेट सुलगाने के लिए मेज़ से दियासलाई की डिबिया उठाई मगर खोलते ही वापस रख दी। डिबिया मे दियासलाइया नहीं थी, गुलाबी-सा रंग भरा था। मैंने चारो तरफ नज़र दौड़ाई, मगर और डिबिया कही दिखाई नहीं दी।

"दियासलाई किचन मे होगी, मैं अभी लाती हूं," कहती हुई मिस पाल फिर उठी और कमरे से चली गई। मैं उतनी देर आसपास देखता रहा। मुझे फिर उस दिन की याद हो आई जिस दिन मैं मिस पाल के घर देर तक बैठा उससे बातें करता रहा था। पिंकी से मिस पाल के 'टा टा' कराने की बात याद आने मे मैं हंस दिया।

तभी मिस पाल दियासलाई की डिबिया लिए आ गई। मेरा अकेले में हंसना शायद उसे बहुत अस्वाभाविक लगा। वह सहसा गम्भीर हो गई।

"किसी ने कुछ पिला-विला दिया है क्या ? उसने मज़ाक और शिकायत के स्वर में कहा।

"मैं अपने इस तरह लौटकर आने की बात पर हंस रहा हूं।" और जैसे अपने को ही अपने झूठ का विश्वास दिलाने के लिए मैंने अपनी हंसी की नकल की और कहा, "मैं सोच भी नहीं सकता था कि इस अनजान जगह पर अचानक तुमसे भेंट हो जाएगी ? और तुम्हीने कहां सोचा होगा कि जो आदमी बस में आगे चला गया था, वह घण्टा-भर बाद तुम्हारे कमरे मे बैठा तुमसे बात कर रहा होगा !"

और विश्वास करके कि मैंने अपने हसने के कारण की व्याख्या कर दी है, मैंने पूछा, "तुम्हारा पिंकी कहां है ? यहां दिखाई नहीं दे रहा।"

मिस पाल पहले से भी गम्भीर हो गई। मुझे लगा कि उसका चेहरा अब काफी रूखा लगने लगा है। आंखों में लाली भर रही थी, जैसे कई रातों से वह ठीक से सोई न हो।

पिंकी को यहां आने के बाद एक रात सरदी लग गई थी," उसने अपनी उसांस दबाकर कहा, "मैंने उसे कितनी ही गरम चीज़ें खिलाईं, पर वह दो दिन में चलता बना।"

मैंने विषय बदल दिया। उससे शिकायत करने लगा कि वह जो अपने बारे में बिना किसी को ठीक बताए दिल्ली से चली आई, यह उसने ठीक नहीं किया।

"दफ्तर मे अब भी लोग मिस पाल की बात करके हमते होगे !" उसने ऐसे पूछा जैसे वह स्वयं उस मिस पाल मे भिन्न हो, जिसके बारे मे वह सवाल पूछ रही थी। पर उसकी आंखों में यह जानने की बहुत उत्सुकता भर रही थी कि मैं उसके सवाल का क्या जवाब देता हूं।

"लोगों की बातो को तुम इतना महत्त्व क्यों देती हो ?" मैंने कहा। "लोग वैसी बातें इसलिए करते हैं कि उनके जीवन में मनोरंजन के दूसरे साधन बहुत कम होते हैं। जब वह व्यक्ति चला जाता है, तो चार दिन में यह भूल जाते हैं कि संसार मे उसका अस्तित्व था भी या नहीं।"

यहते-कहते मुझे एहसास हो आया कि मैंने यह कहकर गलती की है। मिस पाल मुझसे यही सुनना चाहती थी कि लोग अब भी उसके बारे मे उसी तरह बात करते हैं

और उसी तरह उसका मज़ाक उड़ाते हैं—यह विश्वास उसके लिए अपने वर्तमान को सार्थक समझने के लिए ज़रूरी था।

"हो सकता है तुम्हारे सामने बात न करते हों," मिस पाल बोली, "क्योंकि उन्हें पता है कि हम लोग···अम्···अ···मित्र रहे हैं। नही तो वे कमीने लोग बात करने से बाज़ आ सकते हैं?"

अच्छा था कि मिस पाल ने मेरी बात पर विश्वास नही किया। उसने समझा कि मैं झूठमूठ उसे दिलासा देने की कोशिश कर रहा हूं।

"हो सकता है बात करते भी हो," मैंने कहा, "पर तुम अब उन लोगो की बात क्यों सोचती हो? कम से-कम तुम्हारे लिए तो उन लोगो का अब अस्तित्व ही नही है।"

"मेरे लिए उन लोगो का अस्तित्व कभी था ही नही," मिस पाल ने मुह बिचका दिया, "मैं उनमे से किसी को अपने पैर के अंगूठे के बराबर भी नही समझती थी।" आखो से लग रहा था जैसे अब भी उन लोगो को अपने पास देख रही हो और उसे खेद हो कि वह ठीक से उनसे प्रतिशोध क्यो नही ले पा रही।

"तुम्हे पता है कि रमेश का फिर लखनऊ ट्रांसफ़र हो गया है?" मैंने बात बदल दी।

"अच्छा, मुझे पता नही था!"

पर उसने उस सम्बन्ध में और जानने की उत्सुकता प्रकट नही की। मैं फिर भी उसे रमेश के ट्रासफ़र का किस्सा विस्तार से सुनाने लगा। मिस पाल 'हूं-हां' करती रही। पर यह साफ़ था कि वह अपने अन्दर ही कही खो गई है।

मैं रमेश की बात कह चुका, तो कुछ क्षण हम दोनो चुप रहे। फिर मिस पाल बोली, "देखो, मैं तुमसे सच कहती हूं रणजीत, मुझे वहा उन लोगों के बीच एक-एक पल काटना असम्भव लगता था। मुझे लगता था, मैं नरक में रहती हू। तुम्हे पता ही है, मैं दफ्तर मे किसी से बात करना भी पसन्द नही करती थी।"

मैं सुबह मनाली से बिना नाश्ता किए चला था, इसलिए मुझे भूख लग आई थी। मैंने बात को रोटी के प्रकरण पर ले आना उचित समझा। मैंने उससे पूछा कि उसने खाने की क्या व्यवस्था कर रखी है—खुद बनाती है, या कोई नौकर रख रखा है।

"तुम्हें भूख तो नही लगी?" मिस पाल अब दफ्तर के माहौल से बाहर निकल आई, "लगी हो, तो उधर मेरे साथ किचन में चलो। जो कुछ बना है, इस वक्त तो तुम्हें उसी मे से थोड़ा-बहुत खा लेना होगा। शाम को मैं तुम्हे ठीक से बनाकर खिलाऊंगी। मुझे तुम्हारे आने का पता होता, तो मैं इस वक्त भी कुछ और चीज़ बना रखती। यहा बाज़ार मे तो कुछ मिलता ही नही। किसी दिन अच्छी सब्ज़ी मिल जाए, तो समझो बड़े भाग्य का दिन है। कोई दिन होता है जिस दिन एकाध अण्डा मिल जाता है।···शाम को मैं तुम्हारे लिए मछली बनाऊगी। यहा की ट्राउट बहुत अच्छी होती है। मगर मिलती बहुत मुश्किल से है।"

मुझे खुशी हुई कि मैंने सफलतापूर्वक बात का विषय बदल दिया है। मिस पाल बिस्तर से उठकर खड़ी हो गई थी। मैंने भी कुर्सी से उठते हुए कहा, "आओ, चलकर तुम्हारा रसोईघर तो देख लू। इस समय मुझे कसकर भूख लगी है, इसलिए जो कुछ भी बना है वह मुझे ट्राउट से अच्छा लगेगा। शाम को मैं जोगिन्दरनगर पहुच जाऊगा।"

मिस पाल दरवाज़े से बाहर निकलती हुई सहसा रुक गई।

"तुम्हें शाम को जोगिन्दरनगर ही पहुचना है तो लौटकर क्यों आए थे? यह बात तुम गाठ में बाध लो कि आज मैं तुम्हे यहा से नही जाने दूंगी। तुम्हे पता है इन तीन

महीनों में तुम मेरे यहां पहले ही मेहमान आए हो ? मैं तुम्हें आज कैसे जाने दे सकती हूं ? ···तुम्हारे साथ कुछ सामान-आमान भी है या ऐसे ही चले आए थे ?"

मैंने उसे बताया कि मैं अपना सामान हिमाचल राज्य परिवहन के दफ्तर में छोड़ आया हूं और उससे कह आया हूं कि दो घंटे में मैं लौट आऊंगा।

"मैं अभी पोस्टमास्टर से वहां टेलीफोन करा दूंगी। कल तक तुम्हारा सामान यहां ले आएंगे। तुम कम से कम एक सप्ताह यहां रहोगे। समझे ? मुझे पता होता कि तुम मनाली में आए हुए हो तो मैं भी कुछ दिन के लिए वहां चली आती। आजकल तो मैं यहां ··खैर·· तुम पहले उधर तो आओ, नहीं भूख के मारे ही यहां से भाग जाओगे।"

मैं इस नई स्थिति के लिए तैयार नहीं था। उस सम्बन्ध में बाद में बात करने की सोचकर मैं उसके साथ रसोईघर में चला गया। रसोईघर में कमरे जितनी अराजकता नहीं थी, शायद इसलिए कि वहां सामान ही बहुत कम था। एक कपड़े की आराम कुर्सी थी, जो लगभग खाली ही थी—उस पर सिर्फ नमक का एक डिब्बा रखा हुआ था। शायद मिस पाल उसपर बैठकर खाना बनाती थी। खाना बनाने का और सारा सामान एक टूटी हुई मेज़ पर रखा था। कुर्सी पर रखा हुआ डिब्बा उसने जल्दी से उठाकर मेज़ पर रख दिया और इस तरह मेरे बैठने के लिए जगह कर दी।

फिर मिस पाल ने जल्दी-जल्दी स्टोव जलाया और सब्ज़ी की पतीली उसपर रख दी। कलछी साफ नहीं थी, वह उसे साफ करने के लिए बाहर चली गई। लौटकर उसे कलछी को पोंछने के लिए कोई कपड़ा नहीं मिला। उसने अपनी कमीज़ से ही उसे पोंछ लिया और सब्ज़ी को हिलाने लगी।

"दो आदमियों का खाना है भी या दोनों को ही भूखे रहना पड़ेगा ?" मैंने पूछा।

"खाना बहुत है," मिस पाल झुककर पतीली में देखती हुई बोली।

"क्या-क्या है ?"

मिस पाल कलछी से पतीली में टटोलकर देखने लगी।

"बहुत कुछ है। आलू भी हैं, बैंगन भी हैं और शायद···शायद बीच में एकाध टींडा भी है। यह सब्ज़ी मैंने परसों बनाई थी।"

"परसों ?" मैं ऐसे चौंक गया जैसे मेरा माथा सहसा किसी चीज़ से टकरा गया हो। मिस पाल कलछी चलाती रही।

"हर रोज़ तो नहीं बना पाती हूं," वह बोली। रोज बनाने लगूं तो बस खाना बनाने की ही हो रहूं। और अम्···अ···अपने अकेली के लिए रोज़ बनाने का उत्साह भी तो नहीं होता। कई बार तो मैं सप्ताह-भर का खाना एक साथ बना लेती हूं और फिर निश्चिन्त होकर खाती रहती हूं। कहो तो तुम्हारे लिए मैं अभी ताज़ा बना दूं।"

"तो चपातियां भी क्या परसों की ही बना रखी हैं ?" मैं अनायास कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"आओ, इधर आकर देख लो, खा सकोगे या नहीं।" वह कोने में रखे हुए बेंत के सन्दूक के पास चली गई। मैं भी उसके पास पहुंच गया। मिस पाल ने सन्दूक का ढकना उठा दिया। सन्दूक में पच्चीस-तीस खुश्क चपातियां पड़ी थीं। सूखकर उन सबने कई तरह की आकृतियां धारण कर ली थीं। मैं सन्दूक के पास से आकर फिर कुर्सी पर बैठ गया।

"तुम्हारे लिए ताज़ा चपातियां बना देती हूं," मिस पाल एक अपराधी की तरह देखती हुई बोली।

"नहीं-नही, जो कुछ बना रखा है वही खाएंगे," मैंने कहा। मगर अपनी इस भलमनसाहत के लिए मेरा मन अन्दर-ही-अन्दर कुढ गया।

मिस पाल सन्दूक का ढक्कन बन्द करके स्टोव के पास लौट गई।

"सब्ज़ी तीन दिन से ज्यादा नही चलती," वह बोली, "बाद में मैं जैम, प्याज और नमक से काम चलाती हू। यहा अलूचे बहुत मिल जाते हैं, इसलिए मैंने बहुत-सा अलूचे का जैम बना रखा है। खाकर देखो, अच्छा जैम है।···ठहरो, तुम्हें प्लेट देती हूं।"

वह फिर जल्दी से बाहर चली गई और कमरे से कीलोवाली प्लेट खाली करके ले आई।

"गिलास मे अम्···अ", वह आकर बोली, "सरसो का तेल रखा है। पानी तुम प्याली मे ही ले लोगे या···?"

ट्राउट मछली···खाना खाते समय और खाना खा चुकने के बाद भी मिस पाल के दिमाग पर ट्राउट मछली की बात ही सवार रही। जैसे भी हो, शाम को वह ट्राउट मछली बनाएगी। उसके हठ की वजह से मैंने उससे कह दिया था कि मैं अगले दिन सुबह तक वहा रह जाऊंगा। मिस पाल ने आगे का फैसला अगले दिन पर छोड दिया था। उसे शाम के लिए कई और चीज़ों का इन्तज़ाम करना था, क्योंकि ट्राउट मछली आसानी से तो नही बन जाती। पहली चीज़ घी चाहिए था। डिब्बे में घी नाममात्र को ही था। प्याज़ और मसाला भी घर में नही था। मिट्टी का तेल भी चाहिए था। खाने के बाद हम लोग घूमने के लिए निकले तो पहले वह मुझे साथ बाज़ार मे ले गई। हटवार के पास भी घी नही था। उसके लिए मिस पाल ने पोस्टमास्टर से अनुरोध किया कि वह अपने घर से उसे शाम के लिए आधा सेर घी भिजवा दे, अगले दिन कुल्लू से लाकर लौटा देगी। उससे उसने यह भी कहा कि वह अपने घर के थोड़े-से फ्रेंच बीन भी उतरवाकर उसे भेज दे, और कोई मछलीवाला उधर से गुज़रे तो उसके लिए सेर-भर ट्राउट ले रखे।

"सब्बरवाल साहब, मैं आपको बहुत तकलीफ देती हू," वह चलने से पहले सात-आठ बार उसे धन्यवाद देकर बोली, 'मगर देखिए, मेरे मेहमान आए हुए हैं, और यहा ट्राउट के अलावा कोई अच्छी चीज़ मिलती नही। देखती हू, अगर बाली मुझे मिल जाए तो मैं उससे कहूगी कि वह मुझे दरिया से एक मछली पकड दे। मगर बाली का कोई भरोसा नही। आप ज़रूर मेरे लिए ले रखिएगा। मैंने मिसेज़ एटकिन्सन को भी कहला दिया है। उन्होने भी ले ली तो मैं आज और कल दोनों दिन बना लूगी। ध्यान रखिएगा। कई बार मछलीवाला आवाज़ नही लगाता और ऐसे ही निकल जाता है। थैंक यू। थैंक यू वेरी मच !"

मेरे सामान के लिए उसने कुल्लू फोन भी करा दिया। अब सडक पर चलती हुई वह सुबह के नाश्ते की बात करने लगी।

"रात को तो ट्राउट हो जाएगी, मगर सुबह नाश्ता क्या बनाया जाए ? डबल रोटी यहा नही मिलेगी, नही तो मैं तुम्हें शहद के टोस्ट ही बनाकर खिलाती। अच्छा खैर, देखो···।"

सडक पर खुली धूप फैली थी और भेड़ो और पशम के बकरों का रेवड़ हमारे आगे-आगे चल रहा था। साथ दो कुत्ते जीभ लपलपाते हुए पहरेदारी करते जा रहे थे। सामने से एक जीप के आ जाने से रेवड मे खलबली मच गई। बकरीवाले भेडो को पहाड़ की तरफ धकेलने लगे। एक भेड़ का बच्चा ढलान से फिसल गया और नीचे से

सिर उठाकर मिमियाने लगा। किसी बकरीवाले का ध्यान उसकी तरफ नही गया तो मिस पाल सहसा परेशान हो उठी, "ए भाई, देखो वह बच्चा नीचे जा गिरा है। बकरीवाले, एक बच्चा नीचे खाई में गिर गया है, उसे उठा लाओ। ए भाई!"

एक दिन पहले वर्षा हुई थी, इसलिए ब्यास खूब चढ़ा हुआ था। नुकीली चट्टानों से छिनता और कटता हुआ पानी शोर करता हुआ बह रहा था। सामने दरिया पार करने का झूला था। झूले की चर्खिया घूम रही थी, रस्सियां इकट्ठी हो रही थी और झूला दो व्यक्तियों को लिए हुए इस पार से उस पार जा रहा था। सहसा झूले मे बैठे हुए दोनों व्यक्ति 'ही-ही-ही-ही' करके हंसने लगे, जैसे किसी को चिढ़ा रहे हों। फिर उनमे से एक ने ज़ोर से छींक दिया। झूला उस पार पहुंच गया और वे व्यक्ति उसी तरह हंसते और छींकते हुए उससे उतर गए। झूला छोड दिया गया, और उसकी रस्सियां इस सिरे से उस सिरे तक आधी गोलाइयों में फैल गई। जो व्यक्ति उधर उतरे थे, वे उस किनारे मे फिर एक बार ज़ोर से हंसे। तभी झूला खीचनेवालों में एक लड़का मचान से उतरकर हमारे पास आ गया। वह ऐसे बात करने लगा जैसे अभी-अभी कोई दुर्घटना होकर हटी हो।

"मिस साहब," उसने कहा, यह वही सुदर्शन है, जिसने आपके कुत्ते को कुछ खिलाया था। यह अब भी शरारत करने से बाज नही आता।"

उन व्यक्तियों के हंसने और छींकने का मिस पाल पर उतना असर नही हुआ था जितना उस लडके की बात का हुआ था। उसका चेहरा एकदम से उतर गया और आवाज़ खुश्क हो गई।

"यह उधर के गाव का आदमी है न?" उसने पूछा।

"हां, मिस साहब!"

"तुम पोस्टमास्टर को बताना। वे अपने-आप इसे ठीक कर लेंगे।"

"मिस साहब, यह हमसे कहता है कि यह मिस साहब···!"

"तुम इस वक्त जाओ अपना काम करो," मिस पाल उसे झिड़ककर बोली "पोस्टमास्टर से कहना वे इसे एक दिन मे ठीक कर दें।"

"मगर मिस साहब···!"

"जाओ, फिर कभी उधर आकर बात करना।"

लड़के की समझ में नही आया कि मिस साहब से बात करने में उस समय उससे क्या अपराध हुआ है। वह सिर लटकाए हुए चुपचाप वहा से लौट गया।

कुछ देर हम लोग वही रुके रहे। मिस पाल जैसे थकी हुई-सी सड़क के किनारे एक बड़े-से पत्थर पर बठ गई। मैं दरिया के उस पार पहाड़ की चोटी पर उगे हुए वृक्षों की लम्बी पंक्ति को देखने लगा, जो नील आकाश और गुब्बारे जैसे सफेद बादलों के बीच खिची हुई लकीर-सी लगती थी। दरिया के दोनो तरफ पुल के सलेटी खम्भे खड़े थे, जिनपर अभी पुल नही बना था। खम्भों के आसपास से झड़कर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी दरिया में गिर रही थी। मैंने उधर से आंखें हटाकर मिस पाल की तरफ देखा। मिस पाल मेरी तरफ देख रही थी। शायद वह जानना चाहती थी कि झूलेवाले लड़के की बात का मेरे मन पर क्या प्रभाव पड़ा है।

"तो आगे चलें?" मुझसे आंखें मिलते ही उसने पूछा।

"हा चलो।"

मिस पाल उठ खड़ी हुई। उसकी सांस कुछ-कुछ फूल रही थी। वह चलती हुई मुझे बताने लगी कि वहां के लोगों में कितनी तरह के अन्ध-विश्वास हैं। जब पिंकी

बीमार हुआ तो वहां के लोगों ने सोचा था कि किसी ने उसे कुछ खिला-पिला दिया है।

"ये अनपढ़ लोग हैं। मैंने इनकी बातों का विरोध भी नहीं किया। ये लोग अपने अन्धविश्वास एक दिन में थोड़े ही छोड़ सकते हैं! इस चीज़ में जाने अभी कितने बरस लगेंगे!"

और रास्ते में चलते हुए वह बार-बार मेरी तरफ देखती रही कि मुझे उसकी बात पर विश्वास हुआ है या नहीं। मैंने सड़क से एक छोटा-सा पत्थर उठा लिया था और चुपचाप उसे उछालने लगा था। काफी देर तक हम लोग खामोश चलते रहे। वह खामोशी मुझे अस्वाभाविक लगने लगी तो मैंने मिस पाल से वापस घर चलने का प्रस्ताव किया।

"चलो, चलकर तुम्हारी बनाई हुई नई तस्वीरें ही देखी जाएं," मैंने कहा, "इन तीन-चार महीनों में तो तुमने काफी काम कर लिया होगा।"

"पहले घर चलकर एक-एक प्याली चाय पीते हैं," मिस पाल बोली। "सचमुच इस समय मैं चाय की गरम प्याली के लिए जिन्दगी की कोई भी चीज़ कुर्बान कर सकती हूं। मेरा तो मन था कि घर से चलने से पहले ही एक-एक प्याली पी लेते, मगर फिर मैंने कहा कि पोस्टमास्टर से कहने में देर हो जाएगी तो मछलीवाला निकल जाएगा।"

इस बात ने मेरे मन को थोड़ा गुदगुदा दिया कि तीन महीने में आया हुआ पहला मेहमान उस समय मिस पाल के लिए अपनी तस्वीरों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

लौटकर कॉटेज में पहुंचते ही मिस पाल चाय बनाने में व्यस्त हो गई। वह आते हुए काफी थक गई थी, क्योंकि ज़रा-सी चढ़ाई चढ़ने में ही उसकी सांस फूलने लगती थी, मगर वह ज़रा देर भी सुस्ताने के लिए नहीं रुकी। चाय के लिए उसकी यह व्यस्तता मुझे बहुत अस्वाभाविक लगी, शायद इसलिए कि मुझे खुद चाय की ज़रूरत महसूस नहीं हो रही थी। मिस पाल इस तरह चम्मचों और प्यालियों को ढूंढ़ने के लिए परेशान हो रही थी, जैसे उसके दस मेहमान चाय का इन्तज़ार कर रहे हों और उसे समझ न आ रहा हो कि कैसे जल्दी से सारा इन्तज़ाम करे।

मैं घूमकर कमरे में और बरामदे में लगी हुई तसवीरों को देखने लगा। जिस तसवीर पर भी मेरी नज़र पड़ी, मुझे लगा वह मेरी पहले की देखी हुई है। कुछ बड़ी तसवीरें थीं जो मिस पाल पंजाब के एक मेले से बनाकर लाई थी। वह अजीब-अजीब-से चेहरे थे, जिनपर हम लोग एक बार फब्तियां कसते रहे थे। जाने क्यों, मिस पाल अपने चित्रों के लिए सदा ऐसे ही चेहरे चुनती थी जो किसी न किसी रूप में विकृत हों! मैंने सारा कमरा और बरामदा घूम लिया। दो-एक अधूरी तसवीरों को छोड़कर मुझे एक भी नई चीज़ दिखाई नहीं दी मैंने रसोईघर में जाकर मिस पाल से पूछा कि उसकी नई तस्वीरें कहां हैं।

"अजी छोड़ो भी," मिस पाल प्यालियां धोती हुई बोली, "चाय की प्याली पीकर हम लोग ऊपर की तरफ घूमने चलते हैं। ऊपर एक बहुत पुराना मन्दिर है। वहां का पुजारी तुम्हें ऐसे-ऐसे किस्से सुनाएगा कि तुम सुनकर हैरान रह जाओगे। एक दिन वह बता रहा था कि यहां कुछ मन्दिर ऐसे हैं, जहां लोग पहले तो देवता से वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं, मगर बाद में अगर देवता वर्षा नहीं देता तो उसे हिडिम्बा के मन्दिर में ले जाकर रस्सी से लटका देते हैं। है नहीं मज़ेदार बात? जो देवता तुम्हारा काम न करे, उसे फांसी लगा दो। मैं कहती हूं रणजीत, यहां लोगों में इतने अन्धविश्वास हैं, इतने अन्धविश्वास हैं कि क्या कहा जाए! ये लोग अभी तक जैसे कौरवों-पाण्डवों के ज़माने में ही जीते हैं, आज के ज़माने से इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"

और एक बार उड़ती नजर से मुझे देखकर वह चीनी ढूंढने में व्यस्त हो गई। "अरे चीनी कहां चली गई ? अभी हाथ में थी, और अभी न जाने कहां रख दी ? देखो, कैसी भुलक्कड हो गई हूं ! मेरा तो बस एक ही इलाज है कि कोई हाथ में छड़ी लेकर मुझे ठीक करे। यह भी कोई रहने का ढंग है जैसे मैं रहती हूं ?"

"तुमने यहां के कुछ लैंडस्केप नही बनाए ?" मैंने पूछा।

"तस्वीरें तो बहुत-सी शुरू कर रखी है, पर अभी तक पूरी नही कर सकी," मिस पाल जैसे उस मुश्किल स्थिति से बचने का प्रयत्न करती हुई बोली, "अब किसी दिन लगकर सबकी-सब तसवीरें पूरी करूगी। तारपीन का तेल भी खत्म हो चुका है, किसी दिन जाकर लाना है। कई दिनों से सोच रही थी कि मण्डी जाकर कैनवस और रंग भी ले आऊं, पर यूं ही आलस कर जाती हूं। कुछ ड्राइंग पेपर भी जिल्द कराने हैं। अब जाऊंगी किसी दिन और सारे काम एक साथ ही कर आऊगी।"

बात करते हुए मिस पाल की आंखें झुकी जा रही थी, जैसे वह अपने ही सामने किसी चीज के लिए अपराधी हो, और लगातार बात करके अपने अपराध के अनुभव को छिपाना चाहती हो। मैं चुप रहकर उसे चाय में चीनी मिलाते देखता रहा। उसे देखते हुए उस समय मेरे मन मे कुछ वैसी उदासी भरने लगी जैसी एक निर्जन समुद्र-तट पर या ऊंची पहाड़ियों से घिरी हुई किसी एकान्त पथरीली घाटी में जाकर अनायास मन में भर जाती है।

"कल से एक तो मैं अपने घर को ठीक करूंगी," मिस पाल क्षण-भर बाद फिर उसी तरह बिना रुके बात करने लगी, "एक तो घर का सारा सामान ठीक ढंग से लगाना है। तुम्हें पता है, मैंने कितने चाव से दिल्ली में अपने कमरे के लिए जाली के पर्दे बनवाए थे ? वे पर्दे यहां ज्यो के त्यों बक्स में बन्द पड़े हैं; मेरा लगाने को मन ही नही हुआ। मैं कल ही तरखान से कहकर पर्दों के लिए चौखटे बनवाऊंगी। खाने-पीने का थोड़ा-बहुत सामान भी घर में रखना ही चाहिए; बिस्कुट, मक्खन, डबलरोटी और अचार का होना तो बहुत ही जरूरी है। जो चीजें कुल्लू से मिल जाती हैं वे तो मैं लाकर रख ही सकती हू।...तारपीन का तेल भी मुझे कुल्लू मे ही मिल जाएगा।"

उसने चाय की प्याली मेरे हाथ मे दे दी तो भी मेरे मुह से कोई बात नही निकली, और मैं चुपचाप छोटे-छोटे घूंट भरने लगा। मेरे मन को उस समय एक तरह की जडता ने घेर लिया था। कहां मिस पाल के बारे मे दिल्ली के लोगो से सुनी हुई वे सब बातें और कहा उसके जीवन की यह एकान्त विडम्बना !

ट्राउट मछली ! मिस पाल की सारी परेशानी के बावजूद उस दिन उसे ट्राउट नही मिल सकी। पोस्टमास्टर ने बताया कि मछलीवाला उस दिन आया ही नही। मिस पाल के बहुत-बहुत खुशामद करने पर भी मकान-मालकिन का चौकीदार वाली दरिया मे मछली पकड़ने के लिए राजी नही हुआ। उसने कहा कि वह अपनी छडी पालिश कर रहा है, उसे फुरसत नही है। मिसेज एटकिन्सन के बच्चों ने एक मछली पकडी थी। मगर उसके पति ने उस दिन खासतौर पर मछली की कतलियो के लिए कहा था, इसलिए वह अपनी मछली मिस पाल को नही दे सकती थी। हां, पोस्टमास्टर ने फ्रेंच बीन जरूर भेज दिए। चावल और सूखे फ्रेंच बीन ! रात को रोटी के लिए मिस पाल का सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। खाना बनाने में उसका मन भी नही लगा, जिससे चावल थोडा नीचे लग गए। खाना खाते समय मिस पाल बस अफसोस ही प्रकट करती रही।

"मैं बहुत बदकिस्मत हूं रणजीत, हर लिहाज से मैं बहुत ही बदकिस्मत हू,"

खाना खाने के बाद हम लोग बाहर मैदान में कुर्सियां निकालकर बैठ गए तो उसने कहा। वह सिर के पीछे हाथ रखे आकाश की ओर देख रही थी। बारही या तेरही की रात होने से आकाश में तीन तरफ खुली चांदनी फैली थी। ब्यास की आवाज वातावरण में एक गूंज पैदा कर रही थी। वृक्षों की सरसराहट के अतिरिक्त मैदान की घास से भी एक धीमी-सी सरसराहट निकलती प्रतीत होती थी। हवा तेज़ थी और सामने पहाड़ के पीछे से उठता हुआ बादल धीरे-धीरे चांद की तरफ सरक रहा था।

"क्या बात है मिस पाल, तुम इस तरह गुम-सुम क्यों हो रही हो ?" मैंने कहा, "चावल थोड़े खराब हो गए, तो इसमें इस तरह उदास होने की क्या बात है !"

मिस पाल सामने पहाड़ की धुंधली रेखा को देखती रही, जैसे उसमें कोई चीज़ खोज रही हो।

"मैं सोचती हूं रणजीत कि मेरे जीने का कोई भी अर्थ नहीं है," उसने कहा।

और वह मुझे अपने आरम्भिक जीवन की कहानी सुनाने लगी। उसे बहुत बड़ी शिकायत थी कि आरम्भ में अपने घर में भी उसे ज़रा सुख नहीं मिला, यहां तक कि अपने माता-पिता का स्नेह भी उसे नहीं मिला। उसकी मां ने—उसकी अपनी मां ने—भी उसे प्यार नहीं किया। इसी वजह से पन्द्रह साल पहले वह अपना घर छोड़कर नौकरी करने के लिए निकल आई थी।

"सोचो, मां को मेरा घर में होना ही बुरा लगता था। पिताजी को मेरे संगीत सीखने से चिढ़ थी। वे कहा करते थे कि मेरा घर-घर है रंडीखाना नहीं। भाइयों का जो थोड़ा-बहुत प्यार था, वह भी भाभियों के आने के बाद छिन गया। मैंने आज तक कितनी-कितनी मुश्किल से अपनी अम् अ''' पवित्रता को बचाया है, यह मैं ही जानती हूं। तुम सोच सकते हो कि एक अकेली लड़की के लिए यह कितना मुश्किल होता है। मेरा लाहौर की तरफ घूमने जाने को मन था; वहां की कुल तसवीरें बनाना चाहती थी, मग [illegible]
... [illegible]
मे [illegible]
आ [illegible]
ऐसे लोगों के साथ बैठकर एक प्याली चाय भी पीना पसन्द नहीं करती थी। तुम्हें याद है, एक बार जब जोरावरसिंह ने मुझसे कहा था'''"

और फिर वह दफ्तर के जीवन की कई छोटी-छोटी घटनाएं दोहराने लगी। जब मैंने देखा कि वह फिर से उसी वातावरण में जाकर खामखाह अपना गुस्सा भड़का रही है तो मैंने उससे फिर कहा कि वह अब दफ्तर के लोगों के बारे में न सोचे, अपने संगीत और अपने चित्रों की बात ही सोचे।

"तुम यहां रहकर कुछ अच्छी-अच्छी चीज़ें बना लो, फिर दिल्ली आकर अपनी प्रदर्शनी करना।" मैंने कहा, "जब लोग तुम्हारी चीज़ें देखेंगे और तुम्हारा नाम सुनेंगे तो अपने-आप तुम्हारी कद्र करेंगे।"

"न, मैं प्रदर्शनी-अदर्शनी के किसी चक्कर में नहीं पड़ूंगी।" मिस पाल उसी तरह सामने की तरफ देखती हुई बोली, "तुम जानते ही हो इन सब चीज़ों में कितनी पालिटिक्स चलती है। मैं उस पालिटिक्स में नहीं पड़ना चाहती। मेरे पास अभी तीन-चार हज़ार रुपये हैं, जिनसे मेरा काफी दिन गुज़ारा चल जाएगा। जब ये रुपये चुक जाएंगे, तो'''" और वह जैसे कुछ सोचती हुई चुप कर गई।

मैं आगे की बात सुनने के लिए बहुत उत्सुक था। मगर मिस पाल कुछ देर बाद

कंधे हिलाकर बोली, "···तो भी कुछ न कुछ हो ही जाएगा। अभी वह वक्त आए तो सही।"

बादल ऊंचा उठ रहा था और वातावरण में ठंडक बढती जा रही थी। जंगल की तरफ से आती हुई हवा की गूंज शरीर मे बार-बार सिहरन भर देती थी। साथ के कॉटेज मे रेडियो पर पश्चिमी संगीत चल रहा था। उससे आगे के कॉटेज में लोग खिलखिलाकर हस रहे थे। मिस पाल अपनी आखे मूदे हुए मुझे बताने लगी कि होशियारपुर में उसने भृगुसंहिता मे अपनी कुण्डली निकलवाई थी। उस कुण्डली के फल के अनुसार इस जन्म मे उसपर यह शाप है कि उसे कोई सुख नही मिल सकता— न धन का, न ख्याति का, न प्यार का। इसका कारण भी भृगुसंहिता मे दिया था। अपने पिछले जन्म में वह सुन्दर लड़की थी और नृत्य-संगीत आदि कलाओ मे बहुत पटु थी। उसके पिता बहुत-धनी थे और वह उनकी अकेली संतान थी। जिस व्यक्ति से उसका ब्याह हुआ वह बहुत सुन्दर और धनी था। "मगर मुझे अपनी सुन्दरता और अपनी कला का बहुत मान था, इसलिए मैंने अपने पति का आदर नही किया। कुछ ही दिनों मे वह बेचारा दुःखी होकर इस संसार से चल बसा। इसीलिए मुझपर अब यह शाप है कि इस जन्म मे मुझे सुख नही मिल सकता।"

मैं चुपचाप उसे देखता रहा। अभी दिन मे ही वह वहां के लोगो के अंधविश्वासों की चर्चा करती हुई उनका मज़ाक उडा रही थी। सहसा मिस पाल भी बोलते-बोलते चुप कर गई और उसकी आखें मेरे चेहरे पर स्थिर हो गई। उसके लिपस्टिक से रगे हुए ओठों की तह मे जैसे उस समय कोई चीज कांप रही थी। काफी देर हम लोग चुप बैठे रहे। बादल ने चाद को छा लिया था और चारों तरफ गहरा अंधेरा हो रहा था। सहसा साथ के कॉटेज की बत्ती भी बुझ गई, जिससे अंधेरा और भी गहरा लगने लगा।

मिस पाल उसी तरह मेरी तरफ देख रही थी। मुझे महसूस होने लगा कि मेरे आसपास की हवा कुछ भारी हो रही है। मैं सहसा कुरसी पीछे सरकाकर उठ खड़ा हुआ।

"मेरा खयाल है, अब रात काफी हो गई है," मैंने कहा, "इसलिए अब चलकर सो रहा जाए। और बाते अब सुबह होंगी।"

"हां-हां," मिस पाल भी अपनी कुर्सी से उठती हुई बोली, "मैं अभी चलकर बिस्तर बिछा देती हूं। तुम बताओ, तुम्हारा बिस्तर बरामदे मे बिछा दूं या···"

"हा, बरामदे में ही बिछा दो। अन्दर काफी गरमी होगी।"

"देख लो, रात को ठंड हो जाएगी।"

"कोई बात नही, बरामदे मे हवा आती रहेगी तो अच्छा लगेगा।"

और बरामदे मे लेटे हुए मैं देर तक जाली के बाहर देखता रहा। बादल पूरे आकाश मे छा गया था और दरिया का शब्द बहुत पास आया-सा लगता था। जाली से लगा हुआ मकडी का जाला हवा से हिल रहा था। पास ही कोई चूहा कोई चीज कुतर रहा था। अन्दर कमरे से बार-बार करवट बदलने की आवाज सुनाई दे जाती थी।

"रणजीत!" अन्दर से आवाज आई तो मेरे सारे शरीर मे एक सिहरन भर गई।

"मिस पाल!"

"सरदी तो नही लग रही?"

"नहीं, बल्कि हवा है, इसलिए अच्छा लग रहा है।"

और तभी टप्-टप्-टप्-टप् मोटी-मोटी बूंदें पड़ने लगीं। पानी की बौछार मेरे

बिस्तर पर आने लगी तो मैंने करवट बदली। बरामदे की बत्ती मैंने जलती रहने दी थी, इसलिए कई चीजें इधर-उधर बिखरी नजर आ रही थीं। बिस्तर बिछाते समय मिस पाल को घर को काफी उथल-पुथल करनी पड़ी थी। मेरी चारपाई के पास ही एक तिपाई औंधी पड़ी थी और उससे जरा आगे तसवीरों के कुछ-एक फ्रेम रास्ते में गिरे थे। सामने के कोने में मिस पाल के ब्रश और कपड़े एक ढेर में उलझे हुए पड़े थे।

अन्दर की चारपाई चिरमिराई और लकड़ी के फर्श पर पैरों की धप्-धप् आवाज सुनाई देने लगी। फिर सुराही से कुल्लू में पानी पीने की आवाज आने लगी।

'रणजीत!"

"मिस पाल!"

"प्यास तो नहीं लगी?"

"नहीं।"

"अच्छा, सो जाओ।"

कुछ देर मुझे लगता रहा जैसे मेरे आस पास एक बहुत तेज सांस चल रही है जो धीरे-धीरे दबे पैरों, सारे वातावरण पर अधिकार करती जा रही है, और आसपास की हर चीज अपने पर उसका दबाव महसूस कर रही है। पानी की बौछार कुछ धीमी पड़ने लगी तो मैंने फिर से जाली की तरफ करवट बदल ली और पहले की तरह ही बाहर देखने लगा। तभी पास ही झन्न से किसी चीज के गिरने की आवाज सुनाई दी।

"क्या गिरा है रणजीत?" अन्दर से आवाज आई।

"पता नहीं, शायद किसी चूहे ने कुछ गिरा दिया है।"

"सचमुच मैं यहां चूहों से बहुत तंग आ गई हूं।"

मैं चुप रहा। अन्दर की चारपाई फिर चिरमिराई।

"अच्छा, सो जाओ!"

सारी रात पानी पड़ता रहा। सुबह-सुबह, वर्षा थम गई, मगर आकाश साफ नहीं हुआ। सुबह उठकर चाय के समय तक मेरी मिस पाल से खास बात नहीं हुई। चाय पीते समय भी मिस पाल अधूरे-अधूरे टुकड़ों में ही बात करती रही। मैंने उससे कहा कि मैं अब पहली बस से चला जाऊंगा तो उसने एक बार भी मुझसे रुकने के लिए आग्रह नहीं किया। यूं साधारण बातचीत में भी मिस पाल काफी तकल्लुफ बरत रही थी, जैसे किसी बिलकुल अपरिचित व्यक्ति से बात कर रही हो। मुझे उसका सारा व्यवहार बहुत अस्वाभाविक लग रहा था। वह जैसे बात न करने के लिए ही अपने को छोटे-छोटे कामों में व्यस्त रख रही थी। मैंने दो-एक बार उससे हल्के-से मजाक करने का भी प्रयत्न किया जिससे तनाव हट जाए और मैं उससे ठीक से विदा लेकर जा सकूं, मगर मिस पाल के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट भी नहीं आई।

"अच्छा तो मिस पाल, अब चलने की बात की जाए," आखिर मैंने कहा, "तुम कल कह रही थीं कि तुम भी कुल्लू तक साथ ही चलोगी। तो अच्छा होगा कि तुम आज ही वहां से अपना सारा सामान भी ले आओ। बाद में तुम फिर आलस कर जाओगी।"

'नहीं, मैं आलस नहीं करूंगी," मिस पाल बोली, "किसी दिन जाकर जो-जो कुछ लाना है सब ले आऊंगी।"

और फिर बरामदे में बिखरे हुए कपड़ों को बिना मतलब ही उठाकर इधर से उधर रखते हुए उसने कहा, "आज बरसात का दिन है, इसलिए आज नहीं जाऊंगी। कल या परसों किसी समय देखूंगी। लाने के लिए कितनी ही चीजें हैं, इसलिए अच्छी

तरह सब सोचकर जाना चाहिए। आज घिरा हुआ दिन है, इसलिए आज नहीं '''।"

"घिरा हुआ दिन है तो क्या घर का सामान नहीं आएगा ?" मैंने अपने आग्रह मे उसे सुलझाने की चेष्टा करते हुए कहा, "तुम मुझे बताओ कि घी और तारपीन के डिब्बे कहां रखे हैं। कोई बड़ा थैला हो तो वह भी साथ में ले लो। फुटकर चीजें उसमें आ जाएंगी। यहां से जो भी बस मिलेगी, उसमें हम लोग साथ-साथ चले चलेंगे। मैं कुल्लू से बारह बजे की बस पकड़कर आगे चला जाऊंगा। तुम्हें तो उधर से लौटने के लिए सारा दिन बसें मिलती रहेंगी।"

मैं जान-बूझकर इस तरह बात कर रहा था जैसे मिस पाल का साथ चलना निश्चित ही हो, हालांकि मैं जानता था कि वह टालने का पूरा प्रयत्न करेगी। मिस पाल इधर से उधर जाती हुई ढूंढ-ढूंढकर अपने करने के लिए काम निकाल रही थी। उसके चेहरे से लग रहा था जैसे मेरी बातें उसे बिलकुल व्यर्थ लग रही हों और वह जल्द-अज-जल्द अपने एकान्त में लौट जाना चाहती हो।

"देखो, कभी-कभी यहां बस में एक भी सीट नहीं मिलती," उसने कहा, "दो दो सीटें मिलना तो बहुत ही मुश्किल है। तुम मेरी वजह से अपनी बारह बजे की बस क्यों मिस करते हो ? तुम चले जाओ, मैं कल या परसों जाकर जो कुछ भी मुझे लाना है ले आऊंगी।" और जैसे सहसा कोई काम याद आ जाने से वह जल्दी से अपना चेहरा दूसरी तरफ हटाए हुए कमरे में चली गई। कुछ देर में वह पेटीकोट लिए हुए कमरे से बाहर आई। पेटीकोट को टिड्डियां काट गई थीं। उसने जैसे नुकसान की परेशानी की वजह से ही चेहरा सख्त किए हुए उसे एक तरफ कोने में फेंक दिया और किसी तरह कठिनाई से बोली, "मैंने तुमसे कह दिया है कि तुम चले जाओ। तुम्हें पता है कि मुझे तो अकेली को ही दो सीटें चाहिए।"

"ये सब बहाने तुम रहने दो," मैंने कहा। "एक बस मे जगह नही मिलेगी तो दूसरी में मिल जाएगी। तुम इधर आकर मुझे बताओ कि वे डिब्बे कहां रखे हैं।"

मिस पाल शायद ज्यादा बात नहीं करना चाहती थी, इसलिए उसने मेरी बात का विरोध नहीं किया।

"अच्छा तुम बैठो, मैं अभी ढूंढती हूं," उसने कहा और आंखें बचाती हुई रसोई-घर में चली गई।

पहली बस मे सचमुच हम लोगों को जगह नहीं मिली। ड्राइवर ने बस वहां रोकी ही नहीं, और हाथ के इशारे से कह दिया कि बस मे जगह नहीं है। दूसरी बस में भी जगह नहीं थी, मगर किसी तरह कह-कहाकर हमने उसमें अपने लिए जगह बना ली। मगर हम कुल्लू काफी देर से पहुंचे, क्योंकि रात की बरसात से एक जगह सड़क टूट गई थी और उसकी मरम्मत की जा रही थी। हमारे कुल्लू पहुंचने के लगभग साथ ही बारह बजे का बस भी मनाली से आ पहुंची। पौने बारह हो चुके थे। मैंने अन्दर जाकर अपने सामान का पता किया, फिर बाहर मिस पाल के पास आ गया। मिस पाल ने खाली डिब्बे अपने दोनों हाथों में संभाल रखे थे। मैं डिब्बे उसके हाथों से लेने लगा तो उसने अपने हाथ पीछे हटा लिए।

"चलो, पहले बाजार मे चलकर तुम्हारा सामान खरीद लें," मैंने कहा।

"अब सामान की बात रहने दो," उसने कहा। "तुम्हारी बस आ गई है, तुम इसमें चले जाओ। सामान तो मैं किसी भी समय खरीद लूंगी। तुम्हें इसके बाद फिर किसी बस में जगह नहीं मिलेगी। दो बजे की बस मनाली से ही भरी हुई आती है। तुम्हारा एक दिन और यहां खराब होगा।"

"दिन खराब होने की क्या बात है," मैंने कहा। "पहले चलकर बाज़ार से सामान खरीद लेते हैं। अगर आज सचमुच किसी बस में जगह नहीं मिली तो मैं तुम्हारे साथ लौट चलूंगा और कल किसी बस से चला जाऊंगा। मुझे वापस पहुंचने की ऐसी कोई जल्दी नहीं है।"

"नहीं तुम चले जाओ," मिस पाल हठ के साथ बोली, "अपने लिए खामखाह मैं तुम्हें क्यों परेशान करूं? अपना सामान तो मैं जब कभी भी ले लूंगी।"

"मगर मुझे लगता है कि आज तुम ये डिब्बे इसी तरह लिए हुए ही लौट जाओगी।"

"अरे नहीं," मिस पाल की आखें उमड आईं और वह अपने आसुओं को रोकने के लिए दूसरी तरफ देखने लगी, "तुम समझते हो मैं अपने शरीर की देखभाल ही नहीं करती। अगर न करती तो यह इतना शरीर ऐसे ही होता?...लाओ पैसे दो मैं तुम्हारा टिकट ले आती हू। देर करेंगे तो इस बस मे भी जगह नही मिलेगी।"

"तुम इस तरह ज़िद क्यों करती हो मिस पाल? मुझे जाने की सचमुच ऐसी कोई जल्दी नहीं है।" मैंने कहा।

"मैंने तुमसे कहा है, तुम पैसे निकालो, मैं तुम्हारा टिकट ले आ ं। मगर नहीं, तुम रहने दो। कल का तुम्हारा टिकट मेरी वजह से खराब हुआ था। मैं फिर तुमसे पैसे किसलिए मांग रही हू?"

और वह डिब्बे वहीं रखकर झटपट टिकटघर की तरफ बढ़ गई।

"ठहरो, मिस पाल," मैंने असमंजस में अपना बटुआ जेब से निकाल लिया।

"तुम रुको, मैं अभी आ रही हूं। तुम उतनी देर मे अपना सामान निकलवाकर ऊपर रखवाओ।

मेरा मन उस समय न जाने कैसा हो रहा था, फिर भी मैंने अन्दर से अपना सामान निकलवाया और बस की छत पर रखवा दिया। मिस पाल तब तक टिकटघर के बाहर ही खडी थी। शनिवार होने के कारण उस दिन स्कूल मे जल्दी छुट्टी हो गई थी और बहुत-से बच्चे बस्ते लटकाए सुलतानपुर की पहाडी से नीचे आ रहे थे। कई बच्चे बस की सवारियों को देखने के लिए वहां आसपास जमा हो रहे थे। मिस पाल उस समय प्याज़ी रंग की सलवार-कमीज़ पहने थी और ऊपर काला दुपट्टा लिए थी। उन कपड़ों की वजह से उसका शरीर पीछे से और भी फैला हुआ लगता था। बच्चे एक-दूसरे से आगे होते हुए टिकटघर के नज़दीक जाने लगे। मिस पाल टिकटघर की खिडकी पर झुकी हुई थी। एक लडके ने धीरे से आवाज़ लगाई, "कमाल है भई कमाल है!"

इस पर आसपास खड़े बहुत-से बच्चे हंस दिए। मुझे लगा जैसे किसीने मेरे भारी मन पर एक और बडा पत्थर डाल दिया हो। बच्चे सबके-सब टिकटघर के आस-पास जमा हो गए थे और आपस मे खुसर-पुसर कर रहे थे। मैं उनसे कुछ कह भी नहीं सकता था, क्योंकि उससे मिस पाल का ध्यान खामखाह उनकी तरफ चला जाता। मैं उधर से अपना ध्यान हटाकर दरिया की तरफ से आते हुए लोगो को देखने लगा। फिर भी बच्चों की खुसर-पुसर मेरे कानो मे पडती रही। दो लड़किया बहुत धीरे-धीरे आपस में बात कर रही थीं, "मर्द है।"

"नहीं, औरत है।"

"तू सिर के बाल देख, बाकी शरीर देख। मर्द है।"

"तू कपड़े देख, और सब कुछ देख। औरत है।"

"आओ, बच्चो आओ, पास आकर देखो," मिस पाल की आवाज़ से मैं जैसे चौंक

गया। मिस पाल टिकट लेकर खिड़की से हट आई थी। बच्चे उसे आते देखकर 'आ गई, आ गई' कहते भाग खड़े हुए। एक बच्चे ने सड़क के उस तरफ जाकर फिर ज़ोर से आवाज लगाई, "कमाल है भई कमाल है!"

मिस पाल सड़क पर आकर कई कदम बच्चों के पीछे चली गई।

"आओ बच्चो, यहां हमारे पास आओ," वह कहती रही, "हम तुम्हें मारेंगे नहीं, टॉफियां देंगे। आओ…"

मगर बच्चे पास आने के बजाय और भी दूर भाग गए। मिस पाल कुछ देर सडक के बीच रुकी रही, फिर लौटकर मेरे पास आ गई। उस समय उसके चेहरे का भाव बहुत विचित्र लग रहा था। उसकी आखों मे आए हुए आसू नीचे गिरने को हो रहे थे और उन्हें झुठलाने के लिए एक फीकी हंसी का प्रयत्न कर रही थी। उसने अपने ओठों को जाने किस तरह काटा था कि एकाध जगह से उसकी लिपस्टिक नीचे फैल गई थी। उसकी घिसी हुई कमीज़ की सीवनें कंधे के पास से खुल रही थी।

"खूबसूरत बच्चे थे; नही ?" उसने आखें झपकाते हुए कहा।

मैंने उसकी बात का समर्थन करने के लिए सिर हिलाया तो मुझे लगा कि मेरा सिर पत्थर की तरह भारी हो गया है। उसके बाद मेरी समझ में कुछ नही आया कि मिस पाल मुझसे क्या कह रही है और मैं उससे क्या बात कर रहा हू; जैसे आंखो और शब्दो के साथ विचारों का कोई सम्बन्ध ही नही रहा था। मुझे इतना याद है कि मैंने मिस पाल को टिकट के पैसे देने का प्रयत्न किया, मगर वह पीछे हट गई और मेरे बहुत अनुरोध करने पर भी उसने पैसे नही लिए। मगर किस अवचेतन प्रक्रिया से हम लोगों के बीच अब तक बातचीत का सूत्र बना रहा, यह मैं नही जान सका। मेरे कान उसे बोलते सुन रहे थे और अपने को भी। परन्तु वे जैसे दूर की ध्वनियां थी—अस्फुट, अस्पष्ट और अर्थहीन। जो बात मैं ठीक से सुन सका वह यही थी, "और वहां जाकर रणजीत, दफ्तर मे मेरे बारे मे किसी से बात मत करना। समझे ? तुम्हें पता ही है कि वे लोग कितने ओछे हैं। बल्कि अच्छा होगा कि तुम किसी को यह भी न बताओ कि तुम मुझे यहा मिले थे। मैं नही चाहती कि वहां कोई भी मेरे बारे मे कुछ जाने या बात करे। समझे।"

बस तब स्टार्ट हो रही थी और मैं खिड़की से झांककर मिस पाल को देख रहा था। बस चली तो मिस पाल हाथ हिलाने लगी। दोनों खाली डिब्बे वह अपने हाथों में लिए हुए थी। मैंने भी एक बार उसकी तरफ हाथ हिलाया और बस के मुड़ने तक हिलते हुए खाली डिब्बों को ही देखता रहा।

खाली

तोषी को फिर वही चिढ़ हो रही थी। वह समझ नही पा रही थी किस चीज से। अपने से ? कमरे के कोने-कोने मे लदे सामान से ? खिड़की मे कमरे में फैल आई धूप से ?

वह दहलीज तक जाकर कमरे में लौट आई। बरामदे मे कितना कुछ था—जूठी प्यालियों को लेकर गुड्डो की किताबों तक—जिसे उसीको मिमेटना था। और कुछ करने को नही था, वह दस मिनट में वह काम कर सकती थी। मगर काफी देर तक वह

उसे शाम के लिए टाल चुकी थी। इसीलिए उस वक्त उसने उन चीज़ों की तरफ देखा भी नहीं। वे जैसे वहां थीं ही नहीं। उन्हें उस वक्त नहीं, शाम को ही वहां होना था।

दहलीज की तरफ जाते हुए उसे लग रहा था कि गरमी उसे परेशान कर रही है। उधर से लौटते हुए लगने लगा कि गरमी नहीं, एक गन्ध है जो उसे ठीक से सांस नहीं लेने दे रही। वह गन्ध हर चीज से आ रही थी। पलग से, खूटी पर टंगे कपड़ों से, फर्श से, अपने-आप से। एक बार फिर उसके मन में आया कि अगर वह नहा सकती, तो शायद इस गरमी, या गन्ध से कुछ हद तक छुटकारा मिल जाता। पर बारह बज चुके थे और गुसलखाने मे एक बूद पानी नहीं था। जब पानी था, तो जाने किससे नल खुला रह जाने से पूरा दालान पानी से भर गया था। उस समय वह सब्जी खरीदकर बाज़ार से आई थी। सोच रही थी कि घर पहुचते ही पहला काम नहाने का करेगी। पर दालान को पानी से भरा देखकर उसका सिर भन्ना गया था। यह जानने का कोई उपाय नहीं था कि नल किससे खुला रहा है। बेबी स्कूल जा चुकी थी, जुगल दफ्तर। मुमकिन यह भी था कि नल खुद उसीसे खुला रह गया हो। मगर उसे झल्लाहट हुई कि बेबी और जुगल उस समय उसके सामने क्यों नहीं हैं। दोनों में से कोई भी सामने होता, तो वह कुछ देर उसपर झीख लेती। यू बहते को देखकर मन मे किसी कोने मे एक खयाल यह भी उठा था कि क्यों न कपड़े उतारकर उस पानी को अपने ऊपर उलीचने लगे? पर पानी की ठण्डक को अपने मे भर लेने की ललक के बावजूद वह जैसे एक ज़िद के साथ कुछ देर गुस्से में भरी खड़ी रही थी। फिर उसी गुस्से के साथ गुसलखाने में जाकर नल बन्द कर आई थी और किसी को सज़ा देने की तरह तीखे हाथ से झाड़ू चलाती हुई पानी बाहर निकालने लगी थी। इससे जो छींटे उड़कर शरीर पर पड़े, उनसे उसे कुछ राहत भी मिली थी—पर दालान को सुखा देने के बाद अपनी ज़िद मे ही नहाना टालकर वह कमरे के अन्दर चली आई थी। आकर हांफती हुई दीवार के सहारे फर्श पर बैठकर पानी से नरम पड़ी हाथों की लकीरों को देखती रही थी। कुछ देर बाद चाय बनाकर उसके साथ उसने एस्पिरीन की एक टिकिया ली थी। सोचा था टिकिया लेकर कुछ देर लेट रहेगी। पर पलग के पास जाने पर उसे और चिढ़ होने लगी थी—उसके मेहराबदार पायों से, उसपर बिछी चादर से और दो दीवारों के बीच उसकी स्थिति से। वह कुछ देर इस पलग को देखती रही थी जैसे उसे लेकर अभी-अभी कुछ किया जाना हो। फिर वहां से हटकर खूटी पर लटकते कपड़ों को देखती रही थी—जैसे कि जो किया जाना था, उसका सम्बन्ध पलंग से न होकर उन कपड़ों से हो। उन कपड़ों से मन हटाने के लिए शायद वह दहलीज़ की तरफ बढ़ गई थी—या शायद बिना किसी भी इरादे के।

गुसलखाने मे पानी नहीं है, इस खयाल से उलझकर उसने पखे की नाव को पूरा घुमा दिया। हवा हल्की आंच की तरह शरीर को छूने लगी, तो वह आराम-कुर्सी पखे के नीचे खींचकर उसपर पसर गई। अपने ब्लाउज की हुकें उसने एक-एक करके खोल दीं। गरम हवा के नीचे सरसराते पसीने की ठण्डक उसे अच्छी लगी। मन हुआ कि कुछ देर के लिए ब्लाउज ब्रेज़ियर सब उतारकर पूरे बदन का पसीना सूख जाने दे। पर ब्रेज़ियरे का फीता खोलने से ज्यादा वह कुछ नहीं कर सकी। जुगल घर पर नहीं था, पर उसका 'होना' उसके बाहर रहने पर भी उसी तरह महसूस होता था जैसे घर पर रहने पर। उसकी साड़ी की निचाई और ब्लाउज की ऊंचाई—इन पर जुगल की नजर हर वक्त रहती थी। शुक्र था नहाते वक्त वह गुसलखाने मे उसके साथ नहीं होता। रात को बिस्तर में साथ होता था, तो उस वक्त बत्तियां बुझी रहती थीं। वरना तब भी वह त्योरी डालकर कह सकता था, "तुम्हें खुद ही अपने-आप की शरम नहीं, तो दूसरा कोई तुमसे क्या कहे

सकता है ? तुम्हें अच्छा लगता है अपने को उघाड़कर दिखाना, तो ठीक है"' दिखाती रहा करो। मैं आगे से तुमसे इस बारे में कुछ कहूंगा भी नहीं।" पर आगे से कुछ न कहने के लिए ही शायद वह उसके ब्लाउजों की टूटी हुकें खुद टाकने लग जाता था।

वह ऐसे में कोशिश करती थी कि किसी तरह अपना मन जुगल की बातों से हटाए रख सके! जुगल को जब उससे किसी भी चीज़ की शिकायत होती थी, तो उसका चेहरा मरी हुई मुर्गी की तरह लटक जाता था। उसकी आखें इस तरह झपकने लगती थी कि उसकी तरफ देखा भी नही जाता था। ज़िन्दगी की हर चीज़ का गिला आखो में लिए या तो वह असहाय-सा खडा रहता था, या उस एक ही घड़ी में हर चीज़ का प्रतिशोध ले लेने के लिए ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगता था। "मुझे अपने लिए इस घर से कुछ नहीं चाहिए। मेरी तरफ से आग लगा दो इस घर को। मेरा कसूर इतना ही है न कि शाम को दफ्तर से सीधा घर चला आता हूं? कल से नही आया करूगा। सो रहा करूगा किसी दोस्त के घर जाकर।" इस तरह बात करते हुए जुगल की छोटी-छोटी बिल्लौरी आखें बिलकुल दूसरी तरह की हो जाती थी—न जाने किस किताब में उसने रात में चमकती बाघ की आखो का ज़िक्र पढ़ा था - कुछ-कुछ वैसी ही। तब उसे जुगल का सारा शरीर एक जानवर का-सा लगने लगता था, जिसके शरीर के लम्बे-लम्बे बाल कपड़े रहने के बावजूद उसके सामने उभर जाते थे। उसके शब्द भी शब्द नही रह जाते थे—झपट्टा मारने से पहले जानवर के गले से निकलती आवाजो का रूप ले लेते थे। आखो के अलावा सामने नजर आते थे दो हिलते पजे और कापते जबडे। उसका मन होता था कि उस जानवर के झपटने से पहले वह खुद ही उसे झपट ले—और यह सोचकर कि अपनी झपटने की मुद्रा में वह खुद कैसी नज़र आती होगी, उसके मन मे एक दहशत दौड़ जाती थी।

जुगल जो भी बक-झक करता था, उसके प्राय सभी शब्द उसे याद थे। उनका पूरा क्रम, और सारे उतार-चढ़ाव। जब वह ज़ोर-ज़ोर से बोलकर थक जाता था, तो ठण्डे और चुभते ढंग से बात करने लगता था। उसके बाद फिर गुस्सा चढ जाता था, तो खामोशी साधकर बिस्तर पर पड जाता था। कई-कई घण्टे दोतरफा खामोशी से कमरे का वातावरण कसा रहता था। फिर खाना खाने की शुरुआत के तौर पर वह बेबी को अपने पास बुलाता था। बेबी भी सोफे के कोने मे दुबकी हुई पहले से इसके लिए तैयार रहती थी। थोड़ी देर पापा का प्यार पा चुकने के बाद वह दबी आवाज़ में पूछ लेती थी, "पापा, ममी से कहू खाना ले आएं?" इस पर जुगल के गले से एक खास तरह की की आवाज निकलती थी - समझौता करने के लिए मजबूर जानवर की गुर्राहट जैसी। बेबी पापा की बाहों से छूटकर किचन मे या जहां भी वह होती, उसके पास आ जाती थी। "ममी, पापा खाना मांग रहे हैं," कहते हुए बेबी के स्वर मे हल्का सन्तोष होता कि अब शायद कार्यक्रम पूरा हो जाने से रात-भर के लिए सोया जा सकता है।

तोषी सहसा कुहनियो पर भार दिए कुरसी पर सीधी हो गई। उसे अपने अन्दर से लगा था जैसे सोचते-सोचते वह किसी निर्णय के मुकाम पर पहुंच गई हो। पर वह निर्णय क्या था, यह सोच पाने से पहले ही वह फिर से निढाल होकर पहले की तरह लम्बी हो गई। उसे लगा कि फुल-स्पीड पर होने पर भी पंखा काफी तेज नहीं चल रहा। हर दोपहर की तरह उस समय भी बिजली का वाल्टेज शायद काफी डाउन हो गया था।

उसने बांहें और टागें सीधी करके एक अगड़ाई ली। पर जंभाई के लिए मुंह न खुले, इसके लिए उसने अपने जबड़ो को कसे रहा। अपने गले से सुनाई देती जंभाई की

आवाज के साथ ही अक्सर अपनी उम्र के साल गिनने लगती थी। एक उम्र वह थी—उन्नीस-बीस तक की— जब वह किसी को भी जभाई लेते देखती थी टोक देती थी। या आंखें हटाकर दूसरी तरफ देखने लगती थी। तब से अब तक मुश्किल से आठ साल बीते थे और उसे अपनी आखो के नीचे और होंठो के आसपास बुढ़ापा घिरता नजर आने लगा था। कोई उसकी उम्र पूछ लेता था, तो उसे खुद लगता था जैसे अपने को सत्ताईस-अट्ठाईस की बताकर वह एक झूठ बोल रही हो। सुनने वालों की आंखो से उसे हर बार लगता था कि उसे उसकी बात पर विश्वास नही आया। तब वह उसे पूरा ब्योरा देने लगती थी कि उसने मैट्रिक किस साल मे किया था, बी० ए० किस साल मे और जुगल से जब उसकी शादी हुई, तब वह कितनी दुबली लगा करती थी। "उन दिनो की अपनी फोटो दिखाऊ?" कहते हुए वह अपनी शादी का एलबम भी निकाल लाती थी।

पर अब तो इसका भी मौका नही आता था क्योकि पिछले दो-तीन साल मे यह सवाल उससे बहुत कम पूछा गया था। जुगल के साथ रहते हुए उसकी ज़िन्दगी बाहर की दुनिया से उत्तरोत्तर कटती गई थी। जुगल को उसके मायके के लोगो से चिढ थी, अपने घर के लोगो से चिढ थी, पास-पडोस के लोगों से चिढ़ थी, हर आने-जाने वाले से चिढ थी। कभी-कभी तो लगता था कि उस आदमी को सिवाय अपने, हरएक से चिढ है, बल्कि अपने-आप मे भी चिढ है। वह सुबह दफ्तर जाता था, तो दफ्तर के लोगो पर बडबड़ाता हुआ। शाम को घर आता था, तो घर के लोगो पर बड़बडाता हुआ। ज़िन्दगी की हर चीज उसकी नजर से किसी वजह से गलत थी—और वह अकेला हर गलत चीज़ को ठीक करने के लिए क्या कर सकता था? "मेरी तरफ से भाड़ मे जाए सब कुछ—मैं अकेला क्या कर सकता हूं?" ऐसा कुछ कहने के बाद वह अक्सर एक लम्बी जंभाई लेता था, जिसको मुह के अधेरे दायरे मे उसकी जबान ऊची उठकर अज़ान देती-सी जान पड़ती थी। जब मुह बन्द हो जाता, तो होठों के कोनों तक फैल आई चिपचिपाहट को उसे हाथ और कुहनी के जोड़ से साफ करना पडता था। शायद एक यह भी वज़ह थी जो वह खुलकर जंभाई लेने से अक्सर अपने को रोक जाती थी। अपना मुह खुलने के साथ ही जुगल का खुला मुह सामने नज़र आ जाता था।

जुगल का बालो से लदा दुबला शरीर सामने रहने पर उसे उतना परेशान नही करता था जितना परे रहने पर। वह उसे उसके वास्तविक आकार मे ही देखती थी, पर परे रहने पर वह आकार जैसे काफी बड़ा होकर उसे चारों तरफ से घेर लेता था। शाम को उसके घर आने से लेकर सुबह दफ्तर जाने तक वह दोपहर के इस एकान्त की राह देखती थी। पर दोपहर के अकेलेपन की खीझ इसे सुबह-शाम की झुंझलाहट से कही ज्यादा छा लेने वाली लगती थी। इस खीझ में जुगल से उसका विरोध उसकी उपस्थिति से कहीं ज्यादा बढ जाता था। तब वह प्रतीक्षा करती थी जुगल के लौटकर आने की—क्योकि सामने के जुगल पर तो वह हावी भी हो सकती थी जबकि इस अनुपस्थित जुगल से वह अपने को बुरी तरह परास्त महसूस करती थी।

बक्सो की तरह से सुनाई दी खट् की आवाज़ से वह थोड़ा चौंकी, फिर गरदन का पसीना सुखाने के लिए सिर पीछे को झुकाकर थोडा और पसर गई। उस घर की सब आवाज़ो से वह अच्छी तरह परिचित थी - बहुत थोड़ा-सा दायरा था उन आवाज़ो का। बक्सो की तरफ चूहियो के सुराख थे। इधर हर आवाज़ चूहियों की भूल और उसे मिटाने की उनकी दौड़-धूप से सम्बन्ध रखती थी। एक आवाज़ जो पखा चलने पर लगातार होती रहती थी, वह थी सामने दीवार के कैलेंडर की। बाहर बरामदे से भी कभी हल्की-सी कांय और परों की फड़फडाहट सुनाई दे जाती। चार बजे के करीब पानी आने से पहले

नल के अन्दर एक लम्बी सांस-सी खिंचने लगती थी। महीने में एक या दो बार बाहर से डाकिया आवाज देता था, "डाक जी!" और खर्र से कोई इनलैंड या पोस्ट-कार्ड अन्दर को सरक आता था।

चिट्ठी लिखने वाले भी दो-एक लोग ही थे। उसकी बड़ी बहन, जुगल का छोटा भाई और मीना, जो साल-भर पहले साथ के घर मे रहती थी। तीनों की चिट्ठियों के वही बंधे-बंधाए मजमून थे जो हर बार लगभग उन्ही शब्दों में लिखे हुए उन्हें मिल जाते थे। उनका उत्तर भी उसी तरह दे दिया जाता था। हर महीने की खरीदारी मे दो इनलैंड और पोस्ट-कार्ड उसी तरह शामिल रहते थे जैसे नमक, मिर्च और हल्दी के पैकेट।

एक बहन, एक देवर, एक फ्रेंड—बाहर की इतनी दुनिया भी उन लोगों की वजह से ही बची हुई थी। जैसे उन लोगो की साजिश हो कि महीने में एक-एक बार चिट्ठी जरूर लिखेंगे। वरना बाकी सारी दुनिया की तरह यह इतनी-सी दुनिया भी मर जा सकती थी। अगर उन तीनों की चिट्ठियां आना बन्द हो जाता, तो अपनी तरफ से ये लोग शायद कभी उन्हें लिखकर इसकी याद भी न दिलाते। कुछ साल पहले और भी कुछ लोगो की चिट्ठियां आती थी। कुछ जुगल के दोस्त थे—कुछ और रिश्तेदार थे दोनों तरफ के। मगर धीरे-धीरे, न जाने कैसे, उनके सम्बन्ध चुकते गए थे। वह भी एक साजिश ही थी जैसे कि तीन को छोड़कर बाकी सब लोगों ने एक-एक करके लिखना छोड़ दिया था। "कोई किसी का कुछ नही लगता," जुगल उनका जिक्र उठ आने पर कहता था, "ऐसे ही वहम होता है कुछ दिनों का, इन दो-तीन लोगों के साथ भी वहम ही बना हुआ है। जब खत्म हो जाएगा, तब किसी को याद भी नही आएगी किसी को'''।"

जुगल के ऐसी बात करने पर उसे सब कुछ बहुत खाली और भयानक लगने लगता था—जुगल की चमकती आंखो समेत। गुस्सा भी आता था कि जुगल इतनी आसानी से इस बात को कैसे स्वीकार कर सकता है। वह खुद स्वीकार नही कर सकती, इस पर भी गुस्सा आता था। जुगल से शादी होने से पहले उसे दुनिया—कितनी भरी हुई लगती थी! लगता था कि वह अभी इस छोर पर है—उस भरी हुई दुनिया मे अभी उसे उतरना है। अपनी तब तक की जिन्दगी उसे बहुत अधूरी लगती थी क्योंकि उसमे 'वास्तविक' कुछ भी नही था। जो कुछ था, वह उस आने वाले 'वास्तविक' का हल्का आभास-सा था। कुल जमा चार, छः आठ या दस दिन जिसमे लगा था कि एक शुरूआत हो सकती है। कुल जमा तीन या चार चेहरे।'''सतीदा उसका मौसेरा भाई था, फिर भी जहां-कहीं उसे अकेली पाकर तीन-चार बार उसने जबर्दस्ती उसे चूम लिया था।''' हरकृष्ण की शादी में वह जो एक दोस्त आया था उसका, जो शादी की भीड़ में कई जगह उसके साथ सटकर बैठा था।'''मधु का भाई हरीश, जिसने उसके नाम दो-एक पत्र लिखे थे।''' बस मे रोज साथ जा बैठने वाला वह लड़का, जिसने एक दिन कसकर उसकी जांघ पर चिकुटी काट ली थी।'''भूषण जो शादीशुदा होने पर भी उससे कहता था कि वह अपनी पत्नी से तलाक लेकर उससे शादी कर लेगा'''।

ऐसे ही छिटपुट था सब कुछ'''पर कुल मिलाकर कुछ भी नही, क्योंकि लगातार कुछ नही था। 'लगातार' थी सिर्फ यह जिन्दगी जो आठ साल से जुगल के साथ जी जा रही थी। साथ रहकर सब कुछ से, यहां तक कि एक-दूसरे से भी, खाली होते जाने की जिन्दगी।

वह कुरसी से उठ खड़ी हुई। जैसे कि तय कर लिया हो कि जिन्दगी के इस

'लगातार' को अब अपने से झटक देगी। उठकर सबसे पहले खूंटी पर लटकते कपड़ों के पास गई। उन्हें उतारकर उसने बक्से पर पटक दिया। बक्से पर पड़ा उनका ढेर और भी बेहूदा लगा, तो उन्हें ऊपर से हटाकर इस तरह बक्से में ठूस दिया कि बक्से के ढक्कन में कूबड़-सा निकल आया। फिर दीवार से कैलेण्डर उतारकर गोल किया और पलंग के नीचे दाग दिया। बिस्तर से चादर और गद्दा उतारकर कोने में डाल दिया और कुछ देर नंगे पलंग को देखती रही। उसके बाद उसने आसपास देखा कितना कुछ था कमरे में। जिसे उथल-पुथल किया जा सकता था। बक्से, मेज़, रेडियो, सिलाई की मशीन, चटाइयां, कुरसियां ···सब चीज़ों पर नज़र दौड़ा चुकने के बाद आंखें किसी 'और' चीज़ की तलाश करने लगीं। "और क्या?" उसने सोचा और इस एहसास से उसका मन उदास हो गया कि इन गिनी-चुनी चीज़ों के सिवा और कुछ नहीं है जिसे उथल-पुथल कर सकती हो। उदासी के साथ उसे अपने में एक गहरी थकान भी महसूस हुई। उसने फिर अन्दर से उमड़ती जमाई को रोका। सोचा कि दफ्तर से लौटकर आने पर जुगल को घर में सब कुछ उथल-पुथल मिले, तो उसे कैसा लगेगा? शायद वह अपना मरी हुई मुर्गी जैसा चेहरा थोड़ा और लटकाकर चुपचाप कमरे को देखता रहेगा। या उससे वजह पूछेगा कि उसने यह सब क्यों किया है, और उसके जवाब न देने पर ज़ोर-ज़ोर से बक-झक करने लगेगा। उसके बाद या किवाड़ ज़ोर से बन्द करके कहीं चला जाएगा, या मुंह दीवार की तरफ करके पलंग पर लेटा रहेगा। "इसमें नया क्या होगा?" उसने सोचा और अब खुलकर जमाई ले ली। फिर जिन चीज़ों को उथल-पुथल करने में इतना समय लगाएगी, उन्हें बाद में समेटना भी तो उसीको होगा···।

वह पलंग के पास से हटकर फिर बरामदे में आ गई। जैसे कि जो कमरे में नहीं हो सकता था, वह बरामदे में हो सकता हो। धूप अब भी पूरे बरामदे और दालान को ढके थी। दालान की पीली मैली दीवार के उस तरफ कोई साइकिल में हवा भर रहा था। शायद साथ के घर का नौकर शिवजीत। हर दूसरे-तीसरे दिन दोपहर को वह आवाज़ सुनाई देती थी···अभी दो-तीन हफ्ते से ही · पर दोपहर के वक्त ही क्यों? क्या उसकी साइकिल की हवा हमेशा इसी वक्त निकल जाती थी।

उसके मन में आया कि दालान का दरवाज़ा खोलकर एक बार देख ले, पर उसने टाल दिया। उसे इसमें क्या दिलचस्पी है कि किसी की साइकिल की हवा किस वक्त निकली है और क्यों? वह दालान पार करके गुसलखाने में चली गई। वहां उसने नल खोलकर देखा। वही लम्बी सांस भरने की आवाज़···और कुछ नहीं। दोनों बाल्टियां भी इस तरह खाली थीं जैसे बिलकुल नयी लाकर वहां रखी गई हों। उसने नल की टोंटी पूरा खोल दी कि पानी आए, तो नीचे की बाल्टी पूरी भर जाए। फिर उस खयाल से कि वक्त से उसने टोंटी बन्द नहीं की तो फिर कहीं पूरा दालान पानी से न भर जाए, उसने उसे पूरा भर दिया और बाहर निकल आई।

इस बार बरामदे से कमरे में दाखिल होते हुए उसने अपने को अलग रखकर कमरे को देखने की कोशिश की। फर्ज़ करो कि जुगल दफ्तर से लौटकर आए और कमरे की हर चीज़ तो अपनी जगह उसी तरह हो, पर वह वहां न हो? वह अब जैसे जुगल के पैरों से कमरे में दाखिल हुई। पर उसे लगा कि जब तक हर चीज़ बिलकुल पहले की तरह न हो, वह जुगल की नज़र से कमरे को नहीं देख सकती। कैलेण्डर पलंग के नीचे जाकर पूरा खुल गया था। उसे उसने उठाकर वापस दीवार पर टांग दिया। गद्दे और चादर को एक बार हल्के हाथों से झाड़ा और फिर पहले की तरह पलंग पर बिछा दिया। जो कपड़े चमड़े के बक्से में ठूसे थे, उन्हें निकालकर पहले की तरह खूंटी पर

लटका दिया। उसमें इतना एहतियात रखा कि न सिर्फ हर कपड़ा बिल्कुल पहले की तरह लटकाया जाए, बल्कि उसका साया भी दीवार पर उसी तरह पड़े जैसे कि पहले पड रहा था। मन में अच्छी तरह इत्मीनान कर लेने पर कि सब कुछ बिलकुल पहले की तरह हो गया है, वह फिर दलहीज के पास आ गई। अब उसने जुगल की नजर से देखा। कमरा है, सारा सामान है, पर वह नहीं है। इस वक्त ही नही इसके बाद भी कभी नही है। जुगल के पास पूरा घर है, बेबी है, सब कुछ है ''पर बगैर उसके पूरा घर उसी तरह है, बेबी उसी तरह है'''सोफे के कोने मे गुमसुम बैठी हुई है ''सब कुछ उसी तरह है'''पर बगैर उसके। उसे लगा कि यह स्थिति जुगल के लिए सचमुच नयी है। इस नयी स्थिति मे जुगल को कैसा लग रहा है ? वह घबराया-सा चारों तरफ देख रहा है ? उसे ढूढ रहा है ? लोगो मे पूछ-ताछ कर रहा है ?'''उसके होठों पर मुस्कराहट आ गई। सचमुच यह कितना चाहेगी कि जुगल को ऐसी घबराहट मे देख सके ? पर उसकी मुस्कराहट पूरी तरह होंठो पर फैल नही सकी। क्योंकि खाली कमरे को जुगल की नजर से देखते हुए उसे घबराहट की जगह हल्की तसल्ली-सी महसूस हुई। उसे लगा कि यह जानकर कि वह घर में नही है और अब कभी नही आएगी, जुगल का लटका हुआ चेहरा थोडा खिल गया है और उसके होंठों पर वैसी ही मुस्कराहट आ गई है जैसी कि अभी-अभी उसके होंठो पर थी और वह उसे छिपाने की कोशिश कर रहा है। इससे एक झटका-सा लगा। नहीं, वह ऐसा नही होने दे सकती'''खुद वहां से गायब होकर जुगल को उस तरह मुस्कराते नही देख सकती। उसने झट से अपने को भी वापस अपनी जगह पर रख दिया और कमरे से निकल आई। उसके बरामदे में निकलते-निकलते एक हल्की फड़फड़ाहट वहा से उठकर आकाश में चली गई।

उसने जूठी प्यालियां उठाकर रसोई मे रख दीं। गुड्डो की किताबें समेटकर एक तरफ कर दीं। पसीने से शरीर तरबतर हो रहा था, इसलिए गुसलखाने में जाकर फिर एक बार टोंटी खोल दी। नल के अन्दर से कुछ देर वही खखारने की परिचित आवाज सुनाई देती रही, फिर एक-एक बूंद पानी नीचे रिसने लगा।

सीमाएं

इतना बड़ा घर था, खाने-पहनने और हर तरह की सुविधा थी, फिर भी उमा के जीवन में बहुत बडा अभाव था जिसे कोई चीज नही भर सकती थी।

उसे लगता था वह देखने में सुन्दर नही है। वह जब भी शीशे के सामने खडी होती तो उसके मन मे झुंझलाहट भर आती। उसका मन होता कि उसकी नाक लंबी हो, गाल जरा हल्के हो, ठोड़ी आगे की ओर निकली हो और आंखें थोड़ा और बड़ी हों। परन्तु अब यह परिवर्तन कैसे होता ? उसे लगता कि उसके प्राण एक गलत शरीर में फस गए हैं जिससे निस्तार का कोई चारा नही, और वह खीझकर शीशे के सामने से हट जाती।

उसकी मा हर रोज गीता का पाठ करती थी। वह बैठकर गीता सुना करती थी : कभी मा कथा सुनने जाती तो वह साथ चली जाती थी। रोज-रोज पण्डित की एक ही तरह की कथा होती थी—'नाना प्रकार कर-करके नारद जी कहते भये हे राजन्''' पण्डित जो कुछ सुनाता था, उसमे उसकी जरा भी रुचि नही रहती थी। उसकी मां कथा

सुनते-सुनते ऊंघने लगती थी। वह दरी पर बिखरे हुए फूलो को हाथों मे लेकर मसलती रहती थी।

घर मे मां ने ठाकुरजी की मूर्ति रखी थी जिसकी दोनों समय आरती होती थी। उसके पिता रात को रोटी खाने के बाद चौरासी वैष्णवो की वार्ता में से कोई सुनाया करते थे। वार्ता के अतिरिक्त जो चर्चा होती, उसमे सतियो के चरित्र और द आटे का हिसाब, निराकार की महिमा और सोने-चादी के भाव, सभी तरह के वि आ जाते। वह पिता द्वारा दी गई जानकारी पर कई बार आश्चर्य प्रकट करती, पर उ आश्चर्य मे उत्साह नही होता।

उसे मिडिल पास किए चार साल हो गए थे। तब से अब तक वह उस सन्धि-काल मे से गुजर रही थी जब सिवा विवाह की प्रतीक्षा करने के जीवन का और कोई ध्येय नही होता। माता-पिता जिस दिन भी विवाह कर दें, उस दिन उसे पत्नी बनकर दूसरे घर में चली जाना था। यह महीने-दो महीने मे भी सभव हो सकता था, और दो-तीन साल और भी प्रतीक्षा मे निकल जा सकते थे।

उमा कुछ कर नही रही थी, फिर भी अपने मे व्यस्त थी। बैठी थी, लेट गई। फिर उठकर कमरे मे टहलने लगी। फिर खिड़की के पास खड़ी होकर गली की ओर देखने लगी और काफी देर तक देखती रही।

सवेरे रक्षा उसे सरला के ब्याह का बुलावा दे गई थी। वह कह गई थी कि वह साढ़े पाच बजे तैयार रहे, वह उसे आकर ले जाएगी। पहले रक्षा ने उसे बताया था कि सरला का किसी लड़के से प्रेम चल रहा है जो उसे चिट्ठियो मे कविता लिखकर भेजता है और जलती दोपहर मे कालेज के गेट के पास उसकी प्रतीक्षा मे खड़ा रहता है। आज वह प्रेम फलीभूत होने जा रहा था।

प्रेम···यह शब्द उसे गुदगुदा देता था। राधा और कृष्ण के प्रेम की चर्चा तो रोज़ ही घर मे हुआ करती थी। परन्तु उस दिव्य और अलौकिक प्रेम के बखान से वह विभोर नही होती थी। परन्तु यह प्रेम···उसकी सहेली का किसी लड़के से प्रेम···यह और चीज़ थी। इस प्रेम की चर्चा होने पर मलमल के जामे-सा हल्का आवरण स्नायुओ को छू लेता था।

"उम्मी!" मां खिड़की मे उसके पास आकर खड़ी हो गई।

उमा ने ज़रा चौंककर मा की ओर देखा।

"तुझे अभी तैयार नही होना?" मां ने पूछा।

"अभी तैयार हो जाऊंगी, ऐसी क्या जल्दी है?" और उमा की आंखें गली की ओर ही लगी रहीं।

"जाना है तो अब कपड़े-अपड़े बदल ले," मा ने कहा, "बता, साड़ी निकाल दू कि सूट?"

"जो चाहे, निकाल दो···" उमा अन्यमनस्क भाव से बोली।

"तेरी अपनी कोई मर्ज़ी नही?"

"उसमे मर्ज़ी का क्या है? जो निकाल दोगी पहन लूगी।"

उसे अपने शरीर पर साड़ी और सूट दोनो में से कोई चीज़ अच्छी नही लगती थी। कीमती-से-कीमती कपड़े उसके अगो को छूकर जैसे मुरझा जाते थे। रक्षा सवेरे साधारण खादी के कपड़े पहनकर आई थी, फिर भी बहुत सुन्दर लग रही थी। उमा खिड़की से हटकर शीशे के सामने चली गई। मन में फिर वही झुंझलाहट उठी। आज वह इतने लोगों के बीच जाकर कैसी लगेगी? मा ने सुबह मना कर दिया होता तो कितना

अच्छा था ? अब भी यदि वह रक्षा से ज्वर या सिरदर्द का बहाना कर दे…?

वह अपने मन की दुर्बलता को तरह-तरह से सहारा दे रही थी। कभी चाहती कि रक्षा उसे लेने आना ही भूल जाए। कभी सोचती कि शायद यह सपना ही हो और आंख खुलने पर उसे लगे कि वह यूं ही डर रही थी। मगर सपना होता तो कही से टूटता या बदलता। सुबह से अब तक इतना एकतार सपना कैसे हो सकता था ?

मा ने सफेद साटिन का सूट लाकर उसके हाथ मे दे दिया। उमा ने उसे शरीर से लगाकर देखा। उसे अच्छा नही लगा। मगर उसका नया सूट वही था। उसने सोचा कि एक बार पहनकर देख ले, पहनने मे क्या हर्ज है ?

सूट की फिटिंग बिलकुल ठीक थी। उसे लगा कि उससे उसके अंगों का भद्दापन और व्यक्त हो आया है। यदि उसकी कमर कुछ पतली और नीचे का हिस्सा जरा भारी होता तो ठीक था। यदि उसकी होश मे ही उसका पुनर्जन्म हो जाए और उसे रक्षा जैसा शरीर मिले, तो वह इस सूट मे कितनी अच्छी लगे ?

मा वह लकड़ी का डिब्बा ले आई जो कभी उसकी फूफी ने उपहार में दिया था। उसमें पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक और नेलपालिश, कितनी ही चीजें थीं। उसने उन्हें कई बार सूंघा तो था पर अपने शरीर पर उनके प्रयोग की कल्पना नही की थी। उसने मां की ओर देखा। मा मुसकरा रही थी।

"यह किसके लिए लाई हो ?" उमा ने पूछा।

"तेरे लिए और किसके लिए ?" मा बोली, "ब्याह वाले घर नही जाएगी ?"

"तो उसके लिए इस सबकी क्या जरूरत है ?"

"वैसे जाना लोगों मे बुरा लगेगा। घड़ी-दो घडी की ही तो बात है।"

"लालाजी ने देख लिया तो…?"

"वे देर से घर आएंगे। तू लौटकर साबुन से मुंह धो लेना।"

"परन्तु…!"

उसके मन का 'परन्तु' नही निकला। पर वह मना भी नही कर सकी। उसकी इच्छा न हो, ऐसी बात नही थी, पर मन मे आशंका भी थी। वह उन चीजों को अनिश्चित-सी देखती रही। मां दूसरे कमरे में चली गई।

लिपस्टिक उसने होंठों के पास रखकर देखी। फिर मन हुआ कि हल्का-सा रंग चढ़ाकर देख ले। चाहेगी तो पल-भर में तौलिये से पोंछ देगी।

ज्यों-ज्यों होठों का रंग बदलने लगा, उसके मन की उत्सुकता बढ़ने लगी। तौलिये से होठ छिपाए हुए वह जाकर खिड़की के किवाड़ बन्द कर आई। फिर शीशे के सामने आकर वह तौलिये से होठों को रगड़ने लगी। उससे रंग कुछ फीका तो हो गया पर पूरी तरह नही उतरा। फिर तौलिया रखकर उसने पाउडर की डिबिया उठा ली। मन ने प्रेरणा दी कि तौलिया है, पानी है, एक मिनट में चेहरा साफ हो सकता है, और वह पफ से चेहरे पर पाउडर लगाने लगी।

पफ रखकर जब उसने चेहरे को हाथ से मलना आरम्भ किया तभी सीढ़ियों पर पैरों की खट्-खट् सुनाई दी। इससे पहले कि वह तौलिये में मुंह छिपा पाती, रक्षा दरवाजा खोलकर कमरे मे आ गई। उमा के लिए अपना आप भारी हो गया।

"तैयार हो गई, परी रानी ?" रक्षा ने मुस्कराकर पूछा।

परी रानी शब्द उमा को खटक गया। उसे लगा कि उस शब्द मे चुभती हुई चोट है।

"साढ़े पांच बज गए ?" उसने कुण्ठित स्वर में पूछा।

"अभी दस-बारह मिनट बाकी हैं," रक्षा ने कहा।

"मैं समझ रही थी अभी पांच भी नहीं बजे," उमा ने किसी तरह मुस्कराकर कहा। उसकी आखें रक्षा के शरीर पर स्थिर हो रही थी। आसमानी साड़ी के साथ हीरे के टॉप्स और सोने की चुड़िया पहनकर रक्षा बहुत सुन्दर लग रही थी।

मा ने अन्दर से पुकारा तो उमा को जैसे वहा से हटने का बहाना मिल गया। अन्दर गई तो मा वह मखमली डिबिया लिए खडी थी जिसमे सोने की ज़ंजीर रखी रहती थी। वह ज़ंजीर मा के ब्याह मे आई थी और उमा के ब्याह मे दी जाने के लिए संदूक मे सभालकर रखी हुई थी। मा ने ज़ंजीर उसके गले मे पहना दी तो उमा को बहुत अजीब लगने लगा। रक्षा उधर आवाज़ दे रही थी इसलिए वह मा के साथ बाहर कमरे मे आ गई। उसके बाहर आते ही रक्षा ने चलने की जल्दी मचा दी।

जब वह चलने लगी तो मा ने पीछे से कहा, "रात को मन्दिर में उत्सव भी है। हो सके तो आती हुई दर्शन करती आना।"

वह सीढ़ियो मे उतरकर रक्षा के साथ गली मे चलने लगी।

ब्याह वाले घर मे पहुचकर रक्षा बहुत जल्दी इधर-उधर लोगों मे उलझ गई। वह यहा से वहा जाती, वहा से उसके पास और उसके पास से और किसी के पास। उमा सोफे के एक कोने मे सिमटकर बैठ रही। जब उसकी रक्षा से आंख मिल जाती तो रक्षा मुस्कराकर उसे उत्साहित कर देती। जब रक्षा दूर चली जाती तो उमा बहुत अकेली पड़ने लगती। वह बत्तियो से जगमगाता हुआ घर उसके लिए बहुत पराया था। वहा फैली हुई महक अपनी दीवारो की गन्ध से बहुत भिन्न थी। खामोश अकेलेपन के स्थान पर चारों ओर खिलखिलाता हुआ शोर सुनाई दे रहा था। वह एक प्रवाह था जिसमे निरन्तर लहरें उठ रही थी। पर वह लहरो मे लहर नही, एक तिनके की तरह थी—अकेली और एक ओर को हटी हुई।

रक्षा कुछ और लडकियो को लिए हुए बाहर से आई और उसने उन्हें उसका परिचय दिया, "यह हमारी उमा रानी है, तुम लोगो की तरह चट नही है, बहुत सीधी लड़की है।"

उमा को इस तरह अपना परिचय दिया जाना अच्छा नही लगा, फिर भी वह मुस्करा दी। रक्षा दूसरी लडकियो का परिचय कराने लगी, "यह कान्ता है, इन्टर मे पढ़ती है। अभी-अभी इसने कॉलेज के नाटक मे जूलिएट का अभिनय किया था, बहुत अच्छा अभिनय रहा।···यह कंचन है, आजकल कला भवन में नृत्य सीख रही है।···और मनोरमा · यह कॉलेज के किसी भी लडके को मात दे सकती है···

परिचय पाकर उमा अपने को उनमे और भी दूर अनुभव करने लगी। उन सबके पास करने के लिए अपनी बातें थी। 'वह', 'उस दिन', 'वह बात', आदि संकेतों से वे बरबस हस देती थी। उमा के विचार कभी फरश पर अटक जाते, कभी छत से टकराने लगते और कभी मफेद सूट पर आकर सिमट जाते।

रक्षा कान्ता को एक फोटो दिखा रही थी। और कह रही थी कि इस लड़के से ललिता की शादी हो रही है।

"अच्छी लाटगी है!" कान्ता तसवीर हाथ मे लेकर बोली, "एक दिन की भी जान-पहचान नही, और कल को ये पतिदेव होगे और ललिता जी 'हमारे वे' कहकर इनकी बात करेंगी—धन्य पतिदेव!"

कान्ता की बात पर और सबके साथ उमा भी हस दी। पर वह बेमतलब की हसी थी, उसे हंसने के लिए आन्तरिक गुदगुदी का ज़रा भी अनुभव नही हुआ था। उसके स्नायु

जैसे जकड़ गए थे। खुलना चाहते थे, लेकिन खुल नहीं पा रहे थे।

बात में से बात निकल रही थी। कभी कोई बात स्पष्ट कही जाती और कभी सांकेतिक भाषा में। सहसा बात बीच में ही छोड़कर रक्षा एक नवयुवक को लक्षित करके बोली, "आइए, भाई साहब! लाए है आप हमारी चीज़?"

"भई, माफ कर दो," नवयुवक पास आता हुआ बोला, "तुम्हारी चीज़ मुझसे गुम हो गई।"

"हां, गुम हो गई! साथ आप नहीं गुम हो गए?" रक्षा धृष्टता के साथ बोली।

"अपना भी क्या पता है?" नवयुवक ने कहा, "इन्सान को गुम होते देर लगती है?"

नवयुवक लंबा और दुबला-पतला था और देखने में काफी अच्छा लग रहा था। उमा ने एक नज़र देखकर आंखें हटा लीं।

"चलो उधर, सरला बुला रही है," नवयुवक ने फिर रक्षा से कहा।

"उससे कहो, मैं अभी आती हूं," रक्षा बोली।

"चलो भी, अभी आती हूं।" कहकर उसने रक्षा का हाथ पकड़कर खींचा। रक्षा उसके साथ चली गई। कान्ता कंचन को बताने लगी कि उस लड़के का नाम मोहन है और वह सरला का चचेरा भाई है। एम० ए० फाइनल में पढ़ रहा है। उमा ने इससे अधिक कुछ सुनने की आशा की। पर कान्ता वह बात छोड़कर मनो के फीते की प्रशंसा करने लगी।

मनो का फीता बहुत सुन्दर था। उसके बालों में सोने का क्लिप और नीले रंग के फूल भी बहुत अच्छे लग रहे थे। उसके ब्लाउज़ का पारदर्शक कपड़ा बिजली के प्रकाश में किरणें छोड़ रहा था। कंचन मनो के कंधे पर झुककर उसके कान में कुछ फुसफुसाने लगी। उमा की आंखें झट दूसरी ओर को हट गईं।

उसके सामने जो दो स्त्रियां बैठी थीं, वे उसी की ओर देखकर कोई बात कर रही थीं। उमा को लगा कि वे उसीकी बात कर रही हैं—शायद उसके कपड़ों की आलोचना कर रही हैं। उसने बांहें समेट लीं और हाथ में गले की जंजीर को सहलाने लगी।

"बाहर चल रही हो?" मनो ने उससे पूछा।

"रक्षा किधर गई है?" यह पूछकर उमा और संकुचित हो गई।

"बाहर ही गई है, अभी देखकर भेजती हूं," कहकर मनो कंचन और कान्ता के साथ उठ खड़ी हुई और वे सब बाहर चली गईं।

उमा फिर बिलकुल अकेली पड़ गई तो उसके मन का बोझ बढ़ने लगा। वहां इतने अपरिचित लोगों की उपस्थिति, चहल-पहल और सजावट, सब कुछ उसे बेगाना लग रहा था। यदि सहसा उसे सुनसान अंधेरे जंगल में पहुंचा दिया जाता, जहां चारों ओर बिलकुल नीरवता होती तो उसे निश्चय ही अब से अच्छा लगता। परन्तु वहां उस चुलबुलाहट, छेड़छाड़ और दौड़-धूप में उसकी तबीयत उखड़ रही थी'''।

सहसा कमरा कहकहों से गूंज उठा। उमा चौंक गई। कोई ऐसी बात हुई थी जिस पर सब लोग हंस रहे थे। उसने सोचा कि वह भी हंस दे परन्तु वह चुप रही कि हो सकता है उसी के बारे में कोई बात हुई हो ''। लेकिन जब हंसी का स्वर बैठ गया तो उसे अपने चुप रहने के लिए खेद हुआ क्योंकि उसकी चुप्पी सबने लक्षित की थी। वह पश्चात्ताप से भर गई।

बाजों का स्वर दूर से पास आ रहा था, इससे लोगों ने अनुमान लगाया कि बारात आ रही है। कमरे की हलचल बढ़ गई। उमा को उस समय बहुत ही व्यर्थ-सा प्रतीत

होने लगा। उसके कानों मे बाजे का स्वर गूंज रहा था और आस-पास कुछ वाक्यों के टुकड़े मंडरा रहे थे।

—आओ बाहर।
— माधवी, ओ माधवी !
—हाय, मेरा लाल रूमाल !
— रोती है तो रोने दे।
—नीना रानी, ले बिस्कुट।
— मौली मिल गई, पण्डित जी ?
—देख, पीछे कितने लोग हैं ?
—रूई, फूल, धूप, मेवा।
—मोहनलाल ! मोहनलाल।
—देखा, कैसा है ?
— कुछ लम्बा लगता है।
—आ मिट्ठू, आ बेटा।
—जान ले ले तू बाबूजी की !

एक-एक करके सब लोग कमरे से बाहर चले गए। कुछ अपने-आप आग्रह से चले गए और कुछ को दूसरे आकर अनुरोध के साथ ले गए। केवल उमा अपने अकेलेपन मे घिरी हुई वहा बैठी रह गई।

पहले क्षण तो उसे अकेली रह जाने मे अच्छा लगा। दूसरे क्षण उपेक्षित होने की टीस का अनुभव हुआ। फिर आत्मीयता दीप्त हुई कि उसे भी बाहर जाना चाहिए। परन्तु अगले क्षण वह इस अनुभूति से मुरझा गई कि बाहर जाकर भी वह अकेली होगी ·· उस भीड मे उसके होने-न होने से कोई अन्तर नही पड़ता।

बैंड का स्वर बहुत पास आ गया था और बाहर कोलाहल बढ रहा था। अन्दर उमा के लिए समय के क्षण लम्बे होते जा रहे थे और उसके हृदय की धडकन मद्धम पड रही थी। तभी अचानक रक्षा बाहर से वहा आ गई।

"क्यों रानी, रूठ गई है क्या ?" रक्षा ने आते ही पूछा।

"नहीं, मैं···" उमा ने सिरदर्द का बहाना करना चाहा, लेकिन उसकी बात पूरी होने मे पहले ही रक्षा ने उसका हाथ पकड़कर उठा दिया।

"बाहर चल, यहा क्यों बैठी है ?" वह बोली, "बाहर अभी हम लोग दूल्हा के साथ एक तमाशा करने जा रही हैं।"

और कुछ कह सकने से पहले ही उमा बाहर भीड़ मे पहुंच गई। यहा कचन, मनो और कान्ता मिल गई। वे सब उसे साथ सरला के कमरे में ले गईं। सरला दुल्हिन के वेश मे बिलकुल और ही लग रही थी। फूलदार जारजेट की साडी के साथ मोतियों के गहने उसकी गुलाब-सी त्वचा पर बहुत खिल रहे थे। सरला उसकी ओर देखकर मुसकराई तो वह उसके होंठों की सलवटें देखती रह गई। सरला ने साथ कुछ शब्द भी कहे, परन्तु वे शब्द कोलाहल में उसे सुनाई नहीं दिए। वह उत्तर में यूही मुसकरा दी हालांकि अपनी वह व्यर्थ की मुसकराहट उसके हृदय मे चुभ-सी गई···

दो घण्टे बाद जब रक्षा उसे उसके घर की गली के बाहर छोडकर आगे चली गई तब भी उमा के हृदय मे वह चुभना हुआ अनुभव उसी तरह था, जैसे कोई कांटा अन्दर टूटकर रह गया हो। वह अपनी स्थिति का निर्णय नहीं कर पा रही थी। एक तरफ जैसे क्षा, सरला, कान्ता, कचन और मनोरमा खिलखिलाकर हंस रही थी। दूसरी तरफ वे

दीवारें थीं, जिनमें सटी हुई खिड़की के पास सवेरे धूप आती थी और दोपहर ढलते ही अंधेरा होने लगता था और जिनके साये में पूर्णिमा और एकादशी के व्रत रखने होते थे। वह जैसे दोनों ओर से दब रही थी और टूट रही थी।

गली में आकर उसने मन्दिर की घंटियां सुनी तो उसे मां की बात याद हो आई कि आज मन्दिर में उत्सव है। उसके पैर अनायास मन्दिर की सीढ़ियों की ओर बढ़ गए। वह अन्दर पहुंचकर स्त्रियों की पंक्ति में हाथ बांधकर खड़ी हो गई।

आरती समाप्त होने पर स्तोत्र पाठ आरम्भ हुआ। उमा भी आंखें मूंदकर लय में शब्दों का अनुकरण करने लगी, जय सीतावर वर सुन्दर, जय जग सुख दाता। जय जय जग सुखदाता···

परन्तु मूंदी हुई आंखों के आगे रक्षा का खिलखिलाता हुआ चेहरा आ गया, फिर मोहन की बड़ी-बड़ी आंखें, और फिर एक के बाद एक कितनी ही आकृतियां सामने आने लगी, व्यग्यपूर्ण मुसकराहटें, उपेक्षा-भरी भौंहें, सोफे का खाली कोना, ज़ोर-ज़ोर से बजता हुआ बाजा ··। उसने अपने आपको झटका दिया···। दीनबंधु करुणामय, सब जग के त्राता! ···फिर हिलता हुआ पर्दा, पर्दे के पीछे बिजलियां, बिजलियों के प्रकाश में रक्षा, मोहन, सरला और दूल्हा के खिलखिलाते हुए चेहरे ·।

उमा ने आंखें खोल लीं। स्तोत्र का स्वर चारों ओर गूंज रहा था। बरसों से वह इस स्वर को सुनती आई था, लेकिन फिर भी आज उसे यह स्वर कुछ अपरिचित-सा लग रहा था। जैसे उसके अन्तर की गहराई में कहीं कुछ थोड़ा बदल गया था।

सहसा उसकी आंखें एक जगह टकराकर लौट आईं। भीड़ में एक नवयुवक उसकी ओर देख रहा था।

उमा के शरीर में लहू का दबाव बढ़ गया। हृदय की गति बहुत तेज़ हो गई। उसकी आंखें केले के खंभों पर से हटकर सजी हुई सामग्री पर से फिसलती हुई फिर वहीं टकराईं। वह अब भी उसी तरह देख रहा था।

उमा के लिए पैरों का सतुलन बनाए रखना कठिन हो गया। उसकी आंखें ठाकुर जी की मूर्ति पर पड़ीं और जल्दी से हट गईं। उसके पास से कुछ लोग चलने लगे तो वह भी साथ चल दी। पुजारी से चरणामृत लेकर वह ड्योढ़ी की ओर बढ़ी। सहसा भीड़ में किसी का हाथ उससे छुआ। उमा ने घूमकर देखा। वही दो आंखें थी···काली डोरेदार आंखें।

स्तोत्र का स्वर मशीन के घर-घर स्वर जैसा हो गया। आस-पास की भीड़ पत्थर की गोपियां, मिट्टी के आम व कपड़े के तोते, हर चीज़ धुंधली होने लगी। आकाश बोझिल हो गया और धरती समतल नहीं रही। दिशाएं एक-दूसरी में मिलकर ओझल होने लगीं। प्रकाश रंग बदलने लगा। वह भीड़ में कुछ यूं हो गई जैसे रुके हुए पानी में अस्त-व्यस्त हाथ-पैर मार रही हो। केवल एक ज्ञान था कि एक हाथ उसे छू रहा है। यहां बाजू के पास, यहां कंधे के पास, यहां···।

वह बाहर से आती हुई दो स्त्रियों के साथ उलझ गई। किसी तरह संभलकर जब वह बाहर पहुंची तो उसे हवा का स्पर्श कुछ विचित्र-सा लगा। लहू जो तेज़ी के साथ नाड़ियों में सरसरा रहा था, वह अब कुछ ठंडा पड़ने लगा तो शरीर में सिहरन भर गई। उसके कंधे के पास उस हाथ का स्पर्श जैसे अभी तक सजीव था।

उसका मन हुआ कि वह जल्दी से घर पहुंच जाए और एक बार खिलखिलाकर हंस दे। वे असाधारण क्षण बिलकुल नयी-सी अनुभूति छोड़ गए थे। यदि रक्षा उस समय उसके पास होती तो वह हंसती हुई उसके गले में बाहें डाल देती और उसे घसीटती हुई

अपने साथ घर ले जाती।

उस स्पर्श को एक बार छू लेने के लिए उमा का हाथ अपने कंधे के उसी भाग की ओर उठ गया। वह स्पर्श जैसे वहां अपनी निश्चित छाप छोड़ गया था।

अचानक उसका पैर लड़खड़ा गया और वह रुक गई। उसका शरीर पसीने से भीग गया। अंधेरे गहरे-गहरे रंग फैल गए।

उस स्पर्श का आभास तो वहां था, पर सोने की जंजीर गले में नहीं थी।

आर्द्रा

बचन को थोड़ी ऊंघ आ गई थी, पर खटका सुनकर वह चौंक गई। इरावती ड्योढ़ी का दरवाज़ा खोल रही थी। चपरासी गणेशन आ गया था। इसका मतलब था कि छः बज चुके थे। बचन के शरीर में ऊब और झुंझलाहट की झुरझुरी भर गई। बिन्नी न रात को घर आया था, न सुबह से अब तक उसने दर्शन दिए थे। इस लड़के की वजह से ही वह यहां परदेस में पड़ी थी, जहां न कोई उसकी ज़बान समझता था, न वह किसी की ज़बान समझती थी। एक इरावती ही थी जिससे वह टूटी-फूटी हिन्दी में बात कर लेती थी, हालांकि उसकी पंजाबी हिन्दी और इरावती की कोंकणी हिन्दी में ज़मीन-आसमान का फर्क था। जब इरावती भी उसका सीधे-सादे शब्दों में कही साधारण-सी बात को न समझ पाती, तो वह बुरी तरह अपनी विवशता के खेद से दब जाती। और इस लड़के को रत्ती चिन्ता नहीं थी कि मां किस मुश्किल से दिन काटती है और किस बेसब्री से इसका इंतज़ार करती है। मन में आया, तो घर आ गए, नहीं तो जहां हुआ पड़ रहे।

एक मादा सूअर अपने छः बच्चों के साथ, जो अभी नौ-नौ इंच से बड़े नहीं हुए थे, कुएं की तरफ से आ रही थी। तूत के बुड्ढे पेड़ के पास पहुंचकर उसने हूंफ्-हूंफ् करते हुए दो-तीन बार नाली को सूंघा और फिर पेड़ के नीचे कीचड़ में लोटने लगी। उसके नन्हे आत्मज उसके उठने की राह देखते हुए वहीं आसपास मंडराते रहे।

दिन-भर गली में यही सिलसिला चलता था। आसपास के सभी घरों ने सूअर पाल रखे थे। उस बस्ती में लोगों के दो ही धन्धे थे—सूअर पालना और नाजायज़ शराब निकालना। ये दोनों चीज़ें उनके रोज़ के खान-पान में शामिल थीं। बस्ती सान्ताक्रुज़ हवाई अड्डे से कुल आधा मील के फासले पर थी, पर पुलिस की आंख वहां नहीं पहुंचती थी। मोनिरा का बाप जेरब गली में ही भट्ठी लगाता था। वह गली का सबसे बड़ा पियक्कड़ [illegible] "ओ दैट आई [illegible] रहा था। उसके लफ्ज़ बचन की समझ से बाहर थे, मगर उसकी आवाज़ ही उसके दिल में दहशत पैदा करने के लिए काफी थी। "ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ एंजल्स, हियर टु स्पेड एण्ड हैवनवर्ड फ्लाऽऽई! आई वुड सीक द गेट्स ऑफ सायन, फार बियांड द स्टाऽऽरी स्काऽऽई! होऽ-हो! हो हो-होऽऽ! ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ एंजल्स…!"

उसका चौड़ा चौकोर चेहरा वैसे ही भयानक था—अपने ढीले-ढाले काले सूट से वह और भी भयानक दिखाई देता था। चेचक के दागों और झुर्रियों से भरा उसका चेहरा दीमक खाई लकड़ी की तरह जान पड़ता था। दूर से ही उस आदमी की आवाज़

सुनकर बचन का दिल धड़कने लगता और वह अपना दरवाज़ा बन्द कर लेती। उसने कितनी ही बार बिन्नी से कहा था कि वह उस बस्ती से मकान बदल ले, मगर वह हर बार यह कहकर टाल देता था कि बम्बई की और किसी बस्ती मे बीस रुपये महीने में मकान नही मिल सकता। बचन डर के मारे बिन्नी के आने तक लालटेन की लौ भी ज्यादा ऊंची नही करती थी। अंधेरा बहुत बोझिल महसूस होता था, मगर वह मन मारे बैठी रहती थी।

लालटेन की चिमनी नीचे से आधी काली हो गई थी। बचन को उसे साफ करने का उत्साह नही हुआ। अंधेरा होने लगा, तो उसने जैसे फर्ज पूरा करने के लिए उसे जला दिया और एक अज्ञात देवता के सामने हाथ जोड़ने की प्रक्रिया पूरी करके घुटनों पर बांहें रखे वही बैठी रही। सामने मोढे के नीचे लाली का कार्ड रखा था। वह अक्षरों की बनावट से परिचित थी, पर हज़ार आंखें गड़ाकर भी उनका अर्थ नही जान सकती थी। बिन्नी के सिवा हिन्दी की चिट्ठी पढ़ने वाला वहा कोई नही था, हालाकि बिन्नी से चिट्ठी पढ़वाकर भी उसे सुख नही मिलता था। वह लाली की चिट्ठी इस तरह पढकर सुनाता था जैसे वह उसके बड़े भाई की चिट्ठी न होकर गली के किसी गैर आदमी के नाम आई किसी नावाकिफ आदमी की चिट्ठी हो। दो मिनट मे ही वह पहली सतर से लेकर आखिरी सतर तक सारी चिट्ठी गुन-गुन करके बांच देता था, और फिर उसे कोने में फेंककर इधर-उधर की हांकने लगता था। हर बार उससे चिट्ठी सुनकर वह कुढ जाती थी। पर बिन्नी उसे नाराज़ देखता, तो तरह-तरह की बातें बनाकर खुश कर लिया करता था।

उसे खुश होते देर नहीं लगती थी। बिन्नी इतना बड़ा होकर भी जब-तब उससे बच्चों की तरह लाड़ करने लगता था। कभी उसकी गोदी में सिर रखकर लेट जाता, और कभी उसके घुटनों से गाल सहलाने लगता। ऐसे क्षणो मे उसका दिल पिघल जाता और वह उसके बालो पर हाथ फेरती हुई उसे छाती से लगा लेती।

"मां, तेरा छोटा लड़का कपूत है न ?" बिन्नी कहता।

"हा-ह", वह हटकने के स्वर मे कहती। "तू कपूत है ? तू तो मेरा चन्न है," और वह उसका माथा चूम लेती।

लेकिन अक्सर वह बहुत तंग पड जाती थी। बहुत-सी रातें ऐसी गुज़रती थी जब वह घर आता ही नही था। अंधेरे घर की छत उसे दबाने को आती थी और वह सारी-सारी रात करवटें बदलती रहती थी। ज़रा आंख झपक जाती, तो उसे बुरे-बुरे सपने दिखाई देने लगते। इसलिए कई बार कोशिश करके आंखें खुली रखती थी।

और बिन्नी आता, तो अपने मे ही उलझा हुआ और व्यस्त-सा। वह समझ नही पाती थी कि उस लड़के को किस चीज़ की व्यस्तता रहती है। जहां तक कमाने का सवाल था, वह महीने मे मुश्किल से साठ-सत्तर रुपये घर लाता था। कभी दस रुपये ज्यादा ले आता, तो साथ अपनी मांगें सामने रख देता—'इस बार मां, दो कमीज़ें सिल जाएं और एक बढ़िया-सा जूता ले लिया जाए।' उसकी बातों से बचन के होठो पर रूखी सी मुस्कराहट आ जाती थी। दस रुपये मे ही उसे दुनिया-भर का सामान चाहिए ! और जब वह साठ से भी कम रुपये लाता, तो महीने-भर की बडी आसान-सी योजना उसके सामने पेश कर देता—'दूध-मक्खो का नागा। दाल, प्याज़, सुश्क फुल्के और बस !'

वह जानती थी कि ये रुपये भी वह ट्यूशन-ऊशन करके ले आता है, वरना सही माने मे वह बेकार ही है। उसके दिल मे बड़े-बड़े मनसूबे ज़रूर थे और उनका बखान करते वक्त वह छोटा-मोटा भाषण दे डालता था। मगर उन मनसूबों को पूरा करने के

लिए जिस दुनिया की ज़रूरत थी, वह दुनिया अभी बनी नहीं थी। वह जोश से उंगलियां नचा-नचाकर कहता, "मा, जब वह दुनिया बन जाएगी, तो तुझे पता चलेगा कि तेरा नालायक बेटा कितना लायक है !"

"चुप कर खसम खाना !" वह प्रशंसा की नज़र से उसे देखती हुई कहती, "बड़ा लायक एक तू ही है।"

"मा, मेरी लियाकत मेरे पेट मे बन्द है !" वह हसता। "जिस तरह हिरन के पेट मे कस्तूरी बन्द होती है न, उसी तरह। जिस दिन वह खुलकर सामने आएगी, उस दिन तू अचम्भे से देखती रह जाएगी।"

उसे बिन्नी की बाते सुनकर गर्व होता था। मगर जब वह लड़का बहुत गुमसुम और बन्द बन्द-सा हो रहता, तो उसे उलझन होने लगती थी।

बिन्नी के साथ उसके अजीब-अजीब दोस्त घर आया करते थे। उन लोगों का शायद कोई ठौर-ठिकाना था ही नहीं, क्योंकि वे आते तो दो-दो दिन वही पड़े रहते थे, और खाने-पीने मे किसी तरह का शरम-लिहाज नही बरतते थे। तवे से उतरती रोटी के लिए जब वे आपस मे छीना-झपटी करने लगते, तो उसे मन मे बहुत खुशी का अनुभव होता। मगर अक्सर उसकी दाल की पतीली खाली हो जाती, और यह देखकर कि उन लोगो की भूख अभी बनी है, उसे घर की गरीबी अपना अपराध प्रतीत होती। ऐसे समय उसकी आखो मे नमी भर जाती और वह ध्यान बटाने के लिए दूसरे काम करने लगती। वे लोग रूखी नमकीन रोटियो की फरमाइश करते, तो वह चुपचाप उन्हें बना देती। मगर उन्हे खिलाने का उसका सारा उत्साह तब तक समाप्त हो चुका होता।

और उन लोगो के बहस-मुबाहिसे कभी समाप्त नही होते थे। वे सब ज़ोर-ज़ोर से बोलते थे और इस तरह आपस मे उलझ जाते थे जैसे उनकी बहस पर ही धरती और ईश्वर का दारोमदार हो। कई बार वे इतने गरम हो जाते थे कि लगता था अभी एक-दूसरे को नोच लेंगे, मगर सहसा उस उत्तेजना के बीच से एक कहकहा फूट पड़ता और वे उठ-उठकर एक-दूसरे मे बगलगीर होने लगते। बिन्नी बचपन में बहुत खामोश लड़का था। अब उसे इस तरह हुड़दंग करते देखकर उसे हैरानी होती थी। कई-कई घण्टे घर में तूफान मचा रहता था। उसके बाद फिर खामोशी छा जाती जो बहुत ही अस्वाभाविक और दम घोटनेवाली महसूस होती। जब बिन्नी दो-दो दिन घर न आता, तो उस खामोशी के ओर-छोर गुम हो जाते और वह अपने को सदा से एक गहरे शून्य मे घिरी हुई महसूस करती।

अंधेरा गहरा होने लगा और मोनिका का बाप जाकर अपने कमरे मे बन्द हो गया तो उसने फिर दरवाज़ा खोल लिया। मादा सूअर और उसके बच्चे अब सामने घर के अहाते मे डेरा जमाए थे और एक मोटा सूअर नाली के पास हुंफ-हुंफ कर रहा था। हवा तेज़ हो गई थी, और तूत के बुड्ढे पेड़ की डालियां बुरी तरह हिल रही थीं। आसमान का जो छोर दिखाई देता था, वहां रह-रह कर बिजली चमक जाती थी। दो महीने से प्रायः रोज वर्षा हो रही थी। घर से कुए तक गली मे कीचड़ ही कीचड़ रहता था। इस कीचड़ के लिए बचन को लड़के-लड़कियों की उन टोलियो से शिकायत थी जो वर्षा शुरू होने से पहले आधी-आधी रात तक गली मे घूमती हुई ऊंचे स्वर में ईश्वर से पानी बरसाने के लिए प्रार्थना किया करती थी। अब जैसे उन्ही की वजह से सारा दिन गली में चिपड़-चिपड़ होती रहती थी।

ड्योढ़ी के दरवाज़े पर फिर दस्तक हुई। इरावती ने दरवाज़ा खोल दिया और बिन्नी मुस्कराता हुआ उधर से अन्दर आ गया।

"आगे की तरफ बहुत कीचड़ है भाभी, माफ करना," कहता हुआ वह अपने कमरे में आ गया। इरावती ने उसपर एक शिकायत की नजर डालकर दरवाजा बन्द कर लिया उसके सिर के बाल बुरी तरह उलझे थे और कुरता-पाजामा बहुत मुचड़ गया था। जाहिर था कि वह सुबह जिस हाल में सोकर उठा था, अब तक उसी हाल में था, और उसे मुंह-हाथ धोने का भी वक्त नहीं मिला था।

"मां, जल्दी से रोटी डाल दे, भूख लगी है!" आते ही चारपाई पर फैलते हुए उसने आदेश दिया। बचन चुपचाप अपनी जगह बैठी रही। न उठी, और न ही उसने मुंह से कुछ कहा। कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद बिन्नी ने सिर उठाया और कहा, "मां, रोटी···।"

"रोटी आज नहीं बनी है," वह बोली। "मुझे क्या पता था कि लाटसाहब आज भी घर आएंगे कि नहीं! रात की रोटी मैंने सवेरे खाई, सवेरे की अब खाई है। मैं क्यों रोज-रोज बासी रोटी खाती रहूं? जा, किसी तन्दूर पर जाकर खा ले।"

बिन्नी हंसता हुआ चारपाई से उठ बैठा और मां के मोढे के पास चला आया। "यहां तन्दूर है कहां, जहां जाकर खा लूं?" वह बोला। "मेरे हिस्से की जो बासी रोटी रखी थी, वह तूने क्यों खाई? निकाल मेरी बासी रोटी···" और वह मां का घुटना पकड़कर बैठ गया।

"मेरे पेट से निकाल ले अपनी बासी रोटी!" बचन ने आरम्भ किया मीठी झिड़की के रूप में, पर वाक्य समाप्त करते-करते उसकी आंखें गीली हो गईं!

बिन्नी ने उसकी गीली आंखें नहीं देखीं। वह उठकर रोटीवाले डब्बे के पास चला गया और बोला, "डब्बे में रखी होगी, जरूर रखी होगी।"

बचन ने उसकी नजर बचाकर आंखें पोंछ लीं। बिन्नी रोटीवाला डब्बा लिए उसके सामने आ बैठा। डब्बे में कटोरा-भर दाल के साथ चार रोटियां कपड़े में लपेटकर रखी थीं। बिन्नी ने जल्दी से एक रोटी का टुकड़ा तोड़ लिया।

"यह तो ताजा रोटी है!" वह टुकड़ा मुंह में ठूंसे हुए बोला।

"बासी रोटी खाने को मां जो है!" कहकर बचन उठ खड़ी हुई। उसने पानी का गिलास भरकर उसके पास रख दिया। बिन्नी ने एक घूंट में गटागट गिलास खाली कर दिया और बोला, "थोड़ा और!"

बचन ने गिलास उठा लिया और सुराही से उसमें पानी डालती हुई बोली, "लाली का कार्ड आया है।"

"अच्छा!" कहकर बिन्नी रोटी खाता रहा। उसने कार्ड के बारे में जरा भी जिज्ञासा प्रकट नहीं की। बचन का दिल दुख गया। वह गिलास बिन्नी के आगे रखकर बिना एक शब्द कहे अहाते में चली गई और चारपाई पर दरी डालकर पड़ गई। उसका दिल उछलकर आंखों से आने को हो रहा था, पर वह किसी तरह चेहरा सख्त किए अपने को रोके रही। थोड़ी देर में बिन्नी जूठे पानी से हाथ धोकर मुंह पोंछता हुआ अन्दर से आ गया।

"कहां है कार्ड?" उसने पूछा।

"कहीं नहीं है," बचन ने रुंधे स्वर में कहा और करवट बदल ली।

"अब बता भी दे न, जल्दी से सब समाचार पढ़ दूं।"

"सो जा, मुझे कोई समाचार नहीं पढ़वाने हैं।"

"पढ़वाने क्यों नहीं हैं, मैं अभी सब सुनाता हूं," कहकर बिन्नी अन्दर चला गया और कार्ड ढूंढकर ले आया। साथ लालटेन भी उठा लाया। आधे मिनट में उसने सरसरी

नज़र से सारा कार्ड पढ डाला।

"भैया की तबीयत ठीक नहीं है," वह लालटेन जमीन पर रखकर मां की चारपाई के पैताने बैठ गया। बचन सहसा उठकर बैठ गई। बिन्नी ने गुनगुन करके पहली टेढ़ी पंक्ति पढी और फिर उसे सुनाने लगा। लाली ने लिखा था कि उसका ब्लड प्रेशर फिर बढ़ [illegible] तबीयत अब ठीक है [illegible] पहला [illegible] थी। अब दीवाली पास आ रही है, इसलिए बच्चे दादी मां को बहुत याद करते हैं। [illegible] गए छः महीने से ऊपर हो गए हैं, इसलिए हो सके, तो दीवाली के दिनों में आकर मिल जाए।

"इसके बाद सबको नमस्ते है," कहकर बिन्नी ने कार्ड रख दिया।

'यह नहीं लिखा कि किस डॉक्टर का इलाज कर रहा है?"

"तू जैसे वहां के सब डॉक्टरों को जानती है।"

बिन्नी ने बात अनायास कह दी थी, पर बचन का मन छिल गया। उसके चेहरे पर फिर कठिनता आ गई।

"मैं कल वहां चली जाती हूं," उसने कहा।

"तू चली जाएगी तो मैं यहां अकेला कैसे रहूंगा? मेरी रोटी···?"

बचन ने वितृष्णा से उसे देखा, जिसका मतलब था कि तेरी रोटी क्या उसकी जान से ज्यादा प्यारी है?

"तू कौन घर की रोटी पर रहता है," मुंह से उसने इतना ही कहा।

"भैया का ब्लड प्रेशर कोई नई बीमारी तो है नहीं···" बिन्नी फिर कहने लगा।

"तू ये बातें रहने दे, मैं कल यहां से जा रही हूं" बचन ने उसकी बात को बीच में ही काट दिया। कुछ क्षण दोनों खामोश रहे। फिर बिन्नी 'अच्छा' कहकर उसके पास से उठ गया।

अगले दिन सुबह वह 'अभी थोड़ी देर में आता हूं' कहकर घर से चला गया और दोपहर तक लौटकर नहीं आया। बचन का किसी काम में मन नहीं लग रहा था। फिर भी उसने किसी तरह खाना बनाया और घर के सब छोटे-मोटे काम पूरे किए। बिन्नी की चारों-पांचों कमीज़ें लेकर उनके टूटे बटन भी लगा दिए। फिर अपनी दरी और कपड़े एक जगह इकट्ठे कर लिए। यह तय नहीं था कि वह उस दिन वहां से जा पाएगी या नहीं। बिन्नी सुबह उसे निश्चित कुछ बताकर नहीं गया था। सम्भव था कि वह रात तक घर आए ही नहीं। रात को भी उसके आने का भरोसा नहीं था। यह भी डर था कि बिन्नी के पास किराये लायक पैसे शायद हों ही नहीं। उस दिन महीने की उन्नीस तारीख थी। और उन्नीस तारीख को बिन्नी के पास पैसे कब रहते थे? उस हालत में उसे तीन-चार तारीख तक जाना टालना पड़ेगा। वह यह भी नहीं जानती थी कि दीवाली इस बार किस तारीख को पड़ेगी। वह सोचने लगी कि इस बीच लाली की तबीयत और ज्यादा खराब हो गई, तो? उसे काफी ज्यादा तकलीफ होगी, जो उसने चिट्ठी में लिखा है। नहीं वह चिट्ठी में कभी न लिखता। ऐसे में वह पन्द्रह-बीस दिन वहां से न जा सकी, तो?

तभी बिन्नी आ गया। उसके साथ उसका लम्बे बालों वाला दोस्त शशि भी था, जिसकी गरदन बात करते हुए तोते की तरह हिलती थी। वह उसकी दाल का सबसे बड़ा प्रशंसक था। आते ही दाल की फरमाइश करता था। हमेशा की तरह वे गली से ऊंची आवाज़ में बात करते हुए आए।

"मैं तेरा टिकट ले आया हूं," बिन्नी ने आते ही कहा। "मंगलवाड़ी से शशि को साथ लिया, और वहीं से टिकट भी ले लिया। पर तू तो अभी तैयार ही नहीं हुई…!"

"तैयार क्या होती ? तू मुझसे कहकर गया था…?"

"जब रात को तय हो गया था, तो सुबह कहने की क्या जरूरत थी ? अच्छा, अब जल्दी से तैयार हो जा। गाड़ी में दो घण्टे हैं। तेरे लिए नकद सवाबीस खर्च करके आया हूं, वे भी उधार के।"

बचन को बुरा लगा कि वह बाहर के आदमी के सामने ऐसी बात क्यों कह रहा है। क्या वह नहीं जानती थी कि टिकट के लिए उसे रुपये उधार लेने पड़े होंगे ? वह कब चाहती थी कि उसकी वजह से उस पर उधार चढ़े ? वह उससे कह देता, तो वह बारह-चौदह दिन बाद चली जाती।

वह कुछ न कहकर अपने कपड़े दरी में लपेटने लगी।

"हट मां, मुझे बिस्तर बांधना आता भी है ?" बिन्नी आगे बढ़ आया। "उल्टी-सीधी रस्सी बांधेगी, और कहीं से बिस्तर को मोटा कर देगी, कहीं से पतला। हट जा; मैं अभी एक मिनट में बांध देता हूं। ऐसा बिस्तर बंधेगा कि वहां पहुंचकर भी तेरा खोलने को जी नहीं करेगा।"

"तू रोटी खा ले, मैं बिस्तर बांध लेती हूं," बचन की आंखें भर आईं।

"रोटी खानेवाला आदमी मैं साथ लाया हूं," वह मां के लपेटे कपड़ों को फिर से फैलाता हुआ बोला। "यह इसीलिए आया है कि तू चली जाएगी, तो तेरे हाथ की दाल फिर इसे कहां मिलेगी ?"

बचपन की गीली आंखों में हल्की मुसकराहट भर गई।

"इसे भी खिला दे," वह बोली, मैं अभी दो फुलके और बना देती हूं।"

"और बनाने की जरूरत नहीं। जो बने हैं, वही खा लेंगे।"

"पहले मैं खा लूं, फिर जो बचें वे इसे दे देना," कहकर शशि गरदन उठाकर हंस दिया। बिन्नी बिस्तर बांधता रहा। वह उन दोनों के लिए रोटी डालकर ले आई।

"तैयार !" बिन्नी ने हाथ झाड़े और शशि के साथ खाना खाने में जुट गया।

"मां, अपने लिए रोटी रख लेना और जितनी बचे वह सब हमें ला देना," शशि दाल सुड़कता हुआ बोला। वे दोनों खा चुके, तो बचन ने जल्दी से बरतन समेट दिए।

"अब मां, तू भी जल्दी से खा ले," बिन्नी ने कुल्ला करके हाथ पोंछते हुए कहा।

"मैंने खा ली है।"

"कब खा ली है ?" बिन्नी ने पास जाकर उसके कन्धे पकड़ लिए।

"तेरे आने से पहले।"

"झूठी !"

"सच, मैंने खा ली है।"

"आगे तो कभी इतनी जल्दी नहीं खाती।"

"आज खा ली है।" घर से जाना था न ! तुम दोनों तो भूखे नहीं रहे ?"

"एक-चौथाई भूखे रह गए।" शशि ने डकार लेकर तौलिये से मुंह पोंछा और उसे खूंटी पर टांगकर हंसने लगा।

स्टेशन पर उसे गाड़ी में बिठाकर वे दोनों प्लेटफार्म पर टहलते रहे। रात को भी उसने ठीक से नहीं खाया था, इसलिए भूख के मारे उसका सिर चकरा रहा था। वह जानती थी कि बिन्नी को पता है उसने कुछ नहीं खाया। इसीलिए उसके मना करने पर

भी वह आधा दर्जन केले लेकर रख गया था। वह एक बार कह चुकी थी कि उसे भूख नही है, इसलिए केले वैसे ही रखे थे। बिन्नी हठ से कहता, तो वह खा लेती। मगर बिन्नी और शशि टहलते हुए दूर चले गए थे। शायद अब भी उनमें बहस चल रही थी। उसकी समझ में नही आता था कि ये लोग इतनी बहस क्यो करते हैं। हर वक्त बहस, बहस, बहस! बहस का कोई अन्त भी होता है! जैसे सारी दुनिया के झगड़े इन्ही को निपटाने हों। फटे हाल रहेंगे, सेहत का ज़रा ध्यान नही रखेंगे, और बातें, जैसे दुनिया की दौलत के यही मालिक हों, और उसे बांटने की समस्या इन्ही के सिर पर आ पड़ी हो।

वे दोनों प्लेटफार्म के उस सिरे तक होकर वापस आ रहे थे। वह उनके चेहरे देख रही थी। माथे पर सलवटें डाले वे हाथ हिला-हिलाकर बातें कर रहे थे। फिर भी वे बच्चे-से दीखते थे। उस समय शायद वे यह भी भूल गए थे कि वे उसे गाड़ी पर छोड़ने आए हैं। सहसा गार्ड की सीटी सुनकर वे उसके डब्बे के पास आ गए। मगर वहां आकर भी उनकी बहस चलती रही—करघे का काम रुक जाएगा तो कितने आदमी बेकार हो जाएंगे। इसलिए अच्छा यही है कि मालिकों से बात चलती रहे और कामगर काम जारी रखें। बचन सोचने लगी कि ये लोग कभी अपने काम के बारे में बात क्यों नही करते? अपनी बेकारी की चिन्ता इन्हें क्यों नही सताती?

गाड़ी चलने लगी, तो बिन्नी को जैसे उसके पास होने का होश हुआ और उसका हाथ पकड़कर उसने कहा, "अच्छा मां…।"

बचन के होंठों पर रूखी-सी मुसकराहट आ गई। उसने बारी-बारी से उन दोनों के सिर पर हाथ फेरा।

"तू कब लौटकर आएगी?"

"जब भी तू बुलाएगा।"

गाड़ी ने रफ्तार पकड़ ली। वह देर तक खिड़की से सिर निकालकर उन्हें देखती रही। दोनों हाथ में हाथ डाल गेट की तरफ जा रहे थे। उनकी बहस शायद अब भी चल रही थी।

बचन को घर आए पन्द्रह दिन हो गए थे।

"बिन्नी की चिट्ठी नही आई?" उसने लाली के कमरे के बाहर रुककर पूछा। लाली से सवाल पूछने में उसका स्वर थोड़ा दब जाता था। वह बेटा बड़ा होते-होते इतना बड़ा हो गया था कि वह अपने को उससे छोटी महसूस करने लगी थी।

"आ जा, मां," लाली ने कागजों से आंखें उठाकर कहा, "चिट्ठी उसकी आज भी नही आई। न जाने इस लड़के को क्या हो गया है!"

"तू काम कर, मैं जा रही हूं," वह बोली, "सिर्फ चिट्ठी का ही पूछने आई थी।"

वह बरामदे से होकर अपने कमरे में आ गई। जानती थी कि लाली का समय कीमती है। वह आधी-आधी रात तक बैठकर दूसरे दिन के केस तैयार करता है। मुवक्किलों की वजह से उसका खाने-पीने का भी समय निश्चित नही रहता। इधर छः महीने में उसकी व्यस्तता पहले से कहीं बढ़ गई थी। नये घर में आ जाने से जगह का तो आराम हो गया था, मगर कचहरी पहले से भी दूर हो गई थी। लाली की व्यस्तता के कारण कई बार वह सारा-सारा दिन उससे बात नही कर पाती थी। रात को वह बैठक से उठकर आता, तो सीधा अपने सोने के कमरे में चला जाता। दिन-भर की थकान के बाद वह उसके आराम में खलल नही डालना चाहती थी। सवेरे वह कुसुम से पूछ लेती कि रात को उसकी तबीयत कैसी रही है। कुसुम संक्षेप में उसे बता देती।

"सोने से पहले उसके सिर मे बादाम रोगन डाल दिया कर," वह कुसुम से कहती।

"मैं कई बार कहती हूं, पर ये डलवाते ही नहीं," कुसुम जैसे रटा-रटाया उत्तर दे देती।

"मुझे बुला लिया कर, मैं आकर डाल दिया करूंगी।"

"डालने को नौकर है, पर ये डलवाते ही नहीं।"

वह जानती थी कि सिर में बादाम रोगन डलवाने के लिए लाली को किस तरह राजी किया जा सकता है। मगर कुसुम अपने को लाली की ज्यादा अन्तरंग समझती थी, और उसके सुझावों से सहमति प्रकट करती हुई भी करती वही थी जो उसके अपने मन में होता था। कुसुम जिस शिष्टता और कोमलता से बात करती थी, उससे बचन को लगता था कि वह उस घर में केवल मेहमान है। दिन-भर उसके करने के लिए वहां कोई काम नहीं होता था। खाना बनाने के लिए एक नौकर था, ऊपर का काम करने के लिए दूसरा। उनके काम की देख-भाल के लिए कुसुम थी। बचन जब भी कोई काम करने के लिए कहती, तो कुसुम झट उसे मना कर देती—नौकर के रहते अपने हाथ से काम करने की क्या ज़रूरत है? यही बात लाली भी कह देता था—मां, तू काम करेगी, तो घर में दो-दो नौकर किस लिए हैं?

बचन सोचती कि काम करने के लिए नौकर हैं, और देख-भाल के लिए कुसुम है, फिर घर में उसका होना किसलिए है? सवेरे पांच बजे से रात के दस बजे तक वह क्या करे? पन्द्रह दिन पहले जब वह आई ही थी, तो बच्चे उसे घेरे रहते थे। उन्हें दादी मां से हज़ारों बातें कहनी और शिकायतें करनी थीं। मगर चार दिन मे ही उनके लिए उसकी नवीनता समाप्त हो गई थी। उनकी अपनी छोटी-छोटी व्यस्तताएं थीं, जिनमें उनका समय बंटा हुआ था। अब भी कभी-कभी कुमुद ज़रूर उसके पास आ जाती थी, और उसके कमरे मे एक तरफ खामोश खेलती रहती थी। उसे शायद दादी मां इसलिए अच्छी लगती थी कि उसकी मां दोनो भाइयों को ज्यादा प्यार करती थी···।

बचन कमरे में आकर चारपाई पर लेट गई। मन ताने-बाने बुनने लगा। बिन्नी ने अभी तक चिट्ठी क्यों नहीं लिखी? वहां अंधेरे घर में इस वक्त वह अकेला सोया होगा। रोटी का जाने उसने क्या प्रबन्ध किया है? उसने चलते वक्त उससे पूछा भी नहीं कि वह पीछे कैसे रहेगा, कहां से रोटी खाएगा? उसके पास रहते वह तन-बदन की होश भूला रहता था, अब जाने उसकी क्या हालत होगी? चिट्ठी लिख देता, तो कुछ तो तसल्ली हो जाती। मगर उसे चिट्ठी लिखने की याद भी आएगी?

कमरे की खिड़की खुली थी और दूर तक खुला आकाश दिखाई दे रहा था। खिड़की से दिखाई देते उन नक्षत्रों की स्थितियों से वह परिचित थी। उन्हीं नक्षत्रों को वह बम्बई की उस मनहूस बस्ती के ऊपर भी झिलमिलाते देखा करती थी। वहां से वे उसे तिरछे कोण से दिखाई देते थे, वहां वह अहाते में लेटकर उन्हें ठीक अपने ऊपर देखा करती थी। उसी तरह लेटी हुई वह बिन्नी की आहट की प्रतीक्षा करती थी। हुफ्-हुफ् की आवाज़ें पास आती, और दूर चली जाती थीं। फिर दूर से फटे गले की बेहूदा आवाज़ सुनाई देने लगती थी, "ओ डैंडाई है डिवजो फेंजल···।" उस आवाज़ से वह कितनी नफरत करती थी! यहां इस एकान्त बंगले में आस-पास से कोई आवाज़ नहीं आती थी। नौ-साढ़े नौ बजे बच्चों के सो जाने के बाद बिलकुल खामोशी छा जाती थी। सिर्फ रमीलाल के बरतन मलने या चौका धोने की ही आवाज़ सुनाई देती थी।

उसने करवट बदल ली कि किसी तरह नींद आ जाए। नींद न आना रोज़ की

बात हो गई थी। कहा दस बजे से ही उसकी आंखों में नीद भर जाती थी, और कहा अब वह ग्यारह, बारह और एक के घण्टे गिनती रहती थी। 'जाने क्यों ?' वह सोचती और करवटें बदलती रहती।

रात को वह देर से सोई, मगर सुबह जल्दी उठ गई।

उठने पर उसका दिल रात से ज्यादा अस्थिर और अशान्त था। इतना बडा पहाड़-सा दिन और उसके बाद फिर वैसी ही रात ! उस लम्बे खालीपन की कल्पना से एक बड़ा शून्य उसके अन्तर को घेरे था। आकाश मे चिड़ियों के झुण्ड उडे जा रहे थे। रसोईघर मे रगी स्टोव मे हवा भर रहा था। उसे साहब के लिए बेड-टी ले जानी थी। बम्बई मे सुबह जब वह कमरे मे बाल्टी रखकर नहा रही होती, तो बिन्नी बाहर से चाय की माग करने लगता था। इससे उसके भजन मे बाधा पड़ती थी और उसे बहुत उलझन होती थी। मगर वह चुपचाप उसके लिए चाय बना देती थी।...लेकिन आज उसे इस बात की उलझन हो रही थी कि उसका भजन मे मन क्यो नही लगता। अब जब कि भजन के लिए पूरी सुविधा, पूरा समय, उसके पास था, तो आसन पर बैठने से ही वह क्यो जी चुराती थी ?

कुछ देर बरामदे मे खड़ी होकर वह सूर्योदय के सुनहले रंग को देखती रही। क्षितिज के एक कोने से दूसरे कोने तक झिलमिलाती नयी धूप धीरे-धीरे निखार पर आ रही थी। लगता था जैसे मिट्टी मे बन्द उजाला फूटकर बाहर आने के लिए संघर्ष कर रहा हो। धूप की बढ़ती झलक से हर क्षण ऐसा ही आभास होता था। उसने बरामदे से उतरकर पूजा के लिए कुछ गेंदे के फूल चुन लिए और रसोईघर में चली गई।

रगी स्टोव से केतली उतारकर चायदानी मे पानी डाल रहा था। उसने अपने आंचल के फूल आले मे डाल दिए। रंगी ट्रे उठाकर चलने लगा, तो उसने ट्रे उसके हाथ से ले ली।

"रहने दे, मैं ले जाती हू।" और वह ट्रे लिए हुए लाली के कमरे की तरफ चल दी।

"मा जी, आप रहने दीजिए, साहब मुझ पर नाराज होंगे," रंगी ने पीछे से संकोच के साथ कहा।

"इसमे उसके नाराज होने की क्या बात है ? मैं तेरे कहने से थोड़े ही ले जा रही हूं ?" और वह थोडा खासकर लाली के कमरे में चली गई।

लाली कम्बल ओढकर विस्तर मे बैठा था। कुसुम अभी सो रही थी। लाली के हाथ में कुछ कागज थे जिन्हें वह ध्यान से पढ़ रहा था। उसने यह नही देखा कि चाय लेकर मा आई है। बचन ने ट्रे मेज पर रख प्याली में चाय बनाई और उसके पास ले गई। लाली ने जब चाय के लिए हाथ बढाया, तो उसने आश्चर्य से देखा कि प्याली लिए मां खडी है।

"मां, तू ?" उसने आश्चर्य के साथ कहा।

बचन ने प्याली उसके हाथ में दे दी। उसने पहली बार ठीक से देखा कि लाली के बाल कनपटियो के पास से कितने सफेद हो गए हैं। चश्मा उतार देने से उसकी आखो के नीचे गहरे गड्ढे नजर आ रहे थे। लाली ने कागज रखकर चश्मा लगा लिया।

"रंगी और नारायण क्या कर रहे हैं ?" उसने पूछा।

"नारायण दूध लाने गया है," वह बोली, "रंगी रसोईघर मे है।"

"तो उससे नही आया जाता था ? तू सुबह-सुबह उठकर चाय लाए, वाह ! इससे अच्छा है मैं आप ही बनाकर पी लू।"

"तू ज़रूर बनाकर पी लेगा—जिसे यह नहीं पता कि दूध कौन-सा है और चीनी कौन-सी है !" वह थोड़ा हंस दी। तभी कुसुम करवट बदलकर उठ बैठी।

"मा जी, आप···" उसने भी आंखें मलते हुए उसी आश्चर्य के साथ कहा। फिर झट-से कम्बल उतारकर वह बिस्तर से निकल आई।

"आप रहने दीजिए, मैं बनाती हूं।"

कुसुम दूसरी प्याली में चाय बनाने लगी। बनाकर प्याली उसने बचन की तरफ बढ़ा दी।

"मैं अभी नहाई नहीं। अभी से चाय पी लू ?"

"पी भी ले मां," लाली बोला, "कभी तो अपना धरम-करम छोड़ दिया कर।"

"नहीं, मैं ऐसे नही पीती। तुम लोग पियो।"

कुसुम प्याली लेकर अपने बिस्तर पर चली गई। बचन लाली के पैताने बैठ गई। लाली और कुसुम खामोश चाय पीते रहे।

कमरे में हर चीज़ व्यवस्थित थी। अंगीठी पर नीले रंग का कपड़ा बिछा था जिस पर कुसुम ने सफेद डोरे से कढ़ाई की थी। वहीं एक तरफ अखरोट की लकडी का बना गौतम बुद्ध का बस्ट रखा था, और दूसरी तरफ हाथी-दांत की हंसों की जोड़ी। सन्दूकों पर गद्दे बिछाकर उन्हें लाल कपड़े से ढक दिया गया था। कोने में कुसुम की सिलाई की मशीन पड़ी थी, और वहा पास ही लाली की अधसिली कमीज़ के टुकड़े बंधे रखे थे। मेज पर छोटे-से शेल्फ में लाली की कुछ किताबें पड़ी थी और वहा पास ही एक टेबल लैम्प रखा था। दो कमरों के बीच के पर्दे पर भी कुसुम ने अपने हाथ से कढाई कर रखी थी। उधर से करवटें बदलने की आवाज़ें आ रही थी। बच्चो की भी नीद खुल गई थी।

लाली ने चाय पीकर प्याली मेज़ पर रख दी। कुसुम एक खास नज़र से उसकी तरफ देख रही थी। बचन वहां से उठ खड़ी हुई।

"बस चल दी, मा ?" कहते-कहते लाली ने कागज़ उठा लिए।

"हां, तू अपना काम कर। मैं जाकर नहा-धो लूं।"

"कोई खास बात तो नही थी ?"

"नहीं, बात कुछ नही थी। नौकर चाय ला रहा था, मैंने कहा, मैं ले जाती हूं।"

लाली की आंखें कागज़ों पर झुक गईं। कुसुम चाय के हल्के घूंट भर रही थी। बचन चलने के लिए तैयार होकर भी खडी रही।

"एक बात सोचती थी," वह कहने लगी।

लाली ने कागज फिर रख दिए।

"हां, हां, बता न।"

"इतने दिन हो गए, बिन्नी की चिट्ठी नही आई···।"

"मैं अब उससे कोई गिला नहीं करता," लाली कुछ चिढ़े हुए स्वर में बोला, "गफलत की भी एक हद होती है। इस लडके का घरवालो से जैसे कोई रिश्ता ही नहीं है।"

बचन चुप रही।

"यहां रहकर बी० ए० कर लेता तो कुछ बन-बना जाता। मगर हर बात में चलना तो उसे अपनी ही मर्ज़ी से है। अब साहब ज़िन्दगी-भर यहां-वहां रहेंगे और आवारागर्दी किया करेंगे।"

बचन की आंखें भर आईं। उसने कोशिश की कि आंसू आंखों मे ही सूख जाएं,

पर यह नहीं हुआ तो उसने पल्ले से आंखें पोंछ लीं।

"यह लड़का न जाने कब अपना होश रखना सीखेगा ?···अपने शरीर की भी तो फिक्र नहीं करता। वहां रहकर मैं ही जो थोड़ा-बहुत देख लेती थी, सो देख लेती थी। कभी-कभी सोचती हूं कि वहां उसके पास ही रहूं, तो ठीक है।" और वह निर्णय सुनने के [illegible] लाली गम्भीर हो गया। बोला कुछ नहीं। [illegible] ा चलता रहेगा कि क्या करता है [illegible] भी आ गई।

"मां जी का यहां दिल नहीं लगता," कुसुम ने प्याली रखते हुए कहा। पल-भर लाली की आंखें उससे मिली रहीं।

"अभी तो मां, तू आई ही है," वह बोला, "पन्द्रह दिन बाद दिवाली है···।"

"मेरा बच्चों को छोड़कर जाने को मन करता है ? मैं तो वैसे ही बात कर रही थी," वह फिर से चलने के लिए तैयार होकर बोली, "पता नहीं रोटी भी ठीक से खाता है या नहीं।"

कुसुम उठकर रमी को आवाज़ देती हुई बाहर चली गई।

"तू जाना ही चाहती है तो बात दूसरी है।" लाली के चेहरे पर कुछ उकताहट-सी आ गई।

"नहीं, जाने की बात नहीं है, मैं तो वैसे ही कह रही थी···।"

वह बाहर की तरफ़ देखने लगी कि फिर से आंसू न टपकने लगें।

"जाने को मन हो रहा है, चली जा। नहीं, खामखाह यहां चिन्ता से परेशान रहेगी।"

बचन कुछ पल खामोश रही। लाली अपनी उंगलियां मसलता रहा।

"किस गाड़ी से चली जाऊं ?"

"रात की गाड़ी ठीक रहती है। उसमें भीड़ कम होती है।"

"तेरी तबीयत की मुझे फिक्र रहेगी···।"

"मेरी तबीयत अब ठीक ही है।"

"तू चिट्ठी लिखता रहेगा न ?"

"हां। मैं नहीं लिख सकूंगा, तो कुसुम लिख देगी।"

"अच्छा···!"

रात को गाड़ी में उसे अच्छी जगह मिल गई। जनाने डिब्बे में उसके अलावा दो ही और सवारियां थीं। कुसुम नारायण को साथ लेकर उसे छोड़ने आई थी। लाली मुश्किलों की वजह से नहीं आ पाया था। गाड़ी के चलने तक कुसुम उसके पास बैठकर उससे बातें करती रही। कहती रही कि दादी के पीछे बच्चे उदास हो जाएंगे, तीन-चार दिन घर सूना-सूना लगेगा, और कि वह रास्ते के लिए खाना बनवाकर साथ ले जाती, तो अच्छा था। गाड़ी ने सीटी दी, तो कुसुम प्लेटफार्म पर उतर गई।

"जाते ही चिट्ठी लिखिएगा," उसने कहा।

"तुम लाली की तबीयत का पता देती रहना," बचन ने कहा। सहसा उसे लाली के सफ़ेद बालों का ध्यान हो आया।

"रात को उसे देर-देर तक मत पढ़ने देना, और उससे कहना कि दूसरे-तीसरे दिन सिर में बादाम रोगन ज़रूर डलवा लिया करे।"

कुसुम ने सिर हिला दिया। गाड़ी चलने लगी, तो उसने हाथ जोड़ दिए।

प्लेटफार्म पीछे रह गया, तो बचन आकाश की तरफ देखने लगी। उसके मन में फिर एक शून्य-सा भरने लगा। आकाश में वही नक्षत्र चमक रहे थे। वचन स्थिर नजर से उन्हें देखती रही। वह जहां जा रही थी, उस घर का नक्शा धीरे-धीरे उसकी आखों के सामने उभरने लगा। नीची छतवाला टूटा-फूटा कमरा, मादा सूअर और उसके बच्चों की हुंफ-हुंफ और कुए की तरफ से आती मोटी, भद्दी, फटी-सी आवाज़—ओ डैडाई हैं है ड्विलो-फॅजल'''अधेरा, एकान्त, बिन्नी, शशि और उसके दोस्त, बहसें और दाल-रोटी के लिए उन लोगो की छीना-झपटी'''।

उसकी आखे भर आई। आकाश में चमकते नक्षत्र धुंधले पड़ गए।

आंखें पोछ लीं। नक्षत्र फिर चमकने लगे।

ग्लास-टैंक

मीठे पानी की मछलियां, कार्प परिवार की। देर-देर तक मैं उन्हें देखती रहती। शोभा पीछे से आकर चौंका देती। कहती, "गोल्डफिश, फिर गोल्डफिश को देख रही है।"

मैं जानती थी वह मेरे भूरे-सुनहरे बालों की वजह से ऐसा कहती है। मुसकराकर मैं टैंक के पास से हट जाती। जाहिर करना चाहती कि ऐसे ही चलते-चलते रुक गई थी। शोभा सोफे पर पास बिठा लेती और मेरे बालो को सहलाने लगती। कहती, "यह ग्लास-टैंक तेरे साथ भेज दें?"

मुझे उसकी उंगलियों का स्पर्श अच्छा लगता। उन्हें हाथ में लेकर देखती। पतली-पतली उंगलिया। नसें नीली लकीरो की तरह उभरी हुईं। मन होता उनके पोरों को होंठो से छू लूं, मगर अपने को रोक जाती। डर लगता वह फिर कह देगी, "यू सेंसुअस गर्ल। तू जिन्दगी मे निभा कैसे पाएगी?"

उसकी उंगलियो मे उंगलियां उलझाए बैठी रहती। सोफे के खुरदरे रेशों पर वे और भी मुलायम लगती। सेवार में तैरती नन्ही-नन्ही मछलिया। अपना हाथ जाल की तरह लगता। कांपती मछलिया जाल मे सिमट आतीं। कुछ देर कापने के बाद निर्जीव पड़ जाती या हल्के-से प्रयत्न से छूट जाती।

"तू खुश रहेगी न?" मैं ऐसे पूछती जैसे मेरे पूछने पर कुछ निर्भर करता हो। वह एक कोमल हंसी हंस देती—ऐसी जो वही हंस सकती है। हवा मे जर्रे बिखर जाते। मेरे अन्दर भी जर्रे बिखरने लगते। मैं उसका हाथ फिर हाथ मे कस लेती। चुपचाप उसकी आखों में देखती रहती। मगर कही सेवार नजर न आती। उसकी आखें भी हसती-सी लगती।

"खुशी तो मन की होती है," वह कहती, "अपने से ही पानी होती है। बाहर से कौन किसी को खुशी दे सकता है?"

बहुत स्वाभाविक ढंग से वह कहती मगर मुझे लगता झूठ बोल रही है। उसकी मुसकराती आंखें भीगी-सी लगती। एक ठण्डी सिहरन मेरी उगलियो मे उतर आती।

"वह आजकल कहां है?" मैं पूछ लेती।

"कौन?" वह फिर झूठ बोलती।

"वही सजीव।"

"क्या पता?" उसकी भौहों के नीचे एक हल्की-सी छाया कांप जाती, पर वह उसे आखों में न आने देती—"साल-भर पहले कलकत्ता मे था।"

"इधर उसकी चिट्ठी नहीं आई ?"

"नहीं।"

"तूने भी नहीं लिखी ?"

"ना।"

"क्यो ?"

वह हाथ छुड़ा लेती। दरवाज़े की तरफ देखती, जैसे कोई उधर से आ रहा हो। फिर अपनी कलाई में काच की चूड़ियो को ठीक करती। आखें मुंदने को होतीं, पर उन्हे प्रयत्न से खोल लेती। मुझे लगता उसके होंठो पर हल्की-हल्की सलवटें पड़ गई हैं। "वे सब बेवकूफी की बातें थीं," वह कहती।

मन होता उसके होंठो और आखो को अपने बहुत पास ले आऊं। उसकी ठोड़ी पर ठोडी रखकर पूछूं, "तुझे विश्वास है न तू खुश रहेगी ?" मगर मैं कुछ न कहकर चुपचाप उसे देखती रहती। वह मुसकराती और कोई धुन गुनगुनाने लगती। फिर एकाएक उठ जाती। "ममी मुझे ढूढ रही होगी," वह कहती, "अभी आती हूं। तू तब तक मछलियो से जी बहला। आटी से कहना पड़ेगा कि अब तेरे लिए भी···"

"मेरे लिए क्या ?"

"उन्हीं से कहूंगी, तू क्यो पूछती है ?"

वह चली जाती तो सजा हुआ ड्राइंग रूम बहुत अकेला हो जाता। मैं खिड़की के पास चली जाती। खिड़की के परदे, किवाड़ सब ठण्डे लगते। सांस अन्दर रुकती-सी प्रतीत होती। जल्दी-जल्दी सास लेती कि कहीं ब्राकाइटस का दौरा पड़ता था तो उसके मुंह मे बात नहीं निकलती थी।

लॉन मे किन्नी और पप्पू खेल रहे होते। एक-दूसरे के पीछे दौड़ते, किलकारिया भरते हुए। किन्नी को गिराकर पप्पू उसके पेट पर सवार हो जाता। किन्नी उठने के लिए छटपटाती, हाथ-पैर पटकती, पर वह उसके कन्धो को हाथों से दबाए उसे ज़मीन से चिपकाए रहता। जितनी ही वह कोशिश करती, उतना ही उसे दबा देता। किन्नी चीखने लगती, तो एकाएक छोड़कर भाग खड़ा होता। किन्नी रोती हुई उठती फ्रॉक से आसू पोंछती और पल-भर रुआंसी रहकर उसके पीछे दौड़ने लगती। पप्पू उसे धमकाता। वह मुह बिचका देती। फिर दोनो हंसने लगते। एक चिड़िया घास की तिगलिया तोड़-तोड़कर मुंह मे भरती जाती···

शोभा से कितनी-कितनी बातें पूछा करती थी। वे मछलियां जीती किस तरह से हैं ? खाने को उन्हे क्या दिया जाता है ? कैसे दिया जाता है ? उनकी ज़िन्दगी कितने दिनो की होती हैं ? अण्डे कहा देती हैं ? और एक बार पूछ लिया था, "यहां पांच-छ तरह की मछलिया एक एक ही तो हैं। इनकी इमोशनल लाइफ···?"

शोभा ने हसकर फिर वही बात कह दी थी, "अरे, मैं तो आटी से कहना भूल ही गई। अब ज़रूर कह दूंगी कि जल्दी से तेरे लिए···"

मुझे यह मजाक अच्छा न लगता। वह न जाने क्या सोचती थी कि मैं टैंक के पास देर-देर तक क्यो खड़ी रहती हूं ? मैं उसे क्या बताती कि मैं वहां क्या देखने जाती हूं। कैलिकोज के परों की लचक ? ब्लैक मूर के जबड़ो का खुलना और बन्द होना ? बिल्लौरी पानी मे तैरती सुनहरी मछलियां अच्छी लगती थीं, मगर हर बार देखकर मन मे उदासी भर जाती थी। सोचती, कैसे रह पाती हैं ये ? खुले पानी के लिए कभी इनका

जी नहीं तरसता ? कभी इन्हें महसूस नहीं होता कि ये सब एक-एक और अकेली है। एक दूसरी से कुछ कहना चाहती हैं ? या कभी शीशे से इसलिए टकराती है कि शीशा टूट जाए ? शीशे के और आपस के बन्धन से ये मुक्त हो जाएं ? शोभा कहती, "देख, यह ओरिण्डा है, यह फैन टेल हैं। साल मे एक बार, वसन्त में, ये अण्डे देती हैं। कुल दो साल इनकी ज़िन्दगी होती है। हवा इन्हें एरिएटर से दी जाती है। पानी का टेम्परेचर पचास से साठ डिग्री फैरनहाइट के बीच रखना होता है। खाने को इन्हें ड्राई फूड देते है, ब्रेन भी खा लेती है। नीचे समुद्री घास इसलिए बिछाई जाती है कि···"

मेरे मुंह से उसास निकल पड़ती। जाने वह उसका भी क्या मतलब लेती थी। मेरे कन्धे पर हाथ रखकर मुझे अपने साथ सटाए कुछ सोचती-सी खडी रहती। उस दिन उसने पूछ लिया, "सच-सच बता, तू किसी मे प्यार नही करती ?"

मुझे शैतानी सूझी, कहा, "करती हूं।"

उसने मेरे गाल अपने हाथ में ले लिए और मेरी आंखों मे देखते हुए पूछा "किससे ?"

मैं हस दी। कहा, "तुझसे, ममा से, मछलियो से।"

उसके नाखून गालों मे चुभने लगे। वह उसी तरह मुझे देखती रही। मैंने होंठ काटकर पूछा, "और तू ?"

उसने हाथ हटाए, तो लगा जैसे मेरे गाल छील दिए हों। उसकी भौहों के नीचे वही हल्की-सी छाया काप गई—पर उतनी हल्की नही। फुसफुसाने की तरह उसने कहा, "किसी से भी नही।"

जाने क्यों मेरा मन भर आया। चाहा उससे कहूं शादी न करे। पर कहा नही गया। सोचा, उसकी शादी से एक रोज पहले ऐसी बात कहना अच्छा नही होगा···

सुभाष को आना था, लौटने की जल्दी थी। बार-बार ममा को याद दिलाती थी कि वृहस्पति को ज़रूर चल देना है—ऐसा न हो कि वह आए और हम घर पर न हो। ममा सुनकर व्यस्त हो उठती। सुभाष को आने के लिए लिखा खुद उन्होंने ही था। बचपन से उसे जानती थी। जब उसके पिता की मृत्यु हुई, कुछ दिनों के लिए उसे अपने यहां ले आई थी। वह तब छोटा नहीं था। बी० ए० में पढता था। हम लोग बहुत छोटे रहे होंगे, हमे उसकी याद नही। ममा से ज़िक्र सुना करते थे। वह हफ्ता-भर रहा था। सत्रह साल का था तब। बातों से लगता था जैसे बहुत बड़ा हो। डैडी के साथ फ़िलॉसफी की बातें किया करता था। ममा उसकी बातें सुनते-सुनते काम करना भूल जाती थी। डैडी गुस्सा होते थे। ममा को दुःख होता कि वह उस छोटी-सी उम्र में ऐसी-ऐसी बातें क्यो करने लगा है। वह उतना पढ़ता नही था जितना सोचता था। बात करते हुए भी लगता था जैसे बोल न रहा हो, कुछ सोच रहा हो। अपने घुंघराले बालों मे उंगलियां उलझाए उनकी गांठें खोलता रहता था। खाने को कुछ भी दे दिया जाए, चुपचाप खा लेता था। पूछा जाए कि नमक कम-ज्यादा तो नही, तो चौंक उठता था। "···यह तो मैंने नोट ही नही किया, अब चखकर बताता हूं।" बताने के लिए सचमुच चीज़ चखकर देखता था। ममा जब भी उसका ज़िक्र करती, उनकी आखें भर आती। कहती कि इस लड़के को ज़िन्दगी में मौका मिलता तो जाने क्या बनता। जब पता चला कि वह ए० जी० आफिस मे क्लर्क लग गया है, तो ममा ने पूरा दिन खाना नही खाया गया था।

"ममी, सुभाष हम लोगों का क्या लगता है ?" हम थोड़ा बड़े हुए तो ममा से पूछा करते थे। ममा मुझे और बीरे को बांहों में लिए हुए कहती, "वह तुम लोगो का वह लगता है जो और कोई नही लगता।" मैं और बीरे बाद मे अनुमान लगाया करते, मगर

किसी नतीजे पर न पहुंच पाते। आखिर बीरे कहता, "वह हम लोगों का कुछ भी नही लगता।"

इस पर मेरी-उसकी लडाई हो जाती।

बाद के सालो मे कभी-कभी उसकी खबर आया करती थी। ममा बताती कि प्राइवेट एम० ए० करके अब लेक्चरर हो गया है। उसे बाहर जाने के लिए स्कॉलरशिप मिल रहा है, मगर उसने नही लिया। कहता है जिस सब्जेक्ट के लिए स्कॉलरशिप मिल रहा है, उसमे रुचि नही है। साल गुजरते जाते, ममा उसे तीन-तीन चिट्ठियां लिखती तो उसका एक जवाब आता। वह सबको पढकर सुनाती, दिन-भर उसकी बातें करती रहती, फिर चिट्ठी सभालकर रख देती। सुना रही होती, तो उत्सुकता सिर्फ मुझी को होती। बीरे मज़ाक करता। कहता, उस नाम का कोई आदमी है ही नही, ममा खुद चिट्ठी लिखकर अपने नाम डाल देती हैं। डैडी सुनते हुए भी न सुनते, अखबार या किताब मे आंखें गडाए रहते। कभी-कभी उनकी भौहें तन जाती और अपनी उकताहट छिपाने के लिए वह उठ जाते। मैं ममा से पूछ लेती, "ममी, ये चिट्ठी तो लिख देते हैं, हमारे यहा कभी आते क्यो नही ?"

"कोई हो तो आए !" बीरे कहता।

ममा बिगड उठती। उन्हे लगता बीरे अपशकुन की बात कह रहा है। बीरे हंसता हुआ लॉजिक झाडने लगता है। "ममी, किसी चीज के होने का सबूत है..."

"वह चीज नही, आदमी है।" लगता, ममा उसके मुंह पर चपत मार देंगी। मैं बांह पकड़कर बीरे को एक दूसरे कमरे में ले जाती। कहती, "बीरे, तू इतना बड़ा होकर ममी को तंग क्यों करता है ?"

बीरे मुसकराता रहता, जैसे डांट या प्यार का उसपर कोई असर ही न होता हो। कहता, "उन्हे चिढाने मे मुझे मजा आता है।"

"और वह जो रोती हैं...।"

"इसीलिए तो चिढाता हूं कि रोने की जगह हसने लगें।"

दो साल हुए ममा सुभाष के ब्याह की खबर लाई थी। ट्यूमर के इलाज के लिए दिल्ली गई थी तो अचानक उससे भेंट हो गई थी। छुट्टी मे वह अपनी पत्नी के साथ वहां आया हुआ था। ममा ने उसकी पत्नी को दूर से देखा था। वह दूकान के अन्दर शॉपिंग कर रही थी। सुभाष ने उन्हे मिलाने का उत्साह नहीं दिखाया, व्यस्तता दिखाते हुए झट-से विदा ले ली। कहा, पत्र लिखेगा। ममा बहुत बुरा मन लेकर आईं। बोली, सुभाष अब वह सुभाष नही रहा, बिलकुल और हो गया है। शरीर पहले से भर गया है ज़रूर, मगर आंखों के नीचे स्याही उतर आई है। बातचीत का लहजा भी बदल गया है। खोया-खोया उसी तरह लगता है, मगर वह खुलापन नही है जो पहले था। कही अपने अन्दर रुका हुआ, बंधा हुआ-सा लगता है। ममा के पूछने पर कि उसने ब्याह की खबर क्यों नही दी, वह बात को टाल गया। एक ही छोटा सा उत्तर सब बातों का उसने दिया—पत्र लिखेगा।

ममा कई दिन उस बात को नही भूल पाईं। ट्यूमर से ज्यादा वह चीज़ उन्हे सालती रही। सुभाष—वह सुभाष जिसे वह घर लाई थी, जिसे वह पत्र लिखा करती थी, जिससे वह बातें किया करती थी, वह तो ऐसा नही था ··ऐसा उसे होना नहीं चाहिए था···तेरह साल हो गए थे उसे देखे हुए, मिले हुए, फिर भी···

"पत्नी सुन्दर मिल गई होगी," मैंने ममा से कहा, "तभी न आदमी सब नाते-रिश्ते भूल जाता है।"

ममा पल-भर आवाक्-सी मेरी तरफ देखती रही। जैसे अचानक उन्हें लगा कि वड़ी हो गई हूं; सयानी बात कर सकती हूं। उन्होंने मेरे बालों को सहला दिया और हा, "नाता-रिश्ता नही है, फिर भी मैं सोचती थी कि ··"

"पत्नी उसकी सुन्दर है न ?" मैंने फिर पूछ लिया।

"ठीक से देखा नही," ममा अन्तर्मुख-सी बोली, "दूर से लगा था सुन्दर है ··"

"तभी···" शब्द पर अपनी अठारह साल की परिपक्वता का इतना बोझ मैंने ाद दिया कि ममा उस मनःस्थिति में भी मुस्करा उठी।

दो साल उसका पत्र नही आया। ममा ने भी उसे नही लिखा। उस बार मिलने के बाद उनका मन खिंच-सा गया था। बातें कभी कर लेती, मगर जिद के साथ कहती कि पत्र नही लिखेंगी। बीरे मज़ाक में कह देता, सुभाष की चिटठी आई है। ममा जानते हुए भी अविश्वास न कर पाती। पूछ लेती, "सचमुच आई है ?" मैं उलझती कि वह क्यों नही समझती कि बीरे झूठ बोलता है। ममा छिली-सी ही रहती। अकेले में मुझसे कहती, "जाने उसे क्या हो गया है। यही मनाती हू खुश हो, खुश रहे। उस दिन ठीक से बात कर लेता, तो इतनी चिन्ता न होती···"

मैं सिर हिलाती और तीलिया गिनती रहती। उन दिनो आदत-सी हो गई थी। जब भी ममा के पास बैठती, माचिस खोल लेती और तीलियां गिनने लगती।

उस दिन कोई बाहर से आए थे। ममा और डैडी को तब से जानते थे, जब वे स्यालकोट में थे। एक ही गली मे शायद सब लोग साथ रहते थे। यहा अपनी एजेन्सी देखने आए थे। डैडी को पता चला तो घर खाने पर बुला लाए। कुछ काम भी था शायद उनसे। ममा इससे खुश नही थी। स्यालकोट मे शायद वह उतने बड़े आदमी नही थे। ममा उन दिनों की नज़र से ही उन्हे देखती थी।

वह आए और काफी देर बैठे रहे। बहुत दिनो बाद डैडी ने उस दिन ह्विस्की पी। खूब घुल-मिलकर बातें करते रहे। पहले कमरे मे दोनो अकेले थे, फिर उन्होने ममा को भी बुला लिया। ममा पत्थर की मूर्ति-सी बीच मे जा बैठी। पानी या पापड देने के लिए मैं बीच-बीच में अन्दर जाती थी। मुझे देखकर उन्होने कहा, "यह बिलकुल वैसी नहीं लगती जैसी उन दिनों कुन्तल लगा करती थी? इतने साल न बीत गए होते, और मैं बाहर कही इसे देखता, तो यही सोचता कि···"

मुझे अच्छा लगा। ममा उन दिनों की अपनी तसवीरों में बहुत सुन्दर लगती थी। मैं ममा से कहा भी करती थी। मैं भी उन-जैसी लगती हूं। यह मुझमे पहले किसी ने नही कहा था।

एक बार अन्दर गई, तो वह किन्ही डॉक्टर शम्भुनाथ का जिक्र कर रहे थे। कह रहे थे, 'पार्टीशन मे डॉक्टर शम्भुनाथ का सारा खानदान तबाह हो गया—एक लडके को छोड़कर। जिस दिन एक मुसलमान से केस देखकर लौटते हुए डॉक्टर शम्भुनाथ को छुरा घोंपकर मारा···'

ममा किन्नी को सुलाने के बहाने उठ आई। किन्नी पहले से सो गई थी। मगर ममा लौटकर नही गई। गुमसुम-सी चारपाई की पायंती पर बैठी रही। मैंने पास जाकर कहा, "ममा !" तो ऐसे चौंक गई जैसे अचानक कील पर पैर रखा गया हो।

खाने के वक्त फिर वही जिक्र उठ आया। वह कह रहे थे, "शम्भुनाथ का लड़का भी खास तरक्की नही कर सका। बीवी के मरने के बाद शम्भुनाथ ने किस तरह उसे पाला था ! कैसा लाल और गलगोदना बच्चा था। उधर उसका भी एक एक्सीडेंट हो गया है···"

"सुभाष का एक्सीडेंट हुआ है ?" ममा, जो बात को अनसुनी कर रही थी, सहसा बोल उठी। डैडी ने खाली डूगा मुझे दे दिया कि और मीट ले आऊ। उनके चेहरे से मुझे लगा जैसे यह बात पूछकर ममा ने कोई अपराध किया हो।

मीट लेकर गई, तो ममा रुआसी हो रही थी। ये सज्जन बता रहे थे, "···सुना है घर मे कुछ ऐसा ही सिलसिला चल रहा था। असलियत क्या है, क्या नही, यह कैसे कहा जा सकता है ? लोग कई तरह की बातें करते है। पर उसके एक खास दोस्त ने मुझे बताया कि वह जान-बूझकर ही चलती मोटर के सामने···"

डैडी ने मुझे फिर किचन मे भेज दिया। इस बार मेज पर चावल और चपातियो की ज़रूरत थी। वापस पहुची, तो डैडी को कहते सुना, "आई आलवेज़ थॉट द बॉय हैड सुइसाइडल टेंडेंसीज़।"

सुभाष का नया पता ममा ने उन्ही से लिया था। डैडी कई दिन बिना वजह ममा पर बिगड़ते रहे। बिगडते पहले भी थे, मगर इतना नही। ममा चुपचाप उनकी डांट सुन लेती, उनसे बहस न करती। बहस करना उन्होने लगभग छोड दिया था। कड़ी-से-कड़ी बात दम साधकर सुन लेती और काम मे लग जाती। कोई काम डैडी की मर्ज़ी के खिलाफ करना होता, तो उसके लिए भी बहस न करती, चुपचाप कर डालती। डैडी से कुछ कहने या चाहने मे जैसे अपना-आप उन्हे छोटा लगता हो। घर के खर्च तक के लिए कहने मे। डैडी अपने-आप जो दे दे, दे दें। कम पड़ता, तो कुनमुना लेती, या मुझसे कह लेती। मगर मुझे भी डैडी से मागने न देती।

सुभाष को उन्होने पत्र खुद नही लिखा, मुझसे लिखाया। जो कुछ लिखना था, वह मुझे बता दिया, मेरे लिखे पत्र को सुधार भी दिया। आशय इतना ही था कि हम एक्सीडेंट की खबर पाकर चिन्तित है। चाहते हैं कि एक बार वह आकर मिल जाए। पत्र पूरा करके मैंने ममा से पूछा, "ममी, तुम खुद क्यो नही देखने चली जाती ?"

ममा ने सिर हिला दिया। सिर हिलाने से पहले एक बार डैडी के कमरे की तरफ देख लिया। डैडी किसी से बात कर रहे थे। "आना होगा, आ जाएगा।" ममा ने कुछ तटस्थता और अन्यमनस्कता के साथ कहा। शायद उन दिनों हाथ ज्यादा तग था, इसलिए। घर का खर्च वह बहुत जुगत से चला रही थी। उन्ही दिनो शोभा की शादी मे जाना था। उसके लिए भी पैसे की ज़रूरत थी।

जवाब मे चिट्ठी जल्दी ही आ गई। मेरे नाम थी। पहली चिट्ठी जो किसी अपरिचित ने मेरे नाम लिखी थी। लिखा था, फरवरी के अन्त मे आएगा। और मुझे—ब्राउन कैट, तू इतनी बड़ी हो गई कि अग्रेज़ी में चिट्ठी लिखने लगी ?

ब्राउन कैट वह तब भी मुझे कहा करता था, ममा बताती थी। बिल्ली की तरह ही गोद मे लिटाए सिर और पीठ पर हाथ फेरता रहता था। मैं खामोश लड़की थी। दम घुटने को आ जाता, तो भी विरोध नही करती थी। किन्नी बहुत ज़िद करती है, मैं नही करती थी। ज़रा सी बात हो, वह चीख-चीखकर सारा घर सिर पर उठा लेती है। आठ साल की होकर पाच साल के बच्चो की तरह रोती-रूठती है। ममा उसके लाड़ मानती भी हैं। कहती हैं यह उनकी अपनी ज़रूरत है। और कोई छोटा बच्चा नही है, एक वही है जिसमे वह जी बहला सकती है। मुझ अच्छा नही लगता। किन्नी डॉल की तरह प्यारी लगती है। फिर भी सोचती हू बडी होकर भी डॉल ही बनी रही तो ? कॉन्वेंट मे एक ऐसी लड़की हमारे साथ पढ़ती थी। नाम भी था डॉली। उसकी आदतो से सब को चिढ होती थी, मुझे खास तौर से। अच्छे-भले हाथ-पैर, तन्दुरस्त शरीर, और घूम रहे हैं डॉल बने। छि: !

पर ममा नही मानती । बहस करने लगती हैं। मन मे शायद सोचती हैं कि मैं किन्नी से ईर्ष्या करती हू—मैं भी और बीरे भी, क्योंकि बीरे किन्नी के गाल मसलकर उसे रुला देता है। उसकी कापियां, पेंसिलें छीनकर छिपा देता है। मैं उसे बिना नहाए नाश्ता नही देती। अपने मे कघी करने को कहती हू। ममा ताना दे देती हैं, तो बुरा लगता है। कई बार वह कह देती हैं, "तुम लोगों के वक्त हालात अच्छे थे। तुम्हे कॉन्वेंट में पढ़ा दिया, सब-कुछ कर दिया, इस बेचारी के लिए क्या कर पाती हू?" मन मे खीझ उठती है, पर चुप रह जाती हूं। कई बार बात जबान तक आकर लौट जाती है। मैं जो एम० ए० करना चाहती थी, वह? डरती हूं ममा रोने लगेंगी। दिन मे किसी-न-किसी से कोई बात हो जाती है जिससे वह रो देती है। मैं जान-बूझकर कारण बनना नही चाहती।

सुभाष की गाड़ी रात को देर से पहुंची। बीरे लाने के लिए स्टेशन पर गया था। हम लोगो ने उम्मीद लगभग छोड़ दी थी। दो बार उसने प्रोग्राम बदला था। हम लोग घर की सफाइयां कर रहे होते कि तार आ जाता: "चार दिन के लिए अम्बाला चला आया हूं, हफ्ते तक आऊंगा।" फिर, "काम से दिल्ली रुकना है, दूसरा तार दूंगा।" मुझे बहुत उलझन होती, गुस्सा भी आता। उससे ज्यादा अपने पर और ममा पर। शोभा की शादी के बाद हम लोग एक दिन भी वहां नही रुकी, पहली गाड़ी से चली आई। आकर कमरे ठीक करने मे बाहें दुखाती रही और आप हैं कि अम्बाला जा रहे हैं, दिल्ली रुक रहे हैं। उस दिन तार मिला, "पंजाब मेल से आ रहा हू।" तो मैंने ममा से कह दिया कि मैं घर ठीक नही करूंगी। मेरी तरफ से कोई आए, न आए। बीरे कह रहा था, "जरूरत भी नही है। अभी दूसरा तार आ जाएगा।" दूसरा तार तो नही आया, पर बीरे को एक बार स्टेशन जाकर लौटना जरूर पड़ा। पंजाब मेल उस दिन छ: घंटे लेट थी।

ममा को बुरा न लगे, इसलिए घर मैंने ठीक कर दिया, मगर खुद सोने चली गई। डैडी भी अपने कमरे मे जाकर सो गए थे। ममा किन्नी को सुलाकर मेरे पास आकर लेट गई। शायद मुझे जगाए रखने के लिए। मैं कुनमुनाकर कहती रही कि ममी, अब सो जाने दो, हालांकि नींद आई नही थी। ममा ने बहुत दिनो बाद बच्चो की तरह मुझे दुलारा। मेरे गाल चूमती रही। मुंह मे कितना कुछ बुदबुदाती रही—"मेरी रानी बच्ची ...अच्छी बच्ची...मेरी रानी मां...अच्छी मां...!" मुझे गुदगुदी-सी लगी और मैं उठकर बैठ गई। कहा, "क्या कह रही हो, ममी?" ममा ने जैसे सुना नही। आंखें मूंदकर पड़ी रही। केवल एक उसांस उनके मुंह से निकल पड़ी।

घोड़े की टापों और घुंघरुओं की आवाज से ही मुझे लग गया था कि वह तांगा सुभाष को लेकर आ रहा है। और कई तांगे सड़क से गुजरे थे, मगर उनकी आवाज से ऐसा नही लगा था। शायद इसलिए कि यह आवाज सुनाई तब दी जब सचमुच आंखों में नींद भर आई थी। आखें खोलकर सचेत हुई। तो बीरे दरवाजा खटखटा रहा था। वह साइकिल से आया था। ममा जल्दी से उठकर दरवाजा खोलने चली गई।

अजीब-सा लग रहा था मुझे। बैठक मे जाने से पहले कुछ देर पर्दे के पीछे रुकी रही। जैसे ऊंचे पुल से दरिया मे डाइव करना हो। कॉन्वेंट के दिनो में बहुत बोल्ड थी। किसी के भी सामने बेझिझक चली जाती थी। हरेक से बेझिझक बात कर लेती थी। संकोच मे दिखावट लगती थी। मगर उस समय न जाने क्यों मन में संकोच भर आया।

संकोच शायद अपनी कल्पना का था। उस नाम के एक आदमी को पहले से जान रखा था—सुनी-सुनाई बातों से। कितने ही क्षण उस आदमी के साथ जिए भी थे—ममा की डबडबाई आंखो मे देखते हुए। उसकी एक तसवीर मन में बनी थी जो डर था, अब

टूटने जा रही है। कोई भी आदमी क्या वैसा हो सकता है जैसा हम सोचकर उसे जानते हैं ? वैसा होता, तो पर्दा उठाने पर मैं एक लम्बे ऊंचे आदमी को सामने देखती, जिसके बाल बिखरे होते, दाढ़ी बढ़ी होती और जो मुझे देखते ही कहता, ''ब्राउन कैट, तू तो अब सचमुच लड़की नज़र आने लगी।''

मगर जिसे देखा वह मझले कद का गोरा आदमी था। इस तरह खड़ा था जैसे कठघरे में बयान देने आया हो। माथे पर घाव का गहरा निशान था। कमीज़ का कॉलर नीचे से उधड़ा था जिससे वह उसे हाथ से पकड़े था। डैडी से कह रहा था, ''मैंने नहीं सोचा था गाड़ी इतनी देर से पहुंचेगी। ऐसे गलत वक्त आकर आप सबकी नींद खराब की...''

मैंने हाथ जोड़े, तो परेशान-सी मुसकराहट के साथ उसने सिर हिला दिया। मुंह से कुछ नहीं कहा। पूछा भी नहीं, यह नीरू है ?

आधी रात बिना सोए निकल गई। डैडी भी ड्रेसिंग गाउन में सिकुड़कर बैठे रहे। मैंने दो बार कॉफी बनाकर दी। बीरे किचन में आकर मुझसे कहता, ''एक प्याली में नमक डाल दे। मीठी कॉफी ऐसे आदमी को अच्छी नहीं लगती।''

''तूने तो सारी ज़िन्दगी ऐसे आदमियों के साथ ही गुज़ारी है न !'' मैं उसे हटाती कि भाप उसकी या मेरी उंगलियों से न छू जाए।

''सारी न सही, तुझसे तो ज़्यादा गुज़ारी है।'' वह उंगली से मेरे केतली वाले हाथ पर गुदगुदी करने लगता, ''स्टेशन से अकेला साथ आया हूं।''

''हट जा, केतली गिर जाएगी,'' मैं उसे झिड़क देती। बीरे मुंह बनाकर उस कमरे में चला जाता। कहता, 'देखिए साहब, और बातें बाद में कीजिएगा, पहले इस लड़की को थोड़ी तमीज़ सिखाइए। बड़े भाई की यह इज़्ज़त करना नहीं जानती। इससे साल-भर बड़ा हूं, मगर मुझे ऐसे झिड़क देती है जैसे अभी सैकण्ड स्टैंडर्ड में पढ़ता हूं। कह रही थी कि आप कॉफी में चीनी की जगह नमक पीते हैं। मैंने मना किया तो मुझ पर बिगड़ने लगी।

बीरे न होता तो शायद वह बिलकुल भी न खुल पाता। कभी बीरे कालेज का कोई किस्सा सुनाने लगता, कभी बताने लगता कि उसने स्टेशन पर उसे कैसे पहचाना। ''ये गाड़ी से उतरकर इधर-उधर देख रहे हैं, और मैं बिलकुल इनके पास खड़ा मुसकरा रहा हूं। देख रहा हूं कि कब ये निराश होकर चलने को हों, तो इनसे बात करूं। ये और सब लोगों को तलाशती आंखों से देखते हैं, मुझे ही नहीं देखते जो इनके पास इनसे सटकर खड़ा हूं। मैं इनके उतरने से पहले से जानता हूं कि जिसे रिसीव करने आया हूं, वह यही परेशान-हाल आदमी है...''

ममा टोकती कि वह किसी और को भी बात करने दे। मगर बीरे अपनी बात किए जाता। हम सब हंसने लगते, मगर सुभाष गम्भीर बना रहता। थोड़ा मुसकरा देता, बस। कभी मुझे लगता कि वह बन रहा है। मगर उसकी आंखों में देखती, तो लगता कि वह कहीं गहरे में डूबा है जहां से उबर नहीं पा रहा। उसका हाथ बार-बार उधड़े कॉलर को ढंकने के लिए उठ जाता।

''कमीज़ सुबह नीरू को देना, कॉलर सी देगी,'' ममा ने कहा तो वह सकुचा गया। पहली बार आंख भरकर उसने मुझे देखा। फिर उसने उधड़े कॉलर को ढंकने की कोशिश नहीं की।

हैरान थी कि सबसे ज़्यादा बातें डैडी ने की। उन्होंने ही उससे सब-कुछ पूछा। एक्सीडेंट कैसे हुआ ? अस्पताल में कितने दिन रहना पड़ा ? ज़ख्म कहां-कहां हैं ? कोई

गहरी चोट तो नहीं। वे आजकल कहां हैं। मैरिड लाइफ कैसी चल रही है ? ममा को अच्छा लगा कि यह सब उन्हें नही पूछना पड़ा। उन्हें बल्कि डर था कि डैडी इस बार ज्यादा बात नही करेंगे। दो मिनट इधर-उधर की बातें करके उठ जाएंगे। फिर सुबह पूछ लेंगे, "नाश्ता कमरे मे करना चाहोगे, या बाहर मेज पर।"

उसे भी शायद डैडी से ही बात करना अच्छा लग रहा था। हम सबकी तरफ से एक तरह से उदासीन था। हममें से कोई बात करे, तभी उसकी तरफ देखता था। मैं देख रही थी कि ममा एकटक उसे ताक रही है, जैसे आखो से ही उसके माथे के जख्म को सहला देना चाहती हों। बीच में वह उठी और साथ के कमरे से अपना शाल ले आई। बोलीं, "ठण्ड है, ओढ लो। ओढकर बात करते रहो।"

उसने शाल भी बिना कुछ कहे ओढ लिया और गुड्डा-सा बना बैठा रहा। डैडी जो कुछ पूछते रहे, उसका जवाब देता रहा। ड्राइवर अच्छा था···शायद ब्रेक भी काफी अच्छी थी···ज्यादा चोट नही आई। मडगार्ड से टक्कर लगी, पहिया ऊपर नही आया··· दस दिन में जख्म भर गए। बायें हाथ की कुहनी ठीक से नहीं उठती···डॉक्टरों का कहना है उसमें पांच-छ: महीने लगेंगे। उसके बाद भी पूरी तरह शायद ही ठीक हो।

मुझे तब भी लग रहा था कि वह अन्दर ही कहीं डूबा है। उसके होंठ रह-रहकर किसी और ही विचार से कांप जाते है। मन हो रहा था, उससे वे सब बातें न पूछी जाएं, उसे चुपचाप सो जाने दिया जाए। उसका बिस्तर बिछा था, उसी पर वह बैठा था। सहसा मुझे लगा कि तकिए का गिलाफ ठीक नही है, बीच से सिला हुआ है। चढ़ाते वक्त ध्यान नहीं गया था। मैं चुपचाप तकिया उठाकर गिलाफ बदलने ले गई।

दूसरा धुला हुआ गिलाफ नही मिला। सारे खाने-ट्रंक छान डाले। एक कोरा गिलाफ था, कढ़ा हुआ; उन दिनों का, जब नई-नई कढाई सीखने लगी थी। आखिर वही चढाकर तकिया बाहर ले आई।

आकर देखा, तो उसका चेहरा बदला हुआ लगा। माथे पर शिकन थे और सिगरेट के छोटे-से टुकडे से वह जल्दी-जल्दी कश खींच रहा था।

ममा का चेहरा फक हो रहा था। डैडी बहुत गम्भीर होकर सुन रहे थे। वह एक-एक शब्द को जैसे चबा रहा था, "···नही तो···नही तो मेरे हाथों उसकी हत्या हो जाती···यह नहीं कि मैं समझता नही था···उसने मुझसे कह दिया होता, तो बात दूसरी थी···हर इन्सान को अपनी जिन्दगी चुनने का अधिकार है···मगर इस तरह···मुझे उससे ज्यादा अपने से नफरत हो रही थी···"

ममा ने गहरी नजर से मुझे देखा कि मैं वहा से चली जाऊं। मगर मैं अनबूझ बनी रही, जैसे इशारा समझा ही न हो। पैरों मे चुनचुनाहट महसूस हो रही थी। मन हो रहा था कि उन्हें दरी से खुजलाने लगूं। पुलोवर के नीचे बगलों में पसीना आ रहा था। सोचने लगी कि सुबह नहाई थी या नहीं। पर नहाई तो थी···

कमरे में खामोशी छा गई थी। वीरे ऐसे आखें झपक रहा था जैसे अचानक उन पर तेज रोशनी आ पड़ी हो। होंठ उसके खुले थे। डैडी ड्रेसिंग गाउन के अन्दर से अपनी बांह को सहला रहे थे। ममा काले शाल में ऐसे आगे को झुक गई थी जैसे कभी-कभी ट्यूमर के दर्द के मारे झुक जाया करती थीं।

बाहर भी खामोशी थी। खिड़की के सीखचों मे से आती हवा पर्दे में से झाककर लौट जाती थी।

तभी डैडी ने घड़ी की तरफ देखा और उठ खड़े हुए "अब सो जाना चाहिए," उन्होंने कहा, "तीन बज रहे हैं।"

सुबह जो चेहरा देखा, उसने मुझे और चौंका दिया। बढ़ी हुई दाढी, पहले से सांवला पड़ा हुआ रग···एक हाथ से अपने घुघराले बालों की गांठें सुलझाता हुआ वह अखबार पढ रहा था।

"आपके लिए चाय ले आऊ ?" पहली बार मैंने उससे सीधे कुछ पूछा।

"हा-हा," उसने कहा और अखबार से नज़र उठाकर मेरी तरफ देखा। मैं कई क्षण उसकी आखो का सामना किए रही। विश्वास नही था कि वह दूसरी बार इस तरह मेरी तरफ देखेगा।

"रात को हम लोगो ने खामखाह आपको जगाए रखा," मैंने कहा, "आज रात को ठीक से सोइएगा।"

उसके होठो पर ऐसी मुसकराहट आई जैसे उससे मज़ाक किया गया हो। "गाड़ी मे खूब गहरी नीद आती है न।" उसने कहा।

"आप आज चले जाएंगे ?"

उसने सिर हिलाया, "एक दिन के लिए भी मुश्किल से आ पाया हूं।"

"वहा ज़रूरी काम है ?"

"बहुत ज़रूरी नही, लेकिन काम है। पहली नौकरी छोड़ दी है, दूसरी के लिए कोशिश करनी है।"

"एक दिन बाद जाकर कोशिश नही की जा सकती ?" एकाएक मुझे लगा कि मैं यह सब क्यो कह रही हूं। डैडी सुनेंगे तो क्या सोचेंगे।

"परसो एक जगह इण्टरव्यू है," उसने कहा।

"वह तो परसो है न। कल तो नही···" और मैं बाहर चली आई, उसकी आखो मे और देखने का साहस नही हुआ।

वह बात भी उसने कही जो मैंने चाहा था वह कहे। दोपहर को खाने के बाद किन्नी को गोद मे लिए हुए उसने कहा, "उन दिनो नीरू इससे छोटी थी, नही ? बिलकुल ब्राउन कैट लगती थी। ऐसे खामोश रहती थी, जैसे मुह मे ज़बान ही न हो।"

"मैं भी तो खामोश रहती हू," किन्नी मचल उठी, "मैं कहा बोलती हूं ?"

उसने किन्नी को पेट के बल गोद मे लिटा लिया और उसकी पीठ थपथपाने लगा। मैंने सोचा था किन्नी इस पर शोर मचाएगी, हाथ-पैर पटकेगी। मगर वह बिलकुल गुमसुम होकर पड़ रही। मैं देखती रही कि कैसे उसके हाथ पीठ को थपथपाते हुए ऊपर जाते हैं, फिर नीचे आते हैं, कमर के पास हल्की-सी गुदगुदी करते हैं, और कूल्हे पर थपत लगाकर फिर सिर की तरफ लौट जाते हैं। हममे से कोई किन्नी से इस तरह प्यार करता, तो वह उसे नोचने को हो जाती। सुभाष के हाथ रुके तो उसने झुककर किन्नी के बालो को चूम लिया। कहा, "सचमुच तू बहुत खामोश लड़की है।" किन्नी उसी तरह पड़ी-पड़ी हसी। और भी कितनी देर वह उसकी पीठ सहलाता रहा। बीच-बीच मे उसकी आखें मुझसे मिल जाती। मुझे लगता जैसे वह दूर कही बियाबान मे देख रहा हो। मुझे अपना-आप भी अपने से दूर बियाबान मे खोया-सा लगता। यह भी लगता कि मैं आखों से कह रही हूं कि जिसे तुम सहला रहे हो, वह ब्राउन कैट नही है। ब्राउन कैट मैं हूं। मैं यहा से दूर अंधेरे मे खड़ी हूं। चाह रही हूं कि कोई आकर मुझे देख ले और गोद मे उठा ले।

डैडी दिन-भर घर मे रहे, काम पर नही गए। इस कमरे मे उस कमरे मे, उस कमरे मे इस कमरे मे जाते-आते रहे। बहुत दिन से उन्होने सिगार पीना छोड़ रखा था, उस दिन पुराने डिब्बे मे से सिगार निकालकर पीते रहे। दो-एक बार उन्होने उससे

बात चलाने की कोशिश भी की, "जहां तक अस्तित्व का प्रश्न है···" मगर बात आगे नही बढ़ी। उसने जैसे कुछ और सोचते हुए उनकी बात का समर्थन कर दिया। डैडी ने हरेक से एक-एक बार कहा, "आज सिगार पी रहा हूं तो अच्छा लग रहा है। मुझे इसका टेस्ट ही भूल गया था।" शाम को बीरे उसे घुमाने ले गया। ममा उस वक्त मन्दिर जा रही थीं। मैं भी उन लोगों के साथ बाहर निकली। रोज़ बीरे और मैं घूमने जाते हैं, सोचा आज भी साथ जाऊंगी। डैडी सिगार के धुएं मे घिरे बैठक में अकेले बैठे थे। मुझे बाहर निकलते देखकर बोले, "तू भी जा रही है, नीरू ?"

मेरी ज़बान अटक गई। किसी तरह कहा, "ममा के साथ मन्दिर जा रही हूं।" अहाते से बाहर आकर ममा के साथ ही मुड भी गई। रास्ते-भर सोचती रही कि क्यों नही कह सकी कि बीरे के साथ घूमने जा रही हूं ? कह देती, तो क्या डैडी जाने से मना कर देते ?

बीरे लौटकर आया तो बहुत उत्साहित था। कह रहा था, "मैं आपको पढ़ने के लिए भेजूंगा, आप पढ़कर लौटा दीजिएगा। बट इट इज़ एटायरली बिटवीन यू एण्ड मी।" दोनों बैठक मे थे। मेरे आते ही बीरे चुप कर गया, जैसे उसकी चोरी पकड़ी गई हो। फिर मुझसे बोला, "तेरे लिए, नीरू, आज एक बॉल पाइन्ट देखकर आया हूं। तू कितने दिनों से कह रही थी। कल जाऊंगा तो लेता आऊंगा। या तू मेरे साथ चलना।"

सोचा, यह मुझे रिश्वत दे रहा है · पर किस बात की ?

बीरे अपना माउथ आर्गन ले आया। एक के बाद एक धुन बजाने लगा। "दिस इज माई फ्रेंड्स फैवरिट···" एक धुन सुना चुकने के बाद उसने कहा। पर सुभाष उस वक्त मेरी तरफ देख रहा था।

"आप समझ रहे है न ?" बीरे को लगा, सुभाष ने उसका मतलब नही समझा; "वही फ्रेंड जिसका मैंने जिक्र किया था। माई ओनली फ्रेंड।"

मैं चाह रही थी कि कोई और भी उससे कहे कि वह एक दिन और रुक जाए। मगर किसी ने नही कहा, ममा ने भी नही। मन्दिर से आकर शायद डैडी से उनकी कुछ बात हो गई थी। मैं उस वक्त रात के लिए कतलिया बना रही थी। सब लोग कहते थे कि मैं कतलियां अच्छी बनाती हू। पर मुझे लग रहा था कि आज अच्छी नही बनेंगी। जल जाएंगी, या कच्ची रह जाएगी। तभी ममा डैडी के पास से उठकर आईं। नल के पास जाकर उन्होंने मुह धोया। एक घूंट पानी पिया और तौलियां ढूंढती चली गई।

खाना खिलाते हुए मैंने उससे पूछा, "कतलियां अच्छी बनी हैं ?"

वह चौंक गया उसी तरह जैसे ममा बताती थीं। आधी खाई कतली प्लेट से उठाता हुआ बोला, "अभी बताता हूं···"

खाना खाने के बाद वह सामान बांधने लगा। सूटकेस में चीजें भर रहा था, तो मैं पास चली गई। "मुझे बता दीजिए, मैं रख देती हूं," मैंने कहा।

"हां···अच्छा।" कहकर वह सूटकेस के पास से हट गया।

"कैसे रखना है, बता दीजिए ?"

"कैसे भी रख दो। एक बार कुछ निकालूगा, तो सब-कुछ फिर उलझ जाएगा।"

"मैंने सुबह कुछ बात कही थी···" मेरी आवाज़ सहसा बैठ गई।

"क्या बात ?"

"रुकने की बात···"

"हां, रुक तो जाता, मगर···"

बीरे नीबू उछालता हुआ आ गया। "आप कह रहे थे, जी घबरा रहा है," वह

बोला, "यह नींबू ले लीजिए। रास्ते में काम आएगा। एक कागज में नमक-मिर्च भी आपको दे देता हूं। इस लड़की के हाथ का खाना खाकर आदमी की तबीयत वैसे ही खराब हो जाती है!"

मैं चुपचाप चीजें सूटकेस में भरती रही। वह बीरे के साथ डैडी के कमरे में चला गया।

उसने चलने की बात कही, तो मुझे लगा जैसे कपड़े उतारकर किसी ने मुझे ठण्डे पानी में धकेल दिया हो। डैडी सिगार का टुकड़ा प्याली में बुझा रहे थे। वह डैडी के पास चारपाई पर बैठा था। ममा, बीरे और मैं सामने कुर्सियों पर थे। किन्नी कुछ देर रोकर डैडी की चारपाई पर ही सो गई थी। सोने से पहले चिल्ला रही थी, "हम फिर शोभा जिज्जी की शादी में जाएंगे। हमें वहां से जल्दी क्यों ले आई थीं? वहां हम पप्पू के साथ खेलते थे। यहां सब लोग बातें करते हैं, हम किसके साथ खेलें!"

सोई हुई किन्नी प्यारी लग रही थी। मैं सोचने लगी—जब मैं उतनी बड़ी थी, तब मैं कैसी लगती थी?

वह चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। उठते हुए उसने किन्नी के बालों को सहला दिया। फिर एक बार भरी-भरी नजर से मुझे देख लिया। मुझे लगा, मैं नहीं, मेरे अन्दर कोई और चीज है जो सिहर गई है।

तांगा खड़ा था। बीरे पहले से ले आया था। हम सब निकलकर अहाते में आ गए। बीरे ने साइकिल सभाल ली।

"इण्टरव्यू का पता देना," वह तांगे की पिछली सीट पर बैठ गया, तो ममा ने कहा।

उसने सिर हिलाया और हाथ जोड़ दिए।

मैं हाथ नहीं जोड़ सकी। चुपचाप उसे देखती रही। तांगा मोड़ पर पहुंचा, तो लगा कि उसने फिर एक बार उसी नजर से मुझे देखा है।

ममा आदत से मजबूर अपने आंसू पोंछ रही थीं। डैडी अन्दर चले गए थे। मैं कमरे में पहुंची, तो लगा जैसे अब तक घर के अन्दर थी—अब घर से बाहर चली आई हूं।

रात को ममा फिर मेरे पास आ लेटीं। मुझे उन्होंने बांहों में लपेट लिया। मैं सोच रही थी कि उसे गाड़ी में सोने की जगह मिली होगी या नहीं, और मिली होगी, तो वह सो गया होगा या नहीं? न जाने क्यों, मुझे लग रहा था कि उसे नींद कभी नहीं आती। शरीर नींद से पथरा जाता है, तब भी उसकी आंखें खुली रहती हैं। और अंधेरे की परतों में कुछ खोजती रहती हैं···

ममा मुझे प्यार कर रही थीं। पर उनकी आंखें भीगी थीं। "ममी, रो क्यों रही हो?" मैंने बड़ों की तरह पुचकारा, "तुम्हें खुश होना चाहिए कि एक्सीडेंट उतना खराब नहीं हुआ। दुनिया में एक औरत ऐसी निकल आई तो···"

पर ममा का रोना और बढ़ गया। मुझे भ्रम हुआ कि शायद रो मैं रही हूं और चुप ममा करा रही हैं। मैंने अपने और उनके शरीर को एक बार छूकर देख लिया।

"नीरू···" ममा कह रही थीं, "तू मेरी तरह मत होना···तेरी ममा···तेरी ममा···"

मैंने उन्हें हिलाया, लगा जैसे उन्हें फिट पड़ा हो। "ऐसे क्यों कह रही हो, ममा?" मैंने कहा, "तुम्हारे जैसे दुनिया में कितने लोग हैं! मैं अगर तुम्हारे-जैसी हो गई, तो···"

ममा ने मेरे मुंह पर हाथ रख दिया, "न, नीरू···" वह बोलीं, "और जैसी भी

होना···अपनी ममा-जैसी कभी न होना।"

मैं ममा के सिर पर थपकियां देने लगी। जब उनकी आंख लगी, उनका सिर मेरी बांह पर था। कम्बल तीन-चौथाई उन पर था, इसलिए मुझे ठण्ड लग रही थी। बांह भी सो गई थी। पर मैं बिना हिले-डुले उसी तरह पडी रही। पहली बार मुझे लगा कि अंधेरे की कुछ अपनी आवाजें भी होती हैं। गहरी रात की खामोशी बेजान खामोशी नही होती। अपनी सोई हुई बांह को मैं इस तरह देखती रही जैसे वह मेरे शरीर का हिस्सा न होकर एक अलग प्राणी हो। मन मे न जाने क्या-क्या सोचती रही। ममा की आख में एक आंसू अब भी अटका हुआ था। मैंने दुपट्टे से उसे पोछ दिया—बहुत हल्के से, जिससे ममा की आंख न खुल जाए और उनके सिर पर थपकियां देती रही।

छोटी-सी चीज़

यह नन्हे यशवीर के जीवन में एक ऐतिहासिक परिवर्तन था कि उसे अपने मैदानी शहर से छ: हज़ार फुट ऊंचे पहाड़ पर ले आया गया और घर के एक-तार जीवन से निकालकर राबर्ट्सन पब्लिक स्कूल के खुले अपरिचित वातावरण में छोड दिया गया।

स्कूल में देखने और सीखने की कई चीजें थी। पहली चीज़ जो उसने सीखी, वह थी हर काले गाउनवाले मास्टर को देखकर हाथ पीठ-पीछे करके कहना, 'गुड आफ्टरनून, सर!' जब शब्द उसने ठीक से ज़बान पर चढा लिए, तो उसे लगा कि उसने जो सीखा है गलत है क्योकि और लडके अब 'गुड आफ्टरनून' नही 'गुड ईवनिंग' कह रहे थे। उसने अपने को सुधारा और अब उन नये शब्दो को कहने का अभ्यास करने लगा।

शब्द उसने अच्छी तरह रट लिए। रात को हाउस-मास्टर मिस्टर वर्टन ने उसके पलग के पास आकर उसे थपथपाया, तो अपने होनहार होने का परिचय देने के लिए उसने उत्साह के साथ कहा, "गुड ईवनिंग, सर!" कमरे के और लड़के इसपर हंस दिए, तो उमे लगा कि शायद इस बार जो चीज उसने सीखी है, वह गलत है। उसे ठीक चीज़ भी आती है, यह बताने के लिए उसने अपने को सुधारकर फिर कहा, "गुड आफ्टरनून, सर!" मगर लड़के इस पर भी हस दिए, तो उसने शरमिन्दा होकर सिर-मुंह कम्बल मे ढाप लिया। मिस्टर वर्टन ने उसके मुंह से कम्बल हटाकर उसके गाल पर हल्की-सी चपत लगाई और दूसरे लड़को से अंग्रेजी में कुछ कहकर कमरे से चले गए।

सवेरे उठने पर यशवीर ने निश्चय किया कि बिना पूरी जानकारी हासिल किए वह कोई भी बात मुंह से नही निकालेगा। वहां के खान-पान को लेकर भी उसके मन मे कई तरह की शकाएं थी। खाने की मेज़ के पास खड़े होकर एक मास्टर के कहे कुछ शब्द सुनना, 'आमेन' कहना और फिर खाने बैठना—यह सब कुछ उसने कल भी देखा था और उसे बहुत अजीब लगा था। प्लेट के तीन तरफ कांटे, छुरियां और चम्मच रखने का रहस्य भी उसकी समझ मे नही आया था। यह भी नही कि चावल चम्मच से खाने की जगह सब लोग कांटे से क्यो खा रहे हैं। सुबह नाश्ते के वक्त भी उसने वे तीनों चीज़ें उसी तरह रखी देखी, तो इस नतीजे पर पहुंचा कि शायद ये इस बात का संकेत देने के लिए है कि प्लेट को उतनी ही सीमा मे रखना चाहिए। वरना दूध-दलिये के साथ उन चीज़ो का किसी भी तरह का सीधा सम्बन्ध उसकी समझ से बाहर था।

मगर थोड़ी देर में जब अण्डे-टोस्ट की प्लेट सामने आ गई तो यह समस्या सुलझ

गई। उसे बताया गया कि वह सब उसे भी हाथ से नहीं, छुरी-कांटे से खाना होगा। कल उसे किसी ने इसके लिए नहीं टोका था। उसने थोड़ी देर उन दोनों औज़ारों के साथ संघर्ष करने के बाद उन्हें वापस अपनी प्लेट के दायें रख दिया और कुछ देर चुपचाप अण्डों की फैली हुई ज़र्दी को देखता बैठा रहा। तभी एक बैरा आकर वह बिस्कुटों का डिब्बा उसके सामने रख गया जो उसके बीबी-बाऊजी जाते समय उसके लिए मिस्टर बर्टन को दे गए थे। डिब्बा खोलकर उसने दो बिस्कुट उसमें से निकाले, डब्बे के पतले कागज को ठीक किया और बिस्कुट प्लेट में रखकर आसपास देखा कि कहीं वे भी तो उसे छुरी-कांटे से नहीं खाने पड़ेंगे। तभी उसके साथ बैठे लड़के ने अपने जैम के डब्बे से चम्मच-भर जैम निकालकर उसके बिस्कुटों पर लगा दिया और कहा, "इसके साथ खाओ।"

यशवीर ने कुछ संशय और सन्देह के साथ लड़के की तरफ देखा। फिर अपने दो बिस्कुटों में से एक उठाकर उस लड़के की तरफ बढ़ा दिया और कहा, "तुम मेरा एक बिस्कुट ले लो।"

"मुझे नहीं चाहिए," लड़का उपेक्षा के साथ बोला और अपने टोस्ट पर जैम लगाकर खाता रहा। यशवीर को बुरा लगा कि अपना जैम तो उसने बिना पूछे उसे दे दिया और उसका बिस्कुट वह कहने पर भी नहीं ले रहा। उसने एक बिस्कुट उठाकर जबर्दस्ती उस लड़के की प्लेट में रख दिया।

"मुझे नहीं चाहिए," उस लड़के ने बिना उसकी तरफ देखे फिर सरसरी तौर पर कहा।

"तुमने मुझे अपना जैम क्यों दिया था?" यशवीर शिकायत-भरी चुनौती के स्वर में बोला और अपनी प्लेट उसने सरका ली जिससे वह लड़का बिस्कुट वापस उसकी प्लेट में न रख दे।

उस लड़के ने अब कुछ नहीं कहा। अपना टोस्ट खाकर वह जैम का डब्बा लिए हुए उठा और दूसरी टेबल के एक बड़े लड़के के पास जाकर थोड़ा जैम उसे दे आया। यशवीर के मन में ईर्ष्या भर आई। उसने अपना बिस्कुटों का डब्बा उठाया और उसी लड़के के पास जाकर बोला, "इसमें से एक बिस्कुट ले लो।"

"मुझे नहीं चाहिए," उस लड़के ने भी उसी उपेक्षा के साथ कहा।

"एक ले लो," यशवीर ने अनुरोध किया। बिना बिस्कुट दिए लौट जाने में उसकी हार थी।

उस लड़के ने डब्बे में हाथ डालने से पहले डब्बे का पतला कागज आधा फाड़ दिया। यशवीर ने किसी तरह अपने पर काबू पाकर उसकी यह हिमाकत सह ली। फिर हाथ डालकर उस लड़के ने पूरे डब्बे का हुलिया बिगाड़ दिया। जब उसका हाथ बाहर निकला, तो उसमें पांच-छः बिस्कुट थे। अपने बिस्कुटों के साथ यह ज़्यादती यशवीर से सही नहीं गई। उसने झट-से उस लड़के का हाथ पकड़ लिया और रुआंसे स्वर में खीझकर कहा, "इतने नहीं, एक।"

"एक?" उस लड़के ने आंखें चढ़ाकर यशवीर को देखा।

यशवीर ने सिर हिलाया और वह आती नाक को अन्दर सुड़क लिया।

उस लड़के ने अपने हाथ को ज़रा-सा भींचा और सारे बिस्कुट चूरा करके वापस डब्बे में डाल दिए। साथ कहा, "जाओ।"

यशवीर किसी तरह आंसू रोकता हुआ अपनी जगह पर लौट आया।

नाश्ते के बाद भी उसे कितनी ही देर रुलाई आती रही और वह कोशिश से अपने ... को रोकता रहा। जिस समय इन्सपेक्शन की घण्टी बजी, वह अभी तैयार नहीं

हुआ था। और कपड़े जैसे उसे बताया गया था, वैसे उसने पहन लिए थे, पर टाई उससे नही बंध रही थी। गाठ तो किसी तरह उसने कस ली थी, पर नीचे का हिस्सा ऊपर के हिस्से से काफी बड़ा निकल आया था टाई को ठीक करते-करते अचानक उसका ध्यान अपने पैरों की तरफ चला गया। मोजा उसने अभी एक ही पहना था और जूते के अभी दोनो पैर पहनने रहते थे। टाई को छोडकर वह दूसरा मोज़ा पहनने के लिए झुका ही था कि मिस्टर बर्टन इन्स्पेक्शन करते हुए उसके पास आ पहुंचे। उन्हे देखते ही वह अपने प्रीफ़ेक्ट की हिदायत के मुताबिक हाथ पीठ-पीछे करके इन्स्पेक्शन के लिए तैयार हो गया। अपनी पतलून के खुले बटनों की तरफ उसका ध्यान अकड़कर खड़े होने के बाद गया। इससे वह इतना सकपका गया कि मिस्टर बर्टन से 'गुड मार्निंग, सर' कहना भी भूल गया। हालांकि ये शब्द उसने बहुत विश्वास के साथ रटे थे और निश्चय कर लिया था कि दिन के बारह बजे तक उनका प्रयोग किया जा सकता है।

मिस्टर बर्टन ने रुककर उसे सिर से पैर तक देखा और उससे शाम को पाच बजे अपनी स्टडी मे आने को कहकर आगे चले गए। एक दूसरे लड़के से उन्होने कह दिया कि वह उसे उनका स्टडी का कमरा दिखा दे।

गिरजे में जाने से पहले उसे वह कमरा दिखाया गया, तो उसने डरते-डरते पूछ लिया, "वहा क्या होता है ?"

"मिस्टर बर्टन से स्टिक मिलती है," उस लड़के ने उसके कान में फुसफुसा दिया।

कुछ मिलता है, यह जानकर यशवीर को थोड़ी तसल्ली हुई। वह चीज़ क्या है, यह जानने के लिए उसने पूछ लिया, "स्टिक क्या होती है ?"

"बेंत की छड़ी," उसे उत्तर मिला।

यशवीर को अपने पिता की छड़ी की याद आई जिससे उसे कभी खेलने नही दिया जाता था। "हर लडके को एक मिलती है ?" उसने यह सोचते हुए पूछा कि छड़ी मिलने पर वह उसे लेकर किस तरह चला करेगा।

इस पर जब उसे बताया गया कि छड़ी मिलने का अर्थ है मिस्टर बर्टन के सामने झुककर जिस्म के पिछले हिस्से पर उसकी मार लेना, तो उसके शरीर में कपकपी दौड़ गई।

"फिर क्या होता है ?" उसने पूरी जानकारी हासिल कर लेने के लिए पूछा।

"कुछ नही। 'थैंक यू, सर' कहकर चले आते हैं।"

'थैंक यू, सर!' यशवीर अब इन शब्दों का अभ्यास करने लगा। पीछे से मार खाने की बात उसे भूल गई और वही शब्द रह-रहकर उसकी ज़बान पर उभरने लगे, "थैंक यू, सर! थैंक यू, सर! थैंक यू, सर!"

डिंग डाग डिंग डांग—गिरजे की घण्टियां बजने लगी। अन्दर पहुंचने तक लाइन में चलता हुआ वह लगातार इन शब्दो को दोहराता रहा।

गिरजे मे प्रार्थना शुरू हुई।

यशवीर को प्रार्थना के शब्द नही आते थे। शब्दो की लय ऐसी थी कि उसका मन हो रहा था कि उस लय के साथ-साथ पीछे की तरफ टागें हिलाए मगर यह सोचकर कि ऐसा करने से कही ईश्वर नाराज न हो जाए, वह अपनी टांगो पर काबू पाए रहा।

आसपास सब लडको को प्रार्थना के शब्द आते थे। सबने आखो पर हाथ रख रखे थे। यशवीर को आश्चर्य हो रहा था कि सबके मुंह से वे शब्द एक साथ कैसे निकल आते हैं। न किसी का कोई शब्द पीछे रहता था न आगे। फिर आंखों पर हाथ रखने की ऐसी

क्या बात थी ? और ईश्वर वहां कहां था ! सामने रखी मोमबत्तियों के बीचोंबीच सफ़ेद चोगेवाले पादरी के पीछे ? लड़को की देखादेखी उसने भी आंखों पर हाथ रख लिए थे, पर उंगलियो के सूराखो से वह चोरी-चोरी सब देख रहा था। एक बार हाथ ज्यादा खुल गए तो उसने झट-से उन्हे पूरा बन्द कर लिया कि कही ईश्वर उसे ऐसा करते देख न ले।

लच के वक्त मिस और मास्टर भी उनके साथ खाना खाने बैठे। अब फिर वही मुसीबत सामने थी। रोटी को छुरी से काटना था और मटर के दानो को कांटे से पकड़ना था। उसने छुरी-काटा हाथो मे ले तो लिया पर सुबह की तरह अब भी कोई हल उसे न मिला कि उसका इस्तेमाल किस तरह से किया जाए। छुरी का तीखा सिरा रोटी पर लाकर उसने नीचे को दबाया पर इससे रोटी नही कटी। फिर काटे को घुमा फिराकर कई तरह से मटर के दानो को पकड़ने की कोशिश की, मगर एक भी दाना उसकी पकड़ मे नही आया। उधर से हारकर उसने फिर छुरी को रोटी पर रखा और अपना पूरा जोर डालकर उसे नीचे को दबाया। उधर काटेवाले हाथ ने तरकारी वाली बड़ी प्लेट पर भी उतना ही जोर डाल दिया। इधर से रोटीवाली प्लेट उछली, उधर से तरकारीवाली प्लेट औंधी होकर उसके घुटनो पर आ रही। पल-भर के लिए सारे हाल मे छुरी-कांटो की आवाज़ रुक गई। हल्के विराम के बाद, लोगो ने मुसकराते हुए फिर खाना शुरू कर दिया। एक मिस उठकर उसके पास चली आई। यशवीर की आखें मिस्टर बर्टन की तरफ मुड गई। वे मेज़ के सिरे पर बैठे स्थिर आखों से उसे देख रहे थे। उनसे आख मिलते ही यशवीर की ज़बान पर फिर वही शब्द दौड़ लगाने लगे, "थैंक यू, सर ! थैंक यू, सर ! थैंक यू, सर ।"

मिस उसे साथ बाहर ले जाकर उसके कपड़े धुला लाई। लौटकर वह उसके पास बैठकर उसे छुरी-काटे से खाना खाना सिखाने लगी। मगर यशवीर अपने छुरी-कांटे के अनुभव से कुछ इतना घबरा गया था कि वह अपनी भूख से एक-तिहाई भी खाना नही खा पाया।

पाच बज गए। यशवीर ने कई-कई बार दोहराकर अच्छी तरह अपनी परीक्षा कर ली थी कि 'थैंक यू, सर !' उसे अच्छी तरह याद हो गया है। उसके मन मे था कि सुबह से अब तक तो उससे भूलें होती जा रही हैं, मगर इस बार 'थैंक यू, सर !' कहने मे बिलकुल भूल नही होनी चाहिए। जब वह मिस्टर बर्टन की स्टडी मे पहुंचा, तो मन मे बिलकुल तैयार था कि कब झुकने और बेंत खाने की प्रक्रिया समाप्त हो और कब वह झट-से कहे, "थैंक यू, सर !"

मगर मिस्टर बर्टन ने न तो उससे झुकने को कहा और न ही अपनी स्टिक कोने से उठाई। सिर्फ इतना पूछकर कि उसे स्कूल कैसा लग रहा है, उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरा और दो टाफियां उसे देकर कहा, "जा, छोटी-सी चीज़ ! सब आ जाएगा तुझे। उदास होने की कोई बात नही।"

यशवीर ने एक बार स्टिक की तरफ देखा, एक बार मिस्टर बर्टन की तरफ और स्टडी से बाहर निकल आया। मन मे उसे अफसोस हो रहा था कि दिन-भर 'थैंक यू, सर !' रटने के बाद भी वे शब्द कहने का मौका उसे नही मिला। उसे लग रहा था कि दूसरा मौका आने तक जरूर उसे ये शब्द भूल जाएंगे। एकाएक रुककर उसने मिस्टर बर्टन की स्टडी की तरफ मुह किया और काफी ऊंची आवाज मे कहा, "थैंक यू, सर !" और तेजी से वहा से भाग खड़ा हुआ। अब गलत चीज़ कह आने का एहसास तो उसके मन मे था, पर साथ ही यह आशा भी थी कि मिस्टर बर्टन उसे फिर अपनी ओर स्टडी मे बुलाएंगे और शायद दो टाफिया उसे और मिल जाएंगी।

दोराहा

चौड़ी सड़क पर चलते हुए केसरी ने महसूस किया वह अकेली हैं। कोई आगे नही, पीछे नही, साथ नही। जीवन मे न दिशा है, न मंजिल। अच्छा है। मंजिल का मतलब है कही जाकर रुकने की कल्पना। वह ऐसी कल्पना करे ही क्यो ?

ओवरकोट की जेब मे हाथ डाला। सिगरेट केस नही था। एक दुकान से सिगरेट लेकर सुलगाई और आगे चला।

आकाश में बादल काले भी थे, सफेद भी। काले बादलो मे मंथरता थी, उनकी आकृतियां कम बदलती थी। सफेद बादल उड़े जा रहे थे, नये-नये रूप बदलकर छितरा जाते थे। केसरी ने मुंह से धुआं छोड़ा। वह थोड़ा ऊपर उठा और गायब हो गया। वह अपने जीवन को मिलाने लगा—काले सफेद बादलों से, मुह के धुएं से।

उसने विचारो को झटका दिया। क्या व्यर्थ की बातें सोचना। क्लब में जाए, ताश खेले···पर नही। ताश सब खेलते हैं। जो काम सब करें उसे करने में क्या मजा ?

तो क्या करे ? छ. बजे हैं और ग्यारह से पहले नीद नही आएगी···पढ़ा जा सकता है किसी अच्छी-सी किताब के सहारे समय बीत सकता है। पर लोग लिखते क्या हैं ? अधिकतर शब्दों के ताने-बाने। और जब अपने ही विचारों का द्वन्द्व समाप्त नही होता, तो दूसरों के विचार जानने-समझने की चेष्टा अपने पर ही व्यंग्य नही तो और क्या है ?

बैठकर कुछ सोचे ? सोच तो अब भी रहा है। यह बुरी आदत है। टहलते-टहलते सोचने का भूत सवार हो जाता है।

सिगरेट को जमीन पर फेंककर उसने मसल दिया। लाल अंगारे की जगह कालिख रह गई। जीवन भी इसी तरह एक दिन···।

उसने हाथ जेबों में डाल दिए। दृष्टि फिर आकाश की ओर उठ गई। सफेद बादलो की सीढ़ियां-सी बन गई थी। पंछी चहकते हुए चक्कर लगा रहे थे। दो एक पंख हवा में उड़ते हुए आए और ओवरकोट से चिपक गए। एक पंख मे कई रंग थे। केसरी ने उसे सहलाकर जेब में डाल लिया। फिर सीटी बजाता तेज चलने लगा। मानो जेब में पड़ा पंख उड़ने और चहकने के लिए मजबूर कर रहा हो।

दोराहे पर रुका। सामनेवाली सड़क बहुत दूर तक सीधी चली जाती है। दाईं ओर से घर जा सकता है। दूर तक सीधे चलते जाना हिम्मत का काम है।

वह मुड़ा। सिगरेट मुह मे लगाई तो याद आया कि माचिस नही खरीदी। ऐसी बेवकूफियां अक्सर हो जाती हैं। उसे आश्चर्य या पछतावा नहीं।

घर तक रोशनी के तेरह खंभे हैं। पहला दोराहे पर और अंतिम घर के सामने। इनकी बत्तियां रात में जलती हैं, दिन मे बुझी रहती हैं। उसके अन्दर जो जलन है, वह कभी क्यों नही बुझती ?···पर वह इन्सान है, बिजलीघर नही। इन्सान जले तो जलता रहता है, बुझे तो बुझ ही जाता है।···यदि इन्सान का अपने पर भी नियंत्रण होता ? शरीर मे जगह-जगह बटन होते ? एक के दबाने मे हंसता, दूसरे के दबाने से रोता ? उठने-बैठने, बोलने-चालने, सोने-खाने, नाचने-गाने के अलग-अलग बटन होते ?

केसरी ने कल्पना की कि उसके शरीर में भी बटन लगे हैं, और सोचते ही उसके मुह से निकल गया, "अहमक ! होंठ काटकर उसने चारों ओर देखा कि किसी ने सुन तो नहीं लिया।

फाटक बन्द था। उसने नौकर को आवाज दी। कबीरा जल्दी फाटक खोल गया। ड्राइंगरूम केसरी को नया-सा लगा। कबीरे ने खूब मेहनत की थी। उसने ओवर-कोट सोफे पर फेंक दिया। रेडियो खोल दिया।

कबीरा चिट्ठियां लाया। तिपाई की ओर इशारा करके केसरी रेडियो की सूई घुमाता रहा। कव्वाली, ठुमरी, दादरा, गजल, भजन और गीत—वह झुंझलाया। उसे कोई पसन्द नहीं आया। रेडियो बन्द कर दिया।

सिगरेट सुलगाते हुए याद आया कि कबीरा डाक रख गया है। तिपाई पर एक साथ पन्द्रह-बीस चिट्ठियां देखकर उसे आश्चर्य हुआ। आसमानी रंग के लिफाफे के बाहर सुनहरी अक्षरों में 'न्यू इयर ग्रीटिंग्स' छपा देखकर [illegible] जनवरी की [illegible] ठीक था। [illegible] बन्द था। उसे खोला तो कोई छपा हुआ कार्ड नहीं निकला। उसे कुछ तसल्ली हुई। नीले कागज की तह को खोला। हरी स्याही में लिखी केवल एक पंक्ति उसपर चमक रही थी :

नये वर्ष के दिन पुराने वर्ष की स्मृतियां—श्यामा

पिछला साल पुराना हो गया। एक दिन के व्यवधान ने पिछले तीन सौ पैंसठ दिनों की समष्टि को अतीत के तहखाने में डाल दिया। जिन्दगी के सूत्र में एक और गांठ पड़ गई।

पुराने वर्ष की स्मृतियां!

वे बातें जो जिंदगी पर गहरी छाप छोड़ गईं, उनके लिए छोटा-सा शब्द—स्मृतियां।

उसने विचारों को रोका। दिमागी ताने-बाने कैसी उलझनों में ले जाते हैं। असलियत से दूर वह कहां-से कहां चला जाता है।

असलियत यह है कि आज पहली जनवरी है—मित्रों ने खुशी के पैगाम भेजे हैं, और···श्यामा ने यह एक पंक्ति, जिसके हरे शब्द नीले कागज पर उभर रहे हैं।

हरे शब्दों की आकृतियां उसके सामने हैं। इन शब्दों के पीछे जो आकृतियां हैं, वे भी धुन्ध से निकलकर सामने आ रही हैं···।

शिमले के एक होटल में वह और पूर्णिमा बैठे थे।

पूर्णिमा चाय पी रही थी—या हल्की चुस्कियों से समय बिताने का बहाना कर रही थी। वह कुहनियां मेज पर रखे एक हाथ की उंगलियों को दूसरे हाथ से मसल रहा था।

उसका प्याला खाली था। सिगरेट का आखिरी टुकड़ा वह एशट्रे में डाल चुका था।

पूर्णिमा ने मुसकराकर कहा, "और सिगरेट क्यों नहीं मंगा लेते?"

उसने सिर हिलाया, "तबीयत नहीं।"

"और चाय?"

"नहीं।"

कुछ देर दोनों चुप रहे। पूर्णिमा हारकर बोली, "यों जरा-सी बात से तुम्हारा मूड बिगड़ गया, मेरे अपने विचार हैं। बुरा लगा हो तो मैं इस विषय को फिर छेड़ूंगी भी नहीं।"

उत्तर न देकर वह तश्तरी में प्याले को घुमाता रहा। बैरे को देखकर उसने

कहा, "बिल"। बैरे ने प्लेटें उठा लीं।

सड़क पर चलते हुए पूर्णिमा ने उसका हाथ पकड़ लिया। वह चुप रहा। पूर्णिमा उतावली-सी कहने लगी, "मैं मान लेती हूं कि मैं गलती पर थी। तुम कुछ बोलो तो सही।"

"सर्दी कल से अधिक है," उसने उत्तर में कहा।

"मैंने सर्दी की बात नहीं पूछी।"

"और कोई बात भी हो, जिसे मैं कहूं और तुम समझ लो ?"

उसने चोट की थी। पूर्णिमा ने उसका हाथ छोड़ दिया। वह रुकी तो उसे भी रुकना पड़ा। पूर्णिमा ने गम्भीर होकर कहा, "मैं इधर से घर चलूं···"

"अच्छा।"

वह आगे चल दिया। पैर तेजी से उठने लगे। वह जल्दी से अपने होटल पहुंचना चाहता था। अकेले बैठकर सोचना चाहता था। पूर्णिमा ने चाय पीते-पीते कितनी बातें कह दी थीं।

स्त्री के रूप कितनी जल्दी बदल जाते हैं। उसे क्या अनुमान था कि पूर्णिमा श्यामा के साथ उसके परिचय को लेकर ऐसी-ऐसी बातें कहेगी ? अर्थहीन व्यंग्य—इसलिए कि श्यामा के साथ उसे सहानुभूति थी। उसने अपने विचारों को छिपाया नहीं—जो सोचा पूर्णिमा से कह दिया। यही गलती हुई। कपट न करना गुनाह है। पूर्णिमा ने यह कहने का साहस किया कि श्यामा उसे बरगला रही है।

माना श्यामा के साथ परिचय थोड़े दिनों का था। फिर भी क्या यह उसका फर्ज नहीं था कि उसे रात पार्टी के बाद घर तक छोड़ आता ? रिक्शा नहीं मिला—वह पैदल अकेली जाती ? वह पूर्णिमा के साथ कई बार गया है, तो श्यामा को ही क्यों टाल देता ?

श्यामा ! पहले परिचय में उसे लगा था कि वह एक कली की तरह है जिसे शबनम धुलने से पहले नाखून चुभो दिया गया है। दूसरे परिचय में वह अधिक जान गया था।

वह होटल पहुंच गया। सीधा अपने कमरे में जाता, पर बैरे ने पहले ही उसे एक परचा दिया। श्यामा ने घर आने के लिए लिखा था·· परचा मिलते ही।

उसने छोटे-से कागज के टुकड़े की अवहेलना करनी चाही, पर उसके मन ने विद्रोह किया। यह कमजोरी क्यों ? एक साधारण व्यंग्य के आगे वह क्यों झुक जाए ? पूर्णिमा की आलोचना का महत्त्व ही क्या है ? उसे जाना चाहिए···पर जाकर होगा भी क्या ? श्यामा की मलिन हंसी, सोच-सोचकर कहे हुए शब्द ! वह पहेली-सी रहना चाहती है, तो बुलाने से मतलब ? दिखावटी घनिष्ठता ! वह लोगों के व्यंग्य सहे, उन्हें उंगली उठाने का मौका दे, किस लिए ?···नहीं, वह स्त्री है - एक उलझन जो अपने आप सुलझती है मगर धीरे-धीरे। वह एक जाल की तरह फैलती है, मगर स्वयं ही उधड़ने लगती है। फिर वह अभी उसका साधारण परिचित है·· साधारण परिचित ? साधारण परिचित को कोई ऐसे बुला भेजता है ?

वह सड़क पर आ गया था। पैर चल रहे थे, वह जा रहा था। हृदय में गति थी, पैरों में गति थी, मस्तिष्क में गति थी। पर जैसे सब गतियों के सत्ताकेन्द्र अलग-अलग थे। उन्हें आपस में न मतलब था, न पहचान। वह भूला-सा जा रहा था, सोच रहा था।

श्यामा के साथ उसका परिचय नहीं था। पार्टी में इतने मित्र थे, पर श्यामा ने उसे ही साथ चलने को कहा, घर पहुंचने से पहले बाग में टहलने का सुझाव दिया, फिर

चाय पर बुलाकर ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछती रही। उस दिन जीवन की बेजारियों की ओर संकेत करके वह बार-बार उसकी आखों मे क्यों देखती थी ? फिर आज उसने घर बुलाया। और वह खुद श्यामा के बारे मे क्यों पूर्णिमा से इतनी पूछताछ करता रहा ? उससे कह बैठा था कि श्यामा मे एक विचित्र आकर्षण है जो साधारण लड़कियो मे नही होता। पूर्णिमा इसीलिए चिढ़ी थी ?

चादनी मे परछाईं उसके आगे-आगे चल रही थी, जैसे अचेतन मन पैरो को खीच रहा हो। वह अचानक रुका। जहा से मुड़ना था, वहा से वह आगे निकल आया था। एक दृष्टि लम्बे रास्ते पर डालकर वह लौटा।

श्यामा कितनी उत्सुक थी ! गोल कमरे मे ले गई, और खुद ही उसके ओवरकोट के बटन खोलने लगी। उसने ओवरकोट नही उतारा। सोफे पर बैठ गया। श्यामा साथ आ बैठी। एक किताब के पन्ने पलटते हुए उसने पूछा, "तबीयत ठीक है न ?"

"बिलकुल।"

"परचा मिल गया था ?"

"हां। कैसे याद किया ?"

"बात करने को जी चाहता था," हेअरपिन उतारकर फिर लगाती हुई वह बोली, "मा गई है चंचल को छोड़ने। अकेले दिल नहीं लग रहा था।"

"तुम्हें अकेले रहना बहुत पसंद है - तुमने कहा था।"

"हा, पर हमेशा नही।"

वह मुसकराई। ताजा मैकअप चेहरे पर खिल रहा था। पर उस ताजगी में भी मलिनता छिपी हुई थी। वह देखता रहा—सौन्दर्य से अधिक उस दयनीयता को। श्यामा की आखें जरा झुकी। उन्हें अच्छी तरह लजाना नही आता था।

"एक गिलास पानी—नौकरानी से कह दो।"

वह स्वय उठी। जाते-जाते उसने कहा, "नौकरानी घर में नही है।"

श्यामा दरवाज़े से निकल गई, तो भी कमरे मे बसी हुई सुगन्ध उसकी उपस्थिति का आभास देती रही। वह दृष्टि घमाकर कमरे की चीजें देखने लगा। फ़रनीचर मे चमक थी। मेज़पोश नये थे। मेज़ पर लेटरपैड था, लेटरपैड के पहले सफे पर पेंसिल से लिखे दो शब्द—डियर मिस्टर—मिस्टर काट दिया गया था। सजावट के सामान मे दो अर्धनग्न प्रतिमा···

श्यामा पानी ले आई। गिलास लेते हुए उसने उसकी उंगली मे अगूठी देखी, अंगूठी मे नीलम, नीलम मे अग्रेज़ी वर्णमाला का एक अक्षर 'एस'।

चार घूट पीकर उसने गिलास रख दिया। श्यामा अपनी पहली जगह पर बैठ गई।

"नौकरानी कहा चली गई ?" उसने पूछा।

"आज उसकी छुट्टी है", वह बोली।

"छुट्टी ?"

"मैंने कहा एक दिन आराम कर ले। रोज़ तो काम करती है।" होठ फिर मुसकराए। पर वह भौंहों पर खेलती करुणा को देखता रहा।

"परचा देने कौन गया था ?" उसने पूछा।

"मैं।" श्यामा की बांह उसके ओवरकोट की सिकुड़नों को छूने लगी थी।

"तुम गई थी !" उसके स्वर मे आश्चर्य था।

"क्यों कोई हर्ज था ?"

श्यामा वाचाल बनने की चेष्टा कर रही थी। वह देख रहा था उसकी आंखें—आखें जो बहुत गहरी थी। उनकी तह तक जाना उसके वश में नही था। वह देखता रहा।

पंद्रह दिन में श्यामा एक अनबूझ पहेली के हल की तरह सरल लगने लगी। वह समझ चुका, वह समझा चुकी। बात साफ थी।

वह श्यामा के जीवन में पहला पुरुष नही था। पूर्णिमा की कई बातें सच थी। पर जिस सच्चाई को वह कडवी कहती थी वह श्यामा के पतले होठो से कितनी लुभावनी और मधुर बनकर निकलती थी ! उसकी छाती के बालों से खेलती हुई श्यामा बोली थी—उसने पहले भी प्यार किया है। वह इसे भूल नही मानती। शील उसके यौवन से निकट परिचित पहला युवक था। वह उसी से खेलने लगी। मगर वह दूर-दूर रही है, शील की भावुकता को उत्तेजित करने के लिए। फिर शील अचानक चला गया— इसे दुःख नही है।

निर्झर की उमंग की तरह यौवन की पहली उमग थी। शील उसकी गति में अवरोध बनकर आया। वह जीत गई—समझी कि जीत गई। वह बह जो गया।

गभीर मैदान की गोद में आने से पहले नदी कई बार गिरती टूटती और बिखरती है। यह अपराध नही, सत्ता का अनुभव है। अब वह भी जीवन के सम स्तर को पहचान चुकी है। उसे मंथर होकर चलना है।

श्यामा उसे समझाने के लिए इतनी बातें कहती, वह उसके होठों की थिरकनें गिनता, पलको के निमेष गिनता, माथे की सिकुडनें गिनता। श्यामा समझती थी उसे बोलना चाहिए। वह जानता था बोलने से चुप रहना अधिक अच्छा है। उन होंठो को, उन पलको को देखते रहना।

पद्रह दिन—

पंद्रह दिनों की कहानिया बन गई।

कहा जाता श्यामा चरित्रहीन है, केसरी पर डोरे डाल रही है। उसे फुसला रही है। श्यामा, जो कभी शील के प्यार का दम भरती थी, शील के शंघाई चले जाने पर, वहां से उसे पत्र न लिखने पर, उपहार न भेजने पर, अपना सिक्का दूसरे पर आजमाने चली है। जैसे खिलौनो से खेल रही हो—एक टूट गया, दूसरा सही।

वह सुनता था। वह देखता था। लोग इशारे करते थे। श्यामा उसकी बांह मे बाह डालकर चलती थी। लोग आवाजें कसते थे। वह मुसकराता था। किसी की परवाह वह क्यों करे ? वह श्यामा से प्यार कर रहा था, उसके व्यवहार के लिए नही, सौदर्य के लिए नही-- उस मलिनता को दूर करने के लिए जो उसके व्यवहार मे घुलती जा रही थी, उसके सौदर्य में घुलती जा रही थी। तिरस्कृत होने की भावना बेचारी के जीवन रस को सुखा देती। वह यह नही चाहता था। सहानुभूति हो जाती है। और सहानुभूति से प्यार।

उस दिन प्रात: की झड़ी दोपहर बाद रुकी। अपने कमरे की खिड़की के पास बैठा वह पढ रहा था। दरवाजा खुला और बन्द हुआ। पूर्णिमा थी।

"पूर्णिमा, इतने दिनो के बाद ?" वह स्वागत के लिए उठा।

"पूर्णिमा बैठी। कुछ क्षण चुपचाप उसकी आंखो मे देखती रही।

"आज कैसे भूल पडी ?" उसने फिर पूछा।

"मिलने चली आई। तुमने कहा था न कि चार सप्ताह से अधिक नही रहोगे यहां।"

"ख्याल है अभी रहूंगा।"

पूर्णिमा जरा गम्भीर होकर बोली, "तुम्हारा विचार रहने का है, मैं जानती हूं। पर तुम रहोगे नही शायद।"

पूर्णिमा की बात उसकी समझ मे नही आई। वह इतने निश्चित स्वर मे कह रही थी कि पल-भर के लिए उसे स्वयं ही अपनी बात पर संदेह हो गया। फिर यह सोचा कि शायद पूर्णिमा यह समझी हो कि वह श्यामा के साथ…।

श्यामा के साथ उसे चार बजे चाय पीनी थी। साढ़े तीन हो चुके थे। वह बोला 'चलते-चलते बात करें, तो कैसा रहे ? चार बजे मेरी चाय है।"

"श्यामा के साथ ?"

वह बोला नही। केवल सिर हिला दिया।

"कहा एपॉइंटमेंट है ?"

उसने पूर्णिमा को देखा। पूर्णिमा की दृष्टि में भी उतना ही व्यंग्य था, जितना स्वर मे।

"उसके घर पर ही," उसने टाई ठीक करते-करते उत्तर दिया।

"पर वह आज घर पर नही है।" पूर्णिमा ने स्वर में अधिक गम्भीरता लाने की कोशिश की।

' चार बजे तक आ जाएगी। वह एपॉइंटमेंट मिस नही करती।"

"वह आज किसी वक्त भी घर पर नही आएगी।"

कोट को हैंगर पर ही छोडकर पूर्णिमा के चेहरे को पढ लेने के इरादे से वह उसके निकट आया। पूर्णिमा की आंखें स्थिर थी, और भौहे जैसे उपहास कर रही थी।

"आएगी नही, तुमसे किसने कहा ?" उसने पूछ लिया।

"श्यामा की मां ने।"

"श्यामा की मां ने ?"

"हां। श्यामा दो-चार दिन लाहौर रहेगी, फिर कराची जाएगी, वहां से शायद…।"

"पूर्णिमा।" वह अस्वाभाविक स्वर मे बोला "तुम्हे किसने बहका दिया ?"

"मैं ही नही, तुम्हारे सब मित्र जानते हैं।"

वह और निकट आया। स्वर को स्वाभाविक रखकर उसने कहा, "यह क्या पहेली है—श्यामा लाहौर रहेगी कराची जाएगी ?"

"शील का यही प्रोग्राम है।"

"शील का ?"

"श्यामा की मां कहती थी। कराची से शायद उसे शंघाई जाना पड़े।"

फिट्-फिट् करती एक मोटर साईकिल तेज़ी से आई और निकल गई। केसरी के विचारों का ताता टूटा। होटल नहीं, उसका घर। पूर्णिमा नहीं, सामने तिपाई पर नये साल के ग्रीटिंग कार्ड्स। हाथो मे नीला कागज—नीले कागज़ पर हरी पंक्ति…।

'पुराने वर्ष की स्मृतियां', वह बड़बड़ाया। झटके के साथ उसने छोटा कोट उतारा और सामने कुर्सी पर फेंक दिया। शरीर कुछ ऐसे हल्का हो गया जैसे पुराना साल गले से उतार फेंका हो। फिर वह सोफे पर लेट गया और हरे कागज को गोल करके उसके अन्दर से छत की कड़ियों को देखने लगा। एक के बाद दूसरी। उसके बाद तीसरी। उसके बाद चौथी…।

बाहर अंधेरा गहरा होता गया।

धुंधला द्वीप

जीवन के कई दिन कितने लम्बे हो जाते है। घर बैठे केसरी का दिल भारी होने लगा। पर अकेला जाए भी कहां ? किसी रेस्तरां मे ? अपने को छलने का यह अच्छा रास्ता है। घडी-दो घडी के लिए उदासियां खो जाती हैं। देखने, सुनने और चखने में आत्मा मूढ़ हो रहती है। पर घर लौटो, तो फिर वही उदासियां। चलो, इतना ही सही। कुछ तो समय बीतेगा ही।

बालों को ठीक करके कोट पहना। बटुए में पैसों की गिनती की। साईकिल उठाई और चल पड़ा।

खचाखच भरे रेस्तरां में प्रवेश करके उसने चारों ओर देखा। मीठा शोर, हल्के कहकहे, पतला धुआं और भीनी खुशबू। चेहरे प्रायः सभी नये थे। आत्मीयता थी, तो हरे रंग की दीवारों में ही।

कोने की मेज़ के पास बैठकर वह आसपास के वातावरण में ताज़गी खोजने की चेष्टा करने लगा। आगे गोरे लोग बैठे थे। तीन लड़कियां सुन्दर रंगों के स्कर्ट पहने थी। फीका हरा, बादामी और सफेद। एक युवक था, एक अधेड़ और दो बच्चे। दाईं ओर दो नवयुवतियां दस पुरुषों के घेरे मे बैठी चाय की चुस्कियां ले रही थीं।

बैरा आया। उसने बियर के लिए कह दिया। आखें पल-भर एक सरदार जी की दाढ़ी में उलझे धागे पर रुकीं। फिर उसने सिगरेट निकाली। जेब से अखबार का पन्ना भी निकला। कई दिनो से यह पन्ना जेब मे है। पन्ने पर चित्र है—युवक और युवती। नया विवाहित जोड़ा, जिसे हर कोण से वह देख चुका है।

राधा ने नरेन्द्र से विवाह कर लिया। वही नरेन्द्र जिसे वह अपना भाई बतलाती थी।

मन झुंझलाया। हो गया विवाह, तो हुआ करे। रोज़ ही होते है विवाह। रद्दी लिपियों को ढकने के लिए चमकीले मोहरबन्द लिफाफे।

प्रेम विवाह। लड़के के सिर पर सेहरा, लड़की के हाथों मे चूड़ियां ! माथे में सिंदूर। युवक और युवती। परिचय और प्रेम। हरे नीले पत्रों पर शेक्सपियर व शेली के वाक्य। रूमाल। सेंट। अमेरिकन चित्र। उद्यान विहार। कविता। और अन्त में माता-पिता की सत्ता का आविष्कार।

प्रेम की बेल फूटने से पहले, पडितो की सहायता से, वेदी के नीचे, वेदमंत्र पढ़कर शुभ विवाह।

बैरे ने बोतल खोलकर बियर गिलास में डाल दी। केसरी ने दो-चार घूंट पिए। फिर चाहा उस गिलास को चूम ले। लोगों को देखकर निराशा हुई। वे उसे पागल समझेंगे।

वाद्य संगीत आरम्भ हुआ। स्वर लहरों की तरह शरीर मे हिलोरें लेने लगे। नई बोतल आई। एक गिलास पी लिया। लगा, शीघ्र ही पंख निकलेंगे। पंखो से वह ऊपर तैरेगा। पंख फड़फड़ाएंगे— इसी लय मे, इसी स्वर मे।

बोतल खाली कर दी। और मंगवाई। वह भी पी डाली। फिर और आई। वह भी उंडेल ली।

अनुभव हुआ कि पंख निकल आए हैं। पंखों में सुन्दर-सुन्दर रंग हैं। फीका हरा, बादामी और सफेद। रंग झिलमिला रहे हैं। वह ऊपर उठ रहा है। छत के हंडे घूम रहे हैं। वाद्य स्वर तेज़ है। लोग सब मौन हैं। ऊपर और ऊपर। अभी वह छत को छू

लगा•••।

अचानक पख टूट गए। वह कुरसी पर आ रहा। गिलास में से बियर छलक गई।

वाद्य संगीत रुक गया था। गोरे लोग उठकर जा रहे थे। बियर की धार अखबार के पन्ने पर अफ्रीका का चित्र बना रही थी। पन्ने पर विवाहित जोड़े को उसने ध्यान से देखा। फिर बियर का गिलास ठीक चित्र के ऊपर रख दिया। हृदय से जैसे एक ज्वार निकल गया।

उठकर केसरी ने एक नज़र चारों ओर देख लिया। सबके प्रति उदासीनता का परिचय देता वह काउंटर तक आया। पांच-पांच के तीन नोट दे दिए। न तो बिल लिया, न हिसाब ही पूछा। फिर उस वातावरण को जैसे तिरस्कृत करके वहां से बाहर निकल आया।

बाहर धूप भी थी, धूल भी। वह निरुद्देश्य फुटपाथ पर चलने लगा। चलते-चलते रुककर एक कोमल पौधे की टहनी तोड़ ली। टहनी के कोर पर दूध सिमसिमाया देखा पल-भर सोचा। फिर उसे फेंक दिया। कोई पास से मुसकराता हुआ निकल गया।

साफ़ उतर रही थी। लॉरेंस बाग में लोग बिखरे हुए थे। केसरी ने सामने से कृत्रिम पहाड़ी को देखा। देखकर मुसकराया। मनुष्य का बचपना नहीं जाता। लोग लॉरेंस की पहाड़ियों पर घूमकर जी बहला लेते हैं, जैसे बच्चे मिट्टी की रानी से खेलकर। लॉरेंस की पहाड़ियां। मई में तापमान एक सौ सत्रह, जून में हरियाली गायब, जुलाई में ईंटों के भट्ठे•••डारविन ठीक कह गया है— मनुष्य बन्दर की ही सन्तान है।

वह पहाड़ी पर चढ़ने लगा। कमीज़ शरीर से चिपक रही थी। शिमले की पहाड़ियों पर घूमना याद आया। खेद हुआ कि क्यों यह सम्भव नहीं कि शिमले के बरफ़ानी बादल पैक करके लाहौर लाए जाएं, और लाहौर की लू बन्द डिब्बों में शिमले भेजी जाए ? पर असम्भव ही क्या है ? आज नहीं, तो कुछ वर्ष बाद सही। ऐसा युग कभी तो आएगा ही।

कितना अच्छा हो, जो मानवीय भावनाओं को भी स्थूल रूप दिया जा सके। पागलपन की गोलियां। प्रेम की टिकियां। कविता का पाउडर। तब तो अपने सब मित्रों को वह यही उपहार भेजा करे। कविता की पुड़िया, पानी के साथ खाओ और छन्द लिखो।

टीन के डब्बे पर से उसका जूता फिसल गया। वह अपने-आप पर हंसा। उसपर तो बिना गोली खाए ही पागलपन सवार हो गया। किसी दिन अवश्य कोई दुर्घटना हो जाएगी। संभलकर चलता हुआ वह पहाड़ी के ऊपर पहुंच गया।

पहाड़ी पर से उसने देखा—नीचे सड़कों पर लोग अनजाने चले जा रहे हैं। कोई बात करता है, कोई हंसता है, और कोई छड़ी घुमाता हुआ केवल सैर करता है। उन सबके बीच में घिरकर भी वह अकेला है।

अकेला तो है, पर घिरने की बात क्या ? संसार में अपने को ही केन्द्र मानकर क्यों चलना ? लोगों को उसके अस्तित्व से क्या मतलब ? फिर उसे ही लोगों की क्या चिन्ता ? उसे केवल एक जीवन जीना है—अपना जीवन। अच्छा-बुरा, जो भी है, वह स्वयं ही तो है। पर राधा क्या कहती थी ? वह भावना को नहीं समझता ? अपने-आप को धोखा देता है ? नहीं, यह सब झूठ था। केवल दंभ।

फिर वही राधा की बात ? क्यों नहीं ! राधा ने उसे एक बार स्निग्ध आंखों से नहीं देखा था ? फिर वही आंखें बुझी-बुझी होकर क्यों रह गईं ?

उसके अंदर कौन-सा पाप है ? संसार को अपना वास्तविक परिचय दे देना—इतना ही ?

हृदय उदास भी होने लगा, अशांत भी। उसने घर चलकर लेटे रहने की सोची। अब साइकिल का ध्यान आया। वह तो रेस्तरां के बाहर ही छूट गई थी। वह लौटकर साईकिल लाने चला। कुछ देर के लिए मस्तिष्क से निकलकर वह शरीर में स्थित हो गया।

"केसरी !" किसी ने रेस्तरां के बाहर उसे पुकारा। घूमकर देखा। मोहन था। पास आकर मोहन ने उसके कंधे को छुआ। कहा, "ठीक समय पर मिले, यार। अकेले पीने को दिल नहीं करता था। चल, बैठें अन्दर।"

केसरी ने पहले मना कर देना चाहा। पर तुरन्त ही उसने अपना विरोध कर लिया। उसने जैसे अनुनय स्वीकार करने के ढंग से कहा, "एक घंटे से अधिक नहीं बैठ सकता। फिर मुझे किसी से मिलने जाना है।"

"जब मन में आए, चले जाना, यार। अभी अन्दर तो चलो।" मोहन उसे बांह से पकड़कर अन्दर ले चला।

केसरी ने पुन: उसी वातावरण को देखा। पहले लोग जा चुके थे, और नये लोग वहां आ गए थे। इस बार उसने बीच की एक मेज़ चुन ली।

मोहन ने बैठकर पूछा, "स्कॉच ?"

केसरी ने सिर हिला दिया।

स्कॉच के कुछ घूंट भर लेने पर केसरी की आंखों के आगे कुछ चित्र गहरे धुंधले होने लगे। तीसरा पैग खाली कर चुका, तो मोहन के शब्द ध्वनित होते तो सुनाई दे रहे थे, पर उनका अर्थ समझ में आने से पहले ही फिसल जाता था। वर्मा वहां आया, तो केसरी अभिवादन भी नहीं कर पाया। हाथ मिलाते हुए यही शब्द बोलता रहा, "ओ माई डियर, ओ माई डियर !" शेष जो कहने को था, वह जैसे कहीं खो गया था। प्रयत्न करने पर भी शब्द पकड़ में नहीं आए। वह खामोश हो गया।

वर्मा और मोहन जब कला-प्रदर्शनी की रूपरेखा बनाने लगे, तो वह ऐसा प्रकट करने की व्यर्थ चेष्टा करता रहा कि विषय में रुचि न रहने के कारण वह ख़ामोश है। वास्तव में उसकी शक्तियां पूरी तरह शिथिल हो चुकी थीं। कला और सेक्स की गूंज में से निकलकर वह देख रहा था एक स्त्री रूप—अस्पष्ट। चित्रमय, शरीरमय, प्राणमय।

राधा, जब उसे पहली बार देखा था, बंगले के बरामदे में बैठी कोई किताब पढ़ रही थी। सैंडल से दुपट्टे तक सफेद। मुख पर टैंजी की खुशबू। नाखूनों पर क्यूटैक्स का रंग। सुन्दर गठन। आकर्षक आंखें।

फिर ड्राइंग रूम। बिजली खराब होने से, मिट्टी के तेल का टेबल लैंप जल रहा था। बाबू मोतीलाल ने परिचय कराया और काम से बाहर चले गए। राधा बोली, "आप हमारे यहां बिलकुल अपरिचित नहीं। पिताजी प्राय: आपकी तारीफ किया करते हैं।"

"मेरी तारीफ ?" उत्तर दिया उसने, "आभारी हूं उनका। लोग तो प्राय: मेरी निंदा ही करते हैं।"

सुनकर वह मौन रही। देखने में वह सोलह-सत्रह की लगती थी। मुख की गंभीर रेखाओं से दो तीन वर्ष और बड़ी। दृष्टि उसकी पारदर्शिनी-सी घूमती थी। देखती थी, अपनी उंगलियों को, लैंप को, फिर उसकी आंखों को। पुन: उंगलियों को, लैंप को, आंखों को। काजल की ताज़गी के नीचे आंखों की उत्सुकता ताज़ी थी। गहरी भी। जैसे नया तैराक डुबकी लगाकर तैरना सीख गया हो। वह मुसकराया।

राधा बोली, "आप लॉ के पहले वर्ष में हैं न ?"

"हूं तो सही, पर कभी दूसरे वर्ष मे जाने की आशा नहीं।"

"क्यो ? एम० ए० मे तो आप प्रथम रहे थे--पिताजी कहते थे।"

"रह गया था, पर औरो के दोष से। शेष साथी मेरे सब के सब रईसजादे थे, जो मेरे जितने नम्बर भी नही ले सके।"

"तो ऐसे ही रईसजादे लॉ मे भी होगे।" वह मुसकराई।

"लॉ मे प्रायः सभी वकीलो की सतान हैं। बहस करके अपनी योग्यता का प्रमाण दे लेते हैं।"

इससे वह हस पडी। बोली, "बातें करना तो आप खूब जानते हैं।"

फिर जैसे उसे याद आया। कहा, "पहले कुछ पीजिए।"

"पानी।"

"चाय या लैमन ?"

"नही।"

पानी आया। पानी पीकर कोई बात करने को नही सूझी। सोचा, बच्ची-सी युवती से क्या बात करे। हारकर पूछ लिया, "आपको गाने का तो शौक होगा ?"

इस पर भी वह मुसकराई। वह बोली, "शौक क्या, कभी-कभी गुनगुना लिया करती हूं।" वही साधारण उत्तर, जो प्रायः सभी लड़किया देती हैं।

उसने भी परपरा आगे तक निभा दी। कहा, "कभी कोई चीज सुनाइए।"

"अवश्य," वह बोली, "रविवार को आइए। नरेन्द्र भाई भी आएगे। खूब अच्छा गाते हैं वे। मैं उन्ही से सीखती हू।"

'भाई' शब्द के उच्चारण मे भ्रातृत्व की गंध नही मिली। साधारणत. वह यूं बोल गई, जैसे यह भी कोई 'जी' की तरह का शब्द हो। उसने महत्त्व नही दिया। बात आगे सरक गई।

बाबू मोतीलाल आए। तब क्या बात चल रही थी ? हा, वह कह रही थी, "तुलसीदास की क्या कविता है। मैं आज तक नही समझ सकी कि क्या रस है तुलसीदास मे ?"

बाबू मोतीलाल बोले, "चल पड़ी कवियो और लेखको की बातें ! केसरी हिंदी मे बहुत लेक्चर झाड़ा करता है। नरेन्द्र की तरह झटपट हार नही मानेगा।" और अपने कथन से सतुष्ट होकर हस पड़े।

कमरे से निकलते हुए राधा की कुहनी उससे छू गई। बाहर आकर वह बोली, "आपका, भक्ति-दर्शन मेरी समझ में नही आया। रविवार को फिर उलझूगी। आइएगा न ?"

बाबू मोतीलाल बीच मे ही बोले, "आएगा क्यो नही ? होटल के बिल भरने से घर मे चाय-पानी क्या बुरा है। क्यो ?"

सिर हिलाकर वह चल पडा। मन मे उत्सुकता जाग आई। यह नयी-सी घनिष्ठता क्यों ? बाबू मोतीलाल कब से तो जानते हैं। पर परिचय दूर से अभिवादन तक का ही रहा है। आज कोई विशेष परिवर्तन नही आ गया। पहेली मे पुरस्कार नही पाया, लाटरी नही निकली, वसीयत नही मिली, घुड़दौड़ नही जीती। फिर ? ऐसा क्यो ?

कंधे मे पकड़कर मोहन ने हिलाया। कहा, "यह गिलास रखा है—पी इसे। और मगाए ? किस दुनिया की सैर कर रहा है तू ?"

केसरी चेतन हुआ। मोहन को देखकर *आश्चर्य* हुआ। आंखें जरा उघाड़कर बोला, "तू यहां कैसे आ गया ?"

मोहन थोड़ा हंसा। बोला, "तो आप सचमुच ही स्वर्ग मे हैं ! फिर वर्मा की ओर मुड़कर वह बोला, "यह तो होशहवास खो बैठा।"

इन शब्दो ने केसरी को कुछ उत्तेजित किया। पर तुरन्त ही वह उत्तेजना दूसरे किसी प्रवाह में वह गई। व्हिस्की के गिलास के चारों ओर नया मनोजाल बुना जाने लगा।

नरेन्द्र ! महत्त्वाकांक्षी नरेन्द्र ! नरेन्द्र के साथ उसकी खासी बहस हो गई थी। शराब पीने न पीने को लेकर। राधा नरेन्द्र का समर्थन करती रही थी। बहस के बाद एक लम्बी चुप्पी···।

राधा एकटक उसे देख रही थी। इससे नरेन्द्र की आखों का खिसियानापन वह देख रहा था। उपन्यास के पृष्ठों में नरेन्द्र की दिलचस्पी झूठी थी।

राधा ने नरेन्द्र की ओर जो नही देखा, उससे वह कुछ बचा रहा।

कुछ क्षण मौन रहने के बाद राधा ने पूछा, "आपके लिए पानी लाऊं ?"

"नहीं," उसने उत्तर दिया, "मैं कही जाकर बियर पिऊंगा।"

इसने राधा की आंखो की चमक को पल-भर में पोंछ दिया।

देर के बाद नरेन्द्र ने राधा की ओर देखा और राधा ने नरेन्द्र की ओर। फिर नरेन्द्र ने अभिभावक की-मी मुद्रा में राधा से कहा, "पाच बजे सगीत सभा में भी तो चलना है। तुम अपनी तैयारी कब करोगी ?"

यह शायद उसे जाने के लिए संकेत था। कुर्सी की बाहों पर हाथ रखकर वह बोला, "आप लोगों को बाहर कही जाना है, यह मुझे नही मालूम था···"

"मुझे आज वहां नहीं जाना है," राधा ने निश्चित स्वर में नरेन्द्र की ओर देखकर बीच में ही कहा।

"पर मेरा वहा प्रोग्राम जो है," नरेन्द्र उसके निश्चय को प्रभावित करने के लिए बोला।

"हां, हा, तुम्हारा नाम है, तुम चले जाओ। मेरा जाने का मूड नही।" फिर उससे बोली, "आप शाम को खाना खाकर ही जाइएगा। पिताजी ने आपको बिठाए रखने को कहा था।"

"नहीं, नहीं, मुझे भी एक जगह थोडा काम है," उसने छुटकारा चाहा।

"ऐसा क्या जरूरी जाना है ? आपको तो कल तक याद भी नही था। बैठिए, अभी थोडी देर।"

"पर···"

"पर क्या ? कुछ देर के लिए जाना टाला नही जा सकता ?"

उसने नरेन्द्र की ओर देखा, जिसके मुख पर संध्या उतर आई थी। उससे आंख मिलते ही नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ। कोट पहनते हुए जरा विमर्श-पूर्वक उससे बोला, "मुझे जाना पड़ेगा। चलिएगा संगीत सभा मे ?"

"कैसे चल सकता हूं !" उसने राधा की ओर देखकर कहा।

चलने को उद्यत होकर नरेन्द्र दरवाजे के पास पुनः रुका। मुड़कर बोला "बर्ड्स क्लब मे आप जाया करते हैं ?"

"हां, कभी-कभी। क्यों ?"

"कुछ नहीं, यो ही पूछा। एक दिन आपको वहा किसी के साथ देखा था।"

कहकर नरेन्द्र ने अर्थपूर्ण दृष्टि से राधा की ओर देखा। फिर जाता हुआ बोला, "अच्छा, गुड नाइट!"

नरेन्द्र के चले जाने से बीच की कड़ी निकल गई। कुछ समय तक दोनों बातचीत के लिए किसी आरम्भ को नही पा सके। वह राधा के असमंजस को छू रहा था और राधा अपनी उलझन को बचा रही थी। पहला प्रश्न उसने स्वयं ही किया, "मेरी किसी बात से दुःख हुआ?"

"नहीं तो। हर व्यक्ति को अपने ढंग से जीने का अधिकार है। फिर भी मैं कहती थी···"

क्या कहती थी, यही ठीक यह स्पष्ट नहीं कर पा रही थी। कुछ संकोच था, कुछ अनिश्चय। वह बोला, "अपने विचार प्रकट न करने को मैं पाप समझता हूं। आप निःसंकोच कहिए।"

"आप शराब पीना छोड़ नही सकते?" राधा ने तर्क का आश्रय छोड़कर आग्रह की शरण ली।

वह ऐसे सीधे-से प्रश्न के लिए तैयार नही था। कुछ क्षण उसकी आखों मे देखता रहा। फिर गम्भीर होकर बोला, "नहीं!"

"नही! क्यों नही?"

इन शब्दो मे ऐसी याचना थी कि उसके मन ने चाहा कि उसे किसी प्रकार का आश्वासन देकर सतुष्ट कर सके। पर वह चुप रहकर देखता रहा।

"मान लीजिए, आपके सामने कोई बहुत बड़ा प्रलोभन हो, फिर भी नही छोड़ सकते?"

"नही, किसी प्रलोभन के कारण नही। हो सकता है किसी दिन मेरी अपनी रुचि बदल जाए। पर ऐसी सभावना नजर नही आती।"

वह खामोश हो गई। कमरे मे केवल घड़ी की टिक-टिक सुनाई दे रही थी।

वह देख रहा था। जब राधा बोलना चाहती, तब एक कपन गले में होता, दूसरा होंठों पर। जब वह बात को पी जाती तब नासिका कांपती और भौहें हिलतीं। अचानक उसका चेहरा आरक्त होने लगा। कुछ कहने के लिए वह तैयार हुई। पर उसके साथ आखें मिलते ही पुन. मुरझा गईं। शब्दो के प्रभाव का विश्वास जैसे खो गया।

वह उसे सहारा देने के लिए बोला, "मैं आपकी भावना को समझता हूं। पर क्या करूं, किसी की भी इच्छा के अनुकूल अपने को मैं नही ढाल पाता। मुझे लगता है मैं केवल अपने ही लिए जीता हू।"

अब वह बोली, "आपको अपनेपन का बहुत मान है शायद। किसी की भावना क्या चीज है, इसे समझते हैं आप—मुझे आश्चर्य है।"

"सभव है, मैं ठीक नही समझता। फिर भी मुझे थोड़ा खेद अवश्य होता है। मैं किसी को सुखी नही कर सकता।"

"किसी की खुशी की बात छोड़िए—आपकी अपनी खुशी क्या है? इस तरह की उदासीनता से केवल आप अपने को धोखे में रख सकते हैं। मैं जानती हूं आप इसे स्वीकार नहीं करेंगे। यह भी उसी प्रवृत्ति का एक अंश है।"

"आपका अध्ययन गलत भी हो सकता है।"

"यह बात टालने का ढंग है। आपको अपने को बदलना चाहिए। मैं कहती हूं, आपको अपने को बदलना पड़ेगा।"

राधा की उत्तेजना मे भी इतनी आत्मीयता आ गई थी कि वह सहसा उसका

प्रतिवाद नहीं कर सका। थोड़ी देर टाई से खेलता रहा। फिर एक सिगरेट सुलगा लिया। तब धीमे स्वर में बोला, "मेरे लिए परिवर्तन वही है, जो स्वयं हो जाता है। शेष जीवन की धारा है। उसके लिए पहले से काट-छांट करने का अवकाश ही कहां है?"

फिर घड़ी की ओर देखकर वह बोला, "अच्छा, अब तो मुझे जाना ही पड़ेगा। एक कवि मित्र से मिलने का वायदा है।"

'जाइए। आप किसी का अपने पर अधिकार क्यों मानें? परसों दोपहर को आइएगा?"

"चेष्टा करूंगा।"

"चेष्टा नहीं, अवश्य आइएगा।"

"अच्छा।"

दो रातें कानों में राधा के शब्दों की गूंज रही—आपको अपने को बदलना चाहिए। जीने के लिए? पर जीना कौन नहीं चाहता? पर चाहकर भी सबसे जिया नहीं जाता। वह अपने ढंग से जी रहा है? इतना ही सही। राधा उसे सिखाएगी? फिर भी, राधा की बात सुनकर मान जाने को क्यों मन चाहता है? आत्मीयता का एक आवरण क्यों ढक लेता है? कमजोरी है। ऐसी कमजोरी दूर करनी चाहिए। तृतीय वर्ष की एक छात्रा उसे बदल देगी। अभी वह नहीं समझती। पर वह स्वयं क्या सभी कुछ समझता है?

विचार अधिक भारी हो जाते, तो वह टेबल लैंप जलाकर नीत्शे के जीवन-दर्शन में से अपने लिए खोज निकालने में व्यस्त हो जाता। ऐसा कोई वाक्य मिल जाता कि 'स्त्रियों के संपर्क मे आओ, तो अपने चाबुक को मत भूलो,' तो वह एक आश्वासन-सा पाकर सो जाता।

फिर भी उन रातों मे कोई भी आश्वासन उसे शान्ति नहीं दे सका। वह उलझा रहा, व्यस्त रहा, सोचता रहा।

पर उस दिन निश्चित समय पर राधा के सामने जाकर क्या देखा? भावहीन अभिवादन से उसने उसे बिठाया। नरेन्द्र भी वहीं था, जिसने अधिक घनिष्ठता और सौजन्य का परिचय देने की चेष्टा की। पैराशूट के टुकड़ों से लेकर एल्सेशियन कुत्तों तक की बातें। वह तकता रहा। नरेन्द्र उस उकताहट को निर्वाचनों की चर्चा से और भी भड़काकर एक पुस्तक निकालने स्टडी रूम में चला गया।

राधा की बदली हुई भंगिमा की उपेक्षा करके उसने उतार फेंकने के ढंग से कहा, "आपको उस दिन कुछ कहना बाकी था न? अच्छा हो, पहले वही बात समाप्त कर लें।"

"नहीं, वह ऐसी कोई विशेष बात नहीं, राधा ने उसी भावहीन ढंग मे कहा। फिर जरा और गम्भीर स्वर में बोली, "एक और बात बताइएगा? यदि अधिक व्यक्तिगत हो, तो चाहे रहने दीजिएगा।"

"पूछिए।"

वह कुछ क्षण रुकी। अपनी जिज्ञासा के साथ शब्दों को शायद तौला। फिर कठिनता से पूछा, "इतना जान सकती हूं, श्यामा कौन है?"

प्रश्न के पीछे किसी और का छिपा आघात था! वह पचा लेने के लिए रुका। राह चलते अचानक धक्का खाकर जो चोट लगती है; वैसी ही चोट उसे लगी। पर वह शीघ्र ही संभल गया। सीधी दृष्टि से देखता बोला, "एक परिचित लड़की है। उसके विषय में आपको और क्या जानना है?"

"एक ऐसी बात है जो शायद आप बताना नही चाहेंगे।"

"ऐसी तो कोई बात नही। श्यामा के साथ मेरी मित्रता रही है। फिर वह अपने प्रेमी शील के साथ कराची चली गई थी। बाद मे मुझे बताया गया कि मैं उसके मा बनने के लिए उत्तरदाई हू। मैं ठीक नही जानता।"

इतने स्पष्ट शब्दो मे बात सुनने की आशा राधा को नही थी। वह पल-भर अवाक् उसे देखती रही। फिर आखें हटाकर उसने धीरे-से कहा, "तब तो ठीक ही है।"

"क्या ठीक है ?" उसने पूछा।

"कुछ नही," वह अचानक कृत्रिम होकर बोली, "मैं एक और ही बात सोच रही थी।"

"यह झूठ है," वह तीव्र हो उठा, "मैं जानता हू, यह सब जान लेने के बाद आपके पास अपनी भावना और ज़बान कुछ भी नही रहा। आप बुराई को पी सकती हैं, सच्चाई को नही। ठीक है न ?"

खामोशी से टाला जा सकना सभव होता, तो वह उत्तर न देती। पर शब्द इतने आक्रामक थे कि उसे बोलना पडा। कहा, "आप गुस्सा मत कीजिए। आप जो कुछ भी हैं, अपने लिए हैं। मैं उस दिन खामखाह आपसे इतनी बातें कहती रही। मुझे कहनी नही चाहिए थी।"

नरेन्द्र स्टडी रूम से किताब लेकर आया, जैसे क्यू के अनुसार रंगमंच पर प्रवेश कर रहा हो। अपनी भूमिका का वाछित परिणाम देखकर भी अनभिज्ञ-सा बोला, "आज कोई वाद-विवाद नही चला रहा ?"

तभी वह उठ खड़ा हुआ। कहा, "मैं अब चलूगा।"

राधा ने कुछ भी नही कहा। नरेन्द्र अभिनेता की-सी आश्चर्य की मुद्रा से बोला, "इतनी जल्दी ?"

"हा, ज़रा घूमने की तबीयत है।"

"फिर कब आ रहे हो ?" नरेन्द्र के शब्दो मे व्यग्य स्पष्ट था।

"देखो, शायद कभी आ सकू।"

इतना कहा और चल पड़ा। चलते-चलते राधा पर दृष्टि पड़ी। वह दूसरी ओर देख रही थी।

केसरी ने सिर उठाया। गिलास में व्हिस्की अब भी शेष थी। वर्मा मोहन के कानो के पास कोई शे'र गुनगुना रहा था। केसरी ने गिलास मुंह से लगाया और खाली कर दिया। फिर असंयत स्वर मे बोला, "एक और···बड़ा।"

रात के बारह बज चुके थे जब मोहन के साथ वह रेस्तरां से बाहर निकला। मोहन ने कहा, "अरे, तू गया नही···तुझे कही जाना था न !"

केसरी बात भूल चुका था।

मोहन ने फिर पूछा, "किसी लड़की से तो मिलना नही था ?"

केसरी झूलते स्वर मे बोला, "लड़की ? कौन लड़की ? कोई लड़की नही। पत्नी।"

"क्या बकता है ?" मोहन ने कहा, जैसे उसकी बेमतलब बहक का सब मतलब समझ रहा हो।

केसरी फिर बड़बड़ाया, "वह उस एक की पत्नी है। उसकी पत्नी जिसने उसे···"

मोहन उसे खींचकर कार मे ले चला। केसरी उसी तरह बड़बड़ाता रहा।

लक्ष्यहीन

आधी रात जा चुकी थी। केसरी अभी जाग रहा था। चाहता था सो जाए, पर नींद आए तब न। हारकर उसने टेबल लैंप जला लिया। फिर तकिए के सहारे बैठकर बाहर की ओर देखने लगा।

काली अंधेरी रात। सोते या जागते इसे बिता देना है। फिर सफेद दिन निकलेगा। हंसी या खेद में उसे भी काट देना है। फिर ऐसी ही रात आएगी। वह भी सोकर या जागकर…

ऐसा ही जीवन है। युगों से एक ही तरह सूर्योदय होता है और एक ही तरह सूर्यास्त। जीना-मरना सब एक-सा चलता है। इस सबकी आवश्यकता ही क्या है?

रोशनी बुरी लगने लगी। टेबल लैंप बुझा दिया। बेचैनी दूर नहीं हुई। नींद लाने की चेष्टा की, तो दिन की बातें मस्तिष्क मे उभरने लगीं। पलकें मूंद लीं, तो आंखें झांककर अंदर की ओर देखने लगीं।

बात छोटी-सी थी, पर बिलकुल छोटी नहीं थी। कितनी ही बातें पहले हो चुकी हैं। कौन जानता है, कितनी बातें अभी और होनी हैं? कब तक जीवन की ऐसी धारा चलती रहेगी?

पहले वह मंजुला को नहीं जानता था। आज ही दूर से वह दिखाई दी, और आज ही यह लंबी काली छाया हृदय पर आ पड़ी।

यूनीवर्सिटी के मैदान मे लड़कियों के खेल हो रहे थे। दर्शकों में वह सतीश और खन्ना के बीच में बैठा था। सतीश से परिचय खन्ना ने कराया था। कुछ ही मिनटों मे वह काफी घनिष्ठता से बातें करने लगा था। सतीश के बड़े-बड़े बाल बार-बार फिसलते थे और छोटी-छोटी आंखें लगातार घूमती थीं।

"चंद्रहास के क्या माने हैं?" सतीश ने पूछा।

"चांद की तरह हंसनेवाला," उसने उत्तर दिया।

"तब तो सचमुच ही तुम्हारे बगले का बहुत अच्छा नाम है। ऐसा ही कोई नाम मुझे भी बताओ।

उसी समय उसने दूर आधे ब्लाउज और अधकटे बालों वाली प्रौढा स्त्री को देखा, जो कुर्सियां लांघकर उसी की ओर आ रही थी। अपने ढले हुए यौवन को संभालने का उसका उत्साह देखकर हंसी भी आ सकती थी और सहानुभूति भी हो सकती थी।

"कोई नाम नहीं बता रहे?" सतीश ने फिर उससे पूछा।

स्त्री निकट आती गई। सतीश के पास आकर उसने उसे कंधे से हिलाया और हंस पड़ी। सतीश ने पहचाना और अभिवादन किया। स्त्री ने पूछा, "मंजुला से नहीं मिले?"

"नहीं, अभी नहीं मिला," सतीश ने कहा।

"वह चाटी-रेस में भाग ले रही है," स्त्री ने अपना कंधा खुजलाते हुए कहा, "मुझे तो विश्वास है, इस बार अवश्य जीत लेगी। पिछले साल दूसरी रही थी।"

वह बात तो सतीश से कर रही थी, और बार-बार देख उनकी ओर रही थी। उसकी अधेड़ शोखी मे भी एक तरह का रस था। वह एक-दो बार ऐसा अनुभव करके रह गया जैसे कोई फीता लेकर उसे इंचों के हिसाब से नाप रहा हो।

चाटी-रेस के आरंभ की सूचना दी गई। स्त्री वहीं उसके पास रुकी रही। भाग

लेने वाली बीस लड़कियां थी। वे पंक्ति मे खड़ी हो गईं। सीटी के साथ उन्होंने पैर बढ़ाए। सभी ओर हलचल हुई। सावले रंग की लंबी लड़की उनमें आगे निकलने लगी।

"निकल आई मजुल !" स्त्री ने सतीश के कधे को झकझोरकर कहा। फिर उत्तेजित स्वर मे बोली, "शाबाश, मजुल ! शाबाश !"

मंजुला आगे निकलती आई। दौड़ उसने जीत ली। स्त्री प्रसन्नता के आवेश मे सतीश को खीचकर साथ ले गई।

तब वह चारो ओर की भीड़ पर दृष्टि घुमाने लगा। पुरुष थे, जिनमें व्यक्तित्व-हीन गभीरता थी। स्त्रिया थी, जिनमें सौंदर्यहीन प्रदर्शन था। कटे-छटे शब्द। लिपी-पुती सजीवता।

थोडी देर मे सतीश लौटकर आया और रुचिपूर्वक बात करने लगा। उसकी टाई हाथ मे लेकर उसने रग की प्रशसा की और दाम भी पूछे। सतीश के कृत्रिम लहजे से प्रकट था कि वह कोई विशेष बात छेड़ने के लिए मानसिक भूमिका तैयार कर रहा है। अनुमान ठीक था। सतीश ने आखिर पुतलिया स्थिर करके कहा, "मजुला बहुत ही चुस्त लडकी है; तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

वह चुप रहा। मजुला को दौड़ते देखकर जो विचार हृदय मे आया था, उसे उसने खुलते होठो के नीचे दबाए रखा।

"अभी-अभी जो यहा मुझसे बात कर रही थी, वह उसकी ममी है," सतीश ने फिर कहा और एक तरह की मुसकराहट खीचकर बोला, "वह तुम्हारे विषय में पूछ रही थी।"

"क्यों ?" उसने अनायास कहा। वह स्त्री सुरमे से लदी आखों की कालिमा बार-बार जो उसपर छिटकाती रही थी, उसका अर्थ अब उसकी समझ में आने लगा।

सतीश यथासभव स्वाभाविकता के साथ बोला, "कारण तुम जान लोगे। मैंने तुम्हारा परिचय दे दिया है, पता भी बता दिया है और सिफारिश भी कर दी है।"

"तो कल मैं अपने प्रमाण पत्र लेता आऊगा, वे भी उन्हें दिखा देना," उसने व्यग्य किया। साथ ही उसकी कल्पना मे वह चित्र आया—सिर पर मटका रखे लम्बी-लम्बी टागो से शुतुरमुर्ग की तरह दौड़ती मजुला !

सतीश ने उसका व्यग्य या तो छुआ नही या पी लिया। अपनी बात जारी रखते हुए उसने खन्ना से पूछा, "क्यो, खन्ना, मजुला के विषय मे तुम्हारी क्या राय है ?"

"बहुत अच्छी लड़की है !" खन्ना ने दूर रहने के ढग से कहा।

सतीश की आखें फिर उससे आ मिली। वह मुसकराकर बोला, "लड़की अच्छी है, इसमे कोई सदेह नही। दूर से ही लगता है कि उसके शरीर में हर तरह के विटामिन हैं।"

सतीश की आखो का घूमना बद हो गया। वह नाखून से नाखून को छीलने लगा। अन्दर से उबलते शब्दों को थोड़ा चबाकर बोला, "इस तरह की बातें करना भद्र समाज का व्यवहार नही, मिस्टर केसरी।"

एक साधारण व्यग्य मे इतना छिन जाने का कोई कारण नही था। उसने सतीश की ओर बिना देखे कहा, "यह संभव है। मुझे छुरी-काटे से खाना खाते अभी बहुत दिन नहीं हुए।"

यहीं तक विनोद रहा। इसके बाद बातें गंभीर हो गईं। केवल सतीश ने ही नही खन्ना ने भी उसका तिरस्कार किया। यहा तक कहा कि वह किसी भली लड़की से परिचय कराए जाने का अधिकारी नही।

खिड़की से हवा का झोंका आया। केसरी ने करवट बदली। अन्दर-बाहर अन्धकार था। रात खामोश थी। झींगुर बोल रहे थे।

लम्बा जीवन काटना है। आज की बात ही एक बात नहीं। मनोहर, महेन्द्र, पूर्णिमा और राधा—इन सबकी बदली हुई मुद्राएं सामने आती हैं। यू लांछन और तिरस्कार सहकर जिए जाना भी क्या संभव है ? यदि नहीं, तो उसे सचमुच बदलना चाहिए।

वह पलंग पर सीधा होकर बैठ गया।

धुएं का गोला छोटे से बड़ा हुआ, फिर बिखर गया और विलीन हो गया। केसरी ने मुंह से दूसरा गोला छोड़ा। वह भी कुछ पल लचकता रहा, फिर ओझल हो गया। घंटे-भर से वह ऐसे ही गोले बना रहा था। उसके विचार गोलों के साथ ही साथ बन रहे थे और साथ ही साथ बिखरते जा रहे थे।

रात को वह देर से सोया था, और सबेरे देर से जागा था। खाना खाने के बाद वह सोफे पर लेट गया था। उसके मन में संघर्ष चल रहा था।

वह क्या है ? कैसा है ? क्यों ऐसा है ? ऐसा तो नहीं है। फिर कैसा है ?

और जैसे सध्या का बादल कभी अप्सरा और कभी दैत्य बनकर दिखाई देता है, वैसे ही वह बदलते हुए रूपों में अपने-आपको देख रहा था। समझने के लिए रुकता था, तो रूप और बदल जाता था, फिर बदल जाता था, फिर बदल जाता था, फिर बदल जाता था।

कबीरा आकर दो चिट्ठियां दे गया। चिट्ठिया लेकर उसने जेब में रख ली और सिगरेट पीता रहा। तीन बजे, चार बजे, साढ़े चार बजे। साढ़े चार बजे कबीरा ने चाय लाकर रखी। सिगरेट छोड़कर वह चाय पीने लगा। एक प्याला, फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा। शीशे में देखा बाल बिगड़ रहे हैं। उठकर बाल ठीक करने लगा।

रात को एक पुस्तक निकालकर मेज पर रखी थी। वह उसे पढ़ने के लिए सोफे पर ले आया। पहले पृष्ठ पर केवल दो ही पंक्तिया थी—

'जीना एक कला है। इस बात को जाननेवाला एक सफल कलाकार है।'

पन्ने पलटते-पलटते पुस्तक हाथ से फिसलकर गिर पड़ी। वह उसे उठाने के लिए झुका। जेब में से दो चिट्ठिया नीचे आ रही। तो ये चिट्ठियां अभी पढ़ी ही नहीं।

एक तो निमन्त्रण का कार्ड था। छपी हुई पंक्तियों के नीचे हाथ से लिखी गई एक पंक्ति भी थी। आज 'सोनाकुटी' में रात्रिभोज है। सरोज ने आने का अनुरोध किया है।

सरोज का हंसमुख चेहरा आंखों के सामने आ गया। वह कॉलेज मे उसकी सहपाठिनी थी। उसकी पुस्तकों पर गोल-गोल अक्षरों में हस्ताक्षर किया करती थी। विवाह के बाद वह पति के साथ लंदन चली गई थी। आज वहा से लौटकर रात्रिभोज दे रही है।

उसने दूसरा पत्र खोला। पढ़कर आश्चर्य हुआ। अस्थिरता के क्षण मे कभी कोयले की खानों के प्रबधक-पद के लिए प्रार्थना पत्र भेजा था। कलकत्ते से उसे नियुक्ति पत्र आया था। लिखा था, 'आप आगामी मास के प्रथम सप्ताह में कलकत्ते आकर अधिकार ग्रहण कर सकते हैं।'

'सोनाकुटी' को बाहर से सजाया जा रहा था। केसरी वहां पहुंचा, तो बिखरी हुई झंडियों का ढेर उसके लिए हटाया गया। जमीन पर लेटे रंगीन 'स्वागतम्' के ऊपर

से कूदकर उसने सरोज को देखा, जो बड़ी व्यस्तता से नौकरों को आदेश दे रही थी। उसे देखते ही वह बोली, "हलो शर्मा, आओ। मैं सपना तो नही देख रही?"

"मुझे डर है कि मैं सपना देख रहा हूं," केसरी ने उसके निकट पहुंचते हुए कहा। फिर इधर-उधर देखकर बोला, "मैं समय से पहले ही चला आया। सोचा, तुमसे लंदन के जीवन की चर्चा सुनूंगा। यह विचार ही नही आया कि तुम प्रबन्ध करने मे व्यस्त होगी।"

"अरे! नही, नही, मुझे क्या करना है। इन लोगों को थोड़ा समझा रही थी," सरोज ने गृहिणी के स्वर मे कहा, "चलो, अन्दर चलकर बैठें।"

केसरी ने अनुभव किया कि आज की सरोज भंडारी उस ज़माने की सरोज मेहरा से कहीं भिन्न है। वह प्राचीन भारत के शिलालेखो से उलझनेवाली लड़की विलायत से वहा की-सी वाणी सीखकर आई है। उसके शब्द एक बनावटी कोमलता लिए हुए व्यक्त होते हैं, और उनकी ध्वनि मे से भी अर्थ निकलता है — मैं हूं! मैं हूं! मैं हूं!

गोल कमरे मे आकर सरोज ने कहा, "तुम तो बिलकुल वैसे ही हो शर्मा, जैसे, दो वर्ष पहले थे। एक मिलीमीटर का भी अन्तर नही आया।"

"तुम मुझे बदली-सी लगती हो," केसरी ने कहा।

"कैसी लगती हू?"

"लगती हो, जैसे नया खिलौना एक रात बरसात में भीग गया हो।"

सरोज हस पड़ी। अपने बालो को झटककर बोली, "तुम वही हो शर्मा, बिलकुल वही। इन्ही बातो के लिए तुम्हारी याद आया करती थी। आज मैंने सौ व्यक्तियो को निमंत्रित किया है। उनमे से निन्यानवे मिलकर एक बनते है, और तुम अकेले एक हो। तुमने लॉ कर लिया?"

"नही छोड़ दिया।"

"तो आजकल क्या कर रहे हो?"

"स्वतंत्र अध्ययन अर्थात् कुछ भी नही।"

"सो मैं समझ सकती हूं," सरोज ने मुसकराकर कहा, "तुम्हारे लिए जीवन-मार्ग का निश्चय कर लेना उतना आसान नही, जितना और लोगो के लिए। मैं तो समझती हू कि तुम केवल एक आवारा ही बन सकते हो।" उसके स्वर में भारतीयता आती जा रही थी। "आवारा या राजनीतिज्ञ।"

"ठीक है! तो मैं लंबे-लंबे बाल रख लू और भूख और आज़ादी की बातें किया करू?"

सरोज फिर हंस दी। बोली, "मैं जानती हूं तुम सदा राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य कसा करते हो। पर फिर भी उस रूप मे तुम बहुत कुछ कर सकते हो। क्या मैं कल्पना करूं कि तुम किसी इंश्योरेंस कंपनी के मैनेजर बन जाओगे या माल पर होटल खोलकर ग्राहकों की सेवा किया करोगे?"

बाहर कुछ प्लेटें टूटने की आवाज़ आई। सरोज बीच मे ही उठती हुई बोली, "ठहरो, मैं देखू यह लोग क्या कर रहे हैं।" और तत्परता से बाहर चली गई।

सामने बंगले की छत पर एक हवामुर्ग घूम रहा था। केसरी उसे देखने लगा। उसका मन भी हवामुर्ग की तरह घूम रहा था। अनुभव हो रहा था कि वह स्वयं ही एक तरह का असमंजस है। अपने-आप मे उलझ जाना है और सुलझने के लिए हाथ पैर मारना है। पर गांठें मज़बूत हो जाती हैं। प्रयत्न छोड़ देता है, तो धागे ढीले होने लगते हैं। इसमे कोई रहस्य है। और जब वह रहस्य की बात सोचता है, तो उलझन फिर बढ़ने

लगती है; अन्तर फिर दुखने लगता है।

धीरे-धीरे उसने जेब में हाथ डाला। कलकत्ते से आया हुआ नियुक्ति पत्र निकाला और पढ़ने लगा।

दूर कहीं से मिल का भोंपू सुनाई दिया। केसरी के मस्तिष्क में उतरी कोयले की खानें सांसों में कोयला भरके मशीनों की तरह चलनेवाले मजदूर! सूर्योदय और सूर्यास्त। लेख, व्याख्यान, सभाएं! निर्वाचन और तालियां! पद प्राप्ति और शान! फिर रिश्वत, कालाबाजार, फूलों के हार और अभिनन्दन-पत्र!

उसने हाथ के कागज को देखा। उंगलियों ने कागज़ को एक ही आकार के सोलह टुकड़ों में फाड़ दिया था। वह टुकड़े उसने जेब में डाल लिए।

मिसेज वर्मा चम्मच से सूप पी रही थी। केसरी मोटे-मोटे होंठों में चम्मच का आना-जाना देख रहा था।

दोनों एक ही मेज़ पर बैठे थे। सरोज उनका परिचय कराके दूसरे मेहमानों के पास चली गई थी।

मिसेज़ वर्मा ने चम्मच रखकर होंठ पोंछते हुए कहा, "आपने 'सदाचार' में मेरे लेख पढ़े हैं?"

"एक-दो लेख मैंने पढ़े हैं। आपकी भाषा बहुत जानदार होती है, इसमें संदेह नहीं।" केसरी ने कहा।

मिसेज़ वर्मा के होंठ फैल गए। बोली, 'मैं समाज का पूरा सुधार चाहती हूं। जो बातें मैंने लिखी हैं, उनकी सभी ने प्रशंसा की है।"

"भाषा की प्रशंसा मैं भी करता हूं, पर आपके विचारों से मैं सहमत नहीं," वह बोला।

मिसेज वर्मा ने रूमाल से माथा पोंछा और अपनी प्रौढ़ता को तराजू में डालकर भारी होने की चेष्टा करती बोली, "तुम अभी नौजवान हो भाई। मैंने तुमसे बीस वर्ष अधिक जीकर देखा है।"

"ठीक है, पर आपके विचार में समाज का अर्थ एक विशेष वर्ग है। सुधार का अर्थ एक विशेष तरह का व्यवहार है, जो उस वर्ग को अपना लेना चाहिए। वाद से आपका अभिप्राय है उस विषय में टीका-टिप्पणी। ये बहुत संकुचित धारणाएं हैं।"

मिसेज वर्मा जैसे अस्त्र चढ़ाती बोली, "पहले अपने वर्ग का ही सुधार होना चाहिए। उसके बाद ही कोई दूसरा कदम उठाया जा सकता है।"

केसरी बात नहीं सुन रहा था। उसकी आंखें कोने की मेज़ के पास जाकर रुक गई थीं। वहां सरोज हरी साड़ीवाली नवयुवती से हंसकर बातें कर रही थी। वह नवयुवती थी मंजुला, जिसे कल घाटी-रेस में दौड़ते देखा था। उधर से ध्यान हटाकर उसने मिसेज वर्मा की ओर देखा, फिर प्लेट बढ़ाता बोला, 'केक लीजिए!"

"नहीं धन्यवाद," मिसेज़ वर्मा ने बड़प्पन बिखेरते हुए कहा। फिर कुछ रुककर बोली, "आप समाजवादी हैं?"

पर वह फिर दूसरी ओर देखने लगा था। सरोज उसकी ओर संकेत करके मंजुला से कुछ कह रही थी। मंजुला ने सीधी नज़र से उसे देखा। वह फिर मिसेज वर्मा से बात करने लगा। बोला, "आपने कोई पुस्तक भी लिखी है?"

"शर्मा!" सरोज ने उसे दूर से पुकारा। उसने देखा सरोज उसे हाथ के संकेत से अपने पास बुला रही है। यह भी देखा कि मंजुला की आंखों में एक तरह का कुतूहल है।

वह गंभीर मुद्रा धारण किए उठा और मिसेज़ वर्मा से बोला, "क्षमा कीजिएगा, मैं अभी आता हूं।"

"क्या उलझ रहे थे मिसेज़ वर्मा से ?" सरोज ने पूछा।

"कुछ नहीं, उन्हें उनके हित की एक बात बतलाने जा रहा था," उसने बैठते हुए कहा।

"कौन सी बात ?"

"यही कि एक तो उन्हें सवेरे सिर की मालिश करवानी चाहिए और दूसरे रात को सोते समय गरम दूध के साथ एक चम्मच फ्रूट-साल्ट ले लेना चाहिए।"

"तुम तो नरमेध करते हो, शर्मा !" सरोज खिलती हुई बोली, "पहले मैं तुम्हारा परिचय कराऊं। मंजुला देवल—एम० ए० करके ऑक्सफोर्ड जाने वाली हैं। यह शर्मा। परिचय मैं पहले ही दे चुकी हूं।"

"मुझे आपसे मिलकर प्रसन्नता हुई," मंजुला ने उसकी आंखों में देखते हुए कहा।

"मुझे आपसे यह जानकर प्रसन्नता हुई," उसने उत्तर में कहा। मंजुला मुसकराई। बोली, सरोज कह रही थी कि मैं ऑक्सफोर्ड जाने से पहले आपसे कुछ सीख सकती हूं।"

"मुझसे ?"

"क्यों नहीं ?" सरोज बीच में ही बोली, "मंजुला वहां के सामाजिक जीवन की बात पूछ रही थी। मैंने कहा अपनी लोकप्रियता का रहस्य इसे बतला दिया है।"

"कोई गुप्त रहस्य है ?"

"गुप्त रहस्य नहीं, चलता-फिरता रहस्य है, और वह तुम हो।"

"मैं ?"

"हां, तुम !"

केसरी ने आश्चर्य से सरोज को देखा ! सरोज के स्वर में व्यंग्य नहीं था। मंजुला उसे ध्यान से देख रही थी। जैसे किसी रोचक कहानी का अंतिम पृष्ठ पढ़ रही हो। मंजुला के भरे हुए चेहरे पर उत्सुकता भी थी, लापरवाही भी। वह कल की बात सोचने लगा।

'सोनाकुटी' से बाहर आकर मंजुला ने पूछा, "आपके साथ गाड़ी है ?"

"नहीं, मुझे अधिक दूर नहीं जाना है, मैं पैदल जा सकता हूं," केसरी ने कहा।

"मेरी गाड़ी में बैठ जाइए। मैं रास्ते में छोड़ दूंगी।"

गाड़ी सड़क पर लाकर मंजुला बोली, "आज का भोजन तो बहुत ही सफल रहा। कम से कम मैं इसे नहीं भूल सकती।"

"मैं भी ऐसा ही सोचता हूं," उसने कहा।

"मैं समझती हूं हमारा परिचय यहीं समाप्त नहीं हो जाएगा। क्यों ?"

"नहीं, मैं ऐसा नहीं समझता," उसके शब्दों की ध्वनि में दोनों अर्थ निकल सकते थे।

"सरोज आपकी बहुत तारीफ करती है।"

वह चुप रहा। गाड़ी चली जा रही थी। वह अंधेरे में पीछे हटते वृक्षों को देखने लगा। शरीर हल्का हो रहा था। चालीस पर चलती गाड़ी की रफ्तार उसे सुस्त मालूम दे रही थी। उसे लग रहा था कि वह मंजुला के साथ रेस में दौड़ रहा है। हाथ कोट की

जेब में चला गया। कुछ कागज़ के टुकड़े हाथ लगे। वह उसने निकाल लिए और हवा में उड़ जाने दिए।

मंजुला के बाल उड़कर होंठों पर गिर रहे थे। वह जैसे तेज़ी से किसी पहाड़ से फिसल रही थी।

केसरी अपना रास्ता देख रहा था। चौड़ी सड़क पर आते ही उसने कहा, "मुझे दोराहे पर उतार देना। मैं वहां से लॉरेंस रोड पर पैदल चला जाऊंगा।"

"आप लॉरेंस रोड पर रहते हैं?" मंजुला ने गाड़ी की गति धीमी करते हुए पूछा।

केसरी ने सिर हिला दिया।

"कौन-सा बंगला है आपका?"

केसरी ने दो क्षण मौन रहकर कुछ सोचा। फिर बोला, "चन्द्रहास।"

"चन्द्रहास?" मंजुला को जैसे शतरंज के तख्ते पर शह दे दी गई हो।

'वहां कोई और भी रहता है?" उसने सभलते हुए पूछा।

"किस भाग में? बंगले के कई भाग हैं।"

"यह मैं नहीं जानती। पर केसरी नाम का कोई आदमी है?"

केसरी के मस्तिष्क में कल की घटना घूम गई— यूनीवर्सिटी का मैदान। खन्ना, सतीश, मंजुला की मां और मंजुला। फिर मंजुला की ओर देखकर बोला, "आप उसे जानती हैं?"

मंजुला का रंग थोड़ा लाल हुआ, लाल से पीला, फिर ठीक हो गया। लापरवाही से वह बोली, "जानती तो नहीं, पर उसके विषय में कुछ सुना ज़रूर था कल।"

"क्या सुना था?"

"वह काफी सनकी है, काफी बददिमाग और व्यवहार-शून्य। आप तो जानते होंगे।"

"नहीं, इतना नहीं जानता।"

गाड़ी दोराहे पर रुकी। केसरी बाहर निकला। मंजुला बोली, "वह आपका मित्र तो नहीं?"

"क्यों?"

"सोचती हूं कहीं आपने मेरी बात का बुरा न माना हो।"

"नहीं, वह मेरा मित्र नहीं है।"

"इतना सुन्दर समय बिताने के लिए धन्यवाद," मंजुला ने उसकी आंखों में मुसकराकर कहा।

"गाड़ी में साथ लाने के लिए धन्यवाद," केसरी ने कहा।

"गुड नाइट!"

"गुड नाइट!"

गाड़ी आगे चली गई। केसरी पैदल चलने लगा। निर्जन और एकान्त। फैली हुई सड़क और दूर-दूर बत्तियां! रोशनी और छाया, रोशनी और छाया, रोशनी और छाया···

अपरिचित

कोहरे की वजह से खिडकियो के शीशे धुधले पड़ गए थे। गाड़ी चालीस की रफ्तार से सुनसान अधेरे को चीरती चली जा रही थी। खिडकी से सिर सटाकर भी बाहर कुछ दिखाई नही देता था। फिर भी मैं देखने की कोशिश कर रहा था। कभी किसी पेड की हल्की-गहरी रेखा ही गुजरती नजर आ जाती तो कुछ देख लेने का सन्तोष होता। मन को उलझाए रखने के लिए इतना ही काफी था। आखो मे जरा नीद नही थी। गाड़ी को जाने कितनी देर बाद कही जाकर रुकना था। जब और कुछ दिखाई न देता, तो अपना प्रतिबिम्ब तो कम से कम देखा ही जा सकता था। अपने प्रतिबिम्ब के अलावा और भी कई प्रतिबिम्ब थे। ऊपर की बर्थ पर सोये व्यक्ति का प्रतिबिम्ब अजब बेबसी के साथ हिल रहा था। सामने की बर्थ पर बैठी स्त्री का प्रतिबिम्ब बहुत उदास था। उसकी भारी पलकें पल-भर के लिए ऊपर उठती, फिर झुक जाती। आकृतियों के अलावा कई बार नई-नई आवाजें ध्यान बटा देती, जिनसे पता चलता कि गाडी पुल पर से जा रही है या मकानो की कतार के पास से गुजर रही है। बीच मे सहसा इंजन की चीख सुनाई दे जाती, जिससे अधेरा और एकान्त और गहरे महसूस होने लगते।

मैंने घडी मे वक्त देखा। सवा ग्यारह बजे थे। सामने बैठी स्त्री की आंखें बहुत सुनसान थी। बीच-बीच मे उनमे एक लहर-सी उठती और विलीन हो जाती। वह जैसे आखो से देख नही रही थी, सोच रही थी। उसकी बच्ची, जिसे फर के कम्बलो मे लपेट-कर सुलाया गया था, जरा-जरा कुनमुनाने लगी। उसकी गुलाबी टोपी सिर से उतर गई थी। उसने दो-एक बार पैर पटके, अपनी बधी हुई मुट्ठियां ऊपर उठाई और रोने लगी। स्त्री की सुनसान आखें सहसा उमड आई। उसने बच्ची के सिर पर टोपी ठीक कर दी और उसे कम्बलो समेत उठाकर छाती से लगा लिया।

मगर इससे बच्ची का रोना बन्द नही हुआ। उसने उसे हिलाकर और दुलारकर चुप कराना चाहा, मगर वह फिर भी रोती रही। इस पर उसने कम्बल थोड़ा हटाकर बच्ची के मुह मे दूध दे दिया और उसे अच्छी तरह अपने साथ सटा लिया।

मैं फिर खिडकी से सिर सटाकर बाहर देखने लगा। दूर बत्तियो की एक कतार नजर आ रही थी। शायद कोई आबादी थी, या सिर्फ सडक ही थी। गाडी तेज रफ्तार से चल रही थी और इजन बहुत पास होने से कोहरे के साथ धुआं भी खिडकी के शीशो पर जमता जा रहा था। आबादी या सड़क, जो भी वह थी, अब धीरे-धीरे पीछे रही जा रही थी। शीशे मे दिखाई देते प्रतिबिम्ब पहले से गहरे हो गए थे। स्त्री की आखें मुंद गई थीं और ऊपर लेटे व्यक्ति की बाह जोर-जोर से हिल रही थी। शीशे पर मेरी सास के फैलने से प्रतिबिम्ब और धुधले हो गए थे। यहा तक कि धीरे-धीरे सब प्रतिबिम्ब अदृश्य हो गए। मैंने तब जेब से रूमाल निकालकर शीशे को अच्छी तरह पोंछ दिया।

स्त्री ने आखें खोल ली थीं और एकटक सामने देख रही थी। उसके होठों पर हल्की-सी रेखा फैली थी जो ठीक मुसकराहट नही थी। मुसकराहट से बहुत कम व्यक्त उस रेखा मे कहीं गम्भीरता भी थी और अवसाद भी—जैसे वह अनायास उभर आई किसी स्मृति की रेखा थी। उसके माथे पर हल्की-सी सिकुड़न पड़ गई थी।

बच्ची जल्दी ही दूध से हट गई। उसने सिर उठाकर अपना बिना दात का मुंह खोल दिया और किलकारी भरती हुई मा की छाती पर मुट्ठियो से चोट करने लगी। दूसरी तरफ से आती एक गाड़ी तेज रफ्तार से पास से गुजरी तो वह जरा सहम गई,

मगर गाडी के निकलते ही और भी मुंह खोलकर किलकारी भरने लगी। बच्ची का चेहरा गदराया हुआ था और उसकी टोपी के नीचे से भूरे रंग के हल्के-हल्के बाल नज़र आ रहे थे। उसकी नाक ज़रा छोटी थी, पर आखें मां की ही तरह गहरी और फैली हुई थी। मां के गाल और कपडे नोचकर उसकी आंखें मेरी तरफ घूम गईं और वह बाहें हवा में पटकती हुई मुझे अपनी किलकारियों का निशाना बनाने लगी।

स्त्री की पलकें उठी और उसकी उदास आंखें क्षण-भर मेरी आखों से मिली रहीं। मुझे उस क्षण-भर के लिए लगा कि मैं एक ऐसे क्षितिज को देख रहा हूं जिसमें गहरी साझ के सभी हल्के-गहरे रंग झिलमिला रहे हैं और जिसका दृश्यपट क्षण के हर सौवें हिस्से में बदलता जा रहा है···।

बच्ची मेरी तरफ देखकर बहुत हाथ पटक रही थी, इसलिए मैंने अपने हाथ उसकी तरफ बढा दिए और कहा, "आ बेटे, आ···।"

मेरे हाथ पास आ जाने से बच्ची के हाथों का हिलना बन्द हो गया और उसके होंठ रुआसे हो गए।

स्त्री ने बच्ची को अपने होठो से छुआ और कहा, "जा बिट्टू, जाएगी उनके पास ?"

लेकिन बिट्टू के होंठ और रुआंसे हो गए और वह मा के साथ सट गई।

"ग़ैर आदमी से डरती है," मैंने मुसकराकर कहा और हाथ हटा लिए।

स्त्री के होठ भिच गए और माथे की खाल मे थोड़ा खिचाव आ गया। उसकी आंखें जैसे अतीत में चली गईं। फिर सहसा वहा से लौट आईं और वह बोली, "नही, डरती नही। इसे दरअसल आदत नही है। यह आज तक या तो मेरे हाथो में रही है या नौकरानी के···," और वह उसके सिर पर झुक गई। बच्ची उसके साथ सटकर आंखें झपकने लगी। महिला उसे हिलाती हुई थपकिया देने लगी। बच्ची ने आखें मूद ली। महिला उसकी तरफ देखती हुई जैसे चूमने के लिए होठ बढाए उसे थपकियां देती रही। फिर एकाएक उसने झुककर उसे चूम लिया।

"बहुत अच्छी है हमारी बिट्टू, झट-से सो जाती है," यह उसने जैसे अपने से कहा और मेरी तरफ देखा। उसकी आखो मे एक उदास-सा उत्साह भर रहा था।

"कितनी बड़ी है यह बच्ची ?" मैंने पूछा।

"दस दिन बाद पूरे चार महीने की हो जाएगी," वह बोली, "पर देखने मे अभी उससे छोटी लगती है। नही ?"

मैंने आंखों से उसकी बात का समर्थन किया। उसके चेहरे मे एक अपनी ही सहजता थी—विश्वास और सादगी की। मैंने सोई हुई बच्ची के गाल को ज़रा-सा सहला दिया। स्त्री का चेहरा और भावपूर्ण हो गया।

"लगता है आपको बच्चो से बहुत प्यार है," वह बोली, "आपके कितने बच्चे हैं ?"

मेरी आंखें उसके चेहरे से हट गईं। बिजली की बत्ती के पास एक कीड़ा उड़ रहा था।

"मेरे ?" मैंने मुसकराने की कोशिश करते हुए कहा, "अभी तो कोई नही है, मगर···।"

"मतलब ब्याह हुआ है, अभी बच्चे-अच्चे नही हुए," वह मुसकराई "आप मर्द लोग तो बच्चो से बचे ही रहना चाहते हैं न ?"

मैंने होठ सिकोड़ लिए और कहा, "नही, यह बात नही···।"

"हमारे ये तो बच्ची को छूते भी नहीं," वह बोली, "कभी दो मिनट के लिए भी उठाना पड़ जाए तो झल्लाने लगते हैं। अब तो खैर वे इस मुसीबत से छूटकर बाहर ही चले गए हैं।" और सहसा उसकी आंखें छलछला आईं। रुलाई की वजह से उसके होठ बिलकुल उस बच्ची जैसे हो गए थे। फिर सहसा उसके होठों पर मुसकराहट लौट आई—जैसा अक्सर सोए हुए बच्चों के साथ होता है। उसने आंखें झपककर अपने को सहेज लिया और बोली, "वे डॉक्टरेट के लिए इंगलैण्ड गए हैं। मैं उन्हें बम्बई में जहाज पर चढ़ाकर आ रही हूं।···वैसे छः-आठ महीने की बात है। फिर मैं भी उनके पास चली जाऊंगी।"

फिर उसने ऐसी नजर से मुझे देखा जैसे उसे शिकायत हो कि मैंने उसकी इतनी व्यक्तिगत बात उससे क्यों जान ली !

"आप बाद में अकेली जाएंगी ?" मैंने पूछा, "इससे तो आप अभी साथ चली जाती···।"

उसके होठ सिकुड़ गए और आंखें फिर अन्तर्मुख हो गईं। वह कई पल अपने में डूबी रही और उसी भाव से बोली, "साथ तो नहीं जा सकती थी क्योंकि अकेले उनके जाने की भी सुविधा नहीं थी। लेकिन उनको मैंने किसी तरह भेज दिया है। चाहती थी कि उनकी कोई तो चाह मुझसे पूरी हो जाए।···दीशी की बाहर जाने की बहुत इच्छा थी।···अब छः-आठ महीने मैं अपनी तनखाह में से कुछ पैसा बचाऊंगी और थोड़ा-बहुत कहीं से उधार लेकर अपने जाने का इंतजाम करूंगी।"

उसने सोच में डूबती-उतराती अपनी आंखों को सहसा सचेत कर लिया और फिर कुछ क्षण शिकायत की नजर से मुझे देखती रही। फिर बोली, "अभी बिट्टू भी बहुत छोटी है न ? छः-आठ महीने में यह बड़ी हो जाएगी और मैं भी तब तक थोड़ा और पढ़ लूंगी। दीशी की बहुत इच्छा है कि मैं एम० ए० कर लूं। मगर मैं ऐसी जड़ और नाकारा हूं कि उनकी कोई भी चाह पूरी नहीं कर पाती। इसीलिए इस बार उन्हें भेजने के लिए मैंने अपने सब गहने बेच दिए हैं। अब मेरे पास बस मेरी बिट्टू है, और कुछ नहीं।" और वह बच्ची के सिर पर हाथ फेरती हुई, भरी-भरी नजर से उसे देखती रही।

बाहर वही सुनसान अंधेरा था, वही लगातार सुनाई देती इंजन की फक्-फक्। शीशे से आंख गड़ा लेने पर भी दूर तक वीरानगी ही वीरानगी नजर आती थी।

मगर उस स्त्री की आंखों में जैसे दुनिया-भर की वत्सलता सिमट आई थी। वह फिर कई क्षण अपने में डूबी रही। फिर उसने एक उसांस ली और बच्ची को अच्छी तरह कम्बलों में लपेटकर सीट पर लिटा दिया।

ऊपर की बर्थ पर लेटा हुआ आदमी खुर्राटे भर रहा था। एक बार करवट बदलते हुए वह नीचे गिरने को हुआ, पर सहसा हड़बड़ाकर संभल गया। फिर कुछ ही देर में वह और जोर से खुर्राटे भरने लगा।

"लोगों को जाने सफर में कैसे इतनी गहरी नींद आ जाती है !" वह स्त्री बोली, "मुझे दो-दो रातें सफर करना हो, तो भी मैं एक पल नहीं सो पाती। अपनी-अपनी आदत होती है !"

"हां, आदत की ही बात है," मैंने कहा, "कुछ लोग बहुत निश्चिन्त होकर जीते हैं और कुछ होते हैं कि···।"

"बगैर चिन्ता के जी ही नहीं सकते !' और वह हंस दी। उसकी हंसी का स्वर भी बच्चों जैसा ही था। उसके दांत बहुत छोटे-छोटे और चमकीले थे। मैंने भी उसकी

हंसी में साथ दिया।

"मेरी बहुत खराब आदत है," वह बोली, "मैं बात-बेबात के सोचती रहती हूं। कभी-कभी तो मुझे लगता है कि मैं सोच-सोचकर पागल हो जाऊंगी। ये मुझसे कहते हैं कि मुझे लोगों से मिलना-जुलना चाहिए, खुलकर हंसना, बात करना चाहिए, मगर इनके सामने मैं ऐसे गुम-सुम हो जाती हूं कि क्या कहूं ? वैसे और लोगों से भी मैं ज्यादा बात नही करती लेकिन इनके सामने तो चुप्पी ऐसी छा जाती है जैसे मुह से ज़बान हो ही नही "।"'अब देखिए न, इस वक्त कैसे लतर-लतर बात कर रही हू !" और वह मुसकराई। उसके चेहरे पर हल्की-सी संकोच की रेखा आ गई।

"रास्ता काटने के लिए बात करना जरूरी हो जाता है," मैंने कहा, 'खास-तौर से जब नीद न आ रही हो।"

उसकी आंखें पल-भर फैली रहीं। फिर वह गरदन ज़रा झुकाकर बोली, "ये कहते हैं कि जिसके मुंह मे ज़बान ही न हो, उसके साथ पूरी ज़िंदगी कैसे काटी जा सकती है ? ऐसे इन्सान में और एक पालतू जानवर मे क्या फर्क है ? मैं हज़ार चाहती हूं कि इन्हे खुश दिखाई दूं और इनके सामने कोई न कोई बात करती रहू, लेकिन मेरी सारी कोशिशें बेकार चली जाती हैं। इन्हें फिर गुस्सा आ जाता है और मैं रो देती हू। इन्हें मेरा रोना बहुत बुरा लगता है।" कहते हुए उसकी आंखो मे आंसू छलक आए, जिन्हे उसने अपनी साड़ी के पल्ले से पोछ लिया।

"मैं बहुत पागल हूं," वह फिर बोली, "ये जितना मुझे टोकते हैं, मैं उतना ही ज्यादा रोती हू। दरअसल ये मुझे समझ नही पाते। मुझे बात करना अच्छा नही लगता, फिर जाने क्यों ये मुझे बात करने के लिए मजबूर करते हैं ?" और फिर माथे को हाथ से दबाए हुए बोली, "आप भी अपनी पत्नी से ज़बर्दस्ती बात करने के लिए कहते हैं ?"

मैंने पीछे टेक लगाकर कन्धे सिकोड़ लिए और हाथ बगलों में दबाए बत्ती के पास उड़ते कीड़े को देखने लगा। फिर सिर को ज़रा-सा झटककर मैंने उसकी तरफ देखा। वह उत्सुक नज़र से मेरी तरफ देख रही थी।

"मैं ?" मैंने मुसकराने की चेष्टा करते हुए कहा, "मुझे यह कहने का कभी मौका ही नही मिल पाता। मैं बल्कि पांच साल से यह चाह रहा हूं कि वह ज़रा कम बात किया करे। मैं समझता हूं कि कई बार इन्सान चुप रहकर ज्यादा बात कह सकता है। ज़बान से कही बात में वह रस नही होता जो आंख की चमक से या होंठो के कंपन से या माथे की एक लकीर से कही गई बात में होता है। मैं जब उसे यह समझाना चाहता हूं, तो वह मुझे विस्तारपूर्वक बता देती है कि ज्यादा बात करना इन्सान की निश्छलता का प्रमाण है और मैं इतने सालो मे अपने प्रति उसकी भावना को समझ ही नही सका ! वह दरअसल कालेज में लेक्चरर है और अपनी आदत की वजह से घर में भी लेक्चर देती रहती है।"

"ओह !" वह थोड़ी देर दोनों हाथों मे अपना मुंह छिपाए रही। फिर बोली, "ऐसा क्यो होता है, यह मेरी समझ मे नहीं आता। मुझे दोशी से यही शिकायत है कि ये मेरी बात नही समझ पाते। मैं कई बार उनके बालों में अपनी उंगलियां उलझाकर उनसे बात करना चाहती हूं, कई बार उनके घुटनो पर सिर रखकर मुंदी आंखो से उनसे कितना-कुछ कहना चाहती हूं। लेकिन उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगता। वे कहते हैं कि यह सब गुड़ियों का खेल है, उनकी पत्नी को जीता-जागता इंसान होना चाहिए। और मैं इंसान बनने की बहुत कोशिश करती हूं, लेकिन नहीं बन पाती, कभी नही बन पाती।

इन्हें मेरी कोई आदत अच्छी नहीं लगती। मेरा मन होता है कि चांदनी रात में खेतों में घूमूं, या नदी में पैर डालकर घंटों बैठी रहूं, मगर ये कहते हैं कि ये सब आइडल मन की वृत्तियां हैं। इन्हें क्लब, संगीत-सभाएं और डिनर-पार्टियां अच्छी लगती हैं। मैं इनके साथ वहां जाती हूं तो मेरा दम घुटने लगता है। मुझे वहां जरा अपनापन महसूस नहीं होता। ये कहते हैं कि तू पिछले जन्म में मेंढकी थी जो तुझे क्लब में बैठने की बजाय खेतों में मेंढकों की आवाज़ें सुनना ज्यादा अच्छा लगता है। मैं कहती हूं कि मैं इस जन्म में भी मेंढकी हूं। मुझे बरसात में भीगना बहुत अच्छा लगता है। और भीगकर मेरा मन कुछ न कुछ गुनगुनाने को कहने लगता है--हालांकि मुझे गाना नहीं आता। मुझे क्लब में सिगरेट के धुएं में घुटकर बैठे रहना नहीं अच्छा लगता। वहां मेरे प्राण गले को आने लगते हैं।"

उस थोड़े-से समय में ही मुझे उसके चेहरे का उतार-चढ़ाव काफी परिचित लगने लगा था। उसकी बात सुनते हुए मेरे मन पर हल्की उदासी छाने लगी थी, हालांकि मैं जानता था कि वह कोई भी बात मुझसे नहीं कह रही—वह अपने से बात करना चाहती है और मेरी मौजूदगी उसके लिए सिर्फ एक बहाना है। मेरी उदासी भी उसके लिए न होकर अपने लिए थी, क्योंकि बात उससे करते हुए भी मुख्य रूप से मैं सोच अपने विषय में रहा था। मैं पांच साल से मंजिल-दर-मंजिल विवाहित जीवन से गुज़रता आ रहा था—रोज़ यही सोचते हुए कि शायद आनेवाला कल ज़िन्दगी के इस ढांचे को बदल देगा। सतह पर हर चीज़ ठीक थी, कहीं कुछ गलत नहीं था, मगर सतह से नीचे जीवन कितनी-कितनी उलझनों और गांठों से भरा था! मैंने विवाह के पहले दिनों में ही जान लिया था कि नलिनी मुझसे विवाह करके सुखी नहीं हो सकी, क्योंकि मैं उसकी कोई भी महत्त्वाकांक्षा पूरी करने में सहायक नहीं हो सकता। वह एक भरा-पूरा घर चाहती थी, जिसमें उसका शासन हो और ऐसा सामाजिक जीवन जिसमें उसे महत्त्व का दर्जा प्राप्त हो। वह अपने से स्वतन्त्र अपने पति के मानसिक जीवन की कल्पना नहीं करती थी। उसे मेरी भटकने की वृत्ति और साधारण का मोह मानसिक विकृतियां लगती थीं जिन्हें वह अपने अधिक स्वस्थ जीवन-दर्शन से दूर करना चाहती थी। उसने इस विश्वास के साथ जीवन आरम्भ किया था कि वह मेरी त्रुटियों की क्षतिपूर्ति करती हुई बहुत शीघ्र मुझे सामाजिक दृष्टि से सफल व्यक्ति बनने की दिशा में ले जाएगी। उसकी दृष्टि में यह मेरे संस्कारों का दोष था जो मैं इतना अन्तर्मुख रहता था और इधर-उधर मिल-जुलकर आगे बढ़ने का प्रयत्न नहीं करता था। वह इस परिस्थिति को सुधारना चाहती थी, पर परिस्थिति सुधरने की जगह बिगड़ती गई थी। वह जो कुछ चाहती थी, वह मैं नहीं कर पाता था और जो कुछ मैं चाहता था, वह उससे नहीं होता था। इसमें हममें अक्सर चख-चख होने लगती थी और कई बार दीवारों से सिर टकराने की नौबत आ जाती थी। मगर यह सब हो चुकने पर नलिनी बहुत जल्दी स्वस्थ हो जाती थी और उसे फिर मुझसे यह शिकायत होती थी कि मैं दो दो दिन अपने को उन साधारण घटनाओं के प्रभाव से मुक्त क्यों नहीं कर पाता। मगर मैं दो-दो दिन क्या, कभी उन घटनाओं के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाता था, और रात को जब वह सो जाती थी, तो घंटों तकिये में मुंह छिपाए कराहता रहता था। नलिनी आपसी झगड़े को उतना अस्वाभाविक नहीं समझती थी, जितना मेरे रात-भर जागने को, और उसके लिए मुझे नर्व टॉनिक लेने की सलाह दिया करती थी। विवाह के पहले दो वर्ष इसी तरह बीते थे और उसके बाद हम अलग-अलग जगह काम करने लगे थे। हालांकि समस्या ज्यों की त्यों बनी थी, और जब भी हम इकट्ठे होते, वही पुरानी ज़िन्दगी लौट आती थी, फिर भी नलिनी का यह विश्वास

अभी कम नहीं हुआ था कि कभी न कभी मेरे सामाजिक संस्कारों का उदय अवश्य होगा और तब हम साथ रहकर सुखी विवाहित जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

"आप कुछ सोच रहे हैं ?" उस स्त्री ने अपनी बच्ची के सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

मैंने सहसा अपने को सहेजा और कहा, "हां, मैं आप ही की बात को लेकर सोच रहा था। कुछ लोग होते है, जिनसे दिखावटी शिष्टाचार आसानी से नही ओढ़ा जाता। आप भी शायद उन्ही लोगों में से हैं।"

"मैं नही जानती," वह बोली, "मगर इतना जानती हूं कि मैं बहुत-से परिचित लोगों के बीच अपने को अपरिचित, बेगाना और अनमेल अनुभव करती हूं। मुझे लगता है कि मुझमें ही कुछ कमी है। मैं इतनी बड़ी होकर भी वह कुछ नही जान-समझ पाई, जो लोग छुटपन मे ही सीख जाते है। दोशी का कहना है कि मैं सामाजिक दृष्टि से बिलकुल मिसफिट हूं।"

"आप भी यही समझती हैं ?" मैंने पूछा।

"कभी समझती हूं, कभी नही भी समझती," वह बोली, "एक खास तरह के समाज में मैं जरूर अपने को मिसफिट अनुभव करती हूं। मगर···कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनके बीच जाकर मुझे बहुत अच्छा लगता है। ब्याह से पहले मैं दो-एक बार कालेज की पार्टियों के साथ पहाड़ों पर घूमने के लिए गई थी। वहां सब लोगों को मुझसे यही शिकायत होती थी कि मैं जहां बैठ जाती हूं, वहीं की हो सकती हूं। मुझे पहाड़ी बच्चे बहुत अच्छे लगते थे। मैं उनके घर के लोगों से भी बहुत जल्दी दोस्ती कर लेती थी। एक पहाड़ी परिवार की मुझे आज तक याद है। उस परिवार के बच्चे मुझसे इतना घुल-मिल गए थे कि मैं बड़ी मुश्किल से उन्हें छोड़कर उनके यहां से चल पाई थी। मैं कुल दो घंटे उन लोगों के पास रही थी। दो घंटे में मैंने उन्हें नहलाया-धुलाया भी, और उनके साथ खेलती भी रही। बहुत ही अच्छे बच्चे थे वे। हाय, उनके चेहरे इतने लाल थे कि क्या कहूं ! मैंने उनकी मां से कहा कि वह अपने छोटे लड़के किशनू को मेरे साथ भेज दे। वह हंसकर बोली कि तुम सभी को ले जाओ, यहां कौन इनके लिए मोती रखे हैं ! यहां तो दो साल में इनकी हड्डियां निकल आएंगी, वहां खा-पीकर अच्छे तो रहेंगे। मुझे उसकी बात सुनकर रुलाई आने को हुई।···मैं अकेली होती, तो शायद कई दिनों के लिए उन लोगों के पास रह जाती। ऐसे लोगों में जाकर मुझे बहुत अच्छा लगता है।··· अब तो आपको भी लग रहा होगा कि कितनी अजीब हूं मैं ! ये कहा करते हैं कि मुझे किसी अच्छे मनोविद् से अपना विश्लेषण कराना चाहिए, नहीं तो किसी दिन मैं पागल होकर पहाड़ों पर भटकती फिरूंगी !"

"यह तो अपनी-अपनी बनावट की बात है," मैंने कहा, "मुझे खुद आदिम संस्कारों के लोगों के बीच रहना बहुत अच्छा लगता है। मैं आज तक एक जगह घर बनाकर नही रह सका और न ही आशा है कि कभी रह सकूंगा। मुझे अपनी जिन्दगी की जो रात सबसे ज्यादा याद आती है, वह रात मैंने पहाड़ी गूजरों की एक बस्ती में बिताई थी। उस रात उस बस्ती मे एक ब्याह था, इसलिए सारी रात वे लोग शराब पीते और नाचते-गाते रहे। मुझे बहुत हैरानी हुई जब मुझे बताया गया कि वही गूजर दस-दस रुपये के लिए आदमी का खून भी कर देते हैं !"

"आपको सचमुच इस तरह की जिन्दगी अच्छी लगती है ?" उसने कुछ आश्चर्य और अविश्वास के साथ पूछा।

'आपको शायद खुशी हो रही है कि पागल होने की उम्मीदवार आप अकेली ही

नहीं हैं," मैंने मुसकराकर कहा। वह भी मुसकराई। उसकी आंखें सहसा भावनापूर्ण हो उठीं। उस एक क्षण मे मुझे उन आंखों मे न जाने कितना-कुछ दिखाई दिया—करुणा, क्षोभ, ममता, आर्द्रता, ग्लानि, भय, असमंजस और स्नेह! उसके होंठ कुछ कहने के लिए कांपे, लेकिन कांपकर ही रह गए। मैं भी चुपचाप उसे देखता रहा। कुछ क्षणों के लिए मुझे महसूस हुआ कि मेरा दिमाग बिलकुल खाली है और मुझे पता नही कि मैं क्या कर रहा था और आगे क्या कहना चाहता था। सहसा उसकी आंखों मे फिर वही सूनापन भरने लगा और क्षण-भर मे ही वह इतना बढ़ गया कि मैंने उसकी तरफ से आंखें हटा ली।

बत्ती के पास उड़ता कीड़ा उसके साथ सटकर झुलस गया था।

बच्ची नींद मे मुसकरा रही थी।

खिड़की के शीशे पर इतनी धुंध जम गई थी कि उसमे अपना चेहरा भी दिखाई नही देता था।

गाड़ी की रफ्तार धीमी हो रही थी। कोई स्टेशन आ रहा था। दो-एक बत्तियां तेजी से निकल गईं। मैंने खिड़की का शीशा उठा दिया। बाहर से आती बर्फानी हवा के स्पर्श ने स्नायुओं को थोड़ा सचेत कर दिया। गाड़ी एक बहुत नीचे प्लेटफार्म के पास आकर खड़ी हो रही थी।

"यहां कहीं थोड़ा पानी मिल जाएगा?"

मैंने चौंककर देखा कि वह अपनी टोकरी मे से कांच का गिलास निकालकर अनिश्चित भाव से हाथ मे लिए है। उसके चेहरे की रेखाएं पहले से गहरी हो गई थीं।

"पानी आपको पीने के लिए चाहिए?" मैंने पूछा।

"हां। कुल्ला करूंगी और पिऊंगी भी। न जाने क्यों होंठ कुछ चिपक-से रहे हैं। बाहर इतनी ठंड है, फिर भी···।"

"देखता हूं, अगर यहां कोई नल-वल हो, तो···।"

मैंने गिलास उसके हाथ से ले लिया और जल्दी से प्लेटफार्म पर उतर गया। न जाने कैसा मनहूस स्टेशन था कि कहीं पर भी कोई इन्सान नजर नही आ रहा था। प्लेटफार्म पर पहुंचते ही हवा के झोंकों से हाथ-पैर सुन्न होने लगे। मैंने कोट के कालर ऊंचे कर लिए। प्लेटफार्म के जंगले के बाहर से फैलकर ऊपर आए दो-एक पेड़ हवा मे सरसरा रहे थे। इंजन के भाप छोड़ने से लम्बी शू-ऊं की आवाज सुनाई दे रही थी। शायद वहां गाड़ी सिगनल न मिलने की वजह से रुक गई थी।

दूर कई डिब्बे पीछे एक नल दिखाई दिया, तो मैं तेजी से उस तरफ चल दिया। ईंटों के प्लेटफार्म पर अपने जूते का शब्द मुझे बहुत अजीब-सा लगा। मैंने चलते-चलते गाड़ी की तरफ देखा। किसी खिड़की मे कोई चेहरा बाहर नही झांक रहा था। मैं नल के पास जाकर गिलास मे पानी भरने लगा। तभी हल्की-सी सीटी देकर गाड़ी एक झटके के साथ चल पड़ी। मैं भरा हुआ पानी का गिलास लिए अपने डिब्बे की तरफ दौड़ा। दौड़ते हुए मुझे लगा कि मैं उस डिब्बे तक नही पहुंच पाऊंगा और सर्दी में उस अंधेरे और सुनसान प्लेटफार्म पर ही मुझे बिना सामान के रात बितानी होगी। यह सोचकर मैं और तेज दौड़ने लगा। किसी तरह अपने डिब्बे के बराबर पहुंच गया। दरवाजा खुला था और वह दरवाजे के पास खड़ी थी। उसने हाथ बढ़ाकर गिलास मुझसे ले लिया। फुटबोर्ड पर चढ़ते हुए एक बार मेरा पैर जरा-सा फिसला, मगर अगले ही क्षण मैं स्थिर होकर खड़ा हो गया। इंजन तेज होने की कोशिश में हल्के-हल्के झटके दे रहा था और ईंटों के प्लेटफार्म की जगह अब नीचे अस्पष्ट गहराई दिखाई देने लगी थी।

"अन्दर आ जाइए," उसके ये शब्द सुनकर मुझे एहसास हुआ कि मुझे फुटबोर्ड से आगे भी कहीं जाना है। डिब्बे के अन्दर कदम रखा, तो मेरे घुटने ज़रा-ज़रा काप रहे थे।

अपनी जगह पर आकर मैंने टांगें सीधी करके पीछे टेक लगा लीं। कुछ पल बाद आखें खोली तो लगा कि वह इस बीच मुह धो आई है। फिर भी उसके चेहरे पर मुर्दनी-सी छा रही थी। मेरे होंठ सूख रहे थे, फिर भी मैं थोड़ा मुसकराया।

"क्या बात है, आपका चेहरा ऐसा क्यो हो रहा है?" मैंने पूछा।

"मैं कितनी मनहूस हूं···," कहकर उसने अपना निचला होंठ ज़रा-सा काट लिया।

"क्यो?"

"अभी मेरी वजह से आपको कुछ हो जाता···।"

"यह खूब सोचा आपने!"

"नही। मैं हूं ही ऐसी···," वह बोली, "जिन्दगी मे हर एक को दुःख ही दिया है। अगर कही आप न चढ पाते···।"

"तो?"

"तो?" उसने होंठ ज़रा सिकोड़े, "तो मुझे पता नही···पर···।"

उसने खामोश रहकर आखें झुका ली। मैंने देखा कि उसकी सांस जल्दी-जल्दी चल रही है। महसूस किया कि वास्तविक संकट की अपेक्षा कल्पना का संकट कितना बडा और खतरनाक होता है। शीशा उठा रहने से खिड़की से ठण्डी हवा आ रही थी। मैंने खीचकर शीशा नीचे कर दिया।

"आप क्यो गए थे पानी लाने के लिए? आपने मना क्यो नही कर दिया?" उसने पूछा।

उसके पूछने के लहजे से मुझे हंसी आ गई।

"आप ही ने तो कहा था···।"

"मैं तो मूर्ख हू, कुछ भी कह देती हूं। आपको तो सोचना चाहिए था।"

"अच्छा, मै अपनी गलती मान लेता हूं।"

इससे उसके मुरझाए होंठों पर भी मुसकराहट आ गई।

"आप भी कहेंगे, कैसी लड़की है," उसने आन्तरिक भाव के साथ कहा। "सच कहती हूं, मुझे ज़रा अक्ल नही है। इतनी बडी हो गई हूं, पर अक्ल रत्ती-भर नही है—सच!"

मैं फिर हस दिया।

"आप हस क्यों रहे हैं?" उसके स्वर मे फिर शिकायत का स्पर्श आ गया।

"मुझे हंसने की आदत है!" मैंने कहा।

"हसना अच्छी आदत नही है।"

मुझे इसपर फिर हंसी आ गई।

वह शिकायत-भरी नज़र से मुझे देखती रही।

गाड़ी की रफ्तार फिर तेज हो रही थी। ऊपर की बर्थ पर लेटा आदमी सहसा हड़बड़ाकर उठ बैठा और ज़ोर-ज़ोर से खांसने लगा। खांसी का दौरा शान्त होने पर उसने कुछ पल छाती को हाथ से दबाए रखा, फिर भारी आवाज़ मे पूछा, "क्या बजा है?"

"पौने बारह," मैंने उसकी तरफ देखकर उत्तर दिया।

"कुल पौने बारह ?" उसने निराश स्वर में कहा और फिर लेट गया। कुछ ही देर में वह फिर खर्राटे भरने लगा।

"आप भी थोड़ी देर सो जाइए।" वह पीछे टेक लगाए शायद कुछ सोच रही थी या केवल देख रही थी।

"आपको नींद आ रही है, आप सो जाइए," मैंने कहा।

"मैंने आपसे कहा था न मुझे गाड़ी में नींद नहीं आती। आप सो जाइए।"

मैंने लेटकर कम्बल ले लिया। मेरी आंखें देर तक ऊपर की बत्ती को देखती रहीं जिसके साथ झुलसा हुआ कीड़ा चिपककर रह गया था।

"रजाई भी ले लीजिए, काफी ठंड है," उसने कहा।

"नहीं, अभी जरूरत नहीं है। मैं बहुत-से गर्म कपड़े पहने हूं।"

"ले लीजिए, नहीं यार में ठिठुरते रहिएगा।"

"नहीं, ठिठुरूंगा नहीं," मैंने कम्बल गले तक लपेटते हुए कहा, "और थोड़ी-थोड़ी ठंड महसूस होती रहे, तो अच्छा लगता है।"

"बत्ती बुझा दूं ?" कुछ देर बाद उसने पूछा।

"नहीं, रहने दीजिए।"

"नहीं, बुझा देती हूं। ठीक से सो जाइए।" और उसने उठकर बत्ती बुझा दी। मैं काफी देर अंधेरे में छत की तरफ देखता रहा। फिर मुझे नींद आने लगी।

शायद रात आधी से ज्यादा बीत चुकी थी, जब इंजन के भोंपू की आवाज से मेरी नींद खुली। वह आवाज कुछ ऐसी भारी थी कि मेरे सारे शरीर में एक झुरझुरी-सी भर गई। पिछले किसी स्टेशन पर इंजन बदल गया था।

गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी तो मैंने सिर थोड़ा ऊंचा उठाया। सामने की सीट खाली थी। वह स्त्री न जाने किस स्टेशन पर उतर गई थी। इसी स्टेशन पर न उतरी हो, यह सोचकर मैंने खिड़की का शीशा उठा दिया और बाहर देखा। प्लेटफार्म बहुत पीछे रह गया था और बत्तियों की कतार के सिवा कुछ साफ दिखाई नहीं दे रहा था। मैंने शीशा फिर नीचे खींच लिया। अन्दर की बत्ती अब भी बुझी हुई थी। बिस्तर में नीचे को सरकते हुए मैंने देखा कि कम्बल के अलावा मैं अपनी रजाई भी लिए हूं जिसे अच्छी तरह कम्बल के साथ मिला दिया गया है। गरमी की कई-एक सिहरनें एक साथ शरीर में भर गईं।

ऊपर की बर्थ पर लेटा आदमी अब भी उसी तरह जोर-जोर से खर्राटे भर रहा था।

मरुस्थल

मरुस्थल अर्थात् रेत और गुबार का देश। मगर उससे रूखा एक और भी मरुस्थल है।

मेरे कमरे का वातावरण बहुत रूखा और बोझिल है। घड़ी में केवल घंटे की सुई है और जीवन उसी के हिसाब से चलता है। हर चीज जैसे अंगड़ाइयां ले रही है। किताबें डेस्क में सो जाना चाहती हैं, दरी फर्श पर बेसुध-सी ऊंघ रही है। बाहर जहां तक आंख जाती है, रेत ही रेत फैली है। रेत के बवंडर बार-बार खिड़की के किवाड़ों से आ टकराते हैं। हवा हू-हू की आवाज करती हुई बार-बार किवाड़ों को हिला जाती है।

उधर साथ के कमरे में इन्दु बेताब करवटें ले रही है।

रतनाडा रोड का यह बंगला जोधपुर शहर से दो मील के फासले पर है। बंगले में हम दस व्यक्ति रहते हैं और सबका परिचय अपने इस दायरे तक ही सीमित है। काम अलग-अलग होते हुए भी हम सबका पेशा एक है— सब राजस्थान फिल्म कार्पोरेशन में नौकर हैं। नसीम और सकीना कभी वेश्याएं थी, अब अभिनेत्रियां कहलाती हैं। धनपतराय कभी थियेटर में पर्दे खींचता था, आज फिल्म कार्पोरेशन का मनेजिंग डायरेक्टर है। शंकर, शर्मा और लतीफ तीनों एक्टर हैं। इन्दु नसीम की बेटी है। धनपतराय उसका बाप है। सकीना उसकी छोटी मां अर्थात् मां की बहन है।

इन्दु छटपटा रही है, नसीम अपने कमरे में घुटकर रो रही है, सकीना उसे दिलासा दे रही है और धनपतराय अपने कमरे में शराब पी रहा है। बाकी लोग बड़े कमरे में बैठकर ताश खेल रहे है।

जब मैं पहले-पहल आया तो यह सारा घर नसीम और सकीना के कहकहो से गूंजा करता था। वे दोनो मिलकर ऐसे हंसती थी, जैसे खोटी चांदी के बहुत-से सिक्के एक साथ खनखनाए जा रहे हों। दोनों बहनें दिन-भर बरामदे मे आवारा घूमती रहती थी। अब कई दिनों से अपने कमरे के बाहर उनकी सूरत भी नजर नही आती।

इन्दु बिलकुल मेरे साथ के कमरे में है, इसलिए उसकी हर कराहट मुझे सुनाई दे जाती है। शुरू-शुरू में वह सारा दिन मेरे कमरे में आकर चहकती रहती थी। इस बंगले में आने पर, पहले दिन से वह मुझसे बहुत हिलमिल गई थी। हर रोज चार-छः बार आकर वह मेरा दरवाजा खटखटाती—'इन्दु बाई अन्दर आ सकती है ?'

और अपने-आप 'हां, आ सकती है' कहकर वह अन्दर आ जाती। फिर वह बैठकर देर-देर तक बताती रहती थी कि दिल्ली और कलकत्ते में उसकी कौन-कौन सहेलियां हैं, उसे दिल्ली शहर और शहरों की अपेक्षा क्यो ज्यादा अच्छा लगता है और जब वह बड़ी होगी तो अपनी कोठी किस ढंग की बनवाएगी। वह कभी मुझे अपने साथ खेलने के लिए मजबूर करती। कभी मुझे नाचकर दिखाती और कभी मेरे गले में बाहें डालकर सौ-सौ तरह के सवाल पूछती। बंगले के लोगों मे उसे ही मुझमें सबसे ज्यादा दिलचस्पी थी और मेरा ज्यादातर समय उसीके साथ बीतता था।

उस दिन बाहर बहुत ज़ोर के बवंडर उठ रहे थे, जब इन्दु ने रोज की तरह दरवाज़ा खटखटाया, "इन्दु बाई अन्दर आ सकती है ?" और दरवाज़ा खोलकर वह अन्दर आ गई। उसके पीछे-पीछे एक अपरिचित युवक भी कमरे में आ गया। इन्दु ने उसका परिचय दिया, "ये गोपाल बाबू हैं, आपसे मिलने आए हैं।"

गोपाल ने पहले सारे कमरे मे नजर दौड़ाकर देखा, फिर अनुगृहीत करने के ढंग से मेरी ओर हाथ बढा दिया। मेरे कहने पर वह पल-भर के लिए कुर्सी पर बैठ गया और बड़े आदमियो की तरह दो बातें करके, समय कम होने की शिकायत करता हुआ चला गया। उसके चले जाने पर इन्दु मेरी गोद मे आ बैठी और बोली, "इस आदमी से हमको डर लगता है। यह हमको बहुत घूर-घूरकर देखता है।"

"मैं भी तो तुम्हें घूर-घूरकर देखता हूं, तुम्हें मुझसे डर नही लगता ?" मैंने मुसकराकर पूछा।

"तुम इसकी तरह थोड़े ही देखते हो ?" वह बोली, "यह तो ऐसे देखता है जैसे मैं कोई तसवीर हूं। यह बाबूजी का दोस्त है और अम्मी के साथ आजकल बहुत घुलकर बातें किया करता है। आज यह अम्मी से एक बहुत बुरी बात कहता था।"

पहले उसने वह बात नही बताई। मेरे बहुत पूछने पर बहुत धीरे-से बोली,

"अम्मी से कहता था कि तू क्यों धनपतराय के साथ ज़िन्दगी खराब करती है ? मैं होटल खोलता हूं, तू मेरे साथ चलकर काम कर, हम लाखों रुपया कमाएंगे। फिर हमारी तरफ देखकर बोला—अच्छा, तू इन्दु को मेरे हवाले कर दे, उसका जो तू चाहे ले ले। मैं तो ऐसी बात पर इसके थप्पड़ मारती, मगर अम्मी चुपचाप सुनकर हंसती रही।"

मैंने उसके सिर को थपथपाया और कहा, "पगली, वह मज़ाक करता होगा।"

"नहीं जी, मज़ाक की बात और होती है, हमको सब पता है," और फिर आवाज़ और भी धीमी करके बोली, "अम्मी वैसे तो हमको पीटती है, पर उसके सामने ऐसे तारीफ करती थी जैसे सचमुच हमको बेचना ही हो।"

नौ बरस की इन्दु सचमुच बहुत कुछ जानती थी। गोपाल वाकई नसीम पर डोरे डाल रहा था और नसीम उनमें उलझ रही थी। गोपाल के वायल के कुर्ते की जेब में सौ-सौ के नोट चमकते रहते थे जिनके बल पर उसे लखपती होने का दावा था। नसीम के सौदे में उसकी आंख ज़्यादा इन्दु पर ही थी। एक दिन वह खूब पिए हुए मेरे कमरे में आ गया। नशे की बहक में उसने सारी बात मेरे सामने उगल दी। वह बम्बई में होटल खोलने की सोच रहा था, जिसमें उसे लाखों की आमदनी की आशा थी। उसने उल्लास से झूमते हुए कहा, "देखना, चार दिन में वह धनपत के मुंह पर थूककर मेरे साथ चली जाएगी। उसने मेरे साथ पक्का वायदा कर लिया है।"

फिर वह काफी देर मिलें और कारखाने चलाने के प्रोग्राम बनाता रहा, और अन्त में ठंडे पानी का गिलास पीकर चला गया।

धनपतराय गोपाल की चाल न समझता हो, ऐसा नहीं था। वह बहुत खुर्राट आदमी है और अपने-आपको बहुत कुछ समझता भी है। वैसे उसके हाथ-पैर भी काफी मज़बूत हैं। पचपन बरस का होकर भी वह बात-बात में जवानी की कसम खाकर पुरुषत्व की डींग मारता है। गोपाल से उसने कुछ नहीं कहा, लेकिन एक दिन नसीम की लगामें खींच दीं। नसीम दो-चार दिन गोपाल से दूर-दूर रही। मगर वास्तव में इसमें भी गोपाल की योजना ही काम कर रही थी।

एक दिन इन्दु ताश का एक पैकेट मुझे दिखाने के लिए लाई। मेरे कन्धे के साथ सटकर वह धीरे-से बोली "बाबूजी, आज बाहर गए हुए हैं न, अम्मी ने गोपाल को आज फिर बुलाया है। आज वो कमरे में बैठे धीरे-धीरे बात कर रहे हैं।"

"तू यह ताश कहां से लाई है ?" मैंने बात बदलने के लिए पूछा।

"वही गोपाल लेकर आया है। हमने पहले नहीं लिए तो अम्मी हमको डांटने लगी। फिर हमने ले लिए तो हमसे कहा कि बाहर जाकर खेलो। गोपाल कहता था कि कल तेरे लिए छोटा पियानो लेकर आऊंगा।"

"अच्छा ?" मैंने कहा, "यह ताश तो वह बहुत बढ़िया लाया…"

"बढ़िया हो चाहे कैसा हो, हम यह ताश नहीं खेलेंगे," इन्दु हठ और तिरस्कार के साथ बोली, "वह पियानो लाएगा तो हम उसका पियानो भी नहीं बजाएंगे।"

"क्यों, उससे लड़ाई हो गई है ?"

"अम्मी आज फिर उसके साथ बम्बई जाने की सलाह बना रही हैं।"

"सच ?"

"सच नहीं तो क्या ? अम्मी कहती थी कि बाबूजी हमें पैसा नहीं देते। वह बोला कि चलकर दो-चार साल तू आप कमा ले, फिर तेरी इन्दु लाखों की हो जाएगी।"

मैं उसे बांहों में लिए हुए चुपचाप उसके बालों के साथ खेलता रहा। कुछ रुककर वह फिर बोली, "मैं बड़ी होकर डाक्टरी पढ़ूंगी। मेरी सहेली की बड़ी बहन डाक्टरी

पढ़ती है।"

मैंने उस समय लक्षित किया कि उसका चेहरा पहले से कुछ पीला पड़ गया है और उसके गोरे गालों पर बारीक नीली धारियां उभर आई हैं। वह उस दिन काफ़ी देर तक मेरे पास बैठकर मुझसे बातें करती रही। मैं उसे बाहर-बाहर से बहलाने के लिए अपना एलबम दिखलाने लगा। एलबम में मेरे एक मित्र के ब्याह के समय की तसवीर को वह देर तक देखती रही। फिर उसने पूछा, "ये कौन हैं ?"

"यह मेरा दोस्त है और यह उसीकी बीवी है," मैंने कहा।

"आप भी अपने ब्याह के दिन ऐसी फोटो खिचवाएंगे ?" उसने फिर पूछा।

मैं पल-भर उसके मासूम चेहरे को देखता रहा। फिर मैंने कहा, "मेरा ब्याह पता नहीं होगा कि नहीं, पर जिस दिन तेरा ब्याह होगा, उस दिन तेरी ज़रूर ऐसी तसवीर खिचेगी।"

"हिश् !" वह बोली, "हम तो डाक्टरी पढ़ेंगे, हम ब्याह थोड़े ही करवाएंगे ?"

कुछ देर वह चुपचाप एलबम के पन्ने उलटती रही। फिर उसने पूछा, "अच्छा आप बताइए मैं हिन्दू हूं कि मुसलमान ?"

"तेरा नाम क्या है ?" मैं उसे बहलाने लगा।

"इन्दु।"

"तो तू हिन्दू है।"

"नाम से क्या होता है ?" वह बोली, "बाबूजी हिन्दू हैं और अम्मी मुसलमान हैं। मैं न हिन्दू हूं न मुसलमान।"

"नहीं है तो न सही। हिन्दू-मुसलमान होने से क्या होता है ?"

"अब तो नहीं होता, पर जब मैं बड़ी हो जाऊंगी, तब तो होगा।"

"क्या होगा ?"

"यह आप अपने-आप समझ लें। हम नहीं बताएंगे।"

मैंने उसे अपने साथ सटा लिया और कहा, "क्या होगा ? कुछ नहीं होगा। तू तो बिलकुल पागल लड़की है।"

और मैं देर तक उसके बालों में हाथ फेरता रहा।

मगर उसी रात नंगी वास्तविकता पर्दे से बाहर आ गई।

रात के साढ़े ग्यारह या बारह बजे थे। मुझे अभी नींद नहीं आई थी। मैं बरामदे में अपनी चारपाई पर करवटें ले रहा था। पास के कमरे में घड़ी की टिक-टिक लगातार सुनाई दे रही थी। अचानक नीरवता की छाती में एक नश्तर-सा चुभा। नसीम की एक लम्बी चीख वातावरण में फैल गई। साथ धनपतराय की कर्कश आवाज़ सुनाई देने लगी, "इन्दु को लेकर बम्बई जाने की तैयारियां कर रही है ? तेरी खाल न उधेड़ दू, हरामज़ादी ! नौ बरस से उसे पाल रहा हूं, हज़ारों रुपये उसपर खर्च किए हैं, अब कमाई के दिन आए तो उसे तेरे साथ भेज दू ? तुझे जाना है, जा, अभी निकल जा। उसे हाथ भी लगाया तो तेरा खून पी लूंगा।"

फिर एक घूंसा, एक थप्पड़ और नसीम के रोने की आवाज़ और धनपतराय की ज़ोर-ज़ोर की गालियां...

बरामदे में सोए हुए प्रायः सभी लोग जाग गए थे पर सब दम साधे चारपाइयों पर ही पड़े रहे। धनपतराय बड़बड़ाता रहा, "कहती है अपनी बेटी को लेकर जा रही हूं। बेटी तू बाप के घर से लेकर आई थी ? आज से उसे हाथ लगाएगी तो तेरे हाथ न चीर दूं तो कहना। बड़ी बेटीवाली आई है।"

सारी रात नसीम सुबक-सुबककर रोती रही। इन्दु सहमी हुई रात-भर अपनी चारपाई पर सीधी लेटी रही। शंकर शर्मा और लतीफ ऐसे सिर-मुंह ओढ़कर पड़े रहे जैसे वे इस घटना से बिलकुल बेखबर हों। मैं सुबह तक न जाने कितनी बार सोया और कितनी बार जागा।

मगर सुबह सब लोग दबे-दबे उसी विषय को लेकर बात करते रहे। हर एक को धनपतराय से किसी न किसी तरह की शिकायत थी, इसलिए नसीम के साथ सबको सहानुभूति थी। शंकर ने मुझे बतलाया कि थियेटर में धनपतराय इसी तरह थप्पड़ मारमारकर अपने कलाकारों को संवाद याद कराया करता था। मगर नसीम पर उसका हाथ कल पहली बार ही उठा था।

इस घटना के बाद गोपाल को सख्त निराशावाद ने घेर लिया। वह दूसरे दिन थोड़ी देर के लिए आया और मेरे पास बैठकर अध्यात्मवाद से लेकर साम्यवाद तक की चर्चा करता रहा। उस निराशा की बहक में वह नसीम और सकीना के विषय में न जाने क्या-क्या कह गया। अन्त में बेमतलब बकते रहने के लिए क्षमा मांगकर वह जाता हुआ उस घर में कभी न आने की कसम खा गया।

उस रात की घटना के बाद से ही नसीम का लापरवाही से घूमना बंद हो गया। तब से वह बहुत तत्परता के साथ धनपतराय के हर आदेश का पालन करने लगी। आप उसका खाना लगाती, और जब उसकी बुलाहट होती तो शराब की बोतल लेकर चुपचाप उसके कमरे में चली जाती। उसका चेहरा भी पहले से बदलने लगा। चेहरे की सुर्खी धोने पर ऐसा लगता जैसे उसे यरकान हो रहा हो। लिपस्टिक के नीचे उसके होंठों की पपड़ियां छिप नहीं पातीं। वह दिन-भर कमरे में बन्द रहती और शाम को कभी-कभी बंगले से दूर टहलने चली जाती।

उस घटना के कुछ ही दिन बाद एक दिन धनपतराय ने दो बड़े-बड़े सेठों को चाय पर बुलाया। चाय की टेबुल पर नसीम और सकीना मेज़बान थीं। दोनों सेठ सफेद खद्दर में सजे हुए, पान चबाते हुए बैठे थे। इन्दु भड़कीली फ्राक पहने धनपतराय की गोद में बैठी हुई गुड़िया की तरह उन लोगों की तरफ देख रही थी। सुना गया था कि वे सेठ कम्पनी में दो लाख रुपया लगाएंगे।

बात चलते-चलते इन्दु पर आ गई और धनपतराय सेठों को उसकी मार्केट वैल्यू समझाने लगा। वह इन्दु का इस तरह बखान करने लगा जैसे एक जीवित बच्ची की नहीं, एक पुतली की बात कर रहा हो और कह रहा हो कि मैं इस पुतली को जैसे चाहूं नचा सकता हूं; इसे नचाने के लिए किसी तार की जरूरत नहीं, मेरे हाथ में तिजुर्बा है, चौबीस साल का तिजुर्बा। सेठ लोग इन्दु को देखते हुए सिर हिलाते रहे। धनपतराय ने उन्हें विदा करते समय शीघ्र ही एक दिन वेरायटी शो रखने और उन्हें इन्दु की कला दिखाने का वायदा किया।

सेठों की सुविधा को देखते हुए इसके लिए इतवार का दिन निश्चित हुआ। बंगले के वातावरण में उस एक दिन के लिए काफी हलचल भर गई।

इन्दु पैर में घुंघरू बांधे हुए बरामदे में घूम रही थी। मैं उसकी बांह पकड़कर उसे बरामदे से अपने कमरे में ले आया। वह खुशबू से महक रही थी। आसमानी रंग के रेशमी फ्राक के साथ उसके बालों में बंधा हुआ सुनहरा रिबन बहुत खिल रहा था। मगर उसकी बड़ी-बड़ी आंखें जैसे बरसने को हो रही थीं। मैंने उसे हाथों में उठा लिया और कहा, "इन्दु, आज तो तू बिल्कुल परी लग रही है!"

दो आंसू ढुलककर इन्दु के गालों पर आ गए। मैं उसे सोफे पर बिठाकर उसके

पास बैठ गया। वह सोफे की बांह पर सिर रखकर सुबकने लगी। मैंने उसे थपथपाकर कहा, "क्या बात है पगली, रोती क्यों है ?"

इन्दु ने सोफे की बांह से सिर हटाकर मेरी छाती में मुंह छिपा लिया और उसी तरह सुबकती हुई बोली, "आप आज मुझे दिल्ली ले चलिए। मेरी वहां एक सहेली है, मुझे उसके घर छोड़ आइए।"

"कौन सहेली है तेरी वहां ?"

"कमला का घर वहां है। मैं कमला के घर रहूंगी। मैं यहां नहीं नाचूंगी।"

"क्यों, नाचने में क्या है ?" मैंने चुमकारकर उसके गालों को थपथपाया और कहा, "तुझे इतना अच्छा तो नाचना आता है। आज इतने बड़े-बड़े लोग तेरा नाच देखने आएंगे। आज तो तुझे कितने ही इनाम मिलेंगे।"

इन्दु ने सिर उठाकर मेरी ओर देखा और बोली, "हमने लोगों से इनाम लेने के लिए थोड़े ही नाचना सीखा है ? कमला को भी नाचना आता है। पर वह तो अपने घर में ही नाचती है। मैं कोई तमाशा हूं ?"

उसके होंठ कांपने लगे और आंखें जल्दी-जल्दी झपकती रहीं।

"तू आज अकेली थोड़े ही नाचेगी।" मैंने रूमाल से उसकी आंखें पोंछते हुए कहा, "तेरी अम्मी भी तो नाचेगी।"

"अम्मी तो थियेटर में भी नाचती थी," वह बोली, "पता है, लोग उनको क्या-क्या कहते हैं ? मैं नाचूंगी तो वही बातें मुझको भी कहेंगे।"

"नहीं, नहीं तुझको कैसे कहेंगे ? इन्दु रानी को भला कोई कुछ कह सकता है ?"

"क्यों नहीं कह सकता ?" वह उसी तरह कांपते हुए होंठों से बोली, "शंकर अभी-अभी शर्मा से कह रहा था कि यह लड़की बड़ी होकर अपनी मां को भी मात करेगी।"

"शंकर, यह कह रहा था ?"

"हां, शंकर शर्मा से कह रहा था और शर्मा उससे बोला कि हां, रंडी की औलाद है, रंडियों के तो खून में नखरा होता है।"

और कुछ क्षण चुपचाप आंखें झपकाकर उसने पूछा, "आप बताइए, मैं रंडी हूं ?"

मैंने उसकी ठुड्डी हाथ से उठाकर उसका माथा चूम लिया और कहा "जो ऐसी बात कहता है, उसकी अपनी जबान गंदी होती है। तू ऐसी बात सुनती ही क्यों है ?" और मैंने फिर रूमाल से उसकी आंखें पोंछ दीं।

उस रात काफी देर तक चहल-पहल रही। खाना हो चुकने पर पहले धनपतराय ने एक गीत गाया गया। फिर नसीम और सकीना के गीत और नसीम का एक नाच हुआ। उसके बाद इन्दु ने बादल में चमकती हुई बिजली का नृत्य किया था। वह थिरकती हुई जब बांहें फैलाती तो नेपथ्य में बादल का गर्जन सुनाई देता। फिर वह सहमी-सी सिमटने लगती। जब उसने वह नृत्य समाप्त किया तो बहुत देर तक तालियों का शोर सुनाई देता रहा।

मैंने मेकअप के कमरे में जाकर उसे शाबाशी दी और पूछा, "बता, तुझे इसके लिए क्या इनाम दूं ?"

"कुछ नहीं, तुम यहां हमारे पास बैठो, बस !" वह बोली, "हमसे कहीं कुछ खराब तो नहीं हुआ ?"

"नहीं। क्यों ?" मैंने देखा कि उसकी आंखों का भाव कुछ और-सा हो रहा है।

"हमसे रिहर्सल में थोड़ा बिगड़ गया था तो बाबूजी ने थप्पड़ मारा था।" उसने पुतलियों को फैलाकर और पलकें जल्दी-जल्दी झपकाकर उमड़ते हुए आंसुओं को वापस लौटा देने की चेष्टा की और उस चेष्टा को कामयाब बनाने के लिए हंसने लगी।

दूसरी बार वह फूलों की रानी बनकर आई। उसे सिर से पैर तक फूलों से लादा गया था। वह एक हाथ में एक फूलों से भरी हुई डाली लिए थी और दूसरे हाथ में फूलों के गजरे। उसे उस रूप में देखकर सेठ लोगों के सिर ज़रा-ज़रा हिले। धनपतराय के चेहरे पर चमक आ गई। इन्दु ने नाचना आरम्भ किया।

धीरे-धीरे तबले के साथ उसके पैरों की तेज़ी बढ़ने लगी। उसके पैर ताल के अनुसार ठीक पड़ तो रहे थे, मगर शायद उससे फूलों का बोझ संभाला नहीं जा रहा था, या शायद उसका ध्यान कहीं और हट गया था···मैंने लक्षित किया कि वह दो-एक जगह बीच में उखड़ गई है! अगले ही क्षण यह निश्चय करना कठिन हो गया कि वह डगमगा रही है या नाच रही है···बस उसकी बांहें हिल रही थीं और कदम चल रहे थे! आखिर उसके पैर उखड़ गए और फूलों की डाली और गजरे उसके हाथ से गिर गए। इन्दु गिरने को हुई लेकिन संभल गई, मगर संभलती-संभलती फिसलकर गिर गई।

साज़ रुक गए। पल-भर के लिए खामोशी छाई रही।

ऐसे अवसर पर धनपतराय का तजुर्बा काम आ गया। वह उसी क्षण मंच पर पहुंच गया और गिरी हुई इन्दु को बांहों में उठाकर मुसकराता हुआ उपस्थित लोगों को सलाम देने लगा। साज़ बजने लगे और ज़ोर-ज़ोर से तालियां पीटने लगे, जैसे इन्दु का गिरना भी तमाशा ही था। जैसे तालियों के शोर से गुदगुदाई जाकर भी वह धनपतराय की बांहों पर पड़ी हुई अपना अभिनय ही पूरा कर रही थी। धनपतराय बांहें हिला-हिलाकर सलाम देता रहा और लोग तालियां पीट-पीटकर उसका अभिनन्दन करते रहे···।

आज उस बात को आठ दिन हो गए हैं। इन्दु की बेहोशी तो दूसरे दिन दूर हो गई थी, मगर उसका बुखार अभी तक नहीं उतरा। सात दिन में उसके शरीर की हड्डियां निकल आई हैं। बुखार के दबाव में जब वह आंखें उघाड़कर देखती है तो उसकी आंखें देखी नहीं जातीं। उसके सामने से हट जाने पर भी वे आंखें बार-बार सामने आकर यह सवाल पूछती हैं, "मैं रंडी हूं ? आप बताइए, मैं रंडी हूं ?"

धनपतराय के कमरे में उसका दौर अभी तक चल रहा है···सकीना नसीम के पास से उठकर धनपतराय के कमरे में चली गई है।

उधर बड़े कमरे में शंकर और लतीफ ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे हैं। उन्होंने शायद ताश की बाज़ी जीत ली है।

भूखे

पहली बार उस महिला को मैंने शिमले की मालरोड पर देखा था।

तब वह शिमले में नई ही आई थी। शिमले में नये आनेवाले लोग, यदि उनमें कुछ भी विशेषता हो, तो बहुत जल्दी पहचाने जाते हैं, और मेरे दोस्त सतीश जैसे लोग चार-छः दिनों में उनकी आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक स्थिति का पूरा ब्योरा भी ...र निकालते हैं। सतीश यह सब पता किस प्रकार पा लेता था यह मैं नहीं कह सकता,

अलबत्ता इतना जरूर है कि उसकी बात कभी गलत नही निकलती थी। इसीलिए हम उसे चलता-फिरता एन्साइक्लो-पीडिया कहा करते थे। जिस समय हमने उस महिला को पहली बार देखा उसी समय मैंने सोच लिया था कि सतीश जरूर उसकी खोज-खबर निकालेगा। वह सुन्दर तो थी ही पर उससे भी बड़ी बात यह थी कि भारतीय न होने पर भी उसके शरीर पर सलवार-कमीज़ बहुत खिल रही थी। वैसे तो मालरोड पर कोई न कोई अग्रेज़ या एग्लो-इण्डियन लड़की गाहे-बगाहे सलवार-कमीज पहने नज़र आ जाती थी, पर अक्सर उसके शरीर पर ये वस्त्र पराये-से लगते थे। शायद उनके कन्धों की बनावट ज़रा भिन्न होती है या शायद उनका बाहे हिलाने का अन्दाज़ ज़रा और-सा होता है। पर वह उन वस्त्रो मे उसी स्वाभाविक ढग से चल रही थी जैसे पजाबी लड़कियां चलती हैं। उसकी उम्र तीस-बत्तीस वर्ष के लगभग होगी पर उसका शरीर ज़रा भी नही ढला था और पहली नज़र मे तो वह बीस-बाईस वर्ष की ही प्रतीत होती थी। उसकी आखें नीली थी और बाल घु घराले और सुनहरे थे। उसका पांच-छः वर्ष का बच्चा उसके साथ था जो खूब गोरा-चिट्टा था और लाल और सफेद ऊन के वस्त्रो में और भी सुन्दर लगता था। वह मा से अग्रेजी में पूछ रहा था, "ममी, शिमला कौन-सी जगह का नाम है ?" और वह उसे समझा रही थी कि वह सारा शहर ही शिमला है, उनके घर से बहुत आगे तक।

"यह सडक भी शिमला है ?"

"हा, यह भी शिमला है।"

"और यह बर्फवाला पहाड़ भी ?"

"नही, वह शिमला नही है।"

"वह शिमला क्यों नही है ?"

और वह उसे समझाने लगी कि वह पहाड़ वहा से बहुत दूर है और शिमला का विस्तार उतनी दूर तक नही है।

"खूब चीज़ है !" उसके पास से निकल जाने पर सतीश ने कहा।

और मुझे उसी समय निश्चय हो गया कि सतीश उसका इतिहास जानने मे ज़रूर दिलचस्पी लेगा।

और सचमुच एक दिन बाद रिज से ऊपर 'दो पैसा बेंच' पर बैठे हुए उसने मुझे उसका पूरा इतिहास सुना दिया।

लगभग सात वर्ष पहले सत्यपाल नामक एक पंजाबी युवक, जे० जे० स्कूल आफ आर्ट से चित्रकला मे डिप्लोमा लेकर, आगे और विशेष अध्ययन करने के उद्देश्य से, अपने मित्रो से डेढ़ हज़ार रुपया उधार लेकर फ्रास चला गया था। वहां रहकर छ: महीने उसने किसी तरह निकाल लिए, परन्तु उसके बाद गुज़ारा करना कठिन हो गया तो वह काम करके कुछ पैसे बनाने के इरादे से इंगलैण्ड चला आया। वहां वह एक जूता बनाने के कारखाने मे कुछ दिन चमडा साफ करने का काम करता रहा। वहां काम करते हुए ही उसका एवलीन बार्कर से परिचय हुआ जो कारखाने के एक क्लर्क फ्रेंड बार्कर की चचेरी बहन थी और कभी-कभी उससे मिलने आया करती थी। फ्रेंड बार्कर को भी चित्रकला का थोड़ा शौक था और वह उसे अपने पेंसिल के खाके दिखाने के लिए आया करती थी। सत्यपाल के बनाए हुए कुछ खाके और चित्र देखने के बाद वह अपने खाके उसके पास भी ले जाने लगी और धीरे-धीरे उनका परिचय प्रेम मे बदल गया और उन्होंने विवाह कर लिया। एवलीन के पास अपनी चार सौ पौंड की पूंजी थी। उन्होंने निश्चय किया कि उस पूंजी की सहायता से साल भर फ्रास में रहकर, सत्यपाल अपना अध्ययन पूरा कर लें, फिर वे

भारत में जाकर रहेंगे। साल-भर बाद जब वे भारत पहुंचे तो एवलीन एक बच्चे की माँ बन चुकी थी। भारत आकर उन लोगों को एक नई आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ा। सत्यपाल का ख्याल था कि वह बम्बई में अपना छोटा-सा स्टुडियो बना लेगा, पर बम्बई में बगैर अच्छी पगड़ी दिए जगह मिलना असम्भव था। वह अकेला होता तो चार-छ: महीने इधर उधर धक्के खा लेता, पर एवलीन और बच्चे के साथ होने से उसके लिए तुरन्त आय का कोई न कोई ज़रिया पा लेना आवश्यक था। बम्बई में रहकर वह ज्यादा से ज्यादा किसी कमर्शियल स्टुडियो में नौकरी कर सकता था, जो उसे पसन्द नहीं था। पर क्योंकि और कोई चारा नहीं था, इसलिए उसने वही काम आरम्भ कर दिया और तीन साढ़े तीन साल उस चक्कर में फंसा रहा। इस बीच उसने कई दूसरे चित्र भी बनाए जिन्हें चित्रकारों के सर्किल में काफी पसन्द किया गया, पर ऊंची कीमत के समझे जाने पर भी उसके चित्र उसके लिए आय का ज़रिया नहीं बन सके। अन्त में वह बम्बई से दिल्ली चला आया और छ:-आठ महीने वहां भटकता रहा। लगातार चिन्ता और संघर्ष के कारण उसका स्वास्थ्य काफी गिर गया था और तभी एक डाक्टर से उसे पता चला कि उसे टी० बी० हो गयी है।

एवलीन अपना सब कुछ बेच-बाचकर उसे शिमले ले आई थी। हालांकि पहाड़ पर रहकर भी उसके रोगमुक्त हो जाने की आशा नहीं थी, फिर भी वह उसे अपने पास एकांत में रखना चाहती थी। उसने समरहिल में एक छोटा-सा खस्ताहाल घर किराए पर लिया था। वह खुद घर की सफाई करती थी, खाना बनाती थी, अस्पताल से दवाई लाती थी और एक ओर पति की और दूसरी ओर बच्चे की देखभाल करती थी। बच्चे को पति से दूर रखने के लिए उसे जो चेष्टा करनी पड़ती थी वह कई बार उसे रुला देती थी। पर वह यथासम्भव आत्मवश रहकर बच्चे को टहलाने भी ले आती थी और उसे गुब्बारे भी खरीद देती थी।

कहानी पूरी करने तक सतीश काफी भावुक हो गया। उसने सामने दूर की पहाड़ियों पर दृष्टि गड़ाए हुए कहा, "इसे प्यार कहते हैं दोस्त ! है न एक मिसाल ?... फिर लोग कहते हैं कि जिन्दगी में पैसा ही सब कुछ है। क्या चीज़ है पैसा ? इन्सान की भूख पैसे से नहीं मिटती, प्यार से मिटती है।"

और वह आंखें मूदकर सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा।

कुछ दिन बाद मैंने एक होटल में छ:-सात तैलचित्र लगे हुए देखे जिनके साथ यह नोटिस लगा था कि वे बिकाऊ हैं। साथ पूछताछ के लिए एवलीन कपूर का समरहिल पता दिया हुआ था।

दिन के दस-ग्यारह बजे का समय था जबकि होटलों में प्राय: सभी सीटें खाली होती हैं। उस समय सारे हाल में अकेला ही था। होटल की शीशेवाली खिड़कियों से छनकर धूप उस चित्र पर आकर पड़ रही थी। उन चित्रों में धूमिल से लाल और मटमैले रंग का विशेष प्रयोग किया गया था। मैं काफी देर तक उन चित्रों को देखता रहा। मुझे चित्रों की परख समझ नहीं है, फिर भी मेरे हृदय पर उनका कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा जैसे कोई मेरी ओर देखकर दीवानावार प्रहार कर रहा हो। एक चित्र का शीर्षक था 'गिद्ध'। उसमें गिद्धों की आंखें कुछ ऐसी थीं जैसे वह दुनिया की हर चीज़ का मजाक उड़ा रही हों और चोंचें कुछ इस तरह खुली थीं जैसे वे हर चीज़ को निगल जाना चाहती हों। चोंचों और पंजों पर पुराने जमे हुए लहू के निशान थे। वह एक ऐसा चित्र था जिसे देखकर ऐसे को मन होता था और आंखें हटा लेने पर फिर देखने की कामना होती थी। 'दाता' शीर्षक चित्र भी कुछ ऐसा ही था। उसमें एक हड्डियों का ढांचा एक ठूठ के नीचे

बैठा हाथ का खाली कटोरा शून्य की ओर उठाए था। वे ऐसे चित्र थे जो डरावनी छायाओं की तरह दिमाग में घर कर जाते थे। मैं होटल के मैनेजर के पास जाकर उससे पूछ आया, उन चित्रों में से कोई बिका भी है या नहीं !

"इन भूतों की तसवीरों को कौन खरीदेगा ?" उसने बिल-बुक खोलकर पेंसिल से बिल बनाते हुए कहा, "मैंने उस औरत का दिल रखने के लिए यहां पर लगा दी थी, अब चार-छः दिन मे उतारकर भेज दूगा।"

"कोई तुम्हारे पास कीमत पूछने के लिए भी नही आया ?" मैंने उससे पूछा।

"कीमत तो लोग शौकिया पूछ लेते है," वह बोला, "पर किसी का दिमाग बिगड़ा है कि हजार-हजार रुपया देकर इन तसवीरो को खरीदेगा ? मैं तो कहता हूं कि कोई दस-दस रुपये मे भी खरीदने को तैयार हो जाए, तो बहुत मेहरबानी करेगा। मगर वह जाने इन्हे क्या समझती है ?"

"कितने दिन हो गए इन तसवीरो को यहा लगे हुए ?"

"चौदह-पन्द्रह दिन हो गए है।"

"इतने दिनो में कोई भी उससे बात करने नहीं गया ?"

"अरे यार," वह होठों को जरा सिकोड़कर बोला, "बात करने के लिए तो पचास आदमी जाते हैं मगर उनका बात करने का मकसद तसवीरें खरीदना थोड़े ही होता है ? वे तो इसलिए जाते हैं कि दस मिनट बात का लुत्फ ले लें।···तुम भी हो आओ। पहले तो तीन-चार दिन वह खुद ही यहां आती रही है, मगर अब नही आती। समरहिल से दिन मे दो-दो बार यहां तक पैदल आती थी और पैदल वापस जाती थी। एक सरदार तो उसपर बुरी तरह रीझ गया था।" और वह बिल मेरी ओर बढाता हुआ दांत निकालकर मुसकरा दिया।

दूसरी बार जब मैंने उसे देखा तब उसके पति की मृत्यु हो चुकी थी।

लोअर बाजार के आरम्भ मे ही तीन-चार ढाबे हैं जिनमें मजदूर छोटे-मोटे दुकानदार और दफ्तरो के बाबू रोटी खाते है। उन्ही में से एक ढाबे मे एक रात मैं खाना खा रहा था, जब वह बच्चे की उंगली पकड़े हुए ढाबे के पास से निकलकर आगे चली गई। बच्चा चलता हुआ किसी चीज़ की जिद कर रहा था और वह मनाने की कोशिश कर रही थी। थोड़ी देर बाद वह लौटकर आई और इस बार ढाबे के सामने रुक गई। बच्चा उसका हाथ पकड़कर उसे ढाबे की ओर खीचने लगा। होटल के लाला, नौकरों और वहां बैठकर खाना खानेवाले सब लोगों की नजरें उस पर केन्द्रित हो गईं। उसने क्षण-भर दुविधा मे इधर-उधर देखा और फिर बच्चे को साथ लिए हुए ढाबे के अन्दर आ गई। अन्दर बैठे हुए लोग आखों ही आंखो मे एक दूसरे की ओर इशारा करके मुसकराए। एक सरकारी दफ्तर का क्लर्क स्वर के साथ उंगलिया चाटने लगा। एक नौकर के हाथ से दाल की कटोरी गिर गई। वह बच्चे को लिए हुए कोने में बने हुए लकड़ी के केबिन मे गई और महीनों का मैला पर्दा उसने आगे खींच लिया। नौकर उधर आर्डर लेने जाने लगा तो लाला ने उसे इशारे से रोक दिया और स्वय उठकर आर्डर लेने पहुच गया। पीछे मे एक बाबू ने फबती कसी, "हम भी बैठे हैं सूद साहब !"

लाला आर्डर लेकर मुसकराता हुआ अपनी गद्दी पर लौट आया और नौकर से बोला कि अन्दर एक आलू की टिकिया दे आए।

लोगों की बातचीत प्रायः बन्द हो गई थी और खामोशी मे खाना खाया जा रहा था। लोगो की आंखें, नासिकाएं और होंठ मुसकरा रहे थे। जो बातें कही नहीं जा सकती थी उनका चटखारा सांग इशारो मे ले रहे थे। नौकर जब आलू की टिकिया प्लेट मे

डालकर अन्दर ले गया तो सहसा अन्दर से बच्चे के रुआंसे स्वर में चिल्लाने का शब्द सुनाई दिया,

"मैं अण्डे खाऊंगा, मैं अण्डे खाऊंगा।"

"मैं तुझे अण्डे खिलाऊंगी, ज़रूर खिलाऊंगी," उसकी मां का संयत स्वर सुनाई दिया, "पर इस समय नहीं, फिर कभी आएंगे।"

"मैं अभी खाऊंगा!" बच्चा फिर उसी तरह रोया।

"तुझसे कहा अभी नहीं," मां बोली, "मैं तुझे रोज़ अण्डे खिलाया करूंगी, थोड़े दिन ठहर जा।"

बाहर खामोशी और गहरी हो गई थी। इशारेबाजी भी बन्द हो गई थी। लोगों के चेहरे पर हलका खिसियानापन दिखाई दे रहा था।

"रोज़ नहीं खाऊंगा, सिर्फ आज ही खाऊंगा।" बच्चा मचल रहा था।

"आज तुम टिकिया खाओगे! खाओ!"

"नहीं, मैं सिर्फ टिकिया नहीं खाऊंगा।"

लाला अपनी जगह से फिर उठा और प्लेट में दो उबले हुए अण्डे रखकर अन्दर ले चला। लोगों की दृष्टियों का भाव फिर बदल गया और एक आदमी थोड़ा खांस दिया।

"यह बच्चे को दे दीजिए," उसने अन्दर जाकर कहा।

"आपसे किसने लाने को कहा है?"

"कहा तो किसी ने नहीं, ये मैं अपनी तरफ से···।"

"इन्हें वापस ले जाइए।"

वह बुदबुदाता हुआ वापस लौट आया।

एक आवाज़ सुनाई दी, "सूद साहब, अण्डे घर की मुर्गियों के हैं या बाज़ार की?"

लाला ने एक बार आग्नेय दृष्टि से कहने वाले की ओर देखा और फिर हिसाब की कापी के पन्ने पलटने लगा।

अन्दर से बच्चे के सुबकने का स्वर सुनाई दे रहा था।

"तू यह खाएगा या नहीं?" मां ने उससे तीखे स्वर में पूछा।

बच्चा कुछ उत्तर न देकर सुबकता रहा।

"तो उठ चल यहां से।" उसने और भी सख्त स्वर में कहा, और बच्चे को लगभग घसीटती हुई बाहर निकल आई।

उसके बाहर आने पर मैंने उसे गौर से देखा। वह पहले से काफी बदली हुई थी। उसकी नीली आंखों के नीचे हल्के-हल्के काले दायरे बन गए थे। उसके होंठो पर पपड़िया जम रही थी और गालों पर शुष्क सफेदी झलक आई थी। यद्यपि उसके शरीर का कसाव पहले जैसा ही था, फिर भी चेहरे पर प्रौढ़ता आ गई थी। पंजाबी वस्त्र उस समय उसके शरीर पर उतने स्वाभाविक नहीं लग रहे थे। उसका बच्चा भी पहले से कुछ दुबला हो गया था और उसके होंठ लगातार रोनेवाले बच्चे के-से लग रहे थे। उसके नरम बाल सिर पर उलझ रहे थे और पलकों में दो आंसुओं की दो बूंदें अटकी हुई थीं। वह केबिन के बाहर आते ही तेजी से अपना हाथ झटककर मां से पहले ढाबे के बाहर चला गया। एवलीन ने गद्दी के पास रुककर पैसों के विषय में पूछा तो लाला ने त्योरी चढ़ाए हुए उत्तर दिया, "चार आने!"

वह जानती थी कि एक टिकिया के उसे दो आने चाहिए, इसलिए उसने तीखी नज़र से लाला को देखा मगर बिना कुछ कहे दो दुअन्नियां उसकी गद्दी पर फेंककर बाहर

चली गई।

"आज रेट बढ़ा दिए हैं सूद साहब ?" उसके चले जाने पर एक आवाज सुनाई दी।

"बड़ा दिमाग दिखा रही थी," लाला सब खानेवालों को लक्षित करके बोला, "अब सारा दिमाग निकल गया कि नहीं ?"

और फिर सब कुछ पहले की तरह चलने लगा—बातें, कहकहे और दालसब्जी के लिए ज़ोर-ज़ोर की पुकार। थोड़ी देर के लिए जो विराम आया था उसने लोगों की भूख और बढ़ा दी थी क्योंकि तन्दूर में रोटी लगाने वाला बहुत फुर्ती करता हुआ भी लोगों की माग पूरी नहीं कर पाया।

तीसरी बार मैंने उसे काफी दिनों मे देखा।

सतीश और मैं शाम को बालरूम की तरफ जा रहे थे। महीने के पहले सप्ताह मे हम लोग एकाध बार यह ऐयाशी कर लिया करते थे। हमें खुद नाचना नहीं आता था और न ही वहा हमारा किन्हीं लोगों से परिचय था। मगर अपने लिए इतना ही बहुत था कि कोने मे बैठकर वहा नाचती हुई आकृतियों को देख लेते थे। सतीश उनमें से कइयों के इतिहास भी सुनाया करता था। शिमले की प्रायः सभी सोसाइटी गर्ल्ज़ वहां आती थी। उनका मेकअप और उनकी मुसकराहटें दूर से बहुत सुन्दर लगती थी। वहां मित्रता के नाम पर वे सौदे आसानी से हो जाते थे जिन्हें सरे आम करना अपराध था।

वह हमे बालरूम से थोड़ी दूर कच्चे रास्ते पर दिखाई दी। वह अपने बच्चे को साथ लिए इलीज़ियम होटल की तरफ से आ रही थी। उसने साधारण छींट का फ्राक पहन रखा था। उसके बच्चे ने वही लाल और सफेद ऊन के कपड़े पहन रखे थे जो अब मैले हो रहे थे। वह बच्चे की उंगली पकड़े ऐसी सूनी नजर से सामने देखती चल रही थी जैसे उसे आसपास किसी वस्तु की स्थिति का आभास ही न हो। उसे देखकर मेरे हृदय पर उस समय कुछ वैसे ही छाप पड़ी जैसी कि उसके पति के बनाए हुए चित्रों को देखकर पड़ी थी। उसके चेहरे के सौन्दर्य मे विशेष अन्तर नहीं आया था। परन्तु चेहरे का भाव इतना बदल रहा था कि मैं उसे शिमले में न देखकर और कहीं देखता तो शायद पहचान भी नहीं पाता। वह जैसे स्वाभाविक रूप से एक व्यंग्याकृति मे बदल गई थी।

सड़क के मोड के पास आकर मूंगफली वाले के पास रुक गई। वह दो पैसे निकालकर मूंगफली वाले को देने लगी तो बच्चे ने उसका हाथ पकड़कर मचलकर कहा, "नहीं, मैं नहीं लूगा।"

उसने बच्चे की ठुड्डी को छूकर उसे पुचकारा और कहा, "तू मेरा कितना अच्छा बेटा है ! ममी की हर बात मानता है। देख न कितनी अच्छी मूंगफली हैं।"

"नहीं मैं यह नहीं खाऊंगा," लड़का हठ पकड़कर बोला, "मैं कबाब खाऊंगा, मैं आलू की टिकिया खाऊंगा।"

"नहीं, बेटे," वह फिर समझाती हुई बोली, "ममी की तू इतनी बात नहीं मानता ? मैं तुझे आलू की टिकिया भी खिलाऊंगी, सब कुछ खिलाऊंगी मगर कुछ दिन ठहर जा। समझा न ? इस वक्त तू यह मूंगफली ले ले, बहुत अच्छी भुनी हुई मूंगफली है।"

"नहीं, मैं कुछ नहीं खाऊंगा। कुछ नहीं खाऊगा !" लड़का और अधिक मचलकर उसका हाथ छोड़कर आगे-आगे चल दिया। वह क्षण-भर मूंगफली वाले के पास रुकी रही। फिर वह भी चल दी।

"इसके पास इसके पति की बनाई हुई बहुत सी तसवीरें हैं," सतीश मुझसे बोला।

"मुझे पता है !" मैंने कहा ।

"यह समझती है कि किसी दिन वे तसवीरें अच्छी कीमत पर बिक जाएंगी। यहां अक्सर लोग इससे तस्वीर खरीदने की बात करते हैं, मगर फिर आपस में इसका मजाक उडाते हैं। असल मे वे चाहते कुछ और ही है।"

"मुझे पता है !" मैंने कहा ।

हम सब लोग बालरूम के सामने पहुंच गए थे। बालरूम की खिड़कियों से छनकर आती हुई रोशनी बहुत सुन्दर लग रही थी। ऊपर से आर्केस्ट्रा की मीठी धुन सुनाई दे रही थी। बालरूम के समाज की दो सुन्दर लड़किया चहकती हुई बालरूम की सीढ़िया चढ रही थी।

एवलीन का लडका सडक पर मु ह फैलाए खड़ा था। एवलीन ने एक नजर ऊपर जाती हुई लड़कियो पर डाली और बालरूम की रोशनी से चमकती हुई पर्देदार खिड़कियो पर से फिसलती हुई उसकी दृष्टि हमसे मिली, फिर बच्चे के कन्धे पर हाथ रखकर पुचकारती हुई वह आगे चल दी।

सीढियो पर चढ़ते हुए हमने ऊपर तालियों का शब्द सुना। शायद तभी कोई धुन बजकर समाप्त हुई थी।

क्लेम

अड्डे से तागा चला, तो उसमें कुल तीन ही सवारियां थी। दूर से बस आती दिखाई न दे जाती, तो साधुसिंह कुछ देर और अभी चौथी सवारी का इंतजार करता। पर बस के आते ही तागे मे बैठी सवारियां उतरकर बस मे चली जाती थी, इसलिए बस के अड्डे पर पहुचने से पहले ही तागा निकाल लेना जरूरी हो जाता था। बस के आने तक सवारियां कितनी ही उतावली मचाए, वह पूरी चार सवारिया लिए बिना अड्डे से बाहर नही निकलता था। बस कचहरी से मॉडल टाउन के पांच पैसे लेती थी, इसलिए तांगे भी पाच-पाच पैसे में ही जाते थे। पूरी सवारियां हो तो कहीं पाच आने पैसे बनते थे। नही तो घोड़े को सवा मील दौड़ाकर भी दस या पन्द्रह पैसे ही हाथ आते थे। आज सुबह से उसने मॉडल टाउन के तीन फेरे लगाए थे मगर अभी उसकी जेब में सत्रह आने भी जमा नहीं हुए थे। जून की चिलचिलाती धूप मे वैसे ही घोड़े का दम निकल रहा था, इसलिए दस-दस पैसे के लिए उसे दौड़ाना अक्लमन्दी नही थी। मगर इसके सिवा कोई चारा भी नहीं था। गर्मी मे सवारी ऐसे ही कम निकलती थी, फिर मुकाबिला बस से था जो कचहरी से मॉडल टाउन पहुचने मे पाच मिनट भी नही लेती थी।

"चल अलगाग, चल, तेरे सदके, चल !" वह खड़ा होकर लगाम को घुमाता हुआ उससे चाबुक का काम लेने लगा। धोबी मोहल्ला पार करने तक उसे आशा थी कि शायद रास्ते मे कोई सवारी मिल जाए। मगर ड्योढ़ियो मे ऊंघती दो-एक धोबिनों को छोड़कर सारा मोहल्ला सुनसान था। मोहल्ले से निकलकर उसने लगाम ढीली छोड़ दी और वजन बराबर करने के लिए खुद पाम पर बैठ गया।

पीछे से बस आ रही थी, इसलिए पिछली सीट पर बैठी स्त्री झल्लाने लगी। "बैठो तो सब मिन्नत-तरला करके बैठा लेते हैं और चलाते इस तरह हैं जैसे सड़क का मुआइना करने निकले हों। इतनी ही देर लगानी थी, तो हम से पहले कह देते, हम

बस में बैठ जाते। हमें इतना जरूरी काम है नहीं तो हमें इतनी गरमी में घर से निकलने की क्या पड़ी थी ?"

साधुसिंह उचककर बांस पर जरा और आगे हो गया और जल्दी-जल्दी लगाम को झटकने लगा। "चल तुझे ठण्ड पड़े, तेरी जवानी के सदके, चल-चल गोली की चाल, माई-बीबी नाराज हो रही है। चला चल तेरी खैर, अफसरा ! मार दे हल्ला ! ताक् !"

मगर लगाम के झटके खाकर भी अफसर की चाल तेज नहीं हुई। वह दो बार इधर-उधर सिर झटककर अपनी चाल चलता रहा। बस हॉर्न बजाती पीछे से आई और धूल का बवण्डर छोड़कर आगे निकल गई।

"देखा, निकल गई न बस ? कहता था बस से पहले पहुचाऊंगा !" वह स्त्री फिर बोली।

साधुसिंह जवाब न देकर लगाम को झटकता रहा और अफसर लगाम की परवाह किए बिना अपनी चाल चलता रहा।

सवा मील कोई ज्यादा रास्ता नहीं था। सूरज ढलने के बाद यही रास्ता चुटकियों में पार हो जाता था। मगर उस वक्त भरी दोपहर थी और आसपास कहीं छाया नजर आती भी थी तो बहुत सिमटी-सिमटी और वीरान-सी। कोलतार की सड़क जगह-जगह से पिघल गई थी। आसपास के डेढ-डेढ आदमी गहरे छप्पड़ सूख गए थे। साधुसिंह सोचने लगा कि अभी तो गरमी की शुरुआत ही है, आगे चलकर जाने क्या होगा ?

"चल राजा, चल पुतरा, तेरी जान की खैर, तेरी सलामती की बरकत, खा जा गम और चलाचल गोली की चाल, तेरी मा के दूध की खैर···!"

तांगे मे बैठी तीनों सवारियां क्लेम्ज के दफ्तर की थी। आगे बैठा सरदार कह रहा था कि उसका साठ हजार का क्लेम मजूर हुआ है जिसमे से आधा पैसा उसे नकद मिलेगा और आधा जायदाद की शक्ल मे। पीछे बैठी स्त्री रो रही थी कि बेडा गर्क हो क्लेम मंजूर करनेवालों का जो उसका सिर्फ अट्ठारह हजार का क्लेम मजूर किया गया है···गुजरावाला मे उनके चार मकान थे और एक साढे तीन कनाल का बागीचा था। बागीचा चार कनाल का होता, तो उन्हे ज्यादा रुपया मिलता। अगर उन्हे पहले पता होता, तो वे आधा कनाल ज्यादा लिख देते···वे अपनी सचाई में मारे गए। घर में उसकी दो जवान लड़कियां हैं, जिन्हें अकेली छोडकर उसे रोज-रोज बटाला से जालन्धर के चक्कर काटने पडते हैं। इसी तरह चक्कर काटने-काटते उसके पति की मृत्यु हो गई और वह खुद भी बीमार रहने लगी है।

"पता नहीं, मुझे अपने जीते-जी इन कसाइयो का पैसा देखने को मिलेगा या नहीं ? मुझे तो लगता है कि मैं भी इसी में मर-खप जाऊंगी, और मेरे बच्चे पीछे बिलखते रहेंगे।" उसका लहजा ऐसा था जैसे वह बात न करके किसी से फरियाद कर कर रही हो। चेहरे के भाव से लगता था, जैसे अभी-अभी उसे कोई सदमा पहुंचा हो।

उसी सीट पर उस स्त्री के साथ व्यक्ति माथे पर त्योरियां डाले खामोश बैठा था।

"माईजी, अट्ठारह हजार में से अभी कुछ मिला भी है या नहीं ?" आगे बैठे सरदार ने सहानुभूति के स्वर में पूछ लिया।

"कुल छ: हजार मिला है अभी।" वह स्त्री बोली, "मेरा बाल-बच्चों वाला घर है। छः हजार मे मेरा बनता क्या है ? मेरे बच्चे अच्छा खाने-पहनने के आदी हैं। उन पर छः-छः हजार एक महीने में खर्च होते थे। और कहते हैं यह रुपया भी विधवा होने

के कारण मुझे जल्दी मिल गया है। इतना देकर भी उन्होंने मुझ पर एहसान किया है!" और वह पल्ले से आंखें पोंछने लगी।

खामोश बैठा व्यक्ति सरदार की तरफ मुड़ा और धिक्कारने की-सी आवाज़ गले से निकालकर बोला, "सच कहते हैं औरतों की अक्ल टखनों में होती है!"

"क्यों भाई, मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू मुझे गालियां दे रहा है?" स्त्री आंसू पोंछती हुई सहमा तमक उठी। मैं तुझसे तेरी ज़मीन-जायदाद तो नहीं मांग रही। अपना जो-कुछ छोड़ आई हूं, उसी का रोना रो रही हूं।"

"तू अकेली नहीं छोड़ आई, हम सब अपने घर-बार पीछे छोड़ आए हैं। शुक्र कर तुझे छ: हज़ार तो मिल गए हैं। यहां हम जैसे भी हैं जिन्हें आज तक एक पाई नहीं मिली। हमारा कसूर यही है कि मियां-बीवी दोनों सलामत हैं। मैं अगर मर-खप गया होता, तो मेरे बच्चों को भी अब तक दो रोटियां नसीब हो जातीं। आंखें मेरी अंधी हो रही हैं, जोड़ मेरे दर्द करते हैं—मैं जीता हुआ भी क्या मुर्दों से बेहतर हूं? मगर सरकार के घर में ऐसा अंधेर है कि लोग इन्सान की ज़रूरत को नहीं देखते, बस जीते और मरे हुए का हिसाब करते हैं। मुझे आज ये एक हज़ार ही दे दें तो मैं कोई छोटी-मोटी दुकान डालकर बैठ जाऊं। मेरे बच्चों के पास तो एक-एक फटी हुई कमीज़ भी नहीं है।"

"अपनी-अपनी तकदीर की बात है भाई साहब, कोई किसी दूसरे की तकदीर थोड़े ही ले सकता है?" सरदार मध्यस्थता करता हुआ बोला, "हम और आप भी दुखी हैं, और यह भाई भी दुखी है—कौन यहां दुखी नहीं है? कोई कम दुखी है, कोई ज़्यादा दुखी है।"

"आपको साठ हज़ार मिल रहे हैं, आपको किस चीज़ का दुख है?" वह व्यक्ति अब और कुढ़ गया।

"मिल रहे हैं, यह भी तकदीर की बात है," सरदार बोला, "क्लेम भरते हमें अक्ल आ गई, उसी का फल समझिए। नहीं हमें भी ये दस-बीस हज़ार देकर टरका देते।"

"आपने क्लेम ज़्यादा का भरा था?"

"हमारी डेढ़ लाख की जायदाद थी। मगर हमें पता था कि असली क्लेम भरेंगे तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा। सो वाहे गुरु का नाम लेकर हमने इस तरह फार्म भरा कि जायदाद की असली कीमत तो कम-से-कम वसूल हो ही जाए। मगर इन बेईमान ने फिर भी कुल साठ हज़ार का ही क्लेम मंजूर किया है। हम छ: भाई हैं—दस-दस हज़ार लेकर बैठ रहेंगे।"

"मैं इनसे कितना कहती रही, पर इन्होंने मेरी एक न सुनी!" स्त्री हताश भाव से हाथ मलने लगी।

दोनों व्यक्ति गयालिया नज़र से उसे देखते रहे।

"मैं कहती रही कि जितना छोड़ आए हो, उससे ज़्यादा का क्लेम भरो। मगर ये ऐसे मूरख थे कि हठ पकड़े रहे कि जितना था, उतने का ही क्लेम भरेंगे—पहले ही इतने दुख उठाए हैं, अब और बेईमानी क्यों करें? आज ये मेरे सामने होते, तो मैं पूछती कि बताओ बेईमानी करने वाले सुखी हैं या हम लोग सुखी हैं? लोगों ने जितना छोड़ा था, उसका दुगुना-तिगुना वसूल कर लिया, और मैं बैठी हूं छ: हज़ार लेकर!···हाय, इन लोगों ने तो मेरे बच्चों को भूखों मार दिया!" और अब वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

उसके साथ बैठे व्यक्ति ने दूसरी तरफ मुंह करके माथे पर हाथ रख लिया! सरदार फिर सहानुभूति प्रकट करने लगा। "रोने से कुछ नहीं होना भाई! जो लिखा

है, उसी से सन्तोष कर।"

"सन्तोष करने को एक मैं ही रह गई हूं ? सारी दुनिया मौज करे और मैं सन्तोष करके बैठी रहूं ?" और वह रोती रही।

"जल्दी पहुंचा भाई, इतना आहिस्ता क्यों चला रहा है ?" माई के साथ बैठा व्यक्ति उतावला होकर बोला।

साधुसिंह झुंझलाकर बार-बार लगाम को झटके दे रहा था, मगर घोड़े की चाल में फर्क नहीं आ रहा था। अब वह लगाम का सिरा ज़ोर-ज़ोर से उसकी पीठ पर मारने लगा। "तेरी अफ़सर की ऐसी की तैसी ! तेरी पूंछ पर तितैया काटे ! चल पुतरा जल्दी !"

मगर तितैया के डर से भी अफ़सर की चाल तेज़ नहीं हुई।

क्लेम्ज़ के दफ्तर के बाहर उन लोगों को उतारकर लौटते हुए साधुसिंह को एक भी सवारी नहीं मिली। वह काफी देर मार्केट के मोड के पास रुका रहा, मगर तीनो सडकों मे से किसी पर भी उस वक्त कोई इन्सान चलता दिखाई नहीं दे रहा था। तेरह नम्बर दुकान के साये मे दो-एक रिक्शावाले सोए थे। तेरह नम्बर का सरदार अन्दर बर्फ कूट रहा था। साधुसिंह का मन हुआ कि सरदार से एक गिलास शिकंजवी बनवाकर पी ले और कुछ देर रिक्शावालों के पास ही एक तरफ लेटा रहे। मगर तांगा खड़ा करने के लिए वहां कोई छायादार जगह नहीं थी और न ही नज़दीक कोई चहबच्चा था, जहां से घोडे को पानी पिला सकता। घोडा गरमी के मारे हूक रहा था और बार-बार ज़बान बाहर निकाल रहा था। साधुसिंह की जेब मे जो सत्रह आने थे वे भी हिसाब से उसके अपने नहीं थे। घोड़े के लिए चारा खरीदने के लिए ही उसे कम से कम दो रुपये चाहिए थे। उसने ज़बान से होंठों को गीला किया और घोड़े का रुख शहर की तरफ कर दिया।

लम्बी सीधी, वीरान सड़क पर वह अकेला तांगा चला रहा था। आसपास के पेड भी गरमी से परेशान सिर झुकाए खड़े थे। फिर भी न जाने किन झुरमुटों में बैठी कुछ चिड़ियां बोल रही थीं— चिचिचि···चिचि···ह्विश्···च्यु-यु-यु-यू-यु···चिचिचि··· चिचि···!

साधुसिंह लगाम ढीली छोड़कर पिछली सीट पर अधलेटा-सा हो रहा। उसका मन उस समय उस आम के पेड़ की डालों के गिर्द मंडरा रहा था, जो उसने बड़े चाव से अपने पत्तोकी के घर के आंगन मे लगाया था। नौ रुपये महीने का वह मकान बरसों के परिचय के कारण अपना मकान ही लगता था। हीरां ने कितनी ही बार कहा था कि पराये घर में पेड लगा रहे हो, पाल-पोसकर एक दिन दूसरों के लिए छोड़ जाओगे ! मगर तब यह कहां सोचा था कि वह घर इस तरह छूटेगा कि ज़िन्दगी-भर उसके पास से गुज़रना तक नसीब न होगा !

आम का पेड़ इन दिनों खूब फल रहा होगा।···और हीरां ?

उस साल पेड़ पर पहली बार फल आया था। फल आने की खुशी में उसने न जाने कितनी कच्ची अंबियां खा डाली थीं।

"क्यों जान-बूझकर दांत खट्टे करते हो ?" हीरां चिढ़ती।

"यह अपने पेड़ का फल है, जानी ! इसे खाकर दांत खट्टे नहीं होते।"

और हीरां के अधखिले यौवन को वह गाढ़े आलिंगन में समेट लेता।

आम हरे से पीले और पीले से सुर्ख हो आए थे, जब बलवा शुरू हुआ। पत्तोकी की हर गली में खून बहने लगा। आधी रात को बलवाई उनके मोहल्ले में घुस आए। जब

उनके घर का दरवाजा तोडा गया, तो वह हीरां को साथ सटाए दम-साधकर चारपाई पर पडा था। उन्होंने जल्दी से पिछवाड़े की तरफ कूद जाने का निश्चय किया। वह तो झट-से कूद गया, मगर हीरा दो बार उचककर भी कूद नही पाई। और इससे पहले कि वह फिर एक बार साहस करती, किसी हाथ ने उसे पीछे खींच लिया।

अंधेरा, खेत और रेल की पटरियां···बेजान हाथ-पैर और भूख···टिकट, कूपन, कार्ड और नम्बर···

नाम, साधुसिंह।

वल्द, मिलखासिंह।

कौम, खत्री।

जमीन-जायदाद, कोई नहीं।

रुपया-पैसा, कोई नही।

क्लेम···?

उसका वह आम का पेड, जिसके पकने की उसने बेसब्री से इन्तजार की थी और जिसकी अंबिया खा-खाकर वह अपने दांत खट्टे करता रहा था—उस पेड़ की छाया में उसे भविष्य के जो साल बिताने थे···?

उस घर की अपनी एक खास तरह की गन्ध थी, जो कपड़ों की गांठ से लेकर आगन की दीवारों तक हर चीज मे समाई रहती थी। वह गन्ध···?

और वे रातें जो आंगन मे लेटकर आसमान की ओर ताकते हुए बीतती थी?

और आनेवाली जिन्दगी के वे सब मनसूबे, जो उस घर की दहलीज के अन्दर-बाहर जाते मन मे उठा करते थे···?

"हीरां, बता पहले तेरे लडका होगा या लड़की?"

"हाय, शरम करो, कैसी बात करते हो?"

"अच्छा, मैं बताऊ? पहले तेरे एक लड़की होगी, फिर दो लड़के होगे, फिर एक लड़की होगी···।"

"[illegible]?"

···. खूबसूरत होगी। उसके तेरे जैसे ही ... और ठोडी के पास यही एक तिल होगा···।"

"हाय, क्या करते हो?"

"मैं उसके इसी तरह चिकुटी काटूंगा, और वह इसी तरह चीख उठेगी।"

वह स्पर्श ··? वह सिहरन···? वह कल्पना···? वह भविष्य···? साधुसिंह, वल्द मिलखासिंह, कौम खत्री—नम्बर···? क्लेम···?

आम का पेड अब बड़ा हो गया होगा। घर की दीवारों की गन्ध पहले से बदल गई होगी। और हीरां·· ? आज उसकी गोद में न जाने किसके बच्चे होगे?

साधुसिंह सीधा होकर बैठ गया। तांगा धोबी मोहल्ले में पहुच गया था। चारों तरफ हर चीज अब भी ऊंघ रही थी। उसने लगाम को लगातार कई झटके दिए। घोड़े की गरदन थोड़ा ऊपर उठी, फिर उसी तरह झुक गई।

अड्डे पर पहुंचकर साधुसिंह ने घोड़े को बहबच्चे से पानी पिलाया और सीट के नीचे से चारा निकालकर उसके आगे डाल दिया। घोड़ा चारे मे मुंह मारने लगा, और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

"तेरी बरकत रही अफसरा, तो अपने पुराने दिन फिर आएगे! खा ले, अच्छी

तरह पेट भर ले। अपने सब क्लेम तुम्ही को पूरे करने हैं, तेरी जान की खैर'''।"

और अफसरा गरदन लम्बी किए चुपचाप चारा खाता रहा।

फौलाद का आकाश

ड्राइंग-रूम काफी खुला और बड़ा था, अकेले बैठने के लिए बहुत ही बड़ा। रात को वहां से गुज़रकर पैंट्री मे जाना पड़ता तो मीरा को अपने अन्दर एक डर-सा महसूस होता। ड्राइंग-रूम का खालीपन एक तसवीर की तरह लगता, दीवारों के चौखटे में जड़ी तसवीर की तरह। बेडरूम के अलावा और सब कमरों की बत्तियां बुझाकर जब शकर अपने क्वार्टर मे सोने चला जाता, तो किसी-न-किसी काम से रोज़ उसे उधर जाना पडता था। कभी अपनी जरूरत से, कभी रवि के कुछ मागने पर। बिजली के बटन पर हाथ रखने तक गद्दों और कुर्सियो की आकृतियां उसे अंधेरे मे ऊंघती-सी जान पड़ती। कई बार वह बटन दबाने का हौसला न करती—कि कही ऊंघती आकृतियों की बत्ती जल जाने से उलझन न हो।

रवि रात को देर तक काम करता रहता था। ढेर-ढेर कागज़ आकड़ों और ग्राफों से भरे रहते थे। उसके हाथ इस तरह हिलते रहते थे जैसे काम करने के लिए उसे ज़रा भी सोचना न पड़ता हो। कागज पर उसकी कलम फिसलती जाती थी, फिसलती जाती थी। फिर एकाएक वह कागज सरकाकर कुर्सी की पीठ से टेक लगा लेता और दाएं हाथ को बाएं हाथ से दबाने लगता। तब भी मीरा को लगता कि दिमाग उसका नही थका, सिर्फ हाथ थक जाने से उसे मजबूरन रुक जाना पड़ा है। चीखने की-सी हल्की आवाज के साथ चिप्स के फर्श पर कुर्सी पीछे को सरकती और रवि उठता हुआ कहता, "तो तुम अभी तक जाग रही हो? कितनी बार तुमसे कहा है कि वक्त पर सो जाया करो।"

मीरा मुसकराती हुई उठती और उसे गिलास मे पानी दे देती। वह जानती थी कि रवि जान-बूझकर रोज़ तकल्लुफ मे यह बात कहता है। उसके काम खत्म करने तक अगर वह सचमुच सो जाए, तो रवि को झुंझलाहट होती है। ऐसे मे वह सुराही से पानी लेने मे भी इतनी आवाज करता है कि खामखाह दूसरे की नींद खुल जाए। या फिर भारी कदमों से कमरे मे चहलकदमी करने लगता है। या अलमारी से मोटी-मोटी किताबें निकालकर धप्-धप् उनकी धूल झाड़ने लगता है। चैन उसे तभी मिलता है जब किसी-न-किसी आवाज से वह अचानक जाग जाती है। उसपर भी वह तकल्लुफ छोड़ता नहीं। कहता है, "अरे तुम ज़रा-सी आवाज़ से जाग गई? बहुत कच्ची नींद है तुम्हारी।"

बिस्तर मे लेट जाने के बाद अचानक रवि को अपनी किसी फाइल का ध्यान हो आता, जिसे वह बाहर बरामदे में भूल आया होता। या हल्की भूख का एहसास होता। या अपनी मल्टी विटामिन टिकिया की याद हो आती। कहता वह बहुत उलझे ढग से, "देखो, हो सके तो'''" या, "देखो, कर सको तो'''" दस साल साथ रहकर मीरा जान चुकी थी कि इस तरह बात उसकी मर्जी पर नहीं छोडी जाती, सिर्फ आदेश को तकल्लुफ का जामा पहना दिया जाता है। वह चुपचाप उठती, ड्राइग-रूम पार करके जाती और जो कुछ मांगा गया होता, लेकर लौट आती। आदेश का पालन हो चुकने पर रवि के मन मे न जाने कैसी कुण्ठा जाग आती कि वह उसे कसकर बांहों में भरने का प्रयत्न करता।

पूछने लगता, "मेरे साथ अपनी जिन्दगी तुम्हें बहुत रूखी लगती है न ?" कहकर किसी भी उत्तर की प्रतीक्षा या अपेक्षा वह न करता—कुछ भी बोलने से पहले उसके होंठों को अपने होंठो से भीच देता। फिर फुसफुसाकर कहता, "मैं बहुत बुरा हूं, हूं न ?" इसपर भी उस किसी उत्तर की आशा न रहती। वह अपने-आप सवाल पर सवाल किए जाता। "तुम्हें मैं बहुत दु खी करता हू, नही ? पर अब तो तुम्हे सहने की आदत हो गई है, नही ?" साथ ही उसके हाथ उसके शरीर की गोलाइयो को मसलने लगते, उसके दात जगह-जगह उसके मास को काटने लगते। "साथ तुम यह भी जानती हो कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हू, कितना ज्यादा प्यार करता हूं, नही ?" और मजिल दर-मजिल शारीरिक निकटता की हदें पार होती जाती। आखिर जब पसीना-पसीना होकर वह उससे अलग होता, तो भी मीरा को यही लगता जैसे अब भी लिखते-लिखते हाथ थक जाने से उसने कागज परे हटा दिए हो और इसके बाद अब पानी का गिलास मांगने जा रहा हो। वह अनायास ही उसे पानी देने के लिए उठना चाहती, पर तब तक रवि के खर्राटे भरने की आवाज सुनाई देने लगती है। वह चुपचाप कुछ देर उसके माथे के ज़ख्म को और अधपके बिखरे बालो को देखती रहती, फिर उसांस भरकर सिर तकिए पर डाल लेती। कुछ देर बाद उठकर गुसलखाने मे जाती और वापस आकर फिर उसी तरह लेटी रहती। बाहर कच्ची सड़क से कोई टूटी साइकिल खरड़-खरड़ की आवाज करती निकल जाती।

बीच रात मे अचानक नीद खुलने पर मीरा को लगा कि वह किसी ऐसी साइकिल की आवाज़ सुनकर ही जागी है। सुबह-सुबह दूधवाले बड़े-बड़े पीपे ... से लटकाए उधर से गुज़रकर जाया करते थे। ... स्याही ... जैसे को ... शीशो की ज्यादा उ ... रही थी— ... , ज्यादा चुभती हुई लगी। वह आवाज़ उस वक्त रोज़ से जितना आकाश झुक आया था, उसमे एक सितारा बहुत तेज़ चमक रहा था। इतना तेज कि वह सितारा नही लगता था। मीरा बिस्तर से उठी कि खिडकी बन्द कर दे—कि हवा और झींगुरो की आवाज उससे कुछ कम हो जाए। पर खिडकी के पास आई तो देर तक वही रुकी रही। फौलादी जाली से आख सटाकर उस सितारे को देखती रही। फौलाद का ठण्डा स्पर्श आख पर अच्छा नही लगा तो ड्राइग-रूम में से होकर बाहर बरामदे मे आ गई। आते हुए नज़र पडी ड्राइग-रूम की रोगनी मूर्तियो पर अज़हदे की शक्ल की ऐश-ट्रे पर, वाट सिक्स्टी नाइन की बोतल के बने टेबल लैम्प पर और असमिया मछुओ की टोपी जैसी वाल-प्लेट पर। बत्ती जलते ही ये सब चीज़ें एक साथ चमक उठी थी। बरामदे मे आकर उसने मुक्ति की सांस ली—उन सब चीजों से मुक्ति की। उस सितारे की सीध मे पेडो और पत्तियो के पीछे कापता आकाश जैसे उसके अन्दर बहुत गहरे मे किसी चीज़ को छू गया। उसने अपने ठडे चेहरे को हथेलियो से छुआ और बरामदे में पड़ी आराम कुर्सी पर ढीली-सी बैठ गई। हवा से पत्तियों का कापना, घास का सरसराना और उंगलियो का सर्द पडते जाना उसे ऐसे लगा जैसे कोई कसी हुई गांठ उसके अन्दर ढीली पड रही हो, कोई सोई हुई चीज धीरे-धीरे करवट वदल रही हो। उसकी हथेलियां गालो से फिसलकर आखो पर आ गई, जिससे ठडी आखें कुछ गरमा गई, हथेलिया कुछ ठण्डी पड गई। फिर उसने चार-चार उगलियो की नालियो से बाहर देखा, तो लगा कि सितारा लॉन की घास पर उतर आया है—वहां से आंख झपकाता हुआ उसे

ताक रहा है। वह उठी और अपनी रबड़ की चप्पल वहां छोड़कर लॉन मे उतर गई। पास जाकर देखा कि शबनम की एक अकेली बूंद उस सितारे को अपने मे समेटे है। अंधेरे के बावजूद घास की नमी में सुबह की ताजगी भर आई थी। वह अपने तलुओं से उस ताजगी को पीती हुई चलने लगी। शबनम के कई-कई कतरे शरीर की सिहरा गए। लगा कि घास की महक से सारा शरीर गमक उठा है।

पैर बहुत ठण्डे पड गए थे, जब पुरवइया के स्पर्श ने शरीर को फिर सिहरा दिया। पूरब मे अंधेरे की सतह पर एक हल्की लाल किरण तैर आई थी। मीरा देखती रही कि कैसे वह लाली उजली होकर सफेद होती है, कैसे रगो की झिलमिल अंधेरे में घुलती-फैलती अपनी तरफ बढती आती है। एकाएक वह अपने मन में चौंक गई। उसे अहसास हुआ कि पच्छिम का आकाश आज रात गहरा काला रहा है, फौलाद की भट्ठी की तांबई लौ वहा दिखाई नही दी। फौलाद की भट्ठी चौबीसो घटे सुलगती रही थी, पर उसका आभास मिलता था रात को ही —जब वह साथ आस-पास के आकाश को भी सुलगा देती थी। उसे पहली बार उस तरह देखा था, तो लगा था कि जंगल या किसी घर-मोहल्ले में आग लग गई है। बताए जाने पर भी विश्वास नही हुआ था कि वह लौ फौलाद की भट्ठी की है। बाद में धीरे-धीरे ऐसी आदत हो गई थी कि लगता था उतने हिस्से मे आकाश का रंग ही वैसा है। रात के वक्त ड्राइव से लौटने पर मीलों दूर से आकाश का चेहरा तमतमाया नज़र आता था। वह रवि से देखने को कहती, तो वह झुंझला उठता। "क्या बच्चों की-सी बातें करती हो? आज फौलाद का युग है। देखना एक दिन पूरे आसमान का रंग बदलकर ऐसा हो जाएगा।" वह कल्पना मे सारे आकाश को उस रंग में सुलगते देखती और कांप जाती। क्या बिना सितारों के तांबई आकाश के नीचे भी ज़िन्दगी उसी तरह जी जाएगी?

यह पहला मौका था जब पच्छिम के आकाश में एक सितारा चमकता दिखाई दिया था। आठ महीने में पहली बार उधर का आकाश तांबई नही था। उसे आश्चर्य हुआ कि इतनी बड़ी घटना पहले उसके ध्यान में क्यो नही आई? हर रात सुलगता रहने वाला आकाश आज धुएं की कालिख की तरह निर्जीव था और सुबह की लौ ने अब उसमें हल्की काई निकाल दी थी। उसका मन हुआ कि जाकर रवि से कहे कि उठो, देखो आज फौलाद की भट्ठी बुझ गई है। पर यह सोचकर उसका उत्साह ठण्डा पड़ गया कि रवि शायद यह बात पहले से जानता होगा। वह झुंझलाकर इतना ही कहेगा, "तुम्हें मैंने बतलाया नहो था कि आज से प्लांट मे स्ट्राइक है?" और उसे याद आया कि दिन में किसी वक्त सचमुच रवि ने प्लाट की स्ट्राइक का जिक्र किया था। सुनकर उसने अनमने ढंग से हूं-हा भी किया था जैसे कि उसकी हर बात पर किया करती थी। यह नही सोचा था कि स्ट्राइक होने से आसमान से वह रंग भी बुझ जाएगा।

पैर सुन्न हो रहे थे। उसने बरामदे में आकर चप्पल पहनी और कमरे में लौट आई। रवि तब तक जाग गया था। उसके पास आते ही करवट बदलकर बोला, "शंकर से कहोगी चाय दे जाए?" वह चुपचाप वापस चल दी। जानती थी चाय लाने के लिए उसी से कहा गया है। शंकर इतनी जल्दी नही उठता, यह रवि अच्छी तरह जानता था।

नीम की टहनियों पर कांपती सुबह धीरे-धीरे कमरे मे उतर आई। धूप की चकत्तिया रोज की परिचित जगहो पर छितरा गई। सुबह-सुबह कितने ही लोग रवि से मिलने आ गए। मैनेजमेंट का दासचौधरी, पर्सनेल का मुकर्जी और श्रम-विभाग का जे० दारूवाला। शाम को क्लब में मिलने वाले लोगों का सुबह-सुबह घर आना एक नई-सी

बात थी। मीरा खुद किचन में व्यस्त रहकर शंकर के हाथ उन्हें चाय भिजवाती रही। रवि से कोई भी मिलने के लिए आए, किसी भी समय आए, चाय की मांग जरूर होती थी। नाश्ते से पहले तीन बार चाय जा चुकी थी, अब चौथी बार ट्रे तैयार हो रही थी। सब लोग ड्राइंग-रूम में थे, पर लगता था जैसे कहीं दूर बैठे बात कर रहे हों। विषय वही था—प्लांट के मजदूरों की हड़ताल। जे० दारूवाला के हर दिन के मजाक उस समय उसकी जबान पर नहीं आ रहे थे। हकलाता भी वह रोज से ज्यादा रहा था। मुकर्जी बहुत कम बात कर रहा था। ज्यादातर आवाज दासचौधरी की ही सुनाई दे रही थी। जब रवि बोलता, तो उसकी बात में शब्द कम और आंकड़े ज्यादा होते। आंकड़े, आंकड़े, आंकड़े ! क्या बिना आंकड़ों के रवि कोई बात सोच ही नहीं सकता था ? मीरा को लगता कि उससे प्यार करते वक्त भी वह मन-ही-मन चुम्बनों की गिनती करता रहता होगा···तभी तो न उसका आवेश एक चरम पर पहुंचकर एकाएक रुक जाता था।

इस बार चाय की ट्रे वह खुद बाहर ले गई। उसके आने पर पल-भर के लिए बातचीत रुक गई। फिर रवि ने ही बात को आगे बढ़ाया। "मुझसे पूछा जाए, तो इसमें बहुत-कुछ लंच के मीनू पर निर्भर करता है," उसने कहा।

मीरा एक तरफ हटकर बैठ गई जिससे उसकी उपस्थिति उनकी बातचीत के रास्ते में न आए और प्यालियों में चाय बनाने लगी। रवि की बात पर पहली बार सब लोगों के गले से हंसी फूटी। दारूवाला के सूखे चेहरे की लकीरें फैल गईं। "दैट्स इट," उसने कहा, "मेरा तजुर्बा भी यही कहता है कि जो काम वैसे बहुत मुश्किल नजर आते हैं, लंच का मीनू ठीक होने से वे आसान हो जाते हैं।"

मीरा ने प्यालियां उन्हें दे दीं। मीनू की बात ने उसके मन में उत्सुकता जगा दी थी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि रवि जो प्लेट में सामने पड़ी चीजों को कभी ध्यान से देखता भी नहीं, वह आज कैसे लंच के मीनू में इतनी दिलचस्पी दिखा रहा है !

दासचौधरी ने मीनू बताया, तो रवि उसमें संशोधन करने लगा। मीरा स्थिर दृष्टि से उसके चेहरे की तरफ देखती रही। क्या सचमुच रवि रोस्ट मटन और रोस्ट चिकन के अन्तर को महत्त्वपूर्ण समझता था ?

वापस किचन में पहुंचने तक वह इतना जान गई कि मालिकों और मजदूरों के झगड़े में मध्यस्थता करने के लिए कोई व्यक्ति बाहर से आ रहा है, और दोनों पक्ष अपना-अपना केस आज उसके सामने रखने जा रहे हैं। दोपहर को स्थानीय कांग्रेस के प्रधान के यहां उसकी दावत है। उसी खाने का मीनू इस वक्त यहां तय किया जा रहा है। वह जब वहां से उठी, तो रवि कह रहा था, 'मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं। मुझे पता है उसके मेदे को क्या चीज मुआफिक आती है।"

लोगों के चले जाने के बाद रवि दफ्तर जाने के लिए तैयार हुआ, तो मीरा ने पूछ लिया, "देखो, आज वहां कुछ गड़बड़ तो नहीं होगी ?"

"हड़ताल प्लांट में है, दफ्तर में नहीं," रवि ने कुछ उलझकर कहा, "तुम नाहक परेशान होने लगती हो।"

मीरा पल-भर रवि के ऊंचे डीलडौल को, कसे हुए भूरे सूट और नुकीले जूते को, देखती रही। रवि को जब उसने अपने लिए पसन्द किया था, तो उसमें उसका ऊंचा डीलडौल क्या एक बड़ा कारण नहीं था ? उन दिनों रवि की जबान पर हर वक्त आंकड़े नहीं रहते थे और वह इतना उलझना भी नहीं था। तब वह एक डिग्री कॉलेज में साधारण लेक्चरर था—स्टील प्लांट में लेबर-एडवाइजर नहीं।

"यह रंग तुम्हारे जिस्म पर बहुत खिलता है," मीरा ने आंखों की चोरी पकड़ जाने से कहा। रवि के माथे पर हल्की शिकन पड़ गई। "तुम आज भी उन दिनों जैसी ही बातें करती हो," कहते हुए उसका निचला होंठ खास ढंग से सिकुड़ गया, "इतने साल साथ रहकर भी तुममें ज़रा फर्क नहीं आया।"

मीरा की आंखें छलछला आईं। रवि जब ऐसी बात कह देता था, तो वह अपने को उससे बहुत दूर महसूस करती थी। रवि के चेहरे का भाव उस फासले को और भी बढ़ा देता था। उस फासले को भरने की कोशिश उसे एक ऐसा भूठ लगता था जो वह दस साल से लगातार अपने से बोल रही थी। रात-दिन साथ रहकर भी वह फासला कम होने में नहीं आता था। जितना ही वह उसके नजदीक आती, फासले का एहसास उतना ही ज्यादा होता था।

चलते वक्त अपनी फाइलें समेटते हुए रवि ने कहा, "आज मैं लंच के लिए घर नहीं आऊंगा। शुक्ला जी के यहां आज राजकृष्ण की दावत है। मुझे भी वहां जाना है।"

"राजकृष्ण यहां आया है?"

"हां," रवि घड़ी देखता हुआ दरवाजे की तरफ बढ़ गया, "वह सरकिट हाउस में ठहरा है। हो सके, तो तुम किसी वक्त उसे फोन कर लेना। नहीं तो वह बुरा मानेगा कि उसके यहां होने की बात जानते हुए भी तुमने उससे मिलने या बात करने की कोशिश नहीं की।"

मीरा भी उसके साथ-साथ बरामदे में आ गई। रवि कार में बैठकर उसे रिवर्स में बाहर ले चला, तो वह वहीं खड़ी उसे देखती रही। कार के निकल जाने पर कच्ची सड़क की धूल बरामदे की तरफ बढ़ आई। मीरा फिर भी खड़ी रही, जैसे कि धूल में घिर जाना ही उसका उद्देश्य रहा हो।

अजदहे की शक्ल की ऐश-ट्रे में काफी राख और टुकड़े जमा हो गए थे। रवि किसी बात से उत्तेजित होता था, तो उसके चेहरे से उतना पता नहीं चलता था, जितना उसके लगातार सिगरेट फूकने से। पिछले कुछ सालों में उसका सिगरेट पीना लगातार बढ़ता गया था। डॉक्टर का कहना था कि इसका उसकी सेहत पर बुरा असर पड़ रहा है, फिर भी वह सिगरेट पीना कम नहीं कर पाता था। कभी-कभी तो आधी रात को न जाने क्या सोचता हुआ वह बिस्तर से उठ पड़ता था और खिड़की के पास खड़ा लगातार एक के बाद एक सिगरेट फूकता जाता था।

मीरा ने ऐश-ट्रे उठाकर झाड़ दी। फिर राख लगे हाथों को साबुन से धो लिया। ऐश-ट्रे झाड़ते हुए उसे हमेशा लगता था जैसे वह भुरभुरी राख रवि के व्यक्तित्व का ही एक हिस्सा हो—जैसे लगातार सिगरेट पीने से रवि का शरीर अन्दर से वैसा ही हो गया। उसे रवि से सहानुभूति होती, पर उस सहानुभूति में एक तटस्थता भी रहती। ब्याह से पहले वह जिस तरह रवि के व्यक्तित्व के साथ घुल-मिल जाने की बात सोचा करती थी, उसका आभास भी अब उसे अपने में नहीं मिलता था। अन्तरंग से अन्तरंग क्षणों में भी अपने को रवि से अलग, बिलकुल अलग, पाती थी। कभी उसे लगता कि ऐसा उम्र के बढ़ते सालों की वजह से है। पर इससे आगे के सालों की बात सोचकर मन में और टीस जागती। कभी उसे लगता कि इसमें सारा दोष रवि का है। कभी लगता कि दोषी रवि नहीं, वह स्वयं है।

रवि को लंच के लिए घर नहीं आना था, इसलिए उसे खाना बनाने का उत्साह नहीं हो रहा था। बहुत उत्साह पहले भी नहीं होता था, पर रोज की बंधी हुई लकीर

वक्त पर उसे गैस के चूल्हे के पास ले जाती थी। शंकर के हाथ का खाना रवि को पसन्द नहीं था; इसलिए दोनों वक्त का खाना वह अपने हाथ से ही बनाती थी ? दो आदमियों का खाना बनाने मे देर भी कितनी लगती थी ? कभी यह सोचकर भी उसके शरीर मे झुरझुरी भर जाती कि इतने सालो से वह हर रोज़ दोनों वक्त, दो आदमियों का, सिर्फ दो आदमियो का खाना बनाती आ रही है। जिन्दगी की यह एकतारता दो-एक बार तभी टूटी थी जब उसकी एबार्शन हुई थी और उसे अस्पताल जाना पड़ा था।

शकर को उसने दोपहर के लिए छुट्टी दे दी थी, इसलिए उसका पूरा वक्त खाली ड्राइंग-रूम मे अलसाते हुए बीता। तीन बजे के करीब शंकर लौटकर आया। उससे पता चला कि प्लांट के बाहर मज़दूरों का बहुत भारी जमघट है। मज़दूर इस तरह बेकाबू हो रहे हैं कि उनके नेताओ के लिए भी उन्हें सभालना मुश्किल हो रहा है। कोई मिनिस्टर फैसला कराने के लिए बाहर से आए हैं, पर मज़दूरो का एक बहुत बड़ा वर्ग उनकी मध्यस्थता स्वीकार करना नही चाहता। नेता लोग उन्हें समझा रहे हैं, पर मज़दूरों का जोश अभी काबू मे नही है।

मीरा को इस सब मे खास दिलचस्पी नही थी। फिर भी अकेलेपन की ऊब को कम करने के लिए वह यह सब सुनती रही। फिर अचानक उसे याद आया कि रवि ने जाते हुए राजकृष्ण को फोन करने के लिए कहा था। उसने वहीं सोफे से हाथ लम्बा करके सरकिट हाउस का नम्बर मिलाया। नाम और काम पूछने के बाद उसे बताया गया कि मिनिस्टर साहब अभी-अभी बाहर से लौटकर आए हैं। होल्ड-ऑन करें, तो उनसे पूछ लिया जाए कि वह इस वक्त बात कर सकेंगे या नही। एक मिनट बाद उससे कहा गया कि मिनिस्टर साहब फोन पर हैं, वह बात कर ले। फिर उधर से राजकृष्ण की भारी आवाज़ सुनाई दी, "कहो मीरा, क्या हाल हैं ?"

मीरा को समझ नही आया कि वह क्या उत्तर दे। बातें सब की सब जैसे एकाएक दिमाग से गायब हो गई। उसे अजीब लगा कि जिस आदमी के साथ कभी एक ही टीम मे वह यूनिवर्सिटी की डिबेटों मे हिस्सा लिया करती थी, आज टेलीफोन पर उसकी आवाज़ सुनकर वह एकाएक पथरा क्यो गई है ? उसने कोशिश करके किसी तरह कहा, "रवि ने आज सुबह बताया था कि आप आए हुए हैं···।"

"हा, अभी थोडी देर पहले एक लंच मे रवि से मुलाकात हुई थी," उधर की आवाज़ पहले से भी भारी लगी, "उसने बताया था कि तुम भी यही हो और शायद किसी वक्त फोन करोगी।"

मीरा को अपने अधेरे दिमाग मे टटोलते हुए अब भी कुछ कहने को नही मिल रहा था। पल भर के वकफे के बाद उधर से आवाज़ आई, "हलो, आर यू ऑन द लाइन ?"

"हां-हां," मीरा बोली, "आप अभी दो-एक दिन रुकेंगे न यहां ?"

"मुझे रात के प्लेन से चले जाना है," उधर से सुनाई दिया। "मगर उससे पहले किसी वक्त मिल सको, तो बहुत अच्छा है। इधर चार-पांच साल से तो तुम्हे देखा ही नही है। मैं शाम को खाली हू, पाच और छ: के बीच। चाय तुम यहीं आकर पियो। रवि के पास वक्त हो, तो उसे भी साथ ले आना।"

रिसीवर रखने के बाद मीरा का हाथ देर तक वहीं रुका रहा। जिस आदमी के साथ कितनी ही बार कॉलेज की कैण्टीन मे बैठकर चाय पी थी, आज उसी के साथ सरकिट हाउस में चाय पीना इतना अस्वाभाविक क्यों लग रहा था ?

पहले से आए हुए लोग अन्दर बात कर रहे थे इसलिए उसे बाहर के कमरे में इन्तज़ार करने को कहा गया। सरकिट हाउस की इमारत उसके लिए अपरिचित नहीं थी। दो-एक बार पहले भी वह वहां आ चुकी थी। पर उस वक्त वह जगह उसे बेगानी-सी लग रही थी। रोशनदान से झांकती एक चिड़िया जैसे लगातार कोई सवाल पूछ रही थी, "चि-चि-चि-चि-चु-चु-चु-चि-चि···?" लॉन में बिखरी अलसाई धूप फीकी पड़ रही थी। धूप की उदासी उसे अपने तन-मन में समाती-सी लगी, तो अपनी जगह से उठकर वह अलमारी के पास चली गई। अलमारी में सभी किताबें बहुत पुरानी थीं···अंग्रेज़ों के ज़माने की खरीदी हुईं। बरसों से शायद किसी ने भी न तो अलमारी को खोला था, न किताबों को छुआ था। जिल्दों का सुनहरा रंग गर्द की परतों से मटियाला हो चला था। चमड़े में सफेदी उभर आई थी और गत्ते कागज़ों में चिपक गए-से लगते थे। मालों की बास जैसे कांच की दीवारें लांघकर बाहर आ रही थी। वहां से हटते हुए उसने दीवार-घड़ी की तरफ देखा। दिए गए वक्त से पन्द्रह मिनट ऊपर हो चुके थे।

"साहब ने कहा है कि अभी पांच मिनट में बुला रहे हैं," उस दुबले-से व्यक्ति ने आकर कहा जो उसे वहां छोड़ गया था। "तब तक आपके लिए ठण्डा या गरम कुछ भेजूं?"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए," मीरा ने अन्यमनस्कता से कहा और अपने में व्यस्त हो रही। "वह खाली हों, तो मुझे पता दे दें।"

दीवारों पर लगी तसवीरें भी शायद जॉर्ज पंचम के ज़माने की थीं। बिगबेन ·· सेण्ट पॉल्ज़···टेम्ज़ का पुल···उसे लगा जैसे उस कमरे में ज़िन्दगी बरसों से एक जगह पर रुकी है···वक्त को सन् चालीस के मॉडल की दीवार घड़ी ने अपने में बन्द कर रखा है···और टिक्-टिक् की आवाज़ लगातार उसपर पहरा दे रही है।

"आइए, साहब बुला रहे हैं।" दुबले व्यक्ति ने कुछ देर बाद फिर आकर कहा। वह चौंककर उसके साथ चल दी। बरामदे से गुज़रते हुए उसने इस तरह हवा को अन्दर खींचा जैसे जॉर्ज पंचम के ज़माने की सारी गर्द अपने फेफड़ों से बुहार देना चाहती हो।

राजकृष्ण हाल के उस तरफ छोटे कमरे में था। हाल में से गुज़रते हुए मीरा को लगा कि कितनी ही आंखें एकटक उसे देख रही हैं। न जाने किस-किस काम से कितने-कितने लोग वहां आकर बैठे थे। भीड़ में अचानक किसी परिचित व्यक्ति से नज़र न मिल जाए, इसलिए वह आंखें नीची किए रही। छोटे कमरे का दरवाज़ा खुलते ही वह जल्दी से अन्दर चली गई।

राजकृष्ण ने उसे देखकर हाथ के कागज़ मेज़ पर रख दिए और उठकर उसकी तरफ बढ़ आया। वही उजला खादी का लिबास जो वह उन दिनों पहना करता था। लम्बे चेहरे पर वही चमक, वही गोराई। वही आंखें—ऑपरेशन के औज़ारों की तरह तीखी। "आओ, मीरा," उसने कहा, "ज़्यादा देर तो नहीं बैठना पड़ा?"

"ज़्यादा नहीं, सिर्फ बीसेक मिनट!" वह मुसकराई।

"मुझे बहुत अफसोस है, पर किया क्या जाए?" राजकृष्ण ने सोफे की तरफ इशारा कर दिया, "वही स्ट्राइक वाला मामला फंसा हुआ है। लोग किसी भी तरह मानने में नहीं आते। आजकल लेबर के नखरे इतने बढ़े हुए हैं कि कुछ पूछो नहीं···।"

मीरा बैठ गई। राजकृष्ण पास आ बैठा। "तुम बहुत दुबली लग रही हो," उससे कहा।

"मैं दुबली लग रही हूं? नहीं तो···" मीरा ने अपने को थोड़ा समेट लिया।

वह इतनी आत्मीयता के लिए तैयार नहीं थी।

"या कहो कि मुझे तुम्हारे उन दिनों के चेहरे की ठीक से याद नहीं रही।"

मीरा अन्दर-ही-अन्दर सकपका गई। क्या ज़रूरी था कि इस वक्त उनकी चर्चा की जाए? "कह नहीं सकती," वह कुछ अटकती हुई बोली। "छ-सात साल से वज़न तो मेरा लगभग एक-सा रहा है।"

"मैंने वज़न की बात नहीं कही।"

मीरा को लगा कि राजकृष्ण की आंखें कैण्टीन के दिनों की तरह उस वक्त भी उसकी आंखों से अपने को बचा रही है कि वह उसी तरह उन बचती आंखों का पीछा कर रही है—कहीं किसी तरह उन्हें अपनी पकड़ में ले आना चाहती है।

"यू मेरा ख्याल है, देखने मे भी मैं अब तक वैसी ही लगती हूं," उसने कहा।

"अपना चेहरा आईने मे देखती हो न?"

मीरा और सकपका गई, "मुझे तो नहीं लगता कि मुझमें कोई खास फर्क आया है।"

"हां, जिस तरह का फर्क आना चाहिए, उस तरह का फर्क नहीं आया।"

मीरा को लगा कि अब राजकृष्ण की आंखें बचने की जगह उसकी आंखों का पीछा कर रही हैं। "मतलब?" उसने पूछ लिया।

"मतलब कुछ नहीं। बस ऐसे ही कह रहा था। शायद इसलिए कि मन मे कहीं ख्याल था कि दो-एक बच्चे-अच्चे हो जाने से अब तक तुम मुटिया गई होगी।"

मीरा को अपना गला खुश्क होता जान पड़ा। सहसा कोई भी बात उसके होंठों पर नहीं आई। बैरा तभी चाय की ट्रे लेकर आ गया, इसलिए वह कुछ कहने से बची रही।

लौटकर घर आते ही मीरा ने अपना कमरा अन्दर से बन्द कर लिया। उससे पहले शंकर से कह दिया कि रात का खाना वही बना ले, उसकी तबीयत ठीक नहीं है। यह भी कि साहब आए, तो भी उसे न बुलाया जाए—वह कुछ देर सोना चाहती है। मगर कमरा बन्द करके वह लेटी नहीं, पलग की पीठ पर हाथ रखे काफी देर चुपचाप खड़ी रही।

उसे लग रहा था कि उसके दांत दर्द कर रहे है, माथा दर्द कर रहा है, आंखें दर्द कर रही हैं। गले मे नीचे सांस की नाली में भी उसे दर्द महसूस हो रहा था। नाभि के दाईं तरफ एक गांठ-सी पड़ गई लगती थी, जैसे किसी ने उस हिस्से को मुट्ठी में कस लिया हो और ज़ोर से भींच रहा हो। अपने-आप से, सामने बिस्तर पर बिखरे कपड़ो से, और कोने मे रवि की टेबल पर रखे कागज़ों से जॉर्ज पंचम के ज़माने की चिपचिपी किताबों की बू आ रही थी। लग रहा था कि वह बू उसकी सांसों मे और रोम-रोम में समा गई है। बू के मारे एक चिड़िया पंख फड़फड़ाती हुई पास ही कहीं तड़फ रही है—चि-चि-चु-चु-चु-चु-चि···चि-चि-चि-चि।

खिड़की के बाहर शाम गहराकर रात मे घुल रही थी। पेड़, पत्ते, घास, सड़क और सड़क पर चलते लोग—सब स्याह धूल की परतों मे ओझल होते जा रहे थे। हवा से पत्ते सरसराते, तो सारे शरीर पर नाखून-से रेंगने लगते। कच्ची सड़क पर आती मोटरों की बत्तियां दूर से अपने को घूमती हुई लगतीं। मैदान के उस तरफ पुरानी बस्ती के घर ऐसे लग रहे थे जैसे शराब पीकर औंधे पड़े हों। सिर चकरा रहा था और उसे लग रहा था कि अभी उसे कै होने लगेगी।

उसने साड़ी निकाल दी और माथा पकड़ बिस्तर पर बैठ गई। हर आहट से मन

चौक जाता कि रवि आ गया है और अभी दरवाजे पर दस्तक देने वाला है। कोशिश करके अपने को समझाना पडता कि रवि के आने से पहले बाहर कार का हार्न सुनाई देगा, फिर कार अन्दर आकर रुकेगी, फिर दरवाजा बन्द होने के साथ रवि की आवाज़ सुनाई देगी, "शकर !"

हर बार यह विश्वास हो जाने पर कि रवि अभी नही आया, मन को कुछ सहारा मिलता। अन्दर और बाहर की हर आहट से वह बची रहना चाहती थी। रवि से, या किसी से भी, बात करने से पहले वह वक्त चाहती थी—अभी काफी और वक्त। इतना कि कम से कम उसके बीतने मे सुबह हो जाए।

उसका दाया हाथ सरककर कन्धे पर आ गया...वहां जहा राजकृष्ण ने कुछ देर पहले उसे छुआ था। उसे लगा कि राजकृष्ण की गरम सांस अब भी उसके गाल को चुनचुना रही है, उसके होंठों से निकलते शब्द अब भी कानों मे लकीरें खींच रहे हैं। "कितनी बार सोचता हू, मीरा, कि तब मैंने कितनी गलती की थी। खामखाह झूठे आदर्शवाद में पडकर तुम्हें और अपने को छलता रहा कि वह जिन्दगी मेरे लिए नहीं है जो तुम मुझे देना चाहती थीं...।"

राजकृष्ण का हाथ कन्धें से हटाकर, अपने होंठो पर झुके उसके होटों से बचकर, वह एकाएक उठ खडी हुई थी। राजकृष्ण कुछ देर अपनी जगह से हिला नही था, वही बैठा चुभती नजर से उसे देखता रहा था। "मेरी बात से तुम्हें चोट पहुंची है ?" उसने पूछा था।

तब तक उसने अपने को थोड़ा सभाल लिया था और मेज के सहारे खड़ी होकर बालो की पीनें ठीक कर रही थी। "मुझे अब चलना चाहिए," उसने कहा था, "रवि के आने का वक्त हो रहा है।"

"रवि को यह पता तो है कि तुम यहा आई हो," राजकृष्ण कुछ अटकते स्वर मे बोला था, "अभी कुछ देर पहले वह यूनियन के नेताओ के साथ यही था। घर पहुचने मे आज उसे काफी देर हो जाएगी।"

"फिर भी मुझे चलना चाहिए," रूमाल से मुंह और माथे का पसीना पोछते हुए उसने कहा था, "घर पर खाना मैं खुद बनाती हू—आज मेरी तबीयत भी कुछ ठीक नही है।"

राजकृष्ण अपनी जगह से उठा, तो उसे लगा कि उसके पैर डर के मारे जमीन से चिपक गए है। "आज बहुत थका हुआ था," राजकृष्ण ने कहा, "सोचा था, तुम आओगी तो कुछ देर थोड़ा रिलैक्स कर लूगा। तुम सोच भी नही सकती कि इस जिन्दगी मे रात-दिन कितना तनाव मन मे रहता है...।"

वह ठीक से सोच भी नही पा रही थी कि कब और कैसे राजकृष्ण के होंठ उसके होठो से आ मिले थे। उसने ज़ोर से चीखना चाहा था, पर गले से आवाज नही निकली थी। "मुझे जाने दीजिए," सिर्फ इतना कहकर और उसकी बाहों से अपने को अलग करके जल्दी से वह बाहर चली आई थी। यह ध्यान भी उसे बाद मे आया था कि अपना रूमाल और पर्स वह उस कमरे में ही भूल आई है।

गांठ कस रही थी और शरीर पसीने से तर-ब-तर हो रहा था। मन हो रहा था कि बाकी कपड़े भी जिस्म से उतार दे और जाकर शॉवर के नीचे खडी हो जाए। घटा-दो घटे फुहार को अपने ऊपर लेती रहे, जिससे जिस्म का एक-एक हिस्सा, एक-एक

मुसाम, सीज जाए और उसमे उस सीजन के अलावा कुछ भी महसूस करने की शक्ति न रहे। साथ ही एक नामालूम-सा डर उसके रोएं-रोए में कांप गया। यह सांस-सांस मे उभरती जलन···*यह कसती गांठ मे बसा हुआ दर्द···आज तक क्या कभी उसका शरीर* पसीने से इस तरह भीगा था ?

शरीर सुन्न होता-सा लगा, तो उसने जैसे डर से सिहरकर दरवाज़े की चटखनी खोल दी। ड्राइंग-रूम की बत्ती जल रही थी। जल्दी से उसने शरीर को साड़ी में लपेट लिया। मन मे बहुत अचम्भा हुआ। रवि कब आया और कब ड्राइंग-रूम में सोफे पर लेटकर किताब पढने लगा ? फाटक के बाहर गाड़ी का हार्न क्यों सुनाई नही दिया ? अन्दर आकर उसने शंकर को आवाज़ क्यो नही दी ?

तकिये का सहारा लेकर वह बिस्तर पर लेटने जा रही थी कि रवि के जूते की आवाज बहुत पास सुनाई दी। अन्दर आकर भी रवि ने बत्ती नही जलाई थी। "कैसी तबीयत है ?" उसने बिस्तर पर पास बैठकर पूछा। स्वर मे वही उदासीनता थी जिससे वह दस साल से लडती आ रही थी। मन में शायद अब भी रवि दफ्तर की, स्ट्राइक की, आंकड़ों की, बात सोच रहा था।

"ठीक नही है," उसने फुसफुसाकर कहा और रवि के कन्धे का सहारा ले लिया। सिर उसका रवि की छाती पर झुक गया।

"डाक्टर को दिखाना चाहोगी ?"

फिर सवाल ! पर वह जानती थी कि रवि के किसी सवाल का अर्थ निश्चयात्मक नही होता। उसकी सांस तेज हो गई। सिर झुककर रवि की छाती पर और नीचे आ गया और उसके होंठ उसके सीने के बालों को सहलाने लगे।

"मुझे अभी फिर जाना होगा," रवि ने कहा, "राजकृष्ण को एयरपोर्ट पर सी-ऑफ करना है।"

[illegible]

किया है···सबसे कहता रहा कि हम लोग बहुत पुराने दोस्त हैं···।"

मीरा ने चादर ओढ़कर जैसे अपने को ओट मे कर लिया। "तुम्हें जाना है, जाओ," उसने कहा, "मेरी तबीयत ऐसी ज्यादा खराब नही है। तुम्हारे लौटने तक शायद ठीक भी हो जाऊंगी।"

रवि ने उसकी बांह को हल्के से थपथपा दिया और वहां से चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। "बत्ती जला दू ?" उसने चलते-चलते पूछा।

"नहीं, रहने दो," मीरा ने करवट बदल ली। "जरूरत होगी, तो शंकर से कहकर जलवा लूगी।"

रवि के जूते की आवाज ड्राइंग-रूम से होकर बाहर चली गई। कार का दरवाज़ा खुलकर बन्द हुआ। कार के पहिये कच्ची सड़क पर दूर तक आवाज़ करते रहे।

मीरा तकिये मे सिर छिपाए कल्पना मे देखती रही—पहियों के नीचे कुचलती सड़क···व्याकुल होकर पनाह के लिए इधर-उधर चक्कर काटती धूल···पीछे पेड़ों की घनी रेखाएं···दूर नई बस्ती के घरों की बत्तियां···और उसके पीछे फौलाद की भट्ठी का ताबई आकाश···स्ट्राइक खत्म हो गई थी। चार दिन में भट्ठी फिर जल उठेगी।

मीरा ने सिर उठाया और तकिये में अपने सिर से बने निशान पर हाथ रखे आकाश में वह जगह ढूंढने लगी जहां सुबह-सुबह एक सितारा चमकता देखा था···यह

सोचकर उसकी उदासी गहरी हो गई कि भट्ठी जलने के बाद वह अब फिर वहां दिखाई नही देगा—कभी, किसी भी सुबह…।

तलुओं मे सुबह की घास और शबनम की ठण्डक ताज़ा हो आई। मन हुआ कि कुछ देर फिर उसी तरह घास पर टहले, वहा से खुले आकाश को देखे। अभी तीन-चार रातें तो पच्छिम मे सितारों की चमक देखी ही जा सकती थी।

साड़ी ठीक से बांधकर उसने बालों में पिनें फिर मे लगाईं। चलते-चलते आईने मे अपने पर एक नजर डाली और बाहर ड्राइंग-रूम में आ गई। ड्राइंग-रूम उस वक्त उसे और दिनो से भी खुला और बड़ा लगा। अजदहे की शक्ल की ऐश-ट्रे मे कितनी ही सिगरटें बुझी हुई थी और वही पास मे तिपाई पर उसका पर्स और रूमाल रखा था। इससे पहले कि वह शकर से पूछती, शकर ने खुद ही उसे बता दिया, "सरकिट हाउस का चौकीदार ये चीज़ें दे गया था।"

मीरा पल-भर उन चीज़ो को देखती रही। फिर बरामदे से होकर बाहर लॉन में आ गई, आते हुए शंकर से कह आई, "देखो, पर्स उठाकर अलमारी में रख दो। और रूमाल…रूमाल को धोबी के कपडो में डाल देना।"

क्वार्टर

दरवाजे के चौखट पर काल-बेल है। काल-बेल के पास ही नेम-प्लेट। काल-बेल जितनी नई है, नेम-प्लेट उतनी ही मैली। नेम-प्लेट पर तिरछी-सी लिखावट है—शंकर राजवशी।

नई दिल्ली में, गोल डाकखाने के पास, कनाट प्लेस से कुल आधा मील दूर, पांच कमरे का फ्लैट। यह बात अपने में इतनी बडी है कि बातचीत मे अक्सर इसका जिक्र आ ही जाता है।

शंकर अपनी तनखाह की गिनती करता है। "मिलते तो स्कूल से पाच ही सौ हैं, पर मुझे कुल मिलाकर डेढ़ हजार के करीब पड जाते है। चार सौ तो क्वार्टर के ही जोड़ने चाहिए। कम से कम। हालांकि चार सौ मे इससे आधी जगह भी नही मिलती इस इलाके में। फिर बिजली पानी का कुछ नही देना पड़ता। सेंट्रल जगह होने से स्कूटर-टैक्सी की बहुत बचत होती है। एम्पोरियम भी बहुत पास मे है, जहां राधा नौकरी करती है। साढ़े तीन सौ वह ले आती है।"

उसकी आखें चमकने लगती हैं। "और काम कितना है? हफ्ते के कुल बाईस पीरियड। सात दिन में पन्द्रह घटे पढ़ाना, बल्कि उससे भी बहुत कम। कितनी छुट्टियां आ जाती हैं। कितनी बार पीरियड लिए ही नही जाते।"

पता वह बहुत सक्षिप्त बताता है। चौदह-ए, अविन लेन, नई दिल्ली-एक। "अविन लेन मे बाहर की तरफ से आइए। दायें हाथ क्वार्टरों की लंबी कतार मिलेगी। हरे रंग के दरवाजे हैं। उनमें आठवा दरवाज़ा।"

अपनी आखों की चमक वह दूसरे की आंखों मे भी खोजता है। उसे और विश्वास दिला सकने के लिए अनुरोध करता है कि वह किसी दिन उसके यहा जरूर आए। 'बारह बजे के बाद मै अक्सर घर पर ही होता हूं। आप जब भी टेलीफोन कर लीजिए। नम्बर है…।"

डिंग-डाग-डिंग—काल-बेल की आवाज सारे क्वार्टर में गूंज जाती है।

दरवाजे के सामने पहला कमरा पापा का है। पापा गरदन उचकाकर और आखें गोल करके प्रतीक्षा करते हैं कि कोई दरवाजा खोलकर आ रहा है या नही। अगर गुन्नू या पुन्नु में से कोई आ जाता है, तो उनकी गरदन तकिये पर सीधी हो जाती है। आखें उदासीन भाव से छत से जा जुड़ती हैं। मुह मे वे गुनगुनाने लगते हैं, "बस के दुशवार है···।"

मगर दो-तीन बार बेल बजने पर भी कोई नही आता, तो 'पड़े सो रहे होंगे सब···' जैसा कुछ बुदबुदाते, एक हाथ से दो-गज़ लुंगी को संभाले झटके से जाकर कुंडी खोल देते हैं। खोलते ही वापस अपनी चारपाई की तरफ लपकते हैं जिससे आने वाले को अपनी पहले की स्थिति मे लेटे नज़र आएं।

पापा देखें चाहे छत की तरफ या दीवार की तरफ, पर जो कोई भी बाहर से आता है, उसका पूरा जायजा वे कनखियो से ले लेते हैं। गुन्नू को बाजार जाते और कोका कोला की बोतलो के साथ लौटते देखकर वे पूछ लेते हैं, "फिर वही आई है पटेल नगर वाली जोडी ? आज अभी बडी बोतल नही खोली साहब ने ?"

गुन्नू मुसकरा देता है। मुसकराने मे होंठ उसके आधे ही खुलते हैं, चेहरे का आधा हिस्सा गम्भीर बना रहता है। "आज ड्राई डे है, पापा।" कहता हुआ वह सामने से गुज़र जाता है। पापा तकिये से थोडा उचकते हैं, फिर ढीले पड़कर करवट बदल लेते हैं। "ड्राई डे है। इनके लिए भी कोई ड्राई डे होता है जैसे। हराम की कमाई आती है, खर्च किए जाते है।" खिडकी से आती धूप से आखें मिचकाते वे तकिये की स्थिति बदलने की कोशिश करते हैं। "और कमाई भी कहा की है ? कर्ज का पैसा है सब। ठीक है। लिए जाओ कर्ज और किए जाओ ऐश। पता उस दिन चलेगा जिस दिन बरतन नीलाम होंगे। बाहर खड़ें होंगे सडक पर तौलिया बाधे।"

सहसा वे ज़बान रोककर आखें मूद लेते हैं। आहट से ही उन्हें अन्दाजा हो जाता है कि शकर ताव मे उनसे कुछ कहने आ रहा है।

शकर चारपाई के पास खड़ा होकर कुछ देर बेबसी की नजर से पापा को देखता रहता है। फिर धीमे मगर सख्त स्वर मे पूछ लेता है, "अब किस चीज़ की तकलीफ है आपको ? खामखाह बकझक क्यों किए जा रहे हैं ?"

पापा की आखें आहिस्ता से खुलती हैं। मगर शंकर की तरफ न देखकर वे सामने दीवार पर लगे छोटे पखे की तरफ देखते हुए बात करते हैं, "मुझे किस चीज़ की तकलीफ हो सकती है यहा ? खिडकी पर कहा था परदा लगवा दो, किसी ने लगवाकर नही दिया। किवाड़ बन्द नही होता, उसे ठीक करवाने की भी फुरसत नही है किसी के पास। पखा लगवा रखा है फर्श को हवा देने के लिए। मुझ तक हवा कभी पहुंचती ही नही उसकी।"

शकर थोडा झुककर अपनी आखें उनकी आंखो के सामने ले आता है, "आपको पता है आपकी आवाज कहा तक जाती है ?"

पापा गुस्से से तनकर सिर ऊचा कर लेते है, "कहा तक जाती है ? जब चाय या पानी के लिए चिल्लाता रहता हू, तब तो किसी को मेरी आवाज सुनती ही नही। अगर खिडकी बन्द हो जाएगी, तो कोई भी आवाज़ बाहर नही जाया करेगी।"

वज़न बाहो पर होने से पापा की कमज़ोर बाहें कापने लगती हैं। यह देखकर कि उनकी चादर और तकिया कितने मैले हैं, शकर को राधा पर गुस्सा आता है। उसके हाथ पापा के कधो तक जाकर उन्हे सीधा लिटा देते हैं, "मैं शाम को बात करूंगा आपसे। इस

वक्त बाहर से लोग आए हुए है, इसलिए थोड़ा रहम रखिए मेरे ऊपर।"

पापा लेटकर चुपचाप उसे घूरने लगते है। शकर को कमरे के पूरे वातावरण में उनके बुढापे की गन्ध बसी महसूस होती है। फर्श से, दीवारो से, हर चीज से जैसे वही गन्ध आती है। उससे ज्यादा वहा नही रुका जाता, तो वह बाहर निकलता हुआ कहता है, "कभी सो भी जाया कीजिए थोड़ी देर।"

मगर पापा को दिन मे नीद नही आती। जब बाहर के लोग घर में आए हों, तब तो बिलकुल ही नही आती। वे आसपास से गुज़रने वाली हर आहट का मन मे अर्थ लगाते रहते हैं। ये खाली गिलास गए है उधर। यह तिपाई लाई गई है बीच के कमरे से। यह अन्दर की अलमारी से निकला है कुछ, यह वर्फ निकली है फ्रिज से, और दोनों चीजें साथ-साथ गई हैं। यह कोई उधर से उठा है और इस तरफ को आ रहा है।

गुसलखाने का रास्ता पापा के कमरे से होकर है, इसलिए जिस किसी को बीच में उधर आना पड जाता है। अगर आने वाले की नजर उन पर पड़ जाए, तो पापा खखारकर उसका स्वागत करते हैं, 'आदाब अर्ज है।' लेकिन वह बिना उन्हे देखे गुसलखाने की तरफ बढ जाए, तो पापा खांस-खासकर उसे अपने वहां होने की सूचना देने लगते है। उधर से पुराना फ्लश उसी अन्दाज़ मे आवाज़ करता है—ढी-ढुच्, ढी-ढुच्, ढी-ढुच्। पापा विस्तर पर सीधे बैठ जाते है। मुह में झाग बनने लगता है। उधर फ्लश से पानी छूटता है, इधर उनके मुह से शे'र फूटता है :

"कावे कावे
सख्तजानीहाए तनहाई
न पूछ।"

और ज्योंही गुसलखाने का दरवाज़ा खुलने की आवाज़ होती है, उनके अग-प्रत्यग मे जैसे हारमोनियम बजने लगता है और तबले पर थाप दी जाने लगती है :

"कावे कावे
कावे कावे
कावे कावे
सख्तजानीहाए तनहाई न पूछ
हाए तनहाई न पूछ।
कि सुबह करना
सुवह करना
सुबह करना शाम का
लाना है जूए शीर का
लाना है जूए शीर का।
कावे कावे···।"

गुसलखाने से निकलकर आता व्यक्ति अगर जरा भी मुसकरा दे, तो चारपाई पर उसके लिए जगह छोड़ते हुए वे कहते है, "आइए-आइए! तशरीफ रखिए। सेहत कैसी है?" लेकिन अगर वह आख बचाता निकल जाना चाहे, तो वे पीछे से आवाज दे लेते हैं, "क्यों साहब, जिता दिया न आखिर आपने इन्दिरा को?" और उसके मुड़कर अपनी तरफ देखते ही वे चारपाई पर सरक जाते है। "आइए, बैठिए एक मिनट। तशरीफ रखिए। सेहत कैसी है?"

एक नजर खिडकी से बाहर डालकर कि शंकर वही तो नही खड़ा, वे पहले थोडी
भूमिका बांधते हैं, 'हमारे साहबजादे तो वोट देने गए ही नही। बताइए, यह भी कोई
बात हुई ? मेरी टागें बेकार न होती, तो मैं तो जरूर जाता वोट देने। वोट न देने का
क्या मतलब होता है ? कि जो हो रहा है, ठीक हो रहा है। मैं तो अब इन लोगो मे बहस
भी नही करता। कहता हूं ठीक है, मत जाओ वोट देने। तुम लोग मरद हो ही नहो।
जनखे हो। तुम्हारे लिए औरत का राज ही ठीक है।" लेकिन जल्दी ही वे अपनी असली
बात पर आ जाते है, "आपको इसे समझाना चाहिए ...
चला करते हैं ? ...
ही बार पूरे कर ...
काफी खर्च किया ...
... औकात से बाहर जाकर नही। साथ ... पर हमने भी
दारिया भी निभाई है। बड़े-बुजुर्गों की आखिरी दिन तक सेवा की है। मगर इन लोगो
की सेवा भी देख लीजिए। पेशाबघर के बाहर डाल रखा है मुझे। रोज़ मुझसे पूछ लीजिए
कि कितनी बार फ्लश चला है दिन मे। यही डायरी रखने के लिए लिटा रखा है मुझे
यहा।"

बोलते-बोलते उनकी आखों से आसू बहने लगते हैं। लुंगी के सिरे से आसू पोछते
हुए कई बार उन्हे ध्यान नहीं रहता कि कपडा कहां तक ऊंचा उठ गया है। तभी दहलीज़
के पास से शंकर की आवाज सुनाई दे जाती है, "क्या हो रहा है, पापा ?"

पापा जल्दी से लुगी समेट लेते हैं, "आखों मे फिर से पानी आ रहा है। गुन्नू से
कहना दवाई ला दे।"

शकर कुछ पल खामोश रहकर उन्हें देखता रहता है। फिर यह कहता सामने
से हट जाता है, "दवाई तो आ जाएगी। मगर उसे डालने के लिए कौन राज़ी करेगा
आपको ?"

पापा के कमरे के सामने से दाईं तरफ को मुडते ही शंकर की स्टडी है।
पढ़ने की मेज़ के पास दीवान पर बैठे हुए शकर की उंगली अनायास टेबल लैम्प
के बटन को दबाने लगती है। बार-बार बत्ती के जलने-बुझने से जापानी घर की शक्ल
का टेबल लैम्प बिल्कुल खिलौना-सा लगता है।

स्कूल से लौटकर वह अक्सर अपने को इस कमरे मे बन्द कर लेता है। खिडकी
समेत साढ़े तीन दीवारें और एक दरवाज़ा। तीलियों की भारी चिक से ढका। लाल
पत्थर की पटियो का फर्श। ठडा-ठडा। एक चटाई, एक दीवान और एक सगमरमर
टाप की मेज़। सिर्फ पैर से उतरी चप्पल किसी भी तरह कमरे की व्यवस्था मे नही खप
पाती। चमड़े पर पसीने से बने दो पैरो के निशान इतने अखरते हैं कि कई बार सोचते
या बात करते हुए बीच मे उठकर वह चप्पल की स्थिति बदल देता है।

डिंग-डाग-डिंग—काल-बेल की आवाज़ उसे अच्छी लगती है। मगर दरवाज़े
की पुरानी कुडी कडिंग-कट् खुलती है, किवाड़ ईउंग-ईउंग करते अंदर को घिसटते हैं,
तो कौन आया है, यह जानने से पहले ही उसके माथे पर हल्की त्यौरी पड़ जाती है।
क्योंकि तब तक पापा के कमरे मे उनकी चारपाई चरमरा उठती है।

गुन्नू की आवाज़ सुनकर ही उसे पता चल जाता है कि आने वाला कौन हो
सकता है। "वे अभी आए नही स्कूल से। आप काम बता दीजिए," का मतलब होता है
विद्याव्रत या यदुवीर सहाय जैसा कोई आदमी। "कुछ काम कर रहे हैं अदर। कहा था
चार बजे तक डिस्टर्ब मत करना," के माने होते हैं विश्वेश्वर, नामदेव, राठी या रिशी

मे से कोई एक। "चले जाइए। बैठे हैं," का अभिप्राय होता है राजेश्वर, नीना या माधवराव। पर "सो रहे हैं शायद। आप नाम बता दीजिए। अभी देखकर बताता हूं," का अर्थ निकलता है कि आने वाला कोई ऐसा व्यक्ति है जिसे गुन्नू पहले से नही जानता। तब गुन्नू के अंदर आने तक धीरज न रखकर वह खुद ही आवाज़ दे देता है, "कौन आया है, गुन्नू ?"

दिन-भर कोई-न-कोई उस कमरे मे आया ही रहता है। राधा से जब उसने यह कमरा सेट कराया था, तो यही कहा था कि घर में कभी अकेला रह सकने के लिए उसे एक जगह चाहिए। मगर आध-पौन घंटा अकेला रह लेने के बाद उसे अपने अकेलेपन से उलझन होने लगती है। मन उन दिनो के वातावरण के लिए भटकने लगता है जब अपने कंवारेपन में एक अकेला कमरा उसके पास था। पता नही कितने लोग उस कमरे में सोते थे, कितने आते-जाते थे। अगर राधा आई होती थी, तो उन लोगों के लिए चाय बना दिया करती थी। उस कमरे में कभी वह अपने को इस तरह बंद महसूस नही करता था। न ही इतना खाली।

अगर और कोई उसके पास न बैठा हो, तो पड़ोस में चौदह नंबर से रवि शर्मा आकर अंदर झांक लेते हैं, "भाई साहब बिज़ी तो नही है ?"

रवि शर्मा उसकी ज़रूरत को समझते हैं। लोगों को खुद पास बिठाकर भी शंकर उनके बैठे रहने से ऊबता है, यह जानने के कारण वे बैठते कम हैं, ज्यादातर खड़े-खड़े ही बात करते हैं। बात करते हुए दोनों हाथों को आपस मे मलते रहते है। इकहरा शरीर थोडा आगे को झुका रहता है। अपने आने के ठोस कारण के रूप मे वे स्कूल या पास-पड़ोस का कोई-न-कोई स्कैंडल सुनाने लगते हैं। स्कूल के स्वयंसेवक अध्यापक ने मार्केट के एक दुकानदार पर छुरा चला दिया क्योंकि वह अपने लडके को सुबह संघ की शाखा पर जाने से रोकता था। राठी की नौकरी चली जाएगी क्योंकि आज फिर उसने अपनी बीवी को पीट दिया है—केस वाइस प्रिंसिपल मनचंदा के पास है। शाम को इलेक्शन का रिज़ल्ट आने के साथ ही बाज़ार में नई कांग्रेस और पुरानी कांग्रेस वालो में मुठभेड हो गई—दोनों मिठाई की दुकानो पर पुलिस पहरा दे रही है।

रवि शर्मा को सबसे ज्यादा स्कूल के भविष्य की चिन्ता रहती है। "क्या सोचते हैं भाई साहब, प्रिंसिपल मेहरा के रिटायर होने के बाद यह स्कूल चलता रहेगा ? मैं तो समझता हूं बड़ी सख्त धांय-धांय होने वाली है यहां। अभी से इतनी सख्त गुटबंदियां हो रही हैं। अगर मनचंदा प्रिंसिपल बन गया, तब तो आधे स्टाफ की खैर नही। मगर उसके भी खैरख्वाह कम नही हैं। कोशिश यही चल रही है कि मेहरा साहब के रिटायर होने से पहले ही उसे रिटायर कर दिया जाए। तीन साल की सर्विस बाकी है उसकी, सो तीन साल की तनख्वाह दी जा सकती है उसे।"

ज्योंही बातचीत की स्कैंडल-वेल्यू कम होने लगती है, वे वहां से चलने की बात सोचने लगते हैं। "जाकर कॉफी भिजवाऊं आपके लिए।"

शंकर को 'हां' कहना ही अधिक सुविधाजनक लगता है। क्योंकि मना कर देने से दो मिनट बाद मिसेज़ शर्मा आकर पूछती हैं, "कॉफी नही ले रहे हैं ? हमारे हाथ की अच्छी नही लगती ?" मिसेज़ शर्मा का अनुरोध उससे टाला नही जाता, जिससे बाद मे राधा की शिकायत सुननी पडती है। रवि शर्मा के सामने भी वह ओछा पडता है क्योंकि मिसेज़ शर्मा जाते-जाते कह जाती हैं, "हमने कहा था इनसे कि आपने ठीक से पूछा ही नही होगा। नही तो भाई साहब कॉफी के लिए मना कर ही नही सकते।" उनकी आंखों की चमक और चेहरे पर की मुसकराहट रवि शर्मा के अलावा खुद उसे भी काफी

छोटा कर जाती है।

मिसेज़ शर्मा जब भी वहा से हाकर जाती है, शंकर को कमरे का खालीपन और भी खाली महसूस होता है। सिगरेट का धुआं, हर कश के साथ एक कुकुरमुत्ता मुह से बाहर निकलता, खिडकी के चौखट तक जाकर हवा में हवा हो जाता। खिड़की के उस तरफ सिर्फ दीवार—उखड़ी-उखडी स्याह पड़ी इंटें, उनमे चीटियों के सूराख, जोड़ो से झडता चूरा-चूरा पलस्तर। ऐश ट्रे मे आधी मुट्ठी राख—लथपथ सिगरेट के टुकडे, मुह बाए सिगरेट की खाली डब्बी, एक बद पैकेट। मेज के सगमरमर से नीचे को झूलता बिजली का तार—एक औंधी पडी किताब, खुला बाल पॉइंट, दो-तीन खुली चिट्ठियां। अकेला अपना-आप—बावजूद मलमल के कुरते के अपने पूरे वजन का एहसास। हाय मे माचिस—एक तीली का घिसकर जलना और बुझ जाना, फिर दूसरी तीली का जलना और बुझ जाना। पापा का लगातार अपने कमरे मे खासना—आख् हुऊ आख् हुऊ आख् हुऊ हुऊ हुऊ हुऊ…।

मिसेज़ शर्मा कॉफी लेकर आए, उनका लडका बिन्नू पापा का संदेश लेकर आ जाता है, "पापा कह रहे है उधर आ जाइए। साथ पिएगे कॉफी।" मिसेज शर्मा पीछे से आकर उसकी बात काटती हैं, "कॉफी यही आ रही है आपकी। इसके पापा को तो लगता है कि हर एक के पास गप करने की उतनी ही फुरसत है, जितनी उनके पास।"

मिसेज़ शर्मा पेस्ट को बहुत देर फेंटकर कॉफी बनाती हैं। "हमारे लिए भी अच्छा कॉफी तभी बनती है जब आपको पीनी होती है," रवि शर्मा का यह मजाक केवल मजाक ही नही होता। वे प्याली पर इस तरह हाथ की ओट किए आती हैं, जैसे उसे किसी की नजर से बचाकर ला रही हो। राधा घर मे जो चीज जिस तरह से बनाती है, उससे सवाई मेहनत से न बनाएं, तो उन्हें अपना प्रयत्न सार्थक नही लगता। और वे आधी झुकी आंखो से इसकी स्वीकृति भी ले लेती हैं। "ठीक बनी है, भाई साहब?"

साडी से ढके ब्लाउज़ का उतार-चढाव। सामने के व्यक्ति को अपनी ओर देखने के लिए विवश करती आंखों की चमक। दस साल के विवाहित जीवन के बाद भी चेहरे पर युवा होने का आत्मविश्वास। काफी फासला रखकर खड़ी होने पर भी पूरे व्यक्तित्व से झलकता निकटता का आभास। शंकर को अपने अन्दर कहीं यह कहने की मजबूरी लगती है, "रवि भाई को भी कॉफी दे दी या नही आपने? वे इन्तज़ार ही तो नही कर रहे?"

मिसेज़ शर्मा मुसकराकर बाहर निकल जाती हैं, "उन्हें भी दे रही हूं जाकर। वैसे उनके लिए तो यह बहाना ही होता है। उन्हें कॉफी पसन्द कहां आती है?"

और जब बिलकुल कोई नही होता, तो शंकर दीवान से उतरकर फर्श पर औंधा लेट रहता है। ठंडी-ठंडी सख्त ज़मीन। जिस्म को ठंडक की इतनी जरूरत महसूस होती है कि कई बार वह कुरता भी उतार देता है। एक-एक रोयें मे ठडक को भर लेने की कोशिश करता है। इसके लिए बार-बार करवट बदलनी पडती है। जो जगह सामान से भरी नज़र आती है, वह करवट लेने मे रुकावट लगती है। अगर यह सारा सामान जमा न किया होता…।

एक तरफ से पापा के खासने की आवाज आती है, दूसरी तरफ से पुन्नू के ट्रांजिस्टर की। अगर खुद बिजनौर जाकर उसने पापा से न कहा होता कि वे उसके पास दिल्ली आ रहे…अगर चाचा की बात मानकर उसने हामी न भरी होती, कि पुन्नू और पुन्नू उसके पास रह जाए तो वह उनके लिए नौकरिया ढूढने की कोशिश करेगा…पहले बड़े भाई नाथ को लेकर ही इतनी परेशानी थी, छोटे भाई मुकुद की ज़मानत का सवाल

सामने था, फिर और जिम्मेदारियों को खुद ही अगर बुलावा न दिया होता···यह सब एक बडा क्वार्टर मिलने की झोंक में वह कर गया था, अगर यह नौकरी ही उसने न की होती·· और नौकरी की बात भी शादी के बाद ही उसने सोची थी, अगर राधा की जिद मानकर वह शादी के लिए राज़ी न हुआ होता, पाछी का कहा मानकर उसके साथ बाहर चला गया होता···।

खिड़की से दो चिड़िया अन्दर कूद आती हैं। लाल पत्थर की पटियो पर एक-दूसरी का पीछा करती हैं। उसके कंधों के पास आकर चुनौती के स्वर मे चहकती हैं, पख फड़फड़ाती हैं और बाहर उड़ जाती हैं। फुर्र एक। फुर्र दो।

वह बेबसी से उठकर बैठ जाता है। मेज़ से सिगरेट की डब्बी खीचकर सिगरेट सुलगा लेता है। पापा से पीछे के कमरे में टेलीफोन की घटी बज उठती है। पहली या दूसरी घंटी पर ही गुन्नू की मरियल आवाज़ सुनाई देती है, "गुन्नू राजवशी।" गुन्नू इतना धीमा कि सुनने वाले को शंकर राजवंशी का भ्रम हो। उसके बाद उसके दो निश्चित वाक्य, "आप कौन बोल रहे हैं ? अभी देखकर बताता हूं।"

दालान के उस सिरे से इस सिरे तक गुन्नू की आवाज तीन बार सूचना को दोहराती है। "फोन है। मिसेज लल्ला का फोन है। शंकर भाई, आपके लिए मिसेज लल्ला का फोन है।"

शंकर हड़बड़ी में कुरता पहनता है। चप्पल में पाव डालते हुए एड़ियां बाहर को फिसल जाती हैं। चिक की एक तीली कुरते की जेब में उलझकर उसे फाड़ने की कोशिश करती है। सामने पडने पर गुन्नू फिर एक बार फर्ज पूरा कर देता है, "शंकर भाई, जोड़ बाग से आपके लिए मिसेज लल्ला का फोन है। मैंने बताया नही, आप घर पर हैं। इतना ही कहा है, देखकर बताता हूं।" और कृतज्ञता चाहती उसकी आधे होंठो की मुसकराहट देर तक उसके छोटे-छोटे दांतों से चिपकी रहती है।

टेलीफोन वाला कमरा हर माने में बीच का कमरा है। एक तख्तपोश, कई एक मोढे और चौकियां, फ्रिज, चारपाइयां और कपडे टांगने की खूटियां। बड़ी दीदी और मुन्नी दीदी जब बिजनौर से आती हैं, तो उनका डेरा इसी कमरे में जमता है।

बडी दीदी से गरमी बरदाश्त नहीं होती। वे आते ही तख्तपोश पर लेट जाती हैं। "हहा: ठंडा पानी।" मुन्नी दीदी भी, जिसका स्वभाव हर बात मे बडी दीदी का अनुकरण करना है, धीरे से कह देती है, "हम भी लेंगे एक गिलास।"

बड़ी दीदी की आंखें कमरे के चारो दरवाज़ों को ताकती घर की एक-एक चीज का जायजा लेती हैं। तो मुकुंद वाला कमरा अब बेड-रूम हो गया है ? पापा की ड्योढ़ी का दरवाज़ा फट्टी लगाकर बन्द करे दिया है ? दालान के दरवाज़े के पास जो बेल थी, वह कटवा दी ? ड्राइंग-रूम का रास्ता इधर से खोल दिया ? ब्याह की तसवीर सामने की दीवार से हटाकर इस दीवार पर लगा दी ? रोम वाली ऐश ट्रे की जगह यह नई ऐश ट्रे आ गई ?

बडी दीदी को चार महीने पहले और आज के बीच किए गए परिवर्तन पसन्द नहीं आते। फ्रिज इधर क्यों रख दिया ? बडी चौकी उधर क्यो हटा दी ? परदे बदल-कर क्यों लगा दिए ? "पिछली बार कमरा कितना भरा-भरा लगता था। इस बार लग रहा है जैसे···।"

बडी दीदी का ध्यान इतनी चीजों की तरफ एक साथ जाता है कि मुन्ना को मन में बहुत हीनता महसूस होती है। वह भी पिछली बार की स्थितियों के ...।

बार की स्थितियों का मिलान करती अपनी तरफ से कहने की कोई बात ढूढती है "टेली-फोन वाली तिपाई भी हमे तो तख्तपोश के पास ही अच्छी लगती थी। उस कोने मे पता नही कैसी लग रही है।"

बड़ी दीदी हल्की झिड़की के साथ उसे चुप करा देती हैं। "तख्तपोश के पास कहा अच्छी लगती थी? उसके लिए तो मैं ही इनमे कहने वाली थी कि कोने में हटा दो, तो अच्छा है।" मुन्नी दीदी कुछ देर चुप रहकर वहां से उठ जाने का बहाना ढूढ लेती है। "हम चाय बनाने जा रहे हैं। जिस-जिसको पीना हो, हमें बता दो।"

बड़ी दीदी उन सब समस्याओं को एक साथ उठा लेती हैं, जिनका निपटारा करने की बात वे बिजनौर से सोचकर चली होती हैं। मुकुंद कितने दिन अपनी ससुराल मे रहेगा? शादी से पहले उसके लिए यहा जगह थी, तो अब क्यो नही हो सकती? जब एक भाई के पास इतना बड़ा क्वार्टर है, तो दूसरे को अलग से जगह ढूढकर किराया भरने की क्या जरूरत है? गुन्नू और पुन्नू की नौकरियो का कुछ हुआ या नही? अगर इतने बड़े शहर मे भी उनके लिए कुछ नही हो सकता, तो चाचा को साफ क्यो नही लिख दिया जाता कि उन्हें वापस बुला लें! माम बिजनौर चिट्ठियां क्यों लिख रहा है कि वापस बम्बई चला जाना चाहता है? बारह साल के तजरुबे के बाद भी अगर उसे स्कूल मे तीन सौ की ही जगह मिल सकती है, तो उसे बम्बई से उखाड़कर यहां बुलाना ही नही चाहिए था।

राधा तख्तपोश से नीचे फर्श पर बैठी चुपचाप उनकी बातें सुनती है। फिर कह देती है, "यह सब तो यही बता सकते हैं, दीदी। इधर आएंगे, तो पूछ लेना।"

बड़ी दीदी भड़क जाती हैं। "पहले तो ऐसा नही था यह। अब जाने क्या हो गया है इसे।"

राधा भी तुनुक जाती है, "इसका मतलब है कि मैंने इन्हे ऐसा कर दिया है?"

बड़ी दीदी को अपना पक्ष जितना कमजोर लगता है, उतनी ही उनकी आवाज ऊंची उठती जाती है; जब और बस नही चलता, तो वे यह बात राधा के मुंह पर दे मारती हैं, "जिस घर की हो, उस घर जैसी ही तो बात करोगी। मैंने अच्छा ही किया था जो तुम लोगों के ब्याह मे शामिल होने नही आई थी।"

राधा तिलमिलाकर वहा से उठ जाती है और अपने को बेड-रूम मे बन्द कर लेती है। बेबी चाहे कितना रोती रहे, उसके दूध के लिए भी वह निकलकर रसोईघर मे नही जाती। तब गुन्नू या पुन्नू मे से कोई आकर बेबी को उठा लाता है। या मिसेज शर्मा अपने क्वार्टर से आकर 'राधा कहा है?' पूछती हुई अन्दर उसके पास चली जाती हैं और वहा से उसके लिए चाय और बेबी के लिए दूध मगवा भेजती हैं। या फिर मुन्नी दीदी दरवाज़े पर दस्तक देने लगती है, "बेबी कब तक भूखी रहेगी, राधा? पहले ही बीमार रहती है, उसे कुछ हो जाएगा, तो किसके सिर पर बात आएगी? हमे तू कहे, तो हम रात की गाड़ी से वापस चली जाती हैं।"

बन्द दरवाज़े के उस तरफ से पापा का राग सुनाई देने लगता है :

चंद इक
चंद इक
चंद इक
जो लाला-ओ-गुल में नुमायां हो गईं।
कि खाक में
खाक मे

खाक में
क्या सूरतें होंगी कि पिनहा हो गईं।

साथ टेलीफोन की घंटी बज उठती है।

शंकर बड़े-बड़े कदम रखता बीच के कमरे मे दाखिल होता है। बिना किसीकी ओर देखे सीधा टेलीफोन से पास चला जाता है। "हलो। हां, मैं हूं। बोल रहा हू। नही, ऐसी कोई बात नही। स्कूल से थका हुआ आया था, आकर जरा लेट गया था। सिरदर्द नही है, बस ऐसे ही कुछ। तुम कुल्लू से कब लौटी ? हां-हा, आओ जब भी मन हो। सिर्फ रिहर्सल है स्कूल में शाम को, वह मैं कल भी ले सकता हू। वह यही है। चार-पाच दिन मे आगरा जाएगी बच्ची को लेकर। उसकी मा आएगी लेने। या शायद भाई आए उसका। मैं छोड़ आऊगा तुम्हें। या हम दोनों छोड आएगे चलकर। ऐसी बात बिलकुल नही। डू कम।"

रिसीवर रखने तक राधा बच्ची को बाहो में लिए पास खड़ी नज़र आती है। "भाई को तार कर दोगे कि वह आज ही चल दे वहा से ? सुबह तक भी पहुच जाए, तो मैं कल की किसी गाडी से चली जाऊंगी उसके साथ।"

शंकर के कंधे झुक जाते हैं और ठोड़ी ऊंची उठ जाती है, "क्या कहा तुमने ?"

राधा वाक्यो का क्रम बदलकर बात फिर से दोहरा देती है।

शंकर झटके से खडा हो जाता है। "कल क्या, आज ही चली जाओ तुम। मैं राठी नही हू। मेरे यहां यह तमाशा बिलकुल नही चल सकता। तुम्हारा भाई भी नही हूं कि हर वक्त बीवी का मुंह जोहता रहूंगा। जिसे यहां रहना रास नहीं आता, वह जब चाहे जा सकता है यहां से। मुझे अपनी खातिर किसी के यहां रहने की जरूरत नही। जिसे खुद की खातिर रहना हो रहे, न रहना हो चला जाए।"

और उसके भारी कदमों की आवाज़ दालान पार करके क्वार्टर के बाहर पहुंच जाती है। घटे-भर बाद लौटकर आने तक वह एक चक्कर पनवाड़ी की दुकान का लगा लेता है, या राठी और नामदेव में से किसी के यहां दस्तक दे लेता है। राठी के यहा वही बात शुरू हो जाती है, "भाई साहब, इतना पूछिए इससे कि इसका चचेरा भाई मिलने आया था इससे, तो इसने कुंडी अदर से क्यों बंद कर रखी थी ?" नामदेव के यहां कंवारे दिनों के उत्साह के साथ उसका स्वागत किया जाता है, "अह्‌हा ! हियर कम्ज ग्रेट राजवंशी।"

शकर के बिल्लाकर निकल जाने के बाद बीच के कमरे का तनाव सहसा कम होने लगता है। बड़ी दीदी कीमे की गोलियां बटती हुई कहती है, "यह नही बदला बिलकुल भी। गुस्सा चढ जाता है, तो बिलकुल आगा-पीछा नही सूझता इसे।"

मुन्नी दीदी बात जोड़ती है। 'हमने सोचा था शादी के बाद गुस्सा कम हो जाएगा। मगर रत्ती-भर भी तो फर्क नही पडा।"

बडी दीदी उसे टोक देती है, "काम कितना करना पड़ता है बेचारे को। अकेला इतने आदमियो का पेट भरता है। स्कूल से तो पाच सौ ही मिलते हैं। ऊपर से कहा-कहां की दौड़-धूप करता है, तो कही जाकर खर्चा पूरा हो पाता है।"

मुन्नी दीदी की आखों मे आसू आ जाते हैं। "एक ही भाई है जिसके यहा आकर रहने का ठौर-ठिकाना है। इसे कलपते देखकर कितना दुख होता है मेरे मन को।"

बाहर से लौटने पर शंकर को बेबी से खेलती मुन्नी दीदी की आवाज़ सुनाई देती है, "छुक् छुक् हाः छुक् छुक् हाः छुकः छुकः।" साथ मे पूरे वाल्यूम पर चलते मुन्ने के ट्रांजिस्टर की आवाज़।

उड़ती चिड़िया
कि उड़ती चिड़िया पिंजरे में बंद कर लो
बंद कर लो'''।

और दहलीज़ लांघने के साथ ही गुन्नू सूचनाएं देने लगता है, "तीन फोन आए थे। राजेश्वर जी का, डॉक्टर मुकर्जी का और मिराडा की किसी लड़की का, जिसने नाम नहीं बतलाया। ड्राइंग-रूम में विश्वेश्वर जी आए बैठे हैं। मैंने कहा भी कि शायद देर से लौटकर आएं, मगर बोले कि कोई बात नहीं, हम इंतजार करके ही जाएंगे'''।"

नाथ भाई पूरी दोपहर और आधी शाम ड्राइंग-रूम में अकेले लेटे रहते हैं।

कुर्सियां, सोफासेट और दरी—इन पर घूमती हुई उनकी नजर अपने पर आ पड़ती है। दुबला शरीर। मजबूत हड्डी। बांहों पर सुनहले रोयें। सबसे पतले और नरम रोयें कुहनियों पर नज़र आते हैं। वे उन्हें सहलाते हैं। फिर दरी के रोयों को सहलाते हैं। जिन्दगी में कितना-कुछ मिलना चाहिए था उन्हें जो नहीं मिला। कितना कुछ कर सकते थे वे, जिसका कि मौका ही नहीं आया। आज भी अगर'''।

बीच-बीच में वे किचन में जाकर अपने लिए चाय बना लाते हैं। "आदमी जब अपने हाथ से काम कर सकता है, तो किसी दूसरे का मोहताज क्यों हो?" खाने के लिए भी वे किसी को आवाज नहीं देते। कोई न कोई अपने-आप उनके पास पहुंचा जाता है। कभी देर हो जाती है तो उनकी त्योरियां गहरी होने लगती हैं। "फालतू आदमी समझते हैं मुझे। जब और सब खा चुकेंगे तो पहुंचा जाएगे मेरा खाना। वितृष्णा बहुत बढ़ जाने पर वे कुर्सी के सहारे बैठ जाते हैं। जेब से पनामा की मुचड़ी डब्बी निकालकर सिगरेट सुलगा लेते हैं। "मुंह से मैं कभी नहीं कहूंगा कि मेरा खाना दे जाओ। भले ही दिन-भर भूखा क्यों न रहना पड़े।" बार-बार बाकी सिगरेटों को वे गिनती कर लेते हैं। "दो घंटे में पांच सिगरेट पिए गए। अब अगले दो घंटे में तीन से ज्यादा नहीं।"

घर के किसी भी आदमी की बातचीत उन्हें बर्दाश्त नहीं होती। "दो तरह के लोग हैं इस घर में। कुछ बेवकूफ। कुछ बदतमीज हैं।" गुन्नू और पुन्नू से तो उनका हां-ना का रिश्ता भी नहीं बनता। "बराबर वाले से तो बात कर भी ले आदमी, बच्चों से क्या बात करे?" जब बीच के कमरे से लड़ाई-झगड़े की आवाजें आने लगती हैं, तो अपने को अलग रखने के लिए वे किताब खोल लेते हैं। "जानवर हैं, सब के सब। सिवाय इसके इन्हें कोई काम ही नहीं है।"

स्कूल से होकर क्वार्टर में आने वाले लोग ड्राइंग-रूम के दरवाजे पर ही दस्तक देते हैं। नाथ भाई को मुश्किल से अपना गुस्सा दबाना पड़ता है। "घर है यह? तबेला है! जिसे और कहीं जाने को नहीं होता, यहां चला आता है।" लेकिन आने वाले का सामना वे काफी कोमलता के साथ करते हैं। "किससे मिलना है आपको?"

शंकर को बुलाकर लाने के लिए कई बार उन्हें खुद जाना पड़ जाता है। "तशरीफ रखिए, मैं अभी बुला देता हूं उन्हें।" लेकिन लहजा इस तरह एहसान करने का जैसे कि पड़ोस के घर से किसी को बुलाकर लाने की बात हो। जब तक शंकर नहीं आता, तब तक वे आने वाले को अपना पूरा परिचय दे देते हैं। "मैं बड़ा भाई हूं शंकर का। फर्क सिर्फ तीन साल का है, पर मैं बिलकुल बेटे की तरह मानता हूं इसे। यह भी मेरी बहुत इज्जत करता है। दो महीने से मुझे यहां अपने पास रोक रखा है। मुझे कितने ही काम हैं बम्बई में, मैं बराबर वापस जाने की जिद कर रहा हूं, लेकिन यह है कि मुझे जाने ही नहीं देता।"

हर आने वाले से वे उसके बारे में भी ज्यादा से ज्यादा जानकारी हासिल कर लेते हैं। "आप दिल्ली में रहते हैं? किस डिपार्टमेंट में हैं? शकर को कब से जानते हैं?" महिलाओं से वे अतिरिक्त आत्मीयता से बात करते हैं। "आप शुरू से ही इतनी दुबली हैं, या 'फिगर' के ख्याल से डायटिंग-आयटिंग करती हैं? मैं पंखा तेज करता हूं, आप इतनी धूप मे चलकर आई हैं।

शंकर को सूचना देने में उनका स्वर रहस्यपूर्ण ढग से धीमा हो जाता है। "बेटे, काफी स्मार्ट-सी लेडी हैं एक। मैंने पहले कभी नही देखा उन्हे। मिसेज़ लल्ला या ऐसा ही कुछ नाम बता रही हैं। तुम इत्मीनान से आओ। मैं तब तक बात कर रहा हू उनसे।"

शकर को ड्राइंग-रूम मे आकर कुछ देर उनकी उपस्थिति से जूझना पडता है। वह छोटे-छोटे सवालो से बात शुरू करता है। "तुम्हे दिक्कत तो नही हुई घर ढूढने मे? पानी पियोगी? बच्चे कैसे है? कब तक रहोगी दिल्ली में?

बीच मे खामोशी के लम्बे वक्फे आ जाते हैं। शंकर इंतजार करता है कि शायद नाथ भाई को खुद लग जाए कि अब उन्हे उठकर दूसरे कमरे मे चले जाना चाहिए। लेकिन नाथ भाई अगर जाते भी हैं, तो सिर्फ दो-एक मिनट के लिए यह कहकर, "पानी मैं ही ले आता हूं। लड़के पता नही कितनी देर लगाएगे।"

आखिर नाथ भाई के सामने ही खुलकर बात होने लगती है। "मिस्टर लल्ला इस बार भी साथ नही गए पहाड पर? मेरा ख्याल था कि साल-भर में हालात पहले से कुछ बेहतर हो गए होगे। देखने मे तो वे काफी पालिश्ड आदमी लगते है, फिर भी ···।"

मिसेज़ लल्ला बटुए से सिगरेट निकालकर नाथ भाई की तरफ देखती है। नाथ भाई झट-से उन्हे अपनी उदारता का विश्वास दिला देते है, "शौक से पीजिए। मेरे सामने तो आपको बिलकुल ही सकोच नही करना चाहिए। बंबई मे जिस हलके मे मेरा उठना-बैठना है, उसमे पचास फीसदी औरतें स्मोक करती हैं। मुझे तो बल्कि इसी वजह से चिढ है दिल्ली से, कि यहा के लोग बहुत ही दकियानूसी ख्यालात के है।"

बातचीत थोडा आगे बढती है, फिर रुक जाती है। शंकर की आखें मिसेज़ लल्ला के चेहरे को भापती हैं, उनकी सासो का अर्थ ढूंढती है, सिगरेट दबाए उनके होठो के भाव को पढती है। फिर वह सामने की दीवार के पुरानेपन को देखता है, खिडकी मे लगे परदे की छोटी लबाई को, शेल्फ पर रखे टाइमपीस के जग-खाए काच को और मुंह मे आई बात को रोककर कुर्सी पर थोड़ा फैल जाता है। "हूं।"

मिसेज लल्ला विषय बदलकर अपने काम-काज की बातो पर आ जाती हैं। "इधर काफी बिजी रहना पड़ता है मुझे। नया सैलून खोला है, अभी काम ज्यादा आना शुरू नही हुआ, इसलिए काफी दौड-धूप करनी पड़ती है। पब्लिसिटी, एकाउट्स सब काम खुद देखने पड़ते है। इसलिए इतनी फुरसत ही नही मिल पाती कि···।"

नाथ भाई सैलून के बारे में एक-एक बात पूछते है। इतने विस्तार से कि जैसे वैसा ही एक सैलून वे खुद भी खोलने वाले हों। "काम काफी अच्छा है यह," वे ईर्ष्या के साथ कहते है, "सिर्फ इन्वेस्टमेंट की बात है।"

मिसेज़ लल्ला अपनी मुसकराहट को रोकने के लिए होंठ सिकोड लेती है। शकर को किसी भी स्थिति मे बैठना असुविधाजनक लगता है। वह कुर्सी को थोडा आगे सरका लेता है। "अभी रुकोगी दो-एक दिन दिल्ली में या···?"

"नही, कल चली जाऊंगी। पहले ही काम में पन्द्रह दिन का गैप पड गया है। इस वक्त निकलकर आने का कोई मौका ही नही था। लेकिन वहा रहकर दिमाग इस

तरह ठस्स हो रहा था कि सोचा बिलकुल ही ब्रेकडाउन न कर जाऊं, इसलिए…।"

नाथ भाई अपने सुझाव सामने रखते हैं। "बहुत छोटे-छोटे उपायों से आदमी नर्वस ब्रेकडाउन से अपने को बचा सकता है। जैसे…।"

मिसेज लल्ला राधा के बारे में पूछती हैं, "बिटिया किस पर है? उस पर या तुम पर?"

शंकर चाय के लिए कहने के बहाने उठ जाता है, राधा को भी बता दूं कि तुम आई हो। उसे पता नहीं चला होगा, नहीं तो अब तक खुद ही इधर आ जाती।"

नाथ भाई मिसेज लल्ला से उनका बंबई का पता पूछते हैं। "इस बार वहां पर जरूर मिलूंगा आपसे। अब तक तो जान-पहचान नहीं थी। अब जान-पहचान है, तो…।"

मिसेज लल्ला अपनी घड़ी देखती हैं, "जाने से पहले मुझे अभी शापिंग भी करनी है।"

नाथ भाई जानने की कोशिश करते हैं कि क्या शापिंग करनी है, कहां करनी है। "जो चीज़ कनाट प्लेस में दस रुपये में मिलती है, वही सदर बाजार में पांच रुपये में मिल जाती है। मैं तो इन लोगों से भी कहता रहता हूं कि…।"

मिसेज लल्ला फिर घड़ी देख लेती हैं। "शापिंग के बाद एक जगह खाना खाने भी जाना है।"

शंकर हड़बड़ी के साथ दाखिल होता है। "बस चाय आ रही है। राधा भी आ रही है अभी। बच्ची को फीड दे रही है, इसलिए…।"

चाय की ट्रे मिसेज़ शर्मा लेकर आती है। शंकर अटपटे ढंग से परिचय कराता है, ये हमारी भाभी हैं। मिसेज शर्मा। मिस्टर शर्मा मेरे कोलीग हैं। बिलकुल साथ का क्वार्टर इनका है। वैसे हम लोग एक ही घर की तरह रहते हैं। राधा को तो आजकल ये कोई काम करने ही नहीं देतीं…।"

मिसेज शर्मा मुसकराकर ट्रे रख देती हैं और चाय बनाने लगती हैं। शंकर बात करता जाता है, "ये मिसेज लल्ला हैं। मेरे साथ पढ़ती थीं। इसलिए मैं आज भी पुराने नाम से ही बुलाता हूं। सरोज। बहुत दिन विदेश में रही हैं। हस्बैंड डिप्लोमेटिक सर्विस में थे। आजकल बंबई में…।"

मिसेज़ शर्मा फिर मुसकरा देती हैं। मिसेज़ लल्ला उदासीन बनी रहती हैं। चाय की प्यालियां देकर मिसेज़ शर्मा चल देती हैं, "हम पकौड़ी निकालकर भेज रहे हैं उधर से।"

मिसेज लल्ला तकल्लुफ के साथ घूंट भरती हैं। नाथ भाई के साथ शंकर के चेहरे का मिलान करके देखती हैं कि दोनों में कहां और कितनी समानता है। शंकर के दस साल पहले के चेहरे के साथ भी उसके आज के चेहरे का मिलान करती हैं। उनकी आंखों में दूरी बढ़ने लगती है। चाय और सिगरेट दोनों चुप रहने में सहायता करते हैं।

शंकर हर दूसरे क्षण दरवाज़े की तरफ देख लेता है। राधा को अब तक आना ही चाहिए था। कहीं फिर से ऐसा तो नहीं होगा कि…?

अन्तराल नाथ भाई की बातों से भरता है। "मैं इन्हें बता रहा था कि अगर कनाट प्लेस की जगह सदर बाज़ार जाया जाए, तो…।"

दरवाज़े पर राधा के दिखाई दे जाने से शंकर के अंदर का कसाव ढीला पड़ जाता है। "वहां या, बच्ची को लेकर आना।"

"वह सो गई है।" राधा मिसेज लल्ला की तरफ मुसकराती है और अतिरिक्त

शिष्टता के साथ उनके साथ की कुर्सी पर बैठ जाती है। उन दोनों में बातचीत शुरू हो जाने से थोड़ी देर के लिए शंकर परिस्थिति से बाहर हो जाता है। "मुझे इन्होने बताया ही नही कि टेलीफ़ोन आया था आपका और कि आप आज ही मिलने आने वाली हैं। मैंने बल्कि शिकायत की थी इनसे कि कुल्लू जाते हुए मिलकर क्यो नही गई। खत भी आपका बहुत दिनों मे आया था इनके पास। मैं कहती रही इनसे कि जवाब लिख दो, लेकिन स्वभाव इनका तो जानती ही है आप। तीन-तीन महीने चिट्ठियां पड़ी रहती है और ये एक लफ्ज भी नहीं लिख पाते किसी को। कई बार तो इतनी-इतनी जरूरी चिट्ठियां लिखने से रह जाती है···।"

मिसेज़ लल्ला हैंड-बैग से चांदी का झुनझुना निकालती है, "और कोई चीज मुझे मिली ही नही जल्दी मे। अगली बार आऊंगी, तो···।"

मिसेज़ शर्मा पकौड़ी की तश्तरी ले आती हैं, "ठीक से सिकी ही नही जल्दी में!" वे मिसेज लल्ला के अतिरिक्त राधा को भी अनुरोध से खिलाती हैं। "अच्छी नही है, फिर भी दो-एक तो ले ही लो। गुन्नू से पान लाने के लिए कह दिया है मैंने।"

मिसेज लल्ला के सहसा चलने के लिए तैयार हो जाने पर शकर उनसे पहले कमरे से बाहर निकल आता है। "अन्दर तो इतना घुटा-घुटा लगता है मुझे कि··।" मिसेज लल्ला और राधा साथ-साथ अहाते की तरफ मुड़कर अपनी-अपनी दिशा से चली जाती हैं। नाथ भाई दहलीज तक आकर वहीं रुके रहते हैं। "आपका पता नोट कर लिया है मैंने। हफ्ता-दस दिन मे अब मैं भी बस चलने ही वाला हूं यहां से।"

शंकर जानते हुए भी कि मिसेज़ लल्ला गाड़ी में आई होगी और गाड़ी स्कूल के गेट के पास खडी होगी, एक बार पूछ लेता है, "गाड़ी मे आई हो, या ··?"

मिसेज लल्ला जानते हुए भी कि वह गेट तक साथ चलेगा, कह देती है, तुम बैठो अगर···।"

शंकर नाथ भाई को, और उनके माध्यम से जैसे घर के सभी कमरो को, सूचना देकर मिसेज़ लल्ला के साथ चल देता है, "मैं अभी आ रहा हू इस गेट तक पहुचाकर।"

स्कूल के अन्दर को सडक पर चलते हुए मिसेज़ लल्ला के और अपने कधे के फर्क को देखता है। राधा के और उमके कद मे कितना ज्यादा फर्क है। अगर राधा कुछ और ऊची होती और दोनों मे लगभग इतना ही फर्क होता···। अगर राधा भी इसी तरह तनकर मेडनफार्म के उभार के साथ चल सकती···।

मिसेज़ लल्ला उसके देखने को महसूस करती कहती हैं, "घर अच्छा है तुम्हारा।"

शंकर को बात ताने की तरह लगती है। दस साल पहले की बात याद आती है, जब बिजनौर में उसने कहा था, "मैं अपने लिए इस तरह का घर चाहती हूं जिसमे···।"

मिसेज़ लल्ला उसकी आखो के अर्थ को भांपती कहती हैं, "सचमुच अच्छा है।"

शकर उखड़े-उखड़े वाक्यो मे बात करने लगता है। "मैंने तुम्हे जान-बूझकर नही रोका। ऐसे ही कुछ हो जाता है किसी-किसी दिन। सोचा था आओगी, तो खाना खाकर ही जाओगी। मैं समझ गया था तुम्हें क्यो उठने की जल्दी हो रही है। कुछ बाते होती हैं जो आदमी कोशिश करके भी नही समझा पाता किसी को। पहले सोचा था तुमसे बाहर मिलने का ही तय करू, जिससे···।

मिसेज़ लल्ला पूछ लेती है, "राधा के डिलीवरी नार्मल हुई है? मुझे तो काफी अनेमिक दिख रही थी वह।"

स्कूल के कुछ लड़के पास आकर पूछ लेते हैं, "सर, कल तो आप रिहर्सल लेंगे न ?"

लड़कों के पास से आगे निकलते ही विश्वेश्वर जी दिख जाते हैं। "राठी के यहां चलोगे एक मिनट ? हम तुम्हारे यहां से उठकर उसके यहां गए, तो देखा कि वहां···।" और वहां से गेट तक विश्वेश्वर जी का साथ बना रहता है। "तुम विदा कर लो इन्हें। बस लौटते हुए एक मिनट जरा···।"

राठी के यहां से लौटने में वह जान-बूझकर रात कर देता है। लौटकर दबे पैरों अपने कमरे की तरफ जाने लगता है, तो गुन्नू रास्ते में मिल जाता है। "भाभी को उलटियां हो रही हैं, मगर कह रही हैं, डाक्टर को नहीं बुलाना है। बड़ी दीदी कल सुबह की बस से जाना चाहती हैं, पूछ रही हैं कि सीटों का पता अड्डे पर जाकर करें या किसी को भेजकर पहले पछवाया जा सकता है ?"

बेड-रूम का दरवाजा बंद कर लेने से बाहर की आवाजें रुक जाती हैं। उस दरवाजे के सिवा कमरे में हवा या रोशनी का आने का कोई रास्ता नहीं है।

साथ-साथ लगे दो बिस्तर और एक बेबी-काट। इनके बाद मुश्किल से एकाध स्टूल के लिए ही जगह बचती है। अगर कभी कोई कुर्सी अन्दर ले आई जाए, तो उससे चलने-फिरने का रास्ता रुक जाता है।

उस कमरे में होने का मतलब होता है बिस्तर पर लेटे रहना। इसके अलावा वहां शरीर की कोई व्यवस्था बनती ही नहीं, जब तक कि चाय-आय के लिए उठकर बैठने का बहाना न हो।

राधा ज्यादातर दरवाजे की तरफ पीठ करके लेटती है। जिससे अचानक दरवाजा खुलने पर वह उस तरफ देखती न पाई जाए। बेबी-काट भी इसीलिए उसने उस तरफ रख रखी है। बेबी कुनमुनाने लगती है, तो वह लेटे-लेटे हाथ बढ़ाकर काट को हिला देती है।

बाहर से पैरों की आहट का पता नहीं चलता, फिर भी दरवाज़ा खुलने के खटके से ही उसे अन्दाज़ा हो जाता है कि आने वाला कौन हो सकता है। मिसेज शर्मा आती हैं, तो दरवाज़ा आहिस्ता से बहुत हल्की महीन आवाज़ के साथ खुलता है। बात शुरू करने से पहले मिसेज शर्मा को थोड़ी देर रुकना पड़ता है। "मैं कहने आई थी कि थोड़ी-सी खिचड़ी तो खा लेतीं।"

राधा करवट बदलकर उधर देखती है। "अन्दर टिकेगी नहीं, क्या फायदा ?"

"भूख से कमजोरी और बढ़ जाएगी।"

"क्या किया जा सकता है ?"

"अगर डॉक्टर को नहीं बुलाना है, तो कम-से-कम पिछली बार वाली दवाई ही···।"

"कुछ फायदा नहीं होगा उससे।"

"कम से कम कुछ तो ऐसा करो जिससे···।"

"अपने-आप ठीक हो जाएगा सब।"

जैसे कि एक खेल चलता है दोनों के बीच। मिसेज़ शर्मा जिस बात से भी शुरुआत करें, राधा को उसे तुरन्त दबा देना होता है। उसे लगता है कि उसे ज़बरदस्ती की सहानुभूति दी जा रही है जिसे वह किसी भी तरह झेल नहीं सकती। क्यों यह स्त्री

उसे अपनी जिन्दगी अपने ढग से जीने के लिए अकेली नही रहने देती ? क्यो उसके घर के हर कोने मे, हर कमरे मे, यह अपनी उदारता लिए आ दाखिल होती है ? क्यो यह अपने को अपने घर की जरूरतो तक सीमित नही रखती ? इस घर मे अगर एक बरतन भी छनकता है, तो क्यो यह उसकी खबरदारी रखना अपना फर्ज समझती है ?

मिसेज शर्मा उसकी बेरुखी को देखती हैं, सहती हैं और साथ-साथ क्षमा करती जाती है। भाई साहब की खातिर। वे कुछ देर आखें झपकती चुप खड़ी रहती है। अगर भाई साहब की जिन्दगी इससे न जुडी होती, तो वे कभी इससे कुछ पूछने, कुछ कहने के लिए न आतीं। अगर इतना भी होता कि भाई साहब इन सब चीजो की परेशानी अपने मन से दूर रख सकते। भाई साहब की आंखों मे कैसे अजीब-से डोरे नजर आने लगते है आजकल···।

"कम से कम चाय तो मैं भिजवा ही देती हूं एक प्याली।"

"भिजवा दीजिए चाहे। पर पी नही जाएगी मुझसे।"

बडी दीदी आती हैं, तो दरवाजा बडे नाटकीय ढग से सपाट खुल जाता है। "हम लोग जा रही है कल सुबह यहां से। मैंने सोचा, तुम्हें बता तो दू ही।"

राधा फिर करवट बदल लेती है। "मैं भी चली जाऊंगी, कल या परसों। बल्कि कल ही किसी वक्त।"

"तुम्हारा जाना तुम पर है। बिजनौर में कुछ कहलवाना हो किसी से, तो बता देना।"

"नही, कहलवाना कुछ नही है किसी से।"

दरवाजा जिस तरह खुलता है, उसी तरह बन्द हो जाता है।

शकर के अदर आने पर दरवाजे से ज्यादा दरवाजे की कुडी आवाज करती है और सिर्फ एक ही किवाड खुलता है। खुलने के साथ ही वह बन्द भी हो जाता है और आगे पर्दा खीच दिया जाता है।

राधा करवट नही बदलती। बेबी को ताकती चुपचाप पडी रहती है।

शकर पखा तेज करता है। "इतनी गरमी मे भी पता नही कैसे अन्दर पड़ी रहती हो तुम। हवा से भी कुछ नाराजगी है क्या ?"

"बेबी ठड खा जाएगी," राधा एकदम से शुरू करती है। "पहले ही दिन-भर खासती रही है।"

शकर पखे की स्पीड एक नम्बर कम कर देता है। "दिन-भर बंद कमरे मे रहेगी, तो बीमार पडेगी ही। कितने दिनो से तुमसे कह रहा हू कि अब चारपाइयां बाहर निकलवाकर सोना शुरू कर।"

राधा का सिर आहिस्ता से घूमता है। "मैंने कभी तुम्हें मना नही किया। तुम्हारे लिए एक चारपाई कब से निकलवा रखी है।"

"तो तुम्हारा ख्याल है मैं अकेला सोऊंगा बाहर ?"

"क्यो, अकेले सोने में क्या है ? मैं कल चली जाऊंगी, तब भी क्या अदर सोते रहोगे ?"

शकर देर तक उसे एकटक देखता है। वह उससे आंख नही मिलाती। "तो तुम्हारा जाना बिलकुल तय समझू न मैं ?"

"तय अब नये सिरे से होना है क्या ?"

शंकर की आधी सांस मुंह से आने लगती है। "ठीक है। लेकिन तुम्हारे वहा से लौटकर आने का कोई दिन तय नही है। यहा से तुम अपनी मर्जी से जा सकती हो, वहां

से अपनी मर्जी से नहीं आ सकती। यह कोई मुसाफिरखाना नहीं है कि जब चाहा सामान ले गए, जब चाहा ले आए।"

राधा उठकर बैठ जाती है। "जितने-जितने लोग आकर पड़े रहते हैं, उससे मुसाफिरखाने से कुछ कम भी नहीं लगता मुझे।"

शंकर का मन होता है कि एकदम चिल्लाकर कुछ कहे। लेकिन पीछे दरवाजे की तरफ देखकर उसका स्वर उलटे काफी धीमा हो जाता है। "सब लोग जा रहे हैं कल यहां से। तुम्हारी इन्हीं बातों के मारे।"

"सब लोग यानी ?"

"सब लोग यानी सब लोग। बड़ी दीदी और मुन्नी दीदी तो जा ही रही हैं, मैं, गुन्नू और पुन्नू से भी कह दूंगा कि अपने बिस्तर बांध लें। नाथ को भी जाना ही है। दो दिन बाद नहीं, दो दिन पहले सही। बाकी रह गए पापा···।"

"इतना सब किसकी खातिर कर रहे हो तुम ?"

शंकर का स्वर थोड़ा हकला जाता है "मतलब ?"

"मैं खुद जा रही हूं, तो मेरी खातिर तो भेज नहीं रहे हो। अगर मेरे पीछे से तुम्हें खाली घर चाहिए, तो अपने ही किसी मतलब से चाहिए होगा।"

शंकर बढ़कर उसे कंधे से पकड़ लेता है। "यहां मुझे किसी के साथ वह सब करना है न ?"

राधा झटके से कंधा छुड़ा लेती है। "हाथ परे रखना। यह सब अब मुझसे बरदाश्त नहीं होगा।"

"तुम नाम लो उसका, जिसकी खातिर मैं घर खाली करवा रहा हूं।"

"नाम लेने की भी जरूरत है क्या ? मेरे सामने बैठे हुए तुम्हारी आंखें ब्लाउज के अंदर घुसी रहती है।"

"तुम्हें बिलकुल शर्म-हया नहीं है ?"

"मुझे नहीं है या उन्हें नहीं है ? मरदों के बीच बैठने का यह तरीका है उनका कि जांघें आधी कुरसी से बाहर निकालकर हौले-हौले हिलाती रहें, किसी की नजर अपनी नाभि पर पड़ती देखें, तो मुसकरा दें, पिछवाड़े के पास हर वक्त साड़ी के बल ठीक करती रहे और पसीना पोंछने के बहाने बार-बार छातियों के बीच उंगली से···।"

शंकर आंखें मूंदकर स्टूल पर बैठ जाता है। "तुम्हारा यहां से चली जाना ही बेहतर है। हो सकता है कुछ दिन यहां से दूर रहने से···"

"ठीक हो जाऊंगी या जो भी हो जाऊंगी, पर यहां पर तो आराम हो ही जाएगा सब लोगों को।"

शंकर की आंखें आहिस्ता से खुलती हैं। "देखो राधा···"

राधा तकिये पर सिर गिरा लेती है। "धीमे बोलो, बच्ची उठ जाएगी। राधा ने बहुत कुछ देख लिया है पहले ही। और क्या देखना बाकी रहा है अब ?"

बेड-लैम्प की सिमटी हुई रोशनी में बिना पढ़े किताब के दो-एक पन्ने पलट लेने के बाद शंकर उकताकर किताब को स्टूल पर रख देता है। अलमारी में भरी हुई कितनी ही किताबें थीं जो जब-तब उत्साह के खरीदी थीं, मगर जिन्हें पढ़ पाने की नौबत ही नहीं आती थी कभी। इसी तरह कभी एक या दूसरी किताब को निकालना, पन्ने पलटना और रख देना।

अलमारी के सामने खड़े होकर उनके शीर्षकों को पढ़ना, बाहर निकालकर

उनकी धूल झाड़ना और कल से पढने का निश्चय करके आज के लिए खाली हो रहना···।

राधा की सांस से लगता है कि वह सो गई है। पखा एक छोटे-से घेरे में जैसे सिर्फ अपने लिए ही हवा बिखेरता है। वेबी गरमी से बौखलाकर जाग जाती है, रोती है, हाथ-पैर पटकती है और फिर सो जाती है। शंकर लैम्प बुझाकर सोने की कोशिश करता है। बिलकुल अधेरा हो जाने पर भी उसकी आखें कमरे में सब कुछ देखती है। दोनों बिस्तरों की मुचड़ी चादरें, दरवाजे की बन्द कुंडी, कोने की तिपाई पर दवाइयां और टाइमपीस। तकिया गरम लगता है, तो वह उसे उलटा लेता है। लेकिन चादर, पलंग और अपना-आप···?

वह लैम्प फिर जला लेता है। टाइमपीस में वक्त देखता है। कमरे की दीवारें उसे बहुत पास-पास लगती हैं। आहिस्ता से दरवाजे की कुडी खोलकर वह बाहर निकल आता है।

तीन तरह के खर्राटे एक साथ सुनाई देते है। बड़ी दीदी जैसे एक-एक सांस में हवा का एक-एक घूट भरती हैं। पापा के गले में कोई लकड़ी अटक गई लगती है। नाथ भाई सबसे ऊंची और निश्चित आवाज़ में अपनी धौंकनी चलाए जाते है।

फ्रिज से पानी की बोतल निकालकर वह एक ही बार मे तीन-चौथाई खाली कर देता है। बडी दीदी जाग जाती हैं। "कौन है ?"

"कोई नही है।" वह फ्रिज बंद करके ड्राइंग-रूम की तरफ बढ जाता है। पर वहा नाथ भाई सोफे और कुरसियों के बीच इस तरह लेटे नजर आते हैं कि बिना उनसे टकराए पास से निकलना असंभव लगता है। उधर से हटकर वह कुछ देर बीच के कमरे में रुका रहता है, इधर-उधर नजर दौड़ाता है और निकलकर बाहर अहाते मे आ जाता है। वहा भी सामने बिछी चारपाई रास्ता रोकती है। एक त्रिभुज में टागें फैलाए पुन्नू नींद में मुसकराता-सा लगता है। उसके पास से गुजरने तक एक छाया स्टडी मे बाहर निकल आती है। गुन्नू। "शंकर भाई, आप अगर इधर सोएगे, तो मैं आज शर्मा जी के यहा···"

"क्यों, तूने अपनी चारपाई पापा के कमरे में नही बिछाई ?"

"मेरी चारपाई वहीं है, लेकिन मुकुद भाई आ गए थे थोड़ी देर पहले। आपको पता न चले, इसलिए पीछे की तरफ से आए थे चुपचाप। मेरी चारपाई उन्होने ले ली है। बोले सुबह तक बताना नही। कल शायद भाभी को भी ले आएंगे। ससुराल वालों से लड़ाई हो गई है उनकी।"

शकर कुछ देर खामोश खड़ा रहता है। गुन्नू आखें झपकता उसके उत्तर की प्रतीक्षा करता है। "तो मैं अपना तकिया लेकर···?"

"तू सोया रह जहां सोया है।" झिडकने की तरह कहकर शंकर झटके-से दरवाजे की कुंडी खोलता है और क्वार्टर के बाहर पहुंच आता है। पुन्नू की तरह टांगें फैलाकर सोई सडक। हाई वॉल्टेज और लो वॉल्टेज के बीच लड़खडाती खभों की रोशनी। मार्केट की सडक पर मरियल चाल से चलता एक आदमी। सामने की तरफ एक नई खडी होती इमारत के सीखचे। ढेरों ईंटें, गारा और सीमेंट। वह दरवाजे से थोडा हटकर क्वार्टर की तरफ मुह करके खडा हो जाता है और पाजामे का नाडा खोल लेता है।

एक ठहरा हुआ चाकू

अजीब बात थी कि खुद कमरे मे होते हुए भी बाशी को कमरा खाली लग रहा था।

उसे काफी देर हो गई थी कमरे मे आए—या शायद उतनी देर नहीं हुई थी जितनी कि उसे लग रही थी। वक्त उसके लिए दो तरह से बीत रहा था—जल्दी भी और आहिस्ता भी'''उसे, दरअसल, वक्त का ठीक अहसास हो नही रहा था।

कमरे में कुछ-एक कुर्सियां थीं'' लकड़ी की। वैसी ही, जैसी सब पुलिस स्टेशनों पर होती हैं। कुर्सियों के बीचोंबीच एक मेज़नुमा तिपाई थी जो कि कुहनी ऊपर रखते ही झूलने लगती थी। आठ फुट और आठ फुट का वह कमरा इनसे पूरा घिरा था। टूटे पलस्तर की दीवारें कुर्सियों से लगभग सटी हुई जान पड़ती थीं। शुक्र था कि कमरे में दरवाज़े के अलावा एक खिड़की भी थी।

बाहर अहाते में बार-बार चरमराते जूतों की आवाज़ सुनाई देती थी—यही वह सब-इन्स्पेक्टर था जो उसे कमरे के अन्दर छोड़ गया था। उस आदमी का चेहरा आंखों से दूर होते ही भूल जाता था, पर सामने आने पर फिर एकाएक याद हो आता था। कल से आज तक वह कम से कम बीस बार उसे भूल चुका था।

उसने सुलगाने के लिए सिगरेट जेब से निकाला, पर यह देखकर कि उसके पैरों [illegible] उसे वापस जेब में रख लिया। कमरे में [illegible] भी सिगरेट [illegible]कर टुकड़ा खिड़की से बाहर फेंक देगा। पर उधर जाकर देखा कि खिड़की के ठीक नीचे एक चारपाई बिछी है। जिस पर लेटे या बैठे हुए दो-एक कान्स्टेबल अपना आराम का वक्त बिता रहे हैं। उसके बाद फिर दूसरी बार वह खिड़की के पास नहीं गया।

अकेले कमरे में वक्त काटने के लिए सिगरेट पीने के अलावा भी जो कुछ किया जा सकता था, वह कर चुका था। जितनी कुर्सियां थीं, उनमे से हर एक पर एक-एक बार बैठ चुका था। उनके गिर्द चहलकदमी कर चुका था। दीवारों का पलस्तर दो-एक जगह से उखाड़ चुका था। मेज पर एक बार पेंसिल से और न जाने कितनी बार उंगली से अपना नाम लिख चुका था। एक ही काम था जो उसने नहीं किया था—वह था दीवार पर लगी क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर को थोड़ा तिरछा कर देना। बाहर अहाते से लगातार जूते की चरमर सुनाई न दे रही होती, तो अब तक उसने यह भी कर दिया होता।

उसने अपनी नब्ज़ पर हाथ रखकर देखा कि बहुत तेज़ तो नहीं चल रही। फिर हाथ हटा लिया—कि कोई उसे ऐसा करते देख न ले।

उसे लग रहा था कि वह थक गया है और उसे नींद आ रही है। रात को ठीक से नींद नहीं आई थी। ठीक से क्या, शायद बिल्कुल नहीं आई थी। या शायद नींद में भी उसे लगता रहा था कि वह जाग रहा है। उसने बहुत कोशिश की थी कि जागने की बात भूलकर किसी तरह सो सके—पर इस कोशिश में ही पूरी रात निकल गई थी।

उसने जेब से पेंसिल निकाल ली और बाएं हाथ पर अपना नाम लिखने लगा—बाशी, बाशी, बाशी। सुभाष, सुभाष, सुभाष।

आज सुबह यह नाम प्रायः सभी अखबारों में छपा था। रोज के अखबार के अलावा उसने तीन-चार अखबार और खरीदे थे। किसी मे दो इंच में खबर दी गई थी, किसी मे दो कॉलम में। जिसने दो कॉलम मे खबर दी थी, वह रिपोर्टर उसका परिचित था। वह अगर उसका परिचित न होता, तो शायद···

वह अब अपनी हथेली पर दूसरा नाम लिखने लगा—वह नाम जो उसके नाम के साथ-साथ अखबारों में छपा था—नत्थासिंह, नत्थासिंह, नत्थासिंह।

यह नाम लिखते हुए उसकी हथेली पर पसीना आ गया। उसने पेंसिल रखकर हथेली को मेज़ से पोंछ लिया।

जूते की चरमर दरवाज़े के पास आ गई। सब-इन्स्पेक्टर ने एक बार अन्दर झाककर पूछ लिया, "आपको किसी चीज़ की ज़रूरत तो नही ?"

"नही," उसने सिर हिला दिया। उसे तब ऐश-ट्रे का ध्यान नही आया।

"पानी-आनी की ज़रूरत होगी, तो मांग लीजिएगा।"

उसने फिर सिर हिला दिया—कि ज़रूरत होगी, तो मांग लेगा। साथ पूछ लिया, "अभी और कितनी देर लगेगी ?"

"अब ज्यादा देर नही लगेगी," सब-इन्स्पेक्टर ने दरवाज़े के पास से हटते हुए कहा, "पन्द्रह-बीस मिनट में ही उसे ले आएंगे।"

इतना ही वक्त उसे तब भी बताया गया था जब उसे उस कमरे मे छोड़ा गया था। तब से अब तक क्या कुछ भी वक्त नही बीता था ?

जूते के अन्दर, दाएं पैर के तलवे में, खुजली हो रही थी। जूता खोलकर एक बार अच्छी तरह खुजला लेने की बात वह कितनी ही बार सोच चुका था। पर हाथ दो-एक बार नीचे झुकाकर भी उसमे तस्मा खोलते नही बना। उस पैं को दूसरे पैर से दबाए वह जूते को ज़मीन पर रगड़कर रह गया।

हाथ की पेंसिल फिर चल रही थी। उसने अपनी हथेली को देखा। दोनो नामों के ऊपर उसने बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया था—अगर।

अगर···।

अगर कल सुबह वह स्कूटर की बजाय बस से आया होता···।

अगर बर्फ खरीदने के लिए उसने स्कूटर को दायरे के पास न रोका होता···

अगर···

उसने जूते को फिर ज़मीन पर रगड़ लिया। मन में मिन्नी का चेहरा उभर आया। अगर वह कल मिन्नी से न मिला होता···

वह, जो कभी सुबह नौ बजे से पहले नही उठता था, सिर्फ मिन्नी की वजह से उन दिनो सुबह छह बजे तैयार होकर घर से निकल जाता था। मिन्नी ने मिलने की जगह भी क्या बताई थी—अजमेरी गेट के अन्दर हलवाई की एक दुकान ! जिस प्राइवेट कॉलेज में वह पढने आती थी, उसके नज़दीक बैठने लायक और कोई जगह थी ही नही। एक दिन वह उसे जामा मस्जिद ले गया था—कि कुछ देर वहां के किसी होटल मे बैठेंगे। पर उतनी सुबह किसी होटल का दरवाजा नही खुला था। आखिर मेहतरों की उड़ाई धूल से सिर-मुह बचाते वे उसी दुकान पर लौट आए थे। दुकान के अन्दर पन्द्रह-बीस मेजें लगी रहती थी। सुबह-सुबह लस्सी-पूरी का नाश्ता करनेवाले लोग वहा जमा हो जाते थे। उनमें से बहुत-से तो उन्हे पहचानने भी लगे थे—क्योंकि वे रोज कोने की मेज़ के पास घण्टा-घण्टा-भर बैठे रहते हैं। मिन्नी अपने लिए सिर्फ कोकाकोला की बोतल मंगवाकर सामने रख लेती थी—पीती उसे भी नही थी। लस्सी-पूरी का ऑर्डर उसे

अपने लिए देना पड़ता था। जल्दी-जल्दी खाने की आदत होने से सामने का पत्ता दो मिनट में ही साफ हो जाता था। मिन्नी कई बार दो-दो पीरियड मिस कर देती थी, इसलिए वहां बैठने के लिए उसे और-और पूरी मंगवाकर खाते रहना पड़ता था। उससे सुबह-सुबह उतना नाश्ता नहीं खाया जाता था, पर चुपचाप और निगलते जाने के सिवा कोई चारा नहीं होता था। मिन्नी देखती कि खा-खाकर उसकी हालत खस्ता हो रही है, तो कहती कि चलो, कुछ देर पास की गलियों में टहल लिया जाए। सड़क पर वे नहीं टहल सकते थे; क्योंकि वहा कॉलेज की ओर लड़किया आती-जाती मिल जाती थी। हलवाई की दुकान के साथ से गली अन्दर को मुड़ती थी—उससे आगे गलियों की लम्बी भूल-भुलैया थी, जिसमे वे किसी भी तरफ को निकल जाते थे। जब चलते-चलते सामने सड़क का मुहाना नजर आ जाता, तो वे वहीं से लौट पड़ते थे।

"इस इतवार को कोई देखने आनेवाला है," उस दिन मिन्नी ने कहा था।

"कौन आनेवाला है ?"

"कोई है—काठमाण्डू से आया है। दस दिन में शादी करके लौट जाना चाहता है।"

"फिर ?"

"फिर कुछ नही। आएगा, तो मैं उससे साफ-साफ सब कह दूंगी।"

"क्या कह दोगी ?"

"यह क्यों पूछते हो ? तुम्हें पूछने की जरूरत नही है।"

"अगर उस वक्त तुम्हारी ज़बान न खुल सकी, तो ?"

"तो समझ लेना कि ऐसे ही बेकार की लड़की थी···इस लायक थी ही नहीं कि तुम उससे किसी तरह की रारत रखते।"

"पर तुमने पहले ही घर मे क्यों नहीं कह दिया ?"

"यह तुम जानते हो कि मैंने नही कहा ?" कहते हुए मिन्नी ने उसकी उंगलिया अपनी उंगलियो मे ले ली थीं। "अभी तो तुम दूसरे के घर में रहते हो। जब तुम अपना घर ले लोगे, तो मैं ··तब तक मैं ग्रेजुएट भी हो जाऊंगी।"

एक बहते नल का पानी गली में यहां से वहां तक फैला था। बचने की कोशिश करने पर भी दोनों के जूते कीचड़ से लथपथ हो गए थे। एक जगह उसका पांव फिसलने लगा तो मिन्नी ने बांह से पकड़कर उसे संभाल लिया। कहा, "ठीक से देखकर नहीं चलते न ! पता नही, अकेले रहकर कैसे अपनी देखभाल करते हो ?"

अगर···

अगर मिन्नी ने यह न कहा होता, तो वह उतना खुश-खुश न लौटता। उस हालत मे जरूर स्कूटर के पैसे बचाकर बस से आया होता।

अगर घर के पास के दायरे में पहुंचने तक उसे प्यास न लग आई होती···

उसने स्कूटर को वहां रोक लिया था—कि दस पैसे की बर्फ खरीद ले। महीना जुलाई का था, फिर भी उसे दिन-भर प्यास लगती थी। दिन मे कई-कई बार वह बर्फ खरीदने वहां आता था। दुकानदार उसे दूर से देखकर ही पेटी खोल लेता था और बर्फ तोड़ने लगता था।

पर तब तक अभी बर्फ की दुकान खुली नही थी।

बर्फ खरीदने के लिए उसने जो पैसे जेब से निकाले थे, उन्हें हाथ मे लिए वह लौटकर स्कूटर के पास आया, तो एक और आदमी उसमें बैठ चुका था। वह पास पहुंचा, तो स्कूटरवाले ने उसकी तरफ हाथ बढ़ा दिया—जैसे कि वहां उतरकर वह स्कूटर खाली

कर चुका हो।

"स्कूटर अभी खाली नहीं है," उसने स्कूटरवाले से न कहकर अन्दर बैठे आदमी से कहा।

"खाली नहीं से मतलब ?" उस आदमी का चेहरा सहसा तमतमा उठा। वह एक लम्बा-तगड़ा सरदार था—लुंगी के साथ मलमल का कुरता पहने। लम्बा शायद उतना नहीं था, पर तगड़ा होने से लम्बा भी लग रहा था।

"मतलब कि मैंने अभी इसे खाली नहीं किया है।"

"खाली नहीं किया, तो मैं अभी कराऊं तुझसे खाली ? कहते हुए सरदार ने दांत भींच लिए। "जल्दी से उसके पैसे दे, और अपना रास्ता देख, वरना···"

"वरना क्या होगा ?"

"बताऊं तुझे क्या होगा ?" कहते हुए सरदार ने उसे कॉलर से पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया और उसके मुंह पर एक झांपड़ दे मारा..."यह होगा। अब आया समझ में ? दे जल्दी से उसके पैसे और दफा हो यहां से।"

उसका खून खौल गया—कि एक आदमी, जिसे वह जानता तक नहीं, भरे बाजार में उसके मुंह पर थप्पड़ मारकर उससे दफा होने को कह रहा है ! उसका चश्मा नीचे गिर गया था। उसे ढूंढते हुए उसने कहा, "सरदार, ज़रा ज़बान संभालकर बात कर।"

"क्या कहा ? जबान संभालकर बात करूं ? हरामजादे, तुझे पता है मैं कौन हूं ?" जब तक उसने आंखों पर चश्मा लगाया, सरदार स्कूटर से नीचे उतर आया था। उसका एक हाथ कुरते की जेब में था।

"तू जो भी है, इस तरह की बदतमीज़ी करने का तुझे कोई हक नहीं," कहते न कहते उसने देखा कि सरदार जी की जेब से निकलकर एक चाकू उसके सामने खुल गया है। "तू अगर समझता है कि···" यह वाक्य वह पूरा नहीं कर पाया। खुले चाकू की चमक से उसकी ज़बान और छाती सहसा जकड़ गई। उसके हाथ से पैसे वहीं गिर गए और वह वहां से भाग खड़ा हुआ।

"ठहर मादर···अब जा कहां रहा है ?" उसने पीछे से सुना।

"पैसे साहब !" यह आवाज़ स्कूटरवाले की थी।

उसने जेब में हाथ डाला और जितने सिक्के हाथ में आए निकालकर सड़क पर फेंक दिए। पीछे मुड़कर नहीं देखा। घर की गली बिल्कुल सामने थी, पर उस तरफ न जाकर वह जाने किस तरफ को मुड़ गया। कहां तक और कितनी देर तक भागता रहा, इसका उसे होश नहीं रहा। जब होश हुआ, तो वह एक अपरिचित मकान के ज़ीने में खड़ा हांफ रहा था···

उसने पेंसिल हाथ से रख दी और हथेली पर बने शब्दों को अंगूठे से मल दिया। तब तक न जाने कितने शब्द और वहां लिखे गए थे जो पढ़े भी नहीं जाते थे। सब मिलाकर आड़ी-तिरछी लकीरों का एक गुझल था जो मल दिए जाने पर भी पूरी तरह मिटा नहीं था। हथेली सामने किए वह कुछ देर उस अधबुझे गुझल को देखता रहा। हर लकीर का नोक-नुक्ता कहीं से बाकी था। उसने सोचा कि वहां कहीं एक वाश-बेसिन होता, तो वह दोनों हाथों को अच्छी तरह मलकर धो लेता।

"हलो···!"

उसने सिर उठाकर देखा। महेन्द्र, जिसके यहां वह रहता था, और वह रिपोर्टर

जिसने दो कॉलम मे खबर दी थी, उसके सामने खडे थे। राव इन्स्पेक्टर के जूते की चरमर दरवाज़े से दूर जा रही थी।

"तुम इस तरह बुझे-से क्यो बैठे हो ?" महेन्द्र ने पूछा।

"नही तो," उसने कहा और मुसकराने की कोशिश की।

"ये लोग उसे लॉक-अप से यहा ले आए हैं। अभी थोडी देर में उसे शनाख्त के लिए इधर लाएगे।"

उसने सिर हिलाया। वह अब भी वाश-बेसिन की बात सोच रहा था।

"थानेदार बता रहा था कि सुबह-सुबह उसके घर जाकर इन्होने उसे पकडा है। ये लोग कब से उसके पीछे थे—पर पकडने का कोई मौका इन्हें नही मिल रहा था। कोई भला आदमी उसकी रिपोर्ट ही नही करता था।"

उसने अब फिर मुसकराने की कोशिश की। पेंसिल उसने मेज़ से उठाकर जेब मे डाल ली।

"मैं आज फिर अखबार मे उसकी खबर दूगा," रिपोर्टर बोला—"जब तक इस आदमी को सज़ा नही हो जाती, हम इसका पीछा नही छोड़ेंगे।"

उसे लगा कि उसके कान गरम हो रहे हैं। उसने हलके से एक कान को सहला लिया।

"तय हुआ है," महेन्द्र ने कहा, "कि उसे साथ लिए हुए चार सिपाही अहाते मे दाईं तरफ से आएगे और बाईं तरफ से निकल जाएगे। उसे यह पता नही चलने दिया जाएगा, कि तुम यहा हो। तुम यहा बैठे-बैठे उसे देख लेना और बाद मे बता देना कि हा, यही आदमी है जिसने तुम पर चाकू चलाना चाहा था। वह थानेदार के सामने इतना तो मान गया है कि कल उसने स्कूटर को लेकर झगड़ा किया था, पर चाकू निकालने की बात नही मानी। कहता है कि चाकू-आकू तो उसके पास होता ही नही—उसके दुश्मनों ने खामखाह उसे फंसाने के लिए रिपोर्ट लिखवा दी है। यह भी कह रहा था कि वह तो अब इस इलाके मे रहना नही चाहता—दो-एक मुकदमो का फैसला हो जाए, तो वह इस इलाके से चला जाएगा।"

वह कुछ देर क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर को देखता रहा। फिर अपनी उंगलियो को मसलता हुआ आहिस्ता से बोला, "मेरा ख्याल है, हमें रिपोर्ट नही लिखवानी चाहिए थी।"

"तुम फिर वही बुज़दिली की बात कर रहे हो ?" महेन्द्र थोड़ा तेज़ हुआ। "तुम चाहते हो कि ऐसे आदमी को गुण्डागर्दी की खुली छूट मिली रहे ?"

उसकी आखें तस्वीर से हटकर पल-भर महेन्द्र के चेहरे पर टिकी रहीं। उसे लगा कि जो बात वह कहना चाहता है, वह शब्दों मे नही कही जा सकती।

"आपको डर लग रहा है ?" रिपोर्टर ने पूछा।

"बात डर की नही···।"

"तो और क्या बात है ?" महेन्द्र फिर बोल उठा। "तुम कल भी कम्प्लेंट लिखवाने मे आना कानी कर रहे थे···।"

"मैंने यह बात भी अपनी रिपोर्ट मे लिखी है, रिपोर्टर ने कहा और एक सिगरेट सुलगा लिया।"

"खैर, रिपोर्ट तो अब हो गई है और उस आदमी को गिरफ्तार भी कर लिया गया है," महेन्द्र बोला। "तुम्हे डरना नही चाहिए। इतने लोग तुम्हारे साथ हैं।"

"मैं समझता हूं कि गुण्डागर्दी को रोकने में आदमी की जान भी चली जाए, तो

उसे परवाह नहीं करनी चाहिए," रिपोर्टर ने कश खीचते हुए कहा। "इन लोगों के हौसले इतने बढ़ते जा रहे हैं कि ये किसी को कुछ समझते ही नहीं। पिछले दो साल में ही गुण्डागर्दी की घटनाएं पहले से पौने तीन गुना हो गई हैं—यानी पहले से एक सौ पचहत्तर फीसदी ज्यादा। अगर अब भी इनकी रोक-थाम न की गई, तो पांच साल मे आदमी के लिए घर से निकलना मुश्किल हो जाएगा।"

रिपोर्टर के सिगरेट की राख उसके घुटने पर आ गिरी। उसने हलके से उसे झाड़ दिया और बाहर की तरफ देखने लगा।

"ये लोग अब उसके घर चाकू तलाश करने गए हैं," महेन्द्र दोनों जेबों में हाथ डाले चलने के लिए तैयार होकर बोला। "हो सकता है, तुमसे चाकू की शनाख्त के लिए भी कहा जाए।"

"चाकू की शनाख्त कैसे होगी?" उसने उसी स्वर में पूछ लिया।

"कैसे होगी?" महेन्द्र फिर उत्तेजित हो उठा। "देखकर कह देना होगा कि हां, यही चाकू है—और शनाख्त कैसे होती है?"

"पर मैंने तो चाकू ठीक से नहीं देखा था।"

"नहीं देखा था, तो अब देख लेना। हम थोड़ी देर में फोन करके यहां से पता कर लेंगे। तुम यहां से निकलकर सीधे घर चले जाना और रात को मेरे लौटने तक घर पर ही रहना।"

वे लोग चले गए, तो कमरा उसे फिर खाली लगने लगा—बिल्कुल खाली—जिसमें वह खुद भी जैसे नहीं था। सिर्फ कुर्सियां थीं, दीवारें थीं और एक खुला दरवाज़ा था—बाहर जूते की चरमर अब सुनाई नहीं दे रही थी।

"सुनो...," उसे लगा जैसे उसने मिन्नी की आवाज सुनी हो। उसने आसपास देखा। कोई भी वहां नहीं था। सिर्फ सिर के ऊपर घूमता पंखा आवाज़ कर रहा था। उसे हैरानी हुई कि अब तक उसे इस आवाज़ का पता क्यों नहीं चला। उसे तो इतना अहसास भी नहीं था कि कमरे मे एक पंखा भी है।

सिर कुर्सी की पीठ से टिकाए वह पंखे की तरफ देखने लगा—उसकी तेज़ रफ्तार में अलग-अलग परों को पहचानने की कोशिश करने लगा। उसे खयाल आया कि उसके सिर के बाल बुरी तरह उलझे हैं और वह सुबह से नहाया नहीं है। आज सुबह से ही नहीं, कल सुबह से...।

कल दिन-भर वे लोग स्कूटरों और टैक्सियों में घूमते रहे थे। वह और महेन्द्र। घर पहुंचकर उसने महेन्द्र को उस घटना के बारे मे बतलाया, तो वह तुरन्त ही उस संबंध में 'कुछ करने' को उतावला हो उठा था। पहले उन्होंने दायरे के पास जाकर पूछ-ताछ की। वहां कोई भी कुछ बतलाने को तैयार नहीं था। जो मोची दायरे के पास बैठा था, वह सिर झुकाए चुपचाप हाथ के जूते को सीता रहा। उसने कहा कि वह घटना के समय वहां नहीं था—नल पर पानी पीने गया था। और भी जिस-जिससे पूछा, उसने सिर हिलाकर मना कर दिया कि वह उस आदमी के बारे में कुछ नहीं जानता। सिर्फ मेडिकल स्टोर के इंचार्ज ने दबी आवाज मे कहा, "नत्थासिंह को यहां कौन नहीं जानता? अभी कुछ ही दिन पहले उसके आदमियों ने पिछली गली में एक पानवाले का कत्ल किया है। वे तीन-चार भाई हैं और इस इलाके के माने हुए गुण्डे हैं। खैरियत समझिए कि आपकी जान बच गई, वरना हममें से तो किसी को इसकी उम्मीद नहीं रही थी। अब बेहतरी इसी मे है कि आप इस चीज को चुपचाप पी जाएं और बात को ज्यादा बिखरने न दें। यहां आपको एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलेगा, जो उसके खिलाफ गवाही देने को

तैयार हो। अगर आप पुलिस में रिपोर्ट करें और पुलिस यहां तहकीकात के लिए आए, तो सब लोग साफ मुकर जाएंगे कि यहा पर ऐसा कुछ हुआ ही नहीं।"

पर महेन्द्र का कहना था कि रिपोर्ट ज़रूर करेंगे—ऐसे आदमी को सज़ा दिलवाए वगैर नहीं छोड़ा जा सकता।

थानेदार से बात करने पर उसने कहा, "हां-हां, रिपोर्ट आपको ज़रूर लिखवानी चाहिए। इन गुण्डों से मत्था लेने मे यू थोडा-बहुत खतरा तो रहता ही है—और कुछ न करें, आप पर एसिड वेमिड ही डाल दें। ऐसा उन्होने दो-एक बार किया भी है। पर हम आपकी हिफाजत के लिए हैं, आपको डरना नहीं चाहिए। एक अच्छे शहरी होने के नाते आपका फर्ज़ है कि आप रिपोर्ट ज़रूर लिखवाएं। हम लोगों को भी तो इनके खिलाफ कारवाई करने का मौका इसी तरह मिल सकता है।"

रिपोर्ट लिखवाने के बाद वे लोग अखबारों के दफ्तरों मे गए—एस० पी० और डी० एस० पी० से मिले। उस दौरान कई बातो का पता चला—कि उस आदमी का मुख्य धन्धा लडकियो की दलाली करना है—कि ऊंचे सरकारी और राजनीतिक हलके के अमुक-अमुक व्यक्तियो को वह लड़किया सप्लाई करता है—कि उसकी कितनी भी रिपोर्टें की जाएं, कभी उसके खिलाफ कारवाई नहीं की जाती—कि नीचे से अमुक-अमुक लोग उससे पैसे खाते हैं—कि नीचे से कारवाई कर भी दी जाए, तो ऊपर से अमुक-अमुक का फोन आ जाता है जिससे कारवाई वापस ले ली जाती है···।

"वह तो बेचारा सिर्फ दलाली करता है," डी० एस० पी० ने ज़रूरी फाइलों पर दस्तखत करते हुए कहा, "कत्ल-अत्ल करने का उसका हौसला नहीं पड़ सकता। हम उसके खिलाफ कार्रवाई करेंगे—आपको डरना बिलकुल नहीं चाहिए।"

अखबारों के चीफ-क्राइम रिपोर्टरने तीस हज़ारी कैण्टीन की ठण्डी चाय के लिए छोकरे को डाट-फटकार करते हुए सलाह दी, "आप पहला काम यही कीजिए कि जाकर अपनी रिपोर्ट वापस ले लीजिए। थानेदार मेरा वाकिफ है, आप चाहें तो उससे मेरा नाम ले सकते हैं—कि पण्डित माधोप्रसाद ने यह राय दी है वह अकेला नहीं है, एक बहुत बड़ा गिरोह उसके साथ है। हम लोग इनसे उलझ लेते हैं क्योंकि एक तो हम इन सबको पहचानते हैं और दूसरे हिफाजत के लिए रिवाल्वर-आल्वर अपने साथ रखते हैं। वे भी जानते हैं कि जितने बड़े गुण्डे ये दूसरो के लिए हैं, उतने ही बड़े गुण्डे हम इनके लिए हैं। इसलिए हमसे डरते भी हैं। पर आप जैसे आदमी को तो ये एक दिन मे साफ कर देंगे—आपको इनसे बचकर रहना चाहिए···।"

अपनी अनेक राजनीतिक व्यस्तताओं से समय निकालकर उस विभाग के मंत्री ने भी अपने लॉन मे चहलकदमी करते हुए शाम को एक मिनट उनसे बात की। छूटते ही पूछा, "किस चीज़ की अदावत थी तुम लोगों में?"

"अदावत का तो कोई सवाल नहीं था," वह जल्दी-जल्दी कहने लगा, "मैं सुबह स्कूटर में घर की तरफ आ रहा था···।"

"तुम अपनी शिकायत एक कागज़ पर लिखकर सेक्रेटरी को दे दो," उन्होने बीच मे ही कहा, "उसपर जो कार्रवाई करनी होगी, कर दी जाएगी।" और वे लॉन मे खड़े दूसरे ग्रुप की तरफ मुड़ गए।

रात को घर लौटने पर उसे अपने हाथ-पैर ठण्डे लग रहे थे। पर महेन्द्र का उत्साह कम नहीं हुआ था। वह आधी रात तक इधर-उधर फोन करके तरह-तरह के आकड़े जमा करता रहा। "उसे कम से कम तीन साल की सज़ा होनी चाहिए," उसने सोने से पहले आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष निकाल लिया।

महेन्द्र के सो जाने के बाद वह काफी देर साथ के कमरे से आती सांसो की आवाज सुनता रहा था—उस आवाज़ मे उतनी सुरक्षा का अहसास उसे पहले कभी नहीं हुआ था। वह आवाज—एक जीवित आवाज़—उसके बहुत पास थी और लगातार चल रही थी। जितनी जीवित वह आवाज थी, उतना ही जीवित था उसे सुन सकना—चुपचाप लेटे हुए, बिना किसी कोशिश के, अपने कानो से सुन सकना। गर्मी और उमस के बावजूद रात ठण्डी थी—कुछ देर पहले से हलकी-हलकी बूंदें पडने लगी थी। कभी-कभी उसे सन्देह होता कि जो आवाज़ वह सुन रहा है, वह रात की ही तो आवाज़ नही—सिर्फ पत्तो के हिलने और बूदों के गिरने की आवाज़। कि सुनना भी कहीं सुनना न होकर अपने से बाहर का कोरा शब्द ही तो नही। तब वह करवट बदलकर अपने हाथ-पैरों का 'होना' महसूस करता और फिर से सांसो का शब्द सुनने लगता···

खिड़की से कभी-कभी हवा का झोका आता जिससे रोंगटे सिहर जाते थे। उस सिहरन मे हवा के स्पर्श के अतिरिक्त भी कुछ होता—शायद रोंगटों में अपने अस्तित्व की अनुभूति। एक झोके के बीत जाने पर वह दूसरे की प्रतीक्षा करता, जिससे कि फिर से उस स्पर्श और सिहरन को अपने में महसूस कर सके। उस सिहरन के बाद उसे अपना हाथ खाली-खाली-सा लगता। मन होता कि हाथ में कसने के लिए एक और हाथ उसके पास हो—मिन्नी का पतली और चुभती उंगलियों वाला हाथ। कि हाथ के अलावा मिन्नी का पूरा शरीर भी पास मे हो—इकहरा, पर भरा हुआ शरीर—जिसके एक-एक हिस्से से अपने सिर और होंठों को रगड़ता हुआ वह अपने नाक-कान-गालों से उसकी सांसो का शब्द और उतार-चढाव महसूस कर सके। पर मिन्नी वहा नही थी—और उसके हाथ ही नही, पूरा अपना-आप खाली था। उसकी आंखें दर्द कर रही थीं और कनपटियों की नसें फड़क रही थी। अगर वह रात रात न होकर सुबह होती-एक दिन पहले की सुबह—वह अभी मिन्नी से बात करके उससे अलग न हुआ होता, और स्टैण्ड पर आकर अभी स्कूटर मे न बैठा होता···!

कोई चीज़ हलक मे चुभ रही थी—एक नोक की तरह। वह बार-बार थूक निगलकर उस चुभन को मिटा लेना चाहता। कभी-कभी उसे लगता कि किसी हाथ ने उसका गला दबोच रखा है और यह चुभन गले पर कसते नाखूनों की है। तब वह जैसे अपने को उन हाथों से छुड़ाने के लिए छटपटाने लगता। उसे अपने अन्दर से एक हौलनाक सी आवाज़ सुनाई देती—अपनी तेज चलती सांसों की आवाज। रात तब दिन मे और कमरा सडक मे घुल-मिल जाता और वह अपने को फूली सास और अकड़ी पिण्डलियों से बेतहाशा सड़क पर भागते पाता। सड़क है—सिर्फ सलेटी सडक—जिसका कोलतार जहा-तहां से पिघल रहा है। उस पर, जैसे उससे आगे-आगे, दो पैर है—उसके अपने पैर। जूते के फीते खुले हैं। पतलून के पायंचे जूते में अटक-अटक जाते है। पर वह सरपट भाग रहा है—जैसे जूते और पायंचो के ऊपर-ऊपर से। आगे एक-दूसरे मे गडमड मकान है, नालियां हैं, लोग हैं। सब उसके रास्ते में हैं—पर कोई भी, कुछ भी, उसके रास्ते में नही हैं। सिर्फ सड़क है, वह है, और भागना है···।

आख खुल जाती, तो बाहर बिजली चमकती दिखाई देती। फिर मूद जाती तो कोई चीज अन्दर कौंधने लगती।···एक जीने की सीढियो ने उसे रस्सियों की तरह लपेट रखा है। एक तेज धार का चाकू उन रस्सियो को काटता आता है। उसके पास आने से पहले ही उसकी धार जैसे शरीर में चुभने लगती है। यह उसकी पीठ है ··पीठ नहीं, छाती है। चाकू की नोक सीधी उसकी छाती की तरफ···नहीं, गले की तरफ···आ रही है। वह उस नोक से बचने के लिए अपना सिर पीछे हटा रहा है···पर पीछे आसमान

नहीं, दीवार है। वह कोशिश कर रहा है कि उसका सिर दीवार में गड़ जाए'''दीवार के अन्दर छिप जाए। पर दीवार दीवार नहीं रस्सियों का जाल है, और जाल के उस तरफ '''फिर वही चाकू की नोक है। जाल टूट रहा है। सीढ़ियां पैरों के नीचे से फिसल रही हैं। क्या वह किसी तरह सीढ़ियों में—रस्सियों में—उलझा रहकर अपने को नहीं बचा सकता?

आंख फिर खुल जाती, तो उसे तेज़ प्यास महसूस होती। पर जब तक वह उठने और पानी पीने की बात सोचता, तब तक आंख फिर झपक जाती।

चाप् चाप् चाप्'''।

जूते की आवाज़ फिर दरवाज़े के पास आ गई। वह कुर्सी पर सीधा हो गया।

"आप तैयार हैं?" सब-इन्स्पेक्टर ने अन्दर आकर पूछा।

उसने सिर हिलाया। उसे लग रहा था कि रात से अब तक उसने पानी पिया ही नहीं।

"तो अपनी कुर्सी ज़रा तिरछी कर लीजिए और बाहर की तरफ देखते रहिए। हम लोग अभी उसे लेकर आ रहे हैं," कहकर सब-इन्स्पेक्टर चला गया।

चाप् चाप् चाप्'''।

उसे लगा कि उसके हाथों की उंगलियां कांप रही हैं—ऐसे जैसे वे हाथों से ठीक से जुड़ी न हों।

साथ के कमरे में एक आदमी रो रहा था—धौल-धप्पे से कोई चीज़ उससे कबुलवाई जा रही थी।

क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर जैसे दीवार से थोड़ा आगे को हट आई थी—उसके और ज़मीन के बीच का फासला भी अब पहले जितना नहीं लग रहा था।

चाप् चाप् चाप—यह कई पैरों की मिली-जुली आवाज़ थी। साथ के कमरे में पिटाई चल रही थी: "बोल हरामज़ादे, तू किस रास्ते से घुसा था घर के अन्दर?" और इसके जवाब में आती आवाज़: "नहीं, मैं नहीं घुसा था। मैं तो उस घर की तरफ गया भी नहीं था'''।"

चार सिपाही कमरे के बाहर आ गए थे, और उनके बीच था वही सरदार—उसी तरह लुंगी के साथ मलमल का लम्बा कुरता पहने। हथकड़ी के बावजूद उसके हाथ बंधे हुए नहीं लग रहे थे।

पल-भर के लिए वाशी को लगा जैसे उसे उस आदमी का नाम भूल गया हो। कल दिन में कितनी ही बार, कितने ही लोगों के मुंह से, वह नाम सुना था। जिस किसी से बात हुई थी, वह उस आदमी को पहले से ही जानता था। अभी कुछ ही देर पहले उसने वह नाम अपनी हथेली पर लिखा था। क्या नाम था वह?

दरवाज़े के पास आकर वे लोग रुक गए थे—जैसे किसी चीज़ का पता करने के लिए। थानेदार और सब-इन्स्पेक्टर में से कोई उनके साथ नहीं था।

"कहां चलना है? इस तरफ?" कहता हुआ सरदार उसी दरवाज़े की तरफ बढ़ आया। अब वे दोनों आमने-सामने थे। चारों सिपाही पीछे चुपचाप खड़े थे।

वाशी को अचानक उसका नाम याद हो आया। नत्थासिंह। सुबह प्रायः सभी अखबारों में यह नाम पढ़ा था। तब उसे इस आदमी की सूरत याद नहीं आ रही थी। सोच रहा था कि उसे देखकर पहचान भी पाएगा या नहीं। पर अब वह सामने था, तो उसकी सूरत बहुत पहचानी हुई लग रही थी। जैसे कि वह उसे एक मुद्दत से जानता हो।

वह आदमी सीधी नज़र से उसकी तरफ देख रहा था—जैसे कि उसका चेहरा आखो में बिठा लेना चाहता हो। पर बाशी अपनी आंखें हटाकर दूसरी तरफ देखने की कोशिश कर रहा था—खिडकी की तरफ। खिड़की के बाहर पेड के पत्ते हिल रहे थे। पेड़ की डाल पर एक कौआ पंख फड़फड़ा रहा था।

वह एक लम्बा वक्फा था—खामोश वक्फा—जिसमे कि उसके कान ही नही गाल भी दहकने लगे। पैर में तेज़ खुजली उठ रही थी, फिर भी उसने उसे दूसरे पैर से दबाया नही। उसकी आखे खिड़की से हटकर ज़मीन मे धस गई और तब तक धंसी रही जब तक कि वह वक्फा गुजर नही गया। उन लोगो के चले जाने के कई क्षण बाद उसने आंखें दरवाज़े की तरफ मोडी। तब थानेदार अहाते में खडा सब-इन्स्पेक्टर को डांट रहा था, "मैंने तुमसे कहा नही था कि उसे यहा रोकना नही, चुपचाप दरवाजे के पास से निकालकर ले जाना ?"

सब-इन्स्पेक्टर अपनी सफाई दे रहा था कि कसूर उसका नही, सिपाहियो का है—उन लोगों ने, लगता है, बात ठीक से समझी नही।

थानेदार माफी मांगता हुआ उसके पास आया, और आश्वासन देकर कि उसे फिर भी डरना नही चाहिए, वे लोग उसकी हिफाज़त करेंगे, बोला, "उसे पहचान लिया है न, आपने ? यही आदमी था न जिसने आप पर चाकू चलाना चाहा था ?"

बाशी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। उठते हुए उसे लगा कि उसके घुटनों में खून जम गया है। उसे जैसे सवाल ठीक से समझ ही नही आया—वे जैसे अलग-अलग शब्द थे जिन्हे मिलाकर उसके दिमाग मे पूरा वाक्य नही बन पाया था।

"यह वही आदमी था न ?"

उसके पैरो मे पसीना आ रहा था। बगलो मे भी। साथ के कमरे मे ठुकाई करते हुए पूछा जा रहा था, "तू नही था, तो कौन था कुत्ते के बीज ? सीधे से बता दे—क्यो अपनी पसलिया तुड़वाता है ?" जवाब मे मार खानेवाला न जाने क्या कहने की कोशिश कर रहा था।

अब तक वाक्य उसके दिमाग मे स्पष्ट हो गया था। जो सवाल पूछा गया था, उसका जवाब उसे 'हा' मे देना था। यह बात पहले से ही तय थी—तब से ही जब कि उसे उस कमरे मे लाया गया था। वह आदमी वही है, यह सब जानते थे—वह भी, थानेदार भी और दूसरे लोग भी। फिर भी उसके 'हा' कहने पर ही सब कुछ निर्भर करता था।

उसने कमीज के निचले हिस्से से बगलो का पसीना पोछ लिया। फिर उसे खयाल आया कि वह दो दिन से नहाया नही है, और कि मिन्नी हमेशा उसे सुबह नहाकर न आने के लिए ताना देती है। आज सुबह मिन्नी ठीक वक्त पर वहा पहुंची होगी। उसके वहा न मिलने से उसने जाने क्या सोचा होगा !

उसे यह भी लग रहा था कि वह जाने कोट-टाई पहन कर क्यों आया है—उसे क्या थाने मे नौकरी के लिए दरख्वास्त देनी थी ?

"आप क्या सोच रहे हैं ?" थानेदार ने पूछा, "आपने उस आदमी को पहचाना नही ?"

यह एक नया विचार था। अगर सचमुच उसने उस आदमी को न पहचाना होता ?···और पहचानने के बाद भी इस वक्त अगर वह कह दे कि उसने नही पहचाना ?

पर इस विचार के दिमाग मे ठीक से बनने के पहले ही, पहले की तय की बात

उसके मुंह से निकल गई, "हां, वही आदमी है यह।"

जवाब सुनते ही थानेदार व्यस्ततापूर्वक वहां से हट गया। सब-इन्स्पेक्टर पल-भर उसकी तरफ देखता रहा, फिर यह कहकर कि 'अब आप घर जा सकते हैं। चाकू, शनाख्त के लिए, आपके पास वहीं भेज दिया जाएगा,' वह भी वहां से चला गया।

वह अपने मे उलझा हुआ थाने से बाहर आया। बाहर की तेज-खुली धूप में उसे अपना-आप बहुत असुरक्षित और नंगा-सा लगा। लगा, जैसे वह अपना बहुत कुछ उस कमरे मे छोड़ आया हो —कल तक का सारा संघर्ष, मिन्नी का चेहरा और आगे की सब योजनाएं। फुटपाथ, सड़क और खम्भे पहले कभी उसे इतने सपाट और नंगे नहीं लगे थे। सामने जो पहली इमारत नजर आ रही थी, और जिसकी ओट मे जाकर वह अपने को कुछ ढका हुआ महसूस कर सकता था, वह भी सौ गज से कम फासले पर नहीं थी। खुले में चारों तरफ से सबको दिखाई देते हुए, उतना फासला तय करना उसे असम्भव लग रहा था। 'अब मैं उस इलाके में नहीं रह पाऊंगा,' उसने सोचा। 'और वह घर छोड़ देना पड़ा, तो और कहां रहूंगा? नौकरी तो अब तक मिली नहीं...।'

उसने एक असहाय नजर से चारों तरफ देख लिया। एक खाली टैक्सी पीछे से आ रही थी। उसने जेब के पैसे गिने और हाथ देकर टैक्सी को रोक लिया। फिर चोर नजर से आस-पास देखकर उसमें बैठ गया। टैक्सी वाले को घर का पता देकर वह नीचे को झुक गया जिससे खिड़की के बाहर सिवाय सिर के, जिस्म का और कोई हिस्सा दिखाई न दे।

पैर में खुजली बहुत बढ़ गई थी। वह उसी तरह झुके-झुके कांपती उंगलियों से जूते का फीता खोलने लगा।

सुहागिनें

कमरे में दाखिल होते ही मनोरमा चौंक गई। काशी उसकी साड़ी का पल्ला सिर पर लिए ड्रेसिंग टेबल के पास खड़ी थी। उसके होंठ लिपस्टिक से रंगे थे और चेहरे पर बेहद पाउडर पुता था, जिससे उसका सांवला चेहरा डरावना लग रहा था। फिर भी वह मुग्धभाव से शीशे मे अपना रूप निहार रही थी। मनोरमा उसे देखते ही आपे से बाहर हो गई।

"माई," उसने चिल्लाकर कहा, "यह क्या कर रही है?"

काशी ने हड़बड़ाकर साड़ी का पल्ला सिर से हटा दिया और ड्रेसिंग टेबल के पास से हट गई। मनोरमा के गुस्से के तेवर देखकर पल-भर तो वह सहमी रही, फिर अपने स्वांग का ध्यान हो आने से हंस दी।

"बहनजी, माफी दे दें," उसने मिन्नत के लहजे में कहा, "कमरा ठीक कर रही थी, शीशे के सामने आई, तो ऐसे ही मन कर आया। आप मेरी तनखाह में से पैसे काट लेना।"

"तनखाह में से पैसे काट लेना!" मनोरमा और भी भड़क उठी, "पन्द्रह रुपये तनखाह है और बेगम साहब साढ़े छः रुपये लिपस्टिक के कटवाएंगी। कम्बख्त रोज प्लेटें तोड़ती है, मैं कुछ नहीं कहती। घी, आटा, चीनी चुराकर ले जाती है, और मैं देख कर भी नहीं देखती। सारा स्टाफ शिकायत करता है, कुछ काम नहीं करती, किसी का

कहा नहीं मानती। कमेटी के मेम्बर अलग मेरी जान खाते हैं कि इसे दफा करो, रोज-रोज अपना रोना लेकर हमारे यहां आ मरती है। मैं फिर भी तरह दे जाती हूं कि निकाल दिया, तो दर-बदर मारी-मारी न फिरे—और उसका तू मुझे यह बदला देती है? कमीनी कहीं की!"

उसने बेंत की कुर्सी को इस तरह अपनी तरफ खींचा, जैसे उसीने कोई अपराध किया हो, और उसपर बैठकर माथे को अपने ठण्डे हाथ से मल लिया। काशी चुपचाप रही।

"चालीस की होने को आई, मगर बांकपन की चाह अब भी बाकी है!" मनोरमा फिर बड़बड़ाई। "छिनाल कहीं की!"

सिर को झटककर उसने आंखें मूंद लीं। दिन-भर की स्कूल की बकझक से दिमाग वैसे ही खाली हो रहा था। शरीर भी थका था। वह उस समय पब्लिक लाइब्रेरी से होकर मिलिट्री लाइन्ज़ का बड़ा राउण्ड लगाकर आई थी। निकली यह सोचकर थी कि घूमने से मन में कुछ ताज़गी आएगी, मगर लौटते हुए मन पर अजब भारीपन छा गया था। क्वार्टर से आधी मील दूर थी जब सूरज डूब गया था। तब कुछ क्षणों के लिए उसे अपना-आप हल्का-हल्का-सा लगा था। हवा, पेड़ों के हिलते पत्ते और अस्तव्यस्त बिखरे बादलों के टुकड़े, हर चीज़ में एक मादक स्पर्श का अनुभव हुआ था। सड़क पर फैली सध्या की फीकी चांदनी धीरे-धीरे रंग पकड़ रही थी। वह साड़ी का पल्ला पीछे को कस कर कई कदम तेज-तेज चल गई। मगर टैंकी के मोड़ तक पहुंचते-पहुंचते सारा उत्साह गायब हो गया। जब स्कूल के गेट के पास पहुंची तो अन्दर पैर रखने को भी मन नहीं था। मगर उसने किसी तरह मन को बांधा और लोहे के गेट को हाथ से धकेल दिया। गर्ल्ज़ हाई स्कूल की हेड मिस्ट्रेस रात को देर तक सड़कों पर अकेली कैसे घूम सकती थी? बुझे मन से क्वार्टर की सीढ़ियां चढ़ी, तो यह माजरा सामने आ गया।

उसने आंखें खोलीं, तो काशी को उसी तरह खड़ी देखकर उसका गुस्सा और बढ़ गया। जैसे उसे आशा थी कि उसके आंखें बन्द करने और खोलने के बीच काशी सामने से हट जाएगी।

"अब खड़ी क्यों है?" उसने डांटकर कहा। "जा यहां से।"

काशी के चेहरे पर डांट का कोई खास असर दिखाई नहीं दिया। वह बल्कि पास आकर फर्श पर बैठ गई।

"बहनजी, हाथ जोड़ रही हूं, माफी दे दो।" उसने मनोरमा के पैर पकड़ लिए। मनोरमा पैर हटाकर कुर्सी से उठ खड़ी हुई।

"तुझसे कह दिया है इस वक्त चली जा, मुझे तंग न कर।" कहकर वह खिड़की की तरफ चली गई। काशी भी उठकर खड़ी हो गई।

"चाय बना दूं?" उसने कहा। "घूमकर थक गई होंगी।"

"तू जा, मुझे चाय-वाय नहीं चाहिए।"

"तो खाना ले आती हूं।"

मनोरमा कुछ न कहकर मुंह दूसरी तरफ किए रही।

"बहनजी, मिन्नत कर रही हूं माफी दे दो।"

मनोरमा चुप रही। सिर्फ उसने सिर को हाथ से दबा लिया।

"सिर में दर्द है तो सिर दबा देती हूं।" काशी अपने हाथ पल्ले से पोंछने लगी।

"तुझसे कह दिया है जा, मेरा सिर क्यों खा रही है?" मनोरमा ने चिल्लाकर कहा। काशी चोट खाई-सी पीछे हट गई। पल-भर अवाक् भाव से मनोरमा की तरफ

देखती रही। फिर निकलकर बरामदे में चली गई। वहां से कुछ कहने के लिए मुड़ी, मगर बिना कहे चली गई। जब तक लड़की के जीने पर उसके पैरों की आवाज सुनाई देती रही, मनोरमा खिड़की के पास खड़ी रही। फिर आकर सिर दबाए बिस्तर पर लेट गई।

उसे लगा इसमें सारा कसूर उसीका है। और कोई हेड मिस्ट्रेस होती, तो कब का इस औरत को निकालकर बाहर करती। वह जितना उसे तरह देती थी, उतना ही वह उसकी कमजोरी का फायदा उठाती थी। उसके बच्चों की भी वह कितनी शैतानियां बर्दाश्त करती थी! दिन-भर उसके क्वार्टर की सीढ़ियों पर शोर मचाते रहते थे और स्कूल के कम्पाउण्ड को गन्दा करते रहते थे। उसने एक बार उन्हें गोलियां ला दी थीं। तब से उसे देखते ही उसकी साड़ी से चिपटकर गोलियां मांगने लगते थे। उसने कितना चाहा था कि वे साफ रहना सीख जाएं। बड़ी लड़की कुन्ती की तो चड्डियां भी उसने अपने हाथ से सी दी थीं। मगर उससे कोई फर्क नहीं पड़ा। वे उसी तरह गंदे रहते थे और उसी तरह गुलगपाड़ा मचाए रखते थे। पिछली बार इन्स्पेक्शन के दिन उन्होंने कम्पाउंड के फर्श पर कोयले से लकीरें खींच दी थीं जिससे दूसरी बार सारे कम्पाउंड की सफाई करानी पड़ी थी। कई बार वे बाहर से आए अतिथियों के सामने जीभें निकाल देते थे। वही थी जो सब बर्दाश्त किए जाती थी।

कुछ देर वह छत की तरफ देखती रही। फिर उठकर बरामदे में चली गई। लकड़ी के बरामदे में अपने ही पैरों की आवाज से शरीर में कंपकंपी भर गई। उसने मुंडेर के खम्भे पर हाथ रख लिया। अहाते में खुली चांदनी फैली थी। ईंटों के फर्श पर सीमेंट की लकीरें एक इन्द्रजाल-सी लगती थीं। स्कूल के बरामदे में पड़े डेस्क-स्टूल और ब्लैक-बोर्ड ऐसे लग रहे थे जैसे डरावनी सूरतोंवाले भूत-प्रेत अपने गार के अन्दर से बाहर झांक रहे हों। देवदार का घना जंगल जैसे ठण्डी चांदनी के स्पर्श से सिहर रहा था। वैसे बिलकुल सन्नाटा था।

काशी के क्वार्टर में इस वक्त इतनी खामोशी कभी नहीं होती थी। आम तौर पर नौ-दस बजे तक उसके बच्चे चीखते-चिल्लाते रहते थे। उस समय लग रहा था जैसे उस क्वार्टर में कोई रहता ही न हो। रोशनदान में गत्ते लगे रहने से यह भी पता नहीं चल रहा था कि अन्दर लालटेन जल रही है या नहीं। मनोरमा ने खंभे को और भी अच्छी तरह थाम लिया जैसे पास में उसका वही एक आत्मीय हो जिसे वह अपने प्रति सचेत रखना चाहती हो। देवदारों के झुरमुटों में से गुजरती हवा की आवाज पास आई और दूर चली गई।

"कुन्ती!" मनोरमा ने आवाज दी।

उसकी आवाज को भी हवा दूर, बहुत दूर ले गई। जंगल की सरसराहट फिर एक बार बहुत पास चली आई। काशी के क्वार्टर का दरवाजा खुला और कुन्ती अपने में सिमटती-सी बाहर निकली। मनोरमा ने सिर के इशारे से उसे ऊपर आने को कहा। कुन्ती ने एक बार अपने क्वार्टर की तरफ देखा और—और भी सिमटती हुई ऊपर चली आई।

"तेरी मां क्या कर रही है?" मनोरमा ने कोशिश की कि उसकी आवाज रूखी न लगे।

"कुछ भी नहीं" कुन्ती ने सिर हिलाकर कहा।

"कुछ तो कर रही होगी···।"

"रो रही है।"

"क्यो, रो क्यों रही है ?"

कुन्ती चुप रही। मनोरमा भी चुप रहकर नीचे देखने लगी।

"तुम लोगों ने रोटी नही खाई ?" पल-भर रुककर उसने पूछा।

"रात की बस से बापू को आना है। मां कहती थी, सब लोग उसके आने पर ही रोटी खाएगे।"

मनोरमा के सामने जैसे सब कुछ स्पष्ट हो गया। तीन साल के बाद अजुध्या आ रहा है, यह बात काशी उसे बता चुकी थी। तभी आज आईने के सामने जाने पर उसके मन मे पाउडर और लिपस्टिक लगाने की इच्छा जाग आई थी। उसके बच्चे भी शायद इसलिए आज इतने खामोश थे। उनका बापू आ रहा था·· बापू · जिसे उन्होने तीन साल से देखा नही या, और जिसे शायद वे पहचानते भी नही थे। या शायद पहचानते थे—एक मोटी सख्त आवाज़ और तमाचे जडने वाले हाथों के रूप मे···।

"जा, और अपनी मां को ऊपर भेज दे," उसने कुन्ती का कंधा थपथपा दिया। "कहना, मैं बुला रही हूं।"

कुन्ती बाहें और कन्धे सिकोडे नीचे चली गई। थोड़ी देर में काशी ऊपर आ गई। उसकी आंखें लाल थी और वह बार-बार पल्ले से अपनी नाक पोंछ रही थी।

"मैंने जरा-सी बात कह दी और तू रोने लगी ?" मनोरमा ने उसे देखते ही कहा।

"बहनजी, नौकर-मालिक का रिश्ता ही ऐसा है !"

"गलत काम करने पर जरा भी कुछ कह दो तो तू रोने लगती है !" मनोरमा जैसे किसी टूटी हुई चीज़ को जोड़ने लगी। "जा, अन्दर गुसलखाने से हाथ-मुह धो आ।"

मगर काशी नाक और आंखें पोछती हुई वहीं खड़ी रही। मनोरमा एक हाथ से दूसरे हाथ की उंगलियां मसलने लगी। "अजुध्या आज आ रहा है ?" उसने पूछा।

काशी ने सिर हिला दिया।

"कुछ दिन रहेगा या जल्दी चला जाएगा ?"

"चिट्ठी मे तो यही लिखा है कि ठेका उठाकर चला जाएगा।"

मनोरमा जानती थी कि अजुध्या की खानदानी जमीन पर सेब के कुछ पेड़ हैं, जिनका हर साल ठेका उठता है। पिछले साल काशी ने सवा सौ मे ठेका दिया था और उससे पिछले साल डेढ़ सौ मे। पिछले साल अजुध्या ने उसे बहुत सख्त चिट्ठी लिखी थी। उसका ख्याल था कि काशी ठेकेदारो से कुछ पैसे अलग से लेकर अपने पास रख लेती है। इसलिए इस बार काशी ने उसे लिख दिया था कि ठेका उठाने के लिए वह आप ही वहा आए; वह रुपये-पैसे के मामले मे किसी की बात सुनना नही चाहती। पांच साल हुए अजुध्या ने उसे छोड़कर दूसरी औरत कर ली थी और उसे लेकर पठानकोट मे रहता था। वही उसने एक छोटी-सी परचून की दूकान डाल रखी थी। काशी को वह खर्च के लिए एक पैसा भी नही भेजता था।

"सिर्फ ठेका उठाने के लिए ही पठानकोट से आ रहा है ?" मनोरमा ने ऐसे कहा जैसे सोच कुछ और ही रही हो। "आधे पैसे तो उसके आने-जाने मे निकल जाएगे।"

"मैंने सोचा इस बहाने एक बार यहां हो जाएगा, और बच्चो से मिल जाएगा !" काशी की आवाज़ फिर कुछ भीग गई, "फिर उसकी तसल्ली भी हो जाएगी कि आज कल इन सेबो का डेढ सौ कोई नही देता।"

"अजीब आदमी है !" मनोरमा हमदर्दी के स्वर में बोली, "अगर सचमुच तू कुछ पैसे रख भी ले तो क्या है ? आखिर तू उसी के बच्चो को तो पाल रही है। चाहिए

तो यह कि हर महीने वह तुझे कुछ पैसे भेजा करे। उसकी जगह वह इस तरह की बातें करता है।"

"बहनजी, मर्द के सामने किसी का बस चलता है?" काशी की आवाज और भीग गई।

"तो तू क्यों उससे नहीं कहती कि···?" कहते-कहते मनोरमा ने अपने को रोक लिया। उसे याद आया कि कुछ दिन हुए एक बार सुशील की चिट्ठी आने पर काशी उससे इसी तरह की बातें पूछती रही थी जो उसे अच्छी नहीं लगी थीं। काशी ने कई सवाल पूछे थे—कि बाबूजी आप इतना कमाते हैं तो उससे नौकरी क्यों कराते हैं? कि उनके अभी तक कोई बच्चा-अच्चा क्यों नहीं हुआ? और कि वह अपनी तनखाह अपने ही पास रखती है या बाबूजी को भी कुछ भेजती है! तब उसने काशी की बातों को हंसकर टाल दिया था, मगर अपने अन्दर उसे महसूस हुआ था कि उसके मन की कोई बहुत कमज़ोर सतह उन बातों से छू गई है और उसका मन कई दिन तक उदास रहा था।

"रोटी ले आऊं?" काशी ने आवाज को थोड़ा सहेजकर पूछा।

"नहीं, मुझे अभी भूख नहीं है," मनोरमा ने काफी मुलायम स्वर में कहा जिससे काशी को विश्वास हो जाए कि अब वह बिलकुल नाराज नहीं है। "जब भूख लगेगी, मैं खुद ही निकालकर खा लूंगी। तू जाकर अपने यहां का काम पूरा कर ले, अजुध्या अब आनेवाला ही होगा। आखिरी बस नौ बजे पहुंच जाती है।"

काशी चली गई तो भी मनोरमा खंभे का सहारा लिए काफी देर खड़ी रही। हवा तेज़ हो गई थी। उसे अपने मन में बेचैनी महसूस होने लगी। उसे वे दिन याद आए जब ब्याह के बाद वह और सुशील साथ-साथ पहाड़ों पर घूमा करते थे। उन दिनों लगता था कि उस रोमांच के सामने दुनिया की हर चीज हेच है। सुशील उसका हाथ भी छू लेता तो शरीर में एक ज्वार उठ आता था और रोयां-रोयां उस ज्वार में बह चलता था। देवदार के जंगल की सारी सरसराहट जैसे शरीर में भर जाती थी। अपने को उसके शरीर में खो देने के बाद जब सुशील उससे दूर हटने लगता तो वह उसे और भी पास कर लेना चाहती थी। वह कल्पना में अपने को एक छोटे-से बच्चे को अपने में लिए हुए देखती और पुलकित हो उठती। उसे आश्चर्य होता कि क्या सचमुच एक हिलती-डुलती काया उसके शरीर के अंदर से जन्म ले सकती है। कितनी बार वह सुशील से कहती थी कि वह आश्चर्य को अपने अंदर अनुभव करके देखना चाहती है। मगर सुशील इसके हक में नहीं था। वह नहीं चाहता था कि अभी कुछ साल वे एक बच्चे को घर में आने दें। उससे एक तो उसका फिगर खराब होने का डर था, फिर उसकी नौकरी का भी सवाल था। सुशील नहीं चाहता था कि वह नौकरी छोड़कर बस घर-गृहस्थी के लायक ही हो रहे। साल-छः महीने में सुशील को अपनी बहन उम्मी का ब्याह करना था। उसके दो छोटे भाई कॉलेज में पढ़ रहे थे। उन दिनों उनके लिए एक-एक पैसे की अपनी कीमत थी। वह कम से कम चार-पांच साल एहतियात से चलना चाहता था। हज़ार चाहने पर भी वह सुशील के सामने हठ नहीं कर सकी थी। मगर जब भी सुशील के हाथ उसके शरीर को सहला रहे होते तो एक अज्ञात शिशु उसकी बांहों में आने के लिए मचलने लगता। वह जैसे उसकी किलकारियां सुनती और उसके कोमल शरीर के स्पर्श का अनुभव करती। ऐसे क्षणों में कई बार सुशील का चेहरा उसके लिए बच्चे का चेहरा बन जाता और वह उसे अच्छी तरह अपने साथ सटा लेती। उसका मन होता कि उसे थपथपाए और लोरियां दे।

सुशील की चिट्ठी आए इस बार बहुत दिन हो गए थे। उसने उसे लिखा भी था कि वह जल्दी जवाब दिया करे, क्योंकि उसकी चिट्ठी न आने से अपना अकेलापन उसके लिए असह्य हो जाता है। कई दिनों से वह सोच रही थी कि सुशील को दूसरी चिट्ठी लिखे, मगर स्वाभिमान उसे इससे रोकता था। क्या सुशील को इतनी फुर्सत भी नहीं थी कि उसे कुछ पंक्तियां ही लिख दे?

हवा का तेज़ झोंका आया। देवदारों की सरसराहट कई-कई घाटियां पार करती दूर के आकाश में जाकर खो गई। सामने की पहाड़ी के साथ-साथ रोशनी के दो दायरे रेंगते आ रहे थे। शायद पठानकोट से आखिरी बस आ रही थी। चांदनी में गेट की मोटी सलाखें चमक रही थीं। हवा धक्के दे-देकर जैसे गेट का ताला तोड़ देना चाहती थी। मनोरमा ने एक लंबी सांस ली और अंदर को चल दी। वह अपने को उस समय रोज़ से कहीं ज्यादा अकेली महसूस कर रही थी।

अगली शाम मनोरमा घूमकर लौटी, तो कम्पाउण्ड में दाखिल होते ही ठिठक गई। काशी के क्वार्टर से बहुत शोर सुनाई दे रहा था। अजुध्या ज़ोर से गाली बकता हुआ काशी को पीट रहा था। काशी गला फाड़-फाड़कर रो रही थी। मनोरमा गुस्से से भन्ना उठी। कमेटी के नियम के मुताबिक किसी मर्द को स्कूल की चारदीवारी में रात को ठहरने की इजाज़त नहीं थी। उसने खास रियायत करके उसे वहां ठहरने की इजाज़त दी थी। और वह आदमी था कि वहां रहकर इस तरह की हरकत कर रहा था! मनोरमा का ध्यान काशी को पड़ती मार की तरफ नहीं गया, इसी तरफ गया कि जो कुछ हो रहा है, उसमें स्कूल की बदनामी है और स्कूल की बदनामी का मतलब है हेड-मिस्ट्रेस की बदनामी…।

वह तेज़ी से क्वार्टर की सीढ़ियां चढ़ गई। खट्-खट्-खट्—उसके सैंडिल लकड़ी के जीने पर आवाज़ कर उठे। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। काशी को बुलाकर कहे कि अजुध्या को फौरन वहां से भेज दे? या अजुध्या को ही बुलाकर डांटे और कहे कि वह सुबह होने तक वहां से चला जाए?

बरामदे में पैर रखते ही उसने देखा कि कुन्ती एक कोने में सहमी-सी बैठी है और डरी हुई आंखों से नीचे की तरफ देख रही है। जैसे उनकी मां को पड़ती मार की चोट उसे भी लग रही हो। मनोरमा सोच नहीं सकी कि वह लड़की उस वक्त उसके क्वार्टर में क्यों बैठी है।

"क्या बात है?" उसने अपना गुस्सा दबाकर पूछा।

"मां ने कहा था आपको रोटी खिला दूं…।" कुन्ती उसकी तरफ इस तरह डरी-डरी आंखों से देखने लगी जैसे उसे आशंका हो कि बहनजी अभी उसे बांह से पकड़ लेंगी और पीटने लगेंगी।

"तू मुझे रोटी खिलाएगी?"

कुन्ती ने उसी डरे हुए भाव से सिर हिला दिया।

"तुम्हारे क्वार्टर में यह क्या हो रहा है?" मनोरमा ने ऐसे पूछा जैसे जो हो रहा था, उसके लिए कुन्ती भी कुछ हद तक उत्तरदायी हो। कुन्ती के होंठ फड़कने लगे और दो बूंदें आंखों से नीचे बह आईं।

"वह किस बात के लिए तेरी मां को पीट रहा है?" मनोरमा ने फिर पूछा।

कुन्ती ने कमीज़ से आंखें पोंछीं और अपनी रुलाई दबाए हुए बोली "उसने मां के ट्रंक से सारे पैसे निकाल लिए हैं। मां ने उसका हाथ रोका, तो उसे पीटने लगा।"

"इस आदमी का दिमाग खराब है!" मनोरमा गुस्से से भड़क उठी। "अभी यहां से निकालकर बाहर करूंगी तो इसके होश दुरुस्त हो जाएंगे।"

कुन्ती कुछ देर सुबकती रही। फिर बोली, "कहता है, मां ने ठेकेदारों से अलग से पैसे ले-लेकर अपने पास जमा किए हैं। इस बार उसने दो सौ में ठेका दिया है। मा के पास अपने साठ-सत्तर रुपये थे। वे सब उसने ले लिए हैं।"

कुन्ती के भाव मे कुछ ऐसी दयनीयता थी कि मनोरमा ने उसके मैले कपड़ो की चिन्ता किए बिना उसे अपने से सटा लिया।

"रोती क्यो है?" उसने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा। "मैं अभी उससे तेरी मा के रुपये ले दूगी। तू चल अंदर।"

रसोईघर मे जाकर मनोरमा ने खुद कुन्ती का मुह धो दिया और मोढ़ा लेकर बैठ गई। कुन्ती ने प्लेट मे रोटी दे दी, तो वह चुपचाप खाने लगी। वही खाना काशी ने बनाया होता, तो वह गुस्से से चिल्ला उठती। सब चपातियों की सूरतें अलग-अलग थी, और वे आधी कच्ची और आधी जली हुई थी। दाल के दाने पानी से अलग थे। मगर उस वक्त वह मशीनी ढग से रोटी के कौर तोडती और दाल मे भिगोकर निगलती रही—उसी तरह जैसे रोज़ दफ्तर मे बैठकर कागज़ों पर दस्तखत करती थी, या अध्यापिकाओं की शिकायतें सुनकर उन्हें जवाब दती थी। कुन्ती ने बिना पूछे एक और रोटी उसकी प्लेट मे डाल दी, तो वह थोडा चौंक गई।

"नही, और नही चाहिए," कहते हुए उसने इस तरह हाथ बढा दिया, जैसे रोटी अभी प्लेट मे पहुची न हो। फिर अनमने भाव से छोटे-छोटे कौर तोड़ने लगी।

नीचे शोर बन्द हो गया था। कुछ देर बाद गेट के खुलने और बन्द होने की आवाज़ सुनाई दी। उसने सोचा कि अजुध्या कही बाहर जा रहा है। कुन्ती रोटीवाला डब्बा बद कर रही थी। वह उससे बोली, "नीचे जाकर अपनी मा से कह देना कि गेट को वक्त से ताला लगा दे। रात-भर गेट खुला न रहे।"

कुन्ती चुपचाप सिर हिलाकर काम करती रही।

"और कहना कि थोड़ी देर मे ऊपर हो जाए।"

उसका स्वर फिर रूखा हो गया था। कुन्ती ने एक बार इस तरह उसकी तरफ देखा जैसे वह उसकी किताब का एक मुश्किल सबक हो जो बहुत कोशिश करने पर भी समझ में न आता हो। फिर सिर हिलाकर काम में लग गई।

रात को काफी देर तक काशी मनोरमा के पास बैठी रही। उसे इस बात की उतनी शिकायत नही थी कि अजुध्या ने उसके ट्रंक से उसके रुपये निकाल लिए, जितनी इस बात की थी कि अजुध्या तीन साल बाद आया भी तो बच्चो के लिए कुछ लेकर नही आया। वह उसे बताती रही कि उसकी सौत ने किसी सत से वशीकरण ले रखा है। तभी अजुध्या उसकी कोई बात नही टालता। वह जिस ज्योतिषी से पूछने गई थी, उसने उसे बताया था कि अभी सात साल तक वह वशीकरण नही टूट सकता। मगर उसने यह भी कहा था कि एक दिन ऐसा ज़रूर आएगा जब उसकी सौत के बच्चे उसके बच्चो का जूठा खाएंगे और उनके उतरे हुए कपड़े पहनेंगे। वह उसी दिन की आस पर जी रही थी।

मनोरमा उसकी बातें सुनती हुई भी नही सुन रही थी। उसके मन मे रह-रहकर यह बात कौंध जाती थी कि सुशील की चिट्ठी नही आई⋯उसकी चिट्ठी गए महीने के करीब हो गया, मगर सुशील ने जवाब नही दिया⋯। उसके बालों को एक

लट उड़कर माथे पर आ गई थी। वह हल्का-हल्का स्पर्श उसके शरीर में विचित्र-सी सिहरन भर रहा था। कुछ क्षणों के लिए वह भूल गई कि काशी उसके सामने बैठी है और बातें कर रही है। माथे की लट हिलती तो उसे लगता कि वह एक बच्चे के कोमल रोयों को छू रही है। उसे उन दिनों की याद आई जब सुशील की उंगलियां देर-देर तक उसके सिर के बालों से खेलती रहती थीं, और बार-बार उसके होंठ उसके शरीर के हर धड़कते भाग पर झुक आते थे···। इस बार सुशील ने चिट्ठी लिखने में न जाने क्यों इतने दिन लगा दिए थे। रोज़ डाक से कितनी-कितनी चिट्ठियां आती थीं। मगर सारी डाक हेड मिस्ट्रेस के नाम की ही होती थीं। कई दिनों से मनोरमा सचदेव के नाम कोई भी चिट्ठी नहीं आई थी···। वह इस बार छुट्टियों के बाद आते हुए सुशील से कहकर आई थी कि जल्दी ही उसके लिए एक गर्म कोट का कपड़ा भेजेगी। उम्मी के लिए भी एक शाल भेजने को उसने कहा था। सुशील कहीं इसलिए तो नाराज़ नहीं था कि वह दोनों में से कोई भी चीज़ नहीं भेज पाई थी ?

काशी उठकर जाने लगी, तो मनोरमा को फिर अपने अकेलेपन के एहसास ने घेर लिया। देवदार के जंगल की घनी सरसराहट, दूर की घाटी में रावी के पानी पर चमकती चांदनी और उसकी उनींदी आंखें—इन सबमें जैसे कोई अदृश्य सूत्र था, काशी बरामदे के पास पहुंच गई तो उसने उसे वापस बुला लिया और कहा कि वह गेट को ठीक से ताला लगाकर सोए और जानकर कुन्ती को उसके पास भेज दे—आज वह वहां उसके पास सो रहेगी।

आधी रात तक उसे नींद नहीं आई। खिड़की से दूर तक धुला-निखरा आकाश दिखाई देता था। हवा का ज़रा-सा झोंका आता, तो चीड़ों और देवदारों की पंक्तियां तरह-तरह की नृत्य-मुद्राओं में बांहें हिलाने लगतीं। पत्तों और टहनियों पर से फिसलकर आती हवा का शब्द शरीर को इस तरह रोमांचित करता कि शरीर में एक जड़ता-सी छा जाती। कुछ देर वह खिड़की की सिल पर सिर रखे चारपाई पर बैठी रही। क्षण-भर के लिए आंखें मुंद जातीं, तो खिड़की की सिल सुशील की छाती का रूप ले लेती। उसे महसूस होता कि हवा उसे दूर, बहुत दूर लिए जा रही है—चीड़ों-देवदारों के जंगल और रावी के पानी के उस तरफ···। जब वह खिड़की के पास से हटकर चारपाई पर लेटी, तो रोशनदार से छनकर आती चांदनी का एक चौकोर टुकड़ा साथ की चारपाई पर सोई कुन्ती के चेहरे पर पड़ रहा था। मनोरमा चौंक गई। कुन्ती पहले कभी उसे उतनी सुंदर नहीं लगी थी। उसके पतले-पतले होंठ आम की लाल-लाल नन्हीं पत्तियों की तरह खुले थे। उसे और पास से देखने के लिए वह कुहनियों के बल उसकी चारपाई पर झुक गई। फिर सहसा उसने उसे चूम लिया। कुन्ती सोई-सोई एक बार सिहर गई।

मनोरमा तकिये पर सिर रखे देर तक छत की तरफ देखती रही। जब हल्की-हल्की नींद आंखों पर छाने लगी, तो वह गेट के खुलने और बन्द होने की आवाज़ से चौंक गई। कुछ ही देर में काशी के क्वार्टर से फिर अजुध्या के बड़बड़ाने की आवाज़ सुनाई देने लगी। वह उस समय शराब पिए हुए था। मनोरमा के शरीर में फिर एक गुस्से की झुरझुरी उठी। उसने अच्छी तरह अपने को कम्बलों में लपेटकर उस आवाज़ को भुला देने का प्रयत्न किया। मगर नींद आ जाने पर भी वह आवाज़ उसके कानों में गूंजती रही···।

दो दिन बाद अजुध्या चला गया, तो मनोरमा ने आराम की सांस ली। उसे रह-रहकर लगता था कि किसी भी क्षण वह अपने पर काबू खो देगी, और चपरासी से धक्के दिलाकर उस आदमी को स्कूल के कम्पाउन्ड से निकलवा देगी। वह आदमी शक्ल

से ही कमीना नजर आता था। उसके बड़े-बड़े मैले दांत, काले होंठ और खूंखार जानवर जैसी चुभती आंखें देखकर लगता था कि उस आदमी को ऐसी शक्ल के लिए ही उम्र-कैद की सजा होनी चाहिए। उसके चले जाने के बाद उसका मन काफी हल्का हो गया। दफ्तर के कुछ काम जो वह कई दिनों से टाल रही थी, उसने उसी दिन बैठकर पूरे कर दिए। उस दिन शाम की डाक से उसे सुशील की चिट्ठी भी मिल गई।

उसने चिट्ठी दफ्तर में नहीं खोली। स्टेनो से और चिट्ठियों का डिक्टेशन अगले दिन लेने के लिए कहकर क्वार्टर में चली आई। चारपाई पर बैठकर उसने पेपर नाइफ से धीरे-धीरे लिफाफा खोला—जैसे उसे चोट न पहुंचाना चाहती हो। चिट्ठी दफ्तर के कागज पर बहुत जल्दी-जल्दी लिखी गई थी। मनोरमा को अच्छा नहीं लगा, मगर फिर भी उसने एक-एक पंक्ति उत्सुकता के साथ पढ़ी। सुशील ने लिखा था कि जल्दी ही एक जगह उम्मी की सगाई तय हो रही है। लड़का अच्छी नौकरी पर है, सभी ने यह रिश्ता पसन्द किया है। हो सके तो वह उम्मी की शाल जल्दी भेज दे। अब उम्मी के ब्याह के लिए भी उन लोगों को कुछ पैसे बचाकर रखने चाहिए। अन्त में उसने उसे अपनी सेहत का ध्यान रखने को लिखा था। मधुर आलिंगन तथा अनेकानेक चुम्बनों के साथ चिट्ठी समाप्त हुई थी।

मनोरमा काफी देर चिट्ठी हाथ में लिए बैठी रही। उसे पढ़कर मधुर आलिंगन और अनेकानेक चुम्बनों का कुछ भी स्पर्श महसूस नहीं हुआ था। ऐसे लगा था जैसे वह एक चश्मे से पानी पीने के लिए झुकी हो और उसके होंठ गीले रेत से छूकर रह गए हों, चिट्ठी उसने ड्राअर में डाल दी और दफ्तर में लौट गई।

रात को खाना खाने के बाद वह चिट्ठी का जवाब लिखने बैठी। मगर कलम हाथ में लेते ही दिमाग जैसे बिलकुल खाली हो गया। उसे लगा कि उसके पास लिखने के लिए कुछ भी नहीं है। पहली पंक्ति लिखकर वह देर तक कागज को नाखून से कुरेदती रही। आखिर बहुत सोचकर उसने कुछ पंक्तियां लिखीं। पढ़ने पर उसे लगा कि वह चिट्ठी उन चिट्ठियों से खास अलग नहीं, जो वह दफ्तर में बैठकर क्लर्क को डिक्टेट कराया करती है। चिट्ठी में बात इतनी ही थी कि उसे इस बात का अफसोस है कि वह शाल और कोट का कपड़ा अभी नहीं भेज पाई। जल्दी ही वह ये दोनों चीज़ें भेज देगी। और अंत में उसकी तरफ से भी मधुर आलिंगन और अनेकानेक चुम्बन'''।

रात को वह देर तक सोचती रही कि कौन-कौन-सा खर्च कम करके वह चालीस-पचास रुपया महीना और बचा सकती है। दूध पीना बन्द कर दे? कपड़े खुद धोया करे? काशी से काम छुड़ाकर रोटी खुद बनाया करे? ज्यादा खर्च तो काशी की वजह से ही होता था। वह चीज़ें मांगकर भी ले जाती थी और चुराकर भी। मगर उसने पहले भी आजमाकर देखा था कि वह स्कूल का काम करती हुई साथ अपनी रोटी नहीं बना सकती। ऐसे मौकों पर या तो वह दूध-डबल रोटी खाकर रह जाती थी या कुछ भी छौंक-भूनकर पेट भर लेती थी।

अगले दिन से उसने खाने-पीने में कई तरह की कटौतियां कर दीं। काशी से कह दिया कि दूध वह सिर्फ चाय के लिए ही लिया करे और दाल-सब्जी में घी बहुत कम इस्तेमाल किया करे। बिस्कुट और फल भी उसने बंद कर दिए। कुछ दिन तो वक्त के उत्साह में निकल गए, मगर फिर उसे अपने स्वास्थ्य पर इन कटौतियों का असर दिखाई देने लगा। दो बार क्लास में पढ़ाते हुए उसे चक्कर आ गया। मगर उसने अपना हठ नहीं छोड़ा। उस महीने की तनखाह मिलने पर उसने शाल के लिए चालीस रुपये अलग रख दिए। रुपये रखते समय उसके चेहरे का भाव ऐसा था जैसे सुशील उसके

सामने खड़ा हो और वह उसे चिढाना चाहती हो कि देख लो, इस तरह की बचत से शाल और कोट के कपड़े खरीदे जाते हैं। उसके स्वभाव मे वैसे भी कुछ चिड़चिड़ापन आ गया था। वह बात-बेबात हर एक पर भल्ला उठती थी।

एक दिन स्कूल जाने से पहले वह आईने के सामने खड़ी हुई, तो कुछ चौंक गई। उसे लगा कि उसके चेहरे का रंग काफी पीला पड़ गया है। उस दिन दफ्तर में बैठे हुए उसके सिर में सख्त दर्द हो आया और वह बारह बजे से पहले ही उठकर क्वार्टर में आ गई। बरामदे मे पहुचकर उसने देखा कि काशी उसके पैरों की आवाज सुनते ही जल्दी से अलमारी बंद करके चूल्हे की तरह गई है। उसने रसोईघर मे जाकर अलमारी खोल दी।

घी का डब्बा खुला पड़ा था और उसमे उगलियों के निशान बने थे। मनोरमा ने काशी की तरह देखा। उसके मुंह पर कच्चे घी की कनियां लगी थी और वह ओट करके अपनी उंगलिया दोपट्टे से पोंछ रही थी। मनोरमा एकदम आपे से बाहर हो गई। पास जाकर उसने उसे चोटी से पकड़ लिया।

"चोट्टी!" उसने चिल्लाकर कहा। "मैं इसीलिए सूखी सब्जी खाती हू कि तू कच्चा घी हजम किया करे? शरम नही आती कमजात? जा, अभी निकल जा यहा से। मैं आज से तेरी सूरत भी नही देखना चाहती।" उसने उसकी पीठ पर एक लात जमा दी, काशी औंधे मुह गिरने को हुई, मगर अपने हाथों के सहारे संभल गई। पल-भर वह दर्द से आखें मूदे रही। फिर उसने मनोरमा के पैर पकड लिए। मुह से उससे कुछ नही कहा गया।

"मैं तुझे चौबीस घंटे का नोटिस दे रही हू," मनोरमा ने पैर छुड़ाते हुए कहा। "कल इस वक्त तक स्कूल का क्वार्टर खाली हो जाना चाहिए। सुबह ही क्लर्क तेरा हिसाब कर देगा। उसके बाद तूने इस कम्पाउंड में कदम भी रखा तो···।" और वह हटकर वहा से आने लगी। काशी ने बढकर फिर उसके पैर पकड लिए।

"बहनजी, पैर छू रही हूं, माफी दे दो," उसने मुश्किल से कहा। मनोरमा ने फिर भी पैर भटके से छुड़ा लिए। उसका एक पैर पीछे पड़ी चायदानी को जा लगा, चायदानी टूट गई। बिखरते हुए टुकड़ों की आवाज ने क्षण-भर के लिए दोनों को स्तब्ध कर दिया। फिर मनोरमा ने अपना निचला होठ काटा और दनदनाती हुई वहा से निकल गई। कमरे में आकर उसके माथे पर बाम लगाया और सिर-मुंह लपेटकर लेट गई।

शाम की डाक से फिर सुशील की चिट्ठी मिली। उसमे वही सब बातें थी। उम्मी की सगाई हो गई थी। पिछले इतवार वे लोग उस लड़के के साथ पिकनिक पर गए थे। उम्मी ने एक कोने मे कुछ पंक्तियां लिखकर खुद अपनी शाल के लिए अनुरोध किया था। साथ यह भी लिखा था कि भाभी को सब लोग बहुत-बहुत याद करते हैं। पिकनिक के दिन तो उन्होने उसे बहुत ही मिस किया।

चिट्ठी पढ़ने के बाद वह बड़े राउंड पर घूमने निकल गई। मन में बहुत झुंझलाहट भर रही थी। उसे समझ नही आ रहा था कि वह झुंझलाहट काशी पर है, अपने पर या सुशील पर। न जाने क्यो उसे लगा कि सड़क पर कंकड़-पत्थर पहले से कही ज्यादा है, और वह गोल सडक न जाने कितनी लम्बी हो गई है। रास्ते में दो बार उसे थककर पत्थरों पर बैठना पडा। घर से एक-डेढ फरलांग पहले उसकी चप्पल टूट गई। वह रास्ता बहुत मुश्किल से कटा। उसे लगा न जाने कब से वह घिसटती हुई उस गोल सडक पर चल रही है और आगे भी न जाने कब तक उसे इसी तरह चलते रहना है···।

गेट के पास पहुचकर सुबह की घटना फिर उसके दिमाग मे ताजा हो आई। काशी के क्वार्टर मे फिर खामोशी छाई थी। मनोरमा को एक क्षण के लिए ऐसा महसूस हुआ कि काशी क्वार्टर खाली करके चली गई है, और उस बड़े कम्पाउंड मे उस समय वह बिलकुल अकेली है। उसका मन सिहर गया। उसने कुन्ती को आवाज़ दी। कुन्ती लालटेन लिए अपने क्वार्टर से बाहर निकल आई।

"तेरी मा कहा है ?" मनोरमा ने पूछा।

"अन्दर है," और कुन्ती ने एक बार अन्दर की तरफ देख लिया।

"क्या कर रही है ?"

"कुछ नही कर रही। बैठी है।"

मनोरमा ने देखा, काशी का क्वार्टर काफी खस्ता हालत मे है। दरवाज़े का चौखट काफी कमजोर पड़ गया था जिससे दरवाज़ा निकलकर बाहर आ जाने को था। रोज़ वह उस क्वार्टर के सामने से कई-कई बार गुजरती थी, रोज़ ही उस दरवाज़े को देखती थी, मगर पहले कभी उसका ध्यान उस पर नही रुका था।

"इस क्वार्टर में काफी मरम्मत की ज़रूरत है," कहकर वह जैसे क्वार्टर का मुआइना करने के लिए अन्दर चली गई। काशी उसे देखते ही उठकर उसके पास आ गई। मनोरमा ने एक बार उसकी तरफ देख लिया मगर उससे कोई बात नही की। क्वार्टर की दीवारें पीली पड़कर अब स्याह होने लगी थी। एक रोशनदान भी दीवार से निकलकर नीचे गिर आने को था। छत मे चारों तरफ मकड़ी के जाले लगे थे जो आपस में मिलकर एक बडे-से चदोवे का रूप लिए थे। कमरे मे जो थोड़ा-बहुत सामान था, वह इधर-उधर अस्त-व्यस्त पडा था। एक तरफ तीन बच्चे एक ही [illegible] वही पानी जैसी दाल थी जो एक [illegible]

[illegible] कमरे में घूम रही थी। [illegible] लिपटा एक कोने में लेटा था।

"परसू को क्या हुआ है ? बीमार है ?" मनोरमा ने बिना काशी की तरफ देखे जैसे दीवार से पूछा और बच्चे के पास चली गई। परसू अपने पैर के अगूठे की सीध मे देखने लगा।

"इसे सूखा हो गया है," काशी ने धीरे से कहा।

मनोरमा ने बच्चे के गालों को सहलाया और उसके सिर पर हाथ फेर दिया।

"डाक्टर को दिखाया है ?" उसने पूछा।

"दिखाया था," काशी ने कहा। "उसने दस टीके बताए हैं। दो-दो रुपये का एक टीका आता है।" बोलते-बोलते उसका गला भर आया।

"लगवाए नही ?" अब मनोरमा ने उसकी तरफ देखा।

"कैसे लगवाती ?" काशी की आखें ज़मीन की तरफ झुक गईं। "जितने रुपये थे वे सब तो वह निकालकर ले गया था।...मैं इसे कांसे की कटोरी मलती हू। कहते हैं, उससे ठीक हो जाता है।"

बच्चा बिटर-बिटर उन दोनों की तरफ देख रहा था। मनोरमा ने एक बार फिर उसके गाल को सहला दिया और बाहर चल दी। कुन्ती दहलीज़ के पास खड़ी थी। वह रास्ता छोड़कर हट गई।

"इस क्वार्टर मे अभी सफेदी होनी चाहिए," मनोरमा ने चलते-चलते कहा, "यहां की हवा मे तो अच्छा-भला आदमी बीमार हो सकता है।"

काशी के क्वार्टर से निकलकर वह धीरे-धीरे अपने क्वार्टर का ज़ीना चढ़ी। ठक्-ठक् की आवाज, अकेला बरामदा, कमरा। कमरे में जो चीजें वह बिखरी छोड़ गई थी, वे अब करीने से रखी थीं। बीच की मेज़ पर रोटी की ट्रे ढककर रख दी गई थी। केतली में पानी भरकर स्टोव पर रख दिया गया था। कोट उतारकर शाल ओढ़ते हुए उसने बरामदे में पैरों की आवाज़ सुनी। काशी चुपचाप आकर दरवाज़े के पास खड़ी हो गई।

"क्या बात है?" मनोरमा ने रूखी आवाज़ में पूछा।

"रोटी खिलाने आई हूं," काशी ने धीमी ठहरी हुई आवाज़ में कहा। "चाय का पानी भी तैयार है। कहें तो पहले चाय बना दूं।"

मनोरमा ने एक बार उसकी तरफ देखा और आंखें हटा लीं। काशी ने कमरे में आकर प्लग का बटन दबा दिया। पानी आवाज़ करने लगा।

मनोरमा एक किताब लेकर बैठ गई। थोड़ी देर में काशी चाय का प्याला बनाकर उसके पास ले आई। मनोरमा ने किताब बन्द कर दी और हाथ बढ़ाकर प्याली ले ली। काशी के होंठों पर सूखी-सी मुसकराहट आ गई।

"बहनजी, कभी नौकर से गलती हो जाए तो इतना गुस्सा नहीं करते," उसने कहा।

"रहने दे ये सब बातें," मनोरमा ने झिड़ककर कहा। "आदमी से एक बार बात कही जाए तो उसे लग जाती है। मगर तेरे जैसे लोग भी हैं जिन्हें बात कभी छूती ही नहीं। बच्चे सूखी दाल-रोटी खाकर रहते हैं और मां को खाने को कच्चा घी चाहिए। ऐसी मां किसी ने नहीं देखी होगी।"

काशी का चेहरा ऐसे हो गया जैसे किसी ने उसे अन्दर से चीर दिया हो। उसकी आंखों में आंसू भर आए।

"बहनजी, इन बच्चों को पालना न होता, तो मैं आज आपको जीती नज़र न आती," उसने कहा। "एक अभागा भूखे पेट से जन्मा था, वह सूखे से पड़ा है। अब दूसरा भी उसी तरह आएगा तो उसे जाने क्या रोग लगेगा!"

मनोरमा को जैसे किसी ने ऊंचे से धकेल दिया। चाय के घूंट भरते हुए भी उसके शरीर में कई ठंडी सिरहनें भर गईं। वह पल-भर चुप रहकर काशी की तरफ देखती रही।

"तेरे पैर फिर भारी हैं?" उसने ऐसे पूछा जैसे उसे इस पर विश्वास ही न आ रहा हो।

काशी के चेहरे पर जो भाव आया उसमें नई ब्याहता का-सा संकोच भी था और एक हताश झुंझलाहट भी। उसने सिर हिलाया और एक ठण्डी सांस लेकर दरवाज़े की तरफ देखने लगी। मनोरमा को पल-भर के लिए लगा कि अजुध्या उसके सामने खड़ा मुसकरा रहा है। उसने चाय की प्याली पीकर रख दी। काशी प्याली उठाकर बाहर ले गई। मनोरमा को लगा कि उसकी बांहें ठंडी होती जा रही हैं। उसने शाल को पूरा खोलकर अच्छी तरह लपेट लिया। काशी बाहर से लौट आई।

"रोटी कब खाएंगी?" उसने पूछा।

मगर मनोरमा ने जवाब देने की जगह उससे पूछ लिया, "डाक्टर ने कहा था कि दस टीके लगवाने से बच्चा ठीक हो जाएगा?"

काशी ने खामोश रहकर सिर हिलाया और दूसरी तरफ देखने लगी। "मैं तुझे बीस रुपये दे रही हूं," मनोरमा ने कुरसी से उठते हुए कहा। "कल जाकर टीके ले

आना।"

उसने ट्रंक से अपना बटुआ निकाला और बीस रुपये निकालकर मेज़ पर रख दिए। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसकी बाहें इस कदर ठंडी क्यों हो गई हैं। उसने बाहों को अच्छी तरह अपने मे सिकोड लिया।

खाना खाने के बाद वह देर तक बरामदे में कुर्सी डालकर बैठी रही। उसे महसूस हो रहा था कि उसके सारे शरीर में एक अजीब-सी सिहरन दौड रही है। वह ठीक से नही समझ पा रही थी कि वह सिहरन क्या है और क्यों शरीर के हर रोम मे उसका अनुभव हो रहा है। जैसे उस सिहरन का सम्बन्ध किसी बाहरी चीज़ से न होकर उसके अपने-आप से ही था; जैसे उसी की वजह से उसे अपना-आप बिलकुल खाली लग रहा था। हवा बहुत तेज थी और देवदार का जंगल जैसे सिर धुनता हुआ कराह रहा था। हुआ…हुआ…हुआ…हवा के झोके उमड़ती लहरो की तरह शरीर को घेर लेते थे और शरीर उनमे बेबस-सा हो जाता था। उसने शाल को कसकर बाहों पर लपेट लिया। लोहे का गेट हवा के धक्के खाता हुआ आवाज़ कर रहा था। पल-भर के लिए उसकी आखें मुद गईं, तो उसे लगा कि अजुध्या अपने स्याह होंठ खोले उसके सामने खड़ा मुसकरा रहा है और लोहे का गेट चीरता हुआ धीरे-धीरे खुल रहा है। उसने सिहरकर आखें खोल ली और अपने माथे को छुआ। माथा बर्फ की तरह ठण्डा था। वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई। उठते हुए शाल कधे स उतर गया और साडी का पल्ला हवा में फड़फड़ाने लगा। बालो की कई लटें उड़कर सामने आ गईं और उसके माथे को सहलाने लगी।

"कुन्ती!" उसने कमज़ोर स्वर मे आवाज़ दी। आवाज़ हवा के समन्दर में कागज की नाव की तरह डूब गई।

"कुन्ती!" उसने फिर आवाज़ दी। इस बार काशी अपने क्वार्टर से बाहर निकल आई।

"कुन्ती जाग रही हो, तो उसे मेरे पास भेज दे। आज वह यही सो रहेगी," कहते हुए मनोरमा को महसूस हुआ कि वह किस हद तक काशी और उसके बच्चो पर निर्भर करती है, और उन लोगो का पास होना उसके लिए कितना ज़रूरी है।

"कुन्ती सो गई है, मगर मैं अभी उसे जगाकर भेज देती हूं," कहकर काशी अपने क्वार्टर में जाने लगी।

'सो गई है, तो रहने दे। जगाकर भेजने की ज़रूरत नही।" मनोरमा बरामदे से कमरे मे आ गई। कमरे में आकर उसने दरवाज़ा इस तरह बन्द किया जैसे हवा एक ऐसा आदमी हो जिसे वह अन्दर आने से रोकना चाहती हो। वह अपने में बहुत कमज़ोर महसूस कर रही थी। रज़ाई ओढकर वह बिस्तर पर लेट गई। उसकी आखें छत की कड़ियो पर से फिसलने लगी। वह आंखें बद नही करना चाहती थी। जैसे उसे डर था कि आंखें बन्द करते ही अजुध्या के मुसकराते हुए स्याह होंठ फिर सामने आ जाएंगे। वह अपना ध्यान बटाने के लिए सोचने लगी कि सुबह सुशील को चिट्ठी मे क्या-क्या लिखना है। लिख दे कि यहां अकेली रहकर उसे डर लगता है और वह उसके पास चली आना चाहती है? और…और भी जो इतना कुछ वह महसूस करती है, क्या वह सब उसे लिख पाएगी? लिखकर सुशील को समझा सकेगी कि उसे अपना-आप इतना खाली-खाली क्यों लगता है, और वह अपने इस अभाव को भरने के लिए उससे क्या चाहती है?

माथे पर आई लटें उसने हटाई नही थी। वह हल्का-हल्का स्पर्श उसकी चेतना

में उतर रहा था। कुछ ही देर में वह महसूस करने लगी कि साथ की चारपाई पर एक नन्हा-सा बच्चा सोया है, उसके नन्हे-नन्हे होंठ आम की पत्तियों की तरह खुले हैं, और उसके सिर के नरम बाल उड़कर मुह पर आ रहे हैं। वह कुहनी के बल होकर उस बच्चे को देखती रही'''और फिर जैसे उसे चूमने के लिए उस पर झुक गई।

आदमी और दीवार

'''और सत्ते की आंखें छत, फर्श और खिड़कियो से घूमती हुई फिर उस दीवार पर आकर अटक गईं।

उस लकड़ी की दीवार का एक अपना ही व्यक्तित्व था। जगह-जगह उस पर कीलो और चाकुओं से तरह-तरह की लिपियां खोदी गई थीं। शब्दों की आकृतिया कुछ ऐसी थी कि कहीं तो ऐसा लगता था कि दीवार मुसकरा रही है और कहीं लगता था कि मुह बिचका रही है। पिछले कई वर्षों में जो-जो किरायेदार उस घर मे आकर रहे थे, उनमें से कई एक अपने अस्तित्व का लेखा-जोखा उस दीवार पर छोड़ गए थे। दीवार के एक कोने में गहरे फारसी अक्षरों में खुदाई की गई थी—"शीरी मुमताज उर्फ मुमताज महल" उसके सामने के कोने में—जैसे साम्प्रदायिक हिसाब-किताब बराबर रखने के लिए—किसी ने बहुत बाद मे देवनागरी अक्षरों मे अपना नाम खोद दिया था—"दम्मो अर्थात् दमयन्ती"। दीवार के बीचोबीच किसी ने डेढ़ फुट रकबा घेरकर अपना नाम जोड़ दिया था—"बिल्लू।" उसके नीचे बाद मे किसी और ने तिरछे अक्षरों मे जोड़ दिया था—"उर्फ ब्लू ब्लैक।" एक जगह पहले जैसे फारसी अक्षरों में लिखा था—"मैं अपनी रूह यहीं छोड़ें जा रही हूं—शीरी मुमताज, 13-8-47।" उसके डेढ़ महीना बाद 30-9-47 को किसी ने उसके नीचे अपनी स्वीकृति लिख दी थी—"बहुत-बहुत मेहरबानी, शुक्रिया।" दीवार के उस भाग में, जो दरवाज़े के चौखट से जा मिला था, किसी ने बहुत जल्दी मे, जैसे चलते-चलते लिखा था—"मुझे तुमसे मुहब्बत है।" उसके नीचे टिप्पणी की गई थी—"मेरी जान, आप नर हैं या मादा?"

इनके अलावा और भी कई तरह की लिपियां थीं—कुछ अस्पष्ट और उलझे हुए नाम, कुछ आड़ी-तिरछी लकीरें और कुछ अनिश्चित-सी आकृतियां, जिनके तरह-तरह के अर्थ निकल सकते थे। जाने कब-कब, किस-किसने, किस-किस उद्देश्य से वे आकृतियां बनाई थीं। एक गोल चेहरा था जो चेहरा न होकर किसी जानवर का पेट भी हो सकता था। एक ऊदबिलाव की आंख थी जो सारी दीवार पर अपनी मनहूस छाया डाले थी और एक गहरा जख्म था, जो दीवार को छीलने के असफल प्रयास मे वहां बन गया था'''।

सत्ते को न जाने क्यों उस दीवार से चिढ़ हो रही थी। उसकी आंखें जब-जब उन शब्दों और आकृति पर पड़ती थी, एक अव्यक्त-सी झुरझुरी उसके शरीर में भर जाती थी। दीवार की एक-एक लकीर मे उसे कुछ रहस्य दिखाई देने लगता था और उसका मन होता था कि किसी तरह वे सब लिपिया मिट जाएं और यह दीवार फिर से कोरी हो जाए। कम से कम उस मनहूस आख को तो वह जरूर वहा से मिटा देना चाहता था जो उसे लगातार अपनी ही तरफ घूरती हुई लगती थी। जाने किस की आख थी वह, और क्यों वहां बनाई गई थी!

उस आंख को सामने से हटाने के लिए ही वह चारपाई से उठकर खिड़की के पास चला गया। नीचे गली में कोई हलचल नहीं थी—जो बच्चे दिन-भर वहां खेला करते थे और जिनकी वजह से अक्सर वह परेशान हो उठता था, वे भी उस समय वहां नहीं थे। सामने घर की टूटी हुई नाली का पानी ही आवाज़ के साथ गली में गिर रहा था जिससे गली बिलकुल निर्जीव नहीं लगती थी। पास ही कूड़े का ढेर था जो एक विमगादड़ की तरह अपनी जगह से चिमटा हुआ था।

ज़ीने पर पैरों की आहट और प्याली में चम्मच हिलाने की आवाज़ ने उसका ध्यान गली से हटा दिया, मगर वह खिड़की के पास से नहीं हटा। वह यह नहीं जतलाना चाहता था कि उसने वह आवाज़ सुनी है, या उसे किसी के कमरे में आने का पता है। उसे उस आवाज़ में एक चुनौती, एक अवज्ञा-सी महसूस हो रही थी—जैसे कि वह आवाज़ केवल उसे दुखाना और हीन करना चाहती हो। कुछ क्षण वह आवाज़ थोड़े फासले पर रुकी रही, फिर उसके कानों के बहुत पास आ गई।

"चाय ले लीजिए…।"

उसने घूमकर देखा कि राजो चाय की प्याली लिए सिर झुकाए खड़ी है, उसकी आंखें रो-रोकर सूज गई हैं और उसके चेहरे पर स्याह झाइयां-सी पड़ गई हैं। वह जैसे बहुत कठिनाई से अपनी आवाज़ को संभाले हुए थी। सत्ते पलभर उसे देखता रहा और फिर चुपचाप जाकर चारपाई पर बैठ गया।

"चाय ले लीजिए," राजो ने उसके पास जाकर फिर कहा।

"तुझसे किसने चाय लाने को कहा है?" सत्ते को खुद लगा कि उसकी आवाज़ जरूरत से ज्यादा तीखी है।

"बी जी ने कहा कि आपकी चाय का वक्त हो गया है…।"

"वक्त हो गया है, तो वे आप आकर चाय नहीं दे सकती थीं?"

"उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं दे दूं," कहते हुए राजो ने चाय की प्याली खिड़की के पास के आले में रख दी और चुपचाप नीचे को चल दी।

"सुन!" वह दहलीज़ लांघने लगी, तो सत्ते लगभग चिल्लाकर बोला। राजो रुक गई और बिना कुछ कहे आंखें झुकाए वहीं खड़ी रही।

"तेरा रोना अभी बन्द होगा कि नहीं।"

राजो की आंखों में पल-भर के लिए एक चमक आ गई और उसकी गरदन तन गई।

"मैं रो कहां रही हूं?" उसने कहा।

"रो नहीं रही, तो मैं क्या यूं ही बक रहा हूं? मुझे तेरी आंखें नजर नहीं आतीं?"

राजो की आंखों की चमक थोड़ी बढ़ गई और उसने अपना होंठ काट लिया।

"बोलती क्यों नहीं?" सत्ते फिर गरजा। "किसी की बात का तुझ पर कुछ असर भी होता है?"

राजो की आंखें उसके चेहरे से हट गईं और वह दहलीज़ लांघकर सहसा नीचे को चल दी।

"सुन!" सत्ते गुस्से के मारे चारपाई से उठ खड़ा हुआ। "मैं यह चाय नहीं पिऊंगा।"

राजो बिना कुछ कहे ज़ीने से नीचे उतर गई।

"मैं कह रहा हूं यह प्याली यहां से उठाकर ले जा।" सत्ते मारे गुस्से के बेहाल-

सा होकर बोला। मगर राजो तब तक नीचे पहुंच चुकी थी। वह भन्नाता हुआ आले के पास पहुंचा। प्याली उठाकर कुछ पल हतप्रभ-सा चाय को देखता रहा, फिर झटके से चाय उसने नीचे गली मे फेंक दी। मन हुआ कि प्याली को भी साथ ही पटक दे, मगर प्याली की कीमत का ध्यान आ जाने से उसने हाथ रोक लिया। फिर जीने के पास जाकर उसने ज़ोर से कहा, "किसी को मेरे पास ऊपर आने की जरूरत नही। मुझे आज चाय या खाना कुछ भी नही चाहिए। खामखाह सब लोग दिन-भर मुझे परेशान करते रहते हैं…!"

कमरे मे आकर उसने ज़ोर से दरवाज़ा बन्द कर लिया। चारपाई पर बैठते ही दीवार की लिपियां फिर उसके सामने आ गई—"मैं अपनी रूह यही छोड़े जा रही हूं—शीरी मुमताज़, 13-8-47।" "मेरी जान, आप नर हैं या मादा ?" बी, आई, एल्, एल्, यू, और वह ऊद-बिलाव की आंख।

वह दीवार जाने कितने साल पुरानी थी। कई जगह उसकी लकडी को घुन लग गया था। जब वह मकान बना था, न जाने वह दीवार तब साथ ही बनी थी, या बाद मे किसी किरायेदार ने अपनी सुविधा के लिए लकड़ी का पार्टिशन डलवाकर उस बड़े कमरे को दो हिस्सों में बाट लिया था। तख्तो के बीच की दरारो से साथ के हिस्से की रोशनी नज़र आती थी। वह हिस्सा अब घर का फालतू सामान रखने के काम मे आता था। जाने क्या-क्या चीज़ें वहा जमा थी ! खाली बोतलें, पुराने पीपे, फटे हुए बोरे, टूटी हुई कुर्सिया, और कई तरह की टोकरिया, दरातियां, कठौते और टीन का एक हमाम जो बरसो से पानी गरम करने के काम नही आया था। वह हिस्सा जैसे एक छोटा-सा कब्रिस्तान था जहा कितनी ही चीज़ें अपने पुराने इतिहास को अपने मे समेटे न जाने कितने अरसे से दफन थी। और इस हिस्से को उस हिस्से से अलग करती थी लकड़ी की वह दीवार…!

"दम्मो अर्थात दमयन्ती…!"

यह दम्मो कौन थी ? उसने अपना नाम दीवार पर क्यों लिखा था ? वह उस घर मे किन दिनों रहती थी ? उसकी शक्ल-सूरत कैसी थी ? उम्र कितनी थी ? अब वह कहा होगी ? आज अगर आकर वह इस दीवार पर अपना नाम लिखा हुआ देखे, तो क्या उसे खुशी होगी ? या उसके मुंह से उदासी की एक लम्बी सास निकल पड़ेगी ? ‥ और यह बिल्लू, यह उस घर मे कब रहता था ? उसे अपना नाम लिखने के लिए डेढ फुट रकबे की जरूरत क्यों पड़ी थी ? क्या वह इससे अपने शरीर के लम्बे-चौड़े डील-डौल को व्यक्त करना चाहता था, या अपने ठिगनेपन को छिपाना था ? और जिसने उसके नाम का अर्थ ब्लू ब्लैक कर दिया था, उसे उस बिल्लू से क्या चिढ थी ?…और शीरी मुमताज ? उसके सम्बन्ध मे इतना तो निश्चित था कि वह विभाजन से पहले उस घर में थी—विभाजन से दो दिन पहले तक थी। क्या वह घर उसने 13-8-47 को ही छोडा था ? कैसे छोडा था ? और उसने यह क्यो लिखा था कि वह अपनी रूह यही छोड़े जा रही है ! 'जाने' से उसका क्या अभिप्राय था ? उस घर से, उस शहर से जाना या…? 'शीरी मुमताज उर्फ मुमताज महल !' वह लड़की अपने को मुमताज़ महल क्यों समझती थी ? क्या उसके जीवन मे भी कोई ऐसा व्यक्ति था जिससे उसे आशा थी कि वह उसके बाद उसके लिए एक ताजमहल बनवाएगा या वह दीवार ही उसका ताजमहल थी ?

सत्ते ने होंठों को गीला किया और अपने घुंघराले बालों में हाथ फेर लिया। उसे लग रहा था कि कोई बहुत बड़ी बात उसके मन मे घुमड़ रही है, जिसे यदि वह बाहर

व्यक्त कर सके, तो वह एक महान रचना का रूप ले सकती है। कितनी ही बार ऐसी बातें उसके मन मे आती थी, जिनसे वह सहसा चमत्कृत हो उठता था, परन्तु जिन्हें बाहर व्यक्त करने का उसे अवसर ही नही मिलता था। यदि वह अपने मन की सब बातें लिख सकता, तो आज कितना बडा लेखक होता! दुनिया में उसकी कितनी कद्र होती! लोगों के उसके नाम कितने-कितने पत्र आते! वह जिधर से जाता, लोगों की आखें उसकी तरफ उठ जाती और लोग पास आकर उसके हस्ताक्षर मांगते! मगर जाने क्या बात थी कि जब वह लिखना चाहता था, तो उसके मन की बात कागज़ पर उतरती ही नही थी। हर बात जो मन मे उमडती हुई बहुत बड़ी और महत्त्वपूर्ण लगती थी, कागज़ पर लिख देने से बहुत फीकी-सी हो जाती थी। कम से कम हरीश उसकी लिखी हुई चीज़ो को पढकर ऐसा ही भाव दिखलाता था जैसे उनमें कुछ भी सार न हो! कभी-कभी उसे लगता था कि हरीश केवल ईर्ष्या के कारण ही ऐसा करता है, उसकी व्यग्यपूर्ण मुस्कराहट उसकी अपनी हीनता को ही प्रमाणित करती है! अन्यथा कभी तो हरीश ने उसकी किसी चीज़ की प्रशसा की होती! एक तरफ वह था जो किसी ज़माने मे हरीश की लिखी हुई रद्दी से रद्दी चीज़ को पढकर भी उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहता था, और दूसरी तरफ वह आदमी—हरीश—जिसके पास उसके लिए सिवाय एक व्यग्यपूर्ण मुस्कराहट के कुछ नही था। क्या इसका कारण इतना ही नहीं था कि उस आदमी को अपनी सतही सफलता का बहुत गुमान था? उसकी सफलता सतही सफलता ही तो थी! उसकी रचनाओं मे गहराई कहां थी? उस बार एक समीक्षक ने किस बुरी तरह उसकी खबर ली थी? बखिये उधेडकर रख दिए थे! बाद मे लोगों से मिल-मिलाकर किसी तरह अपनी प्रशसा लिखवा ली, तो फिर दिमाग आसमान पर चढ गया! आज वह स्वय इस आदमी की रचनाओ की समीक्षा लिखे, तो एक-एक को रूई की तरह धुनकर रख दे! मगर लिखने की तो अब आदत ही छूटती जा रही है। दरअसल दिमाग काम की वजह से इतना थका रहता है कि लिखना--लिखाना उससे नही हो पाता। पहले घर मे शब्दकोश लेकर अग्रेज़ी की कविताओ से माथापच्ची करो, फिर जाकर तीन घटे कॉलेज मे उनके अर्थ लड़कों को बताओ। अगर साथ मे रोटी कमाने की फिक्र न होती, और इतनी थकान न रहा करती, तो वह आज तक प्रतिष्ठित लेखक न माना जाता! यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में वह सदा सर्वप्रथम नही रहा था? वह कितनी व्यवस्था से अपना काम किया करता था जबकि हरीश उन दिनों ठीक से काम न करने की वजह से अध्यापको के ताने ही सुना करता था। अब हरीश आवारा किस्म की ज़िदगी बिताता है, नौकरी-औकरी नही करता, इसलिए लोग भी सोचने लगे हैं कि उसमे शायद कुछ विशेषता होगी ही। इस देश में लिखने वाले लोग हैं ही कितने! जो चार पक्तियां लिख लेता है, वही अपने को लेखक समझने लगता है। और देशो में इस तरह के लोगों की बात भी नही पूछी जाती!

उसने उठकर अलमारी खोली और सिगरेटों का डिब्बा निकाल लिया। वे 'थ्री कासल्ज़' के सिगरेट उसने खास-खास मौकों पर पीने के लिए रखे थे। जब कभी मन बहुत परेशान होता था, तो वह उस डिब्बे को निकाल लिया करता था। उसने एक सिगरेट निकालकर ढीले-ढाले ढग से मुह में लगाया और जली हुई माचिस को क्षण-भर देखते रहने के बाद उसे सुलगा लिया। मुह से धुआं निकला, तो उसे लगा कि उसकी लचक में एक विशेषता है, जो वही पैदा कर सकता है। यह लचक उसके अन्दर की कलात्मकता का प्रमाण है। यदि इस कलात्मकता को सही मार्ग देने के लिए वह समुचित प्रयत्न भी कर पाता ''।

"बी, आई, एल्, एल्, यू, बिल्लू—उर्फ ब्लू ब्लैक !"

सत्ते का चेहरा हंसी से फैल गया। उसे लगा कि उसे हरीश का वर्णन करना हो, तो वह कुछ ऐसे ही ढंग से करेगा। बिल्लू उर्फ ब्लू ब्लैक ! उसने कठिनाई से अपनी हंसी को गले में रोके रखा। वह नही चाहता था कि हंसी की आवाज़ नीचे सुनाई दे, जिससे घर के लोग सोचें कि उसका गुस्सा उतर गया है। गुस्से की बात सोचने पर उसकी हंसी सचमुच गायब हो गई और उसके माथे पर लकीरें पड गईं, उसी आदमी की वजह से तो आज उनके घर में यह स्थिति पैदा हुई थी ! कितना अच्छा होता जो कभी उसकी उस आदमी से दोस्ती न हुई होती और न ही वह उसे अपने घर मे लाया होता !

आज उस आदमी की वजह से ही तो उसने राजो को पीट दिया था। आज दिन चढा ही ऐसा मनहूस था कि सुबह से ही उसका सिर भन्नाया हुआ था। नीद खुलने पर उसे जो चाय मिली वह इतनी कड़वी थी कि मुह के साथ-साथ दिमाग का जायका भी बिगड़ गया। जीने के नीचे जाते हुए एक पैंडी से पांव फिसल गया, जिससे बाईं कुहनी मे चोट आ गई। उस पैंड़ी की मरम्मत के लिए वह कई दिनों से घर में सबसे चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था। उसके बाद नहाकर कघी करते हुए सहसा उसकी नजर उस पिटारी पर पड गई जिसमे कुछ चिट्ठियां एक रेशमी रूमाल में लपेटकर रखी हुई थी। राजो के ट्रंक के बाहर वह पिटारी खुली हुई पडी थी—शायद उसे खोलने के बाद राजो को किसी काम से बाहर बुला लिया गया था और वह उसे वापस ट्रक मे रखना भूल गई थी। चिट्ठियो को देखने की ज्यादा उत्सुकता उसे इसलिए हो आई थी कि उन अक्षरों की बनावट को वह अच्छी तरह पहचानता था। एक वक्त था जब हर दूसरे-तीसरे दिन उसे हरीश की चिट्ठी आया करती थी। वह उसकी हर चिट्ठी बहुत चाव के साथ घर के सब लोगो को पढ़कर सुनाता था। उन दिनो हरीश की उससे नई-नई मित्रता हुई थी और वह घर मे उस आदमी की बहुत प्रशसा किया करता था। यह शायद इसी का फल था कि आज उसे अपनी बहन को—उसी बहन को जिसे कभी न जाने कितने लाड-प्यार से वह अपने कधों पर उठाए घूमा करता था—इस बुरी तरह पीट देना पडा था। राजो से उसने यह आशा नही की थी कि वह उसके सामने इस तरह धृष्टता करेगी···!

खुली हुई पिटारी के पास खड़ा होकर वह पल-भर स्तब्ध भाव से उन अक्षरो को देखता रहा था—यहां तक कि पल-भर के लिए उसे लगा था कि उसकी आंखो के सामने अंधेरा छा रहा है। न जाने क्या-क्या अकल्पित विचार एक साथ उसके मस्तिष्क में कौंध गए थे। वह व्यक्ति कब से राजो के नाम चिट्ठिया लिख रहा था ? राजो क्यो उन्हें इस तरह संभालकर रखे हुए थी ? क्या उन दोनों के बीच किसी तरह की घनिष्ठता स्थापित हो चुकी थी ? कुछ अरसा पहले एक बार हरीश उसकी अनुपस्थिति में उस घर में आया और दो-एक दिन वहा रहा भी था ! उन दिनो उस आदमी ने उसकी अनुप-स्थिति का कोई अनुचित लाभ तो नही उठाया ? यह क्या उसका अपना ही दोष नही था कि उसने ऐसा मौका आने दिया जब कि वह जानता था कि घर में राजो के पास बूढे मा बाप के सिवा कोई नही है और वे दोनों लडकी को लाड लडाने किसी भी हद तक जा सकते हैं···!

उसने पिटारी उठा ली और उसे लिए हुए चुपचाप ऊपर अपने कमरे मे चला आया। अधिकाश चिट्ठियां वही थी जो हरीश ने पिछले कुछ वर्षों मे स्वयं उसी के नाम लिखी थी और जो उसने घर मे पढकर सुनाई थी। उसके अतिरिक्त दो-एक चिट्ठिया ऐसी भी थी जो उसके पिता के नाम आई थी और उनमे से एक मे हरीश ने अपने आने की सूचना दे रखी थी और दूसरे मे उनके आतिथ्य के लिए उन्हे धन्यवाद

दिया था। हां, एक चिट्ठी थी—और वह चिट्ठी राजो के नाम ही लिखी गई थी—जिसके अन्त मे 'और' के बाद तीन बिन्दु थे—कोई बात थी जो बिना लिखे उन बिन्दुओ द्वारा व्यक्त की गई थी। दूसरे पत्रों को देखते हुए उसके मन मे एक खीझ और भुंझलाहट भर रही थी। परन्तु उन बिन्दुओ ने सन्देह का वास्तविक सूत्र देकर उस खीझ को एक गम्भीर भाव में बदल दिया था। वह देर तक उस पत्र को उलट-पलटकर देखता रहा था और उन बिन्दुओ के तरह-तरह के अर्थों की कल्पना करता रहा था'''

कुछ देर के बाद वह पिटारी हाथ मे लिए हुए फिर नीचे चला गया। और बाहर के कमरे मे पहुचकर उसने पिटारी वहां मेज़ पर रख दी। बी जी और बाबूजी उस समय वही थे। उसने गम्भीर भाव से उन दोनों को देखते हुए राजो को भी वहां बुला लिया। राजो रसोईघर मे आटा गूध रही थी। गीले हाथों को दोपट्टे से पोछती हुई वह आकर पास खड़ी हो गई।

"इस पिटारी मे किसकी चिट्ठिया ह ?" उसने कई क्षण राजो की ओर ताकते रहने के बाद गम्भीर स्वर मे पूछा।

राजो ने एक बार पिटारी की तरफ देखा और फिर हक्की-बक्की-सी उसका मुह देखने लगी।

"मैं पूछता हू किसकी चिट्ठिया हैं ?"

बी जी उठकर पिटारी के पास आ गईं। बाबूजी अपनी कुर्सी पर बैठे ही रहे—परन्तु उनकी आखें किसी अज्ञात आशंका से फैल गईं।

"किसकी चिट्ठियां हैं, बताती क्यों नही ?" बी जी ने राजो की बांह को थोड़ा झिंझोड़ दिया।

"आपके सामने पड़ी हैं, देख लीजिए किसकी चिट्ठियां हैं," राजो सहसा तीखे स्वर में बोली।

"तू नही बता सकती ?" वह चिल्लाया। गुस्से से उसके माथे की नसें फड़क रही थी।

"आपको पता है किसकी चिट्ठिया हैं। आप ही के नाम आई हुई चिट्ठियां हैं। मैंने सभालकर रख दी थीं कि शायद कभी आपको ज़रूरत पड़ जाए।"

"मेरे नाम और लोगों की भी तो चिट्ठिया आती है। उन सबको तू संभालकर क्यों नही रखती ? यह एक ही आदमी ऐसा क्यों है जिसकी चिट्ठियां तुझे खास लगती हैं और जिन्हें सभालकर रखने की ज़रूरत महसूस होती है ?"

"मैं सोचती थी कि ये एक लेखक की चिट्ठिया हैं, और वह आपका दोस्त भी है, इसलिए'''।"

"वह लेखक है या क्या है, वह मैं सब जानता हूं, और यह भी जानता हूं कि ये चिट्ठियां तू संभालकर क्यों रखती है। मैं नही जानता था कि हमारे घर मे भी इस तरह की बात कभी हो सकती है। मुझे पता होता कि तुझे ऐसे गुल खिलाने हैं, तो मैं कभी तुझे यहा इन लोगों के पास अकेली न छोड़ता। आप सुन रहे है बाबूजी, यह लड़की क्या कह रही है ?"

बाबूजी ने धीरे से सिर हिलाया। उनकी आखों मे घना कोहरा-सा घिर आया था। बी जी माथे पर हाथ रखे हुए फरश पर बैठ गई थी।

"मैं जानना चाहता हूं कि तेरे नाम आई हुई चिट्ठी में इन बिन्दुओ का क्या मतलब है ?" वह उस चिट्ठी को अलग निकालकर उसे हाथ मे झटकता हुआ बोला। राजो का चेहरा सख्त हो गया और उसकी आंखों मे आंसू भर आए। लगा कि वह

झपटकर चिट्ठी उसके हाथ से छीन लेगी। "मैं नहीं जानती, इनका मतलब है," क्या वह बोली।

"तू नहीं जानती !" वह एकदम गरज उठा। "मैं अभी इनका मतलब तुझे बताता हूं। पहले मैं इस पुलिंदे को आग में झोंक दूं, फिर आकर बताऊंगा कि इनका क्या मतलब है···।"

वह चिट्ठियों का पुलिंदा लेकर कमरे से जाने लगा, तो राजो ने सहसा वह उसके हाथ से झपट लिया।

"मैंने ये चिट्ठियां इतने दिनों से संभालकर रख रखी हैं, मैं किसी को इन्हें जलाने नही दूंगी," वह बोली।

"तू नहीं जलाने देगी।" कहता हुआ वह पागल की तरह राजो पर झपट पड़ा और उसके हाथ से पुलिंदे को छीनने की कोशिश करने लगा। राजो चिट्ठियों को छाती से चिमटाए गठरी-सी बनकर ज़मीन पर बैठ गई।

"मैं कहता हूं, ये चिट्ठियां मुझे दे दे, नही तो मैं आज तेरी खाल उधेड़ दूंगा।"

राजो उसी तरह पत्थर की मूर्ति बनी चिट्ठियो को अपने साथ चिमटाए रही। चिट्ठियां छीनने के प्रयत्न में हारकर उसने लगातार तीन-चार चपत राजो की पीठ पर जमा दी।

"तू चिट्ठियां देगी कि नही ?"

"नही।"

"दे दे खसम खानी !" बी जी डर और गुस्से में कांपती हुई आवाज में कुछ विनय के साथ बोली, "भाई मांग रहा है, तो तू चिट्ठियां उसे दे क्यों नहीं देती ? उसी के दोस्त की चिट्ठिया हैं—वह उन्हे चाहे रखे चाहे जला दे। तुझे इनका क्या करना है?"

"मुझे पता है इसे क्या करना है," वह हांफता हुआ बोला। "मैं अभी इसकी बोटी-बोटी चीरकर रख दूंगा।" इस पर भी राजो की पकड़ ढीली नहीं हुई तो उसने उसकी पीठ पर दो-एक लातें भी जमा दीं। राजो जैसे पत्थर बनकर बैठी थी, बैठी रही। परन्तु फिर जाने क्या हुआ कि अचानक ही उसका शरीर ढीला पड गया, उसने चिट्ठियों का पुलिंदा निकालकर फरश पर रख दिया और सब पर एक वितृष्णा की नज़र डालकर वहां से चली गई।

"बेटा, जवान लड़की पर इस तरह हाथ नही उठाते," राजो के चले जाने पर बी जी ने कहा।

"अभी तो मैंने इससे कुछ कहा ही नही," वह उसी तरह हांफता हुआ बोला। "मेरी बहन इस तरह की हरकत करेगी, तो मैं सचमुच उसे चीरकर रख दूगा।"

"ऐसे ही ज़िद करती है बेटा, और कोई बात नही। इसे चिट्ठियो का क्या करना है ? तू इन्हें आग में जला या जो जी चाहे कर !" बी जी कहती रही।

"अभी ना समझ बच्ची है; इसे भले-बुरे की समझ नही है।" बाबूजी का सिर ज़रा-सा हिला और आंखें दो-एक बार झपक गईं।

"बीस की हो चुकी है और अभी इसे समझ नही है," वह झल्लाकर बोला। "आप लोगों के इसी लाड़ ने ही इसका दिमाग खराब कर रखा है। बड़ा लेखक है वह—रवीन्द्रनाथ ठाकुर है—जिसकी इसने चिट्ठियां रख रखी हैं। आप लोगों का तो कुछ नही, मगर मुझे तो चार आदमी जानते हैं। मुझे तो अपनी बदनामी का ख्याल है।"

उसने उन सब चिट्ठियो को लेकर पुर्ज़ा-पुर्ज़ा कर दिया। फिर रसोईघर मे

जाकर उन्हें चूल्हे में डाल दिया। राजो बाहों में सिर डाले चूल्हे के पास बैठी थी। वह उसी तरह बैठी रही और हिचकियां लेकर रोती रही।

"अब जाकर इनकी राख को पिटारी में भर ले।" जब आखिरी पुर्जा भी जलकर गोल हो गया, तो वहां से चलते हुए उसने राजो से कहा और लकड़ी के ज़ीने पर धम्-धम् पैरों की आवाज़ करता हुआ ऊपर अपने कमरे में आ गया। राजो से बात करते हुए उसका मुंह न जाने क्यों कड़वा और लसीला हो गया था। वह आकर कटा-सा चारपाई पर गिर गया।

अब उस बात को चार घण्टे होने आए थे।

"मेरी जात आप नर हैं या मादा?" दीवार पर खुदे हुए अक्षर मुंह चिढ़ा रहे थे। धूप ढलने के साथ-साथ कमरे के वातावरण मे हल्की ठंडक भर गई थी। गली से बच्चों के हंसने-रोने, खेलने और लड़ने की मिली-जुली आवाज़ें आ रही थी, मगर कमरे के अन्दर एक तरह से सन्नाटा ही था। वह सन्नाटा कमरे मे ही नहीं, सारे घर में छाया हुआ लगता था। नीचे नल के पास से सिर्फ कपड़े धोने की आवाज आ रही थी। राजो उस समय से अब तक लगातार काम कर रही थी। सत्ते ने कितना ही चाहा था कि जाकर एक बार उसके सिर पर हाथ फेर दे और उसे थोड़ा पुचकार दे, मगर बात सोचते सोचते उसका क्रोध फिर लौट आता था। राजो की आंखों में जो अवज्ञा, उपेक्षा और वितृष्णा उसने देखी थी उसकी कल्पना से ही उसके मन में चिनगारियां-सी फूटने लगती थीं। कमरे का वातावरण ठंडा हो रहा था, मगर उसके अन्दर रह-रहकर एक तपती हुई लहर उठ आती थी। हरीश के पत्र के उन रहस्यमय बिंदुओं की याद हो आने से उसके माथे की नसें फिर फड़कने लगी थी।

वह चारपाई से उठकर काफी देर कमरे में टहलता रहा। फिर खिड़की के पास जाकर गली के उदास उजाले को सांझ के गहरे रंग मे घुलते देखने लगा। उसे न जाने क्यों कुछ बरस पहले की ऐसी ही उदास सांझें याद आने लगी जब वह कितनी-कितनी देर इसी तरह खिड़की के पास खड़ा रहता था। इस समय गली में खेलते हुए सब बच्चों के चेहरे उसके लिए अपरिचित थे। हर साल गर्मी की छुट्टियों में महीना-बीस दिन के लिए वहा आने पर वह काफी हद तक अपने को उस घर में अजनबी-सा महसूस करता था। हर साल गली मे कुछ न कुछ बदल चुका होता था। उन दिनों उसके सामने का घर इतना ऊंचा नही था जितना अब था। तब तक उसकी डेढ़ मंजिल ही बनी थी। उस घर की छत इस खिड़की से झांकते देखकर उस छत से बच्चे उसकी तरफ मुंह बनाया करते थे। उनके मुंह बनाने पर भी वह इसी तरह खड़ा रहता था। किसी-किसी समय छत पर एक और चेहरा भी दिखाई देता था। उसी की वह प्रतीक्षा किया करता था। उसका नाम सरोज था—आंखें बड़ी-बड़ी और काली! बच्चों को उसकी तरफ मुंह बनाते देखकर, वह उन्हें डांट देती थी। कभी-कभी सरोज की आंखें पल-भर के लिए उससे मिल जाती थीं। वह एकदम सकपका जाता था। उसे देखकर सरोज के चेहरे पर न जाने क्यों एक विचित्र कठोर-सा भाव आ जाता था। कभी वह अकेली छत पर बाल सुखा रही होती, तो उसे देखकर सामने से हट जाती थी। वह फिर भी देर-देर तक खिड़की के पास खड़ा रहता था। सरोज के सामने से हट जाने पर भी उसका खुले बालों वाला चेहरा उसकी आंखों के सामने बना रहता था। वह घंटों रात को बिस्तर पर पड़ा सरोज के बारे में ही सोचता रहता था। दिन में जब घर से निकलता तो एक बार आंखें उठाकर सरोज की छत की तरफ देख लेता था। उसे कितनी इच्छा होती थी कि कभी

वह सरोज को पास से देख सके, उसके साथ हंसकर बात कर सके। कितनी बार उसके मन में यह बात आती थी कि किसी तरह सरोज के साथ राजो की मित्रता हो जाए और सरोज उनके घर में आने-जाने लगे। मगर उसकी यह इच्छा इच्छा ही रही थी। सरोज कभी उनके घर मे नही आई, और न ही कभी वह उससे बात कर सका। वह एम० ए० फाइनल मे पढ रहा था, तो एक दिन सजधज के साथ सरोज का ब्याह हो गया। एम० ए० कर लेने के बाद जब उसकी बाहर नौकरी लगी, तो उसने सोचा था कि हर साल छुट्टियों में वहां आने पर उस खाली छत को देखकर उसे बहुत विचित्र-सा अनुभव होगा। मगर उसने यह भी सोचा था कि हो सकता है सरोज भी उन्ही दिनो मैके आया करे और उसे सरोज को छत पर बाल सुखाते देखने का अवसर मिलता रहे। मगर उसके पहली बार आने तक ही घर किसी और ने खरीद लिया था और एक नई मंजिल बनवाकर उस छत को हमेशा के लिए ढक दिया था···।

"यार, तू मर्द का बच्चा होकर इस तरह की बातें करता है ?" हरीश को उसने अपने दिल की बात बताई थी, तो हरीश उससे मजाक करने लगा था। "जो एक लड़की को अपनी तरफ आकर्षित नही कर सकता, वह जिन्दगी में और क्या करेगा ?" हरीश की बात से उसके मन मे एक नश्तर-सा चुभ गया था। "और प्यारे ! आदमी की जिंदगी मे एक नही कई-कई लड़कियां आती हैं। एक बार चूक हो गई सो हो गई, मगर आगे कभी ऐसी चूक न हो···।" सचमुच उस आदमी ने यह कितनी उजड्डता की बात कही थी !

गली से आती हुई बच्चो की आवाजें सत्ते को अच्छी नही लग रही थीं। उस शोर में तो पुराने दिनो की कल्पना करना भी मुश्किल था। सामने घर की नाली से पानी गिर रहा था और राजो के धोए हुए कपड़ों का साबुन-मिला पानी इधर से जाकर उस पानी को अपना रग दे रहा था।

वह खिडकी के पास से हट आया। अब उसे अपना कमरा बहुत अकेला और उजाड-सा लगने लगा—जैसे उसके वहा होते हुए भी कमरे में कोई न हो, वह बिलकुल खाली और बिलकुल निर्जीव हो। नीचे आंगन से पंखे से चूल्हे मे हवा करने की आवाज आ रही थी। राजो कपड़े धो चुकी थी और रात की रोटी के लिए चूल्हा सुलगा रही थी। गीली लकड़ियों का धुआं जीने से होकर रोशनदान के रास्ते कमरे मे आ रहा था। सत्ते चारपाई पर लेट गया। उसे लग रहा था जैसे नाली मे बहते हुए झाग मिले पानी और रोशनदान के रास्ते कमरे में आते हुए धुएं में उनके आकार के अतिरिक्त भी कुछ हो—ऐसा कुछ जो राजो के अन्दर से उमड़कर आ रहा था और अब नाली के दागों और जीने की स्याही मे बदलता जा रहा था।

"शीरी मुमताज उर्फ मुमताज महल !"

वह फिर एकटक दीवार पर खुदी हुई इबारतों को देखने लगा। उसे फिर याद आया कि उसने शीरी मुमताज उर्फ मुमताज महल के विषय मे कुछ लिखने की बात सोची थी। क्या बात सोची थी, यह ठीक से याद नही आया। मुमताज महल की रूह और उस दीवार के सम्बन्ध में कोई बात थी। फिर सोचने लगा कि वह लड़की—शीरी मुमताज—देखने में कैसी रही होगी, उस घर मे रहकर वह क्या-क्या सोचती रही होगी और वहां से जाते हुए वह दीवार पर क्यों लिख गई थी कि वह अपनी रूह यही छोड जा रही है ? काश कि वह उस लड़की को जानता होता, और यह भी जानता कि आज वह कहां है और क्या सोचती है···?

सहसा उसे राजो से सहानुभूति होने लगी। उसका मन हुआ कि एक बार उसे ऊपर बुला ले और उसे पुचकारकर उसके सिर पर हाथ फेर दे। वह उठकर जीने मे चला

गया। ज़ीने में धुआं इस तरह भर रहा था कि वहां सांस लेना मुश्किल था। वहां आते ही आंखों में जलन महसूस होने लगी। उसने किसी तरह आवाज़ दी, "राजो!"

मगर राजो ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसी तरह चूल्हे में पंखा झलती रही। सत्ते ने फिर आवाज़ दी, मगर राजो ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया। केवल ज़ीने में आता हुआ धुआं पहले से गाढ़ा हो गया। वह हताश क्रोध के साथ कमरे में लौट आया।

"शीरी मुमताज़ उर्फ़ मुमताज़ महल!"

सत्त को यह सोचकर और गुस्सा चढ़ने लगा कि उसके मन में कोई बात है जिसे वह चाहकर भी अपनी थकान और परेशानी के कारण ठीक से व्यक्त नहीं कर सकता—यहां तक कि ख़ुद भी ठीक से समझ नहीं सकता। उसे कुछ पता नहीं चला कि कब उसने अलमारी से चाक़ू निकाला और कब दीवार में लिपियों को कुरेदना आरम्भ कर दिया। उसे अपने किए का अहसास तब हुआ जब वह बिल्लू के दोनों एल् सिर काटकर टी में बदल चुका, शीरी मुमताज़ पर लम्बी-लम्बी लकीरें खींचकर उसका हुलिया बिगाड़ चुका और कोने में बनी हुई आंख में सूराख करके उसके सब रेशे झाड़ चुका। उसने यह काम इतनी मेहनत से किया था कि उसके माथे पर पसीना आ गया। मगर जब वह थककर चारपाई पर बैठा, तो कमरे की निर्जीवता पहले से और गहरी हो गई थी। रोशनदान से धुआं आना चाहे बन्द हो गया था, मगर कमरे की सारी हवा धुएं से लदकर भारी हो रही थी। कमर सीधी करने के लिए वह चारपाई पर लेटा, तो उसकी आंखें फिर दीवार से जा टकराईं। शीरी मुमताज़ का अब वहां पता नहीं था, मगर वह विकृत आंख, पहले से ज़्यादा विकृत होकर उसके बनाए हुए सूराख में से उसे घूर रही थी।

आखिरी सामान

मिसेज़ भण्डारी—वेला भण्डारी—का चेहरा तिपाई पर झुका था। सामने वह सफ़ेद जिल्द का एलबम था जो अब काफ़ी पुराना पड़ गया था। जिल्द पर जगह-जगह हाथों के मैल से दाग पड़ गए थे, एकाध दाग शायद चाय-कॉफ़ी का भी था। न जाने कितने बरस पहले एलबम ख़रीदा गया था। उसके विवाह से पहले वह मिस्टर भण्डारी के पास था। उनका विवाह उस एलबम की ज़िन्दगी के मध्य-काल में हुआ था। तब मिस्टर भण्डारी एक्साइज़ और टैक्सेशन के महकमे में अफ़सर नियुक्त हो चुके थे।

मिसेज़ भण्डारी एलबम के वे पन्ने पलट चुकी थीं, जिन पर मिस्टर भण्डारी की कॉलेज के आरम्भिक दिनों की तस्वीरें थीं। उन दिनों उनका जिस्म कितना अच्छा था! अब सामने वह तस्वीर थी, जो मिस्टर भण्डारी के स्टूडेण्ट्स कांग्रेस के प्रधान चुने जाने के अवसर पर खींची गई थी। तस्वीर में वे माइक्रोफ़ोन पर भाषण दे रहे थे। उन दिनों उनके चेहरे पर बहुत हल्की-हल्की मूछें थीं, आंखों में एक ख़ास तरह की चमक थी। फिर भी वे कितने मासूम लगते थे!

मिसेज़ भण्डारी ने बालों को हल्का-सा झटका दिया। शायद कोई कीड़ा बालों में उलझ गया था। अपने कटे हुए रेशमी बालों का गरदन पर फिसलना उन्हें सदा रोमांचित कर देता था। उन्हें लगता जैसे किसी खरगोश के जिस्म से गरदन सहला रही हो। अपने बालों के वज़न पर भी उन्हें गर्व होता था। गरदन झटकने पर भी बालों में

उलझी हुई चीज नहीं निकली, तो वे उंगलियों से टटोलने लगी। टटोलने पर कुछ न मिला। फिर भी यह आभास बना रहा कि बालों में कुछ अटका हुआ है। उन्होने एलबम पर कुहनी रखे हुए, धीरे-धीरे आखें मूद लीं। फिर सहसा आंखें खोलकर उन्होने आवाज दी, "चपरासी !"

आवाज खाली कमरे में गूंज गई। तीखी होते हुए भी वह आवाज खाली-सी थी – जैसे वह आवाज न हो, सिर्फ एक गूज हो।

"हजूर···!" चपरासी मनोहर दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ। इतना धीमे वह पहले कभी नही बोलता था। उसका यह स्वर उसकी अकडी हुई मूछों, तुर्रेदार पगडी और चमकती हुई बेल्ट के साथ मेल नही खाता था। उसकी बढ़ी हुई शिष्टता का जैसे अर्थ था कि वह आज चपरासी नही कुछ और है, और उसका अदब नही, दया और हमदर्दी है।

"मुन्ना को थोड़ी देर के लिए नीचे ले जाओ, यहां गरमी है।"

आदेश पाकर भी कुछ क्षण मनोहर के पांव न हिले। वह स्थिर दृष्टि से उन्हें देखता रहा—जैसे नौकर-मालिक के रिश्ते की दहलीज लाघकर एक कदम आगे आना चाहता हो, मगर संस्कारों की जकड़ बढ़ने न देती हो।

"हजूर !" आखिर उसने कहा। मिसेज भण्डारी की झुकी हुई आंखें फिर उठ गईं।

"हजूर, आप भी थोड़ी देर के लिए नीचे चल बैठिए। यहां तो आज दम घुट रहा है। अहाते में जरा-जरा हवा है···।"

"नही, मैं अभी यही हूं, तुम मुन्ना को ले जाओ।" फिर आवाज नही, गूज, खोखली गूज···। मिसेज भण्डारी ने फिर बालों को झटक लिया।

चपरासी मनोहर का मुंह कुछ कहने के लिए खुला, लेकिन फिर जैसे उसके संस्कार लकवा मार गए।

"बहुत अच्छा हजूर," कहकर वह वहां से हट गया।

मिसेज भण्डारी ने रूमाल से माथे का पसीना पोछा और कुछ क्षण जैसे सब कुछ भूली-सी बैठी रही। सामने दीवार की अलमारी के शीशे मे उनके चेहरे का प्रतिबिंब दिखाई दे रहा था। उनका चेहरा कितना बदल गया था ! नाक के दोनों ओर गालो की रेखाएं गहरी हो गई थी ! एक उगली से उन रेखाओ को उन्होंने मल लिया। छ. महीने में ही उन पर बुढ़ापा आने लगा ? बालो पर हाथ फेरकर उन्होने मन की शका को गलत प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। लेकिन वे चेहरे की लकीरें···!

रूमाल से गले का पसीना पोंछकर वे फिर तिपाई पर झुक गईं। सिर में बहुत भारीपन महसूस हो रहा था। दिमाग जैसे एक बहुत-सी बातें सोच रहा था ! या जैसे कुछ भी नही सोच रहा था ! सोचने के लिए कोई सूत्र नही था, कई विचार थे। या विचारों के टुकड़े दिमाग की सतह पर मंडरा रहे थे। और एक कील-सी थी जो दिमाग मे गड रही थी—पन्द्रह रुपये ! पन्द्रह रुपये एक···पन्द्रह रुपये दो···पन्द्रह रुपये दो···पन्द्रह रुपये आठ आने···पन्द्रह रुपये आठ आने ! आठ आने एक···आठ आने दो···!

उनकी आंखें फिर जरा-सी उठ गईं। गालो की लकीरें सचमुच बहुत गहरी हो गई थी। इतनी जल्दी ये लकीरें इतनी गहरी कैसे हो गई ? कुछ ही महीने पहले चेहरे का मास बिलकुल हमवार और चिकना था। अब उस चिकनाहट की जगह ये हल्की-हल्की ना मालूम सलवटें···! उन्होंने फिर चेहरे पर हाथ फेरा और आंखें नीचे झुका ली।

मिस्टर भण्डारी को उनके रूप का कितना मोह था ! उनके मित्रो ने विवाह के

समय उनके चुनाव की कितनी प्रशसा की थी ! सभाओं, पार्टियो मे लोग मिस्टर भंडारी के एस्थेटिक टेस्ट की कितनी प्रशसा करते रहे हैं ! बेला भण्डारी का सौन्दर्य बेला भण्डारी का वस्त्रों का चुनाव'' बेला भण्डारी का मुस्कराने का अन्दाज'''इस सबमें मिस्टर भण्डारी की देन कितनी महत्त्वपूर्ण रही है !

उन्होंने एलबम का पन्ना पलट दिया। वाई० एम० सी० ए० के हाल मे खेले गए नाटक 'शी स्टूप्स टु कांकर' के पात्र तथा नाटक के निर्देशक सुशील भण्डारी। चेहरा ठीक फोकस मे नही था। वैसे भी उम तस्वीर में दुबले लगते थे। उन दिनो उनके निर्देशन की बहुत प्रशसा हुई थी। एक अखबार ने सुशील भण्डारी को नाटक का वास्तविक हीरो कहा था। दूसरे ने भविष्यवाणी की थी कि इस कला के क्षेत्र में उसका नाम बहुत जल्दी चमक उठेगा। शहर के शिक्षित वर्ग में प्रायः सभी लोग उन्हें जान गए थे। साहित्यिक और सास्कृतिक मजलिसों मे प्रायः उन्हे निमन्त्रित किया जाता था। उनकी योग्यता और प्रतिभा की हर कही दाद दी जाती थी। यूनिवर्सिटी से निकलने से पहले ही समाज मे उनका स्थान बन गया था। लोग बातें करते थे कि राजनीति तथा साहित्य और सस्कृति के क्षेत्र मे सुशील भण्डारी का अच्छा नाम होगा। उनके पास सभी कुछ तो था—व्यक्तित्व, विचार, भाषा'''।

मस्तिष्क मे कील और गहरी गड़ रही थी—सत्रह रुपये एक'''! सत्रह रुपये दो ! सत्रह रुपये दो'''दो'''तीन !

शायद डाइनिंग टेबल की बोली हो रही थी। वे खिड़की के पास जाकर देखना नही चाहती थी। कुछ देर पहले तक वे उस व्यापार को देख रही थी। कोठी का सारा सामान अहाते में बिखरा था—दो टूटी कुर्सियां, एक तिपाई, दो-एक चारपाइयो और कुछ ट्रको को छोड़कर बाकी सब कुछ नीलाम हो रहा था—सोफा सेट, रेडियोग्राम, रेफ्रिजरेटर, छोटी-बड़ी अलमारियां, कुर्सियां, डाइनिंग टेबल, कालीन, परदे, बुक शेल्फ, आयलपेंटिंग्ज, पत्थर और प्लास्टर ऑव पेरिस की मूर्तियां, फूलदान, फोटो फ्रेम, ऐश-ट्रे और अनगिनत छोटी-मोटी चीजें जो न जाने कितने बरसो में इकट्ठी हुई थी।

आगे पांच-छ चित्र उनके विवाह के अवसर के थे। विवाह-मंडप पर लिया गया चित्र, चाय पार्टी का चित्र, उन दोनों का बस्ट बहुत खूबसूरत आया था। फिर नाव में बैठकर उतरवाए हुए दो चित्र थे। हनीमून के दिनों मे उनके दिलों मे कितना उल्लास था ! दोनो बच्चो की तरह नदी से पानी उछाला करते थे। मिस्टर भण्डारी ने एक बार कन्धे से पकड़कर उन्हें कई गोते दे दिए थे। वे मिस्टर भण्डारी के शरीर से लिपट गई थी। ठण्डे पानी मे भी उस स्पर्श से शरीर रोमांचित हो उठा था।

अगले चित्र मे मिस्टर भण्डारी और सुधीर साथ-साथ मुस्कराते हुए खड़े थे।

मिस्टर भण्डारी के माथे पर हल्की-सी शिकन थी। सुधीर की उपस्थिति मे उनके माथे पर प्रायः यह शिकन पड जाती थी। उस शिकन को वही देख पाती थी, और उसका अर्थ भी वही जानती थी। सुधीर उनका कॉलेज के दिनों का दोस्त था, पर उसके पिता मिनिस्ट्री से सम्बद्ध थे, इसलिए वह बहुत शीघ्र उन्नति कर गया था। उसे कई तरह के सरकारी ठेके मिल जाते थे। तीन-चार साल में ही उसने दो-ढाई लाख की जायदाद बना ली थी। मिस्टर भण्डारी को एक्साइज और टैक्सेशन के महकमे म जगह भी सुधीर के रसूख से ही मिली थी। यूं दोनों की खासी दोस्ती थी, और रोज का साथ का उठना-बैठना था, परन्तु सुधीर के साथ अपने सम्बन्ध को लेकर मिस्टर भण्डारी के मन में एक छाया घिरी रहती थी, क्योंकि शायद वे दोस्त होकर भी बराबर नहीं थे, बड़े-छोटे थे। मिस्टर भण्डारी, जिन्हें अपनी योग्यता और प्रतिभा के नाते बड़ा होना

चाहिए था, छोटे थे, और सुधीर जिसे छोटा होना चाहिए था, बड़ा था। मिस्टर भण्डारी सुधीर की उपस्थिति में अपनी हद से बाहर खर्च करते थे। अपने घर को सजाने की भी उन्हें बहुत चाह थी। वे प्रायः कहा करते थे कि सुधीर के पास पैसा है, पर अच्छी चीज पहचानने वाली आंख नहीं है। गांठ है, टेस्ट नहीं। यदि वे उससे एक-चौथाई भी खर्च कर सकें, तो अपने घर को इस तरह सजाकर रखें कि देखने वाले की आंखें पथरा जाएं। जहां तक बन पड़ता, वे घर के लिए नित नई चीजें ले आया करते थे। मगर सुधीर के घर जैसे पर्दों और गलीचों के लिए ही हजारों रुपये चाहिए थे। जब कभी वे लोग सुधीर के यहां जाते तो सारा समय मिस्टर भण्डारी के माथे पर वह नामालूम शिकन बनी रहती। घर लौटकर वे उनके रूप की बहुत प्रशंसा करते थे और गर्म-जोशी के साथ उन्हें चूम लिया करते थे। इस एक बात में वे सुधीर को अपने से हीन समझ सकते थे। सुधीर की पत्नी मीरा ज्यादा सुन्दर नहीं थी। मीरा का कद छोटा था, और शरीर कुछ ज्यादा मांसल था और···और शायद इसीलिए, सुधीर जब-जब उनकी ओर देखता था, उसकी आंखों में कुछ और भी हलका-सा आभास होता था—इतना अस्पष्ट कि कई बार उन्हें लगता कि शायद उनकी गलतफहमी ही है।

"दो सौ पन्द्रह !···पन्द्रह···बीस ! दो सौ बीस एक···दो सौ बीस दो···।"

सम्भवतः अब रेफ्रिजरेटर की बोली हो रही थी। फिर भी मिसेज भण्डारी का उठकर देखने को मन नहीं हुआ। आखिर एक-एक करके हर चीज की बोली हो जाएगी। देखने न देखने से अन्तर क्या पड़ता है ? उनका दिल अन्दर ही अन्दर बैठ रहा था। मिस्टर भण्डारी ने एक-एक चीज के चुनाव पर कितना समय खर्च किया था ! डाइनिंग टेबल के चाकलेट रंग का शेड चुनने में ही उन्हें कई दिन लग गए थे। उसकी शेप उन्होंने एक पादरी के घर देखे हुए डाइनिंग टेबल के अनुसार बनवाई थी। सोफा सेट के लिए कवर का कपड़ा वे कलकत्ता से लाए थे। और जिस दिन रेफ्रिजरेटर आया, उस दिन उन्होंने कमरे की कलर स्कीम बदल दी थी। पुराने परदों की जगह नये परदे लगाए थे। नौकर और चपरासी को पांच-पांच रुपये इनाम दिया था।

उसके बाद नया-नया सामान उनके घर अक्सर आने लगा था। आज कालीन तो कल अलमारियां। घर में जितना सामान आ सकता था, उससे कहीं अधिक सामान ले आया गया। मिस्टर भण्डारी की जेब में भी काफी पैसा रहता था। यह जानना शेष नहीं था, कि वह पैसा कहां से आता है।

पहले उनका दिल डरा करता था। मिस्टर भण्डारी से वे कुछ नहीं कहती थीं, परन्तु घर में आती हुई नई-नई चीजों को देखकर उनका मन आशंकित रहता था। फिर धीरे-धीरे मन अभ्यस्त हो गया। पहले वे सब चीजें पराई-सी लगती थीं। धीरे-धीरे अपनी लगने लगीं। मिस्टर भण्डारी सब-इंस्पेक्टर के जरिये काम करते थे। सब-इंस्पेक्टर तिहाई के साझीदार होते थे। आज एक कम्पनी का बिक्री टैक्स आधा करके तीन हजार वसूल किए जाते, तो बीस दिन बाद छापे में अफीम बरामद करके पांच सौ-हजार में छोड़ दी जाती। उनका ड्राइंग-रूम अब अफसर तबके में सबसे ज्यादा सजे हुए ड्राइंग-रूम्ज में गिना जाता था। लोगों में कानाफूसियां होती थीं। मगर मिस्टर भण्डारी परवाह नहीं करते थे। पैसा बाहर से आता था, और बाहर ही खर्च कर दिया जाता था। पहले दिनों में मिस्टर भण्डारी नौकरी छोड़कर, सारा समय राजनीतिक कार्य में लगा देने की बात किया करते थे। कॉलेज के दिनों के आदर्श गाहे-बगाहे उन्हें कुरेदने लगते थे। मगर धीरे-धीरे उनकी फिलॉसफी बदल गई थी। अब वे कहते थे कि इन्सान नीचे से दुनिया के लिए कुछ नहीं कर सकता, कुछ करने के लिए आवश्यक है कि इन्सान पहले

कुछ करने की स्थिति पर पहुंच जाए। किस रास्ते से वह वहां पहुंचता है, इसका महत्व नहीं है। नीचे की सतह मे आदर्श की कोई आवाज नहीं है। आदर्श की आवाज ऊपर की सतह से ही सुनाई जा सकती है। मगर ज्यों-ज्यो वे ऊपर उठ रहे थे, सतह और ऊंची उठती जाती थी।

मिस्टर भण्डारी अब रात को देर से क्लब से लौटते थे। पहले पार्टियो मे केवल साथ देने के लिए सिप कर लिया करते थे, अब बाकायदा पीने लगे थे। घर मे रेफ्रिजरेटर का इस्तेमाल बोतलें रखने के लिए होने लगा था। एक बार उन्होने उन्हें भी मजबूर करके पिलाई थी। उन्हे हर चीज घूमती नजर आने लगी थी। दीवारें जैसे फर्श के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रही थी, और फर्श ऊपर को उठ रहा था। पैर हल्के लगते थे और कदम ठीक नही पड़ते थे। मिस्टर भण्डारी के दोस्तो ने उनका अच्छा मजाक बनाया था। उन्हें बाहर टहलने के लिए ले गए थे। फुटपाथ के खम्भे उन्हे अपने पर गिरने को आते-से प्रतीत होते थे। वे मिस्टर भण्डारी की बांह का सहारा लेकर चलती रहीं, और वे लोग फब्तियां कसते रहे। मिस्टर भण्डारी कई बार क्लब से आधी रात के करीब लौटकर आते। गेट का दरवाजा खुलता और बंद होता। फिर नौकर का दरवाजा खटखटाया जाता। ऐसे अवसरों पर वे उनके सामने आने से बचा करते थे। नौकरो और पडोसियो मे चर्चा होती थी। वे नही जानती थी कि जो कहा जाता है, कहां तक सच है। पर कई बार उन्हे स्वय सन्देह होता था। मिस्टर भण्डारी के कपड़े उठाते-रखते उन्हें महसूस होता था कि उनमे किसी पराये शरीर की गन्ध समाई है। और वह गन्ध सदा एक-सी नही होती थी। मगर जैसे खामोश समझौता हो, वे इस बारे में कभी कुछ नही पूछती थी, न ही वे कभी कुछ कहते थे। हां, अक्सर चिड़चिड़ाए रहते थे। छोटी-छोटी बात पर गुस्सा करते थे। खाने मे ज्यादा नुक्स निकालते थे।···मगर समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ रही थी। अब कही ज्यादा पार्टियो पर उन्हें बुलावा आता था, सरकारी उत्सवो मे उन्हे मान के साथ आगे बैठाया जाता था। लोग उनकी साड़ियो और मिस्टर भण्डारी की टाइयों की बहुत प्रशंसा करते थे।

मिसेज भण्डारी ने एलबम के कई पन्ने अनदेखे ही पलट दिए थे। जो पन्ना सामने था, उस पर एक सम्भ्रान्त अतिथि की तस्वीर थी, चाय की प्याली हाथ मे लिए हुए। सफेद टोपी, गोल चेहरा, गोल काया, काली अचकन। चेहरा तस्वीर से उभरकर आगे को आया-सा लगता था। नीचे का होंठ चेहरे के अनुपात में अधिक मोटा, और जग की चोंच की तरह आगे को निकला हुआ। गरदन कन्धो मे धंसी-सी थी। सारे शरीर मे एक चीज तीखी थी—आखें। अगले पन्ने पर सम्भ्रान्त अतिथि के साथ मिस्टर भण्डारी और उनकी तस्वीर थी। मिस्टर भण्डारी का चेहरा पहले से बहुत भर गया था, पर उनके मुकाबले में वे बहुत हल्के और छोटे लगते थे। उन दोनों के बीच वे तो खो ही गई थी। उनके चेहरे की मुस्कराहट ही उनके व्यक्तित्व को सभाले थी···।

सम्भ्रान्त अतिथि प्रदेश के एक उच्च अधिकारी थे। उन्हें उस दिन विशेष रूप से खाने पर बुलाया था। एक चाय-पार्टी पर उन लोगो का उनसे परिचय हुआ था, और उसी दिन उनका खाने पर आना तय हो गया था। लोगो को मिस्टर भण्डारी की इस मिलनसारी से ईर्ष्या हुई थी।

खाने से पहले दो घण्टे तक उन लोगो का दौर चलता रहा। मिस्टर भण्डारी की नाक के अगले भाग मे रह-रहकर हल्का-सा कम्पन होता था। इसका भी अर्थ वे अच्छी तरह जानती थीं। मिस्टर भण्डारी की आंख बारह सौ रुपये की एक नौकरी पर थी जो सम्भ्रान्त अतिथि के रसूख से प्राप्त हो सकती थी। मिस्टर भण्डारी सम्भ्रान्त अतिथि की

हर बात का अनुमोदन कर रहे थे। सम्भ्रान्त अतिथि भी उनकी हर बात से सहमति प्रकट कर रहे थे। खाना खाते हुए सम्भ्रान्त अतिथि का निचला होंठ एक खास अन्दाज में हिलता था। उस होंठ के फैलाव से कितनी अतृप्ति झलकती थी!

तभी नौकर ने सूचना दी थी कि उनका एक सब-इंस्पेक्टर बाहर आया है। मिस्टर भण्डारी खाना बीच में ही छोड़कर बाहर चले गए थे। दो मिनट बाद लौटकर उन्होने कहा कि उन्हे बहुत-सी चरस पकड़ने के लिए तुरन्त ही रेड पर जाना पड़ेगा। सम्भ्रान्त अतिथि से क्षमा-याचना करते हुए, उनसे उन्हे ठीक से कॉफी पिलाने तथा इंटर्टेन करने के लिए कहकर, वे सब-इस्पेक्टर के साथ चले गए। उनके चले जाने के बाद सम्भ्रान्त अतिथि की तीखी आंखें और तीखी हो गईं। वे आखें उनके शरीर के हर भाग को जैसे उघाड़कर देख रही थी। उन्होने अपनी साड़ी को अच्छी तरह लपेट लिया। सम्भ्रान्त अतिथि की आंखों मे खास तरह के डोरे दिखाई देने लगे। जब उन्होने कॉफी की प्याली बनाकर उनकी ओर बढ़ाई, तो सम्भ्रान्त अतिथि ने बरबस उनका हाथ पकड़ कर, उन्हें अपनी तरफ खीचा। प्याली छलक जाने से बहुत-सी कॉफी सम्भ्रान्त अतिथि के कपड़ों पर गिर गई। बहुत खींचतान करके किसी तरह वे अपने को छुड़ा पाईं। नौकर को उन्हें कॉफी पिलाकर विदा कर देने के लिए कहकर, वे सोने के कमरे में चली गईं, और अन्दर से चिटखनी लगाकर देर तक रोती रही। मिस्टर भण्डारी जा रहे थे तो उन्हें आश्चर्य हुआ था कि क्या रेड पर जाना उनके लिए उस अतिथि के पास बैठने से अधिक आवश्यक है! मगर अब कुछ भी अस्पष्ट नही था। उधर मोटे स्वर मे नौकर को डांट दी जा रही थी। यूं, वातावरण नि.स्तब्ध था। हर चीज़ जैसे अपनी जगह पर जकड़ गई थी।

उस दिन से मिस्टर भण्डारी उन पर और खीझने लगे। वे कई बार रात को घर आते ही नही। सुबह नाश्ते के समय भी उनमें बातचीत नही होती। किसी चाय-पार्टी पर उन्हे साथ जाना पड़ता, तो भी सारा समय वह खिचाव बना रहता। मिस्टर भण्डारी का बारह सौ की नौकरी पाने का मंसूबा पूरा नही हुआ था। वे सोचती कि क्या इसकी वजह वही हैं।

उन्ही दिनों एक बहुत बड़ा केस मिस्टर भण्डारी के हाथ मे आया। उस केस में उन्हें एक अच्छी फोर-सीटर गाड़ी हासिल हो सकती थी। दोनों सब-इन्स्पेक्टर रात को देर-देर तक उनके पास बैठ रहते। दिन में भी कई-कई बार मशविरे होते। दफ्तर से फाइलें घर लाई जाती और घण्टो कागज़ पलटे जाते। आखिर योजना तैयार हो गई।

उस दिन सवेरे से ही मिस्टर भण्डारी उत्तेजित थे। उनके चेहरे पर लाली छाई थी। हर काम उतावली में कर रहे थे। टाई की नाट भी ठीक से नहीं बाध पाए। चाय पीते हुए, दो बार प्याली छलक गई। डाइनिंग टेबल पर उड़ती हुई मक्खी से वे नाहक परेशान हो उठे। दफ्तर जाते हुए उन्होने अपने नाखूनो को देखा कि ज़रूरत से ज्यादा बढ़े हुए हैं। जाते-जाते कुछ कहने के लिए रुके, मगर बिना कहे ही चले गए। शाम को समाचार आया कि वे गिरफ्तार हो गए हैं।'''वे जिस कुर्सी पर बैठी थी, उसमे जैसे धंसती चली गईं। चपरासी मनोहर मे उन्हें विस्तारपूर्वक सारी बात का पता चला। उनके सब-इंस्पेक्टरों ने पुलिस से मिलकर उन्हें फंसा दिया था। मिस्टर भण्डारी ने जो योजना बनाई थी, उसे खडित करने की योजना उससे पहले तैयार हो चुकी थी। मिस्टर भण्डारी ने रुपया सोने की शक्ल में लिया था। मगर वह पुलिस द्वारा वजन किया हुआ और निशान लगाया हुआ सोना था। मिस्टर भण्डारी वहीं पकड़ लिए गए और वहीं पर रिश्वत देनेवाली पार्टी और दोनों सब-इंस्पेक्टर के उनके खिलाफ बयान भी हो गए। तुरन्त ही उनके नौकरी से बरखास्त किए जाने के आर्डर प्राप्त कर लिए गए और उन्हें

हथकड़ी पहना दी गई। दूसरे दिन वे सुधीर से मिलने गईं कि उनकी जमानत हो जाए। मगर सुधीर उन दिनों वहां नहीं था।

चपरासी मनोहर कभी-कभार उनके यहां चक्कर लगा जाता था। दफ्तरी हलके का और कोई व्यक्ति उनसे मिलने नहीं आता था। मनोहर ने ही एक दिन उन्हें बताया था कि मिस्टर भण्डारी को फंसाने की योजना का सूत्र कहीं और से आया था। सम्भ्रान्त अतिथि का हिलता हुआ निचला ओंठ और छलकी हुई कॉफी की प्याली···! निस्तब्ध रात और अपनी-अपनी जगह पर जकड़ी हुई चीजें!···उनका पूरा अस्तित्व ही जैसे जकड़कर रह गया था। जिन्दगी के इस मोड़ का मूल यन्त्र भी क्या वही थी।

बालों को हाथ से टटोलते हुए मिसेज भण्डारी ने उनमें उलझी हुई चीज निकाल ली—नाखून के आकार का पतला-तीखा-सा एक तिनका था। न जाने बालों में कहां से उलझ गया था! उन्होंने उसे मसलकर फेंक दिया। मगर वैसा ही एक तिनका कहीं उनके अन्तर में भी अटका हुआ था। उसकी गड़न महसूस करते हुए भी उसे टटोला नहीं जा सकता था। मिस्टर भण्डारी को सजा हो गई थी। जेल में बहुत दुबले हो गए थे; और वे स्वयं? उनके चेहरे की वह चमक कहां है, जिस पर उन्हें नाज था? तिनका बहुत तीखा गड़ रहा था। लेकिन कहां···?

एक ठण्डी सांस लेकर वे कुरसी से उठ गईं और खिड़की के पास चली गईं। सामान की बोली बदस्तूर चल रही थी। तीन-चौथाई से ज्यादा सामान नीलाम हो चुका था। अब चार-छः आइटम ही बाकी थे, टाइपराइटर, प्लास्टर ऑव पेरिस की दो मूर्तियां दो ऑयल पेंटिंग्ज।

अहाते में धूल उड़ रही थी। किसी जमाने में अहाते को लॉन में बदलने का प्रयत्न किया गया था। जहां-तहां घास की तिगलियां अब भी बाकी थीं, यद्यपि ज्यादा भाग खाली ही था। हवा के हर झोंके के साथ बहुत-सी गर्द उड़ती थी, और बिखरे हुए सामान पर फैल जाती थी। सामान की आखिरी बोलियां हो रही थीं—बारह रुपये! बारह रुपये आठ आने!

मिसेज भण्डारी लौटकर कुर्सी के पास आ गईं। सामने खुले हुए एलबम का खाली पन्ना था। काला चौकोर पन्ना! वे बैठ गईं। उस पन्ने पर न जाने कब कौन-सी तस्वीर लगेगी? उनके सारे प्रयत्न मिस्टर भण्डारी को रिहा और नौकरी पर बहाल करा पाएंगे या नहीं? सामान की नीलामी से ढाई-तीन हजार रुपये से ज्यादा नहीं मिलेंगे। उससे क्या पूरे कर्ज चुकाए जा सकेंगे? उसके बाद अपील के लिए पैसे की जरूरत पड़ेगी। घर के रोजमर्रा खर्च के लिए पैसे की जरूरत होगी।···नीचे अहाते में चपरासी मनोहर किसी से बात कर रहा था। शायद सुधीर से। सुधीर ही की आवाज थी। यह जानते हुए भी कि आज उनके सामान का नीलाम होगा, वह पहले नहीं आया था। अब आया था जब···। पहले उन्होंने सुधीर से कितनी आशा की थी। मगर सुधीर की आंखें अब और हो गई थीं। उनकी आंखों में जो हल्का-हल्का आभास होता था, वह कहीं गहरा हो गया था। वे देर तक उसकी एकटक दृष्टि का सामना नहीं कर पाती थीं। लेकिन··· सुधीर के अतिरिक्त था कौन जिससे सहायता की आशा की जा सकती?

"नीचे बुला रहे हैं।" मिसेज भण्डारी सहसा चौंक गईं। चपरासी मनोहर दरवाजे के पास खड़ा था। उसकी आंखों से गहरा अवसाद भरा था। वह अब भी जैसे कुछ कहना चाहता था, जो उसके होंठों तक नहीं आता था। नीचे खामोशी छाई थी। शायद सारे सामान की बोली हो चुकी थी। वे क्षण-भर काले-चौकोर पन्ने पर नजर गड़ाए रहीं, जैसे उस पर भी उन्हें कोई तस्वीर दिखाई दे रही हो; फिर एलबम बन्द करके

नीचे जाने के लिए उठ खड़ी हुई। सीढ़ियां उतरते हुए उन्हें लगा, जैसे वे आप नहीं उतर रही, घर का आखिरी सामान नीचे पहुंचाया जा रहा है।

एक पंखयुक्त ट्रेजेडी

कई घरों का वातावरण प्रेम के लिए बहुत अनुकूल होता है। प्रोफेसर चोपड़ा का घर ऐसे ही घरों मे से है। उन्ही के बरामदे में बेत की कुर्सियो पर बैठकर चाय पीते हुए प्रगतिवादी सतिन्दर का प्रतिक्रियावादी प्रकाश कौर से प्रेम हो गया था। दोनो के विचारो ने एक-दूसरे को इतना प्रभावित किया कि थोड़े ही दिनो में सतिन्दर प्रतिक्रियावादी हो गया और प्रकाश कौर प्रगतिवादी, जिससे दोनों का विवाह नहीं हो सका। फिर उन्ही के ड्राइंग-रूम में उनके जन्म-दिन पर ज्ञान को एक साथ रूपा और रानी से प्रेम हो गया। पर इससे पहले कि वह यह निश्चय कर सकता कि किससे प्रस्ताव करे, उन दोनों का विवाह हो गया।

और अब के प्रेम की घटना उनके घर के लॉन में हुई। प्रोफेसर चोपड़ा सवेरे सैर से लौटते हुए कही से भूरे और नीले पंखोवाली एक सुन्दर-सी मुर्गी लेते आए, और उसके आते ही प्रोफेसर साहब के काले मुर्गे को उससे प्रेम हो गया।

काला मुर्गा खानदानी मुर्गा था। उसकी मा प्रोफेसर साहब के घर में कई बार अंडों में बैठी थी और उन अण्डो से जिस परिवार की स्थापना हुई, वह उस समय उसका एकमात्र अवशेष था। सवेरे की बाग देने के समय से वह प्रोफेसर साहब के लॉन में चहल-कदमी आरम्भ करता और चीटे या मटर जो कुछ भी मिल जाता दिन-भर निगलता रहता। उसका स्वास्थ्य असाधारण रूप से अच्छा था और उसके पखों के नीचे गरदन के चारों ओर तथा टांगों के ऊपरी भाग में मास की मोटी-मोटी तहें थी। उसे अपने शरीर की पुष्टता का अभिमान था, जिसके कारण वह बाहर के किसी मुर्गे को प्रोफेसर साहब के लॉन मे प्रवेश नही करने देता था। साथ के घर का सफेद मुर्गा तीन-चार बार वहां मटर चुगने आ चुका था, पर हर बार ही काले मुर्गे ने उसे चोंच मार-मारकर भगा दिया था।

जब प्रोफेसर साहब मुर्गी को लेकर आए, तो पहले तो उनके हाथ मे उस जीव को देखकर काले मुर्गे का हृदय जलन से भर गया और उसने जोर से पंख फड़फडाकर अपने रोष का परिचय दिया। पर जब प्रोफेसर साहब मुर्गी को बिलकुल उसके निकट लाकर छोड़ गए तो सहसा उसकी एक टांग ऊपर उठ गई और कलगीदार गर्दन आह्लाद से हिलने लगी। पहले उसने एक बड़े घेरे में मुर्गी की परिक्रमा ली। फिर दूसरी परिक्रमा मे उसने घेरा पहले से छोटा कर दिया। तीसरी परिक्रमा उसने बहुत निकट से ली। परिक्रमा-समाप्ति पर जब उसने मुर्गी की ओर अपनी चोच बढाई तो मुर्गी ने उपेक्षापूर्वक अपनी चोच फिरा ली और उडकर कई गज दूर चली गई।

मुर्गे को मुर्गी की यह अदा बहुत पसन्द आई। वह पैरों को एक केन्द्र में रखकर चारो दिशाओं में गोल घूम गया। फिर उसने मटर का एक दाना मुह मे लिया और लय के साथ गर्दन हिलाता हुआ मुर्गी की ओर बढा। मुर्गी के निकट पहुंचकर जब उसने मटर का दाना उसकी ओर बढ़ाया तो मुर्गी ने फिर विपरीत दिशा में मुह फेर लिया और अपनी निश्चित गति से उसी दिशा में चलने लगी।

अबकी बार मुर्गी के इस व्यवहार से मुर्गे ने अपने को अपमानित अनुभव किया।

उसका खानदानी गर्व से उठा हुआ सिर वह तौहीन सहन नहीं कर सका। उसने दो-तीन बार अपनी चोंच खोली और बंद की। वह इस भाव से मुर्गी की ओर बढ़ा कि अब उसे अपने मोटे-मोटे पुट्ठों के बल से पराजित करेगा। मुर्गी को मनाने के लिए अब वह अपने वे चंचुप्रहार प्रयोग मे लाने लगा, जिनसे वह आसपास के मुर्गों को भगाया करता था। उसका यह उद्दण्ड भाव काम कर गया और उसके दो प्रहारों के अनन्तर ही मुर्गी उसकी वशवदा होकर उसकी चोंच से चोंच भिड़ाने लगी।

काला मुर्गा उस क्रीड़ा मे अधिकाधिक प्रगल्भ होता जा रहा था, जब उसकी पीठ पर किसी तीसरी चोंच का आघात पड़ा। वह सफेद मुर्गा जो कई बार उससे मार खाकर भागा था, आज उसे फिर चुनौती देने आया था। पर आज पहले की तरह उसकी आंखों मे भीरुता मिली धृष्टता का भाव नही था, बल्कि एक मिटने और मिटा देनेवाली चमक थी। आज वह मटर के दानों के लिए छेड़खानी करने नहीं आया था बल्कि अपने पौरुष और जीवन का दांव खेलने आया था।

अपने बढ़ते हुए उन्माद में व्याघात पाकर काले मुर्गे का लहू गर्म हो उठा। उसने झटपट सफेद मुर्गे की उठी हुई गर्दन पर प्रहार किया और एक ही आवेशमय आक्रमण मे उसे खदेड़ता हुआ लॉन के बाहर ले गया। लॉन की परिधि से बाहर निकलकर सफेद मुर्गे का आत्मविश्वास भी जाग उठा, और उसने दुगुने आवेश के साथ ऐसा प्रत्याक्रमण किया कि दोनों प्रोफेसर चोपड़ा की कोठी से दूर कच्ची सड़क पर पहुच गए।

कच्ची सड़क पर आकर काले मुर्गे ने फिर से अपनी शक्तियों का संचय किया। सफेद मुर्गे ने भी पंख फड़फड़ा कर अपने को आनेवाले घात-प्रतिघात के लिए तैयार कर लिया। अब दोनो मे एक निर्णायक लड़ाई छिड़ गई।

लगातार दो घंटे [illegible]

हुआ अपने विपक्षी से ज [illegible]

पहुंचता। बीच-बीच मे [illegible]

फिर जो भी जल्दी संभल जाता वह अवसर देखकर दूसरे पर आक्रमण कर देता। दो घंटे की लड़ाई में उन दोनों के पंख पूरे-पूरे झड़ गए। कलगिया साफ हो गईं। गर्दनों से लहू फूटने लगा। फिर भी वे दोनों लहूँत आपस में भिड़ते ही रहे…लड़ते ही रहे।

दो घंटे तक इस तरह लड़ चुकने के बाद सफेद मुर्गा हल्का पड़ने लगा। उसने अपनी ओर से जूझना बंद कर दिया और काले मुर्गे के बढ़ आने पर केवल उसे रोकने की चेष्टा में ही रहने लगा। काले मुर्गे ने उसकी थकावट को भांप लिया और एक बार बढ़कर उसके शरीर को इस बुरी तरह से छलनी कर दिया कि सफेद मुर्गा बिलकुल निढाल हो गया। जब सफेद मुर्गे में चोंच उठाने की भी शक्ति नहीं रही, तो काला मुर्गा उसे छोड़कर वापस लौटा। उस समय उसकी अपनी अवस्था भी शोचनीय हो रही थी। पर उसके हृदय में एक गर्व मिश्रित आह्लाद था। वह छिली हुई अपनी घायल गर्दन को अदा के साथ हिलाता हुआ चल रहा था तथा सिर को एक ऐसा कंप दे रहा था मानो उसकी लाल कलंगी अभी तक सिर पर मौजूद हो।

लॉन के निकट पहुंचकर उसने बाहर से ही बांग दी—कुकडू-कूं।

और उसने लॉन में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही उसने विजयगर्व के साथ चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा। मुर्गी कहीं दिखाई नही दी। उसने बरामदे के पास पहुंचकर फिर से इधर-उधर झांका और पुनः बांग लगाई—"कुकडू-कू!"

परन्तु मुर्गी घर के किसी कोने से निकलकर नहीं आई।

वास्तव में मिस्टर चोपड़ा के घर लंच के लिए कुछ मेहमान आ गए थे और मुर्गी

उस समय खाने की मेज़ पर मेहमानों की प्लेटों को चिकना कर रही थी।

उर्मिल जीवन

कल नीरा सात बरस की थी, आज वह सत्रह बरस की है। दस बरस का समय एक लहर की तरह उसे साथ बहा लाया। हवा ने पानी के रुख बदल दिए, समय ने जीवन के।

दस बरस में कितना परिवर्तन हो गया। दस बरस पहले नन्ही टागें जिन परिधियों को लांघ लेती थीं, आज उनके बाहर झांकना भी उसके लिए सम्भव नहीं। पहले वह नासमझ बालिका थी आज समझदार नवयुवती है। जीवन यही है। व्यग्य भी यही है।

उसकी चचलता गम्भीरता में बदल गई है। उसकी मुखरता ने खामोश रहना सीख लिया है। सोचने लगती है तो वर्तमान से बहुत पीछे रह जाती है। वहां से लौटे तो बहुत आगे निकल जाती है। वर्तमान के केन्द्र पर विचारधारा भ्रान्त होकर घूमती है।

नीरा ने अपने को देखा। शारीरिक विकास उसके और नन्ही नीरा के अस्तित्व में एक युग का अन्तर बतलाता है। तब चाहती थी जल्दी-जल्दी बड़ा होना। आज चाहती है पहले की तरह बालिका बन जाना। शैशव की चाह पूरी हो चुकी है। आज की चाह कभी पूरी नहीं होने की। वह यह सब समझती है, फिर भी विचार वश से बाहर होकर चलते हैं।

नीरा कमरे मे टहलने लगी। उसे अनुभव हो रहा था कि सारा वातावरण ही विषैला हो गया है। एक-एक चीज़ में तर्जना है। सजावट का सामान सूनेपन की विडम्बना को महत्त्व देता है। वह कमरे में अकेली थी और अकेलापन धीरे-धीरे विस्मय होता जा रहा था।

कल रात को उसका विवाह हुआ था। वह रात, जो जीवन की मधुरतम कल्पना थी, एक विभीषिका बनकर छाई रहीं। सुहागरात आज होगी। इस समय सध्या है। संध्या के बाद तारे निकलेंगे। फिर रात आ जाएगी।

उसे लगा जैसे जीवन-तत्त्व ही निःशेष हो रहा है। आज की रात जीवन में घातक कटुता घोल देगी। सम्भव हो, तो वह रात-दिन के मनकों से बनी जीवन-माला का यह काला मनका तोड़कर फेंक दे। मगर जानती है एक मनका तोड़ने से माला ही टूट जाएगी। उसमें इतना साहस नहीं है…।

पलग पर बैठकर नीरा ने चारों ओर देखा। दस बरस मे आंखें इस घर की दीवारों से परिचित हो गई हैं। रंग कई बार बदले गए। पलंग से चादरें भी उतरती रहीं। उसकी आशा जीजी घर की रानी थी। एक महीना पहले जीजी ने भी आखें मूंद ली और उनके स्थान पर आज स्वयं वहा आ गई है।

देह कांप उठी। दस बरस पहले एक अपरिचित व्यक्ति को जीजा के रूप में देखा था। आज से उसी को पति के रूप में पहचानना है और जीजा का वह प्यार-भरा सम्बोधन, "नीरो रानी!"

'नीरो रानी' का आज से तात्पर्य बदल जाएगा। नया अर्थ होगा और नई ही व्याख्या होगी। उसके साथ-साथ…

हृदय भारी होता गया। विवाह हो चुका। आग की साक्षी में वाग्दान करके मा ने आसू पोंछ लिए। घर का गाछ जला तो उसकी राख में नया अकुर रोप दिया गया।

पानी के कुछ छींटों मे राख सदा के लिए दब गई।

बाहर आकाश फैला है। शून्य ! शून्य पर अन्तर्वेदना की छाप नही पड़ती। शैशव के चित्र कही इस आकाश मे अंकित होते, तो उन पर काली तूलिका से दाग कर देती।

चररमरर बैलगाड़ी सड़क पर चल रही थी। नीरा को बहुत पुरानी बात याद आई। पिता ने कभी कहा था, "जीवन एक बैलगाड़ी है। एक हिचकोले से इसके तख्ते हिल जाते हैं। एक कील टूट जाए तो पहिये निकल जाते हैं।" तब केवल सुना था। आज ठीक समझ रही है। पिता की मृत्यु हुई। कील टूट गई, पहिये निकल गए, गाड़ी बैठ गई।

नन्ही कृष्णा ने उसका दुपट्टा खींचा। नीरा एकदम सचेत हुई। पल-भर कृष्णा की भोली आंखों को देखती रही। फिर गोदी में लेकर उसका मुंह निहारा। उसके बालों को सहलाया। फिर गोदी से उतार दिया।

कल तक वह कृष्णा की मौसी थी। आज से उसकी सौतेली मां है।

"मौछी," कृष्णा ने कहा, "तू मां को लेकल क्यों नईं आई ?"

नीरा मन ही मन रो दी। कृष्णा आज भी अपनी मां की प्रतीक्षा करती है। क्या वह कभी उसे मा के रूप मे स्वीकार करेगी ? 'नीरो रानी' का अर्थ बदल सकता है, पर कृष्णा का कोश बहुत छोटा है। वह अपने शब्दों का एक ही अर्थ जानती है। वह उसे कहती है, "मौछी"।

कृष्णा के लिए वह मौसी ही रहेगी। उसका शैशव जानता है—लहू और पानी का विवेक।

बच्चों के प्रश्न का उत्तर न देकर नीरा ने कहा, "जा उधर जाकर खेल मुन्नी ! मीरा वहां अकेली होगी।"

"नईं, मौछी, पैले बता मा कल वी आएगी कि नईं ?"

नीरा ने उसे अपने साथ सटा लिया। स्वर को सहेजकर कहा, "तू मीरा को जिस दिन नहीं मारेगी, उसी दिन आएगी, अच्छा ! जा, मीरा के साथ खेल बाहर।"

कृष्णा सन्तुष्ट हो गई। नीरा के गले मे बाहें डालकर नाचने लगी। फिर उसे छोड़कर भाग गई।

नीरा ने सामने देखा। आंखें दीवार पर लगे हुए चित्र पर अटक गई। कसाई मरी हुई बकरी को भून रहा है। हरी घास के पास बंधी हुई दूसरी बकरी घास मे मुंह मार रही है। कसाई देख रहा है। घास की ओट मे वह छुरी है जिस पर अब भी लहू के दाग हैं।

नीरा की आंखो के आगे श्मशान का वह दृश्य आया, जब आशा जीजी की चिता से चिनगारियां निकली थीं। चिनगारियों की ओट में कितना रोई थी वह ? कितना सिमके थे वे—उसके जीजा ?

और महीना-भर बाद ?

वैसी ही आग के चारों ओर जीजा ने उसके साथ फेरे लिए। उसे लगा जैसे बहन चिता के चारों ओर घूम रही है। चटकती हुई चिनगारियां और बोले जा रहे वेद-मन्त्र—दोनों एक-से ही थे। विवाह हो गया। बिना सजधज और चहल-पहल के। समय के गड़ेन ने उसे सौभाग्यवती बना दिया। लाल चूड़ियां और लाल सिन्दूर'''।

नीरा ने फिर देखा। छुरी पर लहू सीना-सा लगता था। कसाई, आग, बकरी और घास—यह एक परम्परा है। वह भी इसी परम्परा को निबाह रही है। उसने आंखें मूंदने की चेष्टा की। मन का भारीपन धीरे-धीरे पलकों पर फैल गया।

नन्ही-नन्ही नीरा। छोटा-सा घर। माता और पिता। साधारण चहल-पहल। बाजे-बारात और जीजी का विवाह। किनारीदार कपड़े पहनकर जीजी कैसे बदल गई ? मिठाइयां और बताशे। केले के खम्भे, रोली और हवनकुण्ड। सेहरा बाधे एक अपरिचित व्यक्ति। सहज आत्मीयता। मा ने कहा, "नीरो, तेरे जीजा, जा जीजा के पास।"

जीजा ने बांहे फैलाईं। कहा, "आ, नीरो रानी, तुझे खिलौना देंगे, मेले ले जाएगे।" नीरा पास नही गई। दूर भाग गई।

रोती हुई जीजी डोली मे बैठी। मा ने कच्ची लस्सी में पैर डाले। फिर जीजी लौटकर आई—गुड़िया जैसे लाल होंठ और झाकियो की सीता जैसे कपड़े। नीरा हंसी और तालियां पीटने लगी।

फिर वही अपरिचित व्यक्ति "जीजा। मा ने कहा, "जा पूछ, दूध कब पिएगे ?"

नीरा पास गई, सिमटी और संकुचित-सी। जीजा ने उसे दोनो बांहो से पकड़ लिया और पास खीचा।

दो मोटे-मोटे होठ, नाक के लम्बे बाल और विचित्र-सी गंध। नीरा हिचकिचाई, पीछे हटी और फिर उसने उस व्यक्ति के गाल पर एक थप्पड़ लगा दिया…।

चौंककर नीरा ने आखें खोली। वही शून्य आकाश ! दूर-दूर तक कालिमा में ओझल होते हुए धरती के चित्र। शैशव कहा है ? पीछे, बहुत पीछे। बीच मे दस बरस की दीवार है।

झींगुर बोलने लगे। अभी रात होने वाली है। गोधूलि के गहर पृष्ठ-पट पर एक तारा झिलमिलाने लगा।

नीरा की आंखों से दो आंसू टपक पड़े। उसने झट से आखे पोछ ली। यह कैसा अपशकुन है ? आज तो सुहागरात है। पहले इसी कमरे मे जीजी की सुहागरात हुई थी। और वह साथ का कमरा ? उस कमरे में जीजी के प्राण निकले थे। वहा का वातावरण अब भी जैसे कराह रहा है। अव्यक्त और मद्धम-सा स्वर—"नीरा ! ओ मा ! हाय ! ओ मा !"

विचारो को उसने झटक दिया। उठकर फिर टहलने लगी। फूलदान के फूल ठीक किए। सिंगार-मेज के पास जाकर शीशे मे चेहरा देखा। बाहों में मासलता है और गालो पर गुलाबीपन…

जीजी के गाल पिचक गए थे। बाहे सूखकर कैसी हो गई थी—पतली हड्डियों जैसी ? रूखे-से मुह मे दांत कैसे लगते थे ? बड़ी-बड़ी आखें कितनी डरावनी थी ? और वे उसे देखकर अन्तिम दिन भी कहती रहीं, 'नीरा' तेरा ब्याह तो देख लेती। बाबूजी की तरह मैं भी तेरे ब्याह से पहले ही…

नीरा की आत्मा चीख उठी, "देखो जीजी, देखो ! तुम्हारी नीरा का ब्याह हो गया ! आज उसकी सुहागरात है ! देखो…"

और उस पर शिथिलता छा गई। निढाल-सी वह पलंग पर बैठ रही। फिर लेट गई। छत की कड़ियो मे मकड़ी का जाला था। जाला धीरे-धीरे फैलने लगा। फैलकर इतना बड़ा हो गया कि नीरा उसमें उलझ गई—बिलकुल अवसन्न और निश्चेष्ट…

पृथ्वी की धुधली रेखाए आकाश की कालिमा मे खो गईं। तारे निकल आए। रात हो गई।

गरम सास के स्पर्श ने नीरा की पलकों को खोल दिया। दो उत्सुक होंठ उसके होठो के बहुत निकट आ रहे थे। नीरा सहमी और सिमटने लगी। दो हाथो ने उसकी

बांहों को पकड़ लिया। बाहर अंधकार था। उसे मन में लगा कि आकाश ने भी आंखें मूंद ली हैं...

दो मोटे-मोटे होंठ, नाक के लम्बे बाल और विचित्र-सी गन्ध! निकट और निकट! आंखों के दो गहरे गड्ढे! नीरा हिचकिचाई। चाहा बांहें झटक दे और ज़ोर से तमाचा लगाए, जिससे सारा वातावरण झन्ना उठे...

मगर हाथ नहीं उठ सका। आज वह नासमझ बालिका नहीं, समझदार नवयुवती है।

जंगला

एक हाथ से पम्प चलाकर दूसरे से बदन को मलता हुआ बनवारी भगत धीरे-धीरे गुनगुनाता है, "जागिए, ब्रजराज कुंअर...कमल-कुसुम फू-ऊऽऽले।"

फूलकौर तवे पर झुककर कच्ची रोटी को पोने से दबाती हुई आंखें मिचकाती है। जैसे कि फू-ऊऽऽले की लम्बी तान सुनकर ही रोटी को फूल जाना हो। रोटी नहीं फूलती, तो वह शिकायत की नज़र से बनवारी भगत की तरफ देख लेती है। शरीर की रेखाएं साफ नज़र नहीं आतीं। नज़र आता है सांवले शरीर पर गमछे का लाल रंग... ठीक लाल भी नहीं...और पम्प का हिलता हुआ हत्था, बहता हुआ पानी। दूसरी बार तवे पर फुकने तक रोटी आधी जल जाती है। उसे जल्दी से उतारकर दूसरी रोटी तवे पर डालती हुई वह कहती है, "नहाये जाओ चाहे और घंटा-भर! मुझे क्या है?"

भगत 'भृ'ग लता भू-ऊऽऽले' की लय के साथ जल्दी-जल्दी पम्प चलाने लगता है। "कौन भंडेरिया कहता है तुझे कुछ है? कभी होता ही नहीं।"

खट्-खट्-खट्...बेलन तीन-चार बार चकले से टकराता है। चूल्हे से फूटकर एक चिनगारी फूलकौर के माथे तक उड़ आती है। बेलन रखकर वह पल-भर निढाल हो रहती है। "और कहो, और कहो। कभी कुछ होता ही नहीं! माथे की जगह कपड़े पर आ पड़ती, तो अभी हो जाता?"

भगत पम्प के नीचे से उठ खड़ा होता है। "... बोलत वनरा-आऽऽइ...रामति गो सरिकन में बछरा हित धा-आऽऽइ..."

दो-तीन चिनगारियां और उड़ जाती हैं। फूलकौर जैसे उन्हें रोकने के लिए बांह माथे के आगे कर लेती है। "लगाए जाओ तुम अपनी धौंकनी! दूसरे की चाहे जान चली जाए!"

भगत आधा बदन हाथ से निचोड़ लेता है। बाकी आधे के लिए फूलकौर की तरफ पीठ करके गमछा उतार लेता है। "किसकी जान चली जाए? तेरी? आज तक न गई!"

"हां, मेरी ही नहीं गई? तुम तो प्रेत होकर आए हो!"

"प्रेत होकर यहां आता?" भगत हंसता है, "इस घर में? तेरे साथ रहने?"

"नहीं, तुम तो जाते उसके घर...वह जो थी रांड तुम्हारी...अच्छा हुआ मर गई।"

भगत की हंसी गले में ही रह जाती है, "मरी के सिर तोहमत लगाती है? देखना, एक दिन तेरी ज़बान को लकवा मार जाएगा।"

"मेरी ज़बान को ? उसे नही, जिसने वे सब करम किए है ?"

भगत की त्योरियां चढ जाती है। "किस भंडेरिये ने करम किए है ? क्या करम किए हैं ?"

"अपने से पूछो, मुझसे क्यों पूछते हो ?"

भगत गमछे को जल्दी-जल्दी निचोडकर कमर से लपेट लेता है। फिर लोटा-बाल्टी उठाकर जंगले के उस तरफ को चल देता है।" एक औरत के सिवाय दूसरी का हाथ तक नही छुआ ज़िन्दगी-भर। इसकी बीमारिया ढो-ढोकर उम्र गला दी, पर इसकी तसल्ली नही हुई···तब तक नहीं होने की जब तक इसे आंख के सामने जीता-जागता, चलता-फिरता नज़र आता हू। अब अकेला ही तो बच रहा हूं इस घर मे···इसकी नजर के सामने।"

फूलकौर गमछे के लाल रंग को दूर जाते देखती है, फिर चिमटे से पकड़कर तवा एकाएक नीचे उतार लेती है। तवा जमीन तक जाने से पहले चिमटे से निकल जाता है। ऊपर पडी रोटी फिसलकर नीचे आ गिरती है। "बोलो, बोलो !" वह चिल्लाकर कहती है, "और काली जबान बोलो !"

भगत लोटा-बाल्टी जंगले के उस तरफ की दीवार के पास रखकर लौट आता है। "तू और जोर से चिल्ला, जिससे आसपास के दस घर सुन लें !"

"सुन लें जिन्हे सुनना हो ?" फूलकौर की आवाज़ हल्की नही पडती, "शरम नही आती तुम्हें अपने लड़के की जान से दुश्मनी करते ?"

"अब यह बात कहा से आ गई ? उस भरनचोर का किसी ने नाम भी लिया है ?"

"तुम क्यों नाम लोगे उसका ?" फूलकौर ज़मीन पर गिरी रोटी को आखो के पास लाकर उसकी धूल झाड़ने लगती है, "तुम्हारे लिए तो इस घर में तुम्हारे सिवाय कोई बचा ही नही है।"

"यह कहा है मैंने ? अपनी इसी अक्ल से तो तूने घर का सत्यानास किया है। यह अक्ल न होती तेरी, तो वह भरनचोर, माखनचोर, यही घर मे होता आज भी। छोड़-कर चला न जाता।"

"बके जाओ गाली !" फूलकौर तवा फिर चढा देती है, "गाली बकने के सिवाय तुम्हें कुछ आता भी है ?"

"गाली बक रहा हूं मैं ?"

"नही, गाली कहां बक रहे ? यह तो तुम हरि-सिमरन कर रहे हो !"

पम्प का पानी जंगले के आस-पास फर्श को दिन-भर गीला रखता है। दालान के उस हिस्से को पार करते फूलकौर को डर लगता है कितनी ही बार पैर फिसलने से गिर जाती है। जगले के उस तरफ कुछ गिनी हुई ईंटें है, जिन तक पानी के छीटे नही पहुचते। पर वही ईंटें सबसे ज्यादा चिकनी है। धोखा उन्ही पर से गुज़रते हुए होता है। बहुत जमा-जमाकर पैर रखती है, फिर भी ठीक से अपने को सभाला नही जाता। दस ईंटो का वह सफर हमेशा जानलेवा लगता है। सही-सलामत उसे पार करके नये सिरे से ज़िन्दगी मिलती है। यू जगले की सलाखों पर पैर रखकर भी जाया जा सकता है, पर वह उससे ज्यादा खतरनाक लगता है।

आगे के कमरे मे जाने से पहले ड्योढी में कपडों का ढेर पड़ा रहता है, धुले-अनधुले सभी तरह के कपडो का। कपडो को हाथ लगाने पर कोई न कोई टिड्डी या मकड़ी बांह पर चढ़ आती है, या सामने से उछलकर निकल जाती है। 'हाय' कहकर

फूलकौर कुछ देर के लिए बदहवास हो रहती है। छाती तेजी से धड़कने लगती है जो कपड़ा हाथ मे हो, उसे हाथ मे ही लिए बैठी रहती है। अपने से बुदबुदाती है, "कपड़े तो अभी ले ही नही गया।"

कमरे मे कई रंगों की धूप आती है, रंगीन शीशों से छनकर। रोशनी के उन रंगीन टुकड़ो के सरकने से वक्त का पता चलता है। नीचे बाजार से गौओं की घंटियों की आवाज सुनाई देती है, तो वह सिर उठाकर कहती है, "चार बज गए।" इधर-उधर देखती है, जैसे चार बजने का कुछ अर्थ हो···जैसे उससे किसी चीज में कुछ फर्क पड़ सकता हो। रोशनी के रग जब फर्श से गायब हो जाते है, तो मन मे फिर होल उठने लगती है कि दालान पार करके फिर चौके मे जाना होगा···टोकरी में ढूंढकर कोयले निकालने होगे···कनस्तर मे झांककर आटे की थाह लेनी होगी। ड्योढ़ी मे आकर कुछ देर वह मन को तैयार करती रहती है। उसास के साथ कहती है, "अब तो रात उतर आई।"

जीने पर पैरो की हर आहट से वह चौंक जाती है, "कौन है ?"

कुछ देर गौर से उस तरफ देखती रहती है। कुछ कदम उस तरफ चली भी जाती है। आहट बहुत करीब आकर एक शक्ल मे बदलने लगती है, तो वह फिर एक बार पूछ लेती है, "कौन है ?"

"मैं हू," कहता हुआ भगत दालान में आ जाता है। फूलकौर शिकायत की नजर से उसे देखती है। जैसे भगत ने जान-बूझकर उसे झुठला दिया हो।

"हो आए ?" वह चिढ़कर पूछती है।

"कहां ?"

"जहा भी गए थे ?"

"गया था अपना सिर मुड़ाने !"

"अपना या जिसका भी। गए तो थे ही।"

"हां, गया तो था ही। अच्छा होता गया ही रहता। लौटकर न आता।" फूलकौर को सांस ठीक से नही आती। कुछ कहना चाहती है, पर कह नही पाती। भगत पास से निकलकर पीछे के कमरे मे चला जाता है। कुछ देर गुनगुनाता रहता है, "किलकत कान्ह घुटरुवनि आऽऽवत···मनिमय कनऽक नन्द कैंऽआंऽऽगन मुख-प्रतिबिम्ब पकरिबैंऽधाऽऽवत···" धीरे-धीरे आवाज खुश्क हो जाती है। एक कसैला स्वाद मुह में रह जाता है। वह बाहर आकर मोढे पर बैठ जाता है। फूलकौर उसकी तरफ नही देखती। वह खुद ही कहता है, "वह आज मिला था···"

फूलकौर चौंक जाती है। "कौन, बिशना···?"

"वह नहीं, उसका वह दोस्त···कढ़ी-चोर राधश्याम !"

फूलकौर का उत्साह ठण्डा पड़ जाता है। "क्या कहता था ?"

"कुछ नही। कहता था···कि वह किसी दिन आएगा···सामान लेने।"

"कौन आएगा ? राधेश्याम ?"

"नहीं। वह खुद आएगा। बिशना।"

चूल्हे की लपट से दीवार पर साये हिलते हैं। कुछ साफ नजर नही आता। फूलकौर आग में उलझते सायों की तरफ देखती रहती है। "आए," वह कहती है, "अगर ले जाए जो कुछ ले जाना हो। बाकी सब चीजों की उसे जरूरत है। सिर्फ मां-बाप की ही जरूरत नहीं है।"

भगत मुंह के कसैलेपन को अन्दर निगल लेता है। "देखो, इस बार वह आए, तो उससे लड़ना नहीं।"

"फिर लगे तुम मुझसे कहने ?" फूलकौर आवाज को सांस के आखिरी छोर तक खींच ले आती है, "पहले मैं उससे लड़ती थी ?"

"मैंने इस बार के लिए कहा है," भगत अपने उबाल को किसी तरह रोकता है, "पहले की बात नहीं की।"

"पहले की बात नहीं की ! बात करोगे भी और कहोगे भी कि नहीं की।"

कुछ देर आगे बात नहीं होती। भगत मोढ़े से एक तीली तोड़कर उससे दांत कुरेदने लगता है। फूलकौर बार-बार तवे पर झुकती और पीछे हटती है। फिर पूछ लेती है, "क्या कहता था वह...कब आएगा ?"

"उसे भी ठीक मालूम नहीं था। कहता था, ऐसे ही बात-बात में उसके मुंह से सुना था। हो सकता है कल-परसों ही किसी वक्त चला आए।"

"फूलकौर का हाथ आटे में ठीक से नहीं पड़ता। आटा ले लेने पर उसका पेड़ा नहीं बन पाता। पेड़े को चकले पर रखकर बेलन नहीं चलता। "क्या पता उसने कहा भी था या राघे अपने मन से ही कह रहा था ?" वह कहती है।

"राघे अपने मन से क्यों कहेगा ? हमसे झूठ बोलने की उसे क्या जरूरत है ?"

फूलकौर बेली हुई रोटी को गोल करके फिर पेड़ा बना लेती है। "मुझे एतबार नहीं आता कि वह चुडैल उसे आने देगी।"

"क्यों नहीं आने देगी ?" लड़का अपने मां-बाप के घर आना चाहे, तो वह उसे कैसे रोक लेगी ?"

फूलकौर बेली हुई रोटी हाथ पर लिए पल-भर कुछ सोचती रहती है। फिर उसे तवे पर डालती हुई कहती है, "उस दिन आई थी, तो मैंने उस पर सौंह जो डाली थी ! कहा था कि बाप की बेटी है, तो इसके बाद न कभी खुद इस घर में कदम रखे, न उसे रखने दे !"

भगत दांत का मैल तीली से फर्श पर रगड़ देता है। "तो किसी के सिर क्यों लगाती है, अपने से कह।"

"और तुमसे न कहूं जो खाना-पीना तक छोड़ बैठे थे ? हाय-हाय करते थे कि दूसरे की ब्याहकर छोड़ी हुई औरत घर में बहू बनकर कैसे आ सकती है ?"

भगत कुछ देर तीली को देखता रहता है, फिर उसे कई टुकड़ों में तोड़ देता है। "तुम मुझे बात करने देती, तो मैं जैसे-तैसे लड़के को समझा लेता।"

"तुम समझा लेते...तुम !" फूलकौर इतना उसकी तरफ झुक आती है कि भगत को उसे संभालकर पीछे हटा देना पड़ता है। "देखती नहीं, आगे चूल्हा है ?"

फूलकौर धोती के पल्लू को हाथ से दबा लेती है। देखती है कि कहीं जल तो नहीं गया। कहती है, "नहीं देखती तभी तो रात-दिन चूल्हे के पास बैठना पड़ता है।"

"तुझे...!" भगत बांह फेरकर मुंह साफ करता है।

"क्या कह रहे थे ?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ न कहना हो, तो चुप ही रहा करो न," फूलकौर और चिढ़ उठती है, "हमेशा इसी तरह आधी बात कहकर दूसरे का जी जलाते हो।"

भगत के गले से अजीब-सी आवाज़ पैदा होती है। खुले होंठ कुछ देर ढीले हो रहते हैं। फिर वह थूक निगलकर अपने को समेट लेता है।

"रोटी अभी खाओगे या ठहरकर ?" फूलकौर कुछ देर बाद पूछती है।

"अभी दे दो...या ठहरकर दे देना।"

"तुम एक बात नहीं कह सकते ? या कहो अभी दे दो, या कहो ठहरकर दो !"

भगत कुछ देर घूरकर देखता रहता है, जैसे सहने की हद को उसने पार कर लिया हो। "तुझे एक ही बात सुननी है," वह कहता है, "तो वह यह है कि न मैं अभी खाऊंगा, न ठहरकर खाऊंगा। तेरे हाथ की रोटी खाने से ज़हर खा लेना ज्यादा अच्छा है।"

···सीढ़ियों के हर खटके से वह चौंकती रहती है, 'कौन है ?" भगत उसे सीढ़ियों की तरफ जाते देखता है, तो गुस्से से रोककर खुद आगे चला जाता है। "कोई नहीं है," वह सीढ़ियों में देखकर कहता है, "जा रही थी वहां मरने ! अपना हाथ तक तो नज़र आता नहीं···आनेवाले का सिर-मुंह इसे नज़र आ जाएगा !"

फूलकौर बिना देखे लौट आती है···पर मन में सन्देह बना रहता है। उसे लगता है जैसे भगत के देखने की वजह से ही सीढ़ियां हर बार खाली हो जाती हों। वह इन्तज़ार करती है कि कब भगत घर से जाए और वह कुछ देर अकेली रहे। अकेले में ज़रा-सा भी खटका सुनाई देता है, तो वह जाकर सीढ़ियों में झुक जाती है। "बिशने···!"

कई बार देख चुकने के बाद एक बार सचमुच कोई सीढ़ियां चढ़ता नज़र आता है। बहुत पास आ जाने पर वह फिर एक बार धीरे से कहती है, "कौन है ? बिशना !"

"हां, बिशना !" भगत कुढ़ता हुआ उसे सहारे से अन्दर ले आता है। "तेरी आवाज़ सुनने के लिए ही रुका बैठा है वह ! जब तक एक बार तू लुढ़क नहीं जाएगी, तब तक वह ठीक से सुन नहीं पाएगा···"

फूलकौर अन्दर आकर भगत की तरफ नहीं देखती। उसे लगता है कि उसी की वजह से ही सब गड़बड़ हो गया है। अगर वह इस वक्त न आया होता···।

आधी रात को हौदी से उठकर पम्प पर हाथ धोने जाते फूलकौर सहमकर खड़ी रहती है। गीली ईंटों से भी ज्यादा डर लगता है जंगले से, जो पम्प के आगे दालान के एक-तिहाई हिस्से को घेरे है। लकड़ी के चौखटों में जड़ी बड़ी-बड़ी सलाखें, जिन पर से वह दिन में भी नहीं गुज़रती। लगता है नीचे से दीवानखाने का अंधेरा पैरों को बांध लेगा··· एक कदम रखने के बाद अगला कदम रख पाना सम्भव ही नहीं होगा। वह इस घर में आई थी, तब से अब तक दीवानखाना कभी खोला नहीं गया। वहां अन्दर क्या है, क्या नहीं, यह कोई भी नहीं जानता। यह भी नहीं कि कब कितनी पुश्तें पहले वह कमरा दीवानखाने के तौर पर इस्तेमाल होता था। कब से वह दीवानखाना मोहरा कहलाने के लगा था, इसका भी कुछ पता नहीं था···बनवारी भगत को भी नहीं। उसके होश से पहले एक बार दरवाज़ा खुला था···जिसके दूसरे-तीसरे दिन ही, कहा जाता था कि उसके बड़े भाई की मौत हो गई थी।

फूलकौर हौदी से उठकर देर तक जंगले के इस तरफ खड़ी रहती है। सलाखों की ठण्डक और घुटन उसे दूर-दूर से ही महसूस होती है···लगता है कि रात को दीवानखाने का अंधेरा अपनी खास गन्ध के साथ जंगले से ऊपर उठा आता है···उस वक्त हल्की-से-हल्की आवाज़ भी उसे उस अंधेरे की ही आवाज़ जान पड़ती है···जैसे कि अंधेरा हर आनेवाले की आहट लेता हो···और फिर चुपके से उसकी खबर नीचे दीवानखाने में पहुंचा देता हो।

किसी भी तरह हौदी से पम्प तक जाने का हौसला नहीं पड़ता। बिना हाथ धोए चुपचाप कमरे में आकर सोया भी नहीं जाता। वह भगत के सिरहाने बैठकर धीरे से कहती है, "सुनो··· मैं कहती हूं, ज़रा-सी देर के लिए उठ जाओ।" भगत के शरीर को

वह हाथ से नही छूती। छूने से शरीर गन्दा हो जाता है। भगत को उतनी रात मे भी कपड़े बदलकर नहाना पड़ता है।

[illegible] ती है। तब अचानक [illegible]

[illegible]"

भगत हड़बड़ाकर उठ बैठता है। पेट तक आई धोती को सभालकर घुटनों से नीचे कर जाता है। होंठों को हाथ से साफ करता हुआ कहता, "कढ़ी-चोर !"

"अब कौन है जिसे गाली दे रहे हो?" फूलकौर हल्के से कहती है · कुछ खुशामद के साथ · जैसे कि गाली देने वाले की जग; कसूरवार गाली खाने वाला हो।

भगत जवाब नही देता। जम्हाई के साथ चुटकी बजाता हुआ उठ खड़ा होता है। "श्री हरि ··श्रीनाथ हरि ··श्रीकृष्ण हरि···"

पम्प तक होकर वापस आते ही भगत फिर चादर ओढ़ लेता है। फूलकौर लेटने से पहले दालान का दरवाजा बन्द कर देती है।

भगत दूसरी तरफ करवट बदलने लगता है, तो वह कहती है, "सुनो···अब उसे गाली मत दिया करो।"

"तू मुझे सोने देगी या नही?" भगत झुंझलाता है, "किसे गाली दे रहा हूं मैं?"

'अभी उठते ही तुमने उसे गाली नही दी थी?" अब फूलकौर के स्वर मे खुशामद का भाव नही रहता।

"किसे?"

"उसे ही। बिशने को।"

"वह यहा सामने बैठा था जो मैं उसे गाली दे रहा था?"

"इसका मतलब है कि वह सामने आएगा, तो तुम गाली देने से बाज़ नही आओगे? मैं पहले नही कहती थी कि लडका बडा हो गया है, तुम्हें उससे ज़बान संभालकर बात करनी चाहिए?"

भगत मुंह का भाग गले में उतार लेता है। "उसे पता है गाली मेरे मुंह पर चढ़ी हुई है। मैं जान-बूझकर नही देता।"

"तो ठीक है। तुम आज तक अपनी कहानी से बाज़ आए हो, जो आज ही आओगे? मैं खामख्वाह अपना सिर खपा रही हूं।"

भगत कुछ देर चुप रहकर आखें झपकता है। "तू ऐसे बात कर रही है जैसे वह आज इसी वक्त चला आ रहा है।"

फूलकौर का सिर थोड़ा पास को सरक आता है। रुकती-सी सांस के साथ वह कहती है, "कम से कम मुंह से तो अच्छी बात बोला करो।"

"अब मैंने क्या कह दिया है?" एक तेज़ सांस फूलकौर की सांस से जा टकराती है।

"जिसे आना हो, वह भी ऐसी बात मुंह पर लाने से नही आता।"

भगत की सांस कुछ धीमी पड़ जाती है। वह कहता है, "उसके आने पर मैं कुछ बात ही नही करूंगा। चुप रहूंगा, तो गाली भी मुह से नहीं निकलेगी।"

फूलकौर का सिर सरककर वापस अपने तकिये पर चला जाता है। "हां, तुम मत कुछ भी बात करना उससे। जिससे वह आए भी, तो उसी वक्त लौट भी जाए। मुह तुम बन्द रख सकते हो, पर गाली देने से बाज़ नही आ सकते!"

"मैंने यह कहा है?"

"नहीं, यह नहीं, और कुछ हुआ है। तुम हमेशा अपने मुंह से ठीक बात कहते हो। सुनने वाला गलत सुन लेता है।"

भगत को नींद नहीं आती। हर करवट शरीर का बोझ बांह के किसी न किसी हिस्से पर भारी पड़ता है, हड्डियां चुभती हैं। एक ठण्डक-सी महसूस होती है। बाहर से नहीं, अन्दर से लगता है कि वही ठण्डक है, जो धीरे-धीरे बाहर फैलती जा रही है।

सिर के नीचे हाथ रखे वह अंधेरे को देखता रहता है···कभी-कभी अंधेरे में अपने को देखने की कोशिश करता है···जैसे कि लेटा हुआ आदमी कोई और हो, देखने वाला कोई और। पर ज्यादा देर अपने को इस तरह नहीं देखा जाता।

दो सांसों की आवाज़ लगातार सुनाई देती है···एक अपनी, दूसरी फूलकौर की। एक सास नीचे जाती है, तो दूसरी ऊपर आती है···फिर पहली ऊपर उठती है और दूसरी नीचे चली जाती है। कभी-कभी दोनों सांसें एक दूसरी को काटती हैं। वह पल-भर सास रोके रहता है, जिससे दोनों की लय फिर ठीक हो जाए···पर लय कुछ देर के लिए ठीक होकर फिर उसी तरह बिगड़ने लगती है।

कोई चीज पैर पर से गुजर जाती है। 'हा' की आवाज के साथ वह अचानक उठ बैठता है। पैर को छूकर इधर-उधर देखता है। फिर उठकर खड़ा हो जाता है। वह दीवार, जिस पर बिजली का बटन है, दो गज के फासले पर है। एक-एक कदम वह उस दीवार की तरफ बढ़ता है। हर बार जमीन को छूने से पहले एक सरसराहट जिस्म में भर जाती है···लगता है कि पैर किसी [illegible] से टकराने जा रहा है। साथ ही [illegible] न···ठोस-ठण्डा फर्श पैर से छू [illegible] क्षित होने के सुख का, पर तब

[illegible]टोलता हुआ हाथ बटन को ढूंढ लेता है, तो उस सुख की कई लहरें एक साथ शरीर में दौड़ जाती हैं। पचीस वाट के बल्ब की रोशनी कमरे की हर चीज को नये सिरे से जिन्दा कर देती है।

भगत सारे फर्श पर नजर दौड़ाता है। सन्दूकों के ऊपर-नीचे देखता है। बन्द दरवाजे में हल्की-सी दरार देखकर उसे पूरा खोल देता है···जैसे कि देखने की जिम्मेदारी बाहर देखे बिना पूरी न होती हो। "हट, हट, हट !" कहकर दहलीज लांघने से पहले वह कुछ देर रुका रहता है। ड्योढ़ी में बिस्तरे मैले कपड़ों और पुराने बिस्तरों में आहट का इन्तजार करता है। अफसोस होता है कि सब चीजें उस तरह क्यों पड़ी हैं। पर उन्हें उठाने की हिम्मत नहीं पड़ती। एक-एक चीज को आंखों से टटोलता है। छूता नहीं। लगता है छूने से वह लिजलिजी चीज आंखें और पंजे उठाए अचानक सामने नजर आ जाएगी।

लौटने से पहले दो-एक बार वह पैर से फर्श में धमक पैदा करता है। कहीं कोई हरकत नहीं होती। किसी तरफ से आहट सुनाई नहीं देती। पर दहलीज लांघकर वापस कमरे में कदम रखते ही बिजली टूटती है···वही लिजलिजी चीज तेजी से पैर के ऊपर से गुजर जाती है···और ड्योढ़ी पार करके जंगला पार करने की कोशिश में धप् से नीचे जा गिरती है। एक हल्की सी आवाज···च्यों च्यों च्यों··· और बस।

भगत जोरकर मग्न हो रहता है। लगता है जैसे उस तेज दौड़ती चीज के साथ उसके अन्दर की कोई चीज भी धप् से दीवानखाने में जा गिरी हो···और अब वहां से उठकर वापस आने की कोशिश में वहीं डूबती जा रही हो। दरवाजा बन्द करके लम्बे

कदम रखता हुआ वह बिस्तर पर लौट आता है।

अब उसे बत्ती बुझाने का ध्यान आता है। वापस दीवार तक जाने बत्ती बुझाने और लौटकर बिस्तर तक आने की बात सोचकर घुटने कांपने लगते हैं।

उसे बिशने का खयाल आता है। अभी तीन साल पहले की बात थी, जब बिशन ने दीवानखाने से निकले सांप को निचली ड्योढ़ी मे लाठी से मार दिया था। इस बात पर बिशने से कितनी खटपट हुई थी! बड़ों से सुन रखा था कि दीवानखाने मे खानदान का पुराना धन गड़ा है, और उनके बाबा-पड़दादा सांप बनकर उसकी रखवाली करते हैं। दीवानखाने को खोला इसीलिए नही जाता था कि पुरखे उससे नाराज न हो जाएं। और यह लड़का था कि इसने नाली के रास्ते हवा लेने बाहर आए एक पुरखे को जान ही से मार डाला था!

"सुन!" वह फूलकौर को धीरे से हिलाता है। दो जागती आंखों के सामने ही वह बत्ती बुझाना चाहता है।

फूलकौर आखे खोलती है···इस तरह जैसे कि जगाए जाने की राह ही देख रही हो उसके होंठो पर हल्की मुसकराहट आती है··सपने से बाहर चली आई-सी। "क्या बात है?" वह पूछती है।

"कुछ नहीं। ऐसे ही आवाज दी थी।"

फूलकौर के होठ उसी तरह फैल रहते हैं···सिर्फ मुसकराहट की रेखा परेशानी की रेखा मे बदल जाती है। "तबीयत ठीक है?" वह पूछती है।

"हां, ठीक है।"

"पानी-आनी चाहिए?"

"नही।"

"फिर··?"

"एक बात कहनी थी···"

फूलकौर बैठ जाती है। "मुझे पता है जो बात कहनी थी, बत्ती बुझानी होगी।"

"इतनी ही तो समझ है तेरी!" भगत खीज उठता है, "बत्ती बुझाने के लिए मैं तुझे जगाऊंगा! ···मैं बात करना चाहता था, उसके बारे मे···"

"पहले उठकर बत्ती बुझा दो···फिर जो चाहो बात करते रहना।"

भगत उठता है···जैसे ताव मे···और बत्ती बुझाकर लौट आता है। अंधेरे में कुछ देर दोनों राह देखते हैं···एक-दूसरे की आवाज सुनने की। फिर फूलकौर धीरे से कहती है। "अब बोलते क्यो नही।"

भगत चुप रहता है। सोचता है कि अगली बार भी जवाब नही देगा। सिर्फ इतना कह देगा "कुछ नही।"

मगर फूलकौर दोहराकर नही पूछती। कहती है, "अच्छा, मत बताओ।" भगत के मुंह तक आया हुआ 'कुछ नही' तब तक बाहर फिसल आता है। वह उसे समेटता हुआ कहता है, "कुछ खास बात नही···इतना ही कहना चाहता था कि···अगर दो चूल्हे अलग-अलग कर लिए जाएं·· वे लोग कुछ खाना-पकाना चाहे, अलग खा-पका लें···"

फूलकौर की आंखें अंधेरे में उसके चेहरे को टटोलती हैं, "क्या कहा है तुमने?"

"यही कि ··"

"तुम कह रहे हो यह बात?"

खटमल जैसी कोई चीज भगत को अपनी जाघ पर रेंगती महसूस होती है। उसे वह अगूठे से मसल देता है। "मैं तेरी वजह से कह रहा था···क्योंकि बाद में तू सारी

"नहीं, यह नहीं, और कुछ हुआ है। तुम हमेशा अपने मुंह से ठीक बात कहते हो। सुनने वाला गलत सुन लेता है।"

भगत को नींद नहीं आती। हर करवट शरीर का बोझ बांह के किसी न किसी हिस्से पर भारी पड़ता है, हड्डियां चुभती हैं। एक ठण्डक-सी महसूस होती है। बाहर से नहीं, अन्दर से लगता है कि वही ठण्डक है, जो धीरे-धीरे बाहर फैलती जा रही है।

सिर के नीचे हाथ रखे वह अंधेरे को देखता रहता है...कभी-कभी अंधेरे में अपने को देखने की कोशिश करता है...जैसे कि लेटा हुआ आदमी कोई और हो, देखने वाला कोई और। पर ज्यादा देर अपने को इस तरह नहीं देखा जाता।

दो सांसों की आवाज लगातार सुनाई देती है...एक अपनी, दूसरी फूलकौर की। एक सांस नीचे जाती है, तो दूसरी ऊपर आती है...फिर पहली ऊपर उठती है और दूसरी नीचे चली जाती है। कभी-कभी दोनों सांसें एक दूसरी को काटती हैं। वह पल-भर सांस रोके रहता है, जिससे दोनों की लय फिर ठीक हो जाए...पर सब कुछ देर के लिए ठीक होकर फिर उसी तरह बिगड़ने लगती है।

कोई चीज पैर पर से गुजर जाती है। 'हा' की आवाज के साथ वह अचानक उठ बैठता है। पैर को छूकर इधर-उधर देखता है। फिर उठकर खड़ा हो जाता है। वह दीवार, जिस पर बिजली का बटन है, दो गज के फासले पर है। एक-एक कदम वह उस दीवार की तरफ बढ़ता है। हर बार जमीन को छूने से पहले एक सरसराहट जिस्म में भर जाती है...लगता है कि पैर किसी लिजलिजी चीज से टकराने जा रहा है। साथ ही एक डर भी महसूस होता है...कि कहीं अगर वह चीज...ठोस-ठण्डा फर्श पैर से छू जाता है, तो हल्का-सा आभास सुख का भी होता है, सुरक्षित होने के सुख का, पर तब तक अगला कदम डर की हद तक पहुंच चुका होता है...

टटोलता हुआ हाथ बटन को ढूंढ लेता है, तो उस सुख की कई लहरें एक साथ शरीर में दौड़ जाती हैं। पचीस वाट के बल्ब की रोशनी कमरे की हर चीज को नये सिरे से जिन्दा कर देती है।

भगत सारे फर्श पर नजर दौड़ाता है। सन्दूकों के ऊपर-नीचे देखता है। बन्द दरवाजे में हल्की-सी दरार देखकर उसे पूरा खोल देता है...जैसे कि देखने की जिम्मेदारी बाहर देखे बिना पूरी न होती हो। "हट, हट, हट!" कहकर दहलीज लांघने से पहले वह कुछ देर रुका रहता है। ड्योढ़ी में बिखरे मैले कपड़ों और पुराने बिस्तरों में आहट का इन्तजार करता है। अफसोस होता है कि सब चीजें उस तरह क्यों पड़ी हैं। पर उन्हें उठाने की हिम्मत नहीं पड़ती। एक-एक चीज को आंखों से टटोलता है। छूता नहीं। लगता है छूने से वह लिजलिजी चीज आंखें और पंजे उठाए अचानक सामने नजर आ जाएगी।

लौटने से पहले दो-एक बार वह पैर से फर्श में धमक पैदा करता है। कहीं कोई हरकत नहीं होती। किसी तरफ से आहट सुनाई नहीं देती। पर दहलीज लांघकर वापस कमरे में कदम रखते ही बिजली टूटती है...वही लिजलिजी चीज तेजी से पैर के ऊपर से गुजर जाती है ...और ड्योढ़ी पार करके जंगला पार करने की कोशिश में धप् से नीचे जा गिरती है। एक हल्की-सी आवाज... च्यो च्यो च्यो · और बस।

भगत कांपकर सुन्न हो रहता है। लगता है जैसे उस तेज दौड़ती चीज के साथ उसके अन्दर की कोई चीज भी धप् से दीवानखाने में जा गिरी हो...और अब वहां से उठकर वापस आने की कोशिश में वहीं डूबती जा रही हो। दरवाजा बन्द करके लम्बे

कदम रखता हुआ वह बिस्तर पर लौट आता है।

अब उसे बत्ती बुझाने का ध्यान आता है। वापस दीवार तक जाने बत्ती बुझाने और लौटकर बिस्तर तक आने की बात सोचकर घुटने कांपने लगते हैं।

उसे बिशने का खयाल आता है। अभी तीन साल पहले की बात थी, जब बिशन ने दीवानखाने से निकले सांप को निचली ड्योढ़ी में लाठी से मार दिया था। इस बात पर बिशने से कितनी खटपट हुई थी ! बड़ों से सुन रखा था कि दीवानखाने में खानदान का पुराना धन गड़ा है, और उनके बाबा-पड़दादा सांप बनकर उसकी रखवाली करते हैं। दीवानखाने को खोला इसीलिए नहीं जाता था कि पुरखे उससे नाराज न हो जाएं। और यह लड़का था कि इसने नाली के रास्ते हवा लेने बाहर आए एक पुरखे को जान ही से मार डाला था !

"सुन !" वह फूलकौर को धीरे से हिलाता है। दो जागती आंखों के सामने ही वह बत्ती बुझाना चाहता है।

फूलकौर आंखें खोलती है···इस तरह जैसे कि जगाए जाने की राह ही देख रही हो उसके होंठों पर हल्की मुसकराहट आती है···सपने से बाहर चली आई-सी। "क्या बात है ?" वह पूछती है।

"कुछ नहीं। ऐसे ही आवाज दी थी।"

फूलकौर के होंठ उसी तरह फैल रहते हैं···सिर्फ मुसकराहट की रेखा परेशानी की रेखा में बदल जाती है। "तबीयत ठीक है ?" वह पूछती है।

"हां, ठीक है।"

"पानी-आनी चाहिए ?"

"नहीं।"

"फिर···?"

"एक बात कहनी थी···"

फूलकौर बैठ जाती है। "मुझे पता है जो बात कहनी थी, बत्ती बुझानी होगी।"

"इतनी ही तो समझ है तेरी !" भगत खीज उठता है, "बत्ती बुझाने के लिए मैं तुझे जगाऊंगा ! ···मैं बात करना चाहता था, उसके बारे में···"

"पहले उठकर बत्ती बुझा दो···फिर जो चाहो बात करते रहना।"

भगत उठता है···जैसे ताव में···और बत्ती बुझाकर लौट आता है। अंधेरे में कुछ देर दोनों राह देखते हैं···एक-दूसरे की आवाज सुनने की। फिर फूलकौर धीरे से कहती है। "अब बोलते क्यों नहीं।"

भगत चुप रहता है। सोचता है कि अगली बार भी जवाब नहीं देगा। सिर्फ इतना कह देगा "कुछ नहीं।"

मगर फूलकौर दोहराकर नहीं पूछती। कहती है, "अच्छा, मत बताओ।" भगत के मुंह तक आया हुआ 'कुछ नहीं' तब तक बाहर फिसल आता है। वह उसे समेटता हुआ कहता है, "कुछ खास बात नहीं···इतना ही कहना चाहता था कि···अगर दो चूल्हे अलग-अलग कर लिए जाएं·· वे लोग कुछ खाना-पकाना चाहें, अलग खा-पका लें···"

फूलकौर की आंखें अंधेरे में उसके चेहरे को टटोलती हैं, "क्या कहा है तुमने ?"

"यही कि ··"

"तुम कह रहे हो यह बात ?"

खटमल जैसी कोई चीज भगत को अपनी जांघ पर रेंगती महसूस होती है। उसे वह अंगूठे से मसल देता है। "मैं तेरी वजह से कह रहा था···क्योंकि बाद में तू सारी

बात मेरे सिर पर डाल देगी।"

"बिशना आए तो कह दूँ मैं उससे ?"

"हाँ···कह देना।"

"तो इसका मतलब है कि···"

भगत कुछ न कहकर आगे सुनने की राह देखता है।

"···कि वह भी बिशने के साथ यहीं रहेगी आकर···?"

भगत धोती उठाकर जाप को अच्छी तरह झाड़ लेता है। "अब मेरी कोई ज़िम्मेदारी नहीं। मुझे पता था, तू इन्हें घर में रखने को राज़ी नहीं है।"

"यह कहा है मैंने ?"

"खुद चाहती नहीं है, और तोहमत मेरे सिर पर लगाती है।"

"मैं नहीं चाहती ?···मेरी तरफ से वह किसी को भी घर में ले आए। मैं यहाँ न पड़ रहूँगी, पीछे के कमरे में पड़ रहूँगी। फ़र्क़ जो पड़ता है, वह तो तुम्हारी भगताई को ही पड़ता है।"

"मुझे क्या फ़र्क़ पड़ता है ?" भगत उतावला होकर कहता है, "ठाकुर जी की सेवा के लिए मैं कुएँ से किरमिच के डोल में पानी ले आया करूँगा।"

कुछ देर खामोशी रहती है। दोनों की साँसें एक-तार चलती हैं। फिर भगत कहता है, "दरअसल उसे संगत अच्छी नहीं मिली।"

"किसे ?"

"बिशने को, और किसे ?···अब यह राधे ही है···न रखता उन्हें अपने घर में··· कह रहा था कटरे में उनके लिए अलग मकान भी देख रहा है।"

"वह अलग मकान लेकर रहेगा ?"

भगत हुँकारा भरकर खामोश ही रहता है। कुछ देर बाद करवट बदलते हुए कहता है, "कढ़ी-चोर···।"

चौगान

पीछे का दरवाज़ा खुलकर बन्द हुआ और बरामदे में पैरों की आहट सुनाई दी तो साहब की मुँदी हुई आँखें अनायास खुल गईं। गरदन लेटे-लेटे जकड़ गई थी, इसलिए उसने आँखों को ही थोड़ा घुमाकर देख लिया। काशीराम कॉफ़ी की ट्रे लिए आ रहा था और उसका जूता बरामदे में ठक्-ठक् कर रहा था। साहब के माथे पर हल्की-सी शिकन पड़ गई। उसने बीसियों बार इस आदमी को समझाया था कि वह चाय-कॉफ़ी लेकर उसके पास आए तो अपना कीलों वाला जूता उतार दिया करे, और दूसरा रबड़ का जूता पहन लिया करे। मगर काशीराम के दिमाग़ में जाने कैसा सूराख था कि उसे यह बात कभी याद ही नहीं रहती थी।

"साहब जी, कॉफ़ी !" काशीराम पास आकर खड़ा हो गया, तो भी पल-भर साहब उसे गुस्से की नज़र से देखता रहा। मगर मन में दूसरी बात उठ आने से वह कीलों वाले जूते की बात भूल गया और उसका गुस्सा बैठ गया। काशीराम ने एक तिपाई खींचकर साहब की कुर्सी के पास कर दी और चाय की ट्रे उस पर रख दी।

"मेम साहब नहीं आया ?" साहब ने पूछा।

"नही साहब जी, अभी नही आया," कहकर काशीराम कॉफी प्याली मे डालने लगा।

"तुम जाओ, हम खुद बनाएगा।" कहते हुए साहब ने अपने शरीर को सीधा कर लिया। काशीराम कॉफी-पॉट ट्रे मे रखकर चला गया। उसके जूतो की आवाज़ काफी देर साहब के माथे की नसो पर चोट करती रही। एक बार उसने हाथ बढाया कि अपने लिए कॉफी की प्याली बना ले, मगर हाथ चायदानी के दस्ते को छूकर लौट आया। उसे कॉफी बनाने-पीने की ज़रा भी इच्छा अपने अन्दर महसूस नहीं हुई। उसका शरीर आराम-कुर्सी पर थोडा नीचे को सरक गया, पैर बरामदे की रेलिंग पर फैल गए और दोनो हाथ सिर के नीचे चले गए। उसे लगा जैसे वह अभी-अभी कडी मेहनत करके हटा हो जिससे उसका शरीर निढाल हो गया हो, और अब उसे आराम की जरूरत हो।

उसे अपनी टांगो, बांहों और आंखो पर न जाने कैसा बोझ-सा महसूस हो रहा था। आंखें बन्द होतीं तो खुली रहना चाहतीं, और खुली होतीं तो अपने-आप बन्द होने लगतीं। सामने का आकाश किसी-किसी क्षण बिलकुल स्याह हो जाता, मगर फिर वह स्याही ज़रा-ज़रा साफ होने लगती और कुछ बरसे हुए बादल के टुकडे, कुछ पतले-पतले वृक्षो की रेखाएं और उनकी दरारों के बीच रात होने से पहले ही भटक आया एकाध तारा, ये सब धुधले दृश्य की तरह दिखाई दे जाते। उसके बाद आंख फिर मुदने लगतीं और वह धुधला दृश्य फिर गहरी स्याही मे बदल जाता है।

बरामदे में दूसरी बार आहट सुनाई दी तो उसको आंखें खोलने का मन नहीं हुआ। वह आहट काशीराम के जूते की आवाज़ से अलग थी। उसे पता था कि वह किसके पैरो की आहट है, पर चाहते हुए भी उससे आंखे नही खोली गई। आहट उसके कानो के बहुत पास तक आकर दूर जाने लगी, तो उसने किसी तरह कठिनाई से अपने को झटक लिया। वृक्षों की रेखाएं तब तक सचमुच अंधेरे मे डूब गई थी, यद्यपि बादलों के टुकड़े पहले से ज्यादा सफेद हो गए थे और वह अकेला तारा कितने ही तारों के झुरमुट मे घिर गया था। उसने अपनी नज़र बाईं तरफ घुमाई तो देखा कि सन्तो अपनी चप्पल हाथों में लिए उसके पास से गुजरकर दबे पैरों पीछे के कमरे की तरफ जा रही है।

"सुनो," साहब के गले से डूबी-सी आवाज निकली। सन्तो चलती-चलती ठिठक गई और उसने जल्दी से चप्पल पैरो में पहन ली। हल्के कदमों से चलती हुई वह साहब के पास आ गई।

"साहब जी," वह अपराधी की तरह जमीन पर बैठने लगी तो साहब ने हाथ के इशारे से उसे रोक दिया।

"उधर नही बैठो, कुर्सी लेकर बैठो।"

सन्तो ने सहमी हुई नजर से इधर-उधर देखा। बरामदे में दूसरी कुर्सी नही थी।

"मैं अभी लेकर आती हूं," उसने कहा।

"काशीराम को बोलो।"

सन्तो ने काशीराम को आवाज़ दी। वह उसी तरह ठक्-ठक् करता आया और कुर्सी रखकर चला गया।

"बैठो।"

सन्तो बैठ गई। साहब ने सीधे होने की चेष्टा की तो उससे उठा नही गया। उसकी टांगें सो गई थी और बाहों में इतनी हिम्मत नही थी कि पूरे शरीर का भार सभालकर उसे ऊपर उठा दें। सन्तो ने उठकर साहब की बाहों को सहारा दिया और उसे ठीक से बिठाकर फिर अपनी कुर्सी पर चली गई। साहब को खासी उठ आई। कुछ क्षण

बेहाल-सा बैठा सन्तो के चेहरे की तरफ देखता रहा।

"मैंने तुमको बोला था," साहब की बात पूरी नहीं हुई। उसका गला बुरी तरह खुश्क हो रहा था।

"मैं उधर नहीं गई थी, साहब जी !" सन्तो कुर्सी से उठकर ज़मीन पर बैठ गई और अपने दोनों हाथ उसने साहब के पैरों पर रख दिए, "मैं अपनी मां की कसम खाकर कहती हूं कि मैं उधर नहीं गई थी।"

"उठकर कुर्सी पर बैठो," साहब ने अन्दर से उठती खांसी की वजह से अपनी छाती को दबाए हुए कहा, "मैंने तुमको बोला नहीं था कि···"

"अच्छा साहब जी, गलती माफ कर दो। मैं कुर्सी पर बैठ जाती हूं।" संतो की आंखों में आंसू आ गए और वह सहमी नज़र से साहब की तरफ़ देखने लगी जैसे अभी उसकी पिटाई होने वाली हो।

"तुम चौगान नहीं गई थी।

सन्तो चुपचाप देखती रही। जैसे उसे लग रहा हो कि चांटा अब आया कि अब आया—हालांकि पिछले एक-डेढ़ साल से साहब के हाथों में इतनी ताकत नहीं रही थी कि चांटा लगाने के लिए उठ भी सकें।

"मैं क्या पूछ रहा हूं ? तुम चौगान गई थी कि नहीं ?"

सन्तो ने सिर हिला दिया। उसकी पलकों में रुके हुए आंसू नीचे ढुलक आए। उसने अपनी कमीज़ की बांह से आंखें पोंछ लीं।

"कमीज़ से आंखें क्यों पोंछती हो ?" साहब सहसा चौगान की बात भूल गया और उसका चेहरा गुस्से से तमतमा उठा।

"नहीं पोंछती, साहब जी," कहती हुई सन्तो हाथों से आंखें मलने लगी।

'मैंने तुमको यह बोला था कि तुम हाथों से आंखें पोंछा करो ?" साहब गुस्से में थोड़ा ऊंचा उठने को हुआ, पर सहसा उसे पसीना आ गया। उसका शरीर शिथिल हो गया और चेहरे पर ज़र्दी छा गई। वह आंखें मूंदकर कुर्सी पर नीचे को लुढ़क गया। सन्तो घबराकर कुर्सी से उठ खड़ी हुई और साहब का चेहरा दोनों हाथों से लेकर हिलाने लगी।

"साहब जी ! साहब जी ओ !"

साहब की आंखें पल भर बाद ज़रा-सी खुलीं, और उसने बुदबुदाकर कहा, "ब्रांडी।" सन्तो नंगे पैरों ब्रांडी लाने के लिए दौड़ पड़ी। साहब के माथे की त्योरी गहरी हो गई और उसने एक लम्बी सांस लेकर कहा, "ओ गॉड !"

पत्तों से छनकर आती चितकबरी चांदनी में लेटे हुए साहब की आंखें कमरे की और आकाश के उस टुकड़े की जो खिड़की से दिखाई दे रहा था, गहराई को नाप रही थीं। हैरी, हैरी विलसन···जो कभी लन्दन के क्लबों और नाचघरों का शौकीन था, जो अपने यूनिवर्सिटी के दिनों में एक फ़ैशनपरस्त नवयुवक था, अब अपने देश से हज़ारों मील दूर, हिन्दुस्तान के इस छोटे-से कस्बे में आकर केवल 'साहब' रह गया था। साहब—जिसके आगे न हैरी लगता था, न पीछे विलसन। वह विदेशी नाम ही जैसे उसका एक नाम रह गया था, हालांकि बरसों से सुनते रहने के बाद भी वह उसे बेगाना-सा लगता था। परन्तु वह बेगानापन, जो उसे अपने-आपसे भी बेगाना रहता था, उसके व्यक्तित्व के लिए कितना स्वाभाविक हो गया था !

बाहर से आती हवा में सेब, अनार और नाशपाती की मिली-जुली गन्ध थी जो

बहुत परिचित होते हुए भी अपरिचित लग रही थी। जैसे कि वह गन्ध भी उस नाम की तरह बेगानी हो। उस गन्ध में वह आत्मीयता नहीं थी जो लन्दन के धुएं और कोहरे में प्रतीत होती थी। पहले महायुद्ध के दिनों में मोर्चे पर लड़ते हुए भी उसे कई बार उस धुएं और कोहरे की गन्ध याद आया करती थी। जाने वह धुआं और कोहरा उसके स्नायुओं में क्यों इस तरह बसा हुआ था ?

चितकबरी चांदनी के नन्हे-नन्हे गोले रह-रहकर हिल जाते। उसका सिर जकड़ा हुआ था और कनपटियों की नसों में हलका-हलका दर्द हो रहा था। उसे लग रहा था जैसे वह बिस्तर पर न होकर एक जहाज़ की छत पर लेटा हो और वह जहाज उसे न जाने किस अज्ञात दिशा की ओर लिए जा रहा हो। किसी-किसी क्षण उसे महसूस होता कि अभी जहाज़ का भोंपू बजेगा और वह सिर उठाकर देखेगा, तो उसे टेम्ज के किनारे बसे हुए घरों की पंक्तियां दिखाई देंगी।

उसे लग रहा था कि वह एक लम्बी तट-रेखा के साथ-साथ चल रहा है और कई-कई चेहरे उसके पास से गुज़रते जाते हैं। उसका बड़ा लड़का जिमी कप्तान की वर्दी में किसी जहाज़ की रेलिंग के पास खड़ा सिगार पी रहा है...छोटा लड़का फ्रेड एक कारखाने में मशीन चला रहा है...उसकी लड़की मार्गरेट एक क्लब में अधनंगी नाच रही है...और उसकी पत्नी लिज़ी एक मामूली-से घर में एक उसी जैसे बूढ़े आदमी को प्यार से काफ़ी की प्याली बनाकर दे रही है। लिज़ी ! उसे बहुत अजीब लगता था कि लिज़ी का चेहरा जब भी याद आता था, तो वह तीस बरस पहले का युवा चेहरा ही होता था जिसे उसने आखिरी बार अदालत के कटघरे में देखा था। लिज़ी ने उसके तीन बच्चों की मां होकर भी उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। उसने कहा था कि वह उसे नहीं चाहती, किसी और को चाहती है...और इस तरह की ज़िन्दगी ढोना उसके लिए संभव नहीं है। वह स्वभाव का सख्त आदमी था और लिज़ी को उससे काफ़ी शिकायत रहती थी। पहले कुछ साल लिज़ी सब कुछ सहती हुई भी खामोश रही थी मगर जब वह बोल पड़ी, तो ज़िन्दगी को फिर पुरानी सतह पर ले जाना संभव नहीं हुआ। मगर लिज़ी ने हैरी की डांट-फटकार को ही सुना था, उसके अन्दर क्या कभी झांककर नहीं देखा था ? काश कि लिज़ी उसके दिल को समझ सकी होती...!

उसने करवट बदल ली। उसका चेहरा तकिये में धंसा, तो जैसे वह स्वयं ही एक गहराई में धंसता चला गया। लिज़ी के साथ सम्बन्ध-विच्छेद के बाद के दस वर्ष ! कितनी यातना थी इन दस वर्षों में ! उसे घर में रहना तो क्या, लन्दन में जीना ही एक यन्त्रणा लगती थी। मां के बाद बच्चे बिलकुल अपनी मर्ज़ी से चलने लगे थे—उसका ज़रा कहा नहीं मानते थे। वह क्लबों और नाचघरों में जाता, तो उसे लगता जैसे वह अपना ही भूत हो जो अपनी गुज़री हुई ज़िन्दगी के आस-पास मंडरा रहा हो। उसकी सेहत काफ़ी गिर गई थी और उसके डॉक्टर भी उसे लन्दन छोड़कर चले जाने का परामर्श देते थे। आखिर उसने तय किया था कि वह कहीं बहुत दूर चला जाएगा—किसी बहुत एकान्त जगह पर और अपनी ज़िन्दगी बिलकुल नये सिरे से शुरू करेगा। उस समय वह पचपन को छू रहा था, फिर भी उसी आशा का सूत्र पकड़े वह हिन्दुस्तान चला आया था। कुल्लू का वह गांव उसने युद्ध के दिनों में एक बार पहले भी देखा था...उन दिनों रोहतांग के पास उनकी छावनी थी। न जाने क्यों, जब भी वह देश से बाहर जाकर कहीं बसने की बात सोचता, तो उसी गांव का चित्र उसके सामने आ जाता। वह जब यहां आया, तो गांव बिलकुल उजाड़ था। उसने वहां अपनी कोठी बनवाई और बगीचे लगवाए। उसके बाद इस इलाके की आबादी बढ़ने लगी। लोग उसकी इज़्ज़त करते थे और उससे डरते भी

थे। वह बन्दूक हाथ में लिए जब घूमने के लिए निकलता, तो उसे स्वयं लगता जैसे वह उस प्रदेश का शासक हो और बाकी सब लोग उसकी प्रजा हों। यह सब उसे अच्छा लगता था, मगर जब वह खाने की मेज पर अकेला बैठता, तो एक विचित्र बेगानापन उसे घेर लेता। अकेले क्षणों में उसे अपने 'साहब' से घृणा होने लगती और उसका मन फिर से हैरी विलसन बनकर जीने को करता।

कुछ वर्ष तो उसने अकेले काट लिए, मगर जब वह अकेलापन बहुत ही असह्य प्रतीत होने लगा तो उसने अपने आखिरी दिन काटने के लिए बगीचे की बूढ़ी नौकरानी की लड़की सन्तो को घर में रख लिया। सन्तो तब मुश्किल से सत्रह साल की थी। वह उसकी भाषा नहीं बोल सकती थी, पर उसने स्वयं उन लोगों की भाषा काफी सीख ली थी। सन्तो की मां को उसने पांच सौ रुपया देकर वहां से साठ मील दूर एक और गांव में बसा दिया जिससे उस सम्बन्ध की हीनता को वह कुछ हद तक भुलाए रख सके।

परन्तु उससे भी उसका अकेलापन दूर नहीं हुआ। सन्तो उसकी निकटता में आकर ऐसे व्यवहार करती थी जैसे एक बच्चे को किसी बहुत ऊंची कुर्सी पर बिठा दिया गया हो और वह वहां बैठकर खुश भी हो और साथ डरता भी हो कि कहीं नीचे न गिर जाए। वह सन्तो से प्यार करता था, तो सन्तो इस तरह उसके मुंह की तरफ देखती रहती थी जैसे वह इन्सान न होकर किसी कीमती धातु का बना एक बुत हो। वह चाहता था कि सन्तो किसी तरह उसके बराबर की हो जाए, उसकी बात को समझ सके और उसके दर्द की गहराई को नाप सके। परन्तु वह कभी उसे अपने पिछले जीवन की बातें सुनाने लगता, तो सन्तो सहसा खिलखिलाकर हंस पड़ती और वह अवाक् होकर उसके चेहरे की तरफ देखता रह जाता।

"तो तुम्हारा वह बेटा बहुत बड़ा है, साहब जी ?" वह पूछती।

वह सिर हिला देता और पल-भर के लिए आंखें मूंद लेता।

"तुमसे भी बड़ा ?"

वह फिर सिर हिलाता और आंखें खोल लेता। सन्तो फिर हंसती, "कैसी बात करते हो, साहब जी ? तुम्हारा बेटा तुमसे बड़ा कैसे हो सकता है ?"

सन्तो उसे नि संकोच भाव से अपने शरीर से खेल लेने देती थी, और जब वह खेल चुकता तो सारे घर में खुशी से नाचती फिरती थी जैसे वह हरेक को यह बता देना चाहती हो कि साहब कैसे उसके बालों में उंगलियां उलझाता है और उससे मीठी-मीठी बातें कहता है। वह नंगे पैरों घर-भर में दौड़ती थी, और ज़रा-ज़रा देर में अपने नये फ्रॉक मैले कर आती थी। वह उसे रहन-सहन की आदतें सिखाने के लिए रात-दिन मेहनत करता था। "सन्तो, तुमसे कहा था कि चाय पीते वक्त यह कपड़ा अपनी जांघों पर बिछा लेते हैं। फिर तुमने चाय अपने कपड़ों पर गिरा ली ?"

सन्तो डरी हुई नजर से उसकी तरफ देखती। उसके हाथ की प्याली से और चाय छलक जाती।

"जाओ, कपड़े बदलकर आओ !"

"साहब जी, आज माफ कर दो, कल से नहीं गिराऊंगी।" यह कहते-कहते चाय की प्याली उसके हाथ में फिर तिरछी हो जाती।

"तुम्हें अभी तक चाय की प्याली पकड़ना भी नहीं आया ? मैंने कितनी बार सिखाया है ?"

"हां, साहब जी तुमने बहुत बार सिखाया है।"

"तो फिर ?"

"अब नही गिराऊंगी, साहब जी। मैं अब कभी नही गिराऊंगी," और वह होंठ विसोरकर रोने लगती।

"मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि मेरे सामने रोया मत करो ?"

"अब नही रोऊंगी साहब जी !" और वह फ्रॉक की बांह से और हाथों से आंखें मलने लगती।

वह झल्लाकर अपनी जगह से खडा होता। "मैंने तुमसे यह नही कहा था कि आखें फ्रॉक से और हाथो से नही पोंछते ?"

सन्तो कभी डर से सहमी हुई उसकी तरफ देखती रहती और कभी ज़मीन पर उलटी लेटकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगती।

वह हताश होकर कमरे से निकल जाता। कुछ देर बाद लौटकर स्वयं ही उसे ज़मीन से उठाता।

"अब तुम रोना बन्द करोगी या नही ?"

वह सिर हिलाती और उठ खडी होती।

"जाकर कपड़े बदलोगी या नही ?"

"बदलूगी।"

"सिर मे आज तेल डाला था ?"

"नही।"

"दात साफ किए थे ?"

"नही।"

"क्यो ?"

"अब जाकर कर लेती हूं।"

"तुम्हें मैं तुम्हारी मां के पास भेज दू ?" वह फिर झल्ला उठता। सन्तो डरकर सिर हिलाती, "नही।"

"तुम्हारी ये गन्दी आदतें कभी छूटेंगी भी ?"

वह सिर हिलाती, "क्यो नही छूटेंगी ?"

"कब छूटेंगी ?"

"कल से छूट जाएंगी।"

वह एक उसास भरकर बन्दूक उठाता और बागीचो की तरफ निकल जाता।

पहले दिनों में उसके झल्लाने से सन्तो बहुत रोया करती थी, मगर पिछले एक-डेढ साल से स्थिति बदल गई थी। जब से उसे दिल का दौरा पडने लगा था और उसका घूमना-फिरना बन्द हुआ था, तब से उसका डाटना भी काफी कम हो गया था। इससे सन्तो पहले से खुश रहती और वही कभी-कभी तकिए में मुह छिपाकर चुपचाप रो लिया करता था। सन्तो उसे रोते देखती, तो उसके सिरहाने आ खड़ी होती। "साहब जी, बहुत दर्द होता है क्या ?"

वह हाथ के इशारे से उससे कहता कि वह पास से हट जाए—वह कोई बात नही करना चाहता।

"साहब जी, डॉक्टर को बुलवाकर सूई लगवा लो, दर्द ठीक हो जाएगा," वह कहती।

वह व्यथित भाव से आंखें उठाकर उसकी तरफ देखता। सन्तो उसके और पास झुक आती। "साहब जी, तुम्हारा दर्द कितने दिन मे ठीक हो जाएगा ?"

"क्यों ?" उसका मन खिड़की से बाहर दूर की गहराई में डूबने लगता।

"कितने दिन हो गए साहब जी, तुमने···तुमने···"

"जाओ।" उसका सिर तकिये में गहरा डूब जाता। आकाश की सारी गहराई उसके आस-पास सिमट आती।

"साहब जी, जहां दर्द है, वहां तेल की मालिश कर दूं?"

वह कुछ न कहकर चुप पड़ा रहता।

"टेमी तेल की मालिश से दर्द को बड़ी जल्दी आराम आ जाता है।"

वह करवट बदलकर मुंह दूसरी तरफ कर लेता।

"अच्छा साहब जी, मैं चौगान से लकड़ियां चिरवा लाऊं!"

वह फटी-फटी आंखों से सामने की दीवार की तरफ देखता रहता। वह धीरे से कमरे से बाहर चली जाती।

साहब का तकिया भीग गया था। कुछ पसीने से, कुछ आंसुओं से। चितकबरी चांदनी के गोले उस पर हिल रहे थे, जैसे हवा में पनिया कांप रही हो। दूर से व्यास की आवाज़ इस तरह सुनाई दे रही थी जैसे लगातार एक ज़ोर का विस्फोट चल रहा हो। व्यास की आवाज़ में डूबती-उतरती कुछ और आवाज़ें थीं जो अस्पष्ट होती हुई भी हवा के किसी-किसी झोंके में स्पष्ट हो जाती थीं—एक हंसी, एक गीत का टुकड़ा, एक शराबी की बड़बड़ाहट और एक बांसुरी की लय—और सहसा वे सब आवाज़ फिर दरिया की गड़गड़ाहट में डुबकी लगा जाती थीं। साहब के मन में हर आवाज़ की एक तसवीर बन जाती—एक लड़की—शायद सन्तो—दरिया के किनारे एक पत्थर पर बैठी हंसती और गुनगुनाती है। एक युवक शराब के नशे में बाहें हिलाता और उसके पास आता है। उसकी बांह पकड़कर अपनी तरफ खींचने लगता है। और···और···टेम्ज़ की सतह से गुज़रते जहाज़ का भोंपू बज उठता है···दूर की चिमनियों से उठता धुआं कोहरे के साथ संघर्ष करता है और एप्रन बांधे एक बुढ़िया अण्डे और बेकन की प्लेट उसी जैसे एक बुड्ढे आदमी के सामने रख देती है। बुड्ढा हाथ बढ़ाकर बुढ़िया को अपनी तरफ खींच लेता है और · और फिर व्यास के चौगान से कुछ आवाज़ें आती हैं जो फिर दरिया की गड़गड़ाहट में डूब जाती हैं ··।

साहब एकाध बार बुखार में बुदबुदाया, "ओह! कुतियाएं! कुतियाएं!"

साहब के मरने के बाद घर के आंगन में ही एक तरफ उसकी कब्र बनवा दी गई। कब्र के पत्थर और अपने दफनाए जाने की जगह साहब ने बहुत पहले से चुन रखी थी। साहब की इच्छा के अनुसार कब्र के पास एक युक्लिप्टिस का पौधा लगवा दिया गया।

रात के अंधेरे में सन्तो कभी-कभी उस कमरे का दरवाज़ा खोल लेती जिसमें साहब ने अपनी आखिरी सांस छोड़ी थी। एक सहमी नज़र अन्दर डालती, जैसे अब भी उसे वहां से साहब की डांट का डर हो और कांपते होंठों से अपनी रुलाई किसी तरह रोके हुए दरवाज़ा बन्द कर देती। साहब के रहते उसे उस कमरे से उतना डर नहीं लगता था जितना अब लगता था। साहब उसे कभी डांटता था, तो कभी प्यार भी करता था। मगर वह अंधेरा तो केवल डांटता ही था, कभी प्यार नहीं करता था। वह दरवाज़ा बन्द करके दबे पैरों बाहर आती, तो उसे एहसास होता कि उसके पैर नंगे हैं और वह झट से जाकर पैरों में चप्पल पहन लेती। घर और बागीचों के छोटे-छोटे कामों में अब साहब की जगह उसी को आदेश देने पड़ते थे। काशीराम, जो पहले उसकी बात की परवाह नहीं करता था, अब माथे पर बल डाले उसके सामने आ खड़ा होता। "मेम

साहब, मैनेजर पूछता है कि सेब बड़ी पेटियों में ही भरे जाएंगे या कुछ छोटी पेटियां भी भरवानी हैं ?"

वह कुछ पल असमंजस में चुप रहती। इस तरह की जिम्मेदारियां कभी उस पर भी पड़ सकती हैं, यह उसने नहीं सोचा था। आखिर वह कहती, "साहब जिस तरह भरवाता था, उसी तरह भरी जाएंगी। सौ में अस्सी मन की बड़ी पेटियां और बीस मन की छोटी।" और कुछ इस तरह की अनुभूति के साथ जैसे एक बहुत बड़ा पहाड़ उसने आसानी से उठा लिया हो, वह दूसरे कामों में लग जाती। खाना खाने बैठती, तो जिस तरह साहब उसे छुरी-कांटा पकड़कर खाना सिखाता था, उसी तरह पकड़कर आधा-आधा घण्टा खाने के साथ कसरत करती, हालांकि पूरा खाना फिर भी उससे उस तरह न खाया जाता। अन्त में उसे याद न रहता कि खाना खाने के बाद छुरी-कांटे को एक-दूसरे के ऊपर रखना होता है या अलग-अलग उलटा करके रखना होता है। उसे हर समय अपने से गलती हो जाने का डर बना रहता और वह इस तरह कातर दृष्टि से दीवार की तरफ या काशीराम की तरफ देखती जैसे साहब की आत्मा उनके अन्दर से उसकी तरफ झांक रही हो और उसे अपने हर काम के लिए उनके सामने जवाबदेही करनी हो। काशीराम घर पर उसे देखता रहता और उसके पास से रसोईघर में जाकर मुंह बिचका देता। "अब साली शौकीन हो रही है! खसम के मरने की खुशी मना रही है!"

पहले रात को तकिये पर सिर रखते ही उसे नींद आ जाती थी। मगर अब वह देर तक जागती रहती और दरिया की आवाज़ सुनती रहती। पहले कभी वह आवाज़ उसे उतनी डरावनी नहीं लगती थी। अब उसे लगता जैसे वह आवाज जंगल में दहाड़ते शेरों की आवाज हो। दरिया की आवाज में घुलीमिली चौगान की दूसरी आवाज़ें भी कभी-कभी सुनाई दे जातीं। वे आवाज़ें बीते दिनों को उसके मन में लौटा लातीं। जब वह बहुत छोटी थी, तो उसी चौगान में भेड़ों के पीछे छड़ी लेकर घूमा करती थी। उसकी मां एक पेड़ के नीचे बैठी हुक्का गुड़गुड़ाती रहती थी और वहां पानी भरने के लिए आने वाले लोगों से चुहल करती रहती थी। वह भेड़ों का पीछा करती हुई घुटनों तक कीचड़ में लथपथ हो जाती थी, तो मां उसे डांट देती थी। वह मां की डांट की तरफ कभी ध्यान नहीं देती थी। कीचड़ में लथपथ होना उसे अच्छा लगता था। चौगान की घास में लोटना और घास की तिनलियों को दांतों से चबाना भी उसे अच्छा लगता था। घास पर लेटे हुए आकाश का जो रूप नजर आता था, वह सीधे खड़े होने पर बिलकुल बदल जाता था। उसे आकाश का वही रूप अच्छा लगता था जो लेटकर आंखें झपकाते हुए दिखाई देता था।

चौगान में साल में दो बार मेला लगता था। लोग वहां आकर लुगड़ी पीते, गाते नाचते और हंसी-ठट्ठा करते थे। उसकी मां उन मेलों में सबसे बढ़-चढ़कर भाग लेती थी। कई बार तो वह लुगड़ी पीकर नाचते-नाचते वहीं ढेर हो जाती थी और उसे रात-भर मां के पास पहरा देना पड़ता था। उसने स्वयं भी उस चौगान में ही मेले के दिन पहली बार लुगड़ी पी थी। उस दिन वह स्वयं भी अपनी मां की तरह नाचते-नाचते बेहोश हो गई थी···और उसके बाद ही साहब ने उसकी मां से उसे मांग लिया था।

उस चौगान में न जाने ऐसा क्या था कि हर समय उसके कदम अनजाने ही उस तरफ उठने लगते थे। मगर साहब के यहां आ जाने के बाद से उसे वहां जाने का बहुत कम अवसर मिला था। मेले के दिन तो वहां जाने से साहब ने खासतौर से मना कर रखा था। कभी चोरी से वह वहां चली भी जाती, तो पहले की तरह घास पर लोटना

उसके लिए सम्भव न होता। लोग साहब के नाते उसे भी सलाम करते थे। फिर साहब को न जाने कैसे और किससे पता चल जाता था कि वह चौगान में घूमती रही है। पर लौटते ही उसे डाट पड़ती थी। साहब ज्यों-ज्यों बूढ़ा हो रहा था, उसे गन्दी गालियाँ देने की आदत होती जा रही थी। वह साहब की गालियाँ सुनकर चुप रहती थी, क्योंकि सामने कुछ कह देने से साहब और भड़क उठता था। वह साहब को उसके बुढ़ापे के बावजूद बहुत चाहती थी, मगर न जाने क्यों साहब को विश्वास नहीं होता था। वह गुस्से में आकर उससे ऐसी-ऐसी बातें कह देता था कि वह पथराई आँखों से उसकी तरफ देखती रह जाती थी।

वह दिन-भर अकेली कमरे में पड़ी रहती, अकेली ही खाना खाती और अकेली ही सो रहती। उसकी माँ ने उसके पास रहने के लिए आना चाहा था, पर उसने मना कर दिया था। उसे लगता था कि उसकी माँ उस घर में आ जाएगी तो साहब की नाराजगी बढ़ जाएगी। अपने अकेलेपन में उसका मन बहुत भारी हो जाता, तो वह कई बार रात को भी साहब की कब्र के पास जा बैठती। युक्लिप्टिस की टहनियाँ उसके बालों को सहलाती रहती और वह कब्र के सफेद पत्थरों पर कुहनियाँ टिकाए साहब की बातें सोचती रहती। व्यास की आवाज के साथ चौगान की तरफ से कुछ आवाजें सुनाई देतीं तो कई-कई यादें उसके मन में ताजा होने लगतीं। पर वह उन यादों को बुहारकर मन से निकाल देती, जैसे वे यादें उसकी दुश्मन हों। अपना चेहरा वह कब्र के ठण्डे पत्थर पर टिकाए रहती। साहब के लगाए सेबों और अनारों में से होकर आती हवा उसके शरीर में एक ठडक भर देती। हवा से कहीं ज्यादा गहरी ठडक कब्र के पत्थरों में से उठकर उसे छा लेती—उसे लगता जैसे उस ठडक के साथ साहब के मन की कोई बात उठकर ऊपर आ रही हो—जैसे साहब का विकृत चेहरा उसकी तरफ देखकर अपने सुपरिचित ढंग से कह रहा हो, "ओह! कुतियाएं!"

उसकी आँखों में आँसू भर आते, तो वह कमीज की बाहों से उन्हें पोंछ लेती। फिर यह सोचकर सहम जाती कि कमीज से आँखें पोंछकर उसने गलती की है, और अपनी बाहें वह साहब की कब्र पर फैला देती। उसके काँपते होंठ उसके गले की आवाज को रोके रहते क्योंकि उसे ख्याल आ जाता कि साहब को उसके रोने से बहुत चिढ़ थी।

सेफ्टी पिन

मिसेज सक्सेना प्लॉट के नाम पर अपना उपन्यास जबानी सुना रही थी, पर मेरा ध्यान अपनी पतलून के बटनों की तरफ था।

उपन्यास में सब पात्रों के नाम एक-से थे···या मुझे लग रहे थे। सबके सब दिल्ली से शुरू करते थे और शिमला, डलहौजी, श्रीनगर घूमकर वापस दिल्ली चले आते थे। दिल्ली में रहकर कुछ दिन पार्टियों में शरीक होते थे: फिर पहाड़ों पर चले जाते थे। उपन्यास में पुरुष ज्यादा थे या स्त्रियाँ, मुझे याद नहीं, पर स्त्रियाँ अगर कम थीं तो भी तादाद में ज्यादा लगती थीं। उम्र में सब चौबीस-छब्बीस के आसपास थीं; मिसेज सक्सेना हरेक को 'स्लिम, स्मार्ट एण्ड प्रेटी' बता रही थी, फिर भी जाने क्यों मुझे लग रहा था कि वे सब ठिगने कद और भरे हुए जिस्म की गोरी-गोरी औरतें हैं जो बात करते हुए जमुहाइयाँ जरूर लेती रहती हैं, और अपने ब्रेसियर के कसाव से परेशान होकर

उसके इलास्टिक को छेड़ती रहती हैं। यह भी लग रहा था कि उनमें से किसी की असली उम्र अड़तीस चालीस से कम नहीं है। वे सब पार्टीशन के बाद दिल्ली आई हैं, और क्लबों मे जाते उन्हें ज्यादा दिन नहीं हुए।

मिसेज सक्सेना टेलीफोन सुनने के लिए बरामदे में गई तो मैंने एक बार अच्छी तरह बटनों को देख लिया। एक भी बटन बाहर नज़र नहीं आ रहा था। मैं अपनी टांग पर टांग रखे, कुहनियों पर झुका हुआ बैठा था। अब मैंने बांहें खोल ली और टांगों को थोड़ा फैल जाने दिया।

कसूर मेरा नहीं धोबी का था। या शायद धोबी का भी नहीं···पर मेरा बिल्कुल नहीं था। घर से धुली पतलून और बुशर्ट पहनकर निकला था। बस में इत्मीनान से टांगें फैलाकर बैठा रहा था। यह अहसास उतरते वक्त हुआ कि बटनों के अन्दर का अस्तर उधड़ गया है। उधड़ा न होगा तो फट गया होगा। बहरहाल कुछ ऐसा था जिससे बटनों की कतार तिरछी होकर बाहर नज़र आ रही थी। गनीमत थी कि मिसेज़ सक्सेना के यहां पहुंचकर नहीं पता चला। रास्ते में कनॉट प्लेस से एक दर्जन सेफ्टी पिन खरीद लिए। एक रेस्तरां के टॉयलेट में जाकर अस्तर को अन्दर से टांक लिया। दर्जन मे से जो आठ पिन बच रहे, उन्हें पिछली जेब मे ठूस लिया। सोचा, फिर कभी इसी तरह काम आएंगे।

मिसेज सक्सेना झुकी-झुकी लौट आईं। देखकर लगा, उनके पति का फोन होगा। अन्दाजा गलत नहीं था।

वह आकर सोफे पर नहीं बैठी; सीधी बोतलों वाली तिपाई के पास चली गईं। बोली, "भाई, बताओ, क्या लोगे? सुदर्शन नाराज़ हो रहा है कि मैंने अभी तक तुम्हे कुछ पीने को नहीं दिया?"

सुदर्शन को मैं भी एक वचन मे ही जानता था। पर मिसेज सक्सेना का एक वचन दूसरी तरह का था। उसमें घनिष्ठता से ज्यादा ऊब की झलक थी, जैसी कि बारह साल शादी के बाद ही आ सकती है।

"बताओ, क्या दूं? स्कॉच?" उन्होंने फिर पूछा।

मैंने सिर हिला दिया, "अभी कुछ नहीं।"

"क्यों?"

"मेरे सिर में दर्द हो जाता है।"

"पर मैंने देखा है तुम्हे पीते···"

"कभी-कभी नहीं भी होता।"

"आज तुम्हें पहले से ही पता है कि होगा?"

मैं मुसकरा दिया। बता नहीं सका कि अब भी हो रहा है। कहा, "सुदर्शन आ जाए तो थोड़ी-सी ले लूगा।"

मिसेज सक्सेना ने घड़ी की तरफ देखा और अन्दर चली गईं। लौटकर आईं तो नौकर साथ था। बड़ा-सा फ्रेम लिए हुए।

"बरसात ने बहुत तंग किया है इस साल," कहती हुई वह मुसकराईं। नौकर फ्रेम दीवार पर लगाकर चला गया।

"हां, पहले तो बिजली ही फेल होती थी," मैंने कहा, "इस साल पानी भी उबालकर पीना पड़ रहा है।"

"हमारे घर मे दीमक बहुत हो गई हैं," वह बोलीं, "फर्श से ...ट लिए उठवा दिया है। दीवार से पेंटिंग भी उतरवा दी थी···पर आज ...

हैं, इसलिए···"

मैंने पेंटिंग की तरफ देखा। स्याह और पीले रंग में एक औरत का चेहरा। नीचे दीवार पर दीमक की दो लकीरें।

"इसे दीमक से थोड़ा हटाकर क्यों नहीं लगवाती?" मैंने कहा।

"दीवार पर चौखट का निशान है," वह बोलीं, "खाली बुरा लगता है।"

मैंने फर्श की तरफ देखा। उस पर कारपेट का कोई निशान नहीं था। फिर भी वह नंगा लगता था। महसूस होता था कि कोई चीज वहां से हटाई गई है। दीमक की कुछ लकीरें वहां पर भी थीं। मैंने हाथ जेबों में डाल लिए। दोनों जेबों में सूराख थे। मैंने हाथ बाहर निकाल लिए।

मिसेज सक्सेना उपन्यास का बाकी हिस्सा 'संक्षेप में' सुनाने लगीं। संक्षेप में सभी स्त्रियां प्यार करती थीं · पर पहाड़ों पर जाकर। अक्सर झील के किनारे या क्लब के पिछले कमरे में। अपने 'लवर्ज' के साथ। 'हस्बैण्ड्ज' उन्हें पहाड़ों पर छोड़कर दिल्ली चले आते थे···या शराब पीकर लाउज में लुढ़के रहते थे। लवर्ज की अपनी बीवियां थीं, पर हस्बैण्ड्ज का कोई लव-अफेयर नहीं था। उपन्यास की हीरोइन का नाम सुजाता था···या शायद सुनीता था। उसे अन्त में झील में डूबकर आत्महत्या करनी थी, इसलिए शुरू से ही उसे पानी में एक खिंचाव महसूस होता था। उसने 'भृगुसंहिता' से अपनी जन्म-पत्री निकलवा रखी थी जिसके मुताबिक उसकी मौत 'द' अर्थात् पानी में ही होनी थी।

"मैं तुम्हें बोर तो नहीं कर रही?" उन्होंने हीरोइन की आत्महत्या से कुछ पहले ही पूछ लिया।

"नहीं, बिल्कुल नहीं," मैंने कहा, "मुझे बहुत दिलचस्प लग रहा है।"

"बस अब तीन-चार चैप्टर ही बाकी हैं···"

'आप सुनाइए। अन्त तो इसका और भी दिलचस्प होगा।"

पर अन्त तक सुनने की नौबत नहीं आई। एक जोड़ी मेहमान उसी वक्त चले आए।

मिस्टर और मिसेज सिंह। मिस्टर सिंह···मेजर, पचास, गम्भीर। मिसेज सिंह···सुन्दर, बत्तीस, शोख। मिसेज सक्सेना से परिचय कराया। मेजर सिंह झुककर मुसकराए। मिसेज सिंह ने अनदेखे ढंग से कहा, 'हलो।"

मैंने भी 'हलो' कहा, पर उस तरह से नहीं। अच्छी तरह देखकर कि वह भी मिसेज सक्सेना के उपन्यास में से तो नहीं हैं। लगा कि हेयरकट को छोड़कर और बातें मिलती हैं। हां, बात करने का लहजा उनका अपना है। उपन्यास में तो हर स्त्री की आवाज सिक्के में ढली लगती थी।

मिसेज सिंह अकेली ही बात कर रही थीं···कि हिन्दुस्तान में यह उनकी आखिरी शाम है, इस बार की आखिरी···कि कल इस वक्त वह इस जमीन से ऊपर खुली हवा में उड़ रही होंगी···कि दुनिया की हर चीज कुछ अरसे के बाद बोरिंग हो जाती है···कि हर देश किसी एक ही लिहाज से अच्छा होता है···कि यह देश किसी भी लिहाज से अच्छा नहीं है···कि सिवाय टैक्स अदा करने के यहां कुछ जिन्दगी ही नहीं है ··कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए आदमी को साल में दो महीने जरूर यहां से बाहर रहना चाहिए।

मेजर सिंह कुहनियां सोफे की बांहों पर रखे एक-एक इंच नीचे को झुकते जाते थे। झटके से अपने को ऊपर उठाते थे, और फिर उसी तरह झुकने लगते थे। मिसेज सक्सेना ने ह्विस्की के गिलास सबके हाथों में दे दिए थे। मेजर सिंह की आंख जब भी

मुझसे मिलतीं, वह ज़रा-सा मुसकराते। लगता कि कोई बात है जो उन्हें मुझसे कहनी है। मिसेज़ सिंह ह्विस्की का घूट भरने के लिए रुकी, तो वह धीमी आवाज़ में जल्दी-जल्दी बोले, "मुझे लग रहा था कि हमें आने मे देर हो गई है···यहां आने से पहले हम लोग एक और दोस्त के यहा ड्रिक्स के लिए चले गए थे···उससे कहा भी कि हम लोग ज्यादा नही लेंगे···पर कहने से कौन मानता है···?" वह धीरे से हसे। हंसते हुए उन्होने एक-एक करके तीनो की तरफ देखा और सहसा खामोश हो गए···ज़रा-से वक्फे के बाद फिर उसी तरह मेरी तरफ देखकर मुसकरा दिए।

मैं भी मुसकराया। एक पिन अन्दर से मुझे चुभ रहा था।

मिसेज़ सिंह उस वक्त हालैण्ड मे थीं। वहां से होती हुई वेस्ट जर्मनी आ रही थी। अपनी शॉपिंग उन्हे वेस्ट जर्मनी से करनी थी। हर साल वही से करती थी। तकलीफ सिर्फ चुगी की थी जो वापस आने पर अदा करनी पड़ती थी। "पता है शारदा, पिछले साल मुझे कितने रुपये चुगी के देने पड़े थे···?"

शारदा, अर्थात् मिसेज़ सक्सेना न जाने किस वजह से नाराज़ लग रही थी। शायद इसलिए कि उन्हें कभी उतने रुपये चुगी के नही देने पड़े थे या इसलिए कि उन लोगों के चले आने से उनके आखिरी तीन चैप्टर बीच मे ही रह गए थे।

मुझे भी बीच-बीच मे झील का ध्यान हो आता था। हमने हीरोइन को बोट मे रोमांस करते छोड़ा था। ये लोग न आए होते, तो वह कब की आत्महत्या कर चुकी होती। तब मिसेज़ सक्सेना ज्यादा सहज भाव से काजू और निमकी की प्लेटें सबकी तरफ बढ़ा रही होती।

वेस्ट जर्मनी से लौटकर मिसेज़ सिंह ने अपने दामाद का ज़िक्र शुरू किया, तो मैं चौंक गया। मेजर सिंह एक इंच और नीचे को झुक गए।

"अपनी पैकिंग तो मैंने अभी की ही नही। सारा दिन लड़की की पैकिंग कराती रही। लड़की और दामाद आज ही वापस जा रहे हैं···।"

इससे पहले कि मेजर सिंह थोड़ा उठ पाते, दूसरी गाड़ी बाहर आ पहुंची।

नये आने वाले लोग मेरे परिचित थे। सुदर्शन उन्हे अपनी गाड़ी में लेकर आया था। रमेश खन्ना और उसकी पत्नी शानो।

"हलो एवरीबडी!" शानो ने अपना पल्लू फैलाए भरतनाट्यम् की मुद्रा में दहलीज़ के पास आकर कहा। उत्तर केवल मिसेज़ सक्सेना ने दिया, पोस्ट-ग्रेजुएट-स्टाइल में, "हैलो···!"

सुदर्शन सिगरेट-साइज़ का सिगार मुह में लगाए सबसे पीछे था। रमेश उससे आगे···जैसे कि वह उन दोनो की हिरासत मे हो।

"मैंने अपने दामाद से कहा···" सबके बैठते ही मिसेज़ सिंह ने अपनी बात फिर शुरू कर दी।

'आपका मतलब···आपका···अपना दामाद!

"हां मेरा···मतलब मेरी···मतलब इनकी···बड़ी लड़की का पति।"

मेजर सिंह अब हरेक की तरफ देखकर मुसकराए। मेरी तरफ देखकर खास तौर से।

"हं-हा···!" शानो भी मेरी तरफ देखकर मुसकराई। साथ ही उसने पूछ लिया, "तुम गुमसुम होकर क्यो बैठे हो?"

मैंने एक बार बटनों की तरफ देख लिया। मुसकराकर कहा, "कुछ नहीं, ऐसे ही···बात सुन रहा था।"

शानो ने आंखें झपक ली। ऐसे जैसे मेरा मतलब समझ गई हो।

सुदर्शन सबके लिए ह्विस्की डाल रहा था। शानो का गिलास उसे देता हुआ बोला, "मिसेज सिंह की लड़की हुर हाइनेस है'''अब भी मध्यप्रदेश और राजस्थान मे उनकी काफी जागीर है।"

"आई सी।"

"मेजर सिंह भी एक रियासत के आधे वारिस तो हैं ही।"

"आई सी।"

"मैंने अपने दामाद से कहा कि'''"मिसेज सिंह बोलीं, "'''कि हो सकता है इस बार मैं साल-भर बाहर ही रह जाऊं, तो पता है वह क्या बोला ? बोला कि'''"

"मज़ाक में'''" मेजर सिंह ने आहिस्ता से समझा दिया, "वह इनसे अकसर मजाक करता है।"

"पर यह उसने मज़ाक मे नहीं कहा था।" मिसेज सिंह ने होंठ भींच लिए।

मेजर सिंह हस दिए। "तुम्हारी 'सेंस ऑफ ह्यूमर' भी किसी से कम थोड़े ही है ! हां, बताओ इन्हें'''बात काफी दिलचस्प है।"

"यह मज़ाक नहीं है'''" मिसेज सिंह ने फिर ज़ोर देकर कहा, "ही मेंट इट। उसने कहा कि मुझे साल-भर बाहर रहना हो, तो उसे उसके ड्राइंगरूम के लिए अपना एक बड़ा-सा पोर्ट्रेट बनवाकर भेज दूं'''किसी भी अच्छे पेण्टर से। वह उसके लिए एक लाख तक खर्च करने को तैयार है।"

सुदर्शन ने पास जाकर खाली गिलास उनके हाथ मे ले लिया और उसे भरता हुआ बोला, "काश, कि मुझे पेण्ट करना आता !"

"वह सीरीयसली कह रहा था, सुदर्शन'''!" मिसेज सिंह ने अपने बालों को हाथ से सहेज लिया।

"मैं भी सिरियसली कह रहा हू," सुदर्शन गिलास वापस देता हुआ बोला, "मुझे चाहे एक लाख न भी मिलता।"

मेजर सिंह फिर हसे'''अकेले। "दैट्स इट'''दैट्स इट। यह विट मुझे पसन्द है। शाम की सारी उदासी एक फिकरे से दूर हो जाती है।"

"डोण्ट टेल मी'''कि सारी शाम तुम उदास रहे हो !" मिसेज सिंह मेजर के सोफे पर झुक गई।

"नॉट दैट'''नॉट दैट'''" मेजर जल्दी से बोले, "मेरा मतलब था कि'''"

"रहने दो," मिसेज सिंह ने उन्हें काट दिया, "तुम्हारा मतलब हमेशा बोरिंग होता है।"

मेजर पल-भर के लिए गम्भीर हुए, फिर मुसकरा दिए। मिसेज सिंह ह्विस्की के घूंट भरने लगीं।

मिसेज सक्सेना जाने किस वक्त उठकर बाहर चली गई थी। अचानक बरामदे के दरवाज़े पर आकर उन्होंने कहा, "खाना मेज पर लग गया है।"

इस बार सुदर्शन ने एक-एक करके सबकी तरफ देख लिया। फिर धीरे से दीवार पर लगी तस्वीर से बोला, "खाने की अभी क्या जल्दी है ?"

"अब मेज पर लग गया है, तो पड़ा-पड़ा ठण्डा हो जाएगा !" कहती हुई मिसेज सक्सेना दहलीज़ से ही वापस चली गईं। पर इससे पहले कि कोई भी अपना गिलास होंठों तक ले जाता, या एक लफ्ज़ भी मुंह से कहता, फिर उसी तरह आकर बोली, "भई, जिसे गरम खाना हो, वह बाहर आ जाए। बाद मे मुझसे कोई न कहे कि खाना

ठण्डा मिला है।"

मेजर सुनते ही उठ खड़े हुए, "मेरा खयाल है, खाना खा लेना चाहिए। मुझे भूख भी लग रही है···"

"तुम चलकर शुरू करो," मिसेज सिंह सोफे की पीठ से सिर टिकाकर बोली, "हम थोड़ी देर में आ रहे हैं।"

मेजर उठने के बाद फिर बैठ नही सके। दरवाजे की तरफ बढ़ते हुए बोले, "ठीक है, ठीक है। मैं चलकर शुरू कर रहा हूं··"

दूसरा उठनेवाला रमेश था। "मेरा खयाल है, जेण्ट्स को शुरू करना चाहिए। लेडीज़ बाद में आ जाएंगी।"

अब मैंने भी उठना अपना फर्ज़ समझा। बटन बदस्तूर बन्द थे, फिर भी सबके बीच से गुज़रकर जाते मेरे पैर उखड़े रहे। मेजर जा चुके थे, इसलिए मुसकराने का सहारा भी नही मिला।

पर दहलीज़ लांघने से पहले शानो ने रोक लिया। "तुम्हें भूख लग आई है?"

"नही।"

"तो ठहर जाओ, बाद में हमारे साथ चलना।"

"मैं···" मैंने कहा, "वह···दरअसल···"

"चन्दर आ जाए, तो सब लोग साथ चलते हैं।"

"अरे, हा, चन्दर तो अभी आया ही नही।" सुदर्शन अपनी जगह से उठकर इधर-उधर देखने लगा···ऐसे जैसे कोई खोई हुई चीज़ तलाश कर रहा हो।

"उसने कहा था कि साढे नौ बजे तक पहुंच जाएगा।" शानो ने अपनी घड़ी देखी और रूमाल से पसीना पोंछने लगी।

सुदर्शन खोई हुई चीज़ को ढूंढता हुआ बरामदे तक गया और वहां से लौट आया। आकर बोला, "शारदा न जाने कहां चली गई! शायद उधर किचन में हो। बिना चन्दर का इन्तज़ार किए उसे खाना नही लगाना चाहिए था। यह तो बहुत ही बुरी बात है। एक्सक्यूज़ मी···" और लम्बे कदम रखता हुआ वह पिछले दरवाज़े से अन्दर चला गया।

मैं ऐसे खड़ा था कि चेहरा शानो की तरफ रहते हुए भी बदन दूसरी तरफ रहे। दिमाग में वे दो लफ्ज नही आ रहे थे जो कहकर उसी एंगल से बाहर चला जाता। बगलों से टपककर पसीना बेल्ट के अन्दर जा रहा था।

"थोड़ी देर बैठो, अभी साथ ही चलते हैं," शानो ने कहा, तो एंगल बनाए रखने के लिए मुझे बैठ जाना पड़ा। बैठते हुए एक नोक अन्दर से चुभी लेकिन मैंने माथे पर शिकन नही आने दी।

"आजकल क्या कर रहे हो? शानो ने पूछा।

"आजकल···" मुझे कुछ देर सोचते रहना पड़ा कि आजकल मैं क्या कर रहा हूं। लगा कि कोई ऐसा काम नही कर रहा जो बताने लायक हो। ऐसा भी नहीं जो न बताने लायक हो।

"बहुत दिनों से नज़र नही आए···" मुझे लगा कि शानो चाहे बात मुझसे कह रही है, पर उसकी दिलचस्पी मुझ मे नही है। आखें उसकी मिसेज सिंह के चेहरे पर टिकी थीं। इसलिए अपने नज़र न आने का मसला मुझे हल नही करना पड़ा।

"कभी हमारे घर पर आओ," शानो बात को ऐसी जगह ले आई जहां उसका सीधा-सा जवाब दिया जा सकता था। मैंने झट से कहा, "तुम जब भी कहो।"

"तुम्हें जिस दिन भी फुरसत हो," वह बोली "किसी भी दिन जब तुम्हें फुरसत हो। रमेश नौ बजे चला जाता है। मैं सारा दिन घर पर ही रहती हूं।"

मिसेज सिंह ने अपने गिलास से आखिरी घूंट भरकर उसे तिपाई पर रखा और मुसकराई। मुझे लगा कि वह मुसकराहट मेरे लिए है। पर मेरा खयाल गलत था। वह दरअसल दीवार पर लगी तसवीर के लिए थी।

मैं तब तक जवाब में आधा मुसकरा चुका था। उतनी मुसकराहट बरकरार रखते हुए मैंने कहा, "अच्छी तसवीर है। नहीं?"

मिसेज सिंह के होंठ सिकुड़ गए। "लगता है मक्खन के कूपन देकर ली गई है," कहकर वह फिर मुसकराई। मैंने घूमकर तसवीर को एक बार और अच्छी तरह देख लिया।

शानो ने भी देखा, मगर सरसरी नजर से। "कितनी भयंकर है!" उसने लरजत के साथ कहा। मुझे यह फिकरा रिहर्सल किया हुआ लगा। याद आया, एक नाटक में उसने चारुमित्रा का पार्ट किया था।

मिसेज सिंह के चेहरे पर जो भाव आया, वह कुछ-कुछ फ्रांसीसी किस्म का था। कन्धे भी उन्होंने खास कॉण्टिनेण्टल अन्दाज से हिलाए। इससे बांहें सोफे के बाहर फैल गईं। उन्हें समेटती हुई वह उठ खड़ी हुई। उठकर एक जायजा लेती नजर उन्होंने नंगे फर्श पर डाली। दूसरी अपनी सैंडिल पर। तीसरी चौराट की दहलीज पर। "पुराना घर है," वह हल्के कदमों से दहलीज की तरफ चलती हुई बोली, "पचास साल से कम पुराना किसी भी तरह नहीं। पता नहीं कैसे ··· ये लोग ··· कैसे ये लोग रह लेते हैं यहां!"

दहलीज से उन्हें ठोकर लग सकती थी, पर नहीं लगी। ज्यों ही वह परदे की ओट में हुईं, शानो ने मेरे हाथ पर चुटकी काटी। "तुम इसे जानते हो?" उसने कहा।

'नहीं' कहने के लिए मैंने सिर हिलाया। मुंह से आवाज नहीं निकलने दी। मुझे लग रहा था कि परदे की ओट से मिसेज सिंह सारी बात सुन रही हैं।

"यह सुदर्शन की एक्स-फियांसे है।"

इस बार भी मैंने सिर ही हिलाया, मगर दूसरी तरह से।

"मैं आज पहले तो इसे पहचान ही नहीं सकी," शानो कहती रही, "तब से अब तक कितना फर्क आ गया है इसमें! उन दिनों सुदर्शन इसे अपनी साइकिल पर बिठाकर कुतुब ले जाया करता था। बातें उन दिनों भी यह बहुत बढ़-चढ़कर करती थी। कहती थी कि हिज़ हाइनेस से कम किसी से शादी नहीं करूंगी। सुदर्शन के अलावा और भी कई बॉय फ्रेंड थे इसके। एक सिफ्त थी कि अपनी कोई बात छिपाती नहीं थी। सुदर्शन से अपने सब लव-अफेयर डिस्कस किया करती थी। यहां तक कह देती थी कि आज मैंने अपने कमरे में किसी को बुला रखा है, इसलिए तुम्हारे साथ नहीं जा सकती।" वह एक पैर हिला रही थी और सोफे से टेक लगाए जाने क्या सोचकर खुश हो रही थी। "उम्मा नाम है इसका। छह-सात साल हुए, सुदर्शन ने बताया था कि किसी अड़तालीस साल के जागीरदार मेजर से इसने शादी कर ली है···तीसरी शादी।"

"तीसरी?"

"हां, इसकी यह तीसरी शादी है," शानो मेरे कन्धे पर हाथ रखकर हंस दी, "मेजर की दूसरी।"

मुझे ईर्ष्या हुई···पता नहीं किससे। ईर्ष्या छिपाने के लिए मैं भी हंस दिया।

"तुम समझते हो, यह इस आदमी के साथ भी वफादार होगी?" उसका हाथ

मेरे दूसरे कन्धे तक बढ़ आया। मेरी ईर्ष्या गायब हो गई। साथ ही हंसी भी। "क्या पता है हो," मैंने कहा। कम से कम एक मौका मैं हरेक को देना चाहता था।

शानो ने मेरी गरदन को नाखून से कुरेद दिया। "तुम हो बस ऐसे ही ! उसने कहा।

"कैसा ?"

"ऐसे ही···"

परदा हिला और मिसेज सिंह दहलीज की दूसरी ठोकर बचाकर कमरे में आ गई। शानो ने आहिस्ता से अपनी बांह मेरे कन्धे से हटा ली।

"कुछ पता ही नहीं चलता कहां है," मिसेज सिंह वहीं से बोलीं, "इधर-उधर सभी कोनों में मैंने देख लिया है।" एक हाथ में मोटे परदा का सिरा वह अब भी सभाले थी···जैसे कि उसे सभाले रहने से कमरे में आकर भी वह कमरे से बाहर हों।

शराफत का तकाजा था कि मैं कुर्सी से उठ जाऊं, मगर मैं उठा नहीं। जितना झुककर बैठा था, उससे थोड़ा और ज्यादा झुक गया।

"आप बता सकती हैं ?" मिसेज सिंह ने शानो से कहा। शानो अपना पल्लू झुलाती हुई उठ खड़ी हुई, "आप क्या ढूंढ रही हैं ?"

"दैट थिंग···" मिसेज सिंह ने हाथ से पीछे की तरफ इशारा किया, "दैट थिंग देयर···"

इस पर शानो न जाने क्यों पहले से भी ज्यादा खुश हो गई। उसकी तरफ बढ़ती हुई बोली, "चलिए, मैं आपको दिखा देती हूं।"

वे दोनों ज्यों ही परदे के पीछे हुईं, मैं एक नजर बटनों पर डालकर उठ खड़ा हुआ। पर बरामदे में पहुंचने से पहले ही मिसेज सक्सेना से सामना हो गया।

"कोई नहीं है यहां ?" उन्होंने पूछा। मैंने अपने होने का जिक्र करना बेकार समझा। उनकी निगाह परदे से टकराकर लौट आई, तो खुद-बखुद उन्होंने मेरे होने को स्वीकार कर लिया।

"वह कहां है ?" इस बार उन्होंने सवाल छोटा कर दिया।

मैंने इसमें भी दिलचस्पी नहीं दिखाई कि वह किस 'वह' के लिए पूछ रही हैं। "दोनों अन्दर हैं," मैंने इत्मीनान के साथ कह दिया।

मिसेज सक्सेना ने एक हाथ अपने गले पर रख लिया। तब मुझे खयाल आया कि दीवार पर लगी तसवीर कहीं उनका पोर्ट्रेट ही तो नहीं। उसमें भी पीले चेहरे पर स्याह हाथ उसी तरह रखा था। मिसेज सक्सेना हाथ रखे-रखे मुस्कराई। फिर गम्भीर होकर उदास हो गई। तिपाई से बोतल और गिलास उठाकर बाहर की तरफ चलती हुई बोली, "उससे कह देना, वह आ गया है। मैं उसे उसका ड्रिंक बाहर ही दे रही हूं।"

मैंने वाक्य से सर्वनाम निकालकर उनकी जगह संज्ञाएं रख लीं। उससे कहना ·· मतलब शानो से कहना। वह आ गया है···मतलब चन्दर आ गया है। चन्दर का स्कूटर मिसेज सक्सेना के अन्दर आने के बाद बाहर रुका था। इसका मतलब था कि वह उसके गेट से दाखिल होते ही पता देने चली आई थी।

मैं जहां खड़ा था, वहीं खड़ा रहकर इन्तजार करता रहा। जैसे कि मिसेज सक्सेना मुझे वहां बांधकर छोड़ गई हों। बीच में दो बार परदे की तरफ देख लिया। एक बार फर्श की तरफ। एक बार पीले चेहरे की तरफ। एक बार अपनी तरफ।

अपनी तरफ नजर डाली ही थी कि मिसेज सक्सेना दूसरी बार अन्दर चली आईं। आते ही बोलीं, "वे अभी नहीं आईं ?"

"नही," मैंने कहा और कुछ घुला-सा महसूस किया। एक कदम अपनी जगह से चल भी लिया।

"दीज विमेन।" मिसेज सक्सेना ने होठ कस लिए। मुझे पोर्ट्रेट वाली बात पर और भी विश्वास हो गया।

"मैंने इन औरतो के बारे मे जो कुछ लिखा है, गलत लिखा है ?" वह बोली।

मैंने मुसकराकर हाथ जेबो मे डाल लिए। उगलियो से दोनो सूराख बन्द कर लिए।

"मैं अपना क्लाइमेक्स तुम्हे जरूर सुनाना चाहती थी," मिसेज सक्सेना मेरी मुसकराहट का गलत मतलब समझ गई, "उसमें कुल चार ही चैप्टर बाकी हैं।"

"मतलब उसके आत्महत्या करने मे ?"

मिसेज सक्सेना ने सिर हिलाया और पहले से ज्यादा गम्भीर हो गई। "होता इस तरह है," वह बोली, "किश्ती मे लेटे-लेटे वह अपना हाथ झील के पानी मे डाल देती है। तब उसे लगता है कि पानी मे से कोई चीज उसे अन्दर खीच रही है। वह बहुत कोशिश करके अपना हाथ बाहर निकालती है..."

पर अब भी बात क्लाइमेक्स तक नही पहुच सकी। परदे पर उस तरफ साड़ियो की फड़फड़ाहट सुनाई देने लगी। मिसेज सक्सेना जल्दी से बरामदे की तरफ चलती हुई बोली, "बाकी तुम्हे फिर किसी वक्त सुनाऊगी। शानो को बता देना कि चन्दर ड्रिंक बाहर ही ले रहा है। मैं बाहर खाना सर्व कर रही हू।"

मुझे शानो को बताना नही पड़ा। बात उसने सुन ली थी। मिसेज सक्सेना के बाहर जाने से पहले ही वह और मिसेज सिंह परदा हटाकर कमरे मे आ गई थी। जैसे कि इन्तजार मे ही रही हो कि कब मिसेज सक्सेना निकलें और वे अन्दर आएं। "दिस वोमन।" शानो ने अन्दर आते ही कहा। मुझे समझ नही आया कि यह उसने किसके लिए कहा है, मिसेज सिंह के लिए या मिसेज सक्सेना के लिए ?

"बाहर आप लोगो का इन्तजार हो रहा", मैंने बारी-बारी से दोनो की तरफ देखा। लगा जैसे अन्दर से वे किसी बात पर लड़कर आई हों।

पर उन्होने मेरी बात जैसे सुनी ही नही। मिसेज सिंह चुपचाप अपने वाले सोफे पर जा बैठी, शानो अपने सोफे पर। मुझे लगा कि यही वक्त है जब मैं बिना किसी रुकावट के वहा से निकलकर जा सकता हू। मेरे एक जूते का तस्मा ढीला हो रहा था। मैंने झुककर उसे कस लिया और दोनो से 'एक्सक्यूज मी' कहकर बाहर को चल दिया। अभी दहलीज ही लाघ रहा था कि पीछे से सुना, "जरा चन्दर को भेज दीजिए। कहिए, मैं उसे बुला रही हू।" आवाज शानो की होनी चाहिए थी। पर उसकी नही, मिसेज सिंह की थी। मैंने बाहर आकर सरसरी नजर से पीछे देख लिया। वे दोनो एक-दूसरी की तरफ देख रही थी।

बरामदे मे हवा कमरे से ठण्डी थी डाइनिंग टेबुल वाले हिस्से के अलावा आस-पास ज्यादा रोशनी नहीं थी। डाइनिंग टेबुल से थोडा हटकर एक कुर्सी पर चन्दर बैठा था...अपना गिलास दोनो हाथो मे लिए हुए। साथ की कुर्सी पर, जो लगभग उससे सटी हुई थी, मिसेज सक्सेना उसी तरह अपना गिलास लिए बैठी थी। बहुत धीमी आवाज मे वह चन्दर से कुछ बात कर रही थी।

डाइनिंग टेबुल से कुछ फासले पर तीन आदमी अधेरे मे चुपचाप खड़े थे⋯हाथो मे खाने की प्लेटें लिए। मेजर सिंह, रमेश खन्ना और सुदर्शन। बात न करते हुए भी तीनों एक-दूसरे की तरफ झुके हुए थे।

मैंने चन्दर के पास जाकर उसे मिसेज सिंह का सन्देश दिया, तो मिसेज सक्सेना त्योरी डालकर मुझे देखने लगी। मैं चुपचाप डाइनिंग टेबुल के पास जाकर अपनी प्लेट में खाना डालने लगा। खाना लेकर अंधेरे में खड़े उस तीन के झुरमुट में जा शामिल हुआ'' पर अपनी पीठ दीवार की तरफ किए हुए। तस्मा बांधने में बैंक पॉकेट की पिनों में से भी एक की नोक खुल गई थी और पॉकेट में सूराख करके वह उधर से बाहर निकल आई थी।

खंडहर

सड़क की बत्तियां बुझ गईं।

बरफ के कारखाने का भोंपू स्वर में सुबह की चेतावनी देकर चुप हो गया।

अभी पहला कौआ भी नहीं बोला था कि किला भंगियां के चौराहे पर तिल कूटनेवालों का शब्द अपने निश्चित स्वर-ताल में गूंजने लगा—हियँ: अ:-अ: ! हियँ. अ:-अ: ! हियँ अ.-अ: !

छ: गठे हुए गदुमी शरीर, उनकी उभरी हुई पेशियां और चमकती हुई त्वचाएं हाथों में उठते-गिरते मूसल, बीच मे कुटते तिलों का अंबार—ये सब और चारों तरफ की घुटी हुई हवा, सारा वातावरण ही बोल रहा था—हियँ अ:-अ: ! हियँ अ-अ: !

और तिलों का अंबार पसीज रहा था। वह कूटने वालो को रोटी देगा। आधी चाहे सूखी, चने की या छिलके की। रोटी उन्हे ताकत देगी। ताकत पाकर वे फिर अन्नदाता को कूटेंगे। अन्नदाता उन्हें फिर रोटी देगा। वे उसे फिर कूटेंगे और सिल-सिला चलता रहेगा।

उधर सडक पर लेटा हुआ सांड, जिसकी आजीविका भक्तों के खिलाए गोग्रासों से चलती थी, और जिसे इसके लिए सुबह-शाम नमक मण्डी तक के घरो का चक्कर काटना होता था, धीरे से अपनी टांगो पर खडा हुआ, और पूंछ हिलकर चलने के लिए तैयार हो गया।

तभी एक हरिकीर्तन करता वृद्ध गण्डानवाले बाजार की तरफ से आया। गोपुत्र को कान हिलाते देखकर उसने उसे प्रणाम किया। फिर बिना तिल कूटने वालों की तरफ देखे बिना उनकी जाघों की मछलियां लक्ष्य किए, खांसता, थूकता, खंखारता और सांस आने पर हरिकीर्तन करता बाबा बांके बिहारी के मंदिर में चला गया।

उस संकरी गली से, जिसका कोई नाम नही, और जिसकी नालियो की बदबू बाबा बांके बिहारी के मन्दिर के धूप-गुग्गुल की गन्ध मे मिलकर एक नया संगम बनाया करती है, एक स्याही रंगे कपड़े वाली प्रौढ़ा अपनी हरे दोपट्टे वाली कन्या के साथ निकली। दोनों नगे पाव वहां से गुजरी जहां एक अन्नदाता छिल रहा था, पिट रहा था और प्रसन्न हो रहा था। प्रौढ़ा ने देखा तो छ. हिलते हुए शरीर थे और पसीना ही पसीना था। उसे घृणा हुई। युवती ने देखा तो युवा लहू चिकनी देहो से उबल रहा था। उसे सिहरन हुई। मा-बेटी जल्दी-जल्दी बाबा बाके बिहारी के मन्दिर में चली गई।

शहर अमृतसर रात की नीद मे जाग रहा था।

सत्तू हलवाई की दुकान अभी आधी खुली थी। उसका नौकर नगीना अपनी स्लेट जैसी कमीज से, जो जब सिली तब सफेद थी, और जब उसे मिली तब भूरी गंदमी या

ठीक-ठीक उस रंग की थी जो इन्सान की मैल और बू से तैयार होता है, रात की मजी हुई बाटियों को मटके के पानी से धो-धोकर पोंछ रहा था। राख मिला पानी लकड़ी के गले हुए फट्टे पर से फिसलकर धार के या बूंदों के रूप में गिरता हुआ उस बेंच को भिगो रहा था, जो सड़क पर ग्राहकों की सेवा और सुविधा के लिए रखी गई थी।

हलवाई के सामने की दुकान का भोलूशाह दस दिन की उगी सफेद दाढ़ी के नीचे पिचके हुए झुर्रीदार गालों को फैलाकर घण्टा-भर चबाई दातुन से अन्दर गले तक की झाग निकालने की कोशिश में परेशान होकर जोर-जोर से खखार रहा था— आऽऽक्! आऽऽक्! आऽऽक्!

आऽऽक् आऽऽक् आऽऽक् में वह गले, छाती और आमाशय का जोर लगा रहा था। उसका बाप भी इसी तरह करता था। बाप का बाप भी इसी तरह करता था। अमृतसर वह शहर है, जहां दातुन करने की ही नहीं, थूकने-खुजलाने की भी विशेष शैली है और उस शैली का उस शहर जितना ही पुराना इतिहास है।

भोलूशाह के मुंह से लार निकल रही थी और सड़क पर झाड़ू देते हुए भंगी की उड़ाई धूल उसके नासा-रंध्रों में जा रही थी। फिर भी भोलूशाह एकचित्त होकर जीभ और तालू का व्यायाम किए जा रहा था। उसकी कला कला के लिए थी।

धूल भोलूशाह के वक्त-खाए शरीर को ढककर आगे बढ़ी और भक्तों के उस समुदाय में पहुंच गई जो मंगला-दर्शन के लिए बाबा बांके बिहारी के मंदिर की दहलीज के पास जमा हो रहा था। वृद्ध का शरीर मारे खांसी के दोहरा हो गया। हरे दोपट्टे वाली लड़की ने मुंह एक तरफ हटाकर धूल से बचने की चेष्टा की। उधर से उसे वृद्ध के मुखामृत का छींटा मिला। उसने मुंह दोपट्टे में छिपा लिया।

उधर सामने कुएं की चर्खी पर एक लाल लंगोट वाले की गागर ने उषा का पहला राग छेड़ दिया।

पर अभी भगवान के दर्शन खुलने में देर थी। भगवान के पुजारी गोस्वामी नृसिंहदत्त ने छत की पिछली कोठरी में शरीर से कम्बल उतारा ही था। अस्त-व्यस्त अंगोछे को, जो सोने के समय उसका एकमात्र परिधान था, कसकर कमर से लपेटते हुए उसने मंगला का पहला मन्त्र पढ़ा, "चेतू, कहां मरा है रे?"

चेतू, जो नीचे लंगोट लगाए और ऊपर खादी की कमीज पहने साथ की कोठरी की दीवार के सहारे ऊंघ रहा था, गुरु की कर्कश आवाज सुनते ही अपने को झटककर सचेत हो गया और झुक-झुककर संस्कृत व्याकरण का पाठ करने लगा—"इको यणचि इकः स्थाने यण् स्यादचि परे संहितायां विषये···।

इधर आ रे यणचि के यण्! गोस्वामी नृसिंहदत्त ने मन्त्र पूरा किया, "हुक्का भर जल्दी से।"

बारह साल का चेतू तत्परता से उठ पड़ा। उसे मंदिर में रहते कई महीने हो चुके थे। वह पुजारी की गालियों से ही नहीं, उसकी मार से भी पूरी तरह परिचित था। गोस्वामी जब भी कोई धमकी देता, चेतू के दिमाग में एक भंवर-सा घूमने लगता। उसके मन में आता था कि गोस्वामी की नाक को पकड़कर इतना खींचे, इतना खींचे कि गोस्वामी का गणेश बन जाए, मगर उसका साहस नहीं पड़ता था क्योंकि गोस्वामी उसे रोटी देता था, कपड़ा देता था और सबसे बड़ी चीज विद्या देता था। रात को गोस्वामी उसे बड़ी रुचि के साथ अलंकार पढ़ाया करता था और हाथ से आकार बना बनाकर बतलाया करता था कि इतने-इतने स्तनों वाली नारी को 'श्याम' कहते हैं,

और इतने-इतने स्तनों वाली नारी को 'पद्मिनी' कहते हैं। चेतू अभ्यास के तौर पर मंदिर में आने वाली युवतियों की छातियों की तरफ देखा करता था कि उनमें से कौन-सी 'श्यामा' है और कौन-सी 'पद्मिनी'। फिर वह कापी पर उन स्तनों की तस्वीरें बनाया करता था।

चेतू, जिसका असली नाम चेतनराम था, मोगा तहसील के एक छोटे-से गांव का रहने वाला था। कुछ महीने पहले तक वह सतलुज के किनारे खड़ा होकर उस पार से आने वाले कबूतरों के झुण्डों को देखा करता था। उसे गहरे पानी की हल्की लहरों पर बादलों की घनी छायाएं बहुत अच्छी लगा करती थीं। पर उसके चाचा ने एक दिन 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' हाथ में देकर उसे शास्त्री प्रीतमदेव के पास पढ़ाई के लिए अमृतसर भेज दिया। यहां आकार उसने जो दुनिया देखी, उसमें कबूतर बिजली के तारों पर बैठे रहते थे और बादल कभी आ जाते, तो पक्की छतों के ऊपर गरज-बरसकर और काले छातों को भिगोकर चले जाते थे। हां, गांव में वह सिर्फ रात को ही 'हीर' और 'माहिया' के गीत सुना करता था, पर यहां दोपहर को भी, जब लाला लोग भल्ले, पकौड़ी और तले हुए बेसन के साथ रोटी खाकर विश्राम के लिए लेटते, तो चारों तरफ से रेडियो पर दर्द-भरे फसाने सुनाई देते रहते थे।

चेतू ने जब तक हुक्का भरकर गोस्वामी को दिया, तब तक शास्त्री प्रीतम देव की आंख भी खुल गई थी। शास्त्री प्रीतमदेव का मंदिर में वही स्थान था जो घरों में उस पुराने बर्तन का होता है जिसमें कई साल तक पानी पिया जा चुका हो और जिसकी सतह में अब जगह-जगह सूराख हो गए हों। उसने लगातार बारह साल तक मंदिर में रहकर ज्योतिष और मीमांसा का अध्ययन किया था और उसका वह सारा ज्ञान इस काम आता था कि दोनों समय ठाकुर जी के सामने शंख और घण्टी बजाया करे।

गोस्वामी हुक्का गुड़गुड़ाता और विष्णु-सहस्र-नाम का पाठ करता हुआ अपनी कोठरी से बाहर निकला। उसे आते देखकर शास्त्री प्रीतमदेव भी धीरे-धीरे गुनगाने लगा :

"जय हनुमान ज्ञान गुन सागर।
जय कपीश तिहुँ लोक उजागर।"

गोस्वामी अपना पाठ अधूरा छोड़कर, हुक्का जमीन पर रखता हुआ शास्त्री प्रीतमदेव के पास आकर बैठ गया। उसके पास आ बैठने से शास्त्री की आवाज बंद हो गई, "सिर्फ उसके होंठों का हिलना जारी रहा।

मिनट-दो मिनट चुप रहने के बाद गोस्वामी ने मुलायम आत्मीयता-भरे स्वर में पूछ लिया, "रात कितने बजे लौटकर आए थे ?"

शास्त्री के होंठ कुछ देर और चुपचाप हिलते रहे। पाठ पूरा करने के बहाने थोड़ा अवकाश लेकर उसने हवा को माथा नवाया, और गोस्वामी की घूरती आंखों से बिना आंखें मिलाए उत्तर दिया, "नौ बजे, गुरुजी !"

शास्त्री प्रीतमदेव गोस्वामी को 'गुरुजी' कहा करता था क्योंकि किताबी विद्या चाहे उसने गागरमल विद्यालय में पाई थी, पर असली विद्या उसे भी गोस्वामी से ही मिली थी।

"दस-ग्यारह बजे तक तो मैं ही जाग रहा था।" गोस्वामी ने सहज स्वर में कहा जिसका मतलब था कि जा, एक झूठ माफ किया, अब और झूठ बोलने की कोशिश मत करना।

"तो जरा देर हो गई होगी !" अब भी शास्त्री ने गोस्वामी से आंखें मिलाने का

साहस नहीं किया।

"रंगवाला सेठ भगत आदमी है।" गोस्वामी असली बात पर आ गया। "खिलाया-पिलाया तो उसका पूछना ही क्या है!"

और गोस्वामी ने उसे सीधी नजर से देखा। रात को रंगवाले सेठ बिशनदास की लडकी का ब्याह था। जाना वहां गोस्वामी को खुद ही था क्योंकि वह रंगवाले सेठों का कुलपुरोहित था, पर कल शाम को उसके शरीर में हवा का दौरा बढ़ गया था जिस वजह से ही उसे रात को ग्यारह बजे नींद की गोली खाकर सो जाना पड़ा था, नहीं तो ये सवाल-जवाब वह रात को ही कर चुका होता।

शास्त्री प्रीतमदेव अभी तक उससे आंखें चुरा रहा था। उसने गोस्वामी के सवाल का छोटा-सा जवाब दिया, "बड़ा सुन्दर भोजन बना था!" फिर उसने दरवाजे की तरफ देखते हुए कहा, "गुरुजी, मगला-दर्शन कितनी देर में खोलने हैं?"

"अरे, खुल जाएंगे मगला-दर्शन," गोस्वामी ने अपनी अधीरता दबाने की चेष्टा करते हुए कहा, "यह बता कि सेठ ने दिया क्या-क्या है?"

शास्त्री प्रीतमदेव थोडा हिचकिचाया। मगर, गोस्वामी की ब्रह्मतेज-भरी आखों ने उसे झूठ नहीं बोलने दिया। उसने होठों पर जबान फेरकर कहा, "इक्कीस रुपये...।"

"और?"

"और..." शास्त्री ने शब्दों को जरा लम्बा करते हुए कहा, "...एक कपड़ा।"

"क्या कपड़ा?"

"धो...दोशाला।"

"और कुछ नहीं?"

"नहीं।"

"देखू, कहां है?"

"अभी दिखाऊ?"

"और कोई मुहूर्त निकलवाना है?"

शास्त्री न चाहता हुआ भी उठा, और पिछले कोने मे रखे घिसे-पुराने संदूक की घिसी-पुरानी ताली को उसने ठोक-पीटकर खोला। सन्दूक के अन्दर से अपना अगोछा निकालकर उसने माथे का पसीना पोछा, फिर सन्दूक के अन्दर ही हाथों से कुछ कार-साजी करने लगा, जब गोस्वामी उसके सिर पर आ खड़ा हुआ। गोस्वामी के सिर पर आ जाने से वह दोशाले की तह मे रखी धोती और धोती की तह मे रखे रेशमी रूमाल को छिपा नहीं सका।

"साले, झूठ बोलता था?" गोस्वामी ने शास्त्री की खोपड़ी पर धौल जमाकर कहा, और कपड़े उससे लेकर बोला, "ला, रुपये भी निकाल।"

"रुपये भी क्या मेरे नहीं हैं, गुरुजी?" शास्त्री का नपुसक साहस पहली बार बोला।

"तेरे नहीं, तेरी..." और वाक्य को अधूरा छोड़कर गोस्वामी आगे बोला, "तू रगवाले सेठों का जमाई है न! वे भगवान के जीव है, सो भगवान के निमित्त दे देते हैं। तू साले, रोज़ भगवान के घर मे नारगिया-केले खाता है, दूध-दही भक्षण करता है, फिर भी तेरी तृष्णा नहीं मरती? यहा अब देनेवाले रहे कितने हैं? जो आता है, मुफ्त मे ही भगवान के दर्शन करके चला जाता है। ला निकाल, रुपये कहा हैं!"

शास्त्री प्रीतमदेव ने सन्दूक मे रखे अपने एकमात्र कोट की जेब मे हाथ डालते

हुए कहा, "दो रुपये तो मुझसे गुरुजी खर्च हो गए हैं।"

"खर्च हो गए हैं? कहा खर्च हो गए हैं?"

शास्त्री ने जेब से उन्नीस रुपये दो आने निकालकर गोस्वामी की तरफ बढ़ा दिए, और जमीन की तरफ देखते हुए कहा, "सिनीमा चला गया था।"

"सिनीमा चला गया था!" गोस्वामी ने रुपये उससे लेते हुए कहा, और उसकी खोपड़ी पर एक और धौल जमाकर दोहराया, "सिनीमा चला गया था।"

गोस्वामी अब अपनी कोठरी की ओर जाने के लिए मुडा, तो शास्त्री ने पीछे से दीन स्वर मे कहा, "मेरे पास एक भी धोती नही है, गुरुजी!"

"यह जो पहने है, यह धोती नही है?" गोस्वामी ने उसे कुत्ते की तरह दुतकारा।

"यह तो बिलकुल फट गई है, गुरुजी! यह आज वाली नही, तो वह पारो वाली धोती ही दे दीजिए।"

गोस्वामी रुक गया। पारो का नाम लेकर शास्त्री ने जैसे उसे चुनौती दे दी थी कि एक धोती दे दो, हा, वरना···।

"कौन-सी पारो वाली धोती?" गोस्वामी ने फीकी पडती उग्रता के साथ पूछा।

शास्त्री की नाभि के पास से मुसकराहट उठी जिससे उसकी छाती फूल गई। पर उसका गला इतना खुश्क हो रहा था कि मुसकराहट होठो तक नही आ पाई।

"पता नही···उस दिन पारो कह रही थी···।"

"क्या कह रही थी तुझसे पारो?"

शास्त्री को गोस्वामी का फीकापन देखकर फिर मजा आया। पर मजे का स्वाद उसके होंठों पर नही फैला, उसकी आंखों में भर गया।

"कहती थी, वह मेरे लिए एक धोती लाई थी, पर आपने वह पहले देख ली, इसलिए···"

"तो वह रांड तेरे साथ भी···!" और यह 'भी' कहकर गोस्वामी ने महसूस किया कि उसने लीद कर दी है। बिना बात को आगे बढ़ाए उसने हाथ की धोती शास्त्री को दे दी और कहा, "तुझे धोती चाहिए, सो ले ले। पर पारो ठगनी की बातो पर तू विश्वास मत किया कर।"

धोती लेकर शास्त्री के मन में इतना आनन्द उमडा कि विभोर होकर वह फटे स्वर मे गाने लगा, "प्रभुजी मोरे अवगुन चित न धरो।"

नीचे मन्दिर की दहलीज के पास भक्तों की भीड काफी बढ गई थी। कुछ धोती-कुर्ते और पगडी वाले सज्जन थे, कुछ धोती और दोपट्टे वाली देवियां थी, दो-एक तिल्ले-किनारे की साडी वाली नई ब्याहताएं थी, दो-एक खुले आम और काली गोल टोपी वाले नौजवान थे, एक खुली शिखा वाला ब्रह्मचारी था, एक सोने के बटनो वाला पहलवान था, और आठ-दस—'भगवान के अपने ही रूप'—छोटे-छोटे बच्चे।

बाहर सडक पर अखबार बेचनेवाले चिल्ला रहे थे—"मिलाप, प्रताप, ट्रिब्यून अखबार। अजीत पढ़िए, वीरभारत—ताजा-ताजा खबरें!"

"अमरीका में हाइड्रोजन बम बनने शुरू हो गए!"

"सरहिन्द के नजदीक गाड़ी उलट गई!"

"पाकिस्तान ने लडकर कश्मीर लेने को धमकी दे दी!"

और मन्दिर के बाहर सत्तू हलवाई की दुकान पर लस्सी पीनेवालों का जमघट

लस्सी के साथ-साथ सत्तू की बातों का मज़ा ले रहा था ! सत्तू मोटे बिशनचन्द से, जो इस समय अपने मोटे होंठों से लस्सी अन्दर खींच रहा था, और मन्दिर के अन्दर जाने-वाली हर आकृति को घूर रहा था, कह रहा था, "रौनकें देख रहे हो, लाला जी ? देखो, देखो बाहर से ही भगवान के दर्शन करो। भगवान कोई न कोई फल ज़रूर देगा।"

बिशनदास को मुसकराते छोड़कर सत्तू ठिगने कद के मुनीम गुरांदित्तामल से बोला, "ला ला गुरादित्ताजी ! दूर क्यों खड़े हो ? इधर आओ बादशाहो ! आज बीबी ने कितनी लस्सी पीने को कहा है ? आधा सेर की या तीन पाव की ?"

और गु रांदित्तामल को खीस निपोरते छोड़ वह मोटे मोहनलाल से बोला, "क्यों मोहनलाल जी, मछलियां गिन रहे हो भगवान के तालाब की ? कितनी हैं ? तुम जाल फेंकोगे तो उसे मगरमच्छ ही ले जाएंगे। अरे यार, कुछ तो भगवान की शरम करो। इधर आओ, लस्सी पियो।"

सामने मोलूशाह 'किटकिट' रेवड़ियां काट रहा था। उसके साथ का नत्थू पंसारी मिर्चें कूट रहा था। चौराहे की दूकान पर तिल कूटने वाले अब भी उसी तरह तिल कूट रहे थे—हियें. अ:अ ! हियें अ-अ !

नत्थू पंसारी मिर्चों की गन्ध से दो-एक बार छींका। मोलूशाह ने चाकू से अपनी उंगली काट ली। लाला बिशनदास लस्सी का गिलास आधा पीकर और आधा दुम हिलाती बिल्ली के लिए छोड़कर जल्दी-जल्दी मन्दिर के अन्दर चला गया, क्योंकि दो सुन्दर लड़कियां उस समय अन्दर जा रही थीं।

मुनीम गुरांदित्तामल भी जल्दी-जल्दी लस्सी गले में उंडेलने लगा, क्योंकि उसकी धर्मपत्नी बंसो घर से तैयार होकर आ गई थी, और बंसो का आदेश था कि वह दोनों समय नहीं तो कम से कम एक समय ठाकुर जी के दर्शन किया ज़रूर करे।

जब गुरांदित्तामल अपनी धर्मपत्नी के साथ मन्दिर के अन्दर चला गया तो सत्तू और मोहनलाल एक-दूसरे की आंखों में देखकर मुसकराए।

"भगवान बड़ा कारसाज़ है," सत्तू ने कहा। मोहनलाल ने पलकें झपकाकर इसका अनुमोदन किया।

मोहनलाल भी चलने को हुआ तो सत्तू ने स्वर दबाकर कहा "विलायती लट्ठा, दस थान मिला है—भेज दूं ?"

मोहनलाल ने पलकें झपकाकर स्वीकृति दी।

"भाव वही पिछला ही है !" सत्तू ने उसी तरह कहा।

मोहनलाल ने फिर उसी तरह पलकें झपकाकर स्वीकृति दी। फिर वह भी किसी तरह अपने शरीर को धकेलता और काले माथे के नीचे जड़ी लाल आंखों से नाक की सीध में देखता हुआ मन्दिर के अन्दर चला गया, क्योंकि पुजारी ने किवाड़ खोल दिए थे और ठाकुर जी के जागने की घण्टी बजा दी थी।

सौदा

दिन के नौ बजे थे और रोज की तरह पहलगाम के बाज़ार मे चहल-पहल शुरू हो गई थी। लोग नाश्ते के बाद अपने-अपने होटलो और खेमो से तैयार होकर आ रहे थे। कई-एक पार्टिया बाजार में एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहलकदमी करती दिखाई दे रही थी। एल्सेशियन कुत्ते को लेकर घूमती चैक भद्र महिला से लेकर सैनफ्रैसिस्को के तरुण दम्पति तक, और सिंधी डॉक्टर की लडकियो से लेकर तिरुचिरापल्ली के विद्यार्थियो तक हर एक का चलने का अन्दाज़ कुछ ऐसा था जैसे वह वहां दिग्विजय करने के लिए आया हो। कुछ सुन्दर छरहरे शरीर, दो-चार याद रहने वाले चेहरे, कही एक अच्छी मुसकराहट या चुभ जाने वाली मुद्रा'''वरना सिर्फ कपड़े, काले चश्मे और कैमरे! दो-एक चेहरे ऐसे भी दिखाई दे रहे थे जिनकी बदसूरती को शायद घण्टो की मेहनत से निखारा गया था। दो अधेड़ व्यक्ति, अपने तरुण मित्रो के समुदाय में खड़े, शोर मचाते हुए लोगो को अपने युवा होने का प्रमाण देने की चेष्टा कर रहे थे। और इस वातावरण मे घिरा एक व्यक्ति, जिसकी वेशभूषा से प्रकट था कि वह अमृतसर का लाला है, अपनी पत्नी और बच्चे के साथ एक तरफ खडा था। वह बहुत सवार-संवारकर चाकू से एक सेब के टुकडे काट रहा था और उनके हाथो मे देता जा रहा था। उन लोगो के पास एक दरी, एक सेबो की टोकरी और एक रोटी का डब्बा रखा था।

पहले पुल की तरफ म कुछ घोड़े वाले घोडों की लगामें थामे बाजार की तरफ आ रहे थे। घोड़ो की उजली सजावट के साथ उनके मैले-फटे कपडो की तुलना करने से लगता था कि वे घोड़ो के मालिक नही, घोड़े उनके मालिक हैं। वे सब आज बहुत धीरे-धीरे उस तरफ आ रहे थे, जो कि उनके स्वभाव के विरुद्ध था। अक्सर उनमें जो जल्दबाजी रहती थी, वह आज नही थी।

घोड़े वालो के बाजार मे पहुचते ही बाज़ार की हलचल पहले से कई गुना बढ़ गई। बहुत-से लोग उन्हे घेरकर रोबीले स्वर मे उनसे घोडो की माग करने लगे।

"हतो, पाच घोडे लाओ। अच्छे जवान घोड़े चाहिए।"

"हतो, ये दोनो घोड़े हमारे साथ ले आओ, चन्दनबाडी चलना है।"

"चल हतो, उधर वे मेम साहब घोड़ा मांग रही हैं।"

ज्यादातर लोगों को चन्दनवाडी के लिए घोड़े लेने थे। पहलगाम आने वाले सब लोग एक बार चन्दनबाड़ी तक घुड़सवारी अवश्य करते हैं हालाकि चन्दनबाडी में ऐसा कोई खास आकर्षण नही है। वह अमरनाथ के रास्ते का एक साधारण सा पड़ाव है। पर क्योंकि वहा जाने का रिवाज है, इसलिए लोग वहा जाए बिना अपनी पहलगाम की यात्रा पूरी नही समझते।

उस लाला ने भी निश्चिन्ततापूर्वक सेब का टुकड़ा चबाते हुए घोड़े वाले को आदेश दिया, "तीन घोड़े इधर लाना, भाई! अच्छे बढ़िया घोड़े हों।"

मगर घोड़े वाले ने जवाब में उपेक्षा-सी दिखलाते हुए कहा, "तीन घोड़े के बारह रुपये होंगे।"

"सब घोड़े तीन-तीन रुपये मे जाते हैं।" लाला थोड़ा तेज होकर बोला। "हम आज पहली बार नही जा रहे हैं।"

यह छोटा-सा झूठ उसकी व्यवहार-बुद्धि ने ही उससे बुलवा दिया, हालाकि कुछ देर पहले जिस तरह वह एक आदमी से चन्दनबाड़ी के बारे मे पूछ रहा था, उससे स्पष्ट

था कि वह ज़िन्दगी में पहली बार पहलगाम आया है और शायद पिछली शाम को ही आया है। उसी आदमी से उसे पता चला था कि घोड़े वाले चन्दनबाड़ी के तीन-तीन रुपये लेते है।

"चार रुपये सरकारी रेट है," घोड़ेवाले ने घोड़े की ज़ीन ठीक करते हुए कहा, "चार रुपये से कम में आज कोई घोड़ा नही जाएगा।"

"तू जा, अभी पचास घोड़े वाले मिल जाएंगे," लाला ने रूखे स्वर मे उसे झिड़क दिया और दूसरे घोड़े वाले को आवाज़ दी।

मगर सब घोडे वाले उस दिन चार रुपये ही मांग रहे थे। और लोग भी इसी बात पर उनसे झगड़ रहे थे। वही घोडे वाले जो रोज़ तीन-तीन रुपये में चन्दनवाडी चलने के लिए लोगों की मिन्नतें किया करते थे, और कई बार दो-दो रुपये मे भी जाने को तैयार हो जाते थे, आज किसी से सीधे मुह बात ही नही कर रहे थे। लोग आपस में कह रहे थे कि खुद उन्होने ही घोडे वालों के दिमाग आसमान पर चढाए हैं—कि घोड़े वाले उन्हे ज़रूरतमन्द समझकर ही इतना नखरा दिखा रहे हैं। वे सब फैसला कर लें कि कोई घोड़ा नही लेगा तो अभी घोड़े वाले उनकी खुशामद करने लगेंगे, और दो-दो रुपये मे चलने को तैयार हो जाएंगे।

"आज बात क्या है ?" किसी ने एक घोड़े वाले से पूछा।

"बात कुछ नही है, साहब" घोडे वाले ने उत्तर दिया, "चार रुपये सरकारी रेट है।"

"पहले भी तो सरकारी रेट चार रुपये था। फिर तुम लोग तीन रुपये क्यों लेते थे ?"

"यह तो मर्ज़ी की बात है, साहब" एक जवान घोड़े वाला बोला, पहले मर्ज़ी होती थी, ले लेते थे। आज मर्ज़ी नही है, नही ले रहे।"

पर धीरे-धीरे इधर-उधर की चेहमेगोइयो से पता चल गया कि कल किसी बाबू ने एक घोडे वाले को इस बात पर पीट दिया था कि वह चन्दनबाडी के तीन के बजाय चार रुपये लेना चाहता था। इसलिए सब घोड़े वालों ने आज फ़ैसला किया था कि वे चार रुपये से कम मे चन्दनवाड़ी नही जाएगे।

"थोड़ी देर इन्तज़ार कीजिए, ये लोग अभी रास्ते पर आ जाएगे," लाला ने आगे आते हुए कहा, "आज हम इन्हे चार रुपये दे देंगे तो कल को ये पांच रुपये मांगेंगे। जो जायज़ बनता है, वही इन्हे देना चाहिए। थोड़ी देर रुकिए, अभी और घोड़े वाले आ जाएंगे।"

खालसा होटल का नौकर आवाज़ दे रहा था कि होटल मे अठारह घोड़े चाहिए, इसलिए वे सब घोडे वाले खालसा होटल की तरफ चल दिए। इस पर कुछ लोगो ने तुरन्त परिस्थिति से समझौता कर लिया और चार-चार रुपये मे अपने लिए घोड़े ठीक कर लिए। लाला और कुछ दूसरे लोगो ने नाराजगी ज़ाहिर की कि वे खामखाह अपने को घोड़े वालों के सामने नीचा कर रहे हैं। पर जिन्होने घोड़े ले लिए थे, वे चुपचाप उन पर सवार होकर चल दिए। लाला के साथ केवल तिरुचिरापल्ली के विद्यार्थी और एक बंगाली परिवार रह गया। लाला कुछ देर उन्हे अपना दृष्टिकोण समझाता रहा। फिर अपने परिवार के पास आ गया।

क्योंकि उस जगह काफी बकझक हो चुकी थी, इसलिए अपनी पत्नी और बच्चे को साथ लिए पुल की तरफ चल दिया। उधर से और बहुत घोड़े वाले आ रहे थे। उसने उनमे से भी तीन-चार को रोककर पूछा, पर हर एक ने चार ही रुपये मागे। वह कुछ

दूर आगे जाकर उधर मे लौट पडा। उसका बच्चा जो सामने से आते हुए घोड़े को उत्सुकता की नजर से देख लेता था, चलते-चलते ठोकरें खा रहा था। लाला आखिर मन ही मन एक फैसला करके सडक के बीचोबीच खड़ा हो गया। पास से गुजरते तीन घोडों को उसने रोक लिया, और एक घोडे वाले से कहा कि वह उसकी पत्नी को घोड़े पर बैठने मे मदद दे। दूसरे घोडे पर उसने बच्चे को बैठा दिया और तीसरे की रकाब मे पाव रखकर इन्तजार करने लगा कि घोडे वाला आकर उसके शरीर को ऊपर उछाल दे।

"कहां चलना है, लाला ?" घोडे वाले ने उसे सहारा देते हुए पूछ लिया।

"चन्दनवाडी," कहता हुआ लाला घोडे पर जमकर बैठ गया।

"चन्दनवाडी के चार-चार रुपये लगेंगे।"

लाला ने घोड़े की पीठ पर से एक विजेता की नजर चारों तरफ डाली और घोडे वाले की बात को महत्त्व न देकर कहा, "बताओ, लगाम किस तरह पकड़ते हैं ?"

घोड़े वाले ने लगाम उसके हाथ में दे दी। बोला, "साथ आठ-आठ आने आपको बख्शीश के देने होगे।

"जो मुनासिब है, दे देंगे, "लाला ने कहा। "हम कभी किसी का हक नही रखते।" उसने लगाम को हल्का-सा झटका दिया। पर उससे घोड़ा आगे चलने की बजाय पीछे की तरफ घूम गया।

"लाला, यह ऐसे नही चलेगा," घोड़े वाला हंस दिया। "तुम पैसे की बात करो, यह अभी दौडने लगेगा।"

"तुमसे कह दिया है न कि ठीक पैसे दे देंगे।"

"चार-चार रुपया भाड़ा और आठ-आठ आना बख्शीश।"

"तीन-तीन रुपया भाडा और चार-चार आना···!"

"उतर जाओ लाला," घोड़े वाला बीच में ही बोल उठा। "तीन रुपये में आज कोई घोड़ा नही जाएगा।"

"कैसे नही जाएगा ?" लाला गुस्से के साथ बोला। "जब रोज जाता है, तो आज भी जाएगा।"

"नहीं जाएगा साहब, आज हरगिज नही जाएगा।"

"तो हम भी घोड़े से नही उतरेंगे। खडे रहो जितनी देर खड़े रहना है !" और पंजाबी गालियां मिलाकर वह ऐसी हिन्दी बोलने लगा जिसमें केवल भाव ही भाव था, कला का स्पर्श तक नही था। तभी न जाने क्या हुआ कि उसकी पत्नी का घोडा बिदककर सरपट दौड उठा। उस बेचारी ने सभलने की बहुत कोशिश की, पर कुछ गज जाते न जाते उसकी एक ही टांग जीन पर रह गई, और वह सिर के बल गिरने को हो गई। घोड़े वाले ने दौड़कर वक्त पर घोडे को रोक लिया।

लाला ऐसी हालत मे था कि वह बिना घोड़े वाले की मदद के उतर भी नहीं सकता था। उसने एक पैर रकाब से निकाल लिया था, पर उसे जमीन तक पहुंचाने की कोशिश मे दूसरा पैर उलझ गया था। घोड़े वाले ने उसे सहारा देकर उतार दिया। तब तक उसकी पत्नी भी किसी तरह सभलकर उतर गई थी। लाला ने अब खुद ही बच्चे को को भी उतारा और भाषा मे फिर अपने उद्गार प्रकट करने लगा। घोड़े वाले अपनी जबान मे उसे जवाब देते हुए वहां से चले गए क्योंकि दूर से कोई उन्हें हाथ के इशारे से बुला रहा था।

बंगाली परिवार और तिरुचिरापल्ली के विद्यार्थी भी अब घोड़ों पर सवार होकर आ रहे थे। और भी कितने ही ग्रुप चन्दनवाड़ी की तरफ जा रहे थे। कुछ युवतियां और

युवक तेजी से घोड़े दौड़ाते पास से निकल गए। बच्चा हैरान-सा खड़ा उन्हें दूर जाते देखता रहा।

लाला की पत्नी ने उससे कहा कि यदि चलना हो, तो उन्हें भी और लोगों की तरह चुपचाप चार-चार रुपये में घोड़े ले लेने चाहिए। लाला ने जैसे बहुत बड़ा समझौता करते हुए उसकी बात मान ली, और एक घोड़े वाले को आवाज़ दी कि वह उनके लिए तीन घोड़े ले आए।

मगर घोड़े वाले ने दूर से ही कहा, "नहीं साहब, घोड़ा खाली नहीं है।"

पास से निकलता एक और घोड़े वाला भी यही कहकर चला गया। तीसरे ने यह जवाब देना भी मुनासिब नहीं समझा। आखिर एक घोड़े वाले ने रुककर पूछ लिया, "चार रुपया भाड़ा और एक रुपया बख्शीश मिलेगा?"

"भाड़ा हम तुम्हें रेट के मुताबिक देंगे," लाला सिमियाने स्वर में बोला। "पर बख्शीश हमारी मर्ज़ी पर है।"

"नहीं साहब," घोड़े वाले ने कहा। "बख्शीश की बात भी पहले तय होनी चाहिए। उधर एक और साहब घोड़ा मांग रहा है। वह एक रुपया बख्शीश देगा।"

इससे पहले कि लाला कुछ निश्चय कर पाता, एक और घोड़े वाले ने उस घोड़े वाले को बुला लिया। वह एक यूरोपियन परिवार के लिए सात घोड़े इकट्ठे कर रहा था। लाला ने पत्नी और बच्चों को वहीं छोड़कर पूरे बाज़ार का एक चक्कर लगाया। पर सभी घोड़े तब तक जा चुके थे। तभी अचानक उसकी नज़र एक घोड़े वाले पर पड़ी जो घोड़ा लिए क्लब की सड़क से बाज़ार की तरफ आ रहा था। वह रुककर उसकी राह देखने लगा। घोड़ा और घोड़े वाला बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे। लगता था जैसे दोनों बीमार हों। पास पहुंचने पर लाला ने घोड़े वाले से पूछा कि वह चन्दनवाड़ी का क्या लेगा।

"चार रुपया," घोड़े वाले ने खांसते हुए उत्तर दिया।

उसने साथ बख्शीश की मांग नहीं की, इससे लाला के चेहरे पर खुशी की हल्की-सी लहर दौड़ गई। उसने घोड़े वाले से कहा कि वह जाकर उसके लिए दो घोड़े और ले आए।

"और घोड़ा आप देख लीजिए, मेरे पास एक ही घोड़ा है।" घोड़े वाला उसी तरह खांसता रहा। "और लेना हो तो बताइए, नहीं तो मैं उधर से एक मेम साहब के बच्चों को घुमाने ले जाऊंगा।

"तू मेरे साथ रह, अभी दो घोड़े और मिल जाएंगे," लाला ने कहा और उसे साथ लिए हुए वहां आ गया जहां उसकी पत्नी खड़ी थी। वहां आकर उसने गर्व के साथ पत्नी को बतलाया कि अब बिना बख्शीश के चार-चार रुपये में घोड़े मिल रहे हैं, और हो सकता है थोड़ी देर में इससे भी कम में मिलने लगें। उसके बाद वह पत्नी और बच्चे को साथ लिए घोड़ों की तलाश में बाज़ार के चक्कर काटने लगा। बच्चा रोटी का डिब्बा उठाए था, पत्नी सेबों की टोकरी हाथ में लिए थी और वह खुद दरी बगल में संभाले था, घोड़े वाला उनके पीछे-पीछे घोड़े की लगाम थामे खांसता हुआ चल रहा था। वे बहुत देर बाज़ार में इसी तरह ऊपर से नीचे से ऊपर चक्कर काटते रहे, पर कहीं उन्हें एक भी और खाली घोड़ा नज़र नहीं आया।

वासना की छाया में

पहले-पहल पुष्पा को मैंने घर के सामने पम्प पर पानी भरते देखा था। उसकी आंखें मुझे पतली कौड़ियों जैसी लगीं। उसने दो-तीन बार आंख भरकर मुझे देखा तो मुझे लगा कि या तो मेरे बाल बहुत सफेद हो गए हैं, या मैं अपनी उम्र से चार-पांच साल छोटा लगता हूं। नहीं तो कोई कारण नहीं था कि वह उस सहज विश्वास-भरी दृष्टि से मुझे देखती, मानो कह रही हो, "चलो आंखमिचौनी खेलते हो?"

पुष्पा की उम्र तेरह साल होगी। अधिक से अधिक चौदह साल होगी। उसका रंग गोरा पंजाबी था। उसके शरीर को पूरा खिलने में दो-तीन साल रहते थे, फिर भी उसकी आंखों में वह विस्मय भर गया था जो यौवन का अर्थ पहले-पहल समझने पर कुछ दिनों के लिए रहता है। उसे जैसे *आश्चर्य था कि क्या वह अकेली ही जानती है कि गुलाब का रंग गुलाबी क्यों है?"*

"आप पानी भर लीजिए," पुष्पा ने अपनी बाल्टी हटाकर मुझसे कहा।

"नहीं, तू भर ले," मैंने यह सोचकर कहा था कि शायद वह मेरे सफेद बालों का सम्मान कर रही है।

"आपको दफ्तर जाना है, आप भर लीजिए," उसने कहा। मुझे खुशी हुई कि उसे मेरे अस्तित्व का पता है, काम-काज का पता है और उसका लिहाज़ मेरे सफेद बालों तक सीमित नहीं।

"तेरा नाम क्या है?" मैंने अपनी बाल्टी में पानी भरते हुए पूछा।

"पुष्पा," उसने सकोच के साथ उत्तर दिया।

"किस क्लास में पढ़ती है?"

वह और भी संकुचित हो गई। बिना मेरी ओर देखे बोली, "मैं स्कूल नहीं जाती।"

"क्यों?" मुझे आश्चर्य हुआ कि इतनी अच्छी आंखों वाली लड़की स्कूल क्यों नहीं जाती? यूं मैं किसी लड़की से ज़्यादा सवाल नहीं करता, क्योंकि वे ज़रा-से परिचय को घनिष्ठता समझने लगती हैं। पर पुष्पा अभी उस रेखा से दूर थी जहां जाकर एक लड़की मेरे लिए लड़की बन जाती है।

"मैं यहां नहीं रहती," पुष्पा ने इस तरह कहा जैसे मेरा प्रश्न बिलकुल असंगत रहा हो। "मैं बापू के साथ गांव से आई हूं। बापू को यहां थोड़ा काम है। उसका काम हो जाएगा तो हम अपने गांव चले जाएंगे।"

मैंने देखा कि उसकी आंखों ने अभी लजाना नहीं सीखा। उसके अन्दर अभी वही ताज़गी थी जो नई बहार की कलियों में होती है। वह गांव से आई थी और गांव चली जाएगी। वहां जाकर सरसों के पीले-पीले फूलों से खेलेगी और मीठा नरम साग खाएगी। कोई रात को आग के पास हीर गाएगा और विभोर होकर सुनेगी। नहीं तो सरसराती हवा का संगीत ही सही—वह उसके रोम-रोम का थपथपाकर उसे सुला देगा।

सुबह उठकर वह पशुओं को चारा देगी। प्रभात के स्वर उसे फुसलाएंगे तो वह नंगे पैरों नदी की ओर भाग जाएगी। जब तक मन में आएगा वहां तैरती रहेगी। लौटती हुई वह धान के खेत से मूलिया और शलजम उखाड़ लाएगी। उसके गीले बाल रूखे ही सूख जाएंगे, पर उसे चिन्ता न होगी। उसके फूटते हुए वक्ष उसकी गीली कमीज में

कटोरियां-सी निकाल देंगे, पर उसे उसकी होश न होगी। वह घर लौटकर गणित के प्रश्नों से नहीं उलझेगी। भूगोल की रेखाएं नहीं याद करेगी। कोश लेकर कविताओं के अर्थ नहीं ढूंढेगी। वह जिधर देखेगी कविताएं फूटने लगेंगी।

अचानक मैंने देखा कि मैं पम्प चलाए जा रहा हूं, हालांकि बाल्टी भर चुकी है और पानी इधर-उधर बिखर रहा है। अपनी अन्यमनस्कता छिपाने और पुष्पा के सौजन्य का बदला चुकाने के लिए मैंने अपनी बाल्टी उठाई और उसका सारा पानी पुष्पा की बाल्टी में डाल दिया।

"ऊई !" वह एक कदम पीछे हट गई, "मेरी बाल्टी छू गई।"

"छू कैसे गई ?" मैंने लज्जा और अपमान महसूस करते हुए पूछा।

पुष्पा ने मेरे छिपे हुए भाव को भाप लिया। उसने क्षमा मांगने के ढंग से कहा, "जी, मैं बाल्टी माजकर लाई थी। आपकी बाल्टी मजी हुई नहीं थी।"

यह सुनकर मेरी आत्मा फिर उदार हो गई। मैंने अपने को याद दिलाया कि बाल्टी को राख से मला जाए, तभी जाकर वह पवित्र होती है। फिर चाहे गलीज फर्श पर रखकर उसमें पानी भरो, चाहे चबाई हुई दातुनों के ढेर पर।

"मेरी बाल्टी भी मजी हुई थी, मैंने सवेरे मांजी थी," मैंने झूठ बोला। झूठ बोलना मेरी आदत है। बिना कारण के झूठ बोलता हूं। दिन में कई-कई बार बोलता हूं। यह मुझे अच्छा भी लगता है, मैं सच कह रहा हूं।

जो मुंह से झूठ नहीं बोला, वह मन में झूठ बोलता है। जो मन से झूठ बोलता है, वह मुझसे ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि वह सच का दावेदार है, इसलिए वह और भी झूठा है।

पुष्पा ने मुस्कराकर बाल्टी का पानी गिरा दिया और जमीन से मिट्टी उखाड़कर बाल्टी को मलने लगी। मैं अपनी बाल्टी में फिर से पानी भरने लगा।

किसी ने दूर से उसे पुकारा, "पप्पीऽ !"

"आई बावूऽ !" उसने पुकारकर उत्तर दिया।

"अभी पानी नहीं भरा ?"

"नहीं बावूऽ !"

"जल्दी कर सिर मुडीऽ !"

मैंने उधर देखा। एक लम्बा बूढ़ा जाट सामने की कोठी के बरामदे में खड़ा सिर पर पगड़ी लपेट रहा था। एक तो उसकी आवाज बहुत कर्कश थी, दूसरे उसकी सफेद दाढ़ी ऐसी नोकदार थी, जैसे उसी से वह मुर्गियां झटकता रहा हो। उसकी आंखों का रंग बताता था कि उसने रात को खूब शराब पी है, क्योंकि नशा अभी तक उसकी पुतलियों में तैर रहा था। पगड़ी लपेटकर उसने दाढ़ी पर हाथ फेरा और पुष्पा को फिर आवाज दी, "जल्दी कर, लाड की बच्ची, नहीं तेरा झोटा सेंकूं !"

यह देखकर कि मेरी बाल्टी अभी आधी भरी है, मैं जल्दी-जल्दी पम्प चलाने लगा। जाट ने पीठ मोड़ ली। पुष्पा मेरी ओर दो कौड़ियों का एक दाव फेंककर मुस्कराई। उसकी मुस्कराहट ने मुझसे कहा 'तुम बेवकूफ हो। बापू की गालियां बेटी को नहीं लगा करतीं।'

उसके बाद दो-तीन बार फिर मैंने पुष्पा को देखा। न जाने क्यों उसे देखकर हर बार मुझे गहरे लाल रंग के मखमली फूल याद आ जाते। बचपन में मैं वे फूल अपने कोट पर लगाया करता था।

दो-तीन बार पुष्पा के बापू को भी मैंने देखा—दातुन करते, जूड़ा बांधते या

गालियां बकते। उसकी मुझ पर कुछ ऐसी छाप पड़ी जैसे बरसात होकर हटी हो और पुराने गले हुए टीन के छप्पर पर से महीनो का सूखा बीट पानी के साथ गल-गलकर टपक रहा हो।

उस दिन दफ्तर से लौटते हुए मैं अड्डा नकोदर से फर्लांग-भर आया था जब मैंने लक्षित किया कि सफेद दाढी वाला वह जाट मुझसे दो कदम हटकर साथ-साथ चल रहा है। मैं ज़रा तेज चलने लगा वह भी तेज चलने लगा। मैंने चाल धीमी कर दी। उसने भी चाल धीमी कर दी।

मुझे यह कभी सह्य नही कि मैं सड़क पर किसी के साथ-साथ चलूं, क्योकि मैं जिसके साथ चलता हू, वह अपेक्षा करता है कि मैं उसी की तरह चलू और उसी की तरह सोचू। पर कोई मेरे साथ-साथ चले तो वह मुझे बहुत अच्छा लगता है, क्योकि वह मेरी तरह चलता है और अपनी तरह सोचता है।

"कहा चल रहे हो, बाबूजी ?" पुष्पा के बापू ने मेरा ध्यान अपनी ओर खीचने के लिए पूछा।

"मॉडल टाउन," मैंने इस अन्दाज़ मे कहा कि वह जान ले कि मैं एक महत्त्व-पूर्ण व्यक्ति हूं और सिर्फ इसलिए पैदल चल रहा हूं कि मुझे सध्या के समय पैदल घूमने का शौक है।

"हम भी वही चल रहे हैं। डॉक्टर गुरबख्श सिंह मदान को जानते हैं ? वे हमारे ही गांव के हैं। शहर में आकर हमारा उन्ही के घर डेरा होता है।" फिर पास आकर बोला, "चलो राह चलते एक से दो भले।"

मैंने कहना तो चाहा कि मेरे चलने में उसे भले ही लाभ हो, उसके साथ चलने में मुझे कोई लाभ नही, पर इसलिए नही कहा कि कही दोआबा का जाट जोश मे आकर मेरे सिर का पंजाब न बना दे।

"आप इधर के ही है ?" जाट ने अब परिचय बढाने की चेष्टा की।

"नहीं," मैंने उत्तर दिया।

"तो जालन्धर में कब से हैं ?"

मैंने उचित समझा कि वह जितने सवाल पूछ सकता है, उन सबका उत्तर एक साथ ही उसे दे दूं, जिससे उसकी जिज्ञासा पूरी शान्त हो जाए। इसलिए मैंने कहा कि मैं दो महीने से यहां हूं। सेक्रेटरियट मे असिस्टेंट सुपरवाइज़र हू। वेतन एक सौ बीस रुपया है। ऊपरी आमदनी हो जाने की आशा है। अभी ब्याह नही हुआ। लड़की देख रहा हूं। पढ़ाई की चौदह जमातें पास की हैं। तरकारियों मे मुझे गोभी पसन्द है। फलो मे मैं आम पसन्द करता हूं। हर इतवार को शरीर पर कडवे तेल की मालिश करता हूं। मेरी रोटी एक गढ़वाली पकाता है। उसकी उम्र चालीस साल है। मेरे बरतन उसकी लड़की मलती है। उसकी उम्र बीस साल है।

यह सब उसे सुनाकर मैंने मन में कहा कि पूछ ताऊ, अब क्या पूछता है।

पर जाट ने फिर भी पूछा, "क्यो जी, गढवाली ने अभी तक लड़की का ब्याह नही किया ?"

यह हद थी ! मगर मैंने धैर्य नही छोड़ा। सन्तोष-असन्तोष अपने घर की चीज़ है। पर पीठ का दर्द जाकर डॉक्टर को दिखलाना पड़ता है। मुझे अपनी आत्मा पर इस बात का गर्व है कि वह हवा का रुख देखकर फौरन तिरछी से सीधी हो जाती है। मैंने जाट का प्रश्न बिलकुल स्वाभाविक समझकर उसका स्वाभाविक-सा उत्तर दिया, "उसकी लड़की विधवा है।"

"अच्छा जी, विधवा है ? फिर तो वह उसे दूसरी जगह बिठाएगा।"

मैं आधुनिक इतिहास का विद्यार्थी होता तो गढ़वाली से पूछ रखता कि वह अपनी लड़की को दूसरी जगह बिठाएगा या नहीं। पर इतिहास में मेरी रुचि तैमूरलंग की लड़ाई तक ही रही है, उससे आगे नहीं। फिर भी जाट को उत्तर देना आवश्यक था। उसकी मूछों के बाल अंगड़ाइयां लेने लगे थे। मैंने रास्ता काटने की नीयत से कहा, "वह देख-भाल तो कर रहा है। आगे लड़की की तकदीर है।"

"लड़की देखने में अच्छी है ?" जाट ने पूछा।

"देखने में अच्छी है और स्वभाव की भी मीठी है," मैंने इसलिए कहा कि कम से कम बात में तो थोड़ा रोमांस रहे।

"अच्छा जी !" जाट बोला, "सच पूछो तो सबसे बड़ा गुण यही है। काम अच्छा करती है ?"

"काम में वह सुस्त है। हां, बातें बहुत करती है।"

"अच्छा जी !" जाट बोला। "रगों में जवानी हो तो काम नहीं सुहाता।"

उसकी टिप्पणी का मजा लेते हुए मैंने उसकी ओर देखा तो उसकी आंखों में भूखी बिल्ली की-सी जलन दिखाई दी। उसके होंठ बूढ़ी वासना की लार से गीले हो रहे थे। उसका रस-भंग करने के लिए मैंने रुककर जूतों को झाड़ा और कहा, 'इन कच्चे रास्तों पर सरदारजी जूतों का तो कचूमर निकल जाता है।"

जाट ने मेरे अभिनय और शब्दों की ओर ध्यान नहीं दिया। अपनी ही धुन में कहा, "बाबूजी, आज आपके गढ़वाली से मुलाकात हो सकती है ?"

"क्यों ?" मैंने उसकी ओर देखकर पूछा। मुझे लगा कि वासना का लार चूकर लम गया है और इन्सान के आकार में धरती पर रेंग रहा है।

"मुझे एक ज़मींदारनी की ज़रूरत है, बाबूजी !" जाट ने कहा। "मैं ज़मींदार हूं। पास के गांव में मेरी चार एकड़ ज़मीन है। पांच एकड़ ज़मीन ज़िला करनाल में है। यहां के गांव का लम्बरदार हूं। घरवाली मर गई है। एक जवान लड़की है। उसका ब्याह कर दूं तो मेरी देख-भाल करने वाला कोई नहीं है। घर में एक गाय और दो भैंसें हैं। घरवाली आ जाए तो उनका चारापानी हो जाएगा और मेरी भी दो रोटियां हो जाएंगी।" फिर उसने मेरी बांह पकड़कर मिन्नत के लहजे में कहा, "आपके गुण गाऊंगा सरकार, मेरा यह काम ज़रूर करा दीजिए।"

वह बोल रहा था तो उसके शब्दों की गूंज अपना अर्थ मुझे और तरह समझा रही थी। वह कह रही थी, "मुझे औरत के गर्म मांस की ज़रूरत है, बाबूजी ! मैं चाहे बूढ़ा हूं, पर मेरे अकेले के पास नौ एकड़ ज़मीन है। घर में गाय-भैंसें हैं और सब-कुछ है, सिर्फ औरत ही नहीं है। मेरी अपनी हड्डियों पर गर्म मांस नहीं रहा, पर बूढ़ी हड्डियां गर्म मांस का चारा अब भी मांगती हैं। इनके लिए चारा चाहिए, सरकार जैसे भी हो सके इनके चारे का प्रबन्ध कर दीजिए।"

किसी तरह गला छुड़ाने के लिए मैंने कहा, "गढ़वाली पंजाबियों के साथ ब्याह नहीं करते, सरदारजी ! उसका बाप उसे किसी गढ़वाली के घर ही बिठाएगा।"

मेरी सुनकर जाट ढीला हो गया। उसकी मूछों के बाल, जो अब तक अंगड़ाइयां ले रहे थे, सुस्त होकर बैठ गए। वह ठंडी सांस लेकर बोला, "कहीं भी कामयाबी नज़र नहीं आती। लोग कहते थे कि रिफ्यूजी कैम्पों से मिल जाती हैं। पर मैं सवा साल से चक्कर लगा-लगाकर हार गया, कोई नहीं मिली। डॉक्टर साहब ने एक पहाड़िन चार सौ में ठीक की थी, वह भी मेरी दाढ़ी देखकर मुकर गई।"

"पर तुमको तो घर की देख-भाल के लिए ही जरूरत है न, सरदारजी ?" मैंने कहा, "एक नौकर क्यों नहीं रख लेते ?"

"नौकर उतना काम नहीं दे सकता, बाबूजी ! जमीदार का घर है। चार आने वाले, चार जाने वाले। फिर सेवा के लिए एक गाय, दो भैंसें। इतना कुछ तो घरवाली ही संभाल सकती है।"

"तो तुम चाहते हो कि जवान लड़की आकर तुम्हारे गुर्दे भी दुरुस्त करे और तुम्हारी गाय-भैंसों का दूध भी दुहे ?"

"वह क्यों दुहे सरकार ? वह आराम से घर मे बैठे। दूध दुहने को हम क्या मर गए है ?"

यह आज़माने के लिए कि वह अपने को कहां तक सौदे में डालता है, मैंने उपदेश के रूप मे कहा, "इस उम्र में कोई मिलेगी भी तो ऐसी ही मिलेगी सरदारजी, जो पहले कई घरो में घूम चुकी हो और जिसे दूसरा ठौर-ठिकाना न हो। ऐसी को घर मे डाल लोगे ?"

मैंने देखा, जाट की मूछों के बाल फिर अगड़ाइयां लेने लगे हैं। उसने आगे बढ़कर फिर मेरी बांह पकड़ ली और बोला, "आपके पास है बाबूजी, ज़रूर आपके पास कोई है !"

मैंने नही सोचा था कि मेरे शब्दों का यह अर्थ भी निकल सकता है। थोडा भद्दा पड़कर मैंने स्पष्ट करने के लिए कहा, "यह मतलब नहीं सरदारजी, कि मेरे पास कोई है। मैं तो सिर्फ बात के लिए बात कर रहा हूं।"

"नही बाबूजी, आपके पास ज़रूर कोई है," जाट ने विनय और अनुरोध के साथ कहा। "मेरी पगडी अपने पैरों पर समझो और मेरा काम करा दो। दो-चार सौ मैं आपके सिर से वार दूगा—एक बार अपने मुह से कह दो कि है।"

मैंने जाट को सिर से पैर तक देखा। उसकी भौंहे सफेद हो रही थी। आखें छोटी होकर केवल दाग कर गई थी। गालों का मास लटक आया था। दात आधे टूट चुके थे। जो दात शेष थे, उनकी जडों में लहू रिस-रिसा रहा था। बोलते-बोलते उसका थूक दाढ़ी के सफेद बालों में फैल गया था और वह मुझसे विश्वास मांग रहा था कि मैं कह दूं है—एक औरत है, जो उसके लिए चारा बन सकती है, जो अपना यौवन राधकर उसे खिला सकती है, क्योंकि वह जमीदार है और उसके घर में एक गाय और दो भैंसें हैं, और उसकी हड्डियों मे जितना ज़ोर है, उससे कही अधिक उसकी गाठ में पैसा है।

"बोले नही बाबूजी ?" जाट व्याकुल उत्सुकता के साथ बोला।

"मैं किसी को नही जानता सरदारजी," मैंने धीरे से उत्तर दिया।

मॉडल टाउन अब सामने ही था। पक्की सड़क पर जाकर मेरी नज़र पुष्पा पर पड़ी जो बरामदे मे खडी अपने बापू की प्रतीक्षा कर रही थी।

मुझे फिर लाल फूल याद हो आए। मैंने जाट की ओर देखकर पूछा, "तुम अभी कुछ दिन तो हमारे पड़ोसी हो न, सरदारजी ?"

"नही जी, हम कल अपने गाव जा रहे हैं," जाट ने कहा। "यहा अब किसके भरोसे बैठे रहे ? वहीं चलकर देख-भाल करेंगे। और नही तो बदले मे ही कोई लड़की देखेंगे⋯"

"बदले मे ?" मैंने हैरान होकर पूछा।

"हमारे में यह रिवाज है, बाबूजी ! बराबर का रिश्ता हो तो दो घर आपस में लड़कियां बदल लेते हैं। मैं जाकर अपने जैसा ही कोई घर देखूंगा।"

मैंने देखा पुष्पा प्रतीक्षा कर रही है। बापू जो गाली देता है, वह गाली उसे नहीं लगती। पर बापू जो गाली नहीं देता, वह गाली उसे लग रही है।

मलबे का मालिक

साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आए थे। हॉकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गए थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई न कोई टोली घूमती नजर आ जाती थी। उनकी आंखें इस आग्रह के साथ वहां की हर चीज को देख रही थीं जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा-खासा आकर्षण-केन्द्र हो।

तंग बाजारों में से गुजरते हुए वे एक-दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे···देख—फतहदीना, मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गई हैं! उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्ठी थी, जहां अब वह पानवाला बैठा है।···यह नमक मण्डी देख लो, खान साहब! यहां की एक-एक लालाइन वह नमकीन होती है कि बस···!

बहुत दिनों के बाद बाजारों में तुर्रेदार पगड़ियां और लाल तुरकी टोपियां नजर आ रही थीं। लाहौर से आए मुसलमानों में काफी संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्हें विभाजन के समय मजबूर होकर अमृतसर से जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आए अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आंखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता—वल्लाह! कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ के सब के सब मकान जल गए थे?···यहां हकीम आसिफअली की दुकान थी न? अब यहां एक मोची ने कब्जा कर रखा है?

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनाई दे जाते—वली, यह मस्जिद ज्यों की त्यों खड़ी है? इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया!

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुजरती, शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक उस तरफ देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुसलमानों को आते देखकर आशंकित-से रास्ते से हट जाते, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बगलगीर होने लगते। ज्यादातर वे आगन्तुकों से ऐसे-ऐसे सवाल पूछते—कि आजकल लाहौर का क्या हाल है? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं? सुना है, शाहालमीगेट का बाजार पूरा नया बना है? कृष्णनगर में तो कोई खास तब्दीली नहीं आई? वहां का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत के पैसे से बना है?···कहते हैं, पाकिस्तान में अब बुर्का बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक है?···इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था, लाहौर एक शहर नहीं, हजारों लोगों का सगा-सम्बन्धी है, जिसके हाल जानने के लिए वे उत्सुक हैं। लाहौर से आए लोग उस दिन शहर-भर के मेहमान थे जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को बहुत खुशी हो रही थी।

बाजार बांसां अमृतसर का एक उजड़ा-सा बाजार है, जहां विभाजन से पहले ज्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। वहां ज्यादातर बांसों और शहतीरों की ही दुकानें थीं जो सबकी सब एक ही आग में जल गई थीं। बाजार बांसां की वह आग

अमृतसर की सबसे भयानक आग थी जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अंदेशा पैदा हो गया था। बाज़ार बांसां के आसपास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। खैर, किसी तरह वह आग काबू में आ गई थी, पर उसमे मुसलमानो के एक-एक घर के साथ हिन्दुओं के भी चार-चार, छ:-छ: घर जलकर राख हो गए थे। अब साढे सात साल मे उनमे से कई इमारतें फिर से खड़ी हो गई थी, मगर जगह-जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे। नई इमारतों के बीच-बीच वे मलबे के ढेर एक अजीब वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाज़ार बांसां में उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी क्योंकि उस बाज़ार के रहने वाले ज्यादातर लोग तो अपने मकानो के साथ ही शहीद हो गए थे, और जो बचकर चले गए थे, उनमे से शायद किसी में भी लौटकर आने की हिम्मत नही रही थी। सिर्फ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस दिन उस वीरान बाज़ार में आया और वहां की नई और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैया में पड़ गया। बाईं तरफ जानेवाली गली के पास पहुंचकर उसके पैर अन्दर मुडने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहा बाहर ही खड़ा रह गया। जैसे उसे विश्वास नही हुआ कि यह वही गली है जिसमें वह जाना चाहता है। गली मे एक तरफ कुछ बच्चे कीड़ी-कीड़ा खेल रहे थे और कुछ फासले पर दो स्त्रियां ऊंची आवाज में चीखती हुई एक-दूसरी को गालियां दे रही थी।

"सब कुछ बदल गया, मगर बोलियां नही बदली !" बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वर मे अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिए खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामे से बाहर को निकल रहे थे। घुटनो से थोड़ा ऊपर शेरवानी में तीन-चार पैबन्द लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर आ रहा था। उसने उसे पुचकारा, "इधर आ, बेटे ! आ, तुझे चिज्जी देंगे, आ !" और वह अपनी जेब मे हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज़ ढूंढने लगा। बच्चा एक क्षण के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसी तरह होंठ बिसूरकर रोने लगा। एक सोलह-सत्रह साल की लड़की गली के अन्दर से दौड़ती हुई आई और बच्चे को बाह से पकडकर गली मे ले चली। बच्चा रोने के साथ-साथ अब अपनी बांह छुडाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे अपनी बांहों में उठाकर साथ सटा लिया और उसका मुह चूमती हुई बोली, चुप कर, खसम-खाने ! रोएगा, तो वह मुसलमान तुझे पकड़कर ले जाएगा ! कह रही हूं, चुप कर !"

बुड्ढे मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह उसने वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर वहां थोड़ा खुजलाया और टोपी अपनी बगल मे दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने थोडा काप रहे थे। उसने गली के बाहर की एक बन्द दुकान के तख्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहा पहले ऊंचे-ऊंचे शहतीर रखे रहते थे, वहां अब एक तिमंज़िला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर दो मोटी-मोटी चीलें बिल्कुल जड़-सी बैठी थी। बिजली के खम्भे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते ज़र्रों को देखता रहा। फिर उसके मुंह से निकला, "या मालिक !"

एक नवयुवक चाबियो का गुच्छा घुमाता गली की तरफ आया। बुड्ढे को वहा खड़े देखकर उसने पूछा, "कहिए मियांजी, यहा किसलिए खड़े हैं ?"

बुड्ढे मुसलमान को छाती और बांहों में हल्की-सी कंपकंपी महसूस हुई। उसने होंठो पर ज़बान फेरी और नवयुवक को ध्यान से देखते हुए कहा, "बेटे, तेरा नाम मनोरी है न ?"

नवयुवक ने चाबियों के गुच्छे को हिलाना बन्द करके अपनी मुट्ठी में ले लिया और कुछ आश्चर्य के साथ पूछा, "आपको मेरा नाम कैसे मालूम है ?"

"साढ़े सात साल पहले तू इतना-सा था," कहकर बुड्ढे ने मुसकराने की कोशिश की।

"आप आज पाकिस्तान से आए हैं ?"

"हां ! पहले हम इसी गली में रहते थे," बुड्ढे ने कहा। "मेरा लड़का चिरागदीन तुम लोगों का दर्जी था। तकसीम से छ: महीने पहले हम लोगों ने यहां अपना नया मकान बनवाया था।"

"ओ, गनी मियां !" मनोरी ने पहचानकर कहा।

"हां, बेटे, मैं तुम लोगों का गनी मियां हूं ! चिराग और उसके बीवी-बच्चे तो अब मुझे मिल नहीं सकते, मगर मैंने सोचा कि एक बार मकान की ही सूरत देख लूं !" बुड्ढे ने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरा, और अपने आंसुओं को बहने से रोक लिया।

"तुम तो शायद काफी पहले यहां से चले गए थे," मनोरी के स्वर में संवेदना भर आई।

"हां, बेटे यह मेरी बदबख्ती थी कि मैं अकेला पहले निकलकर चला गया था। यहां रहता, तो उसके साथ मैं भी···" कहते-हुए उसे एहसास हो आया कि यह बात उसे नहीं कहनी चाहिए। उसने बात को मुंह में रोक लिया पर आंखों में आए आंसुओं को नीचे बह जाने दिया।

"छोड़ो गनी मियां, अब उन बातों को सोचने में क्या रखा है ?" मनोरी ने गनी की बांह अपने हाथ में ले ली। "चलो, तुम्हें तुम्हारा घर दिखा दूं।"

गली में खबर इस तरह फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान खड़ा है जो रामदासी के लड़के को उठाने जा रहा था···उसकी बहन वक्त पर उसे पकड़ लाई, नहीं तो वह मुसलमान उसे ले गया होता। यह खबर मिलते ही जो स्त्रियां गली में पीढ़े बिछाकर बैठी थी, वे पीढ़े उठाकर घरों के अन्दर चली गईं। गली में खेलते बच्चों को भी उन्होंने पुकार-पुकारकर घरों के अन्दर बुला लिया। मनोरी गनी को लेकर गली में दाखिल हुआ, तो गली में सिर्फ एक फेरीवाला रह गया था, या रक्खा पहलवान जो कुएं पर उगे पीपल के नीचे बिखरकर सोया था। हां, घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से कई चेहरे गली में झांक रहे थे। मनोरी के साथ गनी को आते देखकर उनमें हल्की चेहमेगोइयां [illegible] ···जूद चिरागदीन के बाप अब्दुल गनी

[illegible]

[illegible] एक मलबे की तरफ इशारा किया।

[illegible] ···फ देखता रहा। चिराग और उसके बीवी-बच्चों की मौत को वह काफी पहले स्वीकार कर चुका था। मगर अपने नये मकान को इस शक्ल में देखकर उसे जो झुरझुरी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी जबान पहले से और खुश्क हो गई और घुटने भी ज्यादा कांपने लगे।

"यह मलबा ?" उसने अविश्वास के साथ पूछ लिया।

मनोरी ने उसके चेहरे के बदले हुए रंग को देखा। उसकी बांह को थोड़ा और सहारा देकर जड़-से स्वर में उत्तर दिया, "तुम्हारा मकान उन्हीं दिनों जल गया था।"

गनी छड़ी के सहारे चलता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुंच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी जिसमें से जहां-तहां टूटी और जली हुई ईंटें बाहर झांक रही थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से कब का निकाला जा चुका था। केवल एक जले

हुए दरवाजे का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था। पीछे की तरफ दो जली हुई अलमारियां थीं जिनकी कालिख पर अब सफ़ेदी की हल्की-हल्की तह उभर आई थी। उस मलबे को पास से देखकर गनी ने कहा, "यह बाकी रह गया है, यह ?" और उसके घुटने जैसे जवाब दे गए और वह वहीं जले हुए चौखट को पकड़कर बैठ गया। क्षण-भर बाद उसका सिर भी चौखट से जा सटा और उसके मुंह से बिलखने की-सी आवाज निकली, "हाय ओए चिरागदीना !"

जले हुए किवाड़ का वह चौखट मलबे में से सिर निकाले साढ़े सात साल खड़ा तो रहा था, पर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गई थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़कर आसपास बिखर गए। कुछ रेशे गनी की टोपी और बालों पर आ रहे। उन रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा जो गनी के पैर से छ:-आठ इंच दूर नाली के साथ-साथ बनी ईंटों की पटरी पर इधर-उधर सरसराने लगा। वह छिपने के लिए सूराख ढूंढ़ता हुआ ज़रा-सा सिर उठाता, पर कोई जगह न पाकर दो-एक बार सिर पटकने के बाद दूसरी तरफ मुड़ जाता।

खिड़कियों से झांकनेवाले चेहरों की संख्या अब पहले से कहीं ज्यादा हो गई थी। उनमें चेहमेगोइयां चल रही थीं कि आज कुछ न कुछ जरूर होगा···चिरागदीन का बाप गनी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की वह सारी घटना आज अपने-आप खुल जाएगी। लोगों को लग रहा था जैसे वह मलबा ही गनी को सारी कहानी सुना देगा—कि शाम के वक्त चिराग ऊपर के कमरे में खाना खा रहा था जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया—कहा कि वह एक मिनट आकर उसकी बात सुन ले। पहलवान उन दिनों गली का बादशाह था। वहां के हिन्दुओं पर ही उसका काफी दबदबा था—चिराग तो खैर मुसलमान था। चिराग हाथ का कौर बीच में ही छोड़कर नीचे उतर आया। उसकी बीवी जुबैदा और दोनों लड़कियां, किश्वर और सुलताना, खिड़कियों से नीचे झांकने लगीं। चिराग ने ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज़ के कॉलर से पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया और गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग उसका छुरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया, "रक्खे पहलवान, मुझे मत मार ! हाय, कोई मुझे बचाओ !" ऊपर से जुबैदा, किश्वर और सुलताना भी हताश स्वर में चिल्लाई और चीखती हुई नीचे ड्योढ़ी की तरफ दौड़ीं। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग की जद्दोजेहद करती बांहें पकड़ लीं और रक्खा उसकी जांघों को अपने घुटनों से दबाए हुए बोला, "चीखता क्यों है, भैण के···तुझे मैं पाकिस्तान दे रहा हूं, ले पाकिस्तान !" और जब तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना नीचे पहुंचीं, चिराग को पाकिस्तान मिल चुका था।

आसपास के घरों की खिड़कियां तब बंद हो गई थीं। जो लोग इस दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाज़े बंद करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया था। बंद किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाज़ें सुनाई देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान दे दिया, मगर दूसरे तवील रास्ते से। उनकी लाशें चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पाई गईं।

दो दिन चिराग के घर की छानबीन होती रही थी। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी थी। रक्खे पहलवान ने तब कसम खाई थी कि वह आग लगाने वाले को जिंदा ज़मीन में गाड़ देगा क्योंकि उस मकान पर नजर रखकर ही उसने चिराग को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध करने के लिए हवन-सामग्री भी ला रखी थी। मगर आग लगाने वाले का तब से

आज तक पता नही चल सका था। अब साढ़े सात साल से रक्खा उस मलबे को अपनी जायदाद समझता आ रहा था, जहां न वह किसी को गाय-भैंस बांधने देता था और न ही खुमचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी इजाजत के कोई एक ईंट भी नही निकाल सकता था।

लोग आशा कर रहे थे कि यह सारी कहानी जरूर किसी न किसी तरह गनी तक पहुंच जाएगी जैसे मलबे को देखकर ही उसे सारी घटना का पता चल जाएगा। और गनी मलबे की मिट्टी को नाखूनों से खोद-खोदकर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाजे के चौखट को बाह मे लिए हुए रो रहा था, "बोल, चिरागदीना, बोल! तू कहां चला गया, ओए? ओ किश्वर! ओ सुलताना! हाय, मेरे बच्चे ओएऽऽ! गनी को पीछे क्यों छोड दिया, ओएऽऽऽ!"

और भुरभुरे किवाड से लकड़ी के रेशे झड़ते जा रहे थे।

पीपल के नीचे सोए रक्खे पहलवान को जाने किसी ने जगा दिया, या वह खुद ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुल गनी आया है और अपने मकान के मलबे पर बैठा है, उसके गले मे थोडा झाग उठ आया जिससे उसे खासी आ गई और उसने कुएं के फर्श पर थूक दिया। मलबे की तरफ देखकर उसकी छाती से धौंकनी की-सी आवाज निकली और उसका निचला होंठ थोड़ा बाहर को फैल आया।

"गनी अपने मलबे पर बैठा है," उसके शागिर्द लच्छे पहलवान ने उसके पास आकर बैठते हुए कहा।

"मलबा उसका कैसे है? मलबा हमारा है!" पहलवान ने झाग से घरघराई आवाज मे कहा।

"मगर वह वहा बैठा है," लच्छे ने आखों मे एक रहस्यमय संकेत लाकर कहा।

"बैठा है, बैठा रहे। तू चिलम ला!" रक्खे की टांगें थोड़ी फैल गई और उसने अपनी नगी जाघों पर हाथ फेर लिया।

"मनोरी ने अगर उसे कुछ बता-वता दिया तो···?" लच्छे ने चिलम भरने के लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण ढग से कहा।

"मनोरी की क्या शामत आई है?"

लच्छा चला गया।

कुए पर पीपल की कई पुरानी पत्तिया बिखरी थी। रक्खा उन पत्तियों को उठा-उठाकर अपने हाथों में मसलता रहा। जब लच्छे ने चिलम के नीचे कपड़ा लगाकर चिलम उसके हाथ मे दी, तो उसने कश खीचते हुए पूछा, "और तो किसी से गनी की बात नही हुई?"

"नही।"

"ले," और उसने खासते हुए चिलम लच्छे के हाथ में दे दी। मनोरी गनी की बांह पकड़े मलबे की तरफ से आ रहा था। लच्छा उकड़ू होकर चिलम के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। उसकी आंखें आधा क्षण रक्खे के चेहरे पर टिकती और आधा क्षण गनी की तरफ लगी रहती।

मनोरी गनी की बांह थामे उससे एक कदम आगे चल रहा था—जैसे उसकी कोशिश हो कि गनी कुए के पास से बिना रक्खे को देखे ही निकल जाए। मगर रक्खा जिस तरह बिखरकर बैठा था, उससे गनी ने उसे दूर से ही देख लिया। कुए के पास पहुंचते न पहुंचते उसकी दोनों बाहें फैल गई और उसने कहा, "रक्खे पहलवान!"

रक्खे ने गरदन उठाकर और आंखें जरा छोटी करके उसे देखा। उसके गले मे

अस्पष्ट-सी घरघराहट हुई, पर वह बोला नहीं।

"रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नही ?" गनी ने बांहें नीची करके कहा। "मैं गनी हूं, अब्दुल गनी, चिरागदीन का बाप !

पहलवान ने ऊपर से नीचे तक उसका जायजा लिया। अब्दुल गनी की आखों मे उसे देखकर एक चमक-सी आ गई थी। सफेद दाढ़ी के नीचे उसके चेहरे की झुर्रियां भी कुछ फैल गई थी। रक्खे का निचला होंठ फड़का। फिर उसकी छाती से भारी-सा स्वर निकला, "मुना, गनिया !"

गनी की बांहे फिर फैलने को हुईं, पर पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गईं। वह पीपल का सहारा लेकर कुएं की सिल पर बैठ गया।

ऊपर खिड़कियो मे चेहमेगोइया तेज हो गई कि अब दोनों आमने-सामने आ गए हैं, तो बात जरूर खुलेगी'''फिर हो सकता है दोनों मे गाली-गलौज भी हो।'''अब रक्खा गनी को हाथ नही लगा सकता। अब वे दिन नही रहे।'''बड़ा मलबे का मालिक बनता था ! '''असल मे मलवा न इसका है, न गनी का। मलबा तो सरकार की मलकियत है ! मरदूद किसी को वहा गाय का खूटा तक नही लगाने देता ! ''मनोरी भी डरपोक है। इसने गनी को बता क्यो नही दिया कि रक्खे ने ही चिराग और उसके बीवी-बच्चों को मारा है ! '''रक्खा आदमी नही सांड है ! दिन-भर सांड की तरह गली में घूमता है ! '''गनी बेचारा कितना दुबला हो गया है ! दाढ़ी के सारे बाल सफेद हो गए हैं ! '''

गनी ने कुएं की सिल पर बैठकर कहा, "देख रक्खे पहलवान, क्या से क्या हो गया है ! भरा-पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहां यह मिट्टी देखने आया हू ! बसे घर की आज यही निशानी रह गई है ! तू सच पूछे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जाने को मन नहीं करता !" और उसकी आंखें फिर छलछला आईं।

पहलवान ने अपनी टागें समेट ली और अगोछा कुएं की मुंडेर से उठाकर कधे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ बढा दी। वह कश खीचने लगा।

"तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह ?" गनी किसी तरह अपने आंसू रोक-कर बोला। "तुम लोग उसके पास थे। सब में भाई-भाई की-सी मुहब्बत थी। अगर वह चाहता, तो तुम मे से किसी के घर मे नही छिप सकता था ? उसमे इतनी भी समझदारी नही थी ?"

"ऐसे ही है," रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज मे एक अस्वाभाविक-सी गूज है। उसके होंठ गाढ़े लार से चिपक गए थे। मूंछों के नीचे से पसीना उसके होंठ पर आ रहा था। उसे माथे पर किसी चीज का दबाव महसूस हो रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

"पाकिस्तान में तुम लोगो के क्या हाल है ?" उसने पूछा। उसके गले की नसों में एक तनाव आ गया था। उसने अंगोछे से बगलों का पसीना पोछा और गन्ने का झाग मुह मे खीचकर गली में थूक दिया।

"क्या हाल बताऊं, रक्खे," गनी दोनो हाथों से छड़ी पर बोझ डालकर झुकता हुआ बोला। "मेरा हाल तो मेरा खुदा ही जानता है। चिराग वहां साथ होता, तो और बात थी।'''मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल। पर वह जिद पर अडा रहा कि नया मकान छोडकर नही जाऊंगा—यह अपनी गली है, यहां कोई खतरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नही सोचा कि गली में खतरा न हो, पर बाहर से तो खतरा आ सकता है ! मकान की रखवाली के लिए चारों ने अपनी जान दे दी ! '''रक्खे, उसे

तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आई, तो रक्खे के रोके भी न रुकी।"

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत दर्द कर रही थी। अपनी कमर और जांघों के जोड़ पर उसे सख्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अंतड़ियों के पास से जैसे कोई चीज़ उसकी सांस को रोक रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके तलुओं में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीच में नीली [illegible] निकल जाती। [illegible] उसने अंगोछे [illegible] मु, तू ही है, तू ही है, तू! ही है!"

गनी ने देखा कि पहलवान के होंठ सूख रहे हैं और उसकी आंखों के गिर्द दायरे गहरे हो गए हैं। वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, "जो होना था, हो गया रखिआ! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है! खुदा नेक की नेकी बनाए रखे और बद की बदी माफ करे! मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूंगा कि चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे!" और वह छड़ी के सहारे उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने कहा, "अच्छा रक्खे, पहलवान!"

रक्खे के गले से मद्धिम-सी आवाज़ निकली। अंगोछा लिए हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गए। गनी हसरत-भरी नज़र से आसपास देखता हुआ धीरे-धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेहमेगोइयां चलती रहीं—कि मनोरी ने गली से बाहर निकलकर ज़रूर गनी को सब कुछ बता दिया होगा कि गनी के सामने रक्खे का तालू कैसे खुश्क हो गया था!···रक्खा अब किस मुंह से लोगों को···मलबे पर गाय बांधने से रोकेगा? बेचारी ज़ुबैदा! कितनी अच्छी थी वह! रक्खे मरदूद का घर···न घाट, इसे किसी की मां-बहन का लिहाज़ था?

थोड़ी देर में स्त्रियां घरों से गली में उतर आईं। बच्चे गली में गुल्ली-डण्डा खेलने लगे। दो बारह-तेरह साल की लड़कियां किसी बात पर एक-दूसरी से गुत्थम-गुत्था हो गईं।

रक्खा गहरी शाम तक कुएं पर बैठा खखारता और चिलम फूंकता रहा। कई लोगों ने वहां गुज़रते हुए उससे पूछा, "रक्खे शाह, सुना है आज गनी पाकिस्तान से आया था?"

"हां, आया था," रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

"फिर?"

"फिर कुछ नहीं। चला गया।"

रात होने पर रक्खा रोज़ की तरह गली के बाहर बाईं तरफ की दुकान के तख्ते पर आ बैठा। रोज़ वह रास्ते से गुज़रने वाले परिचित लोगों को आवाज़ दे-देकर पास बुला लेता था और उन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताता रहता था। मगर उस दिन वह वहां बैठा लच्छे को अपनी वैष्णो देवी की उस यात्रा का वर्णन सुनाता रहा जो उसने पंद्रह साल पहले की थी। लच्छे को भेजकर वह गली में आया, तो मलबे के पास लोकू पण्डित की भैंस को देखकर वह आदत के मुताबिक उसे धक्के दे-देकर हटाने लगा—"तत-तत-तत···तत-तत···!"

भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस

समय सुनसान थी। कमेटी की बत्ती न होने से वहां शाम से ही अंधेरा हो जाता था मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज करता बह रहा था। रात की खामोशी को काटती हुई कई तरह की हल्की-हल्की आवाजें मलबे की मिट्टी में से सुनाई दे रही थी··· च्यु-च्यु-च्यु···चिक्-चिक् चिक्···किर्र्र्र्-र्र्र्र्-रीरीरीरी-चिर्र्र्र्···। एक भटक हुआ कौआ न जाने कहां से उडकर उस चौखट पर आ बैठा। इससे लकडी के कई रेशे इधर-उधर छितरा गए। कौए के वहा बैठते न बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्त गुर्राकर उठा और ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा—वऊ अऊ-वऊ! कौआ कुछ देर सहमा सा चौखट पर बैठा रहा, फिर पंख फड़फड़ाता कुएं के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की तरफ मुह करके भौंकने लगा पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज मे बोला, "दुर् दुर् दुर्···दुरे!" मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा—वऊ-अउ-वउ-वउ-वउ-वउ···।

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की तरफ फेंका। कुत्ता थोडा पीछे हट गया पर उसका भौंकना बंद नही हुआ। पहलवान कुत्ते को मां की गाली देकर वहां से उठ खडा हुआ और धीरे-धीरे जाकर कुएं की सिल पर लेट गया। उसके वहा से हटते ही कुत्ता गली मे उतर आया और कुएं की तरफ मुह करके भौंकने लगा। काफी देर भौंकने के बाद जब उसे गली में कोई प्राणी चलता-फिरता नजर नही आया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट गया और वहां कोने मे बैठकर गुर्राने लगा।

उसकी रोटी

बालो को पता था कि अभी बस के आने मे बहुत देर है, फिर भी पल्ले से पसीना पोंछते हुए उसकी आंखें बार-बार सड़क की तरफ उठ जाती थी। नकोदार रोड के उस हिस्से मे आसपास कोई छायादार पेड़ भी नही था। वहां की जमीन भी बंजर और ऊबड़-खाबड़ थी—खेत वहां से तीस-चालीस गज के फासले से शुरू होते थे। और खेतों मे भी उन दिनों कुछ नही था। फसल कटने के बाद सिर्फ ज़मीन की गोड़ाई ही की गई थी, इसलिए चारो तरफ बस मटियालापन ही नजर आता था। गरमी से पिघली हुई नकोदार रोड का हल्का सुरमई रंग ही उस मटियालेपन से ज़रा अलग था। जहां बालो खड़ी थी वहां से थोडे फासले पर एक लकडी का खोखा था। उसमें पानी के दो बडे-बडे मटकों के पास बैठा एक अधेड़-सा व्यक्ति ऊंघ रहा था। ऊंघ में वह आगे को गिरने को होता तो सहसा झटका खाकर संभल जाता। फिर आसपास के वातावरण पर एक उदासी-सी नज़र डालकर, और अंगोछे से गले का पसीना पोंछकर, वैसे ही ऊंघने लगता। एक तरफ अढ़ाई-तीन फुट मे खोखे की छाया फैली थी और एक भिखमगा, जिसकी दाढ़ी काफी बढ़ी हुई थी, खोखे से टेक लगाए ललचाई आंखो से बालों के हाथों की तरफ देख रहा था। उसके पास ही एक कुत्ता दुबककर बैठा था, और उसकी नज़र भी बालो के हाथों की तरफ थी।

बालो ने हाथ की रोटी को मैले आंचल में लपेट रखा था। वह उसे बद नज़र से बचाए रखना चाहती थी। रोटी वह अपने पति सुच्चासिंह ड्राइवर के लिए लाई थी, मगर देर हो जाने से सुच्चासिंह की बस निकल गई थी और वह अब इस इतज़ार में खड़ी थी कि बस नकोदर से होकर लौट आए, तो वह उसे रोटी दे दे। वह जानती थी कि

उसके वक्त पर न पहुचने से सुच्चासिंह को बहुत गुस्सा आया होगा। वैसे ही उसकी बस जालंधर से चलकर दो बजे वहां आती थी, और उसे नकोदर पहुंचकर रोटी खाने में तीन-साढ़े तीन बज जाते थे। वह उसकी रात की रोटी भी उसे साथ ही देती थी जो वह आखिरी फेरे मे नकोदर पहुचकर खाता था। सात दिन में छ: दिन सुच्चासिंह की ड्यूटी रहती थी, और छहो दिन यही सिलसिला चलता था। बालो एक-सवा एक बजे रोटी लेकर गाव से चलती थी, और धूप में आधा कोस तय करके दो बजे से पहले सड़क के किनारे पहुंच जाती थी। अगर कभी उसे दो-चार मिनट की देर हो जाती तो सुच्चा-सिंह किसी न किसी बहाने बस को वहा रोके रखता, मगर, उसके आते ही उसे डाटने लगता कि वह सरकारी नौकर है, उसके बाप का नौकर नही कि उसके इंतज़ार मे बस खडी रखा करे। वह चुपचाप उसकी डाट सुन लेती और उसे रोटी दे देती।

मगर आज वह दो-चार मिनट की नही, दो-अढाई घंटे की देर से आई थी। यह जानते हुए भी कि उस समय वहा पहुचने का कोई मतलब नही, वह अपनी बेचैनी मे घर से चल दी थी - उसे जैसे लग रहा था कि वह जितना वक्त सड़क के किनारे इंतज़ार करने में बिताएगी, सुच्चासिंह की नाराजगी उतनी ही कम हो जाएगी। यह तो निश्चित ही था कि सुच्चासिंह ने दिन की रोटी नकोदर के किसी तदूर मे खा ली होगी। मगर उसे रात की रोटी देना ज़रूरी था और साथ ही वह सारी बात बताना भी जिसकी वजह से उसे देर हुई थी। वह पूरी घटना को मन ही मन दोहरा रही थी, और सोच रही थी कि सुच्चासिंह से बात किस तरह कही जाए कि उसे सब कुछ पता भी चल जाए और वह खामखाह तैश मे भी न आए। वह जानती थी कि सुच्चासिंह का गुस्सा बहुत खराब है और साथ ही यह भी कि जंगी से उलटा-सीधा कुछ कहा जाए तो वह बगैर गडासे के बात नहीं करता।

जगी के बारे मे बहुत-सी बातें सुनी जाती थी। पिछले साल वह साथ के गाव की एक मेहरी को भगाकर ले गया था और न जाने कहा ले जाकर बेच आया था। फिर नकोदर के पडित जीवाराम के साथ उसका झगडा हुआ, तो उसे उसने कत्ल करवा दिया। गाव के लोग उससे दूर-दूर रहते थे, मगर उससे बिगाड नही रखते थे। मगर उस आदमी की लाख बुराइया सुनकर भी उसने यह कभी नही सोचा था कि वह इतनी गिरी हुई हरकत भी कर सकता है कि चौदह साल की जिंदा को अकेली देखकर उसे छेडने की कोशिश करे। वह यूं भी जिंदा से तिगुनी उम्र का था और अभी साल-भर पहले तक उसे बेटी बेटी कहकर बुलाया करता था। मगर आज उसकी इतनी हिम्मत पड़ गई कि उसने खेत में से आती जिंदां का हाथ पकड़ लिया?

उसने जिंदा को नन्ती के यहा से उपले माग लाने को भेजा था। इनका घर खेतों के एक सिरे पर था और गांव के बाकी घर दूसरे सिरे पर थे। वह आटा गूंधकर इतज़ार कर रही थी कि जिंदां उपले लेकर आए, तो वह जल्दी से रोटियां सेंक ले जिससे बस के वक्त से पहले सडक पर पहुंच जाए। मगर जिंदा आई, तो उसके हाथ खाली थे और उसका चेहरा हल्दी की तरह पीला हो रहा था। जब तक जिंदां नही आई थी, उसे उस पर गुस्सा आ रहा था। मगर उसे देखते ही उसका दिल एक अज्ञात आशका से काप गया।

"क्या हुआ है जिदो, ऐसे क्यो हो रही है?" उसने ध्यान से उसे देखते हुए पूछा।

जिंदा चुपचाप उसके पास आकर बैठ गई और बांहो मे सिर डालकर रोने लगी।

"खसम खानी, कुछ बताएगी भी, क्या बात हुई है?"

जिंदा कुछ नहीं बोली। सिर्फ उसके रोने की आवाज़ तेज़ हो गई।

"किसी ने कुछ कहा है तुझसे ?" उसने अब उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

"तू मुझे उपले-वुपले लेने मत भेजा कर," जिंदा रोने के बीच उखड़ी-उखड़ी आवाज़ में बोली। "मैं आज से घर से बाहर नहीं जाऊंगी। मुआ जंगी आज मुझसे कहता था···" और गला रुंध जाने से वह आगे कुछ नहीं कह सकी।

"क्या कहता था जंगी तुझसे···बता···बोल···" वह जैसे एक बोझ के नीचे दबकर बोली, "खसम खानी, अब बोलती क्यों नहीं ?"

"वह कहता था," जिंदां सिसकती रही, "चल जिंदां, अन्दर चलकर शरबत पी ले। आज तू बहुत सोहणी लग रही है···।"

"मुआ कमज़ात !" वह सहसा उबल पड़ी। "मुए को अपनी मां रंडी नहीं सोहणी लगती ? मुए की नज़र में कीड़ें पड़ें। निपूते, तेरे घर में लड़की होती, तो इससे बड़ी होती, तेरे दीदे फटें ! ···फिर तूने क्या कहा ?"

"मैंने कहा चाचा, मुझे प्यास नहीं है," जिंदां कुछ सभलने लगी।

"फिर ?"

"कहने लगा प्यास नहीं है, तो भी एक घूंट पी लेना। चाचा का शरबत पिएगी तो याद करेगी।' और मेरी बांह पकड़कर खींचने लगा।"

"हाय रे मौत-मरे, तेरा कुछ न रहे, तेरे घर में आग लगे। आने दे सुच्चासिंह को। मैं तेरी बोटी-बोटी न नुचवाऊं तो कहना, जल-मरे ! तू सोया सो ही जाए।···हां, फिर ?"

"मैं बांह छुड़ाने लगी, तो मुझे मिठाई का लालच देने लगा। मेरे हाथ से उपले वहीं गिर गए। मैंने उन्हें वैसे ही पड़े रहने दिया और बांह छुड़ाकर भाग आई।"

उसने ध्यान से जिंदा को सिर से पैर तक देखा और फिर अपने साथ सटा लिया।

"और तो नहीं कुछ कहा उसने ?"

"जब मैं थोड़ी दूर निकल आई, तो पीछे से ही-ही करके बोला, 'बेटी, तू बुरा तो नहीं मान गई ? अपने उपले तो उठाकर ले जा। मैं तो तेरे साथ हंसी कर रहा था। तू इतना भी नहीं समझती ? चल, आ इधर, नहीं आती, तो मैं आज तेरे घर आकर तेरी बहन से शिकायत करूंगा कि जिंदा बहुत गुस्ताख हो गई है, कहा नहीं मानती।'··· मगर मैंने उसे न जवाब दिया, न मुड़कर उसकी तरफ देखा। सीधी घर चली आई।"

"अच्छा किया। मैं मुए की हड्डी-पसली एक कराकर छोड़ूंगी। तू आने दे सुच्चासिंह को। मैं अभी जाकर उससे बात करूंगी। इसे यह नहीं पता कि जिंदा सुच्चासिंह ड्राइवर की साली है, जरा सोच-समझकर हाथ लगाऊं।" फिर कुछ सोचकर उसने पूछा, "वहां तुझे और किसी ने तो नहीं देखा ?"

"नहीं। खेतों के इस तरफ आम के पेड़ के नीचे राधू चाचा बैठा था। उसने देखकर पूछा कि बेटी, इस वक्त धूप में कहां से आ रही है, तो मैंने कहा कि बहन के पेट में दर्द था, हकीमजी से चूरन लाने गई थी।"

"अच्छा किया। मुआ जंगी तो दोहदा है। उसके साथ अपना नाम जुड़ जाए, तो अपनी ही इज्जत जाएगी। उस सिर-जले का क्या जाना है ? लोगों को तो करने के लिए बात चाहिए।"

उसके बाद उपले लाकर खाना बनाने में उसे काफी देर हो गई। जिस वक्त

उसने कटोरे में आलू की तरकारी और आम का अचार रखकर उसे रोटियों के साथ खद्दर के टुकड़े मे लपेटा, उसे पता था कि दो कब के बज चुके हैं और वह दोपहर की रोटी सुच्चासिंह को नही पहुचा सकती। इसलिए वह रोटी रखकर इधर-उधर के काम करने लगी। मगर जब बिलकुल खाली हो गई, तो उससे यह नहीं हुआ कि बस के अन्दाज़े से घर से चले। मुश्किल से साढे तीन-चार ही बजे थे कि वह चलने के लिए तैयार हो गई।

"बहन, तू कब तक आएगी ?" जिंदां ने पूछा।

"दिन ढलने से पहले ही आ जाऊंगी।"

"जल्दी आ जाना। मुझे अकेले डर लगेगा।"

"डरने की क्या बात है ?" वह दिखावटी साहस के साथ बोली, "किसकी हिम्मत है जो तेरी तरफ आख उठाकर भी देख सके ? सुच्चासिंह को पता लगेगा, तो वह उसे कच्चा ही नही चबा जाएगा ? वैसे मुझे ज्यादा देर नही लगेगी। सांझ से पहले ही घर पहुच जाऊंगी। तू ऐसा करना कि अन्दर से सांकल लगा लेना। समझी ? कोई दरवाज़ा खटखटाए तो पहले नाम पूछ लेना।" फिर उसने ज़रा धीमे स्वर में कहा, "और अगर जगी आ जाए, और मेरे लिए पूछे कि कहां गई है, तो कहना कि सुच्चासिंह को बुलाने गई है। समझी ?···पर नही। तू उससे कुछ नही कहना। अंदर से जवाब ही नही देना समझी ?"

वह दहलीज के पास पहुंची तो जिन्दां ने पीछे से कहा, "बहन, मेरा दिल धड़क रहा है।"

"तू पागल हुई है ?" उसने उसे प्यार के साथ झिड़क दिया, "साथ गाव है, फिर डर किस बात का है ? और तू आप भी मुटियार है, इस तरह घबराती क्यों है ?"

मगर जिन्दां को दिलासा देकर भी उसकी अपना तसल्ली नहीं हुई। सड़क के किनारे पहुचने के वक्त से ही वह चाह रही थी कि किसी तरह बस जल्दी से आ जाए जिससे वह रोटी देकर झटपट जिंदां के पास वापस पहुच जाए।

"बीरा, दो बजे वाली बस को गए कितनी देर हुई है ?" उसने भिखमंगे से पूछा जिसकी आखें अब भी उसके हाथ की रोटी पर लगी थी। धूप की चुभन अभी कम नही हुई थी, हालांकि खोखे की छाया अब पहले से काफी लम्बी हो गई थी। कुत्ता प्याऊ के तख्ते के नीचे पानी को मुह लगाकर अब आसपास चक्कर काट रहा था।

"पता नही भैणा," भिखमंगे ने कहा, "कई बसें आती हैं। कई जाती हैं। यहां कौन घड़ी का हिसाब है !"

बालो चुप हो रही। एक बस अभी थोडी ही देर पहले नकोदर की तरफ गई थी। उसे लग रहा था धूल के फैलाव के दोनों तरफ दो अलग-अलग दुनियाए हैं। बसें एक दुनिया से आती हैं और दूसरी दुनिया की तरफ चली जाती हैं। कैसी होंगी वे दुनियाए जहा बड़े-बडे बाज़ार हैं, दुकानें हैं, और जहां एक ड्राइवर की आमदनी का तीन-चौथाई हिस्सा हर महीने खर्च हो जाता है ? देवी अक्सर कहा करता था कि सुच्चासिंह ने नकोदर मे एक रखेल रख रखी है। उसका कितना मन होता था कि वह एक बार उस औरत को देखे। उसने एक बार सुच्चासिंह से कहा भी था कि उसे वह नकोदर दिखा दे, पर सुच्चासिंह ने डाटकर जवाब दिया था, "क्यो, तेरे पर निकल रहे हैं ? घर मे चैन नही पड़ता ? सुच्चासिंह वह मरद नही है कि औरत की बाह पकड़कर उसे सड़को पर घुमाता फिरे। घूमने का ऐसा ही शौक है, तो दूसरा खसम कर ले। मेरी तरफ से तुझे खुली छुट्टी है।"

उस दिन के बाद वह यह बात ज़बान पर भी नही लाई थी। सुच्चासिह कैसा भी हो, उसके लिए सब कुछ वही था। वह उसे गालिया दे लेता था, मार-पीट लेता था, फिर भी उससे इतना प्यार तो करता था कि हर महीने तनखाह मिलने पर उसे बीस रुपये दे जाता था। लाख बुरी कहकर भी वह उसे अपनी घरवाली तो समझता था ! जबान का कड़वा भले ही हो, पर सुच्चासिह दिल का बुरा हरगिज नही था। वह उसके जिंदा को घर मे रख लेने पर अक्सर कुढ़ा करता था, मगर पिछले महीने खुद ही जिंदां के लिए काच की चूडियां और अढाई गज मलमल लाकर दे गया था।

एक बस धूल उडाती आकाश के उस छोर से इस तरफ को आ रही थी। बालो ने दूर से ही पहचान लिया कि वह सुच्चासिंह की बस नही है। फिर भी बस जब तक पास नही आ गई, वह उत्सुक आखों मे उस तरफ देखती रही। बस प्याऊ के सामने आकर रुकी। एक आदमी प्याज और शलगम का गट्ठर लिए बस से उतरा। फिर कण्डक्टर ने जोर से दरवाजा बद किया और बस आगे चल दी। जो आदमी बस से उतरा था, उसने प्याऊ के पास जाकर प्याऊ वाले को जगाया और चुल्लू से दो लोटे पानी पीकर मूछें साफ करता हुआ अपने गट्ठर के पास लौट आया।

"वीरा, नकोदर से अगली बस कितनी देर मे आएगी ?" बालो ने दो कदम आगे जाकर उस आदमी से पूछ लिया।

"घटे-घटे के बाद बस चलती है माई," वह बोला। "तुझे कहां जाना है ?"

"जाना नही है वीरा, बस का इतज़ार करना है। सुच्चासिह ड्राइवर मेरा घर-वाला है। उसे रोटी देनी है।"

"ओ सुच्चा स्यो !" और उस आदमी के होंठो पर खास तरह की मुसकराहट आ गई।

"तू उसे जानता है ?"

"उसे नकोदर मे कौन नही जानता ?"

बालो को उसका कहने का ढंग अच्छा नही लगा, इसलिए वह चुप हो रही। सुच्चासिह के बारे मे जो बातें वह खुद जानती थी, उन्हें दूसरो के मुह से सुनना उसे पसन्द नही था। उसे समझ नही आता था कि दूसरो को क्या हक है कि वे उसके आदमी के बारे मे इस तरह बात करें ?

"सुच्चासिह शायद अगली बस लेकर आएगा," वह आदमी बोला।

'हा ! इसके बाद अब उसी की बस आएगी।"

"बड़ा ज़ालिम है जो तुझसे इस तरह इतज़ार कराता है।"

"चल वीरा, अपने रास्ते चल !" बालो चिढ़कर बोली, "वह क्यों इन्तज़ार कराएगा ?" मुझे ही रोटी लाने में देर हो गई थी जिससे बस निकल गई। वह बेचारा सवेरे से भूखा बैठा होगा।"

"भूखा ? कौन सुच्चा स्यो ?" और वह व्यक्ति दांत निकालकर हंस दिया। बालो ने मुह दूसरी तरफ कर लिया। "या साईं सच्चे !" कहकर उस आदमी ने अपना गट्ठर सिर पर उठा लिया और खेतो की पगडडी पर चल दिया। बालो की दाईं टांग सो गई थी। उसने भार दूसरी टाग पर बदलते हुए एक लम्बी सांस ली और दूर तक के वीराने को देखने लगी।

न जाने कितनी देर बाद आकाश के उसी कोने से उसे दूसरी बस अपनी तरफ आती नज़र आई। तब तक खड़े-खड़े उसके पैरों की एड़ियां दुखने लगी थी। बस को देखकर वह पोटली का कपड़ा ठीक करने लगी। उसे अफसोस हो रहा था कि वह

रोटियां कुछ और देर से बनाकर क्यों नहीं लाई, जिससे वे रात तक कुछ और ताजा रहतीं। सुच्चासिंह को कड़ाह प्रशाद का इतना शौक है —उसे क्यों यह ध्यान नहीं आया कि आज थोड़ा कड़ाह प्रशाद ही बनाकर ले आए ?···खैर, कल गुर परब है, कल जरूर कड़ाह प्रशाद बनाकर लाएगी।···

पीछे गर्द की लम्बी लकीर छोड़ती हुई बस पास आती जा रही थी। बालो ने बीस गज दूर से ही सुच्चासिंह का चेहरा देखकर समझ लिया कि वह उससे बहुत नाराज है। उसे देखकर सुच्चासिंह की भवें तन गई थीं और निचले होंठ का कोना दांतों में चला गया था। बालो ने धड़कते दिल से रोटी वाला हाथ ऊपर उठा दिया। मगर बस उसके पास न रुककर प्याऊ से जरा आगे जाकर रुकी।

दो-एक लोग वहां बस से उतरने वाले थे। कण्डक्टर बस की छत पर जाकर एक आदमी की साइकिल नीचे उतारने लगा। बालो तेज़ी से चलकर ड्राइवर की सीट के बराबर पहुंच गई।

"सुच्चा स्यां !" उसने हाथ ऊंचा उठाकर रोटी अन्दर पहुंचाने की चेष्टा करते हुए कहा, "रोटी ले ले।"

"हट जा," सुच्चासिंह ने उसका हाथ झटककर पीछे हटा दिया।

"सुच्चा स्यां, एक मिनट नीचे उतरकर मेरी बात सुन ले। आज एक खास वजह हो गई थी, नहीं तो मैं···।"

"बक नहीं, हट जा यहां से," कहकर सुच्चासिंह ने कण्डक्टर से पूछा कि वहां का सारा सामान उतर गया है या नहीं।

"बस एक पेटी बाकी है, उतार रहा हूं," कण्डक्टर ने छत से आवाज़ दी।

"सुच्चा स्यां, मैं दो घंटे से यहां खड़ी हूं," बालो ने मिन्नत के लहजे में कहा, "तू नीचे उतरकर मेरी बात तो सुन ले।"

"उतर गई पेटी ?" सुच्चासिंह ने फिर कण्डक्टर से पूछा।

"हां, चलो," पीछे से कण्डक्टर की आवाज़ आई।

"सुच्चा स्यां ! तू मुझ पर नाराज़ हो ले, पर रोटी तो रख ले। तू मंगलवार को घर आएगा तो मैं तुझे सारी बात बताऊंगी।" बालो ने हाथ और ऊंचा उठा दिया।

"मंगलवार को घर आएगा तेरा···," और एक मोटी-सी गाली देकर सुच्चासिंह ने बस स्टार्ट कर दी।

दिन ढलने के साथ-साथ आकाश का रंग बदलने लगा था। बीच-बीच में कोई एकाध पक्षी उड़ता हुआ आकाश को पार कर जाता था। खेतों में कहीं-कहीं रंगीन पगड़ियां दिखाई देने लगी थीं। बालो ने प्याऊ से पानी पिया और आंखों पर छींटे मारकर आंचल से मुंह पोंछ लिया। फिर प्याऊ से कुछ फासले पर जाकर खड़ी हो गई। वह जानती थी, अब सुच्चासिंह की बस जालंधर से आठ-नौ बजे तक वापस आएगी। क्या तब तक उसे इन्तज़ार करना चाहिए ? सुच्चासिंह को इतना तो करना चाहिए था कि उतरकर उसकी बात सुन लेता। उधर घर में जिंदां अकेली डर रही होगी। मुआ जंगी पीछे किसी बहाने से आ गया तो ? सुच्चासिंह रोटी ले लेता, तो वह आधे घंटे में घर पहुंच जाती। अब रोटी तो वह बाहर कहीं न कहीं खा ही लेगा, मगर उसके गुस्से का क्या होगा ? सुच्चासिंह का गुस्सा बेजा भी तो नहीं है। उसका मेहनती शरीर है और उसे कसकर भूख लगती है। वह थोड़ी और मिन्नत करती, तो वह ज़रूर मान जाता। पर अब ?

प्याऊ वाला प्याऊ बंद कर रहा था। भिखमंगा भी न जाने कब का उठकर

चला गया था। हां, कुत्ता अब भी वहां आस पास घूम रहा था। धूप ढल रही थी और आकाश में उड़ते चिड़ियों के झुण्ड सुनहरे लग रहे थे। बालो को सड़क के पार तक फैली अपनी छाया बहुत अजीब लग रही थी। पास के किसी खेत में कोई गभरू जवान खुले गले से महिया गा रहा था :

"बोलण दी थां कोई नां
जिहड़ा सानू ला वे दित्ता
उस रोग दा नां कोई नां।"

माहिया की वह लय बालो की रग-रग में बसी हुई थी। बचपन में गरमियों की शाम को वह और बच्चों के साथ मिलकर रहंट के पानी की धार के नीचे नाच-नाचकर नहाया करती थी, तब भी माहिया की लय इसी तरह हवा में समाई रहती थी। साझ के झुटपुटे के साथ उस लय का एक खास ही सम्बन्ध था। फिर ज्यों-ज्यों वह बडी होती गई, जिन्दगी के साथ उस लय का सम्बन्ध और गहरा होता गया। उसके गाव का युवक लाली था जो बडी लोच के साथ माहिया गाया करता था। उसने कितनी बार उसे गाव के बाहर पीपल के नीचे कान पर हाथ रखकर गाते सुना था। पुष्पा और पारो के साथ वह देर-देर तक उस पीपल के पास खडी रहती थी। फिर एक दिन आया जब उसकी मा कहने लगी कि वह अब बडी हो गई है, उसे इस तरह देर-देर तक पीपल के पास नही खडी रहना चाहिए। उन्ही दिनों उसकी सगाई की भी चर्चा होने लगी। जिस दिन सुच्चासिह के साथ उसकी सगाई हुई, उस दिन पारो आधी रात तक ढोलक पर गीत गाती रही थी। गाते-गाते पारो का गला रह गया था फिर भी वह ढोलक छोड़ने के बाद उसे बांहों में लिए हुए गाती रही थी—

"बीबी, चंनण दे ओहले ओहले किऊं खड़ी,
नीं लाडो किऊं खड़ी ?
मैं तां खड़ी सां बाबल जी दे बार,
मैं कनिआ कंवार,
बाबल वर लोड़िए।
नीं जाइए, किहो जिहा वह लोजिए ?
जिऊं तारिआं विचों चंद,
चंदा विचों नद,
नंदां विचों कान्ह-कन्हैया वर लोड़िए'''!"

वह नही जानती थी कि उसका वर कौन है, कैसा है, फिर भी उसका मन कहता था कि उसके वर की सूरत-शक्ल ठीक वैसी ही होगी जैसी कि गीत की कडियां सुनकर सामने आती है। सुहागरात को जब सुच्चासिह ने उसके चेहरे से घूघट हटाया, तो उसे देखकर लगा कि वह सचमुच बिलकुल वैसा ही कान्ह-कन्हैया वर पा गई है। सुच्चासिह ने उसकी ठोड़ी ऊंची की, तो न जाने कितनी लहरें उसके सिर से उठकर पैरों के नाखूनो में जा समाई। उसे लगा कि ज़िदगी न जाने ऐसी कितनी सिहरनो से भरी होगी जिन्हें वह रोज़-रोज महसूस करेगी और अपनी याद में संजोकर रखती जाएगी।

"तू हीरे की कणी है, हीरे की कणी," सुच्चासिह ने उसे बांहों में भरकर कहा था। उसका मन हुआ था कि कहे, यह हीरे की कणी तेरे पैर की धूल के बराबर भी नही है, मगर वह शरमाकर चुप रह गई थी।

"माई, अंधेरा हो रहा है, अब घर जा। यहां खडी क्या कर रही है ?" प्याऊ वाले ने चलते हुए उसके पास रुककर कहा।

"वीरा, यह बस आठ-नौ बजे तक जालंधर से लौटकर आ जाएगी न ?" बालो ने दयनीय भाव से उससे पूछ लिया।

"क्या पता कब तक आए ? तू उतनी देर यहां खड़ी रहेगी ?"

"वीरा, उसकी रोटी जो देनी है।"

"उसे रोटी लेनी होती, तो ले न लेता ? उसका तो दिमाग ही आसमान पर चढ़ा रहता है।"

"वीरा, मर्द कभी नाराज हो ही जाता है। इसमें ऐसी क्या बात है ?"

"अच्छा खड़ी रह, तेरी मर्जी। बस नौ से पहले क्या आएगी !"

"चल, जब भी आए।"

प्याऊ वाले से बात करके वह निश्चय खुद-ब-खुद हो गया जो वह अब तक नहीं कर पाई थी—कि उसे बस के जालंधर से लौटने तक वहां रुकी रहना है। जिंदा थोड़ा डरेगी—इतना ही तो न ? जंगी की अब दोबारा उससे कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ सकती। आखिर गांव की पंचायत भी तो कोई चीज है। दूसरे की बहन-बेटी पर बुरी नजर रखना मामूली बात है ? सुच्चासिंह को पता चल जाए, तो वह उसे केशों से पकड़कर सारे गांव में नहीं घसीट देगा ? मगर सुच्चासिंह को यह बात न बताना ही शायद बेहतर होगा। क्या पता इतनी-सी बात से दोनों में सिर-फुटव्वल हो जाए ? सुच्चासिंह पहले ही घर के झंझटों से घबराता है, उसे और झंझट में डालना ठीक नहीं। अच्छा हुआ जो उस वक्त सुच्चासिंह ने बात नहीं सुनी। वह तो अभी कह रहा था कि मंगलवार को घर नहीं आएगा। अगर वह सचमुच न आया, तो ? और अगर उसने गुस्से होकर घर आना बिल्कुल छोड़ दिया, तो ? नहीं, वह उसे कभी कोई परेशान करने वाली बात नहीं बताएगी। सुच्चासिंह खुश रहे, घर की परेशानियां वह खुद संभाल सकती है।

वह ज़रा-सा सिहर गई। गांव का लोटूसिंह अपनी बीबी को छोड़कर भाग गया था। उसके पीछे वह टुकड़े-टुकड़े को तरस गई थी। अंत में उसने कुएं में छलांग लगाकर आत्महत्या कर ली थी। पानी से फूलकर उसकी देह कितनी भयानक हो गई थी ?

उसे थकान महसूस हो रही थी, इसलिए वह जाकर प्याऊ के तख्ते पर बैठ गई। अंधेरा होने के साथ-साथ खेतों की हलचल फिर शांत होती जा रही थी। माहिया के गीत का स्थान अब झींगुरों के संगीत ने ले लिया था। एक बस जालंधर की तरफ से और एक नकोदर की तरफ से आकर निकल गई। सुच्चासिंह जालंधर से आखिरी बस लेकर आता था। उसने पिछली बस के ड्राइवर से पता कर लिया था कि अब जालंधर से एक ही बस आनी रहती है। अब जिस बस की बत्तियां दिखाई देंगी, वह सुच्चासिंह की ही बस होगी। थकान के मारे उसकी आंखें मुंदी जा रही थीं। वह बार-बार कोशिश से आंखें खोलकर उन्हें दूर तक के अंधेरे और उन काली छायाओं पर केन्द्रित करती जो धीरे-धीरे गहरी होती जा रही थीं। ज़रा-सी भी आवाज़ होती, तो उसे लगता कि बस आ रही है और वह सतर्क हो जाती। मगर बत्तियों की रोशनी न दिखाई देने से एक ठंडी सांस भर फिर से निढाल हो रहती। दो-एक बार मुंदी हुई आंखों से जैसे बस की बत्तियां अपनी ओर आती देखकर वह चौंक गई—मगर बस नहीं आ रही थी। फिर उसे लगने लगा कि वह घर में है और कोई ज़ोर-ज़ोर से घर के किवाड़ खटखटा रहा है। जिंदा अंदर सहमकर बैठी है। उसका चेहरा हल्दी की तरह पीला हो रहा है।···रहट के बैल लगातार घूम रहे हैं। उनकी घंटियों की ताल के साथ पीपल के नीचे बैठा एक युवक कान पर हाथ रखे माहिया गा रहा है।···ज़ोर की धूल उड़ रही है जो धरती और आकाश की हर चीज़ को ढके ले रही है। वह अपनी रोटीवाली पोटली को संभालने

की कोशिश कर रही है, मगर वह उसके हाथ से निकलती जा रही है।···प्याऊ पर सूखे मटके रखे हैं जिनमें एक बूंद भी पानी नहीं है। वह बार-बार लोटा मटके में डालती है, पर उसे खाली पाकर निराश हो जाती है।···उसके पैरों में बिवाइयां फूट रही हैं। वह हाथ की उंगली से उन पर तेल लगा रही है, मगर लगाते-लगाते ही तेल सूखता जाता है।···जिंदां अपने खुले बाल घुटनों पर डाले रो रही है। कह रही है, "तू मुझे छोडकर क्यों गई थी ? क्यों गई थी मुझे छोडकर ? हाय, मेरा परांदा कहां गया ? मेरा परांदा किसने ले लिया ?"

सहसा कंधे पर हाथ के छूने से वह चौंक गई।

"सुच्चा स्यां !" उसने जल्दी से आंखों को मल लिया।

"तू अब तक घर नहीं गई ?" सुच्चासिंह तख्ते पर उसके पास ही बैठ गया। बस ठीक प्याऊ के सामने खड़ी थी। उस वक्त उसमे एक सवारी नही थी। कण्डक्टर पीछे की सीट पर ऊंघ रहा था।

"मैंने सोचा रोटी देकर ही जाऊंगी। बैठे-बैठे झपकी आ गई। तुझे आए बहुत देर तो नही हुई ?"

"नहीं, अभी बस खड़ी की है। मैंने तुझे दूर से ही देख लिया था। तू इतनी पागल है कि तब से अब तक रोटी देने के लिए यहीं बैठी है ?"

"क्या करती ? तू जो कह गया था कि मैं घर नहो आऊंगा !" और उसने पलकें झपककर अपने उमडते आसुओं को सुखा देने की चेष्टा की।

"अच्छा ला, दे रोटी, और घर जा ! जिंदा वहां अकेली डर रही होगी।" सुच्चासिंह ने उसकी बांह थपथपा दी और उठ खडा हुआ।

रोटीवाला कटोरा उससे लेकर सुच्चासिंह उसकी पीठ पर हाथ रखे हुए उसे बस के पास तक ले आया। फिर वह उचककर अपनी सीट पर बैठ गया। बस स्टार्ट करने लगा, तो वह जैसे डरते-डरते बोली, "सुच्चा स्या, तू मंगल को घर आएगा न ?"

"हा, आऊंगा। तुझे शहर मे कुछ मंगवाना हो, तो बता दे।"

"नहीं, मुझे मंगवाना कुछ नहीं है।"

बस घरघराने लगी, तो वह दो कदम पीछे हट गई। सुच्चासिंह ने अपनी दाढ़ी-मूछ पर हाथ फेरा, एक डकार लिया और उसकी तरफ देखकर पूछ लिया, "तू उस वक्त क्या बात बताना चाहती थी ?"

"नहीं, ऐसी कोई खास बात नही थी। मगल को घर आएगा ही···"

"अच्छा, अब जल्दी मे चली जा, देर न कर। एक मील वाट है···!"

"···सुच्चा स्यां, कल गुर परब है। कल मैं तेरे लिए कडाह प्रशाद बनाकर लाऊंगी···।"

"अच्छा, अच्छा···"

बस चल दी। बालो पहियों की धूल में घिर गई। धूल साफ़ होने पर उसने पल्ले से आंखें पोंछ ली और तब तक बस के पीछे की लाल बत्ती को देखती रही जब तक वह आंखो से ओझल नहो हो गई।

बस-स्टैण्ड की एक रात

'''लैम्प-पोस्ट के गिर्द कितने ही चक्कर काट लिए मगर रात नहीं कटी। बीस फुट की ऊंचाई पर टगे लैम्प की मद्धिम रोशनी कभी आंखों में हल्की नीद भर देती है, फिर सहसा चौंकाकर नीद भगा देती है। अड्डा बिलकुल सुनसान है। एक कोने मे दो छोटी-छोटी छकडानुमा बसें खड़ी हैं। शायद इन्हीं पुरानी मनहूस और बेडौल बसों मे से एक सुबह पांच बजे की सर्विस बनकर रवाना होगी।

एक, दो, तीन, चार'''सर्दी की रात में जागकर समय काटने का एक ही रास्ता है कि कदम गिने जाएं। दस, ग्यारह, बारह'''बयालीस तैंतालीस, चवालीस'''छप्पन, सत्तावन, अट्ठावन'''परन्तु संख्या सौ तक नहीं पहुंचती। हर बार बीच मे ही खो जाती है। फिर नये सिरे से नये विश्वास के साथ गिनती आरम्भ होती है'''एक-दो, तीन-चार पांच-छः, सात-आठ'''

बायीं तरफ टूटा-फूटा बरामदा है। बरामदे के पीछे लम्बा-सा अंधेरा कमरा है। बरामदे की बेंच पर कोई लिहाफ के नीचे करवट बदलता है। कमरे में कोई कुनमुनाता है—जैसे गहरी यातना में कराह रहा हो। देखने पर वहां अंधेरा ही अंधेरा नजर आता है। लगता है वह अंधेरा बाहर के अंधेरे से कहीं गहरा और गर्म है। जैसे सारे कमरे मे कोमल काले रोयें भरे हों।

लैम्प-पोस्ट के पास आकर सर्दी कम नहीं होती। हां, अकेलापन ज़रूर कुछ कम होता है। टहलते हुए फुटपाथ की तरफ चले जाओ, तो दूर एक लम्बी वीरान सड़क नजर आती है। लैम्प-पोस्ट के पास आकर लगता है कि दुनिया उतनी वीरान नहीं है। मैं लैम्प-पोस्ट से टेक लगा लेता हूं। जैसे लैम्प-पोस्ट लैम्प-पोस्ट न होकर एक इन्सान हो, और मैं उससे टेक लगाकर उसे अपनी आत्मीयता का विश्वास दिलाना चाहता होऊं। मगर शरीर मे ठण्डे लोहे की सलाख-सी गड़ जाती है और मैं उससे हटकर टहलने लगता हूं।

एक, दो, तीन, चार'''।

पर गिनती सौ तक नहीं पहुचती। हाथों पर मास्टर हरबंसलाल के डंडे की मार ताज़ा हो आती है।

"सत्तर नौ ?"

"उनहत्तर।

"स्टैण्ड-अप'''अस्सी नौ ?"

"उनासी।"

"अस्सी नौ उनासी ? हाथ सीधे कर।'''अस्सी नौ ?"

"उना-आ'''।"

दो डंडे दायें हाथ पर, दो बायें हाथ पर।

"अब अस्सी नौ ?"

अब अस्सी नौ—सिसकियां और आंसू।

"कह, अस्सी नौ नवासी।"

"अ-अ-अ'''।"

"बोल दस बार, अस्सी नौ नवासी, अस्सी नौ नवासी।"

"अ-अ-अ'''!"

"ब्रोऽऽल।

"अ-अ-अ···अं-अ···आं-आं-आं-आं···।"

कमरे में किसी ने सिगरेट सुलगा लिया है। हर कश के साथ अंधेरा कम होता है। कमरे मे भी लिहाफो और कम्बलो में लिपटी कई आकृतियां पड़ी हैं जो एक क्षण दिखाई देती हैं और दूसरे क्षण अदृश्य हो जाती हैं। पता नही कि रात कितनी बीती है। शायद एक बजा है और मुझे अभी चार घण्टे इसी तरह टहलना है। या शायद चार बज चुके हैं और अब थोडी ही देर में उन दो मनहूस बसो मे से एक खडखड़ाती हुई पठानकोट-डलहौजी रोड पर चल देगी। छ-आठ मील जाकर सूर्य निकलेगा और दोनों ओर वृक्ष-पंक्तियां दिखाई देंगी। कुछ ही देर मे दुनेरा पहुंचकर सिब्बू हलवाई की दुकान से गर्म-गर्म चाय पिएंगे।

सर्दी, रात और चाय।

"चाय गर्म है। धुआं उठ रहा है। हल्का-हल्का और लच्छेदार। मेरी प्याली पर नटराज नाच रहा है···।"

हिश्च् !

सिगरेट बुझ गया है मगर कमरे का अंधेरा अब उतना गाढ़ा नही है। कोई लगातार खांस रहा है। मन होता है कि वह व्यक्ति लगातार खांसता रहे जिसमें जल्दी से सुबह हो जाए। वह खांसना बन्द कर देगा तो सुबह दूर चली जाएगी। मुझे खामोशी अच्छी नही लगती और न मुझसे कदम गिने जाते हैं, न ही लैम्प-पोस्ट का मुह देखा जाता है। लगता है सर्दी पहले से बढ गई है। मैं लैम्प-पोस्ट से हटकर टहलता हूं। जैसे लैम्प-पोस्ट से लडाई हो। मैंने अब तक कितना चल लिया है? शायद कई मील। कितने कदम का एक मील होता है? मास्टर हरबंसलाल फिर डंडा लेकर सामने हैं।

"इकतीस हज़ार···।"

"इकतीस हज़ार···।"

"छ:-सौ···।"

"छः सौ।"

"अस्सी फुट के···"

"अस्सी फुट के···।"

"मील बनाओ।

हम जैसे अथाह समुद्र में फेंक दिए गए हों। सवाल निकलने लगता है। स्लेट पर मास्टर हरबंसलाल का गंजा सिर और छोटी-छोटी आंखें बन जाती है। एक तरफ इकतीस हज़ार, दूसरी तरफ छः सौ और तीसरी तरफ अस्सी···।

सिर पर एक चपत पड़ती है।

"यह फुटों के मील बना रहा है? स्टैण्ड अप !"

खड़े हो जाते हैं। सिर झुका है।

"यह क्या बन रहा है?"

सिर झुका रहता है। मन में गुदगुदी उठती है। पर चेहरे पर आध्यात्मिक मौन है।

"चल वहां कोने में मुर्गा बन।"

चुपचाप कोने मे जाकर मुर्गा बन जाते हैं। आशंका होती है कि पीछे से डंडे भी पड़ेंगे। मगर शायद स्लेट पर बनी दार्शनिक मास्टर हरबंसलाल से पहचानी नही जाती। दो बार कान छोड़कर और सिर उठाकर देखते हैं। मास्टर हरबंसलाल के जूते चिर्र-

मिर्र करते दूर चले जाते हैं। मुर्गा अपनी बोली बोल देता है।

एक कदम अगर डेढ़ फुट का हो, तो मील में कितने कदम हुए? सत्रह सौ साठ जरब तीन तकसीम'''। इस समुद्र में गोता लगाने से अच्छा है कदम गिने जाएं। लैम्प-पोस्ट से लड़ाई है। कदम स्टेशन रोड पर बढ़ने लगते हैं। एक, दो, तीन, चार। स्टेशन पर शायद चाय भी मिल जाए। सर्दी की रात में चाय की एक गर्म प्याली से अच्छी कोई चीज नहीं। मतलब इस हाल में—।

स्टेशन अन्दर और बाहर से सुनसान है।

हाथ मलते हुए—शाब्दिक अर्थ में—वापस लौटते हैं।

दोनों तरफ छ-छ, आठ-आठ बसें पंक्तियों में खड़ी हैं। एक तरफ कश्मीर गवर्नमेंट ट्रांसपोर्ट और एन० डी० राधाकिशन की बसें हैं, दूसरी तरफ कुल्लू वैली ट्रांसपोर्ट और हिमाचल राज्य परिवहन की। उन पंक्तियों के बीच से गुजरते हुए अनायास टांगें तन जाती हैं ''लेफ्ट'''लेफ्ट'''लेफ्ट'''एक दो, लेफ्ट'''लेफ्ट'''लेफ्ट।

हजारीलाल ड्रिल मास्टर भौंहे चढ़ा रहा है।

"लाइन में चलो।"

लेफ्ट'''लेफ्ट'''लेफ्ट'''।

"आगे के लड़के की गरदन देखो।"

लेफ्ट'' लेफ्ट'''लेफ्ट'''।

आगे के लड़के की गरदन पर मैल जमी है।

"मास्टरजी, यह नहाकर नहीं आया।"

"डोंट टॉक!"

लेफ्ट-राइट'''लेफ्ट'''लेफ्ट'''लेफ्ट'''।

"मास्टरजी, यह पीछे से किक मारता है।"

"शट अप!"

लेफ्ट'''लेफ्ट'''लेफ्ट'''।

दूर से *अड्डे पर आग दिखाई देती है। अड्डे पर आग कहां से आ गई?* धुएं से घिरी एक लपट उठ रही है। अभी यह लपट छोटी है। धीरे-धीरे फैलकर बड़ी हो जाएगी। फिर वह आसपास की हर चीज को घेर लेगी। दोनों छकड़ानुमा बसें जलकर राख हो जाएंगी। कमरे में बन्द अंधेरे के कोमल रोएं जल उठेंगे।

मगर लपट छोटी हो जाती है। अड्डे पर एक अंगीठी जल रही है और धुआं छोड़ रही है आसपास चार-छ: आकृतियां जमा हैं। कांपते प्रकाश में चेहरों की केवल रेखाएं ही दिखाई देती हैं। एक स्त्री का ढीला-ढाला शरीर सरककर आग के बहुत निकट आ जाता है।

"चौधराइन, आज कुछ कमाई हुई?"

चौधराइन मुंह बिचका देती है।

"नूरजहां बेगम आजकल बात नहीं करती!"

नूरजहां बेगम कुछ न कहकर पिंडली खुजलाने लगती है।

"चाय पिएगी?"

नूरजहां बेगम फिर मुंह बिचका देती है।

"नूरजहां बेगम, उदास क्यों है? इसलिए कि तेरा बाप कोढ़ी मर गया है?"

नूरजहां बेगम चुपचाप आग तापती रहती है।

"आज सर्दी बहुत है।"

"नूरजहां बेगम को दुअन्नी दे और साथ ले जा।"

"क्यों नूरजहां ?"

नूरजहा कुछ नही कहती।

"आज चौधराइन मस्ती मे है।"

"अरे तुम चौधराइन को क्या समझते हो ? किसी खानदान में पैदा होती, तो क्लब मे डानस किया करती।"

"हा-हा-हा !"

"चौधराइन डानस करेगी ?"

"हो-हो-हो !"

"यहीं कराओ इससे डानस।"

"अरे नही, बेचारी सर्दी में मर जाएगी।"

"यह आप अगीठी है, यह क्या मरेगी !"

"चुप रह बदज़ात !" अंगीठी तमक उठती है।

"आज दिमाग तेज़ है।"

"नूरजहा बेगम, रात को क्या खाया है ?"

"मुर्ग मुसल्लम।"

"हा-हा-हा !"

कदम आगे की तरफ बढते हैं और लौट पड़ते हैं। फिर बढ़ते हैं और फिर लौट पड़ते हैं।

पिताजी अपनी घूमनेवाली कुर्सी पर बैठे है।

"अच्छे लड़के गन्दे लडकों के साथ नही खेलते। समझे ?"

"जी।"

"कल से घर के अन्दर खेला करो। मैं अब बाज़ार के लड़कों के साथ न देखूं।"

"जी।"

"जाकर हाथ-मुह धोओ और कपड़े बदलो।"

"जी !"

और मैं दूर टहलता रहता हूं, हालांकि हाथ-पैर ठिठुरे जाते हैं और दांतो की किटकिटी बार-बार बज उठती है।

कमरे मे कुछ हलचल महसूस हो रही है। शायद सुबह होने वाली है। कम्बलों में लिपटे दो व्यक्ति कमरे से निकल आते हैं। उनकी केवल नाक और आंखें ही दिखाई देती हैं। अंगीठी के पास जाकर वे आखें अधिकार-भाव से सामने चमकती आग को देखती हैं। अंगीठी के गिर्द बैठी आकृतियां थोडा-थोड़ा सरक जाती हैं।

"आ जाइए, बाबूजी !"

"बाबूजी, पांच बजे की बस पर जाएंगे ?"

"कितना सामान है, बाबूजी ?"

"हट बे, बाबूजी को सेंकने दे।"

कम्बलो में लिपटे दोनो बाबू अगीठी पर अधिकार जमा लेते हैं। शेष आकृतियां हटने लगती हैं। चौधराइन सरककर लैम्प-पोस्ट के नीचे चली जाती है। एक आदमी सीटी बजाता हुआ बस के मड-गार्ड पर जा बैठता है। केवल एक बुड्ढा कुली आग के पास रह जाता है। वह अंगीठी के इस तरह सटकर बैठा है जैसे अपने हाथो की झुलसी चमड़ी को जला लेना चाहता हो। कमरे से दो-तीन व्यक्ति और निकल आते हैं।

"आ जाओ बसन्तराम जी, यहां आग के पास आ जाओ।"

दोनों तीनों बसन्तराम आग के पास पहुंच जाते हैं। मैं कदमों की गिनती भूल चुका हूं। लैंम्प पोस्ट ने चौधराइन से दोस्ती कर ली। वह उससे टेक लगाकर पिंडली खुजला रही है। बस के मड-गार्ड पर बैठा व्यक्ति ऊंची आवाज़ में अपने दिल के हज़ार टुकड़ों की गाथा सुना रहा है। मैं टहलता हुआ अंगीठी के पास पहुंच जाता हूं। इस बार अच्छे लड़के को डांट नहीं पड़ती क्योंकि अंगीठी के पास सब बसन्तराम खड़े हैं।

"बहुत सर्दी है," एक कांपकर कहता है।

"बड़ी जबर-ज़ुलम सर्दी है जी," बुड्ढा कुली आंखें उठाकर सबकी तरफ देखता है। उसकी आंखें इस बात पर उनमें दोस्ती करना चाहती हैं कि उन सबको बराबर की जबर-ज़ुलम सर्दी लग रही है। मगर उनमें से कोई मास्टर हरखसलाल बोल उठता है, "अरे जबर-ज़ुलम क्या होता है? बोलना हो तो ठीक लफ्ज़ बोल—ज़ाबिर और ज़ालिम।"

बुड्ढा कुली हक्का-बक्का उसकी तरफ देखता रहता है।

ज़ाबिर और ज़ालिम!

ज़ेर और ज़बर!

"मास्टरजी, ज़ेर कहां लगती है?"

एक डंडा टखनों पर।

"यहां... और ज़बर यहां।"

और एक डंडा गरदन पर।

ज़ेर टखनों पर। ज़बर गरदन पर।

कमरे से दो-तीन बसन्तराम और निकल आते हैं। आग के गिर्द खासा जमघट हो [illegible] चोटी तक [illegible] अपने में [illegible] ठी बीच- [illegible] गर्म हाथ मुंह पर फेरता है।

"बाबा, सारी आग तो तूने रोक रखी है।"

"अब उठ जा, दूसरों को भी सेंकने दे।"

बाबा खांसता है, याचना की दृष्टि से सबकी तरफ देखता है और थोड़ा सरक जाता है।

"बुड्ढे को जान बहुत प्यारी है।"

बुड्ढा आंखों से इसका अनुमोदन करना चाहता है, पर तब तक उसके और अंगीठी के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है। वह एक दार्शनिकता की सांस छोड़कर उठ खड़ा होता है। उठकर हाथ बगलों में दबा लेता है, जैसे अपने आसपास की गर्मी को समेटकर साथ ले जाना चाहता हो।

अंगीठी चिनगारियां छोड़ रही है।

"क्यों भाई साहब, क्या खयाल है, गवा हिन्दुस्तान को मिल जाएगा या नहीं?"

"गोआ हिन्दुस्तान का है साहब, और हिन्दुस्तान का ही रहेगा।"

"कहते हैं गवा बहुत खूबसूरत जगह है?"

"जी हां, गोआ का लैण्डस्केप – क्या कहने हैं!"

"यहां से गवा किस रास्ते से जाते हैं?"

"यहां से गोआ जाना हो तो पहले पूना, पूना से लोंडा, फिर वहां से गाड़ी में

मार्मुगाव'''मार्मुगाव नेचुरल हार्बर है। बहुत खूबसूरत जगह है।"

"आप गवा गए हैं ?"

"जी हां, मैं एक बार गोआ हो आया हूं।"

"कहते हैं गवा में सभी कुछ बहुत सस्ता है !"

"माफ कीजिए भाई साहब, लफ्ज गवा नही गोआ है।"

"एक ही बात है जी, गवा हुआ या गोआ हुआ।"

"यह साहब, हिन्दुस्तानी मेंटेलिटी है।"

"जैसे आप हिन्दुस्तानी नही हैं।"

कोयले सुलग गए हैं। गर्मी शरीर मे रच रही है। अब दातों की किटकिटी नही बजती। मड-गार्ड पर बैठा कुली अपने दिल के टुकड़े बिखेरकर खामोश हो गया है और इस तरह उकड़ू बैठा है जैसे सिर से पैर तक शरीर के हर अग को छाती मे समेट लेना चाहता हो। बुड्ढा कुली खांसता हुआ फुटपाथ पर खड़ा है और इस तरह दाईं तरफ देख रहा है जैसे उधर से सुबह के आने का इन्तज़ार कर रहा हो। चौधराइन लैम्प-पोस्ट के पास अर्द्ध चन्द्राकार होकर लेट गई है और वह अर्द्धचन्द्र धीरे-धीरे छोटा होता जा रहा है।

अंगीठी के पास गोआ की समस्या को लेकर लड़ाई लड़ी जा रही है। एक भाई साहब चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर पुर्तगालियों को गोआ से निकाल देना चाहते हैं। दूसरे वाइन, विमेन एण्ड वाचिंग के बारे में सुनकर अन्तर्मुख हो गए हैं। मेरे शरीर में गर्म बुदकियां भर रही हैं। मैं लैम्प-पोस्ट की तरफ देखता हूं, जैसे कहना चाहता होऊं—क्यों बे ?

"हीरे !" बरामदे की तरफ से आवाज़ आती है।

मड-गार्ड पर बैठा कुली चौंकता है और भागता हुआ बरामदे की तरफ चला जाता है। फिर वह नये सिरे से दिल के टुकड़े बिखेरता हुआ अंगीठी के पास आ जाता है।

"हट जाओ सा'व।"

और इससे पहले कि साहब हटने की बात सोचें, वह दोनो कुंडो से अंगीठी को उठा लेता है।

"अबे कहा ले जा रहा है ?"

"मैनेजर साहब के कमरे मे।"

अंगीठी के प्रकाश मे उसके चेहरे पर एक लम्बी मुसकराहट प्रकट होती है। वह इस तरह टांगें फैलाकर कधे हिलाता हुआ जाता है जैसे किसी मोर्चे में उसे फतह का सेहरा हासिल हुआ हो।

गोआ की लड़ाई बीच में ही रह गई है। चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर पुर्तगालियों को निकालनेवाले भाई साहब अपना कम्बल अच्छी तरह लपेटकर कमरे की तरफ चले गए हैं। गवा और गोआ का भेद करनेवाले साहब शिकायत कर रहे हैं कि मैनेजर को अंगीठी अपने कमरे में मंगवाने का कोई अधिकार नही है।

मैं बगलों मे हाथ दबाए टहलने लगता हूं। आग के पास मे हटकर सर्दी और भी जाबिर और ज़ालिम प्रतीत होती है। सारे शरीर के रोंगटे खड़े हैं और बार-बार सिर से पैर तक एक सिहरन दौड जाती है। अंगीठी के पास जितने लोग खड़े थे, वे न जाने किन कोनो मे जा समाए हैं ! मैं फुटपाथ तक जाकर लौटता हूं। शरीर फिर कांप जाता है। लैम्प-पोस्ट मुसकरा रहा है। वह एकटक देखता जाता है। जैसे अब वह कहना चाहता हो—क्यों बे ?

मिट्टी के रंग

मैथिलोन ने अनन्नास का टुकड़ा जबान से छुआते ही मुह बिचकाकर कहा, "किसी काम का नही। पैसा लेकर पैसे का मूल्य देना ये इजिप्शियन लोग जानते ही नही। सूप था तो वह गरम पानी। रोटी थी तो वह कचरे की। मास जाने कुत्ते का था या लोमड़ का। और अब आखिरी कोर्स मे यह बुसा हुआ अनन्नास! धन्य रे पिरामिडों के देश!"

मैथिलोन का चेहरा देखकर सदानन्द मुस्कराया। उसे अनन्नास की बजाय उस समय अपनी पतलून की लकीर का अधिक ध्यान था। खाने की बात को महत्त्व देना उसे पसन्द नही था। उसका विचार था कि अच्छा-बुरा जो भी खा लो पेट मे जाकर सब गल जाता है। पर पतलून की लकीर एक ऐसी चीज़ है जो दिखाई देती है, इसलिए जब तक शहर मे रहो, वह ठीक रहनी चाहिए।

सदानन्द को मुस्कराते देख मैथिलोन की टेढ़ी भौंहे पिघलकर सीधी हो गईं और नासिकाओ पर कापता क्रोध धुल गया। रूमाल से होंठ पोंछते हुए उसने मदिर भाव मे पूछ लिया, "उसका नाम क्या है?"

"किसका नाम?"

"उसका, जिसकी याद में तुम मुस्करा रहे हो?"

सदानन्द और भी मुस्कराया। उसने पत्थर मारने की तरह हाथ हिलाकर कहा, "तू यहूदी!"

मैथिलोन ने तुरन्त गम्भीर होकर माथे पर बल डाल लिए, और कुर्सी से टेक लगाकर बोला, "मेरे साथ मज़ाक मत करो। मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

23 नवम्बर, 41 की रात के नौ बजे थे। मिस्र स्थित भारतीय सेना के ये दोनो सैनिक सन्ध्या से काहिरा की हवा में मनोरजन के उद्देश्य से निकले थे। सडकों पर तमाशबीनी के बाद 'मेट्रो' में ग्रेटा गार्बो की पिक्चर देखकर अब लौटते हुए वे उस सस्ते ढाबे में खाना खाने के लिए रुके थे जिसके बाहर एक चाद और तीन सितारे जगमगा रहे थे, और जिसके अन्दर बीस-बीस पियास्ता देकर उन्हें चार-चार कोर्स खाने को मिल गए थे।

"मिस्र भी देख लिया।" मैथिलोन ने विरक्ति के साथ चारो ओर नज़र घुमाकर कहा, "जहा भी चले जाओ, वही गन्दगी, वही कसैलापन और वही एकतारता।"

"तुमसे कोई क्या कहे?" सदानन्द ने जूते का फीता कसते हुए कहा, "तुम्हें तो यहा के पिरामिडों मे भी विशेषता नज़र नही आई।"

"नाम मत लो।" मैथिलोन तीखा होकर बोला, "मिस्र के पिरामिड और हिन्दुस्तान का ताजमहल! इनसे ज़मीन का कितना भाग घिरता है? मेरी आंखें ज़मीन के चप्पे-चप्पे को देखती हैं, और जानते हो मुझे क्या नज़र आता है? एक भीड, और उस भीड मे ठग, गुण्डे, वेश्याए?"

"मैं बताऊ मुझे क्या नज़र आता है?" सदानन्द ने मधुरता के साथ कहा।

"तुम्हे नज़र आती है रेत के पहाड़ों पर फिसलती चादनी। यह मौत को दिल से भुला रखने का अच्छा बहाना है।"

मौत के नाम से सदानन्द अंदर से कांप उठा। मौत! दनदनाती गोलिया और आग उगलते टैंक! एक-एक इंच ज़मीन जीतने के लिए लोहे के पिशाचों का नाच

उसने अपनी उंगली में लोहे के छल्ले को छुआ। एक लकीर खिचकर हृदय तक

चली गई। माधवी के शरीर का स्पर्श ताज़ा हो आया। कितनी ही रेत, कितने ही पहाड़, कई नदियां, कई खेत, कई हवाएं और कई बोलियां लांघकर एक छोटा-सा गांव—जहां आज भी दो आंखें उस दिशा मे देखती होंगी, जिधर से उसके लौटने की संभावना है। और पिघले सोने जैसा माधवी का यौवन···

उसकी जांघ का घाव दुखने लगा। अभी पिछले ही महीने उसे गोली लगी थी। गोली एक फुट ऊंची आती तो उसकी छाती में लगती। उसका अर्थ होता मौत! मौत क्यो? ज़मीन जीतने के लिए। ज़मीन जो सारी ताजमहल और पिरामिड नही, मिट्टी है, मिट्टी जिसके नीचे हैं, कीड़े, सांप, छछूंदर। ऊपर है ठग, गुण्डे, वेश्याए!

सदानन्द की आंखें मैथिलोन से मिली तो मैथिलोन के चेहरे की हल्की झुर्रियां खिलते मांस मे विलीन हो रही थी। मैथिलोन ने कुहनियां मेज पर टिकाकर पूछा, "अच्छा बता तो दो, उसका नाम क्या है ?"

"किसका नाम ?" सदानन्द ने बिना अपने विचारो से बाहर निकले कहा,

"उसका जिसकी याद मे तुम रोने जा रहे हो।"

"मैं अपनी पत्नी की बात सोच रहा हू।" सदानन्द ने भावुक होकर कहा। "यह छल्ला उसने मुझे आते समय दिया था।"

कहकर उसने छल्ले वाली उंगली मैथिलोन की ओर बढा दी। मैथिलोन ने छल्ले को उसकी उंगली मे घुमाया और उठते हुए कहा, "इस्त्राएल!"

सड़क पर आकर वे दोनो देर तक चुपचाप चलते रहे। हवा की खुश्क वीरानगी इधर-उधर से धूल सहेज रही थी। मैथिलोन बड़े-बड़े संग्रहालयों की सजावट देखता चल रहा था, पर सदानन्द एक ऐसी अनुभूति मे खो रहा था जो इन्सान के लिए वातावरण को रसहीन बना देती है और अन्दर से उसकी आत्मा, 'यहां नही वहा, यहां नही वहा' की धुन छेड देती है।

चौराहे के पास आकर मैथिलोन ने कहा, "आज की रात और कल की रात बीच मे है। परसो हमारी टुकडी फ्रंट पर भेज दी जाएगी। उसके बाद फिर जाने काहिरा का यह फुटपाथ, यह खम्भा और ये इश्तिहार कभी देखने को मिलेंगे या नही! क्या कहते हो ?"

"मैं लड़ना नही चाहता।" सदानन्द के मन की विकलता एक वाक्य में बाहर निकल आई।

तो जहर खा लो। जब तक जिन्दा हो, तब तक तुम लडने के लिए मजबूर हो। तुम्हारे चाहने-न चाहने की परवाह यहा किसी को नही। तुम्हारी जान दूसरों ने खरीद रखी है। उनके काम आओ, नही तो नष्ट हो जाओ।" इतना कहकर मैथिलोन ने उसके कन्धे पर हाथ रखा और फिर कहा, "हम दूसरो की लड़ाई लड रहे है दोस्त! इस लडाई मे सिपाही की एक ही चीज अपनी है, और वह है वेतन के रुपये। उन्हे वह जिस तरह चाहे खर्च कर सकता है।" अचानक वह बोलता-बोलता रुक गया और दूर अंधेरी गली की ओर देखने लगा। कुछ देर तक एकटक देखकर वह धीरे से बोला, "वह उस गली के बाहर एक लड़की खडी है। बोलो, चलते हो ?"

सदानन्द ने वहां इजिप्शियन पोशाक में एक चुस्त युवती को देखा, जिसकी आंखें मलमली घूंघट के पीछे चंचल हो रही थी।

"तुम कैसे जानते हो, वह मिल सकती है ?" उसने झिझक के साथ पूछा।

"मैं आखें देखने के लिए और नाक सूंघने के लिए इस्तेमाल करता हू। बोलो, चलते हो ?"

"नहीं।" सदानन्द ने कहा और उसके हाथ ने उंगली के छल्ले को छू लिया। एक क्षण में उसे ढुलकते आंसुओं, धड़कते वक्षों और भभकते वाक्यों का स्मरण हो गया। वह माधवी को कितने-कितने वचन और आश्वासन देकर आया था।

"परसों फ्रंट पर जाना है, पता है?" मैथिलोन ने जैसे तरस खाकर कहा।

"पता तो है ही।"

"फिर भी नहीं चलते?"

"नहीं।"

"तुम बेसमझ हो।"

"नहीं, मैं बेसमझ नहीं हूं।"

"तो तुम नपुंसक हो।" कहकर मैथिलोन ने उसके मुरझाये चेहरे पर नज़र डाली और फिर उसे बच्चे की तरह थपथपाकर कहा, "अच्छा जाओ, बैरक में जाकर सो रहो। मैं सवेरे परेड के मैदान में मिलूंगा।"

और सीटी बजाता वह उसे छोड़कर अंधेरी गली की ओर चला गया।

कुछ दिन बाद जब रात आधी जा चुकी थी, पूरा चांद आकाश में चमक रहा था और ठण्डी हवा, ठण्डी रेत के पहाड़ों को उड़ाकर इधर से उधर बिखेर रही थी, सदानन्द और मैथिलोन अपनी टुकड़ी के साथ रेत पर पेट के बल रेंगते हुए बढ़ रहे थे। तीन ओर से वे घिरे हुए थे, और एक ही दिशा थी जिधर जाकर उनके बच रहने की संभावना थी। वे उसी दिशा में धीरे-धीरे सरक रहे थे।

पूरा सन्नाटा था। फिर भी रह-रहकर सदानन्द को आभास हो रहा था कि जर्मन मशीनें अब गरजने ही वाली हैं। न जाने कौन-सा क्षण आए, जब तीनों दिशाएं एक साथ फट पड़ें। उस क्षण से जूझने के लिए वह तैयार था, पर समय का यह खामोश अन्तराल इतना बड़ा और इतना ठण्डा था कि इसे सहन करना उसे असम्भव लग रहा था। दूर क्षितिज तक फैली रेत थी। रेत के ऊपर फैली चांदनी थी। चांदनी में सैकड़ों छोटे-छोटे रेत के टीले जली हुई चिताओं की तरह दिखाई दे रहे थे। इस समय वह यदि यहां मर जाए, कोई उसे उठाए नहीं और रेत उसे ढांप ले, तो वह भी दूर से एक ऐसा ही टीला नजर आए। इतना ही ठण्डा, एकान्त और डरावना!

टुकड़ी टीलों के बीच से सरकती हुई बढ़ रही थी। सिपाही जानते थे कि वे जितनी दूर जा सकें, ज़िन्दगी के उतने ही नज़दीक रहेंगे। इसलिए वे आगे, आगे, और सरकते जा रहे थे, कि अचानक—

चिटचिटचिटचिट चिटाख चिटचिटाख चिटचिटचिट चिटाख···पीछे दायें और बायें से गोलियां बरसने लगीं। सरकते हुए सैनिकों की टुकड़ी ने रुख बदल लिए और अपनी रायफलों के घोड़े दबा दिए। सदानन्द वातावरण को भूलकर अंधाधुंध गोलियां चलाने लगा। ज़िन्दगी कुछ देर के लिए चिटचिटचिटाख की ध्वनियां सुनने और पैदा करने में ही सीमित हो गई। कौन गिरा, मरा, कराहा या घायल होकर तड़पा, यह जानने का अवकाश नहीं था। एक गोली सदानन्द के कंधे को छील गई। वह अपना घाव देखने के लिए भी नहीं रुक सका। वह अभी ध्वनियां पैदा कर सकता था, इसलिए वह ध्वनियां पैदा करता रहा। चिटचिटचिटाख चिटचिटचिट चिटाख।

एक बांह ने उसके कंधे को छुआ। घाव दुख गया। सदानन्द ने तड़पकर देखा। मैथिलोन था। मैथिलोन बुरी तरह ज़मीन पर रेंग रहा था। अपने पीछे वह रेत पर गाढ़े लहू की मोटी लकीर छोड़ता आ रहा था। उसकी वर्दी के सीने पर लहू का बड़ा-सा दाग

बन रहा था, जो धीरे-धीरे और बड़ा होता जा रहा था। उसे इस अवस्था मे पहचानकर सदानन्द का हाथ रुक गया। वह मैथिलोन के शरीर पर झुका। झुकने पर उसके अपने कंधे का लहू मैथिलोन के होठों और गालों पर गिरने लगा। सदानन्द पीछे हट गया। मैथिलोन का चेहरा गूधे हुए आटे जैसा हो रहा था। उसने सदानन्द को देखकर कुछ बोलने की चेष्टा की पर उसके होंठ नहीं खुल सके। कठिनता से उसने अपना हाथ उठाया और अपनी जेब की ओर संकेत किया। फिर उठा हुआ हाथ लहू के दाग मे भच करके रह गया। मैथिलोन के प्राण निकल गए।

तीन तरफ से गोलिया आ रही थी। सदानन्द ने जल्दी-जल्दी मैथिलोन की वह जेब देखी जिसकी ओर उसने संकेत किया था। वहा उसे एक कागज और एक छोटी सी डिबिया मिली। ये दोनों चीजें उसने अपने पास रख ली। फिर उसने अपनी रायफल उठाई और लगातार कई ध्वनिया पैदा कर दी। और जब उसकी गोलियां समाप्त हो गई तब उसे ज्ञात हुआ कि अपनी टुकडी में वही एक था जो अब तक गोलिया चला रहा था। इस समय वह एक ऊंचे टीले के पास था। आसपास बहुत-से मृत शरीर पड़े थे। सामने दूर तक रेत के टीले थे। उन पर उसी तरह चादनी बिखरी थी। सदानन्द सरक-कर बड़े टीले की ओट में आ गया। वहां उसने अपनी रायफल फेंक दी और उठकर दौड़ने लगा। गोलियो की आवाजें आ रही थी। उसके पैर पूरे-पूरे रेत मे धस रहे थे। दिशा का या रास्ते का उसे पता नही था। वह भाग रहा था, क्योंकि उस समय भागना ही उद्देश्य था। वह मौत की ध्वनियों से जितना दूर हो सके, उतना दूर निकल जाना चाहता था। इसलिए वह भागता गया, भागता गया, और जब वह बुरी तरह थक गया, उसकी पिंडलिया ऐंठने लगी और घुटने बैठने लगे, उसके बाद भी वह निरन्तर भागता ही रहा।

रात बीत गई और सवेरा हुआ। सवेरे के बाद दोपहर हुई। दोपहर की गरमी से जब रेत की छाती जलने लगी, उस समय सदानन्द की नीमबेहोश आखें खुली। उसने चारों ओर देखा। वह था, जमीन थी और आकाश था। रेत के टीले उस समय भी वैसे ही थे जैसे उसने रात को चांदनी मे देखे थे। पर इस समय वे जली हुई चिताओ जैसे नही, सुलगते हुए भट्टों जैसे दिखाई दे रहे थे।

सदानन्द उठकर बैठ गया। चिलचिलाती धूप थी। धरती और आकाश का हर परमाणु गरम था। उसका अपना शरीर अन्दर और बाहर से तप रहा था। उसका गला बिलकुल सूख गया था। पानी की बोतल निकाल कर उसने दो चार घूट पिए। इतने घूप से अन्दर का उत्ताप शात नही हुआ। उसने गटागट आधी बोतल पी डाली। फिर को देखा। आकाश को देखा। आगे और पीछे देखा। एक अन्त से दूसरे अन्त तक रेत। कही और कुछ नही। रेत।

उसे अपना गाव याद आया। कहां है वह गांव? इस धरती के किस कोने मे? क्या वह धरती और यह धरती एक ही है?

सहसा उसे मैथिलोन का गूधे आटे जैसा चेहरा याद हो गया। मैथिलोन रात को मर गया। हो सकता था वह भी रात को मर जाता। पर वह नही मरा। वह भाग आया और बच गया।

उसने मैथिलोन की डिबिया निकाली। उसमें दो हीरे-जड़ी अंगूठियां थी। वह देर तक उन्हे देखता रहा। अंगूठिया धूप मे बहुत चमकती थीं। फिर उसने मैथिलोन का तह किया हुआ कागज खोला। वह एक पत्र था जिस पर छः महीने पहले की तिथि थी

और जो मैंथिलोन ने अपनी बहन के नाम लिखा था :

"मैं नही जानता कि कब किस घडी मेरी मौत हो जाएगी। इसलिए यह पत्र मैं आज ही लिखकर अपने पास रख रहा हूं। मुझे मौत की आशंका हर समय है, यद्यपि मैं नही जानता कि मेरी मौत किस उद्देश्य से होगी। मैं जिनसे लड़ता हूं, वे क्यों मेरे दुश्मन हैं, मैं नही जानता। मैं लड़ता हू क्योकि मुझे लड़ने का वेतन मिलता है। वे लड़ते हैं क्योकि उन्हें लडने का वेतन मिलता है। सिपाही से कमांडर तक हर एक को वेतन मिलता है। मिनिस्टर और प्राइम मिनिस्टर को वेतन मिलता है। सम्राट और उसके परिवार को वेतन मिलता है। इतने वेतनो के पीछे कोई लडाने वाली शक्ति है। मैं उसे नष्ट नही कर सकता क्योंकि मुझे हर महीने वेतन की जरूरत पड़ती है। मैं वेतन पाने के लिए उन्ही पर गोलिया चलाता हू जो मेरी तरह वेतन लेते हैं, और गोलियां चलाते हैं। मेरी गोलियों ने कइयो की जानें ली है। किसी की गोली एक दिन मेरी जान ले लेगी। फिर मैं तुमसे नहीं मिल सकूगा। इसलिए दो अगूठियां तुम्हारे लिए ला रखी हैं। ये भी वेतन के पैसो की है। मेरा कोई मित्र इन्हें तुम तक पहुंचा देगा। इन्हें मेरी जिन्दगी और मौत की याद के रूप मे अपने पास रख छोड़ना, विदा!"

उसने अंगूठियां बन्द करके रख ली, और तक ठण्डी सांस ली। काश, कि वह आज हिन्दुस्तान जा सके, और ये अगूठियां मैंथिलोन की बहन के हाथ में दे सके।

विदा! विदा! अब मैंथिलोन मुह से विदा कहने नही आएगा। उसे जान देनी पड़ी क्योकि उसके प्राण बिके हुए थे। केवल ये अंगूठिया उसकी अपनी थी। क्या मैंथिलोन की बहन इन अगूठियों के हीरो मे अपने भाई की तलाश को देख पाएगी।

दहलते दिल से सदानन्द ने सोचा, जब वह हिन्दुस्तान जाएगा, तब वह माधवी के लिए भी दो ऐसी हीरों की अगूठियां बनवाकर लेता जाएगा। माधवी को उसने कभी कोई उपहार नहीं दिया। अभी परसो पहली तारीख है। पहली तारीख को वेतन मिलेगा। उस दिन वह एक हल्का-सा छल्ला खरीदेगा और"'।

रेत का एक बवण्डर पास से उठा और वह सिर से पैर तक रेत मे ऐसे घिर गया कि कई क्षण सास भी नही ले सका। उस एक झोके से उसका विश्वास डावा-डोल हो गया। उसने सोचा, परसो पहली तारीख है, पर पहली तारीख तक वह अपनी छावनी में पहुच जाएगा? यह रेत का तूफान उसे जाने देगा? यदि वह नहीं निकल सका, और उसका राशन-पानी समाप्त हो गया, फिर? क्या यह रूखी जमीन उसे जीता छोड़ेगी?

सदानन्द डर गया, और डरकर उठ खड़ा हुआ। पश्चिम को लक्ष्य में रखकर वह चलने लगा। काफी देर तक वह चलता रहा। जब धूप मे संध्या की छायाएं घुलने लगी, तब उसने रुककर चारो ओर देखा। सब ओर धरती का फैलाव उतना ही था जितना उसने चलते समय देखा था। दूर सामने एक विशाल, टीला था जो उसकी राह में जिन्दगी और मौत की दीवार की तरह खड़ा था। उसने मन को समझाया कि टीले के पार ही शायद छावनी होगी, और छावनी नही तो कोई आबादी होगी, और आबादी नही तो कोई झोपडी होगी। वहां जाकर उसके प्राण बच जाएंगे। इसलिए वह टीले की ओर दौड़ने लगा। थोड़ी देर मे चारो ओर चांदनी फैल गई। वह इसी विश्वास के साथ दौड़ता रहा। उसे इतना ही धैर्य था कि रास्ता कट रहा है। पर बहुत दौड़ चुकने के बाद यह धैर्य भी टूटने लगा। क्योकि टीला अब पहले से भी दूर चला गया था। फिर भी वह बहुत देर तक और बहुत दूर तक दौड़ा। पर टीला उसकी पहुच में नहीं आया।

कुछ रोज बाद काहिरा के मिलिस्ट्री अस्पताल में एक हिन्दुस्तानी सिपाही की लाश पोस्टमार्टम के लिए आई क्योंकि वह रेत में मरा हुआ पाया गया था और उसके शरीर पर गोली का कोई घातक निशान नहीं था। यह लाश सदानन्द की थी। चीर-फाड के बाद लाश जलवा दी गई।

पर जिस सिपाही ने उस लाश को पहले-पहल देखा था, उसे उसके हाथ में एक छोटी-सी डिबिया और पेंसिल से लिखा हुआ कागज भी मिला था।

इस सिपाही का नाम महानन्द था। यह भी हिन्दुस्तानी फौज की एक टुकड़ी मे था। कागज की लिखावट को पढकर उसकी आंखों मे आंसू आ गए थे, और उसने अपने आप यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी कि उस डिबिया को, पता-ठिकाना पूछकर, मरे हुए सिपाही के घर भेज देगा। कागज उसी के नाम था जिसे वह मिल जाए और उसमे सदानन्द ने लिखा था—

"मैं नही जानता था कि अब मेरे जीवन की कितनी घडियां शेष है। मैं चाहता हूं कि मैं मरने से पहले एक बार अपने घर जा सकू, और एक बार मां और माधवी के चेहरे देखकर पहचान सकू। मेरे नीचे ठण्डी जमीन है, और इस जमीन को मैं नही पहचानता। मेरे चारों ओर चांदनी है, पर चादनी का यह रूप वह नही है, जो मेरे घर के आगन मे था। यह चादनी मौत की तरह डरावनी है। मैं यह चांदनी नही चाहता। मैं मरना नही चाहता। पर मुझे लगता है मैं मर रहा हूं। मुझे अभी वेतन लेकर पैसे घर भेजने हैं। मुझे हीरे की अंगूठियां माधवी को देनी हैं। मैं मर गया तो मुझे हर महीने वेतन नही मिलेगा। माधवी के पास कोई गहना नही जिसे वह बेच ले। मेरे पास दो हीरे की अंगूठियां हैं। मैं मैथिलोन से कह दूगा। वह मेरी बात समझ जाएगा। पर मेरे घर अंगूठियां लेकर कौन जाएगा? मेरा घर बहुत दूर है।"

महानन्द का हृदय पढ़ते-पढते इतना पिघला, कि वह उस पत्र को फिर दूसरी बार नही पढ सका।

और महानन्द को दो दिन की छुट्टी मिली तो वह अपने एक साथी के साथ संध्या को शहर में घूमने गया। वहां एक अंधेरी गली के पास एक चुस्त इजिप्शियन युवती उसकी ओर मुसकराई। महानन्द की जेब में उस समय पूरे महीने का वेतन था, इसलिए युवती से उसे रात-भर के लिए प्रेम मिल गया।

जब वह प्रेम का मूल्य चुकाकर विदा होने लगा, तो युवती ने उसकी आंखो मे आंखें डालकर उससे कोई ऐसी निशानी मांगी जिससे वह उसे हमेशा के लिए याद रख सके।

महानन्द ने जेब से एक हीरे की अंगूठी निकालकर बड़े प्यार से उसे पहना दी। युवती ने पूरे स्नेह के साथ महानन्द के होंठों को चूम लिया। महानन्द ने दूसरी अगूठी निकालकर उसके दूसरे हाथ मे पहना दी।

गुनाह बेलज्जत

किसी ने काउण्टर के पास जाकर सरदार सुन्दरसिंह के कान में कहा कि पुलिसगाड़ी सुन्दरी और उसकी बहन को लिए हुए सिविल लाइन्ज में घूम रही है, तो उसका मुंह लाल हो गया, हाथ कांप गया और पेंसिल हाथ से गिर गई।

यह बात सुबह से सुनी जा रही थी कि सुन्दरी पुलिस को उन सब लोगों के पते- [illegible] गाया गया था। [illegible] का भाई और [illegible] था कि उसकी गिरफ्तारी नहीं हो सकती। जो लमहे उसने सुन्दरी के साथ बिताए थे, वे उसकी जिन्दगी के सबसे खुशगवार लमहे थे। क्या जिन्दगी ऐसी ना-इन्साफी उसके साथ कर सकती थी कि उन हसीन और खुशगवार लमहों की याद उससे छीनकर उसे बिलकुल दीवालिया कर दे! इसके अलावा उससे कोई बदफेली भी नहीं हुई थी। बुनियादी तौर पर वह एक नेक और शरीफ आदमी था, और उसका दिल कह रहा था कि उस जैसे नेक और शरीफ आदमी को कभी हथकड़ी नहीं लग सकती। उसे विश्वास था कि उसका दिल कभी गलत बात नहीं कहता!

कुछ बरस पहले वह चाय और शरबत का सामान ठेला-गाड़ी में रखकर गली-गली घूमा करता था तो उसके दिल ने शहादत दी थी, एक दिन वह अपना बहुत बड़ा होटल खोलेगा और कई-कई बैरे और खानसामे उसकी नीचे काम करेंगे। उसके दिल की यह बात जितनी जल्दी उसने आशा की थी, उससे कहीं जल्दी पूरी हो गई थी। पांच-छः बरस में ही वह फटे हुए पाजामे-कुर्ते से शार्क-स्किन की बुश्शर्टों तक पहुंच गया, दो रुपये रोज से उसकी आमदनी तीस-चालीस रुपये रोज तक चली गई, और उसके बोल-चाल और चलने-फिरने के अन्दाज में इतना अन्तर आ गया कि उसे जानने वाले भी नहीं कह सकते थे कि यह सुन्दरसिंह है जो एक दिन ठेला लगाया करता था। उसे महसूस होता था उसके बाहर की चीज़ ही नहीं बदली, वह अन्दर से भी पूरी तरह बदल गया है। केवल एक चीज़ नहीं बदली थी और वह थी उसकी बीवी, जिसकी सूरत से उसे नफरत थी। उसके पास जाकर सुन्दरसिंह के दिल की सारी उमगें ठण्डी पड़ जाती थीं, जिस वजह से पन्द्रह बरस में वाहगुरु ने उसे कोई बच्चा-अच्चा नहीं दिया था। मगर उसका दिल कहता था कि उसकी सारी उम्र इसी तरह नहीं गुज़रेगी। वह, सरदार सुन्दरसिंह तलवाड़ एक न एक दिन अपनी सारी हसरतें ज़रूर पूरी करेगा। इसलिए जिस दिन सुन्दरी के उसके घर में आने की बात तय हुई, वह अपने दिल की बात का और भी कायल हो गया। उसे लगा कि उसके अन्दर ज़रूर किसी औलिया का वास है।

उसने बड़ी मुश्किल से मनाकर अपनी बीवी को उसके बाप के घर भेज दिया। वह जाना चाहती थी क्योंकि बहुत दिनों से जब जब उसने जाने की इच्छा प्रकट की थी, सुन्दरसिंह ने यह कहकर उसका प्रस्ताव रद्द कर दिया था कि वह अपना एक-एक पैसा बिज़नेस के बढ़ाने में लगा रहा है, उसके पास उसे इधर-उधर भेजने के लिए पैसे नहीं हैं। मगर इस बार उसने अपने पिछले रवैये के लिए उससे माफी तक मांगी और अनुरोध किया कि वह उसका दिल रखने के लिए चली ही जाए। बीवी के चले जाने पर उसने खाली घर को इस तरह देखा जैसे अभी-अभी उसे उसने जाले-आलें उतारकर ठीक किया हो, और खाली पलंग पर लेटकर इस परिवर्तन को महसूस करने का प्रयत्न किया।

सुन्दरी उस रात दस बजे से लेकर साढ़े बारह बजे तक उसके पास रही। वह मोटी-सी औरत हरजीतकौर उसे छोड़कर चली गई तो सुन्दरसिंह ने दरवाज़ा बन्द करके चटखनी चढा ली। यह उसकी ज़िन्दगी मे पहला मौका था कि एक इतनी हसीन लड़की उसके इतने नज़दीक थी और उसके मन में किसी भी तरह का डर या अन्देशा नही था। वह अपनी सारी हसरत और अरमान उसके शरीर पर पूरे कर सकता था। उसने पास जाकर उसका हाथ पकड लिया और कहा, "सोहणेओ, बैठ जाओ।"

सुन्दरी ने हाथ छुड़ा लिया और कमरे मे टहलने लगी। सुन्दरसिंह उसमे छोटी-मोटी छेड़खानिया करने लगा। कभी उसे कन्धे से पकडकर उसके गालचूम लेता और कभी उसके गदराए हुए वक्ष को हाथ से मसल देता। उसे छूते ही उसके शरीर मे बिजलिया दौड़ जाती। किसी-किसी क्षण उसे विश्वास नही होता कि जो कुछ हो रहा है वह एक हकीकत है। उसने सुन्दरी का हाथ मजबूती से पकड लिया और फिर कहा, "चूंजेओ, बैठ जाओ।"

सुन्दरी बैठ तो गई पर सुन्दरसिंह को लगा कि वह उसे विचित्र सन्देह-भरी नज़र से देख रही है। *सहसा उसके शरीर की बिजलियां ठंडी होने लगी। उन बिजलियों की* गर्मी बनाए रखने के लिए उसने उसे खीचकर अपने साथ सटा लिया और कहा, "सोहणेओ, तुम हमे प्यार नही करते ?"

सुन्दरी ने उसकी बांहों से मुक्त होने का प्रयत्न किया तो सुन्दरसिंह और ठंडा पड़ने लगा। वह उससे इस तरह लिपट गया जैसे डूबते आदमी के हाथ में किसी तैराक की बांह आ गई हो और वह किसी भी तरह उसे छोड़ना न चाहता हो। वह उससे कहने लगा कि वह ज़िन्दगी में आज पहली बार दिल से प्यार कर रहा है, अपनी बीवी से वह आज तक प्यार नहीं कर सका, वह उसे बता नही सकता कि अपनी बीवी के हाथों वह कितना दुःखी है। उसने यह भी कहा कि सुन्दरी अपने सुन्दर को सिर्फ एक ग्राहक समझने की भूल न करे, सुन्दर उसे अपनी जान से बढकर मानता है, और उसके एक इशारे पर अपना घर-बार और और बिजनेस सब कुछ छोड़ सकता है। आज उसके दिल मे एक ही कामना है कि उसकी सुन्दरी हमेशा-हमेशा के लिए इसी तरह उसके पास रहे। मगर बात कहते-कहते ही उसे ध्यान हो आया कि उसकी चाही हुई अक्सर बातें सच्ची हो जाती हैं, इसलिए उसने घर-बार, बिज़नेस छोडने की बात को तुरन्त लौटा लिया।

"सोहणेओ, तुम मेरे पास रहो तो मैं तुम्हें बंगला बनवा दूं, कार रख दू—तुम सुन्दरसिंह को ऐसा-वैसा ही न समझना।"

उसने सोचा कि यह कहकर उसने बिज़नेस की कुरबानी की बात रद्द कर दी है। सुन्दरी का शरीर अब कसमसा नही रहा था और सुन्दरसिंह का हाथ धीरे-धीरे उसकी पीठ को सहला रहा था। वह सोचने लगा, क्या सचमुच ऐसा दिन उसकी ज़िन्दगी में आ सकता है जब सुन्दरी उसकी पत्नी के रूप मे उसके घर मे रही हो, वह उसकी बांह में बांहें डाले हुए घर से निकले और उन्हें देखते ही ड्राइवर कार का दरवाज़ा खोलकर खड़ा हो जाए ? मगर इससे पहले कि दिल का औलिया इस बात की गवाही देता, उसने झट से अपनी कल्पना मे थोड़ा परिवर्तन कर लिया। उसने सोचा कि चाहे सुन्दरी खूबसूरत है, फिर भी क्या वह उसे ज़िन्दगी-भर के लिए घर में रख सकता है ? वह एक शरीफ आदमी है और वह पेशेवर बदमाश है। इसलिए उसने जल्दी से तय कर लिया कि शरीफ होने के नाते घर में रखने के लिए उसे एक शरीफ लड़की ही चाहिए, सुन्दरी जैसी बाज़ारू लड़की नही।

मगर उसकी शराफत ने हज़ार कोशिश करने पर भी उस समय उसके दिल के

अरमान पूरे नही होने दिए। कहां उसने सोचा था कि उस दिन उसके चालीस बरस के सारे अरमान निकल जाएगे और कहां वह अढाई घण्टे में अपने अरमान निकालने की भूमिका भी नही तैयार कर पाया। साढे बारह बजे हरजीतकौर ने दरवाज़ा खटखटाया तो सुन्दरी मुह बिचकाकर उससे अलग हो गई और वह आप पसीना-पसीना हुआ, उठ खड़ा हुआ। दरवाज़ा खोलकर उसने हरजीतकौर से अनुनय किया कि वह सुन्दरी को कुछ देर और उसके पास रहने दे, वह उसे दुगने पैसे तक देने को तैयार है। मगर सुन्दरी ने एक मितलाहट-भरी नज़र से उसकी तरफ देखा, जैसे वह इन्सान न होकर एक चलता-फिरता दवाईखाना हो, और बेरुखी से सीढ़ियों की तरफ चली गई। हरजीतकौर भी कन्धे झटककर उसके पीछे-पीछे सीढ़िया उतर गई।

सुन्दरसिंह अपनी खुली हुई पगडी उठाकर आईने के सामने जा खड़ा हुआ।

"सुन्दरसिंह तू गधा है, तू बैंगन है, तू अमरूद है," कहकर उसने दो-तीन बार अपने मुह पर चपत मारी और पगडी लपेटने लगा। पगड़ी लपेटकर उसने फिर एक बार अपने मुह पर चपत मारी।

"सुन्दरसिंह, तू शलगम है शलगम। तू होटल छोड और ठेला चला।"

मगर कुछ दिन बाद जब सुन्दरी और हरजीतकौर पकडी गई और शहर मे हर व्यक्ति के मुह से सुन्दरी-कांड की चर्चा सुनाई देने लगी, तो सरदार सुन्दरसिंह के दिल से अपनी असफलता का खेद बहुत हद तक जाता रहा। उसे यह भी लगा कि कुदरत ने इस तरह उसके तिरस्कार का बदला ले लिया है। सुन्दरी ने पुलिस के सामने बयान दिया था कि वह अभी नाबालिग है, और हरजीतकौर ज़बरदस्ती उससे यह पेशा कराती है —इससे सुन्दरसिंह को लगा कि उसकी असफलता के पीछे भी शायद कुदरत का ही हाथ था—वाहगुरु ने अपनी बाह बढाकर उसे इस अपराध का हिस्सेदार बनने से बचा लिया है। उसने मन ही मन वाहगुरु की अरदास की।

मगर यह सुनकर कि पुलिस की गाड़ी सिविल लाइन्ज़ मे घूम रही है, उसका दिल खामखाह धडकने लगा। उसे विश्वास था कि जिस तरह वाहगुरु ने जब-तब उसकी लाज रखी है, उस तरह आगे भी रखेगा। मगर उसे लगा कि पुलिस की गाड़ी अचानक उधर आ निकले और सुन्दरी उसे काउण्टर पर खड़े देखकर पहचान ले, तब तो वाहगुरु के लिए भी लाज रखना मुश्किल होगा। क्या पता वे लोग एक-एक प्याली चाय पीने के लिए ही उसके होटल का रुख कर लें और वहां आकर पुलिस वाले सुन्दरी की आखो से ताड लें कि दाल मे कुछ काला है, और वही तहकीकात शुरू कर दें? उसने कांपते हाथ से गिरी हुई पेंसिल को उठाया मगर उससे बिल-बुक में हिदसे ठीक नही लिखे गए। उसने पेंसिल बीच मे रखकर बिल-बुक बन्द कर दी। काउण्टर से हटकर उसने हरदितसिंह बैरे को इशारे से अपने पास बुलाया और उससे कहकर कि उसके सिर मे दर्द है, वह उसकी जगह काउण्टर संभाल ले, वह पिछली गली के रास्ते घर की तरफ चल दिया।

घर में दाखिल होकर सुन्दरसिंह ने गली मे खुलनेवाला दरवाज़ा बन्द कर लिया। सीढ़िया चढकर वह ऊपर पहुंचा तो उसका उस कमरे मे जाने को मन नही हुआ, जहा उसकी ज़िन्दगी का हसीन ख्वाब पूरा होते-होते रह गया था। पहले हर रोज वह घर आते ही उस कमरे पर एक हसरत-भरी नज़र डाल देता था, मगर आज वह सीधा चौके में अपनी पत्नी भागवन्ती के पास चला गया। भागवन्ती ने ज़रा भी आश्चर्य प्रकट नही किया कि सरदारजी आज जल्दी क्यो चले आए हैं। वह चुपचाप आटे के पेड़े पर बेलन चलाती रही।

"भागवन्ती," सुन्दरसिंह ने उसके पास मोढ़े पर बैठते हुए कहा।

भागवन्ती ने हाथ रोककर आखें उसकी तरफ उठाई जैसे कह रही हो, कुछ बात कहनी है तो जल्दी से कह डालो, नही मुझे काम करने दो।

"भागवन्ती, मुझे आज एक खयाल आया है।"

भागवन्ती जरा सतर्क हो गई। पन्द्रह बरस के विवाहित जीवन में जब कभी उसने इस तरह मुलायम होकर बात की थी, उसके पीछे कोई न कोई मतलब रहा था। एक बार जब उसे होटल खोलना था, उसने इसी तरह बात करके उससे उसके गहने मांगे थे। फिर जब उसे होटल का काम बढ़ाने के लिए पैसे की जरूरत थी तो उसने इसी तरह की बातो से उसे अपने बाप से मिला हुआ घर गिरवी रखने के लिए राजी किया था। अब उसके पास अपनी सम्पत्ति के रूप मे चादी के कुछ बरतनो के सिवा कुछ नही था। वे भी उसके दहेज मे आए थे। वह पहले भी एक बार उससे कह चुकी थी कि वह किसी भी परिस्थिति में अपने बरतन बेचने के लिए उसे नही देगी। उसकी भौंह तिरछी हो गई और माथे पर बल पड गए।

"भागवन्ती, मैंने आज तक तेरे लिए कुछ नही किया।" सुन्दरसिंह ने आखें भरे हुए यह बात कही तो उसके हाथ से बेलन छूट गया। सुन्दरसिंह का अपने कुछ न करने की बात कहना या सोचना उसके लिए बिलकुल अस्वाभाविक चीज थी। उसने बेलन सभालते हुए तीखी नजर से उसे देखा कि आखिर इस बात का गहरा मतलब क्या हो सकता है। सुन्दरसिंह ने पगडी उतारकर आले मे रख दी और घुटने ऊंचे उठा लिए।

"भागवन्ती, मैं तेरे लिए सोने की चूड़िया बनवाना चाहता हूं।"

भागवन्ती ने एक लम्बी सास ली, बेली हुई चपाती तवे पर डाली और कहा कि उसे गर्म फुलका खाना हो तो उसकी थाली लगा दे, सोने की चूड़ियां वह बहुत पहन चुकी है!

"भागवन्ती, तूने सुन्दरसिंह का दिल नही देखा। देखेगी तो कहेगी कि हां सुन्दरसिंह भी कुछ चीज है," कहता हुआ वह पगडी सिर पर रखकर उठ खडा हुआ।

भागवन्ती ने कुछ नही कहा, सिर्फ इतना पूछ लिया कि वह रोटी अभी खाएगा या ठहरकर। सुन्दरसिंह के मन मे था कि वह उसके पास बैठकर उससे देर तक बातें करे और रोटी खाकर उसके साथ ही बीच के कमरे मे जाए। उसने यह भी सोचा था कि मौका लगा तो वह सारी बात बताकर उससे माफी भी मागेगा। क्योकि उसे खयाल था कि अगर सुन्दरी ने पुलिस को बता दिया और पुलिस उसके घर आ गई तो भागवन्ती ही उसका बचाव कर सकेगी। मगर भागवन्ती का उदासीन भाव देखकर उससे कुछ भी नही कहा गया और वह रोटी के लिए मना करके चौके से निकल आया। भागवन्ती ने एक बार भी उससे अनुरोध नही किया कि वह रोटी खाकर ही जाए। वह तवे पर रोटी को फुलाकर चुपडती रही। सुन्दरसिंह का मन खीझ गया कि इस औरत की वजह से वास्तव मे उसकी जिन्दगी तबाह हो गई है। आज अगर उसे हथकडी लगेगी, तो इसी की वजह से लगेगी। मगर वह तब भी शायद इसी तरह चकले पर बेलन चलाती रहेगी, और चिमटे से कोयले ठीक करती रहेगी।

कमरे मे जाकर वह पलग पर लेट गया तो उसे रह-रहकर भागवन्ती पर क्रोध आने लगा। वह उससे आज तक शराफत बरतता आया है, इसलिए वह इसे बिलकुल ही बोदा समझती है। यह भी तो उसकी शराफत ही थी कि जिस दिन वह सुन्दरी को घर लाया, उस दिन उसने उसे मैके भेज दिया। चाहिए तो यह था कि वह उसके सामने ही घर मे यह करतब करता, जिससे वह एक बार तो महसूस करती कि वह उतना गावदी

नहीं है जितना वह समझती है। अब तो वह ऐसे व्यवहार करती है जैसे वह आदमी न होकर मिट्टी का ढेला हो।

गली में चार-छः व्यक्तियों के चलने की आवाज़ सुनकर सुन्दरसिंह चौंक गया। एक बार उसका दिल जोर से धड़क गया और उसे अफ़सोस हुआ कि उसने कमरे की बत्ती जलती क्यों रहने दी है। उसे लगा कि दो ही क्षण बाद उसके दरवाज़े पर दस्तक दी जाएगी और उसके कुछ ही देर बाद शायद पुलिस उसे हथकड़ी लगाकर कोतवाली की तरफ़ ले जा रही होगी। मगर पैरों की आवाज़ शीघ्र ही दूर चली गई और धीरे-धीरे समाप्त हो गई। सुन्दरसिंह पलंग से उठा और खिड़की के पास चला गया। खिड़की की सलाखें बहुत ठंडी थीं और नीचे गली सुनसान थी। सुन्दरसिंह का मन एक विचित्र-सी निराशा से भर गया। उसने उन दो ही क्षणों में अपने मन को पुलिस के सामने घटित होने वाले दृश्य के लिए तैयार कर लिया था। मगर पुलिस तो क्या, गली में इन्सान की छाया तक न थी। वह फिर आकर पलंग पर लेट गया।

दिन में उसने कई तरह के किस्से सुने थे कि सुन्दरी ने लोगों के घरों में जाकर पुलिस को क्या-क्या चीज़ें बताई हैं। लोग सुन्दरी की याददाश्त पर हैरानी प्रकट कर रहे थे कि कैसे उसने एक-एक घर का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है। चौके से अब भी चकले-बेलन की आवाज़ आ रही थी। सुन्दरसिंह ने करवट बदलकर सोचा कि इस समय सचमुच सुन्दरी पुलिस को लिए हुए वहां आ जाए और पुलिस उसे हथकड़ी पहना दे, तो निःसंदेह भागवन्ती उसकी मर्दानगी के प्रति इस तरह उदासीन नहीं रह सकेगी और उसके दिल में उसके लिए कद्र पैदा होगी। उसके सामने वह पूरा दृश्य जैसे घटित होने लगा।

दरवाज़े पर दस्तक होती है और भागवन्ती दरवाज़ा खोलती है। सुन्दरी और पुलिस के सिपाहियों को देखकर वह भौंचक हो जाती है।

"माई, सरदार सुन्दरसिंह का मकान यही है?" एक सिपाही पूछता है।

"हां, यही मकान है," सुन्दरी कहती है, "सीढ़ियों के साथ ही इनका बड़ा कमरा है। उसमें दाईं ओर एक पलंग बिछा है। चलिए ऊपर।"

भागवन्ती घबराई-सी उनके लिए रास्ता छोड़ देती है। वे सब ऊपर पहुंच जाते हैं। भागवन्ती भी डरी-डरी-सी उनके पीछे ऊपर आ जाती है। सुन्दरी पास आकर उसका हाथ पकड़ लेती है।

"यह है सरदार सुन्दरसिंह," वह कहती है, "लगा लो इसे हथकड़ी।"

"हाथ आगे करो सरदारजी," सिपाही पास आकर उसे हथकड़ी पहनाने लगता है, "बहुत मौज कर ली, अब चलकर हवालात की हवा खाओ।"

वह तनकर खड़ा हो जाता है और कहता है कि वह इस मामले में बिलकुल बेकसूर है। वाहगुरु की सौगन्ध खाकर कह सकता है कि वह बिलकुल बेकसूर है। यह लड़की खामखाह उसका नाम लगा रही है।

भागवन्ती उसके और सिपाही के बीच आकर खड़ी हो जाती है और कहती है कि वे उसके पति को गिरफ्तार नहीं कर सकते। उसका पति कभी अपराधी नहीं हो सकता। वह बेचारा तो किसी औरत की तरफ़ आंख उठाकर भी नहीं देखता। वह गौ की तरह असील और सौ शरीफ़ों का एक शरीफ़ है।

यहां तक आकर सुन्दरसिंह को लगा कि सिलसिला गलत हो गया है। इस तरह पुलीस के हाथों में भागवन्ती उसे बचा ले, तब तो वह उसके सामने और भी हीन हो जाएगा। और वह चाहता यह है कि भागवन्ती के दिल पर इस बात का सिक्का बैठ जाए

कि वह मिट्टी का माधो नहीं है, एक दिल और गुर्देवाला खालिस आदमी है; यह और बात है कि वह अपने दिल को उससे मुहब्बत करने के लिए राज़ी नही कर पाता। इसलिए पुलिस के ऊपर आने के बाद की बात वह दूसरी तरह सोचने लगा।

सिपाही उसे हथकडी पहनाता हुआ कहता है कि सरदारजी, चलो चलकर हवालात की हवा खाओ तो वह भागवन्ती पर एक गहरी नजर डालकर हाथ आगे कर देता है। भागवन्ती पास आकर उसकी बांह पकड लेती है।

"हाय सरदारजी," वह रोती आवाज़ में कहती है, "ये लोग आपको हथकड़ी क्यों लगा रहे हैं ? हाय मैं आपके बिना अकेली घर मे कैसे रहूगी ?"

सुन्दरी भागवन्ती को बाह से पकड़कर परे हटा देती है और कहती है कि वह पति को पहले बुरे काम करने से रोकती, अब क्यो रोती है ? भागवन्ती कोने मे जाकर फफक-फफककर रोने लगती है और सुन्दरी पलंग के नीचे से उसके जूते निकालकर उसके आगे रख देती है, और अलमारी से उसकी पगड़ी निकालकर उसे दे देती है।

"सरदारजी, जूते पहन लो और पगडी बांध लो, फिर हथकडी लगवाना," वह हथकडी लगवाकर चलने के लिए तैयार हो जाता है तो सुन्दरी अलमारी से निकालकर एक रूमाल भी उसकी जेब में रख देती है।

"अच्छा, भागवन्ती, मैं जा रहा हू। घर का खयाल रखना," वह कहता है और सिपाहियो के साथ चल देता है। भागवन्ती रो-रोकर कहती रहती है कि सरदारजी, न जाओ, मुझे घर मे अकेली छोडकर न जाओ, हाय मैं आपके पीछे घर मे अकेली कैसे रहूंगी? वे लोग सीढियां उतरकर नीचे आते हैं तो पुलिस की गाडी का ड्राइवर उसके लिए दरवाजा खोल देता है —और उसे एक बार फिर अपने दिल के औलिया की बात पर विश्वास हो उठता है कि उसने जो नक्शा उसे दिखाया था वह किसी हद तक तो पूरा हो ही गया।

पुलिस की गाडी में बैठ जाने के बाद सुन्दरसिंह की कल्पना आगे काम नही कर सकी। उसने एक-दो बार करवट बदली और सीधा हो गया। भागवन्ती चूल्हा बुझा रही थी। पानी पड़ने से लकडियो से सी-सी की आवाज निकल रही थी। गली मे कोई आहट सुनाई नही दे रही थी। वह उठकर सीढियो के पास चला गया और कुछ क्षण नीचे की तरफ देखता रहा। फिर उसने भागवन्ती को आवाज देकर कहा कि वह बाहर जा रहा है और पैरो से आवाज़ करता हुआ सीढिया उतरने लगा। उसे आशा थी कि शायद भागवन्ती उसे पीछे से आवाज़ दे कि उसे जाना है तो रोटी खाकर जाए, मगर भागवन्ती ने उसकी आवाज का उत्तर भी नही दिया और बुझी हुई लकड़ियों को कोने मे फेंकती रही।

सुन्दरसिंह गली से निकलकर बाजार में आया तो ज्यादतर दुकाने बन्द हो चुकी थी। वह घूमता हुआ अपने होटल की तरफ चला गया। होटल में कोई गाहक नही था। बैरे सामान सभालकर वहां से चलने की तैयारी कर रहे थे।

'सरदारजी, अब सिरदर्द ठीक है ?" हरदितसिंह बैरे ने पूछा।

"हां ठीक है," कहकर सुन्दरसिंह ने खाली मेज़-कुर्सियों पर एक नजर डाली और पूछा कि उसके पीछे कोई उसे पूछने के लिए तो नही आया।

"नही सरदारजी, कोई नहीं आया," हरदितसिह ने उत्तर दिया।

"कोई भी नही आया ?" उसने फिर पूछा।

"नही।"

सुन्दरसिंह दाढ़ी के बाल बैठाता हुआ होटल से निकल आया और कुछ देर सड़कों के चक्कर काटता रहा। वह कम्पनी बाग से होकर ट्रेनिंग कालेज की तरफ निकल

गया। उधर से लौटते हुए वह हौसला करके पुलिस की चौकी की तरफ भी हो आया। उसके अलावा जैसे दुनिया मे किसी को खयाल ही नही था कि आज सुन्दरी-कांड के अभियुक्तो की गिरफ्तारियां हुई है और हो रही है। हर जगह शान्ति और खामोशी छाई थी। घर की ओर लौटते हुए वह दैनिक 'लोक समाचार' के कार्यालय के सामने से गुजरा। अन्दर छापे की मशीन घरड-घरड कर रही थी। उसने सोचा कि वे मशीनें उस समय वही खबर छाप रही हों—सुन्दरी-कांड मे पन्द्रह सम्भ्रान्त व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गए। सुबह सारे प्रदेशो मे लोग उन गिरफ्तारियो की चर्चा कर रहे होंगे। गिरफ्तार हुए व्यक्तियो के नाम हर एक की ज़बान पर होगे। शायद कुछ एक के फोटो भी छपें। महीनो तक वे लोग जनता की आखो मे रहेगे। बहुत-से लोग दिल ही दिल उनसे रश्क भी करेंगे। मगर सुन्दरसिंह तलवाड का नाम उनमें नही होगा। उसने एक लम्बी सास ली। मन में अजब बेचैनी भर गई। वह स्वयं नही समझ सका कि अभियुक्त करार न दिए जाने से उसके मन को तसल्ली मिली है या निराशा हुई है। वह कुछ देर मशीनो की आवाज सुनकर घर की तरफ चल दिया।

गली मे दाखिल होने से पहले उसे आशा थी कि शायद उसके घर के बाहर हगामा हो रहा हो, घर की तलाशी हो रही हो और भागवन्ती को डरा-धमकाकर पूछा जा रहा हो कि उसने पति को कहा छिपा रखा है या वह घर से भागकर कहा गया है। परन्तु गली जितनी उसके जाने के समय सुनसान थी, उतनी ही सुनसान अब भी थी। उसके कमरे की बत्ती, जो वह जलती छोड गया था, अब बुझी हुई थी।

"भागवन्ती!" उसने सीढिया चढकर आवाज़ दी।

भागवन्ती सिर-मुह ओढकर लेटी हुई थी। उसने कुनमुनाकर धीरे से कहा कि रोटी डिब्बे मे रखी है, अगर वह होटल से ही पेट भरकर न आया हो, तो वहां से निकाल-कर खा ले।

सुन्दरसिंह के मन की खीझ गुस्से में बदल गई। उसने अपने पलग पर बैठकर जूते झटककर उतार दिए और कहा, "तुझे रोटी की पड़ी है? यहां चाहे किसी की जान को बनी हो, तुझे क्या परवाह है?"

भागवन्ती धीरे-धीरे उठ गई, मगर सिर-मुह लपेटे अपने पलंग पर ही बैठी रही।

"जान को क्या बनी है?" उसने पूछा, "फिर पैसे जुए मे हार आए हो?"

"हा, मैं रोज़ जुआ खेलता हू न!" सुन्दरसिंह बडबडाया, "यहा यह नही पता कि घडी मे क्या हो पल में क्या हो, और इसे बातें बनाने की सूझ रही है।"

"तो ऐसा क्यो कर आए हो जो तुम्हे पता नही कि घडी में क्या हो और पल मे क्या हो?" भागवन्ती अब भी ठहरे हुए उदासीन स्वर मे बोली, "किसी का खून कर आए हो?"

"हा, अपना खून कर आया हूं!" सुन्दरसिंह उसी तरह गुस्से में बोला और पगडी उतारकर शीशे के सामने चला गया। वहां खड़े-खडे उसने कहा कि पता नही किस समय पुलिस उसे पकडकर ले जाए, इसलिए वह अब घर-बार ठीक से सम्भाल ले।

"क्यो, पुलिस को तुम्हे किसलिए पकडने आना है?" भागवन्ती अब वास्तव मे घबराकर बोली, "होटल से बोतलें-ओतलें तो नही पकड़ी गईं।"

सुन्दरसिंह थोडा प्रसन्न हुआ कि अब उसका तीर निशाने पर जा लगा है।

"तुझे पता नही आज शहर मे गिरफ्तारियां हो रही हैं?" उसने फिर भी खीझ बनाए रखते हुए कहा।

"कैसी गिरफ्तारिया?"

"कैसी गिरफ्तारियां ?" सुन्दरसिंह अपने पलंग पर लौट आया। "गिरफ्तारियां कैसी होनी हैं ?" पुलिस उन सब लोगों को हथकड़ियां लगा रही है जिसके नाम वह लड़की उन्हें बता रही है।"

"कौन लड़की लोगों के नाम पुलिस को बता रही है ?" भागवन्ती की घबराहट जाती रही और उसके स्वर में भी झुंझलाहट भर गई, "आज फिर पी-पिला आए हो ?"

"सारी दुनिया आज सुन्दरी की चर्चा कर रही है और इसे मैं बताऊं कि वह कौन है !" सुन्दरसिंह ने महत्व के भाव से बांहें पीछे कर लीं, "मैं कह रहा हूं कि घर संभाल ले, हो सकता है कि रात को ही पुलिस यहां छापा मार ले।"

"मगर पुलिस को हमारे यहां किस बात के लिए छापा मारना है ?" भागवन्ती उसे गौर से देखने लगी कि वह ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों कह रहा है।

"वह मेरा नाम पुलिस को बता देगी तो पुलिस यहां छापा मारेगी कि नहीं ?" सुन्दरसिंह ने सोचा कि अब उसने बात खोल दी है तो भागवन्ती रोना-पीटना आरम्भ कर देगी। मगर भागवन्ती उसी तरह स्थित बैठी रही।

"उसे तुम्हारे नाम से क्या मतलब है ?" उसने पूछा।

सुन्दरसिंह ने मुश्किल से अपनी मुसकराहट को दबाया और कहा, "वह एक दिन यहां आई जो थी।"

परन्तु यह देखकर सुन्दरसिंह को सख्त निराशा हुई कि उसके ब्रह्मास्त्र का भी भागवन्ती पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि भागवन्ती की आंखों का भाव तिरस्कार-पूर्ण हो उठा।

"रहने दो सरदारजी," उसने कहा, "मन के लड्डू मत फोड़ो। उसे आप ही के पास आना था ! जाओ जाकर रोटी खा लो। और नहीं खानी है तो बत्ती बुझाकर सो रहो। सारी उम्र बीत गई आपको सपने देखते।"

"तू मत मान···", सुन्दरसिंह ने उलझे हुए मगर शिथिल स्वर में कहा, "मैं तो आप कहता हूं कि मुझसे गलती हुई है। मगर जो गलती होनी थी सो हो गई। तू घर की देखभाल···।"

"बस करो सरदार जी, बस करो," भागवन्ती ने उसकी बात बीच में ही काट दी और सिर-मुंह ओढ़कर लेटती हुई बोली, "खामखाह की बातें करके क्यों जबान ओछी करते हो ? उठकर बत्ती बुझा दो, मुझे नींद आ रही है।" और उसने करवट बदलकर उसकी तरफ पीठ कर ली।

सरदार सुन्दरसिंह का मन बुरी तरह खीझ गया और वह उठकर कमरे में टहलने लगा। उसने एक बार मेज का दराज खोलकर बन्द कर दिया। फिर पलंग को थोड़ा आगे को सरका दिया। खिड़की के पास होकर वह फिर नीचे देखने लगा। वही नीरवता छाई थी। उसके मन की बेचैनी बढ़ गई। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे या करे जिससे भागवन्ती को विश्वास हो जाए कि वह जो कह रहा है वह सच है और एक बार वह माथे पर हाथ मार-मारकर रो उठे। मगर बहुत सोचकर भी कोई तरीका उसकी समझ में नहीं आया। हवा का एक ठंडा झोंका लगने से वह खिड़की के पास से हट आया। भागवन्ती तब तक ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे भरने लगी थी। उसने हिंस्र पशु की-सी आंखों से भागवन्ती के सोए शरीर को देखा और बत्ती बुझाकर चौके में चला गया।

पांचवें माले का फ्लैट

आवाज़ ठीक सुनी थी। साफ नाम लेकर पुकारा गया था, "अविनाश !"

पर सोचा, गलतफहमी हुई है। पुकारने को राह-चलती भीड़ में कोई भी पुकार सकता है, पर यहां इस नाम से जानता कौन है ? जो भी जानता है, घिसेपिटे दफ्तरी नाम से ही जानता है। ए० कपूर के ए० को कोई गिनती में नहीं लाता। ए० का मतलब अविनाश है या अशोक, यह जानने की ज़रूरत किसी को नहीं। कामकाजी जिन्दगी के सब काम कपूर से चल जाते हैं। जो अधूरापन रहता है, वह मिस्टर या साहब से पूरा हो जाता है। 'क्या हालचाल है, मिस्टर कपूर ?' 'कहिए, कपूर साहब, क्या हो रहा है आजकल ?'

मगर नाम साफ सुना था ··

भीड़ बहुत थी। सोचा इसलिए गलतफहमी हुई होगी। या इसलिए कि फरवरी की हवा में बसन्त की हल्की ताजगी महसूस हो रही थी। जाने कैसे ! यों तो सिवाय गर्मी और बरसात के इस शहर में मौसम का पता ही नहीं चलता। आसमान बादलों से न घिरा हो तो हल्का सलेटी बना रहता है। बरसों के इस्तेमाल से उड़ा-उड़ा फीका-फीका-सा एक रंग नज़र आता है। हवा चलती है, तो खूब तेज़ चलती है, नहीं चलती, तो नहीं ही चलती—समुद्र के ज्वार-भाटे का-सा अन्दाज़ रहता है उसका। दिन और रात में भी ज्यादा फर्क नहीं होता—सिवाय अंधेरे और रोशनी के। जहां दिन में अंधेरा रहता है, वहां रात को रोशनी हो जाती है; जहां दिन में रोशनी रहती है, वहां रात को अंधेरा हो जाता है। खाना न इस मौसम में पचता है, न उस मौसम में। मगर फरवरी की वह शाम अपने में कुछ अलग-सी थी। हवा में बसन्त का हल्का आभास ज़रूर था और पश्चिम का आकाश भी और दिनों से सुन्दर लग रहा था। साढ़े सात बजते-बजते भूख भी लग आई थी। मैं राह चलते लोगों को देख रहा था और ट्रेल मछलियों की बात सोच रहा था। मन हो रहा था कि कहीं अच्छी करारी मूंगफली मिल जाए, तो पांच पैसे की ले ली जाए।

पुकारा किसी ने अविनाश को ही था। अपने लिए विश्वास इसलिए भी नहीं हुआ कि आवाज़ किसी लड़की की थी—लड़की की या स्त्री की। दोनों में फर्क होता है, मगर बहुत नहीं। इतने महीन फर्क को समझने के लिए बहुत अभ्यास की ज़रूरत है। बम्बई शहर और मैरीन ड्राइव की शाम। ऐसे में अपने को पुकारे एक लड़की! होने को कुछ भी हो सकता है, पर अपने साथ अक्सर नहीं होता।

जैसे चल रहा था, दस-बीस कदम और चलता गया। मुड़कर पीछे न देखता, तो न भी देखता। पर अचानक यों ही, उत्सुकतावश कि जाने अपने को ही किसी ने पुकारा हो, घूमकर देख लिया। एक हाथ को अपनी तरफ हिलते देखा, तो अविश्वास और बढ़ गया। बढ़ने के साथ ही अचानक दूर हो गया। चेहरा बहुत परिचित था। पहचानने में उतनी देर नहीं लगी जितनी कि उसके चेहरे से ज़ाहिर थी। दरअसल हैरानी यह हुई कि वह फिर से यहां कैसे।

भेल और नारियलवालों से बचता हुआ उसकी तरफ बढ़ा। आवाज़ देने के बाद वह जहां-की-तहां रुक गई थी। उसके बाद उसे पहचानने और उस तक पहुंचने की सारी ज़िम्मेदारी जैसे मेरे ऊपर हो। पास पहुंच जाने पर भी अपनी जगह से एकदम नहीं हिली। दूर था, तो बन्द होंठों से मुसकरा रही थी। पहुंचा तो खुले होंठों से मुसकराने

लगी, बस। भौंहों पर आई-ब्रो पेंसिल की गहराई को चमकाती हुई बोली, "पहचाना नही ?"

कैसे कहता कि सवाल बेवकूफाना है ? न पहचानता तो इतना रास्ता चलकर आता ? सिर्फ इतना कहने के लिए कि 'माफ कीजिएगा, मैंने आपको पहचाना नही।' कौन तीस गज चलकर आता है ? मन में जितनी कुढन हुई आवाज को उतना ही मुलायम रखकर कहा, "तुम्हे क्या लगता है, नही पहचाना ?"

वह हंस दी, जाने आदत से या खुशी से। मैं मुसकरा दिया बिना किसी भी वजह के।

"पहले से काफी बड़ नजर आने लगे हो," उसने कहा और अपना पर्स हिलाने लगी। शायद साबित करने के लिए कि वह खुद अभी उतनी ही शोख और कमसिन है। पहले सोचा कि उसे सच-सच बता दू कि वह कैसी नज़र आती है। पर शराफत के तकाजें से वही बात कह दी जो वह सुनना चाहती थी, "तुममे इस बीच खास फर्क नही आया।"

वह फिर हंस दी। मैं फिर मुसकरा दिया, पर इस बार बिना वजह के नही।

उसने पर्स हिलाना बन्द कर दिया और उसमें से मूगफली निकाल ली। कुछ दाने मुह मे डाल लिए और बाकी मेरी तरफ बढाकर बोली, "अब तक अकेले ही हो ?"

जल्दी से कोई जवाब नही सूझा। पहले चाहा कि झूठ बोल दू। फिर सोचा कि सच बता दूं। मगर मन ने झूठ-सच दोनो के लिए हामी नही भरी। कही से यह घिसी-पिटी बात लाकर ज़बान पर रख दी, "अकेला तो वह होता है जो अकेलेपन को महसूस करे।"

उसे पर्स मे और दाने नही मिल रहे थे। कुछ देर इधर-उधर टटोलती रही। किसी कोने मे दो-चार दाने हाथ लग गए, तो उसकी आखें खुशी से चमक उठी, निकाल-कर एक-एक करके चबाने लगी।

उसके दांत अब भी उसी तरह तीखे थे। मूगफली निगलते हुए गरदन पर उसी तरह लकीरें बनती थी। "अच्छा है, तुम महसूस नही करते," उसने कहा और दाने चबाती रही।

मैं उसका नाम याद करने की कोशिश कर रहा था। बहुत दिन वह नाम ज़बान पर रहा था, ऐसे नामो मे से था, जो कि बहुत-सी लडकियों का होता है। हर तीसरे घर मे उस नाम की एक लडकी मिल जाती है। उन दिनों, छ सात साल पहले, लगातार बीस-बाईस दिन उन लोगो से मिलता-जुलता रहा था। वे दो बहनें थी, हालांकि शक्ल-सूरत से कजिन भी नही लगती थी। बड़ी के चेहरे की हड्डिया चौकोर थी, छोटी के चेहरे की सलीबनुमा। रग दोनो का गोरा था, मगर छोटी ज्यादा गोरी लगती थी। आखें दोनों की बडी-बडी थी, मगर छोटी की ज्यादा बड़ी जान पड़ती थी। बातूनी दोनो ही थी, पर छोटी का बातूनीपन अखरता नही था। छोटी का नाम था प्रमिला, उर्फ पम्मी, उर्फ मिस पी०। और बडी का नाम था कि याद ही नही आ रहा था। जिन दिनों उनसे परिचय हुआ, बडी की शादी होकर तलाक हो चुका था। इसलिए वह ज्यादा बचपने की बातें करती थी। हर बात मे दस बार अपना नाम लेती थी। मैंने अपने से कहा, "सरला..." हां, सरला नाम था। कहा करती थी, "मैंने कहा, सरला, तू हमेशा इसी तरह बच्ची-की-बच्ची ही बनी रहेगी।"

अपना नाम उसे पसन्द नही था, क्योकि स्पेलिंग बदलकर उसमें अग्रेजियत नही लाई जा सकती थी। प्रमिला कभी 'ए०' को 'ओ०' मे बदलकर प्रोमिला हो जाती थी,

कभी 'आर' ड्राप करके पामेला बन जाती थी। इसे प्रमिला से इस बात की भी जलन थी कि वह अभी क्वांरी क्यों है। मिलने-जुलने वाले लोग बातें इससे करते थे, ध्यान उनका प्रमिला की तरफ रहता था।

"प्रमिला से मिलोगे?" उसने पूछा।

"वह भी यही है?" मैंने पूछा।

"हम दोनों साथ ही आई हैं," उसने कहा, "सतीश को जहाज पर चढ़ाना था। उसने आज जर्मन के लिए सेल किया है। वहां लोकोमोटिव इजीनियरिंग के लिए गया है।

"सतीश · !" दिमाग पर जोर देने पर भी उस नाम के आदमी की शक्ल याद नही आई।

"तुम्हे सतीश की याद नही?" वह बहुत हैरान हुई। पल-भर ज़बान से लिपस्टिक को चाटती रही, "हमारा छोटा भाई सतीश···तुम तो उसके साथ रात-रात भर ताश खेला करते थे।"

ताश जरूर खेला करता था, पर जानता तब उसे सत्ती के नाम से था। यह कब सोचा था कि सात साल मे सत्ती साहब बड़े होकर सतीश हो जाएगे और उठकर लोकोमोटिव इजीनियरिंग के लिए जर्मनी को चल देंगे!

"हां, याद क्यों नही है?" बहुत स्वाभाविकता से मैंने कहा, "सतीश को मैं भूल सकता हू!" भूलना सचमुच आसान नही था, खास तौर से उसकी खदरी नाक की वजह से।

"प्रमिला फोर्ट मे शॉपिंग कर रही है," वह बोली, "मेरा दूकानो मे दम घुटता था, इसलिए हवा लेने इधर चली आई थी।" हवा के झोंके से उसने अपना पल्ला कन्धे से सरक जाने दिया। उगलियां इस तरह ब्लाउज के बटनो पर रख ली जैसे उन्हें भी खोल देना हो। "आज गरमी बहुत है," वह इस तरह कहा जैसे शहर का तापमान ठीक रखने की जिम्मेदारी बात सुननेवाले पर हो। फिर शिकायत का दूसरा पहलू पेश किया, "दिल्ली मे फरवरी का महीना कितना अच्छा होता है!"

वह मुकाम आ गया था जहां 'अच्छा, फिर मिलेंगे' कहकर एक-दूसरे से अलग हो जाना होता है। चाहता तो मैं खुद ही कह सकता था, पर तकल्लुफ मे उसके कहने की राह देखता रहा। उसने भी नही कहा। उसका शायद इस तरफ ध्यान ही नही गया। बेतकल्लुफी से उसने मेरी कुहनी अपने हाथ मे ले ली और बोली, "चलो, फ्लोरा फाउण्टेन चलते हैं। पम्मी ने कहा था, आठ बजे मैं उसे वोल्गा के बाहर मिल जाऊं। तुम्हे साथ देखकर उसे बहुत खुशी होगी।"

पम्मी को पहचानने मे थोड़ी दिक्कत हुई—मतलब मुझे दिक्कत हुई। वह तो जैसे देखने से पहले ही पहचान गई। "ओह!" उसने चौंककर कहा, अविनाश, तुम! बम्बई मे ही हो तब से?"

उसके चेहरे का सलीब जाने कहा गुम हो गया था। गालो में इतनी गोलाई भर आई थी कि हड्डियो का कुछ पता ही नही चलता था। सिर्फ ठोडी का गड्ढा उसी तरह था। बांहे वजन मे पहले से दुगनी नही, तो ड्योढी जरूर हो गई थीं। बाकी सब साइज साड़ी में ढके हुए थे। हर लिहाज से बड़ी बहन अब वही लगती थी।

बोलना चाहा, तो जल्दी में जबान नही हिली। हाथ एक-दूसरे में उलझकर रह गए। अपना खड़े होने का ढंग बिलकुल गलत जान पड़ा। "हां, यही, हूं," इस तरह कहा कि खुद अपने को हंसी आने को हुई। पर वह सुनकर सीरियस हो गई।

कोशिश हुई कि क्यों तब से यहीं हूं। कोई भला आदमी इतने साल एक शहर मे रहता है ? कही और चला गया होता, तो वह इतनी सीरियस तो न होती।

"उसी फ्लैट मे ?" उसने दूसरा नहला गिराया। एक शहर में रहे जाना किसी हद तक बरदाश्त हो सकता है, मगर उसी फ्लैट मे बने रहना हरगिज नही। खास तौर से जब फ्लैट उस तरह का है···

समझ में नही आ रहा था कि किस टाग पर वजन रखकर बात करूं, दोनों ही टागें गलत लग रही थी। पहनी हुई पतलून भी गलत लग रही थी। उसकी क्रीज़ ठीक नही थी। पहले पता होता, दूसरी पतलून पहनकर आता। कमीज़ का बीच का बटन टूटा हुआ था। पता होता तो बटन लगा लिया होता। मुंह से कहना मुश्किल लगा कि हां, अब तक उसी फ्लैट मे हूं। सिर्फ सिर हिला दिया।

'उसी पांचवें माले के फ्लैट मे ?" पता नही, उसे जानकर खुशी हुई या बुरा लगा। यह शिकायत उससे उन दिनो भी थी। उसकी खुशी और नाराजगी मे फर्क का पता ही नही चलता था।

जेब में ढूढ़ा, शायद चारमीनार का कोई सिगरेट बचा हो। नही था। अनजाने मे दियासलाई का डिबिया जेब से बाहर आ गई, फिर शर्मिन्दा होकर वापस चली गई। "हां, उसी फ्लैट मे," किसी तरह लफ्ज़ों को मुंह से धकेला और सूखे होंठो पर ज़बान फेर ली। होठ फिर भी तर नही हुए।

"अब भी उसी तरह पाच मजिल चढकर जाना पडता है ?" बार-बार कुरेदने मे जाने उसे क्या मजा आ रहा था। शायद चुइग-गम नही थी, इसलिए मुह चलाने के लिए ही पूछ रही थी। उन दिनो चुइग-गम बहुत खाती थी। कभी प्यार से मुह बनाती, तो भी लगता चुइग-गम की वजह से ऐसा कर रही है। चेहरे का सलीब उससे और लम्बा लगता था। मैंने एकाध बार मजाक में कहा था कि वह बबल-गम खाया करे, तो उसका चेहरा गोल हो जाएगा। उसने शायद इस बात को सीरियसली ले लिया था।

"हां, मैंने मार-खाए स्वर में कहा, "बिना चढ़े पांचवी मंज़िल पर कैसे पहुचा जा सकता है ?"

"सोच रही थी कि शायद अब तक लिफ्ट लग गई हो।"

बहुत गुस्सा आया। लिफ्ट जैसे बाहर से लग जाती हो, या छतें फाडकर लगाई जा सकती हो। लगनी होती तो शुरू से ही न लगी होती ? कितनी-कितनी परेशानिया उससे बच जाती। कम से कम उस एक दिन की घटना तो उस तरह होने से बच ही सकती थी।

"जब तक मकान न टूटे, लिफ्ट कैसे लग सकती है ?" अपनी तरफ से बहुत स्मार्ट बनकर कहा। सोचा कि अब वह इस बारे में और कुछ नही पूछेगी, पर उसने फिर भी पूछ ही लिया, "तो तुमने जगह बदल क्यों नहीं ली ?"

पीठ में खुजली लग रही थी, पर उसके सामने खुजलाते शरम आ रही थी। कमर और कन्धो को ऐंठकर किसी तरह अपने पर काबू पाए रहा। "ज़रूरत ही नही समझी," पीछे जाते हाथ को वापस लाकर कहा, "अकेले रहने के लिए जगह उतनी बुरी नही।"

वह थोडा शरमा गई, जैसे कि बात मैंने उसे सुनाकर कही हो। गोल चेहरे पर झुकी-झुकी आखें बहुत अच्छी लगी। पहले उसकी आखें इस तरह नही झुकती थी। "अब तक शादी नही की ?" हाथ के पैकेटों की गिनती करते हुए उसने पूछा। आवाज से लगा, जैसे बहुत दूर चली गई हो। सवाल में लगाव ज़रा भी नही था। हैरानी, हम-

दर्द कुछ नहीं। उत्सुकता भी नहीं। ऐसे ही जैसे कोई पूछ ले, "अब तक दांत साफ नहीं किए ?"

मन छोटा हो गया। अफसोस हुआ कि अपने अकेलेपन का ज़िक्र क्यों किया ? क्यों नहीं वक्त निकल जाने दिया ? अब जाने वह क्या सोचेगी ? जाने उसी वजह से··· या जाने उस फ्लैट की वजह से···

पर अब चुप रहते बनता नहीं था। झक मारकर कहना पड़ा, "करनी होती तो तभी कर लेता।"

उसने जिस तरह देखा, उसके कई मतलब हो सकते थे--तुम झूठ बोलते हो, तुमसे किसी ने की ही नहीं, या कि देखती तुम किससे करते, या कि सच अगर तुम्हारी बिल्डिंग में लिफ्ट लगी होती···

"अब भी क्या बिगड़ा है ?" वह अपने पैकेटों को सहेजती हुई बोली, "अभी इतने ज़्यादा बड़े तो नहीं हुए कि···अचानक बड़ी बहन ने आकर उसे बात पूरी करने से बचा लिया। वह इस बीच न जाने कहां गुम हो गई थी। मुझे याद भी नहीं था कि वह साथ में है। आते ही उसने हाथ झाड़कर कहा, "कहीं नहीं मिली।"

हमने हैरानी से उसकी तरफ देखा। उसने मुंह बिचका दिया। "सारे बाज़ार में नहीं मिली।"

"क्या चीज़ ?"

"मूंगफली, भुनी हुई मूंगफली। पता होता तो मैरीन ड्राइव से खरीद लाती।"

"अब उधर चलें ?"

उसने छोटी बहन की तरफ देखा। छोटी बहन ने समर्थन नहीं किया, "इतना सामान साथ में है। लिए-लिए कहां चलेंगे ?"

"सामान आपस में बांट लेते हैं," बड़ी बहन ने सादगी इस्तेमाल की, "कुछ पैकेट अविनाश को दे दो। एकाध मुझे पकड़ा दो।"

"वापस पहुंचने में देर नहीं हो जाएगी ?" छोटी बहन ने दूसरा नुक्ता निकाला, "रिश्तेदारी का मामला है। वे लोग मन में क्या सोचेंगे ?"

"सोचते हैं, सोचते रहें !" बड़ी बहन ने खुद ही पैकेटों का बटवारा शुरू कर दिया, "कल हमें चले जाना है। एक ही शाम तो है हमारे पास।"

फुटपाथ। पेडेस्ट्रियन क्रॉसिंग। डोंट क्रॉस। क्रॉस नाउ।

पैकेट लिए-लिए दो लड़कियों के आगे-पीछे चलना। (लड़कियां—सुविधा के लिए, उन दिनों की याद में) उन दोनों का आगे या पीछे रहना। बीच में आपस में बात करना। हंसना। पमिला का कहना, "दीदी, तुम्हारा जवाब नहीं।" दीदी का मुंह खोले आंखों से मुझसे कॉम्प्लिमेंट चाहना। कहना, "आज शाम कितनी अच्छी है !" मेरा तापमान को याद रखना। खिसियानी हंसी हंसना। बोलने के वक्त चुप रहना, चुप रहने के वक्त बोल पड़ना। हमी की बात में सीरियस रहना, सीरियस बात में मुसकरा देना। सामने से आते परिचितों का मतलब-भरी नज़र से देखना। किसी को आंख मारना, किसी को रोककर पूछ लेना, "मज़े हो रहे हैं, मज़े !"

जाने कैसा-कैसा लगा। जैसे बरसों से वे पैकेट उठाए हों। बरसों से वही फुटपाथ पैरों के नीचे हो। वही पेडेस्ट्रियन क्रॉसिंग सामने हो। डोंट क्रॉस। क्रॉस नाउ। बरसों से वह कह रही हो, "दीदी, तुम्हारा जवाब नहीं।" पास से कोई पूछ रहा हो, "मज़े हो रहे हैं, मज़े ?"

एक मूंगफली वाला इरोज के पास दिखाई दे गया। सरला फेन्स के नीचे से निकलकर सीधी उसकी तरफ चली गई। झपटती हुई जैसे कि उसके भाग जाने का डर हो। दो-एक कार वालों को ब्रेक लगानी पड़ी। एक ने घूरकर मेरी तरफ देख लिया। मैं दम साधे नाक की सीध में चलता रहा। प्रमिला ने चलते-चलते पूछ लिया, "इस तरह खामोश क्यों हो ?"

"खामोश ! नही तो।" कहकर मैं सीटी बजाने लगा।

"हमने तुम्हें बोर तो नही किया ?"

अपने पर गुस्सा आया, क्यों उसे ऐसा महसूस करने दिया ? क्यो नही कुछ न कुछ बात करता रहा ? कितनी ही बार सोचा था कि उनसे कहीं चलकर चाय पीने को कहूं। पर डर था कि पैसे कम न पड़ें। पहले पता होता तो किसी से उधार माग लेता या पहली तारीख को बचाकर रखता। हमेशा जरूरत के वक्त ही पैसे कम पड़ते थे। तब भी तो यही हुआ था। उस दिन ताश में पैसे न हारे होते···

सरला ने मूंगफली लेकर बटुए मे भर ली थी। अब एक-एक दाना निकालकर खा रही थी। बीच-बीच में हम लोगों की तरफ देख लेती थी, जैसे हम लोग रनर्ज़-अप हों। इससे पहले कि हम लोग पास पहुचे, वह अगली सड़क भी क्रॉस कर गई। एलिता-लिया के बाहर खड़ी होकर मूगफली चबाने लगी। जब तक हम वहा आए, वह चर्चगेट के बाहर पहुच गई।

प्रमिला गम्भीर हो गई थी। शायद पैकेटों के बोझ से। गोरी-गदराई बाहे लाल हो आई थी। पलकें भारी लग रही थीं, जैसे नीद आई हो। "अब किधर चलना है ?" सरला के पास पहुंचकर उसने पूछा, जैसे कह रही हो—'क्यो मुझे खामखवाह साथ घसीट रही हो ?'

"बैक होम," सरला ने पटाख से जवाब दिया, जैसे पूछने, बात करने की जरूरत ही नही थी; जैसे यहीं तक लाने के लिए मुझ से पैकेट उठवाए गए थे।

"पैकेट ले लें ?" प्रमिला ने गहरी नज़र से उसे देखा। उसने आंखें झपक दी। साथ ही कहा, "बेचारे को और कितना थकाएगी ?"

मन हुआ कि एकाध पैकेट हाथ से गिर जाने दू, ऐसे कि बड़ी को झुककर उठाना पड़े। पर अचानक शरीर मे झुरझुरी दौड गई। पैकेट लेने-लेने में प्रमिला का हाथ बाह से छू गया था। अच्छा लगा कि आस्तीन चढा रखी थी, वरना झुरझुरी न होती। पैकेट बहुत संभालकर देने की कोशिश की। काफी वक्त लिया कि शायद फिर से उसका हाथ बांह से छू जाए। मगर नही छुआ। इससे आखिरी पैकेट सचमुच हाथ से छूट गया। प्रमिला ने आंखें मूंद ली। जाने उसमें कौन-सी नाज़ुक चीज़ बन्द थी।

गिरा हुआ पैकेट खुद ही उठाना पडा। टटोलकर देखा कि कुछ टूटा तो नही। कोई टूटनेवाली चीज़ नही लगी। शायद कपड़ा था। "आई एम सॉरी," पैकेट उसे देते हुए कहा। सोचा, शायद इस बार हाथ से हाथ छू जाए मगर नही छुआ। वह पैकेट लेकर उस पर से धूल झाड़ने लगी।

"कुछ टूटा तो नही ?" मैंने पूछा।

उसने सिर हिला दिया, जैसे टूटने पर भी शराफत के मारे इन्कार कर रही हो। फिर पैकेट को बच्चे की तरह छाती से चिपका लिया। मन हुआ कि मैं भी दो उंगलियों से उसे बच्चे की तरह सहला दूं। पुचकारकर कहूं, "क्यो बबलू, चोट तो नही लगी ?"

"चलें ?" प्रमिला ने बड़ी की तरफ देखा। बड़ी ने कलाई की घड़ी की तरफ देखा। फिर स्टेशन की घड़ी की तरफ देखा। फिर मैरीन ड्राइव से आती गाड़ियों पर

नजर डाली। फिर सांस भरकर तैयार हो गई। "आओ, चलें।"

कुछ सेकण्ड और गुजर गए। इस दुविधा में कि पहले कौन चले, वे खामोश मुझे देखती रहीं। मैं उन्हें देखता रहा। अचानक बड़ी मुड़कर अन्दर को चल दी। "हाय, फास्ट गाडी जा रही है," उसने लगभग दौड़ते हुए कहा।

छोटी ने चलते-चलते एक बार और देख लिया। आंखें हिलाईं। हाथों को जोड़ने के ढंग से जुम्बिश दी। होंठों को कुछ कहने के ढंग से हिलाया। उसके बाद इस तरह घिसटती हुई चली गई, जैसे चलाने वाली बिजली बड़ी के पैरों में हो।

कुछ देर वहीं खड़ा रहा। गाड़ी को जाते देखता रहा। फिर अपनी नंगी बांह को सहलाता हुआ बस-स्टॉप पर आ गया।

पहली बस मिस कर दी। दूसरी भी मिस कर दी। तीसरी मिस नहीं कर सका, क्योंकि स्टॉप पर अकेला रह गया था। दो सेकण्ड सोचता रहा। इससे कण्डक्टर नाराज़ हो गया। फुटबोर्ड पर पांव रखा, तो उसने डांट दिया, "नहीं जाना मंगता तो इदर ही खड़ा रहो न! बहुत अच्छा-अच्छा शकल देखने को मिलता है।" मुझ पर कोई असर नहीं हुआ तो वह बिना टिकट दिए आगे चला गया। वहां से बार-बार मुड़कर देखता रहा, जैसे सोचता हो कि मैं उसे मनाने जाऊंगा।

एक लड़की के पास जगह खाली थी। मन हुआ बैठ जाऊं, मगर खड़ा रहा, उसे देखता रहा। लड़की बुरी नहीं थी। खामी अच्छी थी। बाहें ज़रा दुबली थीं, बस। शायद स्लीवलेस ब्लाउज़ की वजह से लगती थीं। लोकट और स्लीवलेस। उन दिनों प्रमिला भी ऐसे ही कपड़े पहनती थी। लोकट और स्लीवलेस। बांहें उसकी ऐसी दुबली नहीं थीं। रोयें भी उन पर इतने नहीं थे। खामख्वाह मसल देने को मन होता था। उसमें एक बार कहा भी था। वह सिर्फ अपना होंठ काटकर रह गई थी।

कण्डक्टर से नहीं रहा गया। खुद ही टिकट देने चला आया। उम्मीद अब भी थी उसे कि मैं माफी मांगूंगा, या कम से कम मुसकरा दूंगा। मगर मैं मुसकरा नहीं सका। होंठ बहुत खुश्क थे। कण्डक्टर ने अपना गुस्सा टिकट पर निकाल लिया। इतने ज़ोर से पंच किया कि उसका हुलिया बिगड़ गया

घर से एक स्टॉप पहले, मेट्रो के पास उतर गया। सोचा, रात के शो का टिकट खरीद लूं। टिकट मिल रहे थे मगर तीन-पचास के। एक-पिचहत्तर के बाहर 'सोल्ड आउट' का बोर्ड लगा। तीन-पचास गिनकर जेब से निकाले, फिर वापस रख दिए। उस क्लास में कभी गया नहीं था। दो मिनट क्यू में खड़ा रहकर लौट आया।

हवा थी। गर्मी भी थी। सामने गिरगांव की सड़क थी। आसानी से क्रॉस कर सकता था। मगर घर आने को मन नहीं था। खाना खाने जाने को भी मन नहीं था। न ईरानी के यहां, न गुजराती के यहां, न ब्रजवासी के यहां। रोज तीनों जगह बदल-बदल कर खाता था। एक का जायका दूसरे के जायके से दब जाता था। पैसे अदा करने में सहूलियत रहती थी। चेहरे भी नये-नये देखने को मिल जाते थे। शिकायत भी तीनों से की जा सकती थी।

मगर तीनों जगह जाने को मन नहीं हुआ। कहीं और जाकर खाने को भी मन नहीं हुआ। भूख थी। दिनों बाद ऐसी भूख लगी थी। मगर जाने, बैठने और खाने को मन नहीं हुआ। अपने पर गुस्सा आया। कितनी बार सोचा था कि मक्खन-डबल रोटी घर में रखा करूं। तरकारी-अरकारी भी वहीं बना लिया करूं। मगर सोचने-सोचने में सात साल निकल गए थे।

सोचा, घर ही चलना चाहिए, पर कदम ही नहीं उठे। अंधेरे जीने का खयाल

आया। एक के बाद एक—पांच माले। पहले माले पर भारी बिल्डिंग की सड़ांध। दूसरे पर खोपड़े की बास। तीसरे पर कूठ और अनारदाने की बू। चौथे पर आयुर्वेदिक औषधियों की गंध।

पांचवें माले की बू का ठीक पता नहीं चलता था। प्रमिला ने तब कहा था कि सबसे तेज बू यही है। सरला इससे सहमत नहीं थी। उसका कहना था कि सबसे तेज़ गन्ध आयुर्वेदिक औषधियों की है।

कितनी ही देर वहां खड़ा रहा। सब जगहों का सोच लिया कि कहां-कहां जाया जा सकता है। कहीं जाने को मन नहीं हुआ। लगा कि सभी जगह बेगानापन महसूस होगा। पुरी देखकर कहेगा, "आओ, आओ। और दस मिनट न आते, तो हम लोग खाना खाकर घूमने निकल गए होते।" भटनागर शायद अन्दर से आखें मलता हुआ निकले और कहे, "अरे, तुम, इस वक्त? खैरियत तो है?"

सड़क पार कर ली। गिरगाव के फुटपाथ पर आ गया। प्रिंसेज़ स्ट्रीट के क्रॉसिंग पर कुछ देर रुका रहा, फिर आगे चल दिया।

ईरानी के यहां से मक्खन और डबल रोटी ले ली। बिस्कुटों का एक पैकेट भी खरीद लिया। कुछ रास्ता चलकर याद आया कि सिगरेट जेब में नहीं है। पनवाड़ी के यहां से दो डिबियां चारमीनार की ले लीं। फिर इस तरह आगे चला जैसे घर पर मेहमान आए हों, जाकर उनकी खातिरदारी करनी हो।

सीढ़ियां गिनी हुई थीं फिर भी गिनता हुआ चढ़ने लगा, जैसे फिर से गिनने में फर्क आ सकता हो। संख्या एक सौ बीस से सोलह-सत्रह पर लाई जा सकती हो। मगर चौबीस तक गिनकर मन ऊब गया। दूसरे माले से गिनना छोड़ दिया।

उस दिन यहीं तक आकर प्रमिला ऊब गई थी। "अभी और कितने माले चढ़ना है?" उसने पूछा था।

"तीन माले और हैं," वह हिम्मत न हार दे, इसलिए एक माले का झूठ बोल दिया था। खुद जल्दी-जल्दी चढ़ने लगा था कि तीसरे माले से पहले और बात न हो। हाथों में चीज़ों को संभालना मुश्किल लग रहा था। खाने-पीने का कितना ही सामान साथ लाया था—बिस्कुट, भुजिया, अण्डे, चिउड़ा। वहां चाय पीने का सुझाव सरला का था। "इस तरह तुम्हारा फ्लैट भी देख लेंगे," उसने कहा था।

प्रमिला शुरू से ही इस बात से खुश नहीं थी। वह पिक्चर देखना चाहती थी—हैमलेट। एक दिन पहले मैं उनसे यही कहकर आया था। खुद ही उसने 'हैमलेट' की तारीफ की थी। पचासेक रुपये एक दोस्त से उधार ले लिए थे, मगर चालीस से ज्यादा उनके यहां ताश में हार गया था—उनके भाई के पास, जोकि इस बीच सत्ती से सतीश हो गया था। शर्मा के यहां वे लोग ठहरे थे। उसी ने उनसे परिचय कराया था। वह उस वक्त घर पर नहीं था। शाम की ड्यूटी पर गया था। वह होता तो और दस-बीस उधार ले लेता। जब उन दोनों को साथ लेकर निकला, जेब में कुल छः रुपये बाकी थे।

उनके साथ ट्रेन में आते हुए कई-कई बातें सोचीं कि कह दूं, भीड़ में किसी ने जेब काट ली है या किसी तरह पैर में मोच ने आऊं या आठ बजे का कोई अपाइंटमेंट बता दूं, पर कहते वक्त जो बात कही वह ज्यादा वजनदार नहीं थी। कहा कि पिक्चर में बहुत रश है, आने वाले पूरे हफ्ते की सीटें बुक हो चुकी हैं।

प्रमिला को यही बुरा लग गया। वह एकाएक खामोश हो गई। सरला मुसकरा दी, "अच्छा ही है," उसने कहा, "तुम आज इतने पैसे हारे भी तो हो।"

इस बात ने काफी देर के लिए मुझे भी खामोश कर दिया।

तीसरे माले तक आते-आते प्रमिला हांफने लगी थी। आंखों में खास तरह की शिकायत थी। जैसे कह रही हो, 'पिक्चर नहीं चल सकते थे, तो यहां लाने की बात भी क्या टाली नहीं जा सकती थी?' सरला आगे-आगे जा रही थी और बार-बार उसकी तरफ देखकर हंस देती थी।

चौथे माले से पांचवें माले की सीढ़ी पर मैंने कदम रखा, तो प्रमिला जहां की तहां ठिठक गई।

"अभी और ऊपर जाना है?" उसने पूछा। मुझे अपने झूठ पर अफसोस हुआ।

"यह आखिरी माला है," मैंने कहा। सरला एक बार फिर हंस दी। प्रमिला की आंखों में रंगीन डोरे उभर आए। "कैसी जगह है यह रहने के लिए!" उसने बुदबुदाकर कहा और सरला की तरफ देख लिया, इस तरह जैसे सरला की बात अपने मुंह से कह दी हो।

ऊपर पहुंचकर दरवाज़ा खोला, बत्ती जलाई। सब समान बिखरा पड़ा था, उससे कहीं बुरी हालत में जैसे उन लोगों के आने के दिन पड़ा था। उस दिन तो कुछ चीज़ें फिर भी ठीक-ठिकाने से रखी थीं।

जल्दी-जल्दी उन लोगों के लिए चाय बनाने लगा था। सरला घूमकर कमरे की चीज़ों को देखती रही थी। "यह पलंग कब का है। मराठों के ज़माने का?... पढ़ने की मेज पर वह क्या चीज़ रखी है? साबुन की टिकिया? मैंने समझा पेपरवेट है..."

प्रमिला सारा वक्त खामोश खिड़की के पास खड़ी रही थी।

लौटने से पहले सरला दो मिनट के लिए गुसलखाने में गई, तो प्रमिला ने पहली बात कही, "टिकटों का पता पहले से नहीं कर सकते थे?"

कुछ जवाब देते नहीं बना। हारी हुई नज़र से उसकी तरफ देखता रहा। उसने फिर कहा, "मैं अपने लिए नहीं कह रही थी। वह पहले ही कितना कुछ कहती रहती है। अब घर जाकर पता है, क्या-क्या बातें बनाएगी?"

"मुझे इसका पता होता तो..."

"पता होना चाहिए था न!" उसका स्वर तीखा हो गया, "ज़रा-सी बात के लिए अब..."

तभी सरला गुसलखाने से आ गई। हंसते हुए उसने कहा, "यह गुसलखाना तो अच्छा-खासा अजायबघर है। मैं तो समझती हूं कि अन्दर जानेवालों से एक आना -टिकट वसूल किया जा सकता है..."

और प्रमिला हम दोनों से पहले बाहर निकलकर जीने पर पहुंच गई थी।

मैंने मक्खन, डबलरोटी और बिस्कुट का डिब्बा मेज़ पर रख दिया। कुछ देर चुपचाप पलंग पर बैठा रहा, फिर शेल्फ से एक पुरानी किताब निकाल लाया। बहुत दिन उस किताब को सिरहाने रखकर सोया करता था। किताब प्रमिला से ली थी। उन्हीं दिनों एक बार उनके यहां से ले आया था। इसलिए नहीं कि पढ़ने का खास शौक था, बल्कि इसलिए कि अंदर प्रमिला का एक फोटो रखा नज़र आ गया था। प्रमिला जानती थी। जब किताब लेकर चला, तो वह मेरी आंखों में देखकर मुसकरा दी थी। तब परिचय शुरू-शुरू का था। वह अक्सर इस तरह मुसकराया करती थी।

बाद में किताब लौटाने गया था। तब पता चला कि वे लोग दो दिन पहले जा चुके थे।

उस दिन कितना-कुछ सोचकर गया था कि उससे उस दिन के लिए माफी मागूगा। कहूंगा कि अब फिर किसी दिन जरूर वे मेरे साथ पिक्चर का प्रोग्राम बनाएं ··

उस दिन अपने कमरे को भी अच्छी तरह ठीक करके गया था। यह सोचा भी नही था कि वे लोग इतनी जल्दी वापस चले जाएगे।

उनके आने से पहले ही शर्मा ने बात चलाई थी। कहा था कि देखकर बताऊं मुझे वह लडकी कैसी लगती है। यह भी कि वे लोग जल्दी ही शादी करना चाहते हैं।

बाद मे उसने नही पूछा कि वह मुझे कैसी लगी। कभी उन लोगों का जिक्र ही नही किया।

किताब खोली। पुरानी फटी हुई किताब थी, पॉकेट-बुक सीरीज की। एक-एक वर्क अलग हो रहा था। वह फोटो अब भी वही था—चौवन और पचपन सफे के बीच। देखकर लगा, जैसे अब भी वह उसी नजर से देख रही हो, उसी तरह कह रही हो। "पिक्चर नही चल सकते थे, तो यहा लाने की बात भी क्या टाली नही जा सकती थी ?"

फोटो हाथ मे लेकर देखता रहा। फिर वही रखकर किताब बन्द कर दी। उसे पलंग पर छोडकर उठ खडा हुआ। फिर पलग से उठाकर मेज पर रख दिया और खिड़की के पास चला गया। बाहर वही छतें थी, वही सूखते हुए कपड़े, वही टूटी-फूटी बच्चो की गाड़ियां, पुरानी कुर्सियां, कनस्तर, बोतलें···

लौटकर कुर्सी पर आ गया। कितनी ही देर बैठा रहा। फिर एकाएक उठकर किताब को हाथ मे ले लिया। फिर वही रख दिया। अन्दर जाकर छुरी ले आया और डबलरोटी से स्लाइस काटने लगा। फिर आधे कटे स्लाइस को वैसे ही छोडकर खिड़की के पास चला गया था। वहां से, जैसे उसकी नजर से, कितनी देर, कितनी ही देर, अपने को और अपने कमरे को देखता रहा, देखता रहा।

पहचान

क्लास मे रोल-काल ली जा रही थी—साधना मेहरा···किशोर सेठी···विक्रम शर्मा··· केशव ठकराल···विनीता त्यागी···।

शिवजीत के हाथ में उसकी पेंसिल कांप रही थी। फिर भी कापी के हाशिये पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खिचती जा रही थी···कई तरह के बेडौल चेहरे बनाती लकीरें। मिस मैथ्यू के मुंह से सुनाई देता हर नाम जैसे हवा मे उड़ता आकर उसके कानों में धंस जाता था। अरुण अरोड़ा···मनोहर खन्ना···रोहिणी दासगुप्ता···विकास आनन्द···माधवी सक्सेना···। उसे लग रहा था जैसे उसके घुटने आपस मे जुड़ गए हो और पैर जमीन से ऊपर उठे आ रहे हों। पैरों को जैसे कोशिश से जमीन पर टिकाए हुए उसने घुटनो को अलग-अलग करके थोड़ा हिला लिया।···विभूति श्रीवास्तव, मंगल तनेजा···इसके बाद ही वह नाम था जिससे वह बचना चाहता था···शिवजीत अवरोल।

उसकी पेंसिल अपनी जगह पर कस गई। पलकें भारी हो उठी। हल्के बुदबुदाने के स्वर में उसने कहा, "प्रेजेंट" और रोल-काल आगे बढ गई। लेकिन इस बीच मिस मैथ्यू की आखें पल-भर उसके चेहरे पर रुकी रही। इससे उसके नाम और अगले नाम··· नीलिमा भारद्वाज···के बीच हल्का वकफा पड़ गया जिसे मिस मैथ्यू ने अपने होंटों पर

जबान फेरकर भर लिया। उस वक्फे मे आसपास से कई आखें आधी-पौनी उसकी तरफ घूम गईं। कुछ आखें सिर्फ एक-दूसरी की तरफ घूमकर हल्की मुसकराहटो के बाद फिर सीधी हो गईं। नीलिमा भारद्वाज को अपना नाम बुलाए जाने का एहसास तुरन्त नही हुआ। पर इससे पहले कि मिस मैथ्यू अगला नाम बुलाती, वह झटके के साथ बोल उठी, "प्रेज़ेंट, मिस !"

रजिस्टर बन्द करके मिस मैथ्यू ने किताब खोल ली। शिवजीत ने भी वह पन्ना खोलकर सामने रख लिया जहा से उन्हे पढाई करनी थी। मिस मैथ्यू की चीखती हुई पतली आवाज़ कमरे मे गूजने लगी। शिवजीत ने कई बार कोशिश की कि सामने के शब्दो के साथ उस आवाज़ का सम्बन्ध जोडता चल सके। लेकिन छपे हुए शब्द उसे सिर्फ स्याही के छोटे-छोटे दाग नज़र आ रहे थे और मिस मैथ्यू की आवाज़ लग रही थी जैसे वह छत के पखे की 'हिचकू-हिचकू' और बाहर लॉन मे चिरती लकड़ी की 'सी-सा सी-सा' का ही एक हिस्सा हो। हाज़िरी का जवाब देने के बाद से उसके कान काफी सुर्ख हो गए थे। उस सुर्खी की आच उसे अपने गालो पर फैलती महसूस हो रही थी। पीठ और गरदन की गाठ पर जैसे छिपकली चिपक गई थी। उसने दो-एक बार गरदन ऊची करके उस छिपकली को झाड देने की कोशिश की। मगर इससे उसे लगा जैसे छिपकली गाठ के अन्दर धसती जा रही हो। वह आखें झपकता हुआ कुछ देर मिस मैथ्यू की तरफ देखता रहा, फिर किताब कुहनियो के बीच रखकर चेहरा हाथो पर टिकाए सामने के उलझे हुए शब्दो को अलग-अलग करने की कोशिश करने लगा।

शिवजीत अबरोल···।

उसके दिमाग में रोल-काल अब तक चल रही थी। यह रोल-काल हर बार विभूति श्रीवास्तव से शुरू होती थी और नीलिमा भारद्वाज पर आकर समाप्त हो जाती थी। हर बार शिवजीत अबरोल पर आकर मिस मैथ्यू की आखें पल-भर उसके चेहरे पर अटकी रहती थी। हर बार नीलिमा भारद्वाज मुसकराहटो के हल्के वकफे के बाद एक झटके के साथ कहती थी, "प्रेज़ेंट, मिस !" उसके बाद दो-तीन नाम और लेकर मिस मैथ्यू रजिस्टर बन्द कर देती थी, फिर खोल लेती थी, और रोल-काल नये सिरे से शुरू हो जाती थी—विभूति श्रीवास्तव···मंगल तनेजा···।

छह-सात दिन पहले तक मगल तनेजा के बाद जो नाम आता था, वह था··· 'शिवजीत सचदेव। मिस मैथ्यू बिना रुके सब नाम बोलती जाती थी। वह बिना सोचे जवाब दे देता था, "प्रेज़ेंट।" मगर उस दिन पहली बार मिस मैथ्यू ने शिवजीत सचदेव की जगह शिवजीत अबरोल का नाम लिया, तो सारी क्लास मे एक भिनभिनाहट दौड गई थी। मिस मैथ्यू की ज़बान सचदेव बोलते-बोलते अटककर अबरोल कह पाई थी। वह जानता था उस दिन से उसे इस नाम से बुलाया जाएगा मगर उस वक्त उसे कुछ ऐसे लगा था जैसे भरी क्लास मे उसकी नेकर उतारकर उसे नगा खडा कर दिया गया हो। मिस मैथ्यु ने उस दिन उसके 'प्रेज़ेंट' कहने का इंतज़ार नही किया था। चुपचाप उसकी हाज़िरी लगाकर आगे बढ गई थी।

उसकी पेंसिल अब किताब के शब्दो के गिर्द दायरे बना रही थी। सो, सिट, स्टिल, सेफ। उसकी आखें और ऐसे शब्द ढूढ रही थी जो एस् से शुरू होते हो। सेम, सोर, साइड, साल्ट। जब पूरे पन्ने पर और ऐसा कोई शब्द नही रह गया तो वह हर एस् की गोलाइयो को अन्दर से भरने लगा।

शिवजीत सचदेव···ये शब्द पहले कभी उसके मन मे अलग-अलग नही हुए थे। शिवजीत का मतलब था सचदेव, सचदेव का मतलब शिवजीत। साथ-साथ इन दोनों का

मतलब वह सब जो कि वह था···एक लड़का, उम्र ग्यारह साल तीन महीने, रंग गोरा, कद चार फुट चार इंच, चेहरा गोल, जिस्म भारी, हर वार्षिक परीक्षा मे पहला, दूसरा या तीसरा, दाए हाथ पर एग्ज़ीमा, मसाना एक तरफ से भारी जिसके कारण उसे हार्निया की पेटी बांधनी पड़ती थी, खेल-कूद से माफ। घर में ममी शिव, शिवी, जीत और जीती कहकर बुलाती थी। स्कूल में नाम चलता था सचदेव। शिवजीत सचदेव अर्थात् 'वह' अर्थात् 'मैं'। लेकिन अब ?

शब्द उसके सामने से गायब हो गए थे। जिस मैथ्यू की आवाज भी जैसे दूर से सुनाई दे रही थी। हिचकू-हिचकू-हिचकू। सी-सा सी-सा सी-सा। घर का बेडरूम। दो बिस्तर। एक पर वह। दूसरे पर ममी। वह सो गया है। सोया नही, सोने का बहाना कर रहा है। अभी ममी उसे सोया जानकर उठने लगेगी, तो वह गले से हल्की-सी आवाज़ पैदा करेगा। ममी उकताए स्वर मे डांटेगी, "तू अभी सोया नही न ?" वह खिलखिलाकर हंसेगा-और उठकर ममी के पेट से नाक रगड़ने लगेगा। "नही सोया, नही सोया, नही सोया।" ममी हताश-सी फिर उसके पास लेट जाएगी। वह ममी का हाथ पकड़े इस बार सचमुच सो जाएगा··

···बाहर के कमरे से कुछ लोगों की मिली-जुली आवाजें आ रही है। ममी के साथ उन लोगों का किसी बात पर झगड़ा हो रहा है। झगड़े में बार-बार उसका नाम आ जाता है। झगडने वालो में एक आदमी वह भी है···पापा। उस आदमी से वह दिल्ली जाने पर मिला करता है। वह उसे अपने साथ घुमाने ले जाता है। कभी चिड़ियाघर मे, कभी शकर के गुडियाघर में। उसे किताबें और खिलौने खरीद देता है। फिर उसे 'चाचा जी' के घर के बाहर छोड जाता है जहां वह ममी के साथ ठहरा होता है। पर आज वह आदमी पहली बार मसूरी में उनके यहां आया है। ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा है। कह रहा है वह शिवजीत को अपने साथ लेकर जाएगा। वह नही समझ पा रहा कि इसमें एतराज़ की कौन-सी बात है। पापा के साथ जाएंगे, तो शकर का गुड़ियाघर देखेंगे। पनीर के सैंडविच खाएंगे। आंटी पूछेगी, "तू अब किस क्लास में पढ़ता है, शिवजीत ?" फिर कहेगी, "देखो, यह लड़का किस तरह शरमाता है !" वह पापा का हाथ कसकर और आंटी का हाथ हल्के थामे हुए दोनों के बीच चलता रहेगा। फिर उसके जन्मदिन पर एक पार्सल आएगा। कैमरा या ट्रांज़िस्टर। ममी कहेगी, "रख दे अलमारी में। तेरे पास अपने वाला ट्रांज़िस्टर तो है ही।" वह ममी के सामने ममी वाला ट्रांज़िस्टर चलाएगा। सोम मामा का लाया हुआ। ममी की गैरहाज़िरी में कभी-कभी पापा वाला ट्रांज़िस्टर भी चला लेगा···मगर ममी तो कह रही है, वह पापा के साथ जाने ही नही देगी। कभी नही जाने देगी। तो अब पापा के साथ जाकर शंकर का गुड़ियाघर कभी नही देखेंगे ? ··

···ममी तमतमाई हुई बाहर से आती है। "तुझ से कहा था बाहर जाकर खेल, तू अब तक यही क्यो खड़ा है ?" उसका खेलने को मन नहीं है। कही जाने को मन नही है। लेकिन वह चुपचाप बाहर चला जाएगा। एक कबूतर पकड़कर उसके पैर में डोर बांधने की कोशिश करेगा। फिर उस कबूतर को उड़ाएगा। घर लौटने तक झगडा करने वाले जा चुके होंगे। घर खाली होगा। ममी भी नही होगी। चादराम दूध का गिलास लिए-लिए उसके पीछे-पीछे घूमेगा। "दूध पी ले, बाबा !" लेकिन वह दूध नहीं पिएगा। ट्रांज़िस्टर सुनेगा। चादराम दूध पिलाने की जिद करेगा, तो वह हाथ मारकर दूध का गिलास उलटा देगा। चादराम उसे चपत दिखाएगा। वह उसके हाथ पर काट लेगा। फिर ट्रांज़िस्टर बगल मे लिए मुंह ढककर बिस्तर पर पड़ जाएगा···

···एक बन्द कमरा। अरोल अंकल के घर का। अरोल आंटी के मरने के बाद

से ममी हर शाम वही बिताती है। बन्द दरवाज़े पर बाहर से खट्-खट्। "ममी, दरवाज़ा क्यो नही खोलती ?" अन्दर से अबरोल अकल की आवाज़, "अभी बाहर खेल शिवजीत, तेरी ममी सो गई है कुछ देर के लिए।" वह चुपचाप खेलता रहेगा, मगर दरवाज़े के पास से नही हटेगा। ममी सो रही है, तो भी दरवाज़ा बन्द क्यों है ? वह तो रोज़ ममी के पास सोता है ··रात को। फिर इस समय क्यों वह ममी के पास नही जा सकता ? थोड़ी देर मे दरवाज़ा खुलेगा। अबरोल अकल मुसकराते हुए बाहर आकर ठण्डे हाथो से उसके गाल सहलाएगे। "आ रही है अभी तेरी ममी बाहर।" थोडी देर में ममी बाहर आएगी। पर ऐसे नही जैसे नीद से उठी हो। होठो पर ताजा लिपिस्टिक। बाल जैसे अभी-अभी बाधे गए। अबरोल अकल से कहेगी, "इसके लिए वे लाने हैं जाकर···बाइनाक्युलर्ज किसी दिन कितने दिनो से माग रहा है। इसके पास है पहले···वहा से आए हुए··· पर पाच-छह साल के बच्चो लायक है वे ·।" अबरोल अंकल खांसेंगे। उसके गालो को फिर ठण्डे हाथो से छुएगे। कहेगे, मैं लेता आऊगा किसी दिन बाजार जाऊंगा, तो···।"

···मसाने पर पेशाब का दबाव। पर अभी पेशाब रोके रहेगा। घर आकर करेगा। यह घर अबरोल अकल का है। उनके बच्चो मे से कोई देख लेगा कि उसने हार्निया की पेटी बाध रखी है, तो ? ममी कब से कहती है, "तेरा आपरेशन कराना है।" पापा भी हर बार दिल्ली मे कहते थे "तेरा आपरेशन बम्बई चलकर कराएगे···तू लिखना मुझे किन दिनों बम्बई चल सकता है दस-पद्रह रोज़ के लिए।" वह कहता था, "आप ममी को लिखकर पूछ लें।" पर पापा ममी को नही लिखते थे। ममी पापा को नही लिखती थी। सिर्फ पेटी बाधती हुई कह देती थी, "तेरा आपरेशन कराना है कभी चल-कर।" स्कूल मे भी वह इसी वजह से पेशाब रोके रहता था। अगर लडको ने उसकी पेटी देख ली, तो ? घर आते ही दौडता हुआ बाथ-रूम जाता था। अब भी ममी जल्दी चले, तो किसी तरह घर पहुचते ही बाथरूम की तरफ भागेगे। कही ऐसा न हो कि बाथ-रूम के बाहर ही पेशाब निकल जाए जैसा कि उस दिन हुआ था।···कही यह भी न हो कि ममी यहा अबरोल अकल को वह सब बताने लगे। "इसके पापा के ताया जी को भी थी यह बीमारी, चाचा को भी···खानदानी है इन लोगो में यह।" अगर ममी ने शुरू की कहनी यह बात, तो वह ज़बर्दस्ती उसका मुह बन्द कर देगा। किसी के सामने यह बात नही कहने देगा ··

···लदता सामान। चांदराम चेहरा लटकाए कुलियो-मज़दूरो से धीमे स्वर मे बात करता हुआ। "हम तो कब से देख रहे थे। अब खुलेआम हो गया है बस।" चादराम की नौकरी छुडा दी गई है। वह कल-परसो अपने गाव चला जाएगा। वे लोग भी अब स्कूल के क्वार्टर मे नही रहेगे। अबरोल अकल से घर चले जाएगे। "अबरोल अंकल नही···अब से वे पापा हैं तुम्हारे।" उसे पहले से अन्देशा है कि उससे ऐसा कहने को कहा जाएगा। अरुण कपूर दो-तीन दिन से स्कूल मे उससे पूछ रहा था, सब लड़के-लड़कियो के सामने, "क्यो शिवजीत, डाक्टर अबरोल, एम० बी० बी० एस० क्या लगते हैं तुम्हारे ?" उस दिन से ही जिस दिन से ममी ने स्कूल से छुट्टी ले रखी थी। एक दिन उसने कहा था, अकल लगते हैं वे मेरे।" दूसरे दिन दात चिचकाए थे। तीसरे दिन रो दिया था। अब उनका सामान भी अबरोल अंकल के घर चला जाएगा, तो अरुण स्कूल मे फिर पूछेगा। इस बार वह उसके बाल नोच लेगा···

···दो बिस्तर। पर एक ममी। दूसरे पर अबरोल अंकल। "अबरोल अकल नही···" उसके और अबरोल अकल के बीच ममी एक बीमार की तरह लेटी है। उसे तेज पेशाब लग रहा है, पर उसका कहने का हौसला नही हो रहा। अबरोल अंकल अपनी

तरफ से बहुत आहिस्ता बात कर रहे हैं, शब्दों को गडमडाते हुए—"अब भी साथ सोया करेगा यह ? इतना बडा हो गया है, इसे अकेले सोना चाहिए। और भी तो चारों बच्चे अलग कमरे में सोते हैं।" ममी भी उतने ही आहिस्ता बात करती है। "इसे नहीं सुला सकती अकेला। रात को सोए-सोए अब भी इसका पेशाब निकल जाता है।" वह अपना पेशाब और भी कसकर रोक लेता है। *अब चाहे जो हो जाए, वह रात को बिस्तर में पेशाब नहीं निकलने देगा।* कल से खुद ही ममी से कहकर दूसरे कमरे में सो जाएगा। अबरोल अंकल और उनके बच्चों के सामने कभी पेटी नहीं बदलेगा। ममी से कह देगा कि किसी को उसकी पेटी की बात न बतलाए···

···जीना। उसे ऊपर से नीचे चले आने को कहा गया है। पर वह आधा जीना उतरकर वहीं बैठ गया है। ममी स्कूल से एक चिट्ठी लेकर आई है। ऐसे हो रही है जैसे चार मील की रिले-रेस दौड़कर आई हो। अबरोल अंकल ने चुपचाप चिट्ठी पढ ली है और उसे कमरे से भेज दिया है। चलते-चलते उसने ममी को सिर्फ इतना कहते सुना है. "मैं उस आदमी को इसे किसी हालत मे नहीं ले जाने दूंगी। कानून-आनून मैं कुछ नहीं जानती। ग्यारह साल मैंने इसे पाला है···।" उसे पता है कि उसे जीने में बैठे देख लिया गया, तो उसे ज़ोर की डाट पडेगी। आजकल बहुत-सी बातें होती हैं जो उसे *नहीं सुननी चाहिए।* कितनी बार उसे कमरे से भेज दिया जाता है। फिर भी बहुत कुछ उसने सुन लिया है। पापा उसे अपने साथ दिल्ली ले जाना चाहते हैं। लिखते हैं वे मसूरी उसे लेने आएंगे। *उन्हें अब तक पता ही नहीं है कि उसका नाम स्कूल के रजिस्टर में* शिवजीत सचदेव से बदलकर शिवजीत अबरोल करा दिया गया है। तो अब वह असल मे क्या है? सचदेव या अबरोल ? या दोनों ही नहीं ?···और पापा आएगे, तो क्या आंटी भी उनके साथ आएगी ? अगर पापा आए, और वह उनके साथ चला जाए, तो आंटी को भी पेटी का पता चल जाएगा। इसीलिए तो पापा के यहां जाकर भी वह अपना पेशाब रोके रहता था। अगर वहां जाकर रहना पडा, तो रोज़ रात को चादर कैसे बदला करेगा ?···

···सड़क। इतने दिनों मे पहली बार ममी उसके साथ अकेली बाहर निकली है। अबरोल अंकल के साथ उसकी काफी देर बात होती रही है। "तू उनके बच्चों के साथ घुलता-मिलता क्यों नहीं ? ' वे तुझे इतना प्यार करते हैं।" वह चुपचाप रहता है। सुखदेव अबरोल उससे तीन साल बड़ा है···जब भी उसे अकेला पाता है, उसे घूरकर *देखता है। बाकी तीनों ··नीना, मीना और बसन्त उससे अलग-थलग बडे भाई से खुसर-*पुसर बातें करते हैं। साथ खेलने के लिए बुलाते हैं जैसे किसी मेहमान को साथ खाना खाने के लिए कह रहे हो। वह चाहे भी तो उनके साथ नहीं घुल-मिल सकता। और वह चाहता भी नहीं। लेकिन वह ममी को यह सब नहीं बताएगा। यह भी नहीं कि वह अब *स्कूल से भागता हुआ घर इसलिए नहीं आता कि स्कूल से पेशाब करके घर के लिए* चलता है। अरुण और दूसरे लडकों को पता चल गया है पेटी का···उसने खुद ही उन्हें बता दिया है। और भी जिस-जिसको पता चलना होगा, उसे वह खुद ही बता देगा। "मुझे हार्निया है, मेरा आपरेशन होने वाला है।" पर ममी से न कुछ कहेगा, न किसी चीज़ के लिए ज़िद करेगा। "तेरे पापा इतना कहते रहते हैं कि यह इतना चुप्पा क्यों होता जा रहा है ?" पापा ?···कौन ? महेन्द्र सचदेव ··या डा० हरदेव अबरोल !

"शिवजीत।" मिस मैप्यू उसके पास आ गई थी। सामने का *पन्ना तब तक* उसने पैंसिल से स्याह कर दिया था। लकीरों में उलझी लकीरें। अधिकांश अक्षरों की गोलाइयां और तिकोन अन्दर से भरे हुए। 'यह क्या कर रहे हो तुम ?"

उसने मिस मैप्यू की तरफ देखा। मज़ा से डरती नज़र से मुंह से कुछ कहना

चाहा, मगर कह नही सका। सिर्फ देखता रहा।

"तुम्हारी तबीयत ठीक है ?"

"नही मिस।"

"तो तुमने कहा क्यो नही ? अच्छा है आधे दिन की छुट्टी लेकर घर चले आओ।" सारी क्लास उसकी तरफ देख रही थी। वह किताबें समेटता उठ खड़ा हुआ।

"जाऊं मिस ?"

"हां। कल तबीयत ठीक हो, तो आना। नही तो अर्जी भेज देना।"

वह क्लास-रूम से बाहर निकल आया। बाहर बरामदे या लॉन मे कोई नही था···सिवा उन मजदूरो के जो नई इमारत के लिए लकड़ी चीर रहे थे। सी-सा सी-सा सी-सा। स्कूल इतना सुनसान और अकेला उसे कभी नही लगा था। वह बरामदे मे उतर कर लॉन मे आ गया। लकड़ी का बुरादा चारो तरफ बिखर रहा था। वह उसमें पैरो के गाढ़े-गाढ़े निशान बनाता कुछ कदम चलता रहा। फिर स्कूल की घण्टी के पास रुककर पीतल की चकली मे अपना अक्स देखता रहा। जब स्कूल के लोहे के गेट की गोल नाली उसने पार की, तो सामने की सडक उसे बहुत ठण्डी महसूस हुई। घर वहां से दो फ़ॉलंग पर था, फिर भी उसे लगा कि अभी काफी लम्बा रास्ता चलकर उसे जाना है। सात-आठ दिन से वह उस रास्ते से जा रहा था, पर अब तक उसे इसकी आदत नही हुई थी। पहले स्कूल के पिछले अहाते में ही उसका क्वार्टर था, स्कूल से निकलने ही वहा पहुच जाता था। ममी उसमे डेढ घण्टा बाद स्कूल से आती थी, इसलिए सारा घर उसे अपना अकेले का लगता था। चादराम भी सिर्फ उसी के लिए वहा होता था। मगर इन दिनो ममी स्कूल आती ही नही थी और उसके घर पहुंचने से पहले ही नीना और मीना वहा आ चुकी होती थी। सुखदेव और वसन्त एक घण्टा बाद आते थे। घर काफी खुला था··· मगर वह वहा पहुचते ही किताबें पटककर ट्राजिस्टर बजाना शुरू नहीं कर सकता था। ममी का कहना था, उसे स्कूल से आकर बच्चों के साथ 'खेलना' चाहिए और वह 'खेलने' की उदासी लिए हुए ही घर मे दाखिल होता था। यू भी अबरोल अंकल की डिस्पेंसरी घर के साथ लगी होने से वहा किसी भी समय शोर नहीं मचाया जा सकता था।

अपने को घसीटकर सडक के एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक ले जाते हुए उसे फिर अपने मसाने पर सख्त दबाव महसूस होने लगा। स्कूल से निकलते हुए उसे याद नही रहा था कि वहा से पेशाब करके घर के लिए चलना है। घर मे पेटी का पता सभी को था। सुखदेव दो-एक बार उसकी पेटी छूकर देख भी चुका था मगर अपने घर की तरह अधनगा होकर पेटी उघाडे वह एक दिन भी वहां बाथरूम की तरफ नही भागा था। जहा वह था, वहा से अगले खम्भे तक पहुंचते-पहुचते उसके लिए चलना मुश्किल होने लगा। स्कूल चार-पाचे खम्भे पीछे रह गया था, घर चार-पाच खम्भे आगे था। एक बार उसने सोचा कि जल्दी से घर की तरफ दौडने लगे। फिर सोचा कि दौड़-कर वापस स्कूल चला जाए। मगर वह किसी भी तरफ न जाकर वही रुक गया। घर मे ममी इस समय अकेली ही होगी, पर उससे पूछ-ताछ करेंगी कि वह स्कूल से इतनी जल्दी क्यों चला आया है। स्कूल मे तब तक घण्टी बज जाएगी और मिस मैथ्यू की नजर उनके क्लास-रूम से निकलते हुए उस पर पड़ गई, तो वह पूछेगी कि वह अब तक वही क्यो घूम रहा है। उसने पहाडी की तरफ मुह करके वही खडे-खडे नेकर के बटन खोल लिए। मसाने का दबाव हल्का होने के साथ ही उसे फिर अपने आपरेशन का ध्यान हो आया। अगर पापा ने पहले ही आपरेशन करा दिया होता···उसने सोचा और अपनी टीस को दबाए बटन बन्द करने लगा।

एक और ज़िन्दगी

…और उस एक क्षण के लिए प्रकाश के हृदय की धड़कन जैसे रुकी रही। कितना विचित्र था वह क्षण—आकाश से टूटकर गिरे हुए नक्षत्र जैसा! कोहरे के वक्ष में एक लकीर-सी खींचकर वह क्षण सहसा व्यतीत हो गया।

कोहरे में से गुज़रकर जाती हुई आकृतियों को उसने एक बार फिर ध्यान से देखा। क्या यह सम्भव था कि व्यक्ति की आँखें इस हद तक उसे धोखा दें? तो जो कुछ वह देख रहा था, वह यथार्थ ही नहीं था?

कुछ ही क्षण पहले जब वह कमरे से निकलकर बालकनी पर आया था, तो क्या उसने कल्पना में भी यह सोचा था कि आकाश के ओर-छोर तक फैले हुए कोहरे में, गहरे पानी की निचली सतह पर तैरती हुई मछलियों जैसी जो आकृतियाँ नज़र आ रही हैं, उनमें कहीं वे दो आकृतियाँ भी होंगी? मंदिरवाली सड़क से आते हुए दो कुहरीले रंगों पर जब उसकी नज़र पड़ी थी, तब भी क्या उसके मन में कहीं ऐसा अनुमान जागा था? फिर भी न जाने क्यों उसे लग रहा था जैसे बहुत समय से, बल्कि कई दिनों से, वह उनके वहाँ से गुज़रने की प्रतीक्षा कर रहा हो, जैसे कि उन्हें देखने के लिए ही वह कमरे से निकलकर बालकनी पर आया हो और उन्हीं को ढूँढती हुई उसकी आँखें मंदिर वाली सड़क की तरफ़ मुड़ी हों।—यहाँ तक कि उस धानी आँचल और नीली नेकर के रंग भी जैसे उसके पहचाने हुए हों और कोहरे के विस्तार में वह उन दो रंगों को ही खोज रहा हो। वैसे उन आकृतियों के बालकनी के नीचे पहुँचने तक उसने उन्हें पहचाना नहीं था। परन्तु एक क्षण में सहसा वे आकृतियाँ इस तरह उसके सामने स्पष्ट हो उठी थीं जैसे जड़ता के क्षण के अवचेतन की गहराई में डूबा हुआ कोई विचार एकाएक चेतना की सतह पर कौंध गया हो।

नीली नेकर वाली आकृति घूमकर पीछे की तरफ़ देख रही थी। क्या उसे भी कोहरे में किसी की खोज थी? और किसकी? प्रकाश का मन हुआ कि उसे आवाज़ दे, मगर उसके गले से शब्द नहीं निकले। कोहरे का समुद्र अपनी गंभीरता में खामोश था, मगर उसकी अपनी खामोशी एक ऐसे तूफ़ान की तरह थी जो हवा न मिलने से अपने अंदर ही घुमड़कर रह गया हो। नहीं तो क्या वह इतना ही असमर्थ था कि उसके गले से एक शब्द भी न निकल सके?

वह बालकनी से हटकर कमरे में आ गया। वहाँ अपने अस्तव्यस्त सामान पर नज़र पड़ी, तो शरीर में निराशा की एक सिहरन दौड़ गई। क्या यही वह ज़िन्दगी थी जिसके लिए उसने…? परन्तु उसे लगा कि उसके पास कुछ भी सोचने के लिए समय [illegible] गई चीज़ ढूँढ [illegible] ज़र पड़ी, तो [illegible] ड़ा रहा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या चाहता है। क्या वह उन दोनों के पीछे जाना चाहता था? या बालकनी पर खड़ा होकर पहले की तरह उन्हें देखते रहना चाहता था?

अचानक उसका हाथ मेज़ पर रखे ताले पर पड़ गया, तो उसने उसे उठा लिया। जल्दी से दरवाज़ा बन्द करके वह ज़ीने से उतरने लगा। ज़ीने पर आकर ध्यान आया कि

जूता नहीं पहना। वह पल-भर ठिठककर खड़ा रहा, मगर लौटकर नहीं गया। नीचे सड़क पर पहुंचते ही पांव कीचड़ में लथपथ हो गए। दूर देखा—वे दोनों आकृतियां घोड़ों के अड्डे के पास पहुंच चुकी थीं। वह जल्दी-जल्दी चलने लगा। पास से गुज़रते एक घोड़े वाले से उसने कहा कि आगे जाकर नीली नेकर वाले बच्चे को रोक ले—उससे कहे कि कोई उससे मिलने के लिए आ रहा है। घोड़े वाला घोड़ा दौड़ाता हुआ गया, मगर उन दोनों के पास न रुककर उनसे आगे निकल गया। वहां जाकर न जाने किसे उसने उसका संदेश दे दिया।

[illegible] आकृतियां चल [illegible]

वहां से चल न दें, और जिस दूरी को वह नापना चाहता था, वह ज्यों की त्यों न बनी रहे। मगर ज्यों-ज्यों फ़ासला कम हो रहा था, उसका कम होना भी उसे अखर रहा था। क्या वह जान-बूझकर अपने को एक ऐसी स्थिति में नहीं डाल रहा था जिससे उसे अपने को बचाए रखना चाहिए था?

उन लोगों ने घोड़े नहीं लिए थे। वह जब उनसे तीन-चार गज़ दूर रह गया, तो सहसा उसके पांव रुक गए। तो क्या सचमुच अब उसे उस स्थिति का सामना करना ही था?

"पाशी!" इससे पहले कि वह निश्चय कर पाता, अनायास उसके मुंह से निकल गया।

बच्चे की बड़ी-बड़ी आंखें उसकी तरफ़ घूम गईं—साथ ही उसकी मां की आंखें भी। कोहरे में अचानक कई-कई बिजलियां कौंध गईं। प्रकाश दो-एक कदम और आगे बढ़ गया। बच्चा हैरान आंखों से उसकी तरफ़ देखता हुआ अपनी मां के साथ सट गया।

"पलाश, इधर आ मेरे पास," प्रकाश ने हाथ से चुटकी बजाते हुए कहा, जैसे कि यह हर रोज़ की साधारण घटना हो और बच्चा अभी कुछ मिनट पहले ही उसके पास से अपनी मां के पास गया हो।

बच्चे ने मां की तरफ़ देखा। वह अपनी आंखें हटाकर दूसरी तरफ़ देख रही थी। बच्चा अब और भी उसके साथ सट गया और उसकी आंखें हैरानी के साथ-साथ एक शरारत से चमक उठीं।

प्रकाश को खड़े-खड़े उलझन हो रही थी। लग रहा था कि खुद चलकर उस दूरी को नापने के सिवा अब कोई चारा नहीं है। वह लम्बे-लम्बे डग भरकर बच्चे के पास पहुंचा और उसे उसने अपनी बांहों में उठा लिया। बच्चे ने एक बार किलककर उसके हाथों से छूटने की चेष्टा की, परन्तु दूसरे ही क्षण अपनी छोटी-छोटी बांहें उसके गले में डालकर वह उससे लिपट गया। प्रकाश उसे लिए हुए थोड़ा एक तरफ़ को हट आया।

"तूने पापा को पहचाना नहीं था क्या?"

"पैताना ता," बच्चा बांहें उसके गले में डाले झूलने लगा।

"तो तू झट से पापा के पास आया क्यों नहीं?"

"नहीं आया," कहकर बच्चे ने उसे चूम लिया।

"तू आज ही यहां आया है?"

"नहीं, तल आया ता।"

"अभी रहेगा या आज ही लौट जाएगा?"

"अबी तीन-चाल दिन लहूंदा।"

"तो पापा के पास मिलने आएगा न ?"

"आऊंदा।"

प्रकाश ने एक बार उसे अच्छी तरह अपने साथ सटाकर चूम लिया, तो बच्चा किलककर उसके माथे, आखों और गालों को जगह-जगह चूमने लगा।

"कैसा बच्चा है !" पास खड़े एक कश्मीरी मजदूर ने सिर हिलाते हुए कहा।

"तुम तहां लहते हो ?" बच्चा बाहें उसी तरह उसकी गरदन में डाले जैसे उसे अच्छी तरह देखने के लिए थोडा पीछे को हट गया।

"वहा !" प्रकाश ने दूर अपनी बालकनी की तरफ इशारा किया, "तू कब तक वहा आएगा ?"

"अबी ऊपल जातल दूद पिऊंदा, उछके बाद तुमाले पाछ आऊंदा।" बच्चे ने अब अपनी मां की तरफ देखा और उसकी बाहों से निकलने के लिए मचलने लगा।

"मैं वहां बालकनी में कुरसी डालकर बैठा रहूंगा और तेरा इतज़ार करूंगा," बच्चा बाहों से उतरकर अपनी मा की तरफ भाग गया, तो प्रकाश ने पीछे से कहा। क्षण-भर के लिए उसकी आखें बच्चे की मा से मिल गई, परन्तु अगले ही क्षण दोनों दूसरी-दूसरी तरफ देखने लगे। बच्चा जाकर मा की टागो से लिपट गया। वह कोहरे के पार देवदारों की धुधली रेखाओ को देखती हुई बोली, "तुझे दूध पीकर आज खिलनमर्ग नही चलना है ?"

"नही," बच्चे ने उसकी टागो के सहारे उछलते हुए सपाट जवाब दिया। "मैं दूद पीतल पापा ते पाछ जाऊंदा।"

तीन दिन, तीन रातो से आकाश घिरा था। कोहरा धीरे-धीरे इतना घना हो गया था कि बालकनी से आगे कोई रूप, कोई रग नज़र नही आता था। आकाश की पारदर्शिता पर जैसे गाढ़ा सफेदा पोत दिया गया था। ज्यों-ज्यो वक्त बीत रहा था, कोहरा और घना होता जा रहा था। कुरसी पर बैठे हुए प्रकाश को किसी-किसी क्षण महसूस होने लगता जैसे वह बालकनी पहाडियो से घिरे खुले विस्तार मे न होकर अन्तरिक्ष के किसी रहस्यमय प्रदेश मे बनी हो—नीचे और ऊपर केवल आकाश ही आकाश हो—अतल में बालकनी की सत्ता अपने मे पूर्ण और स्वतन्त्र एक लोक की तरह हो…।

उसकी आंखें इस तरह एकटक सामने देख रही थीं, जैसे आकाश और कोहरे मे उसे कोई अर्थ ढूढना हो—अपनी बालकनी के वहा होने का रहस्य जानना हो।

कोहरे के बादल कई-कई रूप लेकर हवा मे इधर-उधर भटक रहे थे। अपनी गहराई मे फैलते और सिमटते हुए वे अपनी थाह नही पा रहे थे। बीच मे कहीं-कहीं देवदारो की फुनगियां एक हरी लकीर की तरह बाहर निकली थी—कुहरीले आकाश पर लिखी गई एक अनिश्चित-सी लिपि जैसी। देखते-देखते वह लकीर भी गुम हुई जा रही थी - कोहरे का उफान उसे भी रहने देना नही चाहता था। लकीर को मिटते देखकर प्रकाश के स्नायुओं में एक तनाव-सा भर रहा था – जैसे किसी भी तरह वह उस लकीर को मिटने से बचा लेना चाहता हो। परन्तु जब लकीर एक बार मिटकर फिर कोहरे से बाहर नही निकली, तो उसने सिर पीछे को डाल लिया और खुद भी कोहरे मे कोहरा होकर पड रहा…। अतीत के कोहरे मे वही वह दिन भी था जो चार साल में अब तक बीत नही सका था…।

बच्चे की पहली वर्षगांठ थी उस दिन—वही उसके जीवन की भी सबसे बड़ी गांठ बन गई थी…।

ब्याह के कुछ महीने बाद से ही पति-पत्नी अलग रहने लगे थे। ब्याह के साथ जो सूत्र जुड़ना चाहिए था, वह जुड़ नहीं सका था। दोनों अलग-अलग जगह काम करते थे और अपना अपना स्वतन्त्र ताना बाना बुनकर जी रहे थे। लोकाचार के नाते साल-छः महीने में कभी एक बार मिल लिया करते थे। वह लोकाचार ही इस बच्चे को दुनिया में ले आया था...।

बीना समझती थी कि इस तरह जान-बूझकर उसे फंसा दिया गया है। प्रकाश सोचता था कि अनजाने में ही उससे एक कसूर हो गया है।

साल-भर बच्चा मां के ही पास रहा था। बीच में बच्चे की दादी छः-सात महीने उसके पास रह आई थी।

पहली वर्षगांठ पर बीना ने लिखा था कि वह बच्चे को लेकर अपने पिता के पास लखनऊ जा रही है। वहीं पर बच्चे के जन्म-दिन की पार्टी देगी।

प्रकाश ने उसे तार दिया था कि वह भी उस दिन लखनऊ आएगा। अपने एक मित्र के यहां हजरतगंज में ठहरेगा। अच्छा होगा कि पार्टी वहीं दी जाए। लखनऊ के कुछ मित्रों को भी उसने सूचित कर दिया था कि बच्चे की वर्षगांठ के अवसर पर वे उसके साथ चाय पीने के लिए आएं।

उसने सोचा था कि बीना उसे स्टेशन पर मिल जाएगी, परन्तु वह नहीं मिली। हजरतगंज पहुंचकर नहा-धो चुकने के बाद उसने बीना के पास सन्देश भेजा कि वह वहां पहुंच गया है, कुछ लोग साढ़े चार-पांच बजे चाय पीने आएंगे, इससे पहले वह बच्चे को लेकर जरूर वहां आ जाए। मगर पांच बजे, छः बजे, सात बज गए—बीना बच्चे को लेकर नहीं आई। दूसरी बार सन्देश भेजने पर पता चला कि वहां उन लोगों की पार्टी चल रही है। बीना ने कहला भेजा कि बच्चा आठ बजे तक खाली नहीं होगा, इसलिए वह अभी उसे लेकर नहीं आ सकती। प्रकाश ने अपने मित्रों को चाय पिलाकर विदा कर दिया। बच्चे के लिए खरीदे हुए उपहार बीना के पिता के यहां भेज दिए। साथ में यह सन्देश भेजा कि बच्चा जब भी खाली हो, उसे थोड़ी देर के लिए उसके पास ले आया जाए।

मगर आठ के बाद नौ बजे, दस बजे, बारह बज गए, पर बीना न तो खुद बच्चे को लेकर आई, और न ही उसने उसे किसी और के साथ भेजा।

वह रात-भर सोया नहीं। उसके दिमाग को जैसे कोई छैनी से छीलता रहा।

सुबह उसने फिर बीना के पास सन्देश भेजा। इस बार बीना बच्चे को लेकर आ गई। उसने बताया कि रात को पार्टी देर तक चलती रही, इसलिए उसका आना सम्भव नहीं हुआ। अगर सचमुच उसे बच्चे से प्यार था, तो उसे चाहिए था कि उपहार लेकर खुद उनके यहां पार्टी में चला आता...।

उस दिन सुबह से शुरू हुई बातचीत आधी रात तक चलती रही। प्रकाश बार-बार कहता रहा, "बीना, मैं इसका पिता हूं। उस नाते मुझे इतना अधिकार तो है ही कि मैं इसे अपने पास बुला सकूं।"

परन्तु बीना का उत्तर था, "आपके पास पिता का दिल होता, तो आप पार्टी में न आ जाते? यह तो एक आकस्मिक घटना ही है कि आप इसके पिता हैं।"

"बीना!" वह फटी-फटी आंखों से उसके चेहरे की तरफ देखता रह गया। "मैं नहीं समझ पा रहा कि तुम दर-असल चाहती क्या हो!"

"मैं कुछ भी नहीं चाहती। आपसे मैं क्या चाहूंगी?"

"तुमने सोचा है कि तुम्हारे इस तरह व्यवहार करने से बच्चे का क्या होगा?"

"जब हम अपने ही बारे मे कुछ नहीं सोच सके, तो इसके बारे में क्या सोचेंगे !"

"क्या तुम पसन्द करोगी कि बच्चे को मुझे सौंप दो और खुद स्वतन्त्र हो जाओ ?"

"इसे आपको सौंप दूं ?" बीना के स्वर में वितृष्णा गहरी हो गई, 'किस चीज के भरोसे ? कल को आपकी जिन्दगी क्या होगी, यह कौन कह सकता है ? बच्चे को उस अनिश्चित जिन्दगी के भरोसे छोड दूं— इतनी मूर्ख मैं नही हू ।"

"तो क्या तुम यही चाहोगी कि इसका फैसला करने के लिए अदालत मे जाया जाए ?"

"आप अदालत मे जाना चाहें, तो मुझे कोई एतराज नही है । जरूरत पडने पर मैं सुप्रीम कोर्ट तक आपसे लड़ूगी । आपका बच्चे पर कोई हक नही है ।"

बच्चे को पिता से ज्यादा मा की जरूरत होती है—कई दिन, कई सप्ताह वह मन ही मन संघर्ष करता रहा । जहां उसे दोनों न मिल सकें वहां मां तो उसे मिलनी ही चाहिए । अच्छा है, मैं बच्चे की बात भूल जाऊ और नये सिरे से अपनी जिन्दगी शुरू करने की कोशिश करूं···।"

मगर···।

"फिजूल की भावुकता मे कुछ नही रखा है । बच्चे-अच्चे तो होते ही रहते हैं । सम्बन्ध-विच्छेद करके फिर से ब्याह कर लिया जाए, तो घर मे और बच्चे हो जाएगे । मन में इतना ही सोच लेना होगा कि इस बच्चे के साथ कोई दुर्घटना हो गई थी ··।"

सोचने-सोचने मे दिन, सप्ताह और महीने निकलते गए । मन मे आशका उठती —क्या सचमुच पहले की जिन्दगी को मिटाकर इन्सान नये सिरे से जिन्दगी शुरू कर सकता है ? जिन्दगी के कुछ वर्षों को वह एक दु.स्वप्न की तरह भूलने का प्रयत्न कर सकता है ? कितने इन्सान है जिनकी जिन्दगी कही न कही, किसी न किसी दोराहे से गलत दिशा की तरफ भटक जाती है । क्या उचित यह नही कि इन्सान उस रास्ते को बदलकर अपने को सही दिशा मे ले आए ? आखिर आदमी के पास एक ही तो जिन्दगी होती है - प्रयोग के लिए भी और जीने के लिए भी । तो क्यों आदमी एक प्रयोग की असफलता को जिंदगी की असफलता मान ले ? कोर्ट मे कागज पर हस्ताक्षर करते समय छत के पखे से टकराकर एक चिडिया का बच्चा नीचे आ गिरा ।

"हाय, चिड़िया मर गई," किसी ने कहा ।

"मरी नही, अभी जिन्दा है," कोई और बोला ।

"चिडिया नही है, चिड़िया का बच्चा है," किसी तीसरे ने कहा ।

"नही चिड़िया है ।"

"नही, चिडिया का बच्चा है ।"

"इसे उठाकर बाहर हवा मे छोड दो ।"

"नही, यही पडा रहने दो । बाहर इसे कोई बिल्ली-विल्ली खा जाएगी ।"

"पर यह यहा आया किस तरह ?"

"जाने किस तरह ? रोशनदान के रास्ते आ गया होगा ।"

"बेचारा कैसे तडप रहा है !"

"शुक्र है, पंखे ने इसे काट नही दिया ।"

"काट दिया होता, तो बल्कि अच्छा था । अब इस तरह लुजे पंखो से बेचारा क्या जिएगा !"

तब तक पति-पत्नी दोनों ने कागज पर हस्ताक्षर कर दिए थे । बच्चा उस समय

कोर्ट के अहाते में कौओं के पीछे भागता हुआ किलकारियां भर रहा था। वहां आसपास धूल उड रही थी और चारों तरफ मटियाली-सी धूप फैली थी'''।

फिर दिन, सप्ताह और महीने'''!

अढाई साल गुज़र जाने पर भी वह फिर से ज़िन्दगी शुरू करने की बात तय नहीं कर पाया था। उस बीच बच्चा तीन बार उससे मिलने के लिए आया था। वह नौकर के साथ आता और दिन-भर उसके पास रहकर अंधेरा होने पर लौट जाता। पहली बार वह उससे शरमाता रहा था, मगर बाद में उससे हिल-मिल गया था। वह बच्चे को लेकर घूमने चला जाता, उसे आइसक्रीम खिलाता, खिलौने ले देता। बच्चा जाने के वक्त हठ करता, "अबी नहीं दाऊंदा। दूद पीतल दाऊंदा। थाना थातल दाऊंगा।"

जब बच्चा इस तरह की बात कहता, तो उसके अन्दर कोई चीज़ दुखने लगती। उसका मन होता था कि नौकर को झिड़ककर वापस भेज दे और बच्चे को कम से कम रात भर के लिए अपने पास रख ले। जब नौकर बच्चे से कहता, "बाबा, चलो, अब देर हो रही है," तो उसका मन एक हताश आवेश से कांपने लगता, और बहुत मुश्किल से वह अपने को संभाल पाता। आखिरी बार बच्चा रात के नौ बजे तक रुका रह गया तो एक अपरिचित व्यक्ति उसे लेने के लिए चला आया।

बच्चा उस समय उसकी गोदी में बैठा खाना खा रहा था।

"देखिए, अब बच्चे को भेज दीजिए, इसे बहुत देर हो गई," उस अजनबी ने कहा।

"आप देख रहे हैं, बच्चा खाना खा रहा है," उसका मन हुआ कि मुक्का मार-कर उस आदमी के दांत तोड़ दे।

"हां-हां, आप खाना खिला लीजिए," अजनबी ने उदारता के साथ कहा। "मैं नीचे इन्तज़ार कर रहा हूं।"

गुस्से के मारे उसके हाथ इस तरह कांपने लगे कि उसके लिए बच्चे को खाना खिलाना असम्भव हो गया।

जब नौकर बच्चे को लेकर चला गया, तो उसने देखा कि बच्चे की टोपी वहीं रह गई है। वह टोपी लिए हुए दौड़कर नीचे पहुंचा, तो देखा कि नौकर और अजनबी के अलावा बच्चे के साथ कोई और भी है—उसकी मां। वे लोग चालीस-पचास गज़ आगे चल रहे थे। उसने नौकर को आवाज़ दी, तो चारों ने मुड़कर एक साथ उसकी तरफ देखा। फिर नौकर टोपी लेने के लिए लौट आया और शेष तीनों आगे चलने लगे।

उस रात कम्बल में मुंह-सिर लपेटकर वह देर तक रोता रहा।

तब नये सिरे से फिर वही सवाल उसके मन में उठने लगा। क्यों वह अपने को इस अतीत से पूरी तरह मुक्त नहीं कर लेता? अगर बसा हुआ घर-बार हो, तो उसकी चहल-पहल में वह इस दुःख को भूल नहीं जाएगा? उसने अपने को इसीलिए तो बच्चे से अलग किया था कि अपनी ज़िन्दगी को एक नया मोड़ दे सके—फिर इस तरह अकेली ज़िन्दगी जीकर वह यह यन्त्रणा किसलिए सह रहा है?

परन्तु नये सिर से ज़िन्दगी शुरू करने की कल्पना में सदा एक आशंका मिली रहती थी। वह जितना उस आशंका से लड़ता था, वह उतनी ही और तीव्र हो उठती थी—जब उसका एक प्रयोग सफल नहीं हुआ, तो कैसे कहा जा सकता था कि दूसरा प्रयोग सफल होगा?

वह पहले की भूल दोहराना नहीं चाहता था, इसलिए उसकी आशंका ने उसे

बहुत सतर्क कर दिया था। वह जिस किसी लडकी को अपनी भावी पत्नी के रूप में देखता, उसके चेहरे मे उसे अपने पहले जीवन की छाया नज़र आने लगती। हालांकि वह स्पष्ट रूप से इस विषय मे कुछ भी सोच नही पाता था, फिर भी उसे लगता कि वह किसी ऐसी ही लडकी के साथ जीवन बिता सकता है जो हर लिहाज से बीना के उलट हो। बीना मे बहुत अहंकार था, वह उसके बराबर पढी-लिखी थी, उससे ज्यादा कमाती थी। उसे अपनी स्वतन्त्रता का बहुत मान था और उस पर भारी पडती थी। बातचीत भी वह खुले मरदाना ढंग से करती थी। वह अब एक ऐसी लड़की चाहता था जो हर लिहाज से उस पर निर्भर करे और जिसकी कमजोरियां एक पुरुष के आश्रय की अपेक्षा रखती हों।

कुछ ऐसी ही लडकी थी निर्मला—उसके मित्र कृष्ण जुनेजा की बहन। दो-चार उसने उस लडकी को जुनेजा के यहां देखा था। बहुत सीधी-सी लडकी थी। साधारण पढ़ी-लिखी थी और साधारण ढंग से ही रहती थी। छब्बीस-सत्ताईस की होकर भी देखने में वह अठारह-उन्नीस से ज्यादा की नही लगती थी। वह जुनेजा के घर की कठिनाइयों को जानता था। उन कठिनाइयों के कारण ही शायद इतनी उम्र तक उस लडकी की शादी नही हो सकी थी। जब निर्मला के साथ उसके ब्याह की बात उठाई गई, तो उसे सचमुच लगा कि उसकी ज़िन्दगी अब सही पटरी पर आ जाएगी। बात तय हो जाने के बाद उसे अपना-आप काफी भरा-भरा-सा लगने लगा। हवा और आकाश में उसे एक और ही आकर्षण लगने लगा। निर्मला ब्याहकर घर में आई भी नही थी कि वह शाम को लौटते हुए फूलों की बेनिया खरीदकर घर लाने लगा। अपना पहला घर उसे छोटा लगने लगा, इसीलिए उसने एक बड़ा घर ले लिया और नया फर्नीचर खरीदकर उसे सजा दिया। पास में ज्यादा पैसे नही थे, फिर भी कर्ज़ लेकर उसने निर्मला के लिए कितना कुछ बनवा डाला…।

निर्मला हसती हुई उसके घर मे आई—मगर वह एक ऐसी हंसी थी जो हंसने का मौका न रहने पर भी थमने मे नही आती थी।

पहले कुछ दिन तो वह समझ नही सका कि वह हसी क्या है। निर्मला कभी भी बिना बात के हसना शुरू कर देती और देर तक हंसती रहती। वह हैरान होकर उसे देखता रहता। तीन-चार साल के बच्चे भी वैसे आकस्मिक ढग से नही हंसते थे जैसे वह हसती थी। कोई उसके सामने गिर जाए या कोई चीज़ किसी के हाथ से गिरकर टूट जाए, तो उसके लिए अपनी हसी रोकना असम्भव हो जाता था। ऐसे मे लगातार दस-दस मिनट तक वह हसी से बेहाल रहती। वह उसे समझाने की चेष्टा करता कि ऐसी बातो पर नही हंसा जाता, तो निर्मला को और भी हंसी छूटती। वह उसे डांट देता, तो वह उसी आकस्मिक ढग से बिस्तर पर लेटकर हाथ-पैर पटकती हुई रोने लगती, चिल्ला-चिल्लाकर अपनी मरी हुई मा को पुकारने लगती, और अन्त मे बाल बिखेरकर देवी बन जाती और घर-भर को शाप देने लगती। कभी अपने कपडे फाड़कर इधर-उधर छिपा देती, अपने गहने जूतों के अन्दर संभाल देती। कभी अपनी बाह पर फोड़ की कल्पना करके दो-दो दिन उसके दर्द से कराहती रहती और फिर सहसा स्वस्थ होकर कपडे धोने लगती और सुबह से शाम तक कपड़े धोती रहती।

जब मन शान्त होता, तो मुह गोल किए वह अंगूठा चूमने लगती।

उठते-बैठते, खाते-पीते, प्रकाश के सामने निर्मला के तरह-तरह के रूप आने रहते और उसका मन एक अंधे कुए मे भटकने लगता। रास्ता चलते हुए उसके मन मे एक

शून्य-सा घिर आता और वह भौंचक्का-सा सड़क के किनारे खड़ा होकर सोचने लगता कि वह घर से क्यों आया है और कहां जा रहा है। उसका किसी से मिलने या कहीं भी आने-जाने को मन न होता। कई बार वह बिलकुल जड़ होकर देर-देर तक एक ही जगह खड़ा या बैठा रहता। एक बार सड़क पर चलते हुए वह खम्भे से टकराकर नाली में गिर गया। एक बार बस पर चढने की कोशिश में नीचे गिर जाने से उसकी बुशर्ट पीछे से फट गई और वह इससे बेखबर दूसरी बस में चढकर आगे चल दिया। उसे पता तब चला जब किसी ने रास्ते में उससे कहा, "जैंटलमैन, तुम्हें घर जाकर कपड़े बदल लेने चाहिए ?"

उसे लगता जैसे वह जी न रहा हो, अन्दर ही अन्दर घुट रहा हो। क्या यही वह जिन्दगी थी जिसे पाने के लिए उसने इतने साल अपने मे संघर्ष किया था ?

उसे गुस्सा आता कि जुनेजा ने उसके साथ ऐसा क्यों किया ? उस लड़की को मानसिक अस्पताल में भेजने की जगह उसका ब्याह क्यों कर दिया ? उसने जुनेजा को इस सम्बन्ध में पत्र लिखे, परन्तु उसकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। उसने जुनेजा को बुला भेजा, तो वह आया भी नहीं। वह स्वयं जुनेजा से मिलने गया, तो जवाब मिला कि निर्मला अब उसकी पत्नी है—उसके मायके के लोगों का उनकी जिन्दगी में कोई दखल नहीं है।

और निर्मला रात-दिन घर में उसी तरह हंसती और रोती रहती…!

"तुम मेरे भाई से क्या पूछने गए थे ?" वह बाल बिखेरकर 'देवी' का रूप धारण किए हुए कहती, "तुम वीना की तरह मुझे भी तलाक देना चाहते हो ? किसी तीसरी को घर में लाना चाहते हो ? मगर मैं वीना नहीं हूं। वह सती स्त्री नहीं थी। मैं सती स्त्री हूं। तुम मुझे छोड़ने की बात मन में लाओगे, तो मैं इस घर को जलाकर भस्म कर दूंगी—सारे शहर में भूचाल ले आऊंगी। लाऊं भूचाल ?" और बांहें फैलाकर वह चिल्लाने लगती, "आ भूचाल, आ…आ ! मैं सती स्त्री हूं, तो इस घर की ईंट से ईंट बजा दे। आ, आ, आ !"

वह उसे शान्त करने की चेष्टा करता, तो वह कहती, "देखो, तुम मुझसे दूर रहो। मेरे शरीर को हाथ मत लगाओ। मैं सती स्त्री हूं। देवी हूं। तुम मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहते हो ? मुझे खराब करना चाहते हो ? मेरा तुमसे ब्याह कब हुआ है ? मैं [illegible] —मुझे नहीं छू सकता। [illegible]

[illegible] वह घर की छत पर पहुंच जाती और कभी बाहर निकलकर घर के आस-पास चक्कर काटने लगती। उसने दो-एक बार होंठों पर हाथ रखकर निर्मला का मुंह बन्द करना चाहा, तो वह और भी जोर से चिल्लाने लगी, "तुम मेरा मुंह बन्द करना चाहते हो ? मेरा गला घोटना चाहते हो ? मुझे मारना चाहते हो ? तुम्हें पता है मैं देवी हूं ? मेरे चारों भाई चार शेर हैं। वे तुम्हें नोच-नोचकर खा जाएंगे। उन्हें पता है उसकी बहन देवी है। कोई मेरा बुरा चाहेगा, तो वे उसे उठाकर ले जाएंगे और काल-कोठरी में बन्द कर देंगे। मेरे बड़े भाई ने अभी-अभी नई कार ली है। मैं उसे चिट्ठी लिख दूं, तो वह भी कार लेकर आ जाएगा, और हाथ-पैर बांधकर तुम्हें कार में डालकर ले जाएगा। छः महीने बन्द रखेगा, फिर छोड़ेगा। तुम्हें पता नहीं वे चारों के चारों शेर कितने जालिम हैं ? वे राक्षस हैं, राक्षस। आदमी की बोटी-बोटी काट दें और किसी को पता भी न चले। मगर मैं उन्हें नहीं बुलाऊंगी। मैं सती स्त्री हूं, इसलिए अपने सत्य से ही अपनी रक्षा करूंगी…!"

सब कोशिशों से हार कर वह थका हुआ अपने पढ़ने के कमरे में बन्द होकर पड़ जाता, तो भी आधी रात तक वह साथ के कमरे में उसी तरह बोलती रहती। फिर बोलते-बोलते अचानक चुप कर जाती और थोड़ी बाद उसका दरवाजा खटखटाने लगती।

"क्या बात है ?" वह कहता।

"इस कमरे मे मेरी सास रुक रही है," निर्मला जवाब देती, "दरवाजा खोलो, मुझे अस्पताल जाना है !"

"इस समय सो जाओ," वह कहता, "सुबह तुम जहां कहोगी, वहां ले चलूगा।"

"मैं कहती हू दरवाजा खोलो, मुझे अस्पताल जाना है," और वह जोर-जोर से धक्के देकर दरवाजा तोड़ने लगती।

"वह दरवाजा खोल देता, तो वह हंसती हुई उसके सामने आ जाती।"

"तुम्हे हंसी किस बात की आ रही है ?" वह कहता।

"तुम्हे लगता है मैं हंस रही हूं ?" निर्मला और भी जोर से हंसने लगती, "यह हसी नही, रोना है रोना।"

"तुम अस्पताल चलना चाहती हो ?"

"क्यो ?"

"अभी तुम कह रही थी···!"

"मैं अस्पताल जाने के लिए कहा कह रही थी ? मैं तो कह रही थी कि मुझे उस कमरे मे डर लगता है, मैं यहां तुम्हारे पास सोऊंगी।"

"देखो निर्मला, इस समय मेरा मन ठीक नहीं है। तुम बाद में चाहे मेरे पास आ जाना, मगर इस समय थोडी देर···।"

"मैं कहती हूं मैं अकेली उस कमरे में नही सो सकती। मेरे जैसी छोटी-सी बच्ची क्या कभी अकेली सो सकती है ?"

• "तुम छोटी बच्ची नही हो, निर्मला !"

"तो तुम्हें मैं बडी नजर आती हूं ? एक छोटी-सी बच्ची को बडी कहते तुम्हारे दिल को कुछ नही होता ? इसलिए कि तुम मुझे अपने पास सुलाना नही चाहते ? मगर मैं यहां से नही जाऊंगी। तुम्हें मुझे अपने साथ सुलाना पड़ेगा। मैं विधवा हूं जो अकेली सोऊंगी ? मैं सुहागिन स्त्री हूं। कोई सुहागिन क्या कभी अकेली सोती है ? मैं भावरें लेकर तुम्हारे घर मे आई हूं, ऐसे ही उठाकर नही लाई गई। देखती हूं तुम कैसे मुझे उस कमरे में भेजते हो ?" और वह उसके पास लेटकर उससे लिपट जाती।

कुछ देर मे जब उसके स्नायु शान्त हो चुकते, तो लगातार उसे चूमती हुई कहती, "मेरा सुहाग ! मेरा चांद ! मेरा राजा ! मैं तुम्हें कभी अपने से अलग रख सकती हूं ? तुम मेरे साथ एक सौ छत्तीस साल की उम्र तक जिओगे। मुझे यह वर मिला है कि मैं एक सौ छत्तीस साल की उम्र तक सुहागिन रहूगी। जिसकी भी मुझसे शादी होती, वह एक सौ छत्तीस साल की उम्र तक जीता। तुम देख लेना मेरी बात सच निकलती है या नहीं। मैं सती स्त्री हूं और सती स्त्री के मुह से निकली बात कभी झूठ नही होती···।"

"तुम सुबह मेरे साथ अस्पताल चलोगी ?"

"क्यों, मुझे क्या हुआ है जो मैं अस्पताल जाऊगी ? मुझे तो आज तक कभी सिरदर्द भी नही हुआ। मैं अस्पताल क्यों जाऊंगी ?"

एक दिन प्रकाश उसके लिए कई किताबें खरीद लाया। उसने सोचा था कि

शायद पढ़ने से निर्मला के मन को एक दिशा मिल जाए और वह धीरे-धीरे अपने मन के अंधेरे से बाहर निकलने लगे। मगर निर्मला ने उन किताबों को देखा, तो मुंह बिचका-कर एक तरफ हटा दिया।

"ये किताबें मैं तुम्हारे पढ़ने के लिए लाया हूं," उसने कहा।

"मेरे पढ़ने के लिए ?" निर्मला हैरानी के साथ बोली, "मैं इन किताबों को पढ़कर क्या करूंगी ? मैंने तो मार्क्सवाद, मनोविज्ञान और सभी कुछ चौदह साल की उम्र मे ही पढ़ लिया था। अब इतनी बड़ी होकर मैं ये किताबें पढ़ने लगूंगी ?" और उसके पास से उठकर अंगूठा चूसती हुई वह दूसरे कमरे में चली गई।

"पापा !"

कोहरे के बादलों मे भटका मन सहसा बालकनी पर लौट आया। खिलनमर्ग की सड़क पर बहुत-से लोग घोड़े दौड़ाते जा रहे थे—एक धुंधले चित्र की बुझी-बुझी आकृतियां जैसे कुछ वैसे ही बुझी-बुझी आकृतियां क्लब से बाज़ार की तरफ आ रही थीं। बाईं तरफ वर्फ से ढकी पहाड़ी की एक चोटी कोहरे से बाहर निकल आई थी, और जाने किधर से आती धूपकी एक करण ने जिसे जगमगा दिया था। कोहरे में भटके कुछ पक्षी उड़ते हुए उस चोटी के सामने आ गए, तो सहसा उनके पख सुनहरे हो उठे—मगर अगले ही क्षण वे फिर धुंधलके मे खो गए।"

प्रकाश कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और झांककर नीचे सड़क की तरफ देखने लगा। क्या वह आवाज पलाश की नहीं थी ? मगर सड़क पर दूर तक वैसी कोई आकृति दिखाई नहीं दे रही थी। आखो से टूरिस्ट होटल के गेट तक जाकर वह लौट आया और गले पर हाथ रखकर जैसे निराशा की चुभन को रोके हुए फिर कुर्सी पर बैठ गया। दस के बाद ग्यारह, बारह और फिर एक बज गया था और बच्चा नहीं आया था। क्या बच्चे के पहले जन्म दिन की घटना आज फिर दोहराई जानी थी ?

"पापा !"

प्रकाश ने चौंककर सिर उठाया। वही कोहरा और वही धुंधली सुनसान सड़क। दूर घोड़ो की टापें और धीमी चाल से उस तरफ को आता एक कश्मीरी मजदूर ! क्या वह आवाज उसे अपने कानों के अन्दर से सुनाई दे रही थी ?

तभी कानों के अन्दर दो नन्हे पैरों की आवाज भी गूंज गई और उसके बहुत पास बच्चे का स्वर किलक उठा, "पापा !" साथ ही दो नन्ही बाहें उसके गले से लिपट गईं और बच्चे के झडूले बाल उसके होंठो से छू गए।

प्रकाश ने बच्चे के शरीर को सिर से पैर तक छू लिया। फिर उसके माथे और आंखों को हल्के से चूम लिया।

"तो मैं जाऊं, पलाश ?" एक भूली हुई मगर परिचित आवाज ने प्रकाश को फिर चौंका दिया। उसने घूमकर पीछे देखा। कमरे के दरवाजे के बाहर बीना दाईं तरफ न जाने किस चीज पर आंखें गड़ाए खड़ी थी।

"आप ?···अन्दर आ जाइए आप···।" कहता हुआ वह बच्चे को बांहों में लिए अस्तव्यस्त-सा कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"नहीं, मैं जा रही हूं," बीना ने फिर भी उसकी तरफ नहीं देखा। "मुझे इतना बता दीजिए कि बच्चा कब तक लौटकर आएगा।"

"आप···जब कहें, तभी भेज दूंगा।" प्रकाश बालकनी की दहलीज लांघकर कमरे में आ गया।

"चार बजे इसे दूध पीना होता है।"

"तो चार बजे तक मैं इसे वहां पहुंचा दूंगा।"

"इसने हल्का-सा स्वेटर ही पहन रखा है। दूसरे पुलोवर की जरूरत तो नहीं पड़ेगी?"

"आप दे दीजिए। ज़रूरत पड़ेगी, तो मैं इसे पहना दूंगा।"

बीना ने दहलीज़ के उस तरफ से पुलोवर उसकी तरफ बढ़ा दिया। उसने पुलोवर लेकर उसे शाल की तरह बच्चे को ओढ़ा दिया। "आप···," उसने बीना से फिर कहना चाहा कि अन्दर आ जाए, मगर उससे कहा नहीं गया। बीना चुपचाप जीने की तरफ चल दी। प्रकाश कमरे से निकल आया। जीने से बीना ने कहा, "देखिए, इसे आइसक्रीम वगैरह मत खिलाइएगा। इसका गला बहुत जल्द खराब हो जाता है।"

"अच्छा!"

बीना पल-भर रुकी रही। शायद उसे और भी कुछ कहना था। मगर फिर बिना कुछ कहे नीचे उतर गई। बच्चा प्रकाश की बांहों में उछलता हुआ हाथ हिलाता रहा, "ममी, टा टा! टा टा!" प्रकाश उसे लिए बालकनी पर लौट आया तो वह उसके गले में बाहें डालकर बोला, "पापा, मैं आइछक्लीम जलूल खाऊंदा।"

"हां-हां बेटे!" प्रकाश उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा, "जो तेरे मन में आए सो खाना।"

और कुछ देर वह अपने को, बालकनी को, और यहां तक कि बच्चे को भी भूला हुआ सामने कोहरे में देखता रहा।

कोहरे का पर्दा धीरे-धीरे उठने लगा, तो मीलों तक फैले हरियाली के रंगमंच की धुंधली रेखाएं स्पष्ट हो उठीं।

वे दोनों गॉल्फ-ग्राउण्ड पार करके क्लब की तरफ जा रहे थे। चलते हुए बच्चे ने पूछा, 'पापा, आदमी के दो टांगें क्यों होती हैं? चार क्यों नहीं होतीं?"

प्रकाश ने चौंककर उसकी तरफ देखा और कहा, "अरे!"

"क्यों पापा," बच्चा बोला, "तुमने अरे क्यों कहा है?"

"तू इतना साफ बोल सकता है, तो अब तक तुतलाकर क्यों बोल रहा था?" प्रकाश ने उसे बांहों में उठाकर एक अभियुक्त की तरह सामने कर लिया। बच्चा खिल-खिलाकर हंसा। प्रकाश को लगा कि यह वैसी ही हंसी है जैसी कभी वह स्वयं हंसा करता था। बच्चे के चेहरे की रेखाओं से भी उसे अपने बचपन के चेहरे की याद हो आई। उसे लगा जैसे एकाएक उस का तीस साल पहले का चेहरा उसके सामने आ गया हो और वह खुद उस चेहरे के सामने एक अभियुक्त की तरह खड़ा हो।

'ममी तो ऐछे ही अच्छा लदता है," बच्चे ने कहा।

"क्यों?"

"मेले तो नहीं पता। तुम ममी छे पूछ लेना।"

"तेरी ममी तुझे ज़ोर से हंसने से भी मना करती है?" प्रकाश को वे दिन याद आए जब उसके खिलखिलाकर हंसने पर बीना कानों पर हाथ रख लिया करती थी।

बच्चे की बांहें उसकी गरदन के पास कस गईं। "हां," वह बोला, "ममी कहती है अच्छे बच्चे जोल छे नहीं हंछते।"

प्रकाश ने उसे बांहों से उतार दिया। बच्चा उसकी उंगली पकड़े घास पर चलने लगा। "क्यों पापा," उसने पूछा, "अच्छे बच्चे जोल छे क्यों नहीं हंछते?"

"हंसते हैं बेटा!' प्रकाश ने उसके सिर को सहलाते हुए कहा, "सब अच्छे बच्चे ज़ोर से हंसते हैं।"

"तो ममी मेले तो त्यो लोतती है ?"

"अब वह तुझे नही रोकेगी। और तू तुतलाकर नही ठीक से बोला कर। तेरी ममी तुझे इसके लिए भी मना नही करेगी। मैं उससे कह दूगा।"

"तो तुमने पहले ममी छे, त्यों नही तहा ?"

"ऐसे नही, कह कि तुमने पहले ममी से क्यों नही कहा।"

बच्चा फिर हस दिया," तो तुमने पहले ममी से क्यो नही कहा ?"

"पहले मुझे याद नही रहा। अब याद से कह दूगा।"

कुछ देर दोनो चुपचाप चलते रहे। फिर बच्चे ने पूछा, "पापा, तुम मेरे जन्म दिन की पार्टी मे क्यों नहीं आए ? ममी कहती थी तुम विलायत गए हुए थे।"

"हा, मैं विलायत गया हुआ था।"

"तो पापा, अब तुम विलायत नही जाना।"

"क्यो ?"

"मेरे को अच्छा नही लगता। विलायत जाकर तुम्हारी शकल और ही तरह की हो गई है।"

प्रकाश एक रूखी-सी हसी हंसा। "कैसी हो गई है शकल ?"

"पता नही कैसी हो गई है ? पहले दूसरी तरह की थी, अब दूसरी तरह की है।"

"दूसरी तरह की कैसे ?"

"पता नही। पहले तुम्हारे बाल काले-काले थे। अब सफेद-सफेद हो गए हैं।"

"तू इतने दिन मरे पास नही आया, इसीलिए मेरे बाल सफेद हो गए हैं।"

बच्चा इतने जोर से हसा कि उसके कदम लड़खड़ा गए। "पापा, तुम तो विलायत गए हुए थे," उसने कहा, "मैं तुम्हारे पास कैसे आता ? मैं क्या अकेला विलायत जा सकता हूं ?"

"क्यों नही जा सकता ? तू इतना बड़ा तो है।"

"मैं सचमुच बडा हू न पापा ?" बच्चा ताली बजाता हुआ बोला, "तुम यह बात भी ममी से कह देना। वह कहती है मैं अभी बहुत छोटा हू। मैं छोटा नही हूं न पापा !"

"नही, तू छोटा कहा है ?" प्रकाश मैदान में दौड़ने लगा। "अच्छा भागकर मुझे पकड़।"

बच्चा अपनी छोटी-छोटी टागे पटकता हुआ दौड़ने लगा। प्रकाश को फिर अपने बचपन की याद आई। उसे दौड़ते देखकर तब एक बार किसी ने कहा था, "अरे यह बच्चा कैसे टांगे पटक पटककर दौड़ता है ! इसे ठीक से चलना नही आता क्या ?"

बच्चे की उगली पकड़े प्रकाश क्लब के बार-रूम में दाखिल हुआ, तो बारमैन अब्दुल्ला उसे देखकर दूर से मुसकराया। "साहब के लिए दो बोतल बियर," उसने पास खडे बैरे से कहा। "साहब आज अपने साथ एक मेहमान को लाया है।"

"बच्चे के लिए एक गिलास पानी दे दो," प्रकाश ने काउटर के पास रुककर कहा, "इसे प्यास लगी है।"

"खाली पानी ?" अब्दुल्ला बच्चे के गालों को प्यार से सहलाने लगा। "और सब दोस्तो को तो साहब बियर पिलाता है और इस बेचारे को खाली पानी ?" और पानी की बोतल खोलकर वह गिलास मे पानी डालने लगा। जब वह गिलास बच्चे के मुह के पास ले गया, तो बच्चे ने वह अपने हाथ में ले लिया, "मैं अपने आप पिऊगा," उसने

कहा, "मैं छोटा थोड़े ही हूं ? मैं तो बडा हूं।"

"तू बड़ा है ?" अब्दुल्ला हंसा, "तब तो तुझे पानी देकर मैंने गलती की है। बड़े लोगों को तो मैं बियर ही पिलाता हूं।"

"बियर क्या होता है ?" बच्चे ने मुह से गिलास हटाकर पूछा।

"बियर होता नही, होती है।" अब्दुल्ला ने झुककर उसे चूम लिया, "तुझे पिलाऊं क्या ?"

"नही," कहकर बच्चे ने अपनी बांहें प्रकाश की तरफ फैला दीं। प्रकाश उसे लेकर ड्योढ़ी की तरफ चला, तो अब्दुल्ला भी उन दोनों के साथ-साथ बाहर चला आया, "किसका बच्चा है, साहब ?" उसने पूछा।

"मेरा लड़का है," कहकर प्रकाश बच्चे को सीढी से नीचे उतारने लगा।

अब्दुल्ला हंस दिया। "साहब बहुत खुशदिल आदमी है," उसने कहा।

"क्यों ?"

अब्दुल्ला हंसता हुआ सिर हिलाने लगा, "आपका भी जबाब नही है।"

प्रकाश कुछ कहने को हुआ, मगर अपने को रोककर बच्चे को लिए हुए आगे चल दिया। अब्दुल्ला ड्योढी में रुककर पीछे से सिर हिलाता रहा। बैरा शेर मोहम्मद अन्दर से निकलकर आया, तो वह और भी खुलकर हंस दिया।

"क्या बात है ? अकेला खड़ा कैसे हंस रहा है ?" शेर मोहम्मद ने पूछा।

"साहब का भी जबाब नही है," अब्दुल्ला किसी तरह हंसी पर काबू पाकर बोला।

"किस साहब का जवाब नही है ?

"उस साहब का," अब्दुल्ला ने प्रकाश की तरफ इशारा किया, "उस दिन बोलता था कि इसने इसी साल शादी की है और आज बोलता है कि यह पांच साल का बाबा इसका लडका है। जब आया था, तो अकेला था। और आज इसके लड़का भी हो गया !" प्रकाश ने एक बार घूमकर तीखी नजर से उसकी तरफ देख लिया। अब्दुल्ला एक बार फिर खिलखिला उठा। "ऐसा खुशदिल आदमी मैंने आज तक नहीं देखा।"

"पापा, घास हरी क्यों होती है ? लाल क्यो नही होती ?" क्लब से निकलकर प्रकाश ने बच्चे को एक घोडा किराये पर ले दिया था। लिनेनमार्ग को जानेवाली पग-डण्डी पर वह खुद उसके साथ-साथ पैदल चल रहा था। घास के रेशमी फैलाव पर कोहरे का आकाश इस तरह झुका था जैसे अन्दर की उमड़ती वासना उसे अपने को उस पर दबा देने के लिए विवश कर रही हो। बच्चा उत्सुक आंखों से आसपास की पहाडियो और सामने से बहकर जाती पानी की पतली धार को देख रहा था। कभी कुछ क्षण वह अपने को भूला रहता, फिर अपने अन्दर के किसी भाव से प्रेरित होकर काठी पर उछलने लगता।

"हर चीज का अपना रंग होता है," प्रकाश ने बच्चे की जांघ को हाथ से दबाए हुए कहा और कुछ देर खुद भी हरियाली के फैलाव में खोया रहा।

"हर चीज का अपना रंग क्यों होता है ?"

"क्योंकि कुदरत ने हर चीज का अपना रंग बना दिया है।"

"कुदरत क्या होती है ?"

प्रकाश ने झुककर उसकी जांघ को चूम लिया। "कुदरत यह होती है," उसने कहा। जांघ पर गुदगुदी होने से बच्चा भी हंसने लगा।

"तुम झूठ बोलते हो," उसने कहा।

"क्यों ?"

"तुमको इसका पता ही नहीं है।"

"अच्छा, तो तू बता घास का रंग [illegible] ?"

"घास मिट्टी के अ[illegible]

"अच्छा ? तुझे इ[illegible]

बच्चा उछलता हुआ लगाम को झटकने लगा। "मेरे को ममी ने बताया था।"

प्रकाश के होंठों पर एक विकृति-सी मुस्कराहट आ गई। उसे लगा जैसे आज भी उसके और वीना के बीच एक द्वन्द्व चल रहा हो और वीना उस द्वन्द्व में उस पर भारी पड़ने की चेष्टा कर रही हो। "तेरी ममी ने तुझे और क्या-क्या बता रखा है ?" वह बोला, "यह भी बता रखा है कि आदमी के दो टांगें क्यों होती हैं और चार क्यों नहीं ?"

"हां। ममी कहती थी कि आदमी के दो टांगें इसलिए होती हैं कि वह आधा ज़मीन पर चलता है, आधा आसमान में।"

"अच्छा ?" प्रकाश के होंठों पर हंसी और मन में उदासी की एक रेखा फैल गई। मुझे इसका पता नहीं था।"

"तुमको तो किसी बात का भी पता नहीं है, पापा !" बच्चा बोला, "इतने बड़े होकर भी पता नहीं है !"

घास, बर्फ और आकाश के रंग दिन में कई-कई बार बदल जाते थे। बदलते रंगों के साथ मन भी और से और होने लगता था। सुबह उठते ही प्रकाश बच्चे के आने की प्रतीक्षा करने लगता। बार-बार वह बालकनी पर जाता और टूरिस्ट होटल की तरफ देखता हुआ देर-देर तक वहां खड़ा रहता। नाश्ता या खाना खाने जाने के लिए भी वह वहां से नहीं हटना चाहता था। उसे डर था कि बच्चा इस बीच वहां आकर लौट न जाए। तीन दिन में उसे साथ लिए वह कितनी ही बार घूमने के लिए गया था, उसके घोड़े के पीछे-पीछे दौड़ा था और उसके साथ घास पर लोटता रहा था। बच्चा जान-बूझकर रास्ते के कीचड़ में अपने पांव लथपथ कर लेता और होंठ बिसोरकर कहता, "पापा, पांव धो दो।" वह उसे उठाए इधर-उधर पानी ढूंढ़ता फिरता। बच्चे को वह जिस किसी कोण से देखता, उसी कोण से उसकी तसवीर ले लेना चाहता। जब बच्चा थक जाता और लौटकर अपनी ममी के पास जाने का हठ करने लगता, तो वह उसे तरह-तरह के लालच देकर अपने पास रोक रखना चाहता। एक बार उसने बच्चे को अपनी मां के साथ दूर से आते देखा और उतरकर नीचे चला गया। जब वह पास पहुंचा, तो बच्चा दौड़कर उसकी तरफ आने की जगह मां के साथ फोटोग्राफर की दुकान के अन्दर चला गया। वह कुछ देर सड़क पर रुका रहा, फिर यह सोचकर ऊपर चला आया कि फोटोग्राफर की दुकान से निकलकर बच्चा अपने-आप ऊपर आ जाएगा। मगर बालकनी पर खड़े-खड़े उसने देखा कि बच्चा दुकान से निकलकर उस तरफ आने की बजाय हठ के साथ अपनी मां का हाथ खींचता हुआ उसे वापस टूरिस्ट होटल की तरफ ले जा रहा है। उसका मन हुआ कि फिर नीचे जाकर बच्चे को अपने साथ ले आए, मगर कोई चीज़ उसके पैरों को रोके रही और वह वहीं खड़ा उसे देखता रहा। शाम तक न जाने कितनी बार वह बालकनी पर आया और कितनी-कितनी देर वहां खड़ा रहा। आखिर उससे नहीं रहा गया, तो उसने नीचे जाकर कुछ चेरी खरीदी और बच्चे को देने के बहाने

टूरिस्ट होटल की तरफ चल दिया। अभी वह टूरिस्ट होटल से कुछ फासले पर था कि बच्चा अपनी मा के साथ बाहर आता दिखाई दिया। मगर उस पर नज़र पड़ते ही वह वापस होटल की गैलरी में भाग गया।

प्रकाश जहां था, वहीं खड़ा रहा। पल-भर के लिए उसकी आंख बीना से मिली। उसे लगा कि बीना का चेहरा पहले से कुछ सांवला हो गया है और उसकी आखो के नीचे स्याह दायरे उभर आए हैं। वह पहले से काफी दुबली भी लग रही थी। कुछ पल रुके रहने के बाद प्रकाश आगे बढ़ गया और चेरीवाला लिफाफा बीना की तरफ बढ़ाकर खुश्क गले से बोला, "यह मैं बच्चे के लिए लाया था।"

बीना ने लिफाफा ले लिया, मगर लेते हुए उसकी आंखें दूसरी तरफ मुड़ गईं। "पलाश!" उसने कुछ अस्थिर आवाज़ मे बच्चे को पुकारा, "यह ले, पापा तेरे लिए चेरी लाए हैं।"

"मैं नही लेता," बच्चे ने गैलरी से कहा और भागकर और भी दूर चला गया।

बीना ने एक असहाय नज़र बच्चे पर डाली और प्रकाश की तरफ देखकर बोली, "कहता है, मैं पापा से नही बोलूगा। वे सुबह रुके क्यों नही, चले क्यों गए?"

प्रकाश बीना को उत्तर न देकर गैलरी मे चला गया और कुछ दूर बच्चे का पीछा करके उसने उसे बांहो में उठा लिया। "मैं तुमसे नही बोलूंगा, कभी नही बोलूगा," बच्चा अपने को छुड़ाने की चेष्टा करता कहता रहा।

"ऐसी क्या बात है?" प्रकाश उसे पुचकारने की चेष्टा करने लगा, "पापा से इस तरह नाराज़ होते हैं क्या?"

"तुमने मेरी तसवीरें क्यों नही देखी?"

"कहां थी तेरी तसवीरें? मुझे तो पता ही नही था।"

"पता क्यो नही था? तुम दुकान के बाहर से ही क्यों चले गए थे?"

"अच्छा ला, पहले तेरी तसवीरें देखें, फिर घूमने चलेंगे।"

"यह सुबह आपको दिखाने के लिए ही तसीवीरें लेने गया था," बीना के साथ खड़ी एक युवा स्त्री ने कहा। प्रकाश ने ध्यान नही दिया था कि उसके साथ कोई और भी है।

"तसवीरें मेरे पास थोड़े ही न हैं? उसी के पास हैं।"

"सुबह फोटोग्राफर ने निगेटिव दिखाए थे, पाज़िटिव वह अब इस वक्त देगा," उसी स्त्री ने फिर कहा।

"तो चल, पहले दुकान पर चलकर तेरी तसवीरें ले लें। देखें तो सही कैसी तसवीरें हैं!"

"मैं ममी को साथ लेकर जाऊंगा," बच्चे ने उसकी बांहों मे मचलते हुए कहा।

"हां, हां, तेरी ममी भी साथ आ रही है," कहते हुए प्रकाश ने एक बार बीना की तरफ देख लिया। बीना होंठ दांतो में दबाए आंखें झपक रही थी। वह चुपचाप उसके साथ चल दी।

फोटोग्राफर की दुकान में दाखिल होते ही बच्चा प्रकाश की बांहो से उतर गया और फोटोग्राफर से बोला, "मेरे पापा को मेरी तसवीरें दिखाओ।" फोटोग्राफर ने तसवीरें निकालकर मेज़ पर फैला दी, तो बच्चा एक-एक तसवीर उठाकर प्रकाश को दिखाने लगा, "देखो पापा, यह वही की तसवीर है न जहा से तुमने कहा था, सारा काश्मीर नज़र आता है? और यह तसवीर भी देखो जो तुमने मेरी घोड़े पर बैठे हुए उतारी थी…।"

"दो दिन से बिलकुल साफ बोल रहा है," बीना के साथ की युवा स्त्री ने कहा, "कहता है [illegible] बोला कर।"

[illegible] नोट निकालकर फोटोग्राफ [illegible]

फोटोग्राफर पल-भर असमंजस में उसे देखता रहा। फिर बोला, "पैसे तो अभी आप [illegible] बीस रुपये दिए थे, उनमें से दो-एक [illegible]

"[illegible] बाद में हो जाएगा," कहकर प्रकाश ने नोट वापस जेब में रख लिया और बच्चे की उंगली पकड़े दुकान से बाहर निकल आया। कुछ कदम चलने पर पीछे से बीना का स्वर सुनाई दिया, "यह आपके साथ घूमने जा रहा है ?"

"हां !" प्रकाश ने थोड़ा चौंककर पीछे देख लिया। "मैं अभी थोड़ी देर में इसे वापस छोड़ जाऊंगा।"

"देखिए, आपसे एक बात कहनी थी'''।"

"कहिए'''।"

बीना पल-भर कुछ सोचती हुई चुप रही। फिर बोली, "इसे ऐसी कोई बात मत बताइएगा जिससे यह'''।"

प्रकाश को लगा जैसे कोई ठण्डी चीज उसके स्नायुओं से छू गई हो। उसकी आंखें झुक गईं और उसने धीरे से कहा, "नहीं, मैं ऐसी कोई बात इससे नहीं कहूंगा।" उसे खेद हुआ कि एक दिन पहले जब बच्चा हठ करके कह रहा था कि 'पापा' और 'पिताजी' एक ही व्यक्ति को नहीं कहते—'पापा' को पापा कहते हैं और 'पिताजी' मम्मी के पापा को—तो वह क्यों उसकी गलतफहमी दूर करने की कोशिश करता रहा था।

वह अकेला बच्चों के साथ क्लब की सड़क पर चलने लगा, तो कुछ दूर जाकर बच्चा सहसा रुक गया। "हम कहां जा रहे हैं, पापा ?" उसने पूछा।

"पहले क्लब चल रहे हैं," उसने कहा, "वहां से घोड़ा लेकर आगे घूमने जाएंगे।"

"नहीं, मैं वहां उस आदमी के पास नहीं जाऊंगा," कहकर बच्चा सहसा पीछे की तरफ चल दिया।

"किस आदमी के पास ?"

"वह जो वहां क्लब में था। मैं उसके हाथ से पानी भी नहीं पिऊंगा।"

"क्यों ?"

"मुझे वह आदमी अच्छा नहीं लगता।"

प्रकाश पल-भर बच्चे को देखता रहा, फिर उसकी तरफ मुड़ आया। "हां, हम उस आदमी के पास नहीं चलेंगे," उसने कहा, "मुझे भी वह आदमी अच्छा नहीं लगता।"

बहुत दिनों के बाद उस रात प्रकाश को गहरी नींद आई। ऐसी नींद, जिसमें सपने दिखाई न दें, उसके लिए लगभग भूली हुई चीज हो चुकी थी। फिर भी जागने पर उसे अपने में ताजगी का अनुभव नहीं हुआ, अनुभव हुआ एक खालीपन का। जैसे कोई चीज उसके अन्दर उफनती रही हो, जो गहरी नींद सो लेने से चुक गई हो। रोज की तरह उठकर वह बालकनी पर गया। देखा आकाश साफ है। रात को सोया था, तो

बारिश हो रही थी। मगर उस धुले-निखरे आकाश को देखकर आभास तक नहीं होता था कि कभी वहां बादल भी घिरे रहते थे। सामने की पहाड़ियां सुबह की धूप में धुलकर उजली हो उठी थी।

प्रकाश काफी देर वहां खड़ा रहा—अपनी ताज़गी मे एक जड़ता का अनुभव करता हुआ। फिर दूर उठते बादल की तरह कोई चीज उसे अपने में उमड़ती महसूस होने लगी और उसका मन एक दबी-सी आशंका से सिहर गया। कहीं ऐसा तो नहीं कि···?

वह बालकनी से हट आया। पिछली शाम बच्चे ने उसे बताया था। उसकी ममी कह रही थी कि दिन साफ हुआ, तो वे लोग सुबह वहां से चले जाएंगे। रात को जैसी बारिश हो रही थी, उससे सुबह तक आसमान खुलने की कोई सम्भावना नहीं लगती थी। इसलिए सोते वक्त वह इस तरफ से लगभग निश्चिन्त था। मगर रात-रात में आसमान का रूप बिलकुल बदल गया था। तो क्या सचमुच आज वे लोग वहां से चले जाएंगे?

उसने कमरे मे बिखरे सामान को देखा—कुछ इनी-गिनी चीजें थीं। चाहा कि उन्हें सहेज दे, मगर किसी भी चीज़ को रखने-उठाने को मन नहीं हुआ। बिस्तर को देखा। उसमें रोज से बहुत कम सलवटें थीं। लगा जैसे रात की गहरी नींद के लिए वह बिस्तर ही दोषी हो, और गहरी नींद बरसते आकाश के साफ हो जाने के लिए!

धीरे-धीरे दोपहर की तरफ बढने लगी। इससे उसके मन को कुछ सहारा मिला। वह चाह रहा था कि इसी तरह शाम हो जाए और फिर रात—और बच्चा उससे विदा लेने न आए। मगर जब दोपहर भी ढलने लगी और बच्चा नहीं आया, तो उसके मन मे एक और आशंका सिर उठाने लगी। कहीं ऐसा तो नहीं कि उसकी ममी सुबह-सुबह ही उसे लेकर वहां से चली गई हो?

वह बार-बार बालकनी पर जाता—एक धड़कती आशा लिए। बार-बार टूरिस्ट होटल की सडक पर नज़र दौड़ाता और पहले से अधिक अस्थिर होकर कमरे में लौट आता। उसकी धमनियों मे लहू की हर बूंद उत्कण्ठित और व्याकुल थी। उसने सुबह से कुछ खाया नहीं था, इसलिए भूख भी उसे परेशान कर रही थी। कुछ देर बाद कमरा बन्द करके वह खाना खाने चला गया। बड़े-बड़े कौर निगलकर किसी तरह दो रोटियां गले से उतारीं और जल्दी से वापस चला आया। मगर उतनी देर भी कमरे से बाहर रहना उसे एक अपराध-सा लग रहा था। लौटते हुए उसने सोचा कि उसे खुद जाकर टूरिस्ट होटल से पता कर लेना चाहिए। मगर सडक की चढ़ाई चढते हुए उसने दूर से देखा—बीना बच्चे के साथ उसकी बालकनी के नीचे सड़क पर खड़ी थी।

वह तेज़-तेज़ चलकर उनके पास पहुंच गया। मगर बच्चे ने उसकी तरफ नहीं देखा। वह अपनी मां का हाथ खींचता हुआ किसी चीज़ के लिए हठ कर रहा था। प्रकाश ने उसकी बांह हाथ में ली, तो वह बांह छुड़ाने के लिए ज़मीन पर लोटने लगा। "मैं तुम्हारे घर नहीं जाऊंगा," उसने लगभग चीखकर कहा। प्रकाश अचकचा गया और उसकी बांह छोड़कर जड़-सा खड़ा रहा।

"मुझसे नाराज़ है क्या?" उसने बिना दोनों मे से किसी की तरफ देखे पूछ लिया।

"ममी, मेरे साथ ऊपर क्यों नहीं चलती?" बच्चा उसी तरह चिल्लाया।

प्रकाश और बीना की आंखें मिलने को हुईं, मगर पूरी तरह नहीं मिल पाईं। प्रकाश ने बच्चे की बांह फिर हाथ मे ले ली और तटस्थ स्वर में बीना से कहा, "आप भी

आ जाइए न !"

"इसे आज जाने क्या हुआ !" बीना कुछ झुंझलाहट के साथ बोली। "सुबह से बात-बात पर तंग कर रहा है !"

"इस वक्त यह अकेला मेरे साथ ऊपर नहीं जाएगा," प्रकाश ने स्वर की तटस्थता अब भी बनाए रखी।

"चल, मैं तुझे ज़ीने तक पहुंचा देती हूं," बीना उसे उत्तर न देकर बच्चे से बोली, "ऊपर से जल्दी लौट आना। घोड़े वाले उधर तैयार खड़े हैं।"

प्रकाश को मन में एक नश्तर-सा चुभता महसूस हुआ। मगर जल्दी ही उसने अपने को संभाल लिया। "आप लोग आज ही जा रहे हैं ?" उसने चेष्टा की कि शब्दों से उसके मन का भाव प्रकट न हो।

"जी हां," बीना दूसरी तरफ देखती रही। "जाना तो सुबह ही था, मगर इसके हठ की वजह से इतनी देर हो गई। अब भी यह...।" और बात बीच में ही छोड़कर उसने बच्चे से फिर कहा, "चल, तुझे ज़ीने तक पहुंचा दूं।"

बच्चा प्रकाश के हाथ से बांह छुड़ाकर कुछ दूर भाग गया। "मैं नहीं जाऊंगा," उसने कहा।

"अच्छा आ," बीना बोली, "मैं तुझे ऊपर पहुंचा देती हूं—उस दिन की तरह।"

"मैं नहीं जाऊंगा," और बच्चा कुछ कदम और दूर चला गया।

"आप आप क्यों नहीं जातीं ? यह इस तरह अपना हठ नहीं छोड़ेगा," प्रकाश ने होंठ काटते हुए कहा। बीना ने आंख झपकने तक उसकी तरफ देख लिया। उस दृष्टि में एक तीखा चुभता-सा भाव था। मगर आंख झपकने के साथ ही वह भाव घुल गया और उसने अपने को सहेज लिया। उसके चेहरे पर एक दृढ़ता आ गई और उसने बच्चे को बांहों में उठा लिया। "चल, मैं तेरे साथ चलती हूं," उसने कहा।

बच्चे का रुआंसा भाव हंसी में बदल गया और उसने मां के गले में बांहें डाल दीं। प्रकाश उनसे आगे-आगे ज़ीना चढ़ने लगा।

ऊपर पहुंचकर बीना ने बच्चे को बांहों से उतार दिया और कहा, "ले अब मैं जा रही हूं।"

"नहीं," बच्चे ने उसका हाथ पकड़ लिया, "तुम यहीं रहो।"

"बैठ जाइए न," प्रकाश ने कुर्सी पर पड़ी दो-एक चीज़ें जल्दी से हटा दीं और कुर्सी बीना की तरफ बढ़ा दी। बीना कुर्सी पर न बैठकर चारपाई के कोने पर बैठ गई। तभी बच्चे का ध्यान न जाने किस चीज़ ने खींच लिया। वह उन दोनों को छोड़कर बालकनी में चला गया और वहां से उचककर सड़क की तरफ देखने लगा।

प्रकाश कुर्सी की पीठ पर हाथ रखे जैसे खड़ा था, वैसे ही खड़ा रहा। बीना चारपाई के कोने में और भी सिमटकर दीवार की तरफ देखने लगी। असावधानी के एक क्षण में उनकी आंखें मिल गईं, तो बीना ने अपनी पूरी शक्ति संचित करके पूछ लिया, "कल इसकी जेब में कुछ रुपये मिले थे। वे आपने रखे थे ?"

"हां," प्रकाश ने अटकते स्वर से कहा, "सोचा था, उनसे यह...कोई चीज़ बनवा लेगा।"

बीना पल-भर चुप रही। फिर बोली, "क्या चीज़ बनवानी होगी ?"

"कोई भी चीज़। कोई अच्छा-सा ओवरकोट या...।"

कुछ देर फिर चुप्पी रही। फिर बीना ने पूछ लिया, "कैसा कोट बनवाना होगा ?"

"कैसा भी। जैसा इसे अच्छा लगे, या···या जैसा आप ठीक समझें।"

"कोई खास तरह का कपड़ा लेना हो, तो बता दीजिए।"

"खास कपड़ा कोई नहीं···कैसा भी हो।"

"कोई खास रंग···?"

"नहीं···हां···नीले रंग का हो, तो ज्यादा अच्छा है।" कहकर प्रकाश को थोड़ा अफसोस हुआ। उसे पता था बीना को नीले रंग पसन्द नहीं है।

बच्चा उछलता हुआ बालकनी से लौट आया और बीना का हाथ पकड़कर बोला, "अब चलो।"

"पापा से प्यार तो किया नहीं और आते ही चल भी दिया ?" प्रकाश ने उसे बांहों में ले लिया। बच्चे ने उसके होठों से होठ मिलाकर एक बार अच्छी तरह उसे चूम लिया और फिर झट से उसकी बांहों से निकलकर मां से बोला, "अब चलो।"

बीना चारपाई से उठ खड़ी हुई। बच्चा उसका हाथ पकड़कर उसे बाहर की तरफ खींचने लगा। "तलो न ममी देल हो लही है," वह फिर तुतलाने लगा और बीना को साथ खींचता हुआ दहलीज पार कर गया।

"तू जाकर पापा को चिट्ठी लिखेगा न ? प्रकाश ने पीछे से आवाज दी।

"लिखूंदा।" मगर उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। पीछे मुड़कर देखा एक बार नहीं ने, और जल्दी से आंखें हटा लीं। आंखों की कोरों में अटके आंसू उसने बहने नहीं दिए। "तूने पापा को टा-टा नहीं किया," उसने बच्चे के कन्धे पर हाथ रखे हुए कहा।

'टा-टा पापा !" बच्चे ने बिना पीछे की तरफ देखे हाथ हिलाया और जीने से बीना उतरने लगा। आधे जीने से फिर उसकी आवाज सुनाई दी, "पापा का धल अच्छा है ममी, हमाला धल अच्छा है। पापा ने धल मे तो कुछ छामान ही नहीं है···!"

"तू अब चुप करेगा कि नहीं !" बीना ने उसे झिड़क दिया, "जो मुंह में आता है बोलता जाता है।"

"नहीं तुप तलूंदा, नहीं तलूंदा तुप···," बच्चे का स्वर फिर रुआंसा हो गया और वह तेज-तेज नीचे उतरने लगा। "पापा का धल दन्दा ! पापा का धल थू···!"

रात होते-होते आकाश फिर घिर गया। प्रकाश क्लब के बाथरूम में बैठा एक के बाद एक बियर की बोतलें खाली करता रहा। बारमैन अब्दुल्ला लोगों के लिए रम और व्हिस्की के पेग ढालता हुआ बार-बार कनखियों से उसकी तरफ देख लेता। इतने दिनों में पहली बार वह प्रकाश को इस तरह पीते देख रहा था। "लगता है आज साहब ने कहीं से बड़ा माल मारा है," उसने एकाध बार शेर मोहम्मद से कहा, "आगे कभी एक बोतल से ज्यादा नहीं पीता था, और आज चार-चार बोतलें पीकर भी बस करने का नाम नहीं ले रहा।"

शेर मोहम्मद ने सिर्फ मुंह बिचका दिया और अपने काम में लगा रहा।

प्रकाश की आंखें अब्दुल्ला से मिलीं, तो अब्दुल्ला मुसकरा दिया। प्रकाश कुछ क्षण इस तरह उसे देखता रहा जैसे वह आदमी न होकर एक धुंधला-सा साया हो, और सामने का गिलास परे सरकाकर उठ खड़ा हुआ। काउंटर के पास जाकर उसने दस-दस के दो नोट अब्दुल्ला के सामने रख दिए। अब्दुल्ला बाकी पैसे गिनता हुआ खुशामदी स्वर में बोला, "आज साहब बहुत खुश नज़र आता है।"

"हां।" प्रकाश इस तरह उसे देखता रहा जैसे उसके सामने से वह साया धुंधला होकर बादलों में गुम हुआ जा रहा हो। वह चलने को हुआ, तो अब्दुल्ला ने पहले सलाम

किया, फिर आहिस्ता से पूछ लिया, "क्यों साहब, वह कौन बच्चा था उस दिन आपके साथ ? किसका लड़का है वह ?"

प्रकाश को लगा जैसे साया अब बिलकुल गुम हो गया हो और सामने सिर्फ बादल ही बादल घिरा रह गया हो। उसने जैसे बादल को चीरकर देखने की चेष्टा करते हुए कहा, "कौन लड़का ?"

"अब्दुल्ला पल-भर भौंचक्का-सा हो रहा। फिर खिलखिलाकर हंस पड़ा। "तब तो मैंने शेर मोहम्मद से ठीक ही कहा था···" वह बोला।

"क्या ?"

"कि साहब तबीअत का बादशाह है। जब चाहे किसी के लड़के को अपना लड़का बना ले, और जब चाहे·· यहां गुलमर्ग में यह सब चलता है। आप जैसा हमारा एक और साहब है···।"

प्रकाश को लगा कि बादल बीच से फट गया है और चीलों की कई पंक्तियां उस दर्रे में से होकर दूर उड़ी जा रही हैं—वह चाह रहा है कि दर्रा किसी तरह भर जाए जिससे वे पंक्तियां आंखों से ओझल हो जाएं; मगर दर्रे का मुहाना धीरे-धीरे और बड़ा होता जा रहा है। उसके गले से एक अस्पष्ट-सी आवाज़ निकली और वह अब्दुल्ला की तरफ से आंखें हटाकर वहां से चल दिया।

"बस एक बाज़ी और···!" अपनी आवाज की गूंज प्रकाश को स्वयं अस्वाभाविक-सी लगी। उसके साथियों ने हल्का-सा विरोध किया, मगर पत्ते एक बार फिर बंटने लगे।

कार्ड-रूम तब तक लगभग खाली हो चुका था। कुछ देर पहले तक वहां काफी चहल-पहल थी—कई-कई नाजुक हाथों से पत्तों की नाजुक चालें चली जा रही थीं और तिरपाइयों पर शीशे के नाजुक गिलास रखे उठाए जा रहे थे। मगर अब आस-पास चार-चार खाली कुर्सियों से घिरी चौकोर मेजें ही रह गई थीं जो बहुत अकेली और उदास लग रही थीं। पॉलिश की चमक के बावजूद उनमें एक वीरानगी उभर आई थी। दीवार में बुखारी की आग कब की ठण्डी पड़ चुकी थी। जाली के उस तरफ कुछ बुझे-अधबुझे अंगारे रह गए थे—सर्दी से ठिठुरकर स्याह पड़ते और राख में गुम होते हुए।

उसने पत्ते उठा लिए। हर बार की तरह इस बार भी सब बेमेल पत्ते थे—ऐसी बाज़ी कि आदमी चुपचाप फेंककर अलग हो जाए। मगर उसी के ज़ोर देने से पत्ते बंटे थे, इसलिए वह उन्हें फेंक नहीं सकता था। उसने नीचे से पत्ता उठाया, तो वह और भी बेमेल था। हाथ से कोई भी पत्ता चलकर वह उन पत्तों का मेल बिठाने की कोशिश करने लगा।

बाहर मूसलाधार बारिश हो रही थी—पिछली रात की बारिश से भी तेज़। खिड़की के शीशों से टकराती बूंदें एक चुनौती लिए आतीं मगर बेबस होकर नीचे ढुलक जातीं। उन्हें देखकर लगता जैसे कई चेहरे खिड़की के साथ सटकर लगातार आंसू बहा रहे हों। किसी क्षण हवा से किवाड़ हिल जाते, तो वे चेहरे जैसे हिचकियां लेने लगते। हिचकियां बन्द होने पर गुस्से से घूरने लगते। उन चेहरों के पीछे घना अंधेरा था जहां लगता था, कोई चीज़ छटपटाती हुई दम तोड़ रही है।

"टिपनेयर !" प्रकाश चौंक गया। उसके हाथ के पत्तों में अब भी कोई मेल नहीं था—इस बार भी उसे फुल हैंड देना था। पत्ते फेंककर उसने पीछे टेक लगा ली और फिर खिड़की से सटे चेहरों को देखने लगा।

"तुम बहुत खुशकिस्मत आदमी हो प्रकाश, हममें सबसे खुशकिस्मत तुम्हीं हो···!" प्रकाश की आँखें खिड़की से हट आईं। पत्ते उठाकर रख दिए गए थे और मेज़ पर हार-जीत का हिसाब किया जा रहा था। हिसाब करने वाला आदमी ही उससे कह रहा था, "कहते है न, जो पत्तो मे बदकिस्तत हो, वह ज़िन्दगी मे खुशकिस्मत होता है ! अब देख लो सबसे ज्यादा तुम्ही हारे हो, इसलिए मानना पड़ेगा कि सबसे खुशकिस्मत आदमी तुम्ही हो।"

प्रकाश ने अपने नाम के आगे लिखे जोड को देखा। पल-भर के लिए उसकी धड़कन बढ गई कि जेब में उतने पैसे हैं भी या नहीं। उसने पूरी जेब खाली कर ली। लगभग हारी हुई रकम के बराबर ही पैसे थे। रकम अदा कर देने के बाद दो-एक छोटे सिक्के ही उसके पास बच रहे—और उनके साथ वह अन्तर्देशीय पत्र जो शाम की डाक से आया था और जिसे जेब में रखकर वह क्लब चला आया था। पत्र निर्मला का था जो उसने अब तक खोलकर पढ़ा नहीं था। जेब मे पड़े-पड़े वह काफी मुचड़ गया था। निर्मला के अक्षरों पर नजर पडते ही उसके कई-कई चेहरे उसके सामने उभरने लगे—उसके हाथ का एक-एक अक्षर जैसे एक-एक चेहरा हो! घर से चलने के दिन भी वह उसके कितने-कितने चेहरे देखकर आया था ! एक चेहरा हंस रहा था, एक रो रहा था; एक बाल खोले जोर-जोर से चिल्ला रहा था और धमकियां दे रहा था और एक···एक भूखी आंखों से उसके शरीर को निगलना चाह रहा था ! उसने अपनी ज़रूरत का कुछ सामान साथ लाना चाहा था, तो एक चेहरा उसके साथ कुश्ती करने पर उतारू हो गया था।

"निर्मला !" उसने हताश होकर कहा था, "तुम्हें इस तरह गुत्थमगुत्था होते शरम नहीं आती ?"

"क्यों ?" निर्मला हस दी थी, "मरद और औरत रात-दिन गुत्थमगुत्था नहीं होते क्या ?"

वह बिना एक कमीज तक साथ लिए घर से निकल आया था। बनियानें, तौलिये, कमीज़ें सब कुछ उसने आते हुए रास्ते में खरीदा था। यह सोचने के लिए वह नहीं रुका था कि उसके पास जो चार-पांच सौ रुपये हैं, वे इस तरह कितने दिन चलेंगे ! बिछाने-ओढने का सारा सामान भी उसने वहीं से किराये पर लिया था···!

और वहां आने के चौथे-पांचवें दिन से ही निर्मला के पत्र आने शुरू हो गए थे—वह उसके किसी मित्र के यहां जाकर उसका पता ले आई थी। उन पत्रों में भी निर्मला के सब चेहरे झलक जाते थे ··वह सख्त बीमार है और अस्पताल जा रही है··· उसके भाई पुलिस में खबर करने जा रहे हैं कि उनका बहनोई लापता हो गया है··· वह रात-दिन बेचैन रहती है और दीवारों से पूछती रहती है कि उसका पति कहा है··· वह जोगन का वेश धारण करके जंगलो मे जा रही है···दो दिन के अन्दर-अन्दर पत्र का उत्तर न आया, तो उसके भाई उसे हवाई जहाज में वहां भेज देंगे···उसके छोटे भाई ने उसे बहुत पीटा है कि वह अपने 'खसम' के पास क्यो नहीं जाती···!

अन्तर्देशीय पत्र प्रकाश की उंगलियों मे मसल गया था। उसे फिर से जेब में रखकर वह उठ खड़ा हुआ। बाहर ड्योढी में कुछ लोग खड़े थे—इस इन्तज़ार में कि बारिश रुके, तो वहा से चलें। उनके बीच से होकर वह बाहर निकल आया।

"आप इस बारिश में जा रहे हैं ?" किसी ने पूछ लिया। उसने उत्तर नहीं दिया और चुपचाप कच्चे रास्ते पर चलने लगा। सामने नीडोज़ होटल की बत्तियां जगमगा रही थीं—बाकी सब तरफ, दायें-बायें और ऊपर-नीचे अंधेरा ही अंधेरा था। क्लब के

अहाते से निकलकर वह सड़क पर पहुंचा, तो पानी और तेज़ हो गया। उसका सिर पूरा भीग गया था और पानी की धारें गरदन से होकर कमीज़ के अन्दर जा रही थी। हाथ-पैर सुन्न हो रहे थे, फिर भी आंखों में एक जलन-सी महसूस हो रही थी। कीचड़ से लथपथ जूता चलने मे आवाज़ करता, तो शरीर मे कोई चीज़ झनझना जाती। तभी एक नई सिहरन उसके शरीर में दौड़ गई। उसे लगा कि वह सड़क पर अकेला नहीं है—कोई और भी अपने नन्हे-नन्हें पांव पटकता उसके साथ चल रहा है। रास्ते की नाली पर बना लकड़ी का पुल पार करते हुए उसने घूमकर पीछे देख लिया। उसके साथ-साथ चल रहा था एक भीगा कुत्ता—कान झटकता हुआ, खामोश और अन्तर्मुख !

रोज़गार

वह दुबली-सी लड़की साधना रेस्तरां के बाहर टैक्सी से उतरी, और अन्दर जा कर कोने की मेज़ के पास बैठ गई।

साधना रेस्तरा, नि सन्देह, किसी कवि-मस्तिष्क की उपज है। वहा के किवाड़ पुरानी आवनूस की लकड़ी के हैं, जिनका निर्माण-काल सत्रहवीं शताब्दी है। अन्दर बैठने की मेज़ों के पीछे बुक-स्टाल है। दाईं तरफ एक प्लेटफार्म है, जहा कोई बड़ी पार्टी हो तो डिनर की मेज़ें लगा दी जाती हैं, वरना चार-पांच शतरंज की मेज़ें बिछी रहती हैं, सफेद बालो वाले कई बुजुर्ग वहा बैठे मोहरो की साधना में लीन रहते हैं। रेस्तरा में कोई ज़ोर से बात करे, या कहकहा लगाए, तो सहसा उन बुजुर्गों की भौंहें तन जाती हैं, और चेहरे इस तरह सिकुड़ जाते हैं जैसे उन्हें सख्त चोट पहुंचाई गई हो। यू प्रायः रेस्तरा में सर्द खामोशी छाई रहती है, और केवल छुरी-कांटो और मोहरों के चलने की आवाज़ ही सुनाई देती है। वहा बैठकर खेलनेवालो की मौन साधना का कुछ ऐसा अभ्यास है कि बाज़ी का अन्तिम मोहरा चलते हुए वे मुह से बात तक नहीं कहते।

वह लड़की मेज़ पर कुहनिया रखे, सीधी नज़र से प्लेटफार्म की तरफ देखती रही, उसकी नज़र मे एक जड़ता थी, जैसे उसके लिए काठ के मोहरो और उन्हे चलानेवाले हाथों मे विशेष अन्तर न हो। बैरा काफी और सैंडविच लाकर उसके सामने रख गया तो वह सैंडविच के ज़रा-ज़रा-से टुकड़े दांतो से काटकर धीरे-धीरे चबाने लगी ऐसे, जैसे उस काम मे काफी मेहनत पड़ती हो। प्याली मे कॉफी उंडेलकर वह देर तक उसे चम्मच से हिलाती रही, फिर हल्के-हल्के घूंट भरने लगी। उसकी आखें प्लेटफार्म से हटती, तो दीवार पर स्थिर हो रहती। बीच बीच मे वह सतर्क नज़र से इधर-उधर देख लेती। कॉफी समाप्त करके उसने आख के इशारे से बिल मंगवाया और सवा रुपया तश्तरी मे डालकर उठ खड़ी हुई।

फुटपाथ पर आकर वह भटकी हुई मुद्रा में कुछ क्षण इधर-उधर देखती रही। रुखे-मुरझाए चेहरों का एक जुलूस फ्लोरा फाउंटेन की तरफ जा रहा था, दूसरा उस तरफ से आ रहा था। स्त्री और पुरुष के भेद से रहित प्रायः एक से चेहरे—हैट, कोट, फ्रॉक, स्कर्ट और कॉलर। बस पकड़नेवालो के लम्बे-लम्बे क्यू धीरे-धीरे आगे को सरक रहे थे। घण्टियो की टन्-टन् और इजनो की घबराहट के बीच कई-कई आकृतिया जल्दी-जल्दी सड़क पार कर रही थी। कई एक पहिये, एक-दूसरे के पीछे घूमते हमवार सड़क

पर फिसलते जाते थे। लड़की ने दो-एक बार होंठो पर जबान फेरी और एडवर्ड्स होटल की तरफ मुड गई।

एडवर्ड्स होटल और साधना रेस्तरां के बीच सिर्फ एक गली का फासला है, जो अक्सर वीरान पडी रहती है। गली मे घूमते ही लिफ्टमैन रहमान ड्योढ़ी में कुर्सी डाले बैठा नजर आता है। लिफ्ट हफ्ते मे चार दिन खराब रहती है, इसलिए ज्यादातर उसे अपनी मूछो पर हाथ फेरते रहने के सिवा कोई काम नही होता। लड़की ड्योढ़ी के पास पहुंची, तो रहमान उसे सलाम करने के लिए नही उठा। मूछ के कोने को उगली और अगूठे के बीच मसलते हुए उसने उसे तिरछी आंख से देखा, और वह जीने का पहला मोड़ मुड़ गई, तो पहले की तरह गली के शून्य को गम्भीर दृष्टि से देखने लगा।

लड़की अधेरे मे रास्ता टटोलकर कदम रखती हुई सीढिया चढती गई। रूबी एण्ड कम्पनी, दिनशा ब्रदर्स और मोटर पार्ट्स प्राइवेट लिमिटेड के दफ्तरों के पास से गुजरकर वह चौथी मजिल पर पहुची। उसकी आंखें फीरोजी शीशे मे जड़े मैले अक्षरों से टकराईं—राइट्स ऑफ एडमिशन रिजर्व्ड। पल-भर सांस लेकर उसने अन्दर पोटिको मे कदम रखा, जिसमे एक टूटा सोफा सेट, एक पैबंद-लगी दरी, एक तिपाई और कुछ कुर्सिया लगाकर मिसेज एडवर्ड्स ने ड्राइंग-रूम का नाम दे रखा था। लडकी के अन्दर पहुंचते ही वहां बैठकर अखबार पढते तीन-चार लोगो की आखे उसकी तरफ उठ गईं। दो-एक की भौहो पर सवालिया निशान उभर आए।

लडकी ने छः नम्बर कमरे का दरवाजा खटखटाया। कुछ क्षणों में दरवाजा खुला और वह अन्दर चली गई। दरवाजा बन्द हो गया।

ड्राइंग-रूम मे कानाफूसी होने लगी।

"कौन है यह ?"

"उसकी बहन है।"

"उस हरामी की…?"

"हा, उसकी बड़ी बहन है।"

'सगी बहन ?"

"सुना यही है कि सगी बहन है।"

"और इसके मा-बाप ?"

"मा-बाप का पता नही है। यह बहन ही कभी-कभी यहां आती है।"

"वैसे यह रहती कहां है ?"

"यह भी ठीक पता नहीं।…सुना है यह टैक्सी है…।"

कुछ होंठो पर मुसकराहटें फैल गईं। आवाज और धीमी हो गईं।

"यूं तो काफी दुबली-सी है।"

"पर कट अच्छा है।"

"वैसे उम्र भी ज्यादा नही है। बाईस-तेईस साल की होगी।"

"अट्ठाईस-तीस का तो वही लगता है।"

"पर वह अभी इक्कीस का भी नहीं है। अन्दर से खोखला हो चुका है, इसलिए बड़ा लगता है।"

"वह तो कुछ करता-धरता नही। दिन-रात यहीं पड़ा रहता है।"

"साले की बहन जो कमाती है।"

इस पर मुसकराहटें और लम्बी हो गईं।

थोड़ी देर में छः नम्बर का दरवाजा खुला और वह लड़की और उसका भाई

साथ-साथ बाहर निकले। लडकी ने मिसेज एडवर्ड्स के कमरे का दरवाजा खटखटाया। मिसेज एडवर्ड्स, जिसके पतले चेहरे की सब लकीरें ठोड़ी की तरफ जाती हैं, माथे पर दो स्थायी बल डाले बाहर निकली।

"यू मिस दारूवाला...?"

"येस् मिसेज एडवर्ड्स।"

मिसेज एडवर्ड्स के जबड़े सख्त हो गए। उसने दोनों को अपने कमरे में दाखिल करके दरवाजा बन्द कर लिया।

"मैं कहती हू इस बार तुम अपने भाई को साथ ही लेती जाओ," उसने कांपते हाथो से अपने लिए कुर्सी खीचते हुए कहा, "यह और यहां रहेगा, तो एक दिन मैं ही अपना होटल छोड़कर चली जाऊगी।"

लड़की सामने की कुर्सी पर बैठ गई। उसका भाई खड़ा रहा।

"मैं तुम्हारा बिल देने आई हूं," उसने कहा।

"तुम मेरा आज तक का बिल अदा कर दो, और इसे यहा से ले जाओ।"

लडकी की आखो मे नमी उभर आई। उसका भाई मुसकराता रहा।

"इसे हंसी आ रही है!" मिसेज एडवर्ड्स तेज आंखो से उसे देखती हुई बोली, "अपनी करतूतो पर इसे शरम नही आती।"

"मैं पैसे देकर यहा रहता हूं, मुफ्त में नही रहता।" लड़के का चेहरा अकड़ गया, और गरदन कुछ बाहर को फैल आई।

"तू पैसे देता है?" मिसेज एडवर्ड्स रजिस्टर खोलकर गुस्से मे उसके पन्ने उलटने लगी। कमाकर पैसे देता, तो तेरे होश-हवास दुरुस्त रहते। तूने तो जिन्दगी में एक ही काम सीखा है, और वह है खाना और पड़े रहना।"

"जैसे तुम्हारे यहा का खाना किसी से खाया जा सकता है!"

मिसेज एडवर्ड्स की आंखो से चिनगारियां फटने लगी।

"तो कौन कहता है तुझसे खाने के लिए? क्यो नही आज ही छोड़कर चला जाता?"

वह रसीद-बुक में लगाने के लिए कार्बन ढूढने लगी, पर अपनी उत्तेजना मे कार्बन उसे मिला नही। कार्बन रजिस्टर के नीचे दब गया था। लडकी ने वह निकालकर उसके सामने कर दिया।

"इसकी किसी बात का बुरा क्यो मानती हो मिसेज एडवर्ड्स?" उसने मुलायम स्वर मे कहा, "तुम्हे पता है, यह बीमार है।"

"यह बीमार है—यह?" मिसेज एडवर्ड्स पेंसिल को दबा-दबाकर रसीद में सख्याए भरने लगी। "मैं तुमसे ठीक कहती हूं मिस दारूवाला, इसकी बीमारी-वीमारी सब बहाना है। यह घोडे की तरह तन्दुरुस्त है, और घोड़े की तरह ही खाता है।"

"जो कुछ तुम्हारे यहा बनता है, वह घोडा ही खा सकता है, आदमी नही।"

मिसेज एडवर्ड्स बहुत अधिक उत्तेजित होने के बाद हताशा की एक सास लेकर ठंडी पड गई। लड़की ने नोट गिनकर उसके सामने रख दिए। उसने रसीद फाड़कर दे दी।

"सुन रही हो इसकी बात?" वह फरियादी की तरह बोली, "अगर यह तुम्हारा भाई न हो, तो मैं इसे एक दिन भी यहां न रहने दू। इसी वक्त इसका बोरिया-बिस्तर सड़क पर पहुंचवा दू।"

उसने नोट उठा लिए और दो बार गिनकर जेब में डाल लिए।

"इसे सुबह एक प्याली दूध और दे दिया करो," लड़की ने उठते हुए कहा। "मैं उसके पैसे अलग से दे दिया करूंगी।"

मिसेज एडवर्ड्स ने तिरस्कार-भरी नजर से उसके भाई की तरफ देखा।

"न जाने किस खुशकिस्मती से परमात्मा ने तुझे ऐसी बहन दी है, जमशेद दारू-वाला !" वह बोली, "तू कतई ऐसी बहन का भाई होने के लायक नही।"

जमशेद दारूवाला ने कंधा मोड़कर नाटकीय ढग से अपना रुख बदल लिया।

"मुझसे दोपहर के वक्त रोज ठंडा गोश्त नही खाया जाता," वह बहन की आखो मे देखता हुआ बोला, "इससे कह दो कि मेरे लिए यह उस वक्त तरी वाला गोश्त···।"

"मैं तरी वाला गोश्त नही दे सकती !" मिसेज एडवर्ड्स ने जोर से रजिस्टर बन्द कर दिया, "मैंने एक बार नही, दस बार तुमसे कह दिया है, और अब रोज इस बारे में बक-मक नही करना चाहती। पांच रुपये आठ आने रोज में बम्बई का जो दूसरा होटल तुझे कमरा और चार वक्त का खाना दे सकता हो, वहा चला जा। इसे यह चाहिए, वह चाहिए। मैंने कह दिया है, मैं एफोर्ड नही कर सकती—तरी वाला गोश्त···।"

"और यह मेरे आमलेट मे टमाटर नही डालती।"

"यही बहुत है कि मैं तुझे रोज दो अण्डे का आमलेट दे देती हूं। इससे ज्यादा मैं कुछ नही कर सकती।"

लड़की चुपचाप उठ खडी हुई, और मिसेज एडवर्ड्स से 'बाई बाई' कहकर बाहर निकल आई। उसका भाई कुर्सी की पीठ से पकड़े पल-भर खड़ा रहा, फिर कंधे हिलाकर वह भी बाहर चला आया। लड़की जीने की तरफ मुड गई तो वह ड्राइंग-रूम के सोफे पर बिखर गया।

"आज तुम्हारा जोड का दर्द कैसा है ?" किसी ने उससे पूछा।

"जैसा रोज रहता है," उसने होठ सिकोड़कर कहा, "रॉटन !"

मिसेज एडवर्ड्स अन्दर कुर्सी पर बैठी देर तक बड़बडाती रही।

यह शुरू अक्टूबर की बात थी। उसके बाद नवम्बर के अन्त तक छः-सात हफ्ते वह लड़की नही आई। वैसे वह हर आठवें-दसवें रोज आकर अपने भाई से मिल जाती थी, और उसका बिल चुका जाती थी। इतना लम्बा वकफा पड जाने से बिल के साथ-साथ मिसेज एडवर्ड्स के गुस्से का मवाद भी बरदाश्त की हद को पार करने लगा। वह रोज जमशेद से पूछती कि उसे अपनी बहन की कुछ खबर है या नही। जमशेद एक ही जवाब देता कि उसकी बहन जहन्नुम में चली गई है, और जल्द ही वह भी वहा जाने वाला है। मिसेज एडवर्ड्स कुढ़ती हुई अपने दरवाजे तक आती और ड्राइंग-रूम में बैठे लोगो के सामने अपना रोना रोने लगती। कहती कि वह औरत है, इसीलिए लोग उसे इतना तंग कर लेते हैं। उसका पति जिन्दा होता तो किसकी मजाल थी जो इस तरह का व्यवहार करता।

मिसेज एडवर्ड्स और उसके परिवार के अलावा जमशेद दारूवाला ही उस होटल की एक निश्चित इकाई था। कोई बैरा या खानसामा भी वहां साल-भर से ज्यादा नही टिकता था, जबकि जमशेद को वहा रहते डेढ़ साल से ऊपर हो गया था। वह भी पहले दो-तीन होटलो मे हगामा करने के बाद वहां आया था, वहा से भी दूसरे-तीसरे महीने

उसे चले जाना पड़ता, पर मिसेज़ एडवर्ड्स को एक खास वजह मे उसकी बहन का लिहाज़ रखना पडता था। जब-तब पाचवीं मंजिल के किसी कमरे के लिए उसकी जरूरत पड जाती थी, और वह हरबंससिंह टैक्सी-ड्राइवर को भेजकर उसे बुलवा लिया करती थी।

जमशेद दारूवाला पहले दिन से ही अपनी बीमारी की लम्बी-चौड़ी तफ़सील के साथ वहा आया था। उसके फेफड़े कमज़ोर थे, उसे जोड का दर्द था, और जब-तब उसका ब्लड-प्रेशर बढ जाता था। दो साल घर से गायब रहकर वह ये सब बीमारियां साथ ले आया था, और यहा डाक्टरी हिदायत भी कि कुछ दिन उसे पूरा आराम करना चाहिए, बहन के साथ उसके फ्लैट मे रहने मे दोनों को असुविधा थी, इसलिए उसके रहने का प्रबन्ध बहन ने होटल में कर दिया था।

जमशेद सवेरे देर से उठता। जब और लोग तैयार होकर बाहर जा रहे होते, तो वह दातो पर ब्रश करता हुआ बाथ रूम की तरफ जाता। जब खाने का समय होता, तो वह नहाने के लिए गरम पानी की माग करता। लगभग अढ़ाई बजे, जब बैरे छुट्टी कर जाते तो वह डाईनिंग रूम मे आकर खाने के लिए चिल्लाने लगता। उस समय प्रात. मिसेज एडवर्ड्स की उससे झड़प हो जाती थी। मिसेज एडवर्ड्स इस कानूनी नुक्ते को लेकर लड़ती कि बाहर लगे बोर्ड के अनुसार खाने का वक्त बारह से दो बजे तक है—उसके बाद उसे गरम खाना नही दिया जा सकता। जमशेद की नजर मे मिसेज एडवर्ड्स को ऐसा कानून बनाने का कोई अधिकार नही था। एक बोर्डर की हैसियत से उसे यह हक हासिल था कि वह जिस समय चाहे, गरम खाने की मांग करे। मिसेज एडवर्ड्स बड़बडाती हुई खुद उसका खाना गरम करके देती थी। और जो भी बना होता, उसे लेकर फिर उनमें बहस हो जाती थी।

"खूब!" जमशेद प्लेट पर नजर डालते ही कहता, "आज का क्या मीनू है, मिसेज एडवर्ड्स? स्लाइस, काले पत्थर के टुकड़े और समुन्दर का पानी! सभी सेहत-अफज़ा चीजें हैं।

"परमात्मा के घर से अपनी अम्मा को बुला ला, जो तेरे लिए इससे अच्छी चीजें बना दिया करे।"

"कुछ दिन और यहां का खाना खाऊंगा, तो मैं आप ही उसके पास पहुंच जाऊंगा।"

और मिसेज एडवर्ड्स रोज किसी न किसी के सामने घोषणा करती कि वह चौबीस घण्टे के अन्दर-अन्दर उससे कमरा खाली करवा लेगी।

मिसेज एडवर्ड्स के अलावा आस-पास के कमरो में रहनेवाले लोगो से भी जमशेद के आदान-प्रदान चलते रहते थे। हर कमरे मे जाकर वहां ठहरे हुए लोगो से परिचय कर लेना उसकी हॉबी थी परिचय के बाद शीघ्र ही वह हर एक से बेतकल्लुफ हो जाता, और उनसे ड्रिंक की या छोटे मोटे कर्ज की माग करने लगता। डेढ़ साल के इतिहास में उसने किसी का कर्ज कभी लौटाया नही था—सिवाय एक कर्ज के, जो मार-पीट की नौबत आ जाने से मिसेज एडवर्ड्स ने उसकी तरफ से अदा कर दिया था, और उसके हिसाब मे उसकी बहन से वसूल कर लिया था। नीले या पीले रंग की टी-शर्ट पहने वह ड्राइंग-रूम के सोफे पर लेटा सीटी बजाता रहता। किसी भी जवान लड़की के पास से गुज़रने पर उसकी सीटी की आवाज ऊंची हो जाती। उसका एक हाथ माथे की लटों से खेलता रहता और दूसरा तरह-तरह की नाटकीय मुद्राओं में अभिनय करता रहता। कोई उससे उसका परिचय पूछता, तो वह माथे की लट को पीछे झटक-कर अदा के साथ

कहता, "मैं एक आर्टिस्ट हूं।"

फिर वह यह स्पष्ट करता कि अभी वह बीमार है—ठीक होने पर फ़ैसला करेगा कि अपने किस आर्ट को डिवेलप करे। शौक उसे सभी कलाओं का था, जिनका थोड़ा-बहुत प्रदर्शन वह वहां करता रहता था। कभी कार्टून बनाता और कभी अभिनय के साथ फ़िल्मी धुनें गाया करता। बहुत दिनों से कोई उसे ड्रिंक देने या सिनेमा दिखानेवाला नहीं मिला था, इसलिए आजकल उस पर निराशा का भूत सवार था। वह प्रायः बगलों में हाथ दबाए खिड़की के पास सड़क से गुज़रती बसों और ट्रामों को देखता रहता। उसकी दाढ़ी तीन-तीन दिन की बढ़ी रहती। मिसेज एडवर्ड्स की छोटी लड़की रोज़ा जब भी उसके पास से गुजरती, वह उसके गाल मसल देता। उसका नहाने-खाने का वक्त अब पहले से भी अनिश्चित हो गया था। कभी कोई उसकी बहन के बारे में पूछ लेता, तो वह दांत भींचकर कहता, "अपने किसी यार के साथ भाग गई होगी···कुतिया!"

कभी वह उतरकर नीचे सडक पर चला जाता और मुह उठाए बस-स्टाप के पास खड़ा रहता। घरघराहट, घंटियों की टन्-टन् और हिस्चु-हिस्चु-हिस्चु की आवाज··· वह जड़ नजर से पास से गुजरती दुनिया को देखता रहता। अंधेरा होने पर कई छायाएं फुटपाथ के खम्भों के साथ सटी हुई नजर आतीं—टांगें सीधी, जिस्म तने हुए और आंखें इधर-उधर देखती हुई सामने रीगल की बत्तियां चमकती दिखाई देतीं। बस-स्टैंड के अंधेरे में खड़ी कोई आकृति व्यस्तता प्रकट करती हुई बार-बार घड़ी की तरफ देखती। टैक्सियों के दायरे के पास खड़ी कोई आकृति वातावरण के प्रति उदासीनता प्रकट करती हुई बार-बार गले का पसीना पोंछती, या मुंह के आगे रूमाल रखकर जरा-जरा खांसती। वह आंखें गड़ाकर उन सबको देखता। पेट्रोल-पम्प के पास खड़े छोकरे, रूखे बालों पर हाथ फेरते हुए, एक-दूसरे को आंखों से इशारा करते। थोड़ी देर में वे आकृतियां टैक्सियों में दाखिल हो जातीं, और टैक्सियां दायें और बायें को मुड़कर भीड़ में खो जातीं। उसकी आंखें उधर से हटतीं, तो रीगल की बत्तियों से चुंधिया जातीं—इन्ग्रिड बर्गमेन और ग्रेगरी पेक एक अभिजात भावातिरेक की मुद्रा में···जेनिफर जोन्स, विभोर होकर क्रॉस के सामने झुकी हुई···।

तभी वह चौंककर किसी बस या ट्राम की खिड़की की तरफ देखता, जो आंखें स्थिर होने से पहले ही सामने ओझल हो जाती।

दिन में एकाध बार वह बहन के फ्लैट पर भी हो आता। वहां हर समय उसे ताला लगा मिलता। हरबंस सिंह टैक्सी-ड्राइवर ने बताया था कि वह जब भी वहां गया है, उसने भी ताला ही लगा देखा है। छः-सात हफ्ते से किसी टैक्सी-ड्राइवर को वह नहीं मिली थी। लगता यही था कि किसी के साथ बम्बई से बाहर चली गई होगी, या शायद···।

जमशेद रात को देर-देर तक मैरीन ड्राइव पर या इण्डिया गेट के पास घूमता रहता। नैरीमन पाइंट की सीढ़ियों पर वह तब तक बैठा रहता, जब तक समुद्र का पानी उसकी टांगों तक न बढ़ आता। रात की रोशनी में चमकती सुनसान सड़कों पर से लौटते हुए उसे लगता कि वह चल नहीं रहा, किसी तरह अपने को घसीटकर आगे ले जा रहा है। वह देर से वापस आकर उस बिल्डिंग का दरवाज़ा खटखटाता, तो पहले उसे चौकी-दार की बड़बड़ाहट सुननी पड़ती। फिर जीने में बिसरकर सोए व्यक्तियों के ऊपर से लांघना पड़ता। कमरा खोलते हुए साथ के किसी कमरे से खांसी की आवाज सुनाई देती। वह पलंग पर लेट जाता, तो खांसी की आवाज आस-पास के सारे वातावरण को छा लेती। वह कई-कई बार तकिये की स्थिति बदलता, या पैंताने होकर सोने की कोशिश

करता। खांसी की आवाज बंद होती, तो कहीं से घड़ी की टिक्-टिक् सुनाई देने लगती। •• सुबह जब उसकी आख खुलती तो बारह-साढे बारह बज चुके होते। कमरे से निकलते ही मिसेज एडवर्ड्स से उसका टकराव हो जाता। उसे देखते ही मिसेज एडवर्ड्स की त्योरिया चढ जाती, और वह किसी और की तरफ देखकर कहती, "लो, साहब उठ खड़ा हुआ है।"

वह दातों को ब्रश से रगडता हुआ उसके पास से निकलकर चला जाता।

उधर से लौटकर आता, तो भी मिसेज एडवर्ड्स कोई वैसी ही बात कह देती, "अब दो बजे साहब नाश्ता करेगा।"

"दो बजे नहीं, तीन बजे करेगा साहब नाश्ता!" एक दिन जमशेद बुरी तरह भडक उठा, "तुम्हारे पेट में क्यों तकलीफ होती है?"

मिसेज़ एडवर्ड्स तमककर खडी हो गई, "मुझे तकलीफ होती है क्योंकि मेरा पैसा लगता है। तेरा बाप यहा मेरे लिए अपनी जायदाद नही छोड़ गया है।"

"बक नहीं, हरामजादी।"

"क्याऽऽ?" मिसेज एडवर्ड्स गुस्से में सब कुछ भूल गई। तू शरम से डूब नहीं मरता? बहन के पाप की कमाई से रोटी खाता है, और मेरे सामने आखें तरेरता है! थू है तेरे जैसे आदमी पर! थू···थू··"

जमशेद के हाथ ऐसे हिले जैसे अभी उसे गले से पकड़ लेगा। पर उसके घुटने नही हिले और वह जकडा-सा अपनी जगह खड़ा रहा। मिसेज एडवर्ड्स पाच नम्बर के सेठ के सामने जाकर रोने लगी, "सुना तुमने सेठजी! यह आदमी मुझे हरामजादी कह रहा है। मेरे होटल में रहकर, मेरी रोटी खाकर मुझे गाली देते इसे शरम नहीं आई। बेशरम, बेहया! मेरा मर्द आज जिन्दा होता तो देखती कि कौन मुझे इस तरह गाली देता है!"

जमशेद दांत भींचे तेजी से मुड़ा, और उसने कमरे में जाकर धम् से दरवाजा बन्द कर लिया। कुछ देर बाद पतलून-कमीज पहने वह उसी ओर तेजी के साथ निकला, और किवाड जोर से पीछे को धकेलकर जीने से नीचे चला गया।

उसके बाद वह फिर लौटकर नहीं आया।

रात के ग्यारह बजे तक मिसेज़ एडवर्ड्स इंतजार करती रही। उसके बाद उसने कमरे को ताला लगवा दिया। तीन दिन वह ड्राइंग-रूम मे हर एक के सामने रोती-कलपती रही। चौथी रात उसने दो आदमियों के सामने ताला खोला और सामान की जाच की। कपड़ो वाला ट्रंक खुला था। मुचड़ा हुआ नाइट-सूट चारपाई पर पड़ा था। मेज पर दवाई की कुछ शीशियां और एक खाली पोस्टकार्ड रखा था। एक टॉनिक की शीशी अभी खोली नहीं गई थी। फर्श पर टूटी हुई काली बाथरूम चप्पल, दो-एक बकलज और पुराने बदबूदार मोजे पड़े थे। जंग खाए शीशे के पास टूटी हुई कंघी और बदनुमा-सा शेव का सामान रखा था। तकिये के नीचे एक फटी हुई किताब थी—"हाऊ टु विन फ्रेंड्स एण्ड एन्फ्लुएंस पीपल!"

वे सब चीजें धेरे से उठवाकर उसने अपने कमरे के एक कोने में रखवा दीं। सारा समय वह दूसरों को सुनाकर कहती रही, "यह कूड़ा मेरे लिए छोड़ गया है? मैं इसे हाथ से छुऊंगी भी नहीं। मेरे सात हफ्ते का बिल है। लोग मेरे एहसान का मुझे यह बदला देते हैं···!"

अगले दिन छः नम्बर कमरे में नया किरायेदार आ गया।

इसके अठारह-बीस दिन बाद एक शाम को, जब दो-एक व्यक्ति ड्राइंग-रूम में चाय पी रहे थे, वह दुबली लड़की जीने से आकर क्षण-भर के लिए ड्योढ़ी में रुकी, फिर रूमाल से माथे का पसीना पोंछती हुई अन्दर आ गई। ड्राइंग-रूम में बैठे व्यक्तियों की आंखों में फिर सवालिया संकेत पैदा हुए। एक ने कंधे झटक दिए, दूसरा मुंह बना-कर चाय पीने में व्यस्त हो रहा।

लड़की ने छः नम्बर कमरे का दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुलने पर वह थोड़ी अचकचा गई।

"जमशेद दारूवाला यहां नहीं है ?" उसने पूछा।

"उस कमरे में जाकर पूछना मांगता है," उसे जवाब मिला, "होटल का प्रोप्रा-इट्रेस उधर रहता है।"

लड़की ने मिसेज एडवर्ड्स का दरवाजा खटखटाया। मिसेज एडवर्ड्स उसे देखकर अचकचा गई।

"यू मिस दारू वाला···?"

"येस् मिसेज एडवर्ड्स।"

"आओ, आओ!" उसने उसे अन्दर दाखिल करते हुए कहा, "लेकिन वह··· तुम्हारा भाई···वह कहां है ?"

"वह यहां नहीं है ?"

"यहां ?" मिसेज एडवर्ड्स के गले से एक अजीब-सी आवाज पैदा हुई। "यहां से तो वह कई दिन हुए भाग गया है। वट ए मैन! बैठो, कुरसी लो।"

लड़की कुरसी की बांहें पकड़कर बैठ गई। मेज पर हिसाब का रजिस्टर और रसीद की कापियां करीने से रखी थीं। टाइम-पीस के काले डायल के आगे सफेद सुइयां चमक रही थीं। हर चीज जैसे घड़ी की आवाज के साथ टिक्-टिक् कर रही थी। लड़की ने होंठों पर जबान फेरी। मिसेज एडवर्ड्स ने अपनी कुरसी का रूख बदल लिया।

"कितने दिन हुए उसे यहां से गए ?" लड़की के गले में कुछ खराश आ गई थी।

"आज बाईस-तेईस दिन हो गए।"

लड़की सूनी आंखों से मिसेज एडवर्ड्स के चेहरे को देखती रही—जैसे वह चेहरा न होकर कोई बेजान चीज हो। उसके माथे पर पसीने की बूंदें झलक आईं।

"तुम इतने दिन कहां थी ?" मिसेज एडवर्ड्स ने पूछा, "मैं रोज हरवंशसिंह से पता कराती रही हूं। वह कहता था···।"

"मैं अस्पताल में थी," लड़की कठिनाई से शब्दों को जबान पर ला पाई।

"अस्पताल में ?" मिसेज एडवर्ड्स के चेहरे पर थोड़ी कोमलता आ गई। "बीमार थी ?"

लड़की ने रूमाल से माथे का पसीना पोंछ लिया। "मेरा ऑपरेशन हुआ था।"

"ऑपरेशन ? किस चीज का आपरेशन ?"

लड़की की आंखें ऊपर उठीं, और झुक गईं। मिसेज एडवर्ड्स की आंखें उसके चेहरे को टटोलती रहीं।

"तुम्हारा मतलब है तुमने···?"

लड़की की आंखें फिर उठीं और झुक गईं।

"च्च् च्च्···!" मिसेज एडवर्ड्स की त्योरियां गहरी हो गईं।

लड़की की आंखें कई क्षण उठी रहीं और उसके होंठ कांपते रहे। मिसेज

एडवर्ड्स ने एक लम्बी सास ली। लडकी कुछ क्षण अपने में खोई रही। फिर सहमा उठ खडी हुई।

"तुम्हारे भाई का सामान पड़ा है," मिसेज एडवर्ड्स ने कोने की तरफ इशारा कर दिया।

लडकी कई क्षण कोने मे पड़ी चीजों को देखती रही।

"इन्हें बेचकर पैसे हिसाब में जमा कर लेना," उसने कहा।

"लेकिन," मिसेज एडवर्ड्स भी बिल-बुक को सहलाती हुई खड़ी हो गई। "इनमे बिकनेवाली चीज तो कोई भी नही है। उसका सात हफ्ते तीन दिन का बिल बाकी है।"

"जितना बाकी है, मैं दे जाऊंगी।"

"यही समझो कि पूरा ही बाकी है।"

"मैं दे जाऊंगी।"

और जल्दी से दरवाजा खोलकर वह जीने की तरफ बढ गई। फुटपाथ पर आकर वह सड़क पर से जाती धुधली रेखाओ को देखती रही। फिर साधना रेस्तरां के अन्दर चली गई। सामने प्लेटफार्म पर कई जगह शतरंज की बाजिया चल रही थी। गम्भीर चेहरे, गम्भीर आंखें और बगुलों की तरह मोहरों पर पडते हाथ"'। लड़की ने चेहरा सख्त किए हुए दो-एक बार आखो पर रूमाल फेरा, फिर अच्छी तरह आखों को रूमाल से दबा लिया। मोहरो को उठाते हाथ क्षण-भर के लिए रुके, और गम्भीर चेहरों की रेखाए कुछ और गहरी हो गई। बैरा पास आया, तो लड़की ने धुंधली आंखो से बैरे की तरफ देखा और सहमा उठकर रेस्तरा से बाहर आ गई। पटरी के चिकने पत्थरों पर अस्थिर कदम रखती हुई वह बस-स्टॉप के पास आकर खडी हो गई।

भीड़ से लदी बसें और ट्रामें म्यूजियम की तरफ जा रही थी, या उधर से इस तरफ आ रही थी। टैक्सियो के दायरे मे कितनी ही टैक्सिया जमा थी। आर्ट गैलरी के बाहर बहुत भीड़ थी। शायद वहा कोई प्रदर्शनी चल रही थी। बस पकड़नेवालो के क्यू धीरे-धीरे आगे को सरक रहे थे। लड़की देर तक जड़-सी अपनी जगह पर खड़ी रही और इधर से उधर और उधर से इधर देखती रही।

नये बादल

उस रात तत्ता पानी की धर्मशाला में खास हलचल दिखाई दे रही थी। धर्मशाला का चौकीदार हाथ में लालटेन लिए हुए व्यवस्थापूर्वक नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे आ-जा रहा था। धर्मशाला मे कुल सोलह कमरे थे जिनमें से ग्यारह कमरे शाम होने से पहले ही भर गए थे। शेष कमरों में से दो कमरों को उसने दोहरा ताला लगा रखा था क्योंकि कभी कोई मालिक का परवाना लेकर आ पहुंचता तो उसे जगह देना आवश्यक हो जाता था। इस तरह उसके पास कुल तीन कमरे खाली थे और जगह चाहनेवाले लगभग बारह-चौदह व्यक्ति उसके आगे-पीछे घूम रहे थे। इतने लोगों का साथ होना ही उसके लिए मुसीबत थी। लोग एक-एक करके आते तो वह उनसे मौके के मुताबिक चार-चार, आठ-आठ आने लेकर उन्हें कमरे खोल देता। मगर इतने लोगों के साथ होने से वह किसी से भी पैसे की बात नहीं कर सकता था। बिना पैसे लिए किन्हीं तीन लोगों को कमरे दे देना

भी सम्भव नहीं था क्योंकि इससे और लोग शिकायत करते कि वह पक्षपात कर रहा है। वह चाबिया ढूढ़ने के बहाने कभी इधर से उधर और कभी ऊपर-नीचे आ-जा रहा था कि किसी तरह दो-एक लोगों से अकेले मे ही बात करने का मौका लग जाए तो वह उनसे पैसे लेकर पक्षपात के दोष से बच जाए। पैसे लेकर तो वह ईमानदारी से कह सकता था' कि वे लोग औरों से पहले उसके पास आए हैं, इसलिए कमरों पर पहला हक उन्हीं का है।

उस रात इतने लोगों के एकसाथ आ जाने का खास कारण था। वैसे तो हर अमावस को बहुत-से यात्री शिमला और हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों से वहा गन्धक के चश्मे मे नहाने के लिए आया करते थे, पर उनमे से आठ-दस ही रात को धर्मशाला मे ठहरते थे। ज्यादातर लोग संध्या से पहले ही वापस चले जाते थे। परन्तु उस दिन सोमवती अमावस होने के कारण एक तो अधिक संख्या में लोग बाहर से आए थे, और दूसरे, बादल घिरे रहने के कारण वर्षा के डर से बहुत कम लोग लौटकर गए थे।

सम्भव था कि यह अनिश्चय की स्थिति देर तक बनी रहती, परन्तु वर्षा की बड़ी-बड़ी बूदों ने सहसा ही समस्या को सुलझा दिया। समस्या के इस तरह समाधान की न चौकीदार ने कल्पना की थी और न स्वयं उन लोगों ने जो बूंदें पड़नी आरम्भ होते ही अपना सामान उठाकर उन कमरों में घुस गए जिनमें दूसरे लोग पहले से ठहरे हुए थे। चौकीदार ने रोकने की चेष्टा की। अन्दर वालों ने विरोध किया, दो-एक जगह गाली-गलौज और हाथापाई भी हुई, पर क्योंकि यह कदम सामूहिक रूप से उठाया गया था और हरएक के सामने दूसरों का दृष्टान्त मौजूद था, इसलिए जो एक बार जिस कमरे में पहुंच गया वह फिर वहां से बाहर नहीं निकला। इस तरह कुछ कमरों में तो तीन-तीन, चार-चार नये आदमी पहुच गए और कुछ कमरे बिलकुल ही बचे रह गए। एक कमरे का अधिकारी, जिसके पास चार अतिथियों ने आश्रय ले लिया था, बाहर निकलकर चौकीदार को धमकाने और उससे अपनी अठन्नी वापस मांगने लगा, तो चौकीदार ने घोषणा कर दी कि उसे चाबियों का गुच्छा मिल गया है और उसने सभी बन्द कमरे खोल दिए। कमरे खुलने की सूचना पाकर भी बलात् कमरों में घुसे हुए लोग अपनी-अपनी जगह से नही हिले। अलबत्ता जिन्होंने चौकीदार को पैसे देकर कमरे लिए थे, उनमे से कई व्यक्ति एक-एक स्वतन्त्र कमरे पर अधिकार करने के इरादे से बिस्तर लपेट बाहर निकल आए, और इस तरह पाच कमरों के लिए सात-आठ अधिकारी बाहर पहुंच गए। उनमें फिर गाली-गलौज और हाथापाई हुई और दो-एक ने उसी तरह दूसरों द्वारा अधिकृत कमरों के आधे-आधे भाग पर कब्ज़ा जमा लिया जैसे कुछ देर पहले बाहर के लोगों ने उनके कमरों में आकर किया था। जो एक सज्जन भद्रतापूर्वक लौट आए, उन्होंने देखा कि उनकी सुरक्षित जगह पर तब तक नवागन्तुकों ने बिस्तर बिछा लिए हैं, जो उतनी-सी देर में सो भी गए हैं और उनके लिए दहलीज के पास जगह छोड़ दी गई है जहां वर्षा की हल्की फुहार आ रही है।

खैर, थोड़ी देर मे हंगामा शान्त हो गया। रात की निःस्तब्धता में अब सतलुज के बहने का शब्द सुनाई दे रहा था या वर्षा की बूंदों का शब्द। बीच-बीच में दूर खच्चरों की घंटियों की आवाज सुनाई देने लगती थी जो क्रमशः पास आती जाती थी। फिर लकड़ी के पुल पर खच्चरों के चलने का शब्द सुनाई देता था। उसके बाद घंटियों की आवाज रुक जाती थी। दरिया के इस पार खच्चर वालों के डेरे थे।

धर्मशाला के चार नम्बर के कमरे में चबूतरे पर एक मद्धम-सा दिया जल रहा था। दिये के पास चबूतरे पर ही एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति बैठा था जिसने चौकीदार

को अठन्नी देकर वह कमरा लिया था। चौकीदार ने अठन्नी के बदले उसे चौधरी का खतवा दे दिया था, और वहां शाम से उसका वही नाम चल रहा था। कमरे में दिया रखने के लिए उसने चौकीदार को अलग से एक इकन्नी दी थी, पर उसमें से चौकीदार ने तेल पर पच्चीस फीसदी से अधिक खर्च नहीं किया था, इसलिए दिये की लौ अब बुझने को हो रही थी।

जिस समय बाहर से तीन व्यक्ति उसके कमरे में घुस आए, उस समय चौधरी दिया बुझाकर सोने जा रहा था। तीन व्यक्तियों को अनाधिकार अपने कमरे में प्रवेश करते देख पहले तो वह कुछ अव्यवस्थित हुआ; फिर उसने साहस बटोरकर उन्हें बतलाया कि वह उसका कमरा है, वे लोग भूल से वहां आ गए हैं। इस पर जब एक नवयुवक ने स्थिति स्पष्ट की कि बाहर वर्षा होने लगी है इसलिए वे भीगने के डर से कमरे में शरण ले रहे हैं, तो वह कुछ क्षण असन्तोष के भाव से उनकी ओर देखता रहा। फिर वह चौकीदार को आवाज देने के लिए दरवाज़े तक गया। वहां से उसने आसपास के कमरों से आती हुई झगड़े की आवाज़ें सुनीं और वस्तुस्थिति का ठीक परिचय पाकर अपने स्थान पर लौट आया। उसका क्रोध खीझ में बदल गया। पहले उसने निश्चय किया कि उस घटना की ओर से ध्यान हटाकर दिया बुझाकर सो जाए। परन्तु फिर उसे लगने लगा कि उसने दिया बुझा भी दिया तो नींद नहीं आएगी। उसके हृदय में यह भाव व्याप्त हो रहा था कि उसे इस स्थिति के सम्बन्ध में कुछ न कुछ अवश्य कहना या करना चाहिए। वह लेटा हुआ कई क्षण चुपचाप आगन्तुकों तक के चेहरों का अध्ययन करता रहा। नवयुवती दरी पर लेटकर छत की ओर देख रही थी। एक नवयुवक अपने घुटने पर पुस्तक और पुस्तक पर कागज़ रखकर कुछ लिख रहा था। दूसरा नवयुवक दीवार से टेक लगाए हल्की-हल्की सीटी बजा रहा था। चौधरी उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में कल्पना करने लगा। क्या वे तीनों भाई-बहन थे? वह बहुत ध्यान से उनके चेहरों की रेखाओं का अध्ययन करने लगा। उसे उनके चेहरों में कोई समानता दिखाई नहीं दी। दोनों नवयुवक आकृति में एक-दूसरे से बहुत भिन्न थे। उनकी त्वचा और बालों के रंग भी नहीं मिलते थे। हां, नवयुवती के बालों का रंग थोड़ा एक नवयुवक के बालों से मिलता था। परन्तु बालों का रंग इस बात का प्रमाण कैसे माना जा सकता कि वे भाई-बहन हैं? फिर उनके साथ घर का कोई और व्यक्ति क्यों नहीं था? तो क्या वह नवयुवती उनमें से किसी एक की पत्नी थी? चौधरी को यह भी सम्भव प्रतीत नहीं हुआ क्योंकि नवयुवती के भाव, चेष्टाओं और वस्त्रों में पत्नीत्व का कोई लक्षण नहीं था। व्यवहार में संकोच न रहने पर भी उसके चेहरे पर कौमार्य की छाया विद्यमान थी। तो क्या? और तीसरी संभावना पर आते ही जैसे चौधरी को निश्चित उत्तर मिल गया। उसे लगा जैसे वह आरम्भ से ही वही बात सोच रहा था। वे लड़के अवश्य उस लड़की को भगाकर लाए थे। उसका तर्क इस विचार की पुष्टि करने लगा। उन लोगों के पास सामान बहुत थोड़ा था। उनके चेहरों से उद्विग्नता झलक रही थी। फिर वे बहुत थके हुए प्रतीत होते थे। चौधरी निष्कर्ष पर पहुंचकर उठ बैठा। कुछ क्षण वह नैतिक चेतना की दृष्टि से उन्हें देखता रहा। फिर उसने एक नवयुवक को लक्षित करके पूछा, "तुम लोग कहां से आए हो?"

उसके शब्द वातावरण की ध्वनियों में खोकर रह गए। नवयुवक उसकी ओर ध्यान न देकर लिखने में व्यस्त रहा। चौधरी को लगा कि वह शब्दों का उच्चारण गले से नहीं कर पाया। उसने गला साफ करके ज़रा ऊंचे स्वर में पूछा, "तुम लोग कहां से आए हो?"

इस बार नवयुवक ने उसकी ओर ज़रा देखा और पुनः अपने काम में व्यस्त हो गया।

"तुम लोग कहां से आए हो ?" चौधरी ने उठकर उनके निकट जाते हुए प्रश्न फिर से दोहराया।

चौधरी के आने पर नवयुवती उठकर बैठ गई। वह नवयुवक जो दीवार से टेक लगाकर सीटी बजा रहा था, सीधा हो गया। उसने कुछ उत्तेजित स्वर में चौधरी से पूछा, "क्या बात है ? आप क्या चाहते हैं ?"

ऐसे स्वर में सम्बोधित किए जाने से चौधरी ने अपने को अपमानित अनुभव किया। उसने नवयुवक को तीखी नज़र से देखा। वह उनसे कई प्रश्न पूछने के लिए तैयार होकर उठा था। पहले प्रश्न का उत्तर पाकर वह दूसरा प्रश्न पूछता कि उनका आपस में क्या सम्बन्ध है ! फिर वह पूछता कि वे तत्ता पानी किस मतलब से आए हैं। परन्तु अब वह कुछ न पूछकर दरवाज़े की ओर चल पड़ा।

चौधरी इस विचार से दरवाज़े की ओर चला था कि वह आसपास के लोगों से उस सम्बन्ध में बात करके उन्हें साथ लेकर आएगा। पर बाहर वर्षा ज़ोर की हो रही थी। कमरे से निकलते ही पूरी तरह भीग जाने का डर था। वह कुछ क्षण अनिश्चित-सा खड़ा रहकर फिर चबूतरे पर लौट आया। दिये की लौ अब बहुत मन्द हो गई थी। किसी भी क्षण उसके बुझ जाने की संभावना थी। चौधरी को महसूस हो रहा था कि कमरे में दिये का जलते रहना आवश्यक है। क्यों, इसका उसे कोई चेतन आभास नहीं था। बस दिया जलता रहना चाहिए, यही अस्पष्ट-सा आभास था। उसने और तेल मंगवाने के उद्देश्य से खिड़की के पास से चौकीदार को आवाज़ दी। चौकीदार ने आवाज़ का उत्तर नहीं दिया तो उसने गला साफ करके फिर आवाज़ दी, "चौकीदार।"

परन्तु चौकीदार रात की कमाई सभालकर अपनी कोठरी में चला गया था और बाहर मूसलाधार वर्षा का स्वर गूंज रहा जा, अतः उसकी आवाज़ चौकीदार के कानों तक नहीं पहुंच सकी। उसने तीसरी बार चेष्टा की पर कोई परिणाम नहीं निकला। हारकर वह पुनः चबूतरे पर लेट गया और दिये की मद्धम पड़ती हुई लौ को देखने लगा।

सहसा दिये की लौ झपककर बुझ गई। अंधेरा हो जाने से चौधरी के हृदय पर आघात-सा लगा। बादल ज़ोर से गरजा। चौधरी उठकर बैठ गया। वर्षा का स्वर भी तेज हो गया था। सावन के बादलों का इस तरह बरसना चौधरी को अस्वाभाविक लग रहा था। प्रकृति जैसे जानबूझकर अनैतिकता को प्रश्रय दे रही थी। कमरे के दूसरे भाग में ज़रा भी आहट सुनाई देती तो चौधरी की आंखें घूर-घूरकर उस दिशा की ओर देखने लगतीं, यद्यपि अंधेरा इतना था कि अपना हाथ भी देख पाना असम्भव था। आंखें देखने में जितनी असमर्थ थीं, चौधरी की कल्पना उस समय उतनी ही उर्वर होकर उसे कितना कुछ दिखला रही थी। उसने पुनः एक बार सो जाने की चेष्टा की पर उसे नींद नहीं आई। वह देर तक करवटें बदलता पड़ा रहा।

कुछ समय के बाद कमरे के दूसरे भाग से नवयुवकों के धीमे स्वर में बातचीत करने का शब्द सुनाई देने लगा। चौधरी की संपूर्ण चेतना उस ओर उन्मुख हो उठी। परन्तु बहुत चेष्टा करके भी वह उनकी बातचीत का आशय नहीं समझ सका। एक तो शब्दों का उच्चारण स्पष्ट नहीं था और दूसरे, उनकी बातचीत में कोई ऐसा सूत्र नहीं मिल रहा था, जिसे पकड़कर चौधरी की कल्पना आगे बढ़ सकती। बातचीत में बार-बार 'मुकेत' शब्द का प्रयोग होने से वह इतना ही समझ सका कि या तो ये लोग मुकेत से

आए हैं या सुकेत को जा रहे हैं । कुछ देर के बाद बातचीत रुक गई और चौधरी के पास आगे बढ़ने के लिए अपनी कल्पना ही रह गई ।

धीरे-धीरे वर्षा धीमी पड़ गई । जब वर्षा का शब्द बिलकुल रुक गया तो चौधरी बाहर जाने के उद्देश्य से अपने स्थान से उठा । उसने टटोलकर अपने कोट की जेब से माचिस की डिबिया निकाली और एक दियासलाई जलाई । दियासलाई कुछ अस्पष्ट-सी रेखाएं दिखाकर जलते ही बुझ गई । उसने दूसरी दियासलाई जलाई और हाथ की ओट करके उसे ठीक से लौ पकड़ लेने दिया । हाथ हटाने पर उसने देखा कि वे तीनों दो दरियां साथ-साथ बिछाकर उन पर सो गए हैं । वह कुछ क्षण असमंजस में खड़ा रहा। फिर कमरे से बाहर निकल आया ।

हल्की-हल्की फुहार अब भी पड़ रही थी । सतलुज के बहने का शब्द अब अधिक स्पष्ट सुनाई दे रहा था । बाहर आते ही चौधरी के शरीर में हल्की-सी कंपकंपी दौड़ गई । आसपास के कमरों का वातावरण निःस्तब्ध प्रतीत हो रहा था । केवल दो नम्बर कमरे के पास बैठी हुई एक रोगिणी कुतिया बिलबिला रही थी । चौधरी ने एक क्षण रुककर सोचा और फिर धीरे-धीरे चार नम्बर कमरे की दहलीज़ पर चला गया । उस कमरे में कई बिस्तर बिछे हुए थे—एक बिस्तर तो बिलकुल दहलीज़ के पास सटा हुआ था । चौधरी ने एक दियासलाई जलाते ही दहलीज़ के पास सोया हुआ व्यक्ति बड़बड़ाकर बोल उठा, "कौन हो ? क्या कर रहा है इस वक्त यहां ?"

चौधरी वहां से उल्टे पांव लौट पड़ा । उसका फिर और किसी कमरे में जाने का साहस नहीं हुआ । उसने क्षण-भर अपने कमरे के बाहर रुककर सोचा और यह निश्चय किया कि लोगों को जगाकर उनसे बात करने की अपेक्षा चौकीदार को जगाकर उससे बात करना ज्यादा अच्छा है । वह चौकीदार की कोठरी की ओर चल दिया । वहां पहुंचकर उसने दो बार उसका दरवाज़ा खटखटाया, पर चौकीदार की आंख नहीं खुली । चौधरी साथ उसे आवाज़ भी देने लगा ।

तीन-चार आवाज़ देने पर चौकीदार थोड़ा कुनमुनाया । उसने वाक्य के साथ गाली जोड़कर अन्दर से पूछा कि कौन इतनी रात गए उसकी नींद खराब कर रहा है । चौधरी ने यथासम्भव थोड़े शब्दों में उसे बतलाया कि वह चार नम्बर वाला चौधरी है, जिसने अठन्नी देकर उससे कमरा लिया था । फिर वह संक्षिप्त सी भूमिका के साथ बतलाने लगा कि उसके कमरे में एक नवयुवती और दो नवयुवक सोए हुए हैं, जिनके सम्बन्ध में वह उससे कुछ बात करना चाहता है ।

"अब सो जाओ जी, सवेरे बात करना," चौकीदार निद्रित और उकताए हुए स्वर में बोला, "सब कमरों में एक-सा ही हाल है ।" और उसने पुन. वाक्य के साथ गाली जोड़कर कहा कि सारा अपराध बादलों का है, जिन्होंने मौसम के आरम्भ में ही ऐसी झड़ी लगा दी है ।"

"तुम बाहर निकलकर बात तो सुनो," चौधरी ने झुंझलाकर कहा, "मुझे उन लोगों पर कुछ शक हो रहा है । मेरा ख्याल है कि वे लड़के उस लड़की को भगाकर लाए हैं ।"

परन्तु उत्तर में चौकीदार के खुर्राटे भरने का शब्द सुनाई देने लगा । चौधरी बहुत कठिनता से अपनी झुंझलाहट दबाकर वहां से लौटा । कुछ क्षण वह फिर अपनी दहलीज़ के बाहर खड़ा रहा । अब उसने निश्चय किया कि वह सवेरे तड़के ही उठकर लोगों से न केवल अपने सन्देह की बात करेगा, बल्कि चौकीदार की भी शिकायत करेगा कि वह धर्मशाला की चौकीदारी करने के लायक कतई नहीं ।

उस समय पास के खच्चर वालों के डेरे से एक नवयुवक के गाने का शब्द सुनाई दे रहा था। डेरे मे टीन के छप्पर के नीचे उन लोगों ने शायद रोशनी रखने के लिए आग जला रखी थी। आग की लपटें सामने की पहाड़ियों पर अस्थिर रोशनी डाल रही थीं। वर्षा के बाद ज़मीन में से हल्की-हल्की बास उठने लगी थी। चौधरी भीगे हुए वातावरण पर एक असतुष्ट दृष्टि डालकर अपने चबूतरे पर लौट आया। बहुत देर बाद जब उसकी आंख लगी तो रात आधी से अधिक बीत चुकी थी।

सवेरे जिस समय चौधरी की आंख खुली, दिन काफी चढ चुका था, यद्यपि बादल छाए रहने के कारण लगता था कि अभी तडका ही है। उठते ही पहले चौधरी की नजर कमरे के दूसरे भाग की ओर गई। वे लोग वहा नही थे। उनका सामान भी नही था। केवल दो मसले हुए कागज इधर-उधर पडे थे। चौधरी जल्दी से उठकर बाहर निकल आया। उसकी दृष्टि अनायास सुकेत जाने वाली सड़क की ओर उठ गई। कुछ खच्चरें सुकेत की ओर से आ रही थीं। दो-एक मज़दूर आलुओं के बोरे लिए आ रहे थे। उसी समय चौकीदार पास के एक कमरे से निकला। चौधरी ने उससे उन लोगों के सम्बन्ध में पूछा और यह जानकर कि वे दो घंटे पहले वहां से चले गए है, वह उसे उसकी अनवधानता के लिए डाटने लगा। चौधरी का विवरण सुनकर चौकीदार ज़रा तुनककर बोला, "मैं धर्मशाला का चौकीदारी करता हूं जी, यहां आनेवालो के धर्म-ईमान की चौकीदारी नही करता। मुझे क्या पता कि कौन क्या है और कौन कैसा है। अभी चार नम्बर वाले कह रहे थे कि रात को कोई चोर उनके कमरे में आया था और दियासलाई जलाकर इधर-उधर देख रहा था। एक बाबू उसे पकड़ने के लिए उठा तो वह भाग गया। बताइए, मैं किस-किसके पीछे जा सकता हूं? मेरा काम आप लोगो को कमरे दे देना है, बस और कुछ नहीं।"

चार नंबर की घटना के विषय में सुनकर चौधरी चुप रह गया। उस घटना की

मसले हुए कागज इधर-उधर पडे थे, उनमें से एक कागज उसने उठा लिया। उसमे कुछ रकमे लिखकर रुपये-पैसे का हिसाब किया गया था। उसे फेंककर उसने दूसरा कागज उठाया। उस पर अंग्रेजी में कुछ लिखा था। चौधरी कुछ क्षण उन शब्दों की आकृतियां देखता रहा। फिर वह चश्मे पर जाने के इरादे से नहाने का सामान लेकर बाहर निकला और कमरे को ताला लगाने लगा। पास ही एक बाबू-स्वरूप कंधे पर तौलिया डाले खडा दातुन कर रहा था। चौधरी ने ताला बन्द करके दरवाज़ा खोल लिया और अन्दर जाकर वह मसला हुआ कागज उठा लाया, जिस पर अंग्रेजी मे कुछ लिखा था। अब निकलकर उसने ताला लगाया और उस बाबू-स्वरूप व्यक्ति के निकट जाकर कागज उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "बाबू साहब, जरा पढ़िए इस कागज पर क्या लिखा है।" साथ ही वह उस कागज का इतिहास सुनाने लगा कि दो लडके एक लडकी के साथ रात को उसके कमरे में ठहरे थे, जो सवेरे तडके ही उठकर यहा से चले गए हैं; उनकी गतिविधि से प्रतीत होता था कि वे लडके उस लडकी को भगाकर लाए हैं; और उस कागज की लिपि उन्ही लड़कों में से एक के हाथ की है।

चौधरी के विवरण के समाप्त होने तक उस व्यक्ति ने कागज ऊपर से नीचे तक पढ़ लिया था। चौधरी का ध्यान उसके चेहरे की ओर नही था, अतः वह उसकी बदलती हुई भंगिमा को लक्षित नही कर सका। चौधरी के बात समाप्त करते ही उसपर एक ऐसी

दृष्टि डालकर जैसे उस पर उसे पागल होने का सन्देह हो, उस व्यक्ति ने कागज उसके हाथ में दे दिया और हटाने के ढंग से हाथ हिलाकर कहा, "जाओ।"

उस व्यक्ति का ऐसा व्यवहार चौधरी को असह्य लगा। परन्तु एक अपरिचित जगह पर उसने झगड़े मोल लेना उचित नहीं समझा। किसी तरह अपना आवेश दबाकर तौलिया सभाले हुए वह गंधक के चश्मे की ओर चल दिया

जिस समय चौधरी नहाने के लिए गन्धक के चश्मे में बैठा, वर्षा की हल्की-हल्की बूंदें फिर पड़ने लगी। उस समय वहां उसके अतिरिक्त एक ही और व्यक्ति था, जो अब नहाकर लौटने की तैयारी कर रहा था। सुकेत के रास्ते पर दूर खच्चरों की घंटियां सुनाई दे रही थी। वर्षा आरम्भ हो जाने के कारण कुछ लोग उस रास्ते पर भागते हुए आ रहे थे और धर्मशाला की दिशा में जा रहे थे। क्षण-भर चौधरी कुछ आशा के साथ उस ओर देखता रहा। उस रास्ते पर दूर आगे जाती हुई तीन आकृतियों की कल्पना से उसकी चेतना में फिर कुछ विह्वलता-सी भर गई। उसने चश्मे से निकलकर अपनी कमीज़ उठाई और उसे एक जगह पत्थर की ओट में रखकर उसकी जेब से वह कागज़ निकाल लिया। जो व्यक्ति नहाकर लौट रहा था, उसे सम्बोधित करते हुए उसने पूछा, "भाई साहब, यह कागज़ ज़रा पढ़ दीजिएगा?"

इस बार उसने कागज़ का इतिहास पहले से सुनाना उचित नहीं समझा।

उस व्यक्ति ने कागज़ पढ़ा और चौधरी को बतलाया कि उस पर केवल पुस्तकों और स्थानों के नाम लिखे हैं। चौधरी बहुत उत्सुकतापूर्वक उस कागज़ की लिपि का अर्थ जानने की प्रतीक्षा कर रहा था। यह जानकर उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे सहसा उसके पास से कुछ खो गया हो। उसके स्वर में कुछ उलझन और अविश्वास की ध्वनि आ गई, जब उसने कहा, "ज़रा ऊपर से पढ़कर बता दीजिए, मेरा तो ख्याल था कि···"

वह व्यक्ति आरम्भ से अर्थ करने लगा, 'खेती और समाजवाद,' दो प्रतियां नालघेरा, दो प्रतियां दुर्गापुर, तीन प्रतियां बसन्तपुर। 'सामूहिक खेती-बाड़ी,' एक प्रति नालघेरा, दो प्रतियां दुर्गापुर, दो प्रतियां बसन्तपुर···"

और वह लम्बी सूची पढ़ता गया। चौधरी अवाक् भाव से उसकी ओर देखता रहा। जब वह व्यक्ति कागज़ उसके हाथ में देकर अपने रास्ते पर चला गया, तो वह फिर से आकर गन्धक के चश्मे में बैठ गया। दो फुट के अन्दर पर सतलुज की धारा आवाज़ करती हुई बह रही थी। आस-पास की मिट्टी में से काफी बास उठ रही थी। चौधरी गन्धक के धुएं में घिरा हुआ गर्म पानी अपने शरीर पर मलता रहा। उसकी नज़र अब भी सुकेत जानेवाले रास्ते पर लगी थी और वह रह-रहकर सोच रहा था कि उस कागज़ की लिपि का उन लोगों के साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है और आखिर वे एक-दूसरे के क्या लगते हैं···?

सोया हुआ शहर

खाली सडक पर सिर्फ रोशनी नजर आती है—एक पतली चमकदार झिल्ली की तरह यहां से वहां तक फैली हुई। एक दुम हिलाता कुत्ता झिल्ली के ऊपर दौड़ता चला जाता है—जब तक कि वह मोड़ नही आ जाता जहां जाकर उसकी दौड़ खत्म हो जाती है और वह चुपचाप कुछ देर हवा को सूंघकर एक कोने में दुबक जाता है। कोने के खम्भो की रोशनी और सब खम्भो से अलग और बहुत मद्धिम नज़र आती है···मद्धिम और अन्तर्मुख ···जैसे कि सुलगने का क्षण आने पर भी उससे सुलगा न जा सका हो। बस-स्टॉप के शेड से सटा पेड़ काफी धुंधला और घना नजर आता है—खिड़कियो की बत्तिया बुझी रहने पर यह पता नही चलता कि उसके पीछे कोई मकान भी है।

जहां जाकर कुत्ता दुबक जाता है, वही से एक जीप खड़खड़ाती हुई मोड मुड़ जाती है। पहिये झिल्ली को कुचलते हुए तेजी से सामने की तरफ बढते आते है। जीप की आवाज़ से बस-स्टाप के अंधेरे कोने मे दुबककर सोया आदमी करवट बदल लेता है। ब्रेक की तेज़ चीख के साथ जीप अचानक रुक जाती है, तो वह एक बार हल्के से सिर उठाता है, कपड़ा आखो से हटाकर बाहर देखता है और फिर उसी तरह ओढकर पड़ जाता है।

साडी और कोट पहने, रूमाल मे सिर लपेटे, एक लडकी जीप से उतरती है। उतरकर साडी के बल ठीक करती है और अपने पर्स मे कुछ टटोलने लगती है। जीप का गियर बदलता है और एक भारी बैठी हुई-सी आवाज़ लड़की से कुछ पूछती है।

लड़की बिना उस तरफ देखे सिर हिला देती है और एड़ीदार सैंडिल की आवाज सडक पर आगे बढने लगती है। एक सिगरेट की डिब्बी का फटा टुकडा पर्स से बाहर निकलता है, जिसे मुट्ठी मे लेकर वह बन्द कर देती है। जीप कुछ गज पीछे की तरफ जाकर तेजी से रुख पलटती है और भन्नाटे के साथ मोड की तरफ बढ जाती है।

कुछ देर खाली सड़क पर वह आवारा घूमती है। बस-स्टाप के पीछे मकान की छत पर एक छाया टहलती है। उस मकान की छत पर नगे एरियल, उखड़े शामियाने के बांसों की तरह नगे और मनहूस, हवा से कांप जाते हैं। सामने की बुझी चिमनी मे एक कबूतर पंख फड़फडाने लगता है।

ऊपर मकानों की तरफ से सीटी की आवाज़ सुनाई देती है—जैसे रात के सन्नाटे मे अपने अकेलेपन को भुलाने के लिए आसमान सीटी बजा रहा हो।

किसी दरवाज़े पर दी जा रही हल्की दस्तक सुनाई देती है। हल्की होने पर भी आवाज़ दूर तक सुनाई देती है। शेड के कोने मे सोया आदमी करवट बदलकर उठ बैठता है। दस्तक की आवाज पहले से तेज़ हो जाती है जैसे कि कांच लगे बरामदे मे कोई कीड़ा तड़फडा रहा हो। सीटी की आवाज रुक जाती है। वह आदमी अपनी चादर ढीली करके फिर से लपेट लेता है।

दस्तक के साथ हल्की आवाज़ भी सुनाई देती है—एक लड़की की घबराई-सी आवाज़। मोड़ के कोने में दुबका कुत्ता अब दौड़ता हुआ इस तरफ बढ आता है। शेड के पास आकर अन्दर बैठे आदमी को देखता है और भौंकने लगता है। आदमी उठ खड़ा होता है। कुत्ता उसकी घुडकी खाकर चार गज़ पीछे हट जाता है, मगर भौंकना बन्द नही करता।

एक साइकिल मस्ती मे चलती हुई गली की तरफ मुड़ जाती है। एक कार बिना हार्न दिए तेज़ी से निकल जाती है। कुत्ता मुश्किल से अपने को उसकी लपेट से बचाता

दृष्टि डालकर जैसे उस पर उसे पागल होने का सन्देह हो, उस व्यक्ति ने कागज उसके हाथ मे दे दिया और हटाने के ढंग से हाथ हिलाकर कहा, "जाओ।"

उस व्यक्ति का ऐसा व्यवहार चौधरी को असह्य लगा। परन्तु एक अपरिचित जगह पर उसने झगड़े मोल लेना उचित नहीं समझा। किसी तरह अपना आवेश दबाकर तौलिया सभाले हुए वह गधक के चश्मे की ओर चल दिया

जिस समय चौधरी नहाने के लिए गन्धक के चश्मे मे बैठा, वर्षा की हल्की-हल्की बूँदें फिर पड़ने लगी। उस समय वहा उसके अतिरिक्त एक ही और व्यक्ति था, जो अब नहाकर लौटने की तैयारी कर रहा था। सुकेत के रास्ते पर दूर खच्चरो की घटियां सुनाई दे रही थी। वर्षा आरम्भ हो जाने के कारण कुछ लोग उस रास्ते पर भागते हुए आ रहे थे और धर्मशाला की दिशा मे जा रहे थे। क्षण-भर चौधरी कुछ आशा के साथ उस ओर देखता रहा। उस रास्ते पर दूर आगे जाती हुई तीन आकृतियो की कल्पना से उसकी चेतना में फिर कुछ विह्वलता-सी भर गई। उसने चश्मे से निकलकर अपनी कमीज़ उठाई और उसे एक जगह पत्थर की ओट मे रखकर उसकी जेब से वह कागज निकाल लिया। जो व्यक्ति नहाकर लौट रहा था, उसे सम्बोधित करते हुए उसने पूछा, "भाई साहब, यह कागज़ ज़रा पढ़ दीजिएगा?"

इस बार उसने कागज़ का इतिहास पहले मे सुनाना उचित नहीं समझा।

उस व्यक्ति ने कागज़ पढा और चौधरी को बतलाया कि उस पर केवल पुस्तकों और स्थानो के नाम लिखे हैं। चौधरी बहुत उत्सुकतापूर्वक उस कागज़ की लिपि का अर्थ जानने की प्रतीक्षा कर रहा था। यह जानकर उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे सहसा उसके पास से कुछ खो गया हो। उसके स्वर मे कुछ उलझन और अविश्वास की ध्वनि आ गई, जब उसने कहा, "ज़रा ऊपर से पढकर बता दीजिए, मेरा तो ख्याल था कि···"

वह व्यक्ति आरम्भ से अर्थ करने लगा, 'खेती और समाजवाद,' दो प्रतियां नालघेरा, दो प्रतियां दुर्गापुर, तीन प्रतियां बसन्तपुर। 'सामूहिक खेती-बाड़ी,' एक प्रति *नालघेरा, दो प्रतियां दुर्गापुर, दो प्रतियां बसन्तपुर*···"

और वह लम्बी सूची पढता गया। चौधरी अवाक् भाव से उसकी ओर देखता रहा। जब वह व्यक्ति कागज़ उसके हाथ में देकर अपने रास्ते पर चला गया, तो वह फिर से आकर गन्धक के चश्मे में बैठ गया। दो फुट के अन्दर पर सतलुज की धारा आवाज़ करती हुई बह रही थी। आस-पास की मिट्टी मे से काफी बास उठ रही थी। चौधरी गन्धक के धुएं में घिरा हुआ गर्म पानी अपने शरीर पर मलता रहा। उसकी नज़र अब भी सुकेत जानेवाले रास्ते पर लगी थी और वह रह-रहकर सोच रहा था कि उस कागज़ की लिपि का उन लोगो के साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है और आखिर वे एक-दूसरे के क्या लगते हैं···?

सोया हुआ शहर

खाली सडक पर सिर्फ रोशनी नजर आती है—एक पतली चमकदार झिल्ली की तरह यहा से वहां तक फैली हुई। एक दुम हिलाता कुत्ता झिल्ली के ऊपर दौड़ता चला जाता है—जब तक कि वह मोड़ नही आ जाता जहा जाकर उसकी दौड खत्म हो जाती है और वह चुपचाप कुछ देर हवा को सूंघकर एक कोने में दुबक जाता है। कोने के खम्भो की रोशनी और सब खम्भो से अलग और बहुत मद्धिम नज़र आती है···मद्धिम और अन्तर्मुख ···जैसे कि सुलगने का क्षण आने पर भी उससे सुलगा न जा सका हो। बस-स्टॉप के शेड से सटा पेड़ काफी *धुंधला और घना नजर आता है—खिड़कियो की बत्तिया बुझी रहने* पर यह पता नही चलता कि उसके पीछे कोई मकान भी है।

जहां जाकर कुत्ता दुबक जाता है, वही से एक जीप खड़खडाती हुई मोड़ मुड जाती है। पहिये झिल्ली को कुचलते हुए तेज़ी से सामने की तरफ बढ़ते आते हैं। जीप की आवाज़ से बस-स्टाप के अंधेरे कोने मे दुबककर सोया आदमी करवट बदल लेता है। ब्रेक की तेज़ चीख के साथ जीप अचानक रुक जाती है, तो वह एक बार हल्के से सिर उठाता है, कपड़ा आंखो से हटाकर बाहर देखता है और फिर उसी तरह ओढ़कर पड़ जाता है।

साड़ी और कोट पहने, रूमाल मे सिर लपेटे, एक लडकी जीप से उतरती है। उतरकर साडी के बल ठीक करती है और अपने पर्स मे कुछ टटोलने लगती है। जीप का गियर बदलता है और एक भारी बैठी हुई-सी आवाज़ लडकी से कुछ पूछती है।

लडकी *बिना उस तरफ देखे सिर हिला देती है और एडीदार सैंडिल की आवाज़* सड़क पर आगे बढ़ने लगती है। एक सिगरेट की डिब्बी का फटा टुकडा पर्स से बाहर निकलता है, जिसे मुट्ठी मे लेकर वह बन्द कर देती है। जीप कुछ गज पीछे की तरफ जाकर तेजी से रुख पलटती है और भन्नाटे के साथ मोड़ की तरफ बढ़ जाती है।

कुछ देर खाली सड़क पर वह आवारा घूमती है। बस-स्टाप के पीछे मकान की छत पर एक छाया टहलती है। उस मकान की छत पर लगे एरियल, उखडे शामियाने के बासो की तरह नगे और मनहूस, हवा से कांप जाते हैं। सामने की बुझी चिमनी मे एक कबूतर पंख फड़फड़ाने लगता है।

ऊपर मकानो की तरफ से सीटी की आवाज सुनाई देती है—जैसे रात के मन्नाटे में अपने अकेलेपन को भुलाने के लिए आसमान सीटी बजा रहा हो।

किसी दरवाजे पर दी जा रही हल्की दस्तक सुनाई देती है। हल्की होने पर भी आवाज दूर तक सुनाई देती है। शेड के कोने मे सोया आदमी करवट बदलकर उठ बैठता है। दस्तक की आवाज़ पहले से तेज़ हो जाती है जैसे कि काच लगे बरामदे मे कोई कीड़ा तड़फड़ा रहा हो। सीटी की आवाज रुक जाती है। वह आदमी अपनी चादर ढीली करके फिर से लपेट लेता है।

दस्तक के साथ हल्की आवाज़ भी सुनाई देती है—एक लड़की की घबराई-सी आवाज़। मोड़ के कोने मे दुबका कुत्ता अब दौड़ता हुआ इस तरफ बढ़ आता है। शेड के पास आकर अन्दर बैठे आदमी को देखता है और भौंकने लगता है। आदमी उठ खड़ा होता है। कुत्ता उसकी घुड़की खाकर चार गज़ पीछे हट जाता है, मगर भौंकना बन्द नही करता।

एक साइकिल मस्ती मे चलती हुई गली की तरफ मुड़ जाती है। एक बार बिना हार्न दिए तेज़ी से निकल जाती है। कुत्ता मुश्किल से अपने को उसकी लपेट से बचाता

है। उसका भौंकना गुर्राने में बदल जाता है···बीच-बीच में, जैसे अपनी कमज़ोरी छिपाने के लिए वह एकाध बार भौंक भी लेता है। मकान की छत पर टहलती छाया सड़क की तरफ झुक जाती है। औंधी रखी चारपाइयों के पाये उसके आस-पास एक चौखटा-सा बना देते हैं। सामने की चिमनी से दो टूटे पंख हवा में गोल-गोल तैरते हुए नीचे उतर आते हैं।

शेड के पास खड़े आदमी को अपने पैरों के नीचे ज़मीन में थरथराहट महसूस होती है। घुटनों पर वज़न कम करने के लिए वह पीठ को शेड का सहारा दे लेता है। फौजी कनवाय की कई गाड़ियां धड़धड़ाती हुई सामने से गुज़रने लगती हैं···कुछ नंगी और कुछ हरे खाकी कपड़े से ढकी हुई। कुछ ही मिनटों में गाड़ियों में रखी कई तरह की मशीनें पास से निकल जाती हैं···वह आदमी उनके पहियों-पुरज़ों को देखने में अपने पैरों के नीचे की थरथराहट को भूला रहता है। झण्डा हिलाती आखिरी गाड़ी भी पास से निकल जाती है तो थरथराहट रुक जाने से वह घुटने सीधे कर लेता है। मोड़ पर गुम होती गाड़ी की तरफ इस तरह देखता है जैसे अभी एक मिनट पहले तक वह भी उसमें सवार रहा हो और अब उसे वहां उतार गाड़ी आगे चली गई हो।

गाड़ियां दूर चली जाने पर भी उनकी आवाज़ कुछ देर कानों में बसी रहती है···जैसे कि एक हवाई कनवाय अब भी सामने से गुज़र रहा हो···और लगातार उसे उसी तरह गुज़रते रहना हो।

ऊपर आसमान में एक रोशनी दूर-दूर तक कुछ तलाशती है···शायद हवाई अड्डे से आती सर्चलाइट की रोशनी। किसी-किसी क्षण आसमान एकाएक सुलग उठता है, फिर उसी तरह बुझा-बुझा हो जाता है। बहुत-से ज़र्रे तेज़ रोशनी में कांप उठते हैं। रोशनी के गुज़रकर दूसरी तरफ चले जाने पर बेजान होकर अंधेरे में दफन हो जाते हैं।

हल्की भनभनाहट से शुरू होकर कई लोगों की मिली-जुली आवाज़ कनवाय की दूर जाती आवाज़ को छा लेती है। एरियल के बांस बार-बार हिल जाते हैं। दरवाज़े पर दस्तक अब सुनाई नहीं देती। शोर ने उसे भी अपने में निगल लिया है।

किसी घर में फ्लश का हत्था ज़ोर-ज़ोर से हिलाया जाता है। छपाके के साथ फ्लश का पानी बहने लगता है। फिर वह आवाज़ हल्की किलकारियों में बदलकर सु-ऊं आवाज़ में गुम हो जाती है। लगता है जैसे कोई हवा को लगातार अपने अन्दर खींच रहा हो।

मिली-जुली आवाज़ों का शोर पहले से ऊंचा हो जाता है। कुछ जगह बत्तियां जल जाने से अंधेरे में खिड़कियों के चौखटे उभर आते हैं। एक खिड़की के किवाड़ खुल जाते हैं। दो सिर खिड़की से बाहर देखने लगते हैं।

शोर बढ़ता जाता है। मिली-जुली आवाज़ें अलग-अलग आवाज़ों में छंटने लगती हैं—

"मार-मारकर मलीदा कर दो हरामज़ादे का!"

"पहले यह तो पूछो कि इसका नाम-पता क्या है?"

"देखने में तो किसी शरीफ खानदान का लगता है···पर शराफत आजकल के ज़माने में नहीं रह गई है।"

"इसे पकड़कर इसके बाप के पास ले चलो! वहीं इससे और बातें पूछ ली जाएंगी।"

"बाप के पास बाद में ले चलना, पहले इससे यहीं सब-कुछ पूछ लिया जाता है।"

"पूछो इससे कि यह इस वक्त यहां कर क्या रहा था ?"

"कर क्या रहा था ! वही कर रहा था जो मसें फूटते ही आजकल के लडको को करना आ जाता है।"

"लड़का किसका है ?"

"यही बताएगा, किसका लड़का है। पूछिए इससे !"

'पूछेंगे बाद मे। पहले इसके होश तो ठिकाने ले आएं।"

गाली-गलौज, धौल-धप्पा, और बीच-बीच मे,' देखिए, अकल "अकल, आप बात तो सुनिए"'"

ठक्-ठक्-ठक्"'किसी के जीने से उतरने की आवाज। चिमनी में छिपा कबूतर गुटर-गू'"गुटर-गू करता है। कुत्ता पूछ हिलाता हुआ सड़क के बीचो-बीच आ खडा होता है।

शेड के पास खड़ा आदमी खांसता है। एक बार दूर तक नजर दौड़ाकर देखता है'"जैसे कि अब भी उसे किसी कनवाय के आने की उम्मीद हो। पेड के तने के पास से एक गिलहरी सिर निकालती है और छिपा लेती है। सडक के पास उस तरफ के अंधेरे में एक आदमी तेज नजरों से हवा को घूरता हुआ सामने आता है'"लुंगी के ऊपर लम्बा कुरता और गरम जैकेट पहने। मुह से भाप छोड़कर वह सुनसान वातावरण को अपने अस्तित्व का पता देना चाहता है। पैर की ठोकर से वह कुत्ते को रास्ते से हटा देता है। कुत्ता चिचियाकर विरोध करता है, फिर एकाएक भाग खडा होता है।

"क्या हुआ है ?" जैकेट वाला चादर में सिकुड़े आदमी के पास आकर पूछता है। रोबीले दाढ़ीदार चेहरे के सामने सिकुड़े हुए आदमी की बाहें और सिकुड़ जाती हैं। "अभी पता नही," वह कहता है, "शायद किसी लड़के को चोरी-ओरी करते पकड़ा है लोगों ने।"

"और तूने जाकर देखा भी नही कि क्या बात है ? किसे पकड़ा गया है ?"

"मैं लेटा हुआ था। अभी उठा हूं।"

"लेटा हुआ था ! इतना ही तो काम है तेरा ! लेटा हुआ था।"

"मैं अब देखने जा ही रहा था।"

"देखने जा ही रहा था ! यहां खडा कुत्ते को देख-देखकर कांप रहा था या देखने जा रहा था ?"

बाह पर झटका लगने से चादर मे लिपटा आदमी लड़खड़ा जाता है। पेड़ के पत्ते सरसराते हैं। डालें हवा से झूल जाती हैं।

सैंडिल की आवाज सड़क की तरफ आती सुनाई देती है—कई एक और आवाजों मे घिरी हुई। शोर दो हिस्सों मे बंट गया है। एक हिस्सा सैंडिल की आवाज मे जुड़ा है। दूसरा पहले से दूर हटता जाता है।

सैंडिल वाली लड़की को घेरे हुए कई लोग सडक के सिरे पर आकर रुक जाते हैं। शेड के पास खड़े दोनों आदमी भी भीड मे शामिल हो जाते हैं।

"क्या हुआ है ?"

"कहां है वह ?"

"लोग उसे उसके बाप के पास ले गए हैं।"

"ये उस लड़के को जानती हैं ?"

"नही। वह अभी-अभी इधर से साइकिल मे आया था।"

"ये बाहर से आई हैं, अपने किसी रिश्तेदार से मिलने। जिनसे मिलने आई

है। उसका भौंकना गुर्राने में बदल जाता है···बीच-बीच में, जैसे अपनी कमज़ोरी छिपाने के लिए वह एकाध बार भौंक भी लेता है। मकान की छत पर टहलती छाया सड़क की तरफ झुक जाती है। औंधी रखी चारपाइयों के पाये उसके आस-पास एक चौखटा-सा बना देते हैं। सामने की चिमनी से दो टूटे पंख हवा में गोल-गोल तैरते हुए नीचे उतर आते हैं।

शेड के पास खड़े आदमी को अपने पैरों के नीचे ज़मीन में थरथराहट महसूस होती है। घुटनों पर वज़न कम करने के लिए वह पीठ को शेड का सहारा दे लेता है। फ़ौजी कनवाय की कई गाड़ियां घड़घड़ाती हुई सामने से गुज़रने लगती हैं···कुछ नंगी और कुछ हरे खाकी कपड़े से ढकी हुई। कुछ ही मिनटों में गाड़ियों में रखी कई तरह की मशीनें पास से निकल जाती हैं···वह आदमी उनके पहियों-पुरज़ों को देखने में अपने पैरों के नीचे की थरथराहट को भूला रहता है। झण्डा हिलाती आखिरी गाड़ी भी पास से निकल जाती है तो थरथराहट रुक जाने से वह घुटने सीधे कर लेता है। मोड़ पर गुम होती गाड़ी की तरफ इस तरह देखता है जैसे अभी एक मिनट पहले तक वह भी उसमें सवार रहा हो और अब उसे वहां उतार गाड़ी आगे चली गई हो।

गाड़ियां दूर चली जाने पर भी उनकी आवाज़ कुछ देर कानों में बसी रहती है···जैसे कि एक हवाई कनवाय अब भी सामने से गुज़र रहा हो···और लगातार उसे उसी तरह गुज़रते रहना हो।

ऊपर आसमान में एक रोशनी दूर-दूर तक कुछ तलाशती है···शायद हवाई अड्डे से आती सर्चलाइट की रोशनी। किसी-किसी क्षण आसमान एकाएक सुलग उठता है, फिर उसी तरह बुझा-बुझा हो जाता है। बहुत-से ज़र्रे तेज़ रोशनी में कांप उठते हैं। रोशनी के गुज़रकर दूसरी तरफ चले जाने पर बेजान होकर अंधेरे में दफ़न हो जाते हैं।

हल्की भनभनाहट से शुरू होकर कई लोगों की मिली-जुली आवाज़ कनवाय की दूर जाती आवाज को छा लेती है। एरियल के बांस बार-बार हिल जाते हैं। दरवाज़े पर दस्तक अब सुनाई नहीं देती। शोर ने उसे भी अपने में निगल लिया है।

किसी घर में फ्लश का हत्था ज़ोर-ज़ोर से हिलाया जाता है। छपाके के साथ फ्लश का पानी बहने लगता है। फिर वह आवाज़ हल्की किलकारियों में बदलकर सू-ऊं आवाज़ में गुम हो जाती है। लगता है जैसे कोई हवा को लगातार अपने अन्दर खींच रहा हो।

मिली-जुली आवाज़ों का शोर पहले से ऊंचा हो जाता है। कुछ जगह बत्तियां जल जाने से अंधेरे में खिड़कियों के चौखटे उभर आते हैं। एक खिड़की के किवाड़ खुल जाते हैं। दो सिर खिड़की से बाहर देखने लगते हैं।

शोर बढ़ता जाता है। मिली-जुली आवाज़ें अलग-अलग आवाज़ों में छंटने लगती हैं—

"मार-मारकर मलीदा कर दो हरामज़ादे का!"

"पहले यह तो पूछो कि इसका नाम-पता क्या है?"

"देखने से तो किसी शरीफ़ खानदान का लगता है···पर शराफ़त आजकल के ज़माने में नहीं रह गई है।"

"इसे पकड़कर इसके बाप के पास ले चलो! वहीं इससे और बातें पूछ ली जाएंगी।"

"बाप के पास बाद में ले चलना, पहले इससे यहीं सब-कुछ पूछ लिया जाता है।"

"पूछो इससे कि यह इस वक्त यहा कर क्या रहा था ?"

"कर क्या रहा था ! वही कर रहा था जो मसें फूटते ही आजकल के लडकों को करना आ जाता है।"

"लडका किसका है ?"

"यही बताएगा, किसका लडका है। पूछिए इससे !"

"पूछेंगे बाद मे। पहले इसके होश तो ठिकाने ले आए।"

गाली-गलौज, धौल-धप्पा, और बीच-बीच मे, 'देखिए, अकल' "अंकल, आप बात तो सुनिए···"

ठक्-ठक्-ठक्··· किसी के जीने से उतरने की आवाज। चिमनी मे छिपा कबूतर गुटर-गू···गुटर-गू करता है। कुत्ता पूछ हिलाता हुआ सडक के बीचों-बीच आ खड़ा होता है।

पेड के पास खडा आदमी खासता है। एक बार दूर तक नजर दौडाकर देखता है···जैसे कि अब भी उसे किसी सवारी के आने की उम्मीद हो। पेड के तने के पास से एक गिलहरी सिर निकालती है और छिपा लेती है। सडक के पास उस तरफ के अधेरे मे एक आदमी तेज नजरों से हवा को घूरता हुआ सामने आता है·· लुगी के ऊपर लम्बा कुरता और गरम जैकेट पहने। मुह से भाप छोडकर वह सुनसान वातावरण को अपने अस्तित्व का पता देना चाहता है। पैर की ठोकर से वह कुत्ते को रास्ते से हटा देता है। कुत्ता चिचियाकर विरोध करता है, फिर एकाएक भाग खडा होता है।

"क्या हुआ है ?" जैकेट वाला चादर में सिकुडे आदमी के पास आकर पूछता है। रोबीले दाढीदार चेहरे के सामने सिकुड़े हुए आदमी की बाहे और सिकुड जाती हैं। "अभी पता नही," वह कहता है, "शायद किसी लडके को चोरी-ओरी करते पकड़ा है लोगो ने।"

"और तूने जाकर देखा भी नही कि क्या बात है ? किसे पकडा गया है ?"

"मैं लेटा हुआ था। अभी उठा हू।"

"लेटा हुआ था ! इतना ही तो काम है तेरा ! लेटा हुआ था।"

"मैं अब देखने जा ही रहा था।"

"देखने जा ही रहा था ! यहा खड़ा कुत्ते को देख-देखकर कांप रहा था या देखने जा रहा था ?"

बाह पर झटका लगने से चादर मे लिपटा आदमी लडखड़ा जाता है। पेड़ के पत्ते सरसराते है। डालें हवा में झूल जाती हैं।

मैंडिल की आवाज सडक की तरफ आती सुनाई देती है—कई एक और आवाजों मे घिरी हुई। शोर दो हिस्सों मे बट गया है। एक हिस्सा मैंडिल की आवाज से जुडा है। दूसरा पहले से दूर हटता जाता है।

मैंडिल वाली लडकी को घेरे हुए कई लोग सड़क के सिरे पर आकर रुक जाते हैं। पेड के पास खडे दोनों आदमी भी भीड मे शामिल हो जाते हैं।

"क्या हुआ है ?"

"कहां है वह ?"

"लोग उसे उसके बाप के पास ले गए हैं।"

"ये उस लडके को जानती हैं ?"

"नही। वह अभी-अभी इधर से साइकिल मे आया था।"

"ये बाहर से आई है, अपने किसी रिश्तेदार से मिलने। जिनसे मिलने आई हैं, वे

घर पर नहीं हैं।"

"एक दरवाजे पर ताला लगा है, दूसरा अन्दर से बन्द है। हो सकता है कि···"

"नहीं, वे अन्दर होते तो इतना शोर सुनकर जाग न जाते ?"

"वे अकसर देर से घर आते हैं। अभी लौटकर आए नहीं होंगे।"

"किसके यहां आई थीं आप ?"

"उनके यहां···वे हमारे भाई साहब हैं···वेनी साहब।"

"वेनी साहब ?"

"वे इनके भाई साहब हैं।"

"आप दिल्ली से ही आई हैं ?"

"जी नहीं, आज ही कुरुक्षेत्र से आई हूं। गाड़ी लेट हो गई थी, इसलिए···"

"अब आपको कहां जाना है ? जहां जाना है, हम पहुंचा देते हैं।"

"जी नहीं, इन्होंने टैक्सी के लिए फोन किया है, मैं अकेली चली जाऊंगी।"

"इतनी रात में आपका अकेली जाना ठीक नहीं।"

"जी नहीं, शहर की बात है। शहर में ऐसा कोई डर नहीं।"

"आप किसी को फोन करना चाहेंगी ?"

"नहीं।"

"आपको जाना कहां है ?"

"न्यू राजेन्द्रनगर।"

"न्यू राजेन्द्रनगर के किस हिस्से में ?"

"मकान का नम्बर मेरे पर्स में है। मैं पहुंच जाऊंगी।"

दूर किसी सड़क से घोड़े की टाप सुनाई देती है। घोड़े के पांव एक जगह फिसलकर सम्भलते हैं और आगे बढ़ने लगते हैं। पीछे स्टेशन पर एक इंजन सीटी देता है और गाड़ी धीरे-धीरे लाइनों पर सरकने लगती है। मोड़ की तरफ से दो रोशनियां सड़क की झिल्ली पर एक और झिल्ली चढ़ाती हुई पास आ जाती हैं। टैक्सी का दरवाजा खुलकर बन्द हो जाता है। रुके हुए पहिये फिर आगे फिसलने को तैयार हो जाते हैं।

"आप चाहें तो हममें से कोई आदमी आपको छोड़ने चल सकता है।"

"जी नहीं। मेहरबानी। शुक्रिया।"

उलझे हुए सायों पर से होकर पहिये आगे निकल जाते हैं। साये एक-एक करके अलग होने लगते हैं। भनभनाहट गली के अंधेरे में डूबने लगती है।

"हो सकता है उस लड़के ने इसे दरवाजा खटखटाते देखा हो और ऐसे ही पूछने के लिए रुक गया हो।"

"ऐसा होता, तो वह बेचारी खामखाह शोर क्यों मचाती ? उस हरामी ने जरूर कोई शरारत की होगी।"

"मुझे तो लगता है कि वह जरूर इसे पहले से जानता होगा। कहता नहीं था कि यह उसके कालेज में पढ़ती है ?"

"पर वह तो कहती है कि वह आज ही कुरुक्षेत्र से आई है।"

"कुरुक्षेत्र से आना था, तो इतनी रात को ही आना था उसे ? वह भी बिना पहले खबर दिए ?"

"छोड़िए साहब, खामखाह किसी पर शक करने में क्या रखा है ?"

"उसे जहां जाना था, चली गई। किस्सा खत्म हुआ।"

सायों के साथ-साथ आवाजें भी हल्की पड़ जाती हैं। अंधेरे में उभरे हुए खिड़कियों

के चौखटे गायब होने लगते है। मकान की छत पर झुका आदमी फिर पीछे हटकर टहलने लगता है।

जैकेट और लम्बे कुरतेवाला आदमी, माथे पर त्यौरी डाले खाली सडक को देखता रहता है। फिर कहता है, "लगता है सब्ज़ीमडी वालो की कोई लडकी थी।"

चादर मे लिपटा आदमी डरी-डरी आखो से उसकी तरफ देखता है—"पता नही।"

"तुम्हें कभी कुछ पता भी रहता है ? वे कुत्ते के बीज अब इस इलाके मे भी मार करने लगे है।"

सिकुडा हुआ आदमी उसी तरह सिकुडा रहता है। कोई जवाब नही देता।

"सवेरे सब्ज़ीमडी से सीतलदास को बुलाना।"

"अच्छा।"

"कहना, सोहनसिह को तुमसे कुछ बात करनी है।"

"अच्छा।"

"वे हरामी हमारे इलाके मे मार करेंगे तो हम उनका बोरिया सब्ज़ीमडी से उठवा देंगे।"

"पर पहले तो इस लडकी को कभी देखा नही।"

"आज तो देख लिया ? अब आगे के लिए खयाल रखना।"

चादर में सिकुड़ा आदमी सिर हिलाता है।

"बेनी साहब से भी कह देना कि सरदार साहब याद कर रहे थे।"

"उनसे तो अभी कह दूगा। चार बजे उन्हें जगाना है।"

"चार बजे फकीरा यहा आ जाएगा। तू लाजो को टैक्सी मे छोड़ आना।" और शक की निगाह से आस-पास देखता हुआ वह सडक पार कर लेता है।

चादर मे सिकुड़ा हुआ आदमी कुछ देर शेड के पास चहलकदमी करता है। एक बार रुककर गली की तरफ देखता है और अपनी पहले वाली जगह पर जाकर लेट जाता है।

सडक की झिल्ली पर हल्की धुन्ध-सी बिखरने लगती है। एक टूटी हुई साइकिल धुन्ध में रास्ता बनाती हुई शेड के पास से निकल जाती है। पेड मरमराता है तो उससे झड़कर कुछ पत्ते आस-पास बिखर जाते हैं। शेरवानी पहने एक दुबला-सा आदमी कही से निकलकर सडक पर आ जाता है। एक बार पीछे की तरफ देखता है, जैसे कि उसे डर हो कि कोई उसके पीछे तो नही आ रहा। फिर बिना पैरों से आवाज किए फुटपाथ के कच्चे हिस्से पर चलता हुआ जल्दी-जल्दी मोड़ की तरफ बढ़ जाता है।

तभी पेड के पीछे एक रोशनी बुझ जाती है।

धुन्ध की जालियो में सडक के खम्भे अब पहले से भी अकेले हो जाते हैं। मोड़ की तरफ से कुत्ता एक और कुत्ते का पीछा करता हुआ सामने आ जाता है। दोनों कुछ देर एक-दूसरे की तरफ भौंकते और गुर्राते हैं, फिर उसी तरफ दौड़ते हुए आगे निकल जाते हैं।

पेड की डाल से किसी चीज के टकराने की आवाज होती है। डाल से छिटककर कपडे में लिपटा कुछ सामान फुटपाथ पर बिखर जाता है। गत्ते की डिबिया और चमकते हुए गोल सुनहरे पत्ते। साथ ही एक और खिड़की की बत्ती बुझ जाती है। खम्भो के आसपास धुन्ध गहरी होने लगती है।

एरियलो के ऊपर आसमान को मर्चलाइट उसी तरह बार-बार काट जाती है। एरियल कांपकर स्थिर होने लगते हैं कि फिर उसी तरह कांप जाते हैं।

घर पर नही हैं।"

"एक दरवाजे पर ताला लगा है, दूसरा अन्दर से बन्द है। हो सकता है कि···"

"नही, वे अन्दर होते तो इतना शोर सुनकर जाग न जाते ?"

"वे अकसर देर से घर आते हैं। अभी लौटकर आए नही होगे।"

"किसके यहा आई थी आप ?"

"उनके यहा··· वे हमारे भाई साहब हैं···बेनी साहब।"

"बेनी साहब ?"

"वे इनके भाई साहब हैं।"

"आप दिल्ली से ही आई हैं ?"

"जी नही, आज ही कुरुक्षेत्र से आई हू। गाड़ी लेट हो गई थी, इसलिए···"

"अब आपको कहा जाना है ? जहा जाना है, हम पहुंचा देते हैं।"

"जी नही, इन्होंने टैक्सी के लिए फोन किया है, मैं अकेली चली जाऊंगी।"

"इतनी रात मे आपका अकेली जाना ठीक नहीं।"

"जी नही, शहर की बात है। शहर मे ऐसा कोई डर नही।"

"आप किसी को फोन करना चाहेंगी ?"

"नही।"

"आपको जाना कहां है ?"

"न्यू राजेन्द्रनगर।"

"न्यू राजेन्द्रनगर के किस हिस्से मे ?"

"मकान का नम्बर मेरे पर्स में है। मैं पहुंच जाऊंगी।"

दूर किसी सडक से घोडो की टाप सुनाई देती है। घोड़े के पांव एक जगह फिसलकर सभलते हैं और आगे बढने लगते हैं। पीछे स्टेशन पर एक इंजन सीटी देता है और गाड़ी धीरे-धीरे लाइनों पर सरकने लगती है। मोड की तरफ से दो रोशनियां सड़क की झिल्ली पर एक और झिल्ली चढ़ाती हुई पास आ जाती है। टैक्सी का दरवाजा खुलकर [illegible]

[illegible] रके

[illegible] छने के लिए रुक गया हो।"

"ऐसा होता, तो वह बेचारी खामखाह शोर क्यों मचाती ? उस हरामी ने जरूर कोई शरारत की होगी।"

"मुझे तो लगता है कि वह जरूर इसे पहले से जानता होगा। कहता नही था कि यह उसके कालेज में पढती है ?"

"पर वह तो कहती है कि वह आज ही कुरुक्षेत्र से आई है।"

"कुरुक्षेत्र से आना था, तो इतनी रात को ही आना था उसे ? वह भी बिना पहले खबर दिए ?"

"छोड़िए साहब, खामखाह किसी पर शक करने मे क्या रखा है ?"

"उसे जहां जाना था, चली गई। किस्सा खत्म हुआ।"

सायों के साथ-साथ आवाजें भी हल्की पड जाती हैं। अंधेरे मे उभरे हुए खिड़कियो

के चौखटे गायब होने लगते हैं। मकान की छत पर झुका आदमी फिर पीछे हटकर टहलने लगता है।

जैकेट और लम्बे कुरतेवाला आदमी, माथे पर त्यौरी डाले खाली सडक को देखता रहता है। फिर कहता है, "लगता है सब्जीमंडी वालो की कोई लडकी थी।"

चादर में लिपटा आदमी डरी-डरी आंखो मे उसकी तरफ देखता है—"पता नही।"

"तुम्हें कभी कुछ पता भी रहता है ? वे कुत्ते के बीज अब इस इलाके मे भी मार करने लगे है।"

सिकुडा हुआ आदमी उसी तरह सिकुडा रहता है। कोई जवाब नही देता।

"सवेरे सब्जीमंडी से सीतलदास को बुलाना।"

"अच्छा।"

"कहना, सोहनसिंह को तुमसे कुछ बात करनी है।"

"अच्छा।"

"वे हरामी हमारे इलाके मे मार करेंगे तो हम उनका बोरिया सब्जीमंडी से उठवा देंगे।"

"पर पहले तो इस लडकी को कभी देखा नही।"

"आज तो देख लिया ? अब आगे के लिए खयाल रखना।"

चादर में सिकुड़ा आदमी सिर हिलाता है।

"बेनी साहब से भी कह देना कि सरदार साहब याद कर रहे थे।"

"उनसे तो अभी कह दूगा। चार बजे उन्हे जगाना है।"

"चार बजे फकीरा यहा आ जाएगा। तू लाजो को टैक्सी मे छोड़ आना।" और शक की निगाह से आस-पास देखता हुआ वह सकड पार कर लेता है।

चादर मे सिकुड़ा हुआ आदमी कुछ देर शेड के पास चहलकदमी करता है। एक बार रुककर गली की तरफ देखता है और अपनी पहले वाली जगह पर जाकर लेट जाता है।

सडक की झिल्ली पर हल्की धुन्ध-सी बिखरने लगती है। एक टूटी हुई साइकिल धुन्ध मे रास्ता बनाती हुई शेड के पास से निकल जाती है। पेड सरसराता है तो उससे झडकर कुछ पत्ते आस-पास बिखर जाते हैं। शेरवानी पहने एक दुबला-सा आदमी कही से निकलकर सडक पर आ जाता है। एक बार पीछे की तरफ देखता है, जैसे कि उसे डर हो कि कोई उसके पीछे तो नही आ रहा। फिर बिना पैरों से आवाज किए फुटपाथ के कच्चे हिस्से पर चलता हुआ जल्दी-जल्दी मोड़ की तरफ बढ़ जाता है।

तभी पेड के पीछे एक रोशनी बुझ जाती है।

धुन्ध की जालियों में सडक के खम्भे अब पहले से भी अकेले हो जाते हैं। मोड की तरफ से कुत्ता एक और कुत्ते का पीछा करता हुआ सामने आ जाता है। दोनों कुछ देर एक-दूसरे की तरफ भौंकते और गुर्राते हैं, फिर उसी तरफ दौडते हुए आगे निकल जाते हैं।

पेड की डाल से किसी चीज के टकराने की आवाज होती है। डाल के छिटककर कपडे मे लिपटा कुछ सामान फुटपाथ पर बिखर जाता है। गत्ते की डिबियां और चमकते हुए गोल सुनहरे पत्ते। साथ ही एक और खिड़की की बत्ती बुझ जाती है। खम्भो क आसपास धुन्ध गहरी होने लगती है।

एरियलो के ऊपर आसमान को सर्चलाइट उसी तरह बार-बार काट जाती है। एरियल कांपकर स्थिर होने लगते हैं कि फिर उसी तरह काप जाते हैं।

मन्दी

चेयरिंग क्रास पर पहुंचकर मैंने देखा कि उस वक्त वहां मेरे सिवा एक भी आदमी नहीं है। एक बच्चा, जो अपनी आया के साथ वहां खेल रहा था, अब उसके पीछे भागता हुआ ठंडी सड़क पर चला गया था। घाटी में एक जली हुई इमारत का ज़ीना इस तरह शून्य की तरफ झांक रहा था जैसे सारे विश्व को आत्महत्या की प्रेरणा और अपने ऊपर आकर कूद जाने का निमन्त्रण दे रहा हो। आसपास के विस्तार को देखते हुए उस निस्तब्ध एकान्त में मुझे हार्डी के एक दृश्य-चित्र की याद हो आई, जिसके कई पृष्ठों के वर्णन के बाद मानवता दृश्यपट पर प्रवेश करती है अर्थात् एक छकड़ा धीमी चाल से आता दिखाई देता है। मेरे सामने भी खुली घाटी थी, दूर-तक फैली पहाड़ी शृंखलाएं थीं, बादल थे, चेयरिंग क्रास का सुनसान मोड़ था—और यहां भी कुछ उसी तरह मानवता ने दृश्यपट पर प्रवेश किया—अर्थात् एक पचास-पचपन साल का भला आदमी छड़ी टेकता दूर से आता दिखाई दिया। वह इस तरह इधर-उधर नजर डालता चल रहा था जैसे देख रहा हो कि जो ढेले-पत्थर कल वहां पड़े थे, वे आज भी अपनी जगह पर हैं या नहीं। जब वह मुझसे कुछ ही फासले पर रह गया, तो उसने आंखें तीन-चौथाई बन्द करके छोटी-छोटी लकीरों जैसी बना लीं और मेरे चेहरे का गौर से मुआइना करता हुआ आगे बढ़ने लगा। मेरे पास आने तक उसकी नजर ने जैसे फैसला कर लिया, और उसने रुककर छड़ी पर भार डाले हुए पल-भर के वक्फे के बाद पूछा, "यहां नये आए हो?"

"जी हां," मैंने उसकी मुरझाई हुई पुतलियों में अपने चेहरे का साया देखते हुए जरा संकोच के साथ कहा।

"मुझे लग रहा था कि नये ही आए हो," वह बोला, "पुराने लोग तो सब अपने पहचाने हुए हैं।"

"आप यहीं रहते हैं?" मैंने पूछा।

"हां यहीं रहते हैं," उसने विरक्ति और शिकायत के स्वर में उत्तर दिया, "जहां का अन्न-जल लिखाकर लाए थे, वहीं तो न रहेंगे—'अन्न-जल मिले चाहे न मिले।'

उसका स्वर कुछ ऐसा था जैसे मुझसे उसे कोई पुराना गिला हो। मुझे लगा कि या तो वह बेहद निराशावादी है, या उसे पेट का कोई संक्रामक रोग है। उसकी रस्सी की तरह बंधी टाई से यह अनुमान होता था कि वह एक रिटायर्ड सरकारी कर्मचारी है जो अब अपनी कोठी में सेब का बगीचा लगाकर उसकी रखवाली किया करता है।

"आपकी यहां पर अपनी जमीन होगी?" मैंने उत्सुकता न रहते हुए भी पूछ लिया।

"जमीन?" उसके स्वर में और भी निराशा और शिकायत भर आई। "जमीन कहां जी?" और फिर जैसे कुछ खीझ और कुछ व्यंग्य के साथ सिर हिलाकर उसने कहा, 'जमीन!'

'मुझे समझ नहीं आ रहा था कि अब मुझे क्या कहना चाहिए। उसी तरह छड़ी पर भार दिए मेरी तरफ देख रहा था। कुछ क्षणों का वह खामोश अन्तराल मुझे विचित्र-सा लगा। उस स्थिति से निकलने के लिए मैंने पूछ लिया, "तो आप यहां कोई अपना निज का काम करते हैं?"

"काम क्या करना है जी?" उसने जवाब दिया, "घर से खाना अगर काम है, तो वही काम करते हैं और आजकल काम रह क्या गए हैं?" हर काम का बुरा हाल

है !"

मेरा ध्यान पल-भर के लिए जली हुई इमारत के जीने की तरफ चला गया। उसके ऊपर एक बन्दर आ बैठा था और सिर खुजलाता हुआ शायद यह फैसला करना चाह रहा था कि उसे कूद जाना चाहिए या नहीं।

"अकेले आए हो ?" अब उस आदमी ने मुझसे पूछ लिया।

"जी हां, अकेला ही आया हूं," मैंने जवाब दिया।

"आजकल यहां आता ही कौन है ?" वह बोला, "यह तो बियाबान जगह है। सैर के लिए अच्छी जगहें हैं शिमला, मसूरी वगैरह। वहां क्यों नहीं चले गए ?"

मुझे फिर से उसकी पुतलियों में अपना साया नजर आ गया। मगर मन होते हुए भी मैं उससे यह नहीं कह सका कि मुझे पहले पता होता कि वहां आकर मेरी उससे मुलाकात होगी, तो मैं जरूर किसी और पहाड़ पर चला जाता।

"खैर, अब तो आ ही गए हो," वह फिर बोला, "कुछ दिन घूम-फिर लो। ठहरने का इन्तजाम कर लिया है ?"

"जी हां," मैंने कहा, कथलक रोड पर एक कोठी ले ली है।"

"सभी कोठियां खाली पड़ी हैं," वह बोला, "हमारे पास भी एक कोठरी थी। अभी कल ही दो रुपये महीने पर चढ़ाई है। दो-तीन महीने लगी रहेगी। फिर दो-चार रुपये डालकर सफेदी करा देंगे। और क्या !" फिर दो-एक क्षण के बाद उसने पूछा, "खाने का क्या इन्तजाम किया है।"

"अभी कुछ नहीं किया। इस वक्त इसी ख्याल से बाहर आया था कि कोई अच्छा-सा होटल देख लूं, जो ज्यादा महंगा भी न हो।"

"नीचे बाजार में चले जाओ," वह बोला, "नत्थासिंह का होटल पूछ लेना। सस्ते होटलों में वही अच्छा है। वहीं खा लिया करना। पेट ही भरना है ! और क्या !"

और अपनी नहूसत मेरे अन्दर भरकर वह पहले की तरह छड़ी टेकता हुआ रास्ते पर चल दिया।

नत्थासिंह का होटल बाजार में बहुत नीचे जाकर था। जिस समय मैं वहां पहुंचा बुड्ढा सरदार नत्थासिंह और उसके दोनों बेटे अपनी दुकान के सामने हलवाई की दुकान में बैठे हलवाई के साथ ताश खेल रहे थे। मुझे देखते ही नत्थासिंह ने तपाक से अपने बड़े लड़के से कहा, "उठ बसन्ते, ग्राहक आया है।"

बसन्ते ने तुरन्त हाथ के पत्ते फेंक दिए और बाहर निकल आया।

"क्या चाहिए साब ?" उसने आकर अपनी गद्दी पर बैठते हुए पूछा।

"एक प्याली चाय बना दो," मैंने कहा।

"अभी लीजिए !" और वह केतली में पानी डालने लगा।

"अंडे-वंडे रखते हो ?" मैंने पूछा।

"रखते तो नहीं, पर आपके लिए अभी मंगवा देता हूं," वह बोला, "कैसे अंडे लेंगे ? फ्राई या आमलेट ?

"आमलेट," मैंने कहा।

"जा हरबसे, भागकर ऊपर वाले लाला से दो अंडे ले आ," उसने अपने छोटे भाई को आवाज दी।

आवाज सुनकर हरबसे ने भी झट से हाथ के पत्ते फेंक दिए और उठकर बाहर आ गया। बसन्ते से पैसे लेकर वह भागता हुआ बाजार की सीढ़ियां चढ़ गया। बसन्ता केतली भट्ठी पर रखकर नीचे से हवा करने लगा।

हलवाई और नत्थासिंह अपने-अपने पत्ते हाथ में लिए थे। हलवाई अपने पाजामे का कपड़ा उंगली और अंगूठे के बीच में लेकर जांघ खुजलाता हुआ कह रहा था, "अब चढ़ाई शुरू हो रही है नत्थासिंह !"

"हां अब गर्मियां आई हैं, तो चढ़ाई शुरू होगी ही," नत्थासिंह अपनी सफ़ेद दाढ़ी में उंगलियों से कंघी करता हुआ बोला, "चार पैसे कमाने के यही तो दिन हैं।"

"पर नत्थासिंह, अब वह पहले वाली बात नहीं है," हलवाई ने कहा, "पहले दिनों में हज़ार-बारह सौ आदमी इधर को आते थे, हज़ार-बारह सौ उधर को जाते थे, तो लगता था कि हां, लोग बाहर से आए हैं। अब भी आ गए सौ-पचास तो क्या है !"

"सौ-पचास की भी बड़ी बरकत है," नत्थासिंह धार्मिकता के स्वर में बोला।

"कहते हैं आजकल किसी के पास पैसा ही नहीं रहा," हलवाई ने जैसे चिंतन करते हुए कहा, "यह बात मेरी समझ में नहीं आती। दो-चार साल सबके पास पैसा हो जाता है, फिर एकदम सबके-सब भूखे नंगे हो जाते हैं ! जैसे पैसों पर किसी ने बांध बांधकर रखा है। जब चाहता है छोड़ देता है, जब चाहता है रोक लेता है !"

"सब करनी कर्तार की है," कहता हुआ नत्थासिंह भी पत्ते फेंककर उठ खड़ा हुआ।

"कर्तार की करनी कुछ नहीं है," हलवाई बेमन से पत्ते रखता हुआ बोला, जब कर्तार पैदावार उसी तरह करता है, तो लोग क्यों भूखे-नंगे हो जाते हैं ? यह बात मेरी समझ में नहीं आती।"

नत्थासिंह ने दाढ़ी खुजलाते हुए आकाश की तरफ देखा, जैसे खोज रहे हो कि कर्तार के अलावा दूसरा कौन है जो लोगों को भूखे-नंगे बना सकता है।

"कर्तार को ही पता है," पल-भर बाद उसने सिर हिलाकर कहा।

"कर्तार को कुछ पता नहीं है," हलवाई ने ताश की गड्डी फटी हुई डब्बी में रखते हुए सिर हिलाकर कहा और अपनी गद्दी पर जा बैठा। मैं यह तय नहीं कर सका कि उसने कर्तार को निर्दोष बताने की कोशिश की है, या कर्तार की ज्ञानशक्ति पर सन्देह प्रकट किया है !

कुछ देर बाद मैं चाय पीकर वहां से चलने लगा, तो बसन्ते ने कुल छः आने मांगे। उसने हिसाब भी दिया—चार आने के अंडे, एक आने का घी और एक आने की चाय। मैं पैसे देकर बाहर निकला, तो नत्थासिंह ने पीछे से आवाज़ दी, "भाई साहब, रात को खाना भी यहीं खाइएगा। आज आपके लिए स्पेशल चीज़ बनाएंगे ! ज़रूर आइएगा।"

उसके स्वर में ऐसा अनुरोध था कि मैं मुसकराए बिना नहीं रह सका। सोचा कि उसने छ: आने में क्या कमा लिया है जो मुझसे रात को फिर आने का अनुरोध कर रहा है।

शाम को सैर से लौटते हुए मैंने बुक एजेंसी से अखबार खरीदा और बैठकर पढ़ने के लिए एक बड़े से रेस्तरां में चला गया। अन्दर पहुंचकर देखा कि कुर्सियां, मेज़ और सोफ़े करीने से सजे हुए हैं, पर न तो हाल में कोई बैरा है और न ही काउण्टर पर कोई आदमी है। मैं एक सोफ़े पर बैठकर अखबार पढ़ने लगा। एक कुत्ता जो उस सोफ़े से सटकर लेटा था, अब वहां से उठकर सामने के सोफ़े पर आ बैठा और मेरी तरफ देखकर जीभ लपलपाने लगा। मैंने एक बार हल्के से मेज़ को थपथपाया, बैरे को आवाज़ दी, पर कोई इन्सानी सूरत सामने नहीं आई। अलबत्ता, कुत्ता सोफ़े से मेज़ पर आकर अब और भी पास से मेरी तरफ जीभ लपलपाने लगा। मैं अपने और उसके बीच अखबार

का परदा करके खबरें पढ़ता रहा।

उस तरह बैठे हुए मुझे पन्द्रह-बीस मिनट बीत गए। आखिर जब मैं वहा से उठने को हुआ, तो बाहर का दरवाजा खुला और पाजामा-कमीज पहने एक आदमी अन्दर दाखिल हुआ। मुझे देखकर उसने दूर से सलाम किया और पास आकर ज़रा संकोच के साथ कहा, "माफ कीजिएगा, मैं एक बाबू का सामान मोटर-अड्डे तक छोडने चला गया था। आपको आए ज्यादा देर तो नही हुई ?"

मैंने उसके ढीले-ढाले जिस्म पर एक गहरी नज़र डाली और उससे पूछ लिया, "तुम यहा अकेले ही काम करते हो ?"

"जी, आजकल अकेला ही हू," उसने जवाब दिया, "दिन-भर मैं यही रहता हूं, सिर्फ बस के वक्त किसी बाबू का सामान मिल जाए तो अड्डे तक छोडने चला जाता हूं।"

"यहां का कोई मैनेजर नही है ? ' मैंने पूछा।

"जी, मालिक आप ही मैनेजर है," वह बोला, "वह आजकल अमृतसर में रहता है। यहा का सारा काम मेरे ज़िम्मे है।"

"तुम यहां चाय-वाय कुछ बनाते हो ?"

"चाय, काफी – जिस चीज़ का आर्डर दें, वह बन सकती है !"

"अच्छा ज़रा अपना मेन्यू दिखाना।"

उसके चेहरे के भाव से मैंने अन्दाज़ा लगाया कि वह मेरी बात नही समझा। मैंने उसे समझाते हुए कहा, "तुम्हारे पास खाने-पीने की चीजों की छपी हुई लिस्ट होगी, वह ले आओ।"

"अभी लाता हूं जी," कहकर वह सामने की दीवार की तरफ चला गया और वहां से एक गत्ता उतार लाया। देखने पर मुझे पता चला कि वह उस होटल का लायसेंस है।

"यह तो यहां का लायसेंस है," मैंने कहा।

"जी, छपी हुई लिस्ट तो यहां पर नहीं है," वह असमंजस में पड़ गया।

[illegible] कहा।

[illegible] और उसके स्वर में काफी आत्मीयता आ गई। मैं कहता हूं, खाने का टैम है, खाना ही खाओ। चाय का क्या पीना ! साली अन्दर जाकर नाड़ियों को जलाती है।"

मैं उसकी बात पर मन ही मन मुसकराया। मुझे सचमुच भूख लग रही थी, इसलिए मैंने पूछा, "सब्जी-अब्जी क्या बनाई है ?"

"आलू-मटर, आलू-टमाटर, भुर्ता, भिंडी, कोफ्ता, रायता…" वह जल्दी-जल्दी लम्बी सूची बोल गया।

"कितनी देर में ले आओगे ?" मैंने पूछा।

"बस जी पांच मिनट मे।"

"तो आलू-मटर और रायता ले आओ। साथ खुश्क चपाती।"

"अच्छा जी !" वह बोला, "पर साहब," और फिर स्वर मे ही वह आत्मीयता लाकर उसने कहा, "बरसात का मौसम है। रात के वक्त रायता नही खाओ, तो अच्छा है। ठंडी चीज़ है। बाज़ वक्त नुकसान कर जाती है।

उसकी आत्मीयता से प्रभावित होकर मैंने कहा, "तो अच्छा, सिर्फ आलू-मटर ले आओ।"

"बस, अभी लो जी, अभी लाया," कहता हुआ वह लकड़ी के जीने से नीचे चला गया।

उसके जाने के बाद मैं कुत्ते से जी बहलाने लगा। कुत्ते को शायद बहुत दिनों से कोई चाहने वाला नहीं मिला था। वह मेरे साथ जरूरत से ज्यादा प्यार दिखाने लगा। चार-पांच मिनट के बाद बाहर का दरवाजा फिर खुला और एक पहाड़ी नवयुवती अन्दर आ गई। उसके कपड़ों और पीठ पर बंधी टोकरी से जाहिर था कि वह वहां की कोयला बेचने वाली लड़कियों में से है। सुन्दरता का सम्बन्ध चेहरे की रेखाओं से ही हो, तो उसे सुन्दर कहा जा सकता था। वह सीधी मेरे पास आ गई और छूटते ही बोली,

[illegible] ही।

[illegible] आदमी ने एक किल्टा

[illegible] में पैसे मिल जाएंगे।

मैं आज तीसरी बार मांगने आई हूं। आज मुझे पैसों की बहुत जरूरत है।

मैंने कुत्ते को बांहों से निकल जाने दिया। मेरी आंखें उसकी नीली पुतलियों को देख रही थीं। उसके कपड़े—पाजामा, कमीज, वास्कट, चादर और पटका—सभी बहुत मैले थे। मुझे उसकी ठोडी की तराश बहुत सुन्दर लगी। सोचा कि उसकी ठोड़ी के सिरे पर अगर एक तिल भी होता···।

"मेरे चौदह आने पैसे हैं," वह कह रही थी।

और मैं सोचने लगा कि उसे ठोडी के तिल और चौदह आने पैसे में से एक चीज चुनने को कहा जाए, तो वह क्या चुनेगी?

"मुझे आज जाते हुए बाजार से सौदा लेकर जाना है," वह कह रही थी।

"कल सवेरे आना!" उसी समय बैरे ने जीने से ऊपर आते हुए कहा।

"रोज मुझसे कल सवेरे बोल देता," वह मुझे लक्ष्य करके जरा गुस्से के साथ बोली, "इससे कहिए कल सवेरे मेरे पैसे जरूर दे दे।"

"इनसे क्या कह रही है, ये तो यहां खाना खाने आए हैं," बैरा उसकी बात पर थोड़ा हंस दिया।

इससे लड़की की नीली आंखों में सकोच की हल्की लहर दौड़ गई। वह अब बदले हुए स्वर में मुझसे बोली, "आपको कोयला तो नहीं चाहिए?"

"नहीं," मैंने कहा।

"चौदह आने का किल्टा दूंगी, कोयला देख लो," कहते हुए उसने अपनी चादर की तह में से एक कोयला निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दिया।

"ये यहां आकर खाना खाते हैं, इन्हें कोयला नहीं चाहिए," अब बैरे ने उसे झिड़क दिया।

"आपको खाना बनाने के लिए नौकर चाहिए?" लड़की बात करने से नहीं रुकी, "मेरा छोटा भाई है। सब काम जानता है। पानी भी भरेगा, बरतन भी मलेगा···।"

"तू जाती है यहां से कि नहीं?" बैरे का स्वर अब दुतकारने का-सा हो गया।

"आठ रुपये महीने में सारा काम कर देगा," लड़की उस स्वर को महत्त्व न देकर कहती रही, "पहले एक डाक्टर के घर में काम करता था। डाक्टर अब यहां से चला गया है···।"

बैरे ने अब उसे बांह से पकड़ लिया और बाहर की तरफ ले जाता हुआ बोला,

"चल-चल, जाकर अपना काम कर। कह दिया है, उन्हें नौकर नहीं चाहिए फिर भी बके जा रही है!

"मैं कल इसी वक्त उसे लेकर आऊंगी," लड़की ने फिर भी चलते-चलते मुड़कर कह दिया।

बैरा उसे दरवाज़े से बाहर पहुंचाकर पास आता हुआ बोला, "कमीन जात! ऐसे गले पड़ जाती है कि बस···!"

"खाना अभी कितनी देर में लाओगे?" मैंने उससे पूछा।

"बस जी पांच मिनट में लेकर आ रहा हूं," वह बोला, "आटा गूंधकर सब्ज़ी चढ़ा आया हूं। ज़रा नमक ले आऊं—आकर चपातियां बनाता हूं।"

खैर, खाना मुझे काफी देर से मिला। खाने के बाद मैं काफी देर ठण्डी-गरम सड़क पर टहलता रहा क्योंकि पहाड़ियों पर छिटकी चांदनी बहुत अच्छी लग रही थी। लौटते वक्त बाज़ार के पास से निकलते हुए मैंने सोचा कि नाश्ते के लिए सरदार नत्थासिंह से दो अंडे उबलवाकर लेता चलूं। दस बज चुके थे, पर नत्थासिंह की दुकान अभी खुली थी। मैं वहां पहुंचा तो नत्थासिंह और उसके दोनों बेटे पैरों के भार बैठे खाना खा रहे थे। मुझे देखते ही बसन्ते ने कहा, "वह लो, आ गए भाई साहब!"

"हम कितनी देर इन्तज़ार कर-करके अब खाना खाने बैठे हैं!" हरबंसा बोला।

"खास आपके लिए मुर्गा बनाया था," नत्थासिंह ने कहा, "हमने सोचा था कि भाई साहब देख लें, हम कैसा खाना बनाते हैं। खयाल था दो-एक प्लेटें और लग जाएंगी। पर न आप आए, और न किसी और ने ही मुर्गे की प्लेट ली। हम अब तीनों खुद खाने बैठे हैं। मैंने मुर्गा इतने चाव से, इतने प्रेम से बनाया था कि क्या कहूं! क्या पता था कि खुद ही खाना पड़ेगा। ज़िन्दगी में ऐसे भी दिन देखने थे! वे भी दिन थे कि जब अपने लिए मुर्गे का शोरबा तक नहीं बचता था! और एक दिन यह है। भरी हुई पतीली सामने रखकर बैठे हैं! गांठ से साढ़े तीन रुपये लग गए, जो अब पेट में जाकर खनकते भी नहीं! जो तेरी करनी मालिक!"

"इसमें मालिक की क्या करनी है?" बसन्ता ज़रा तीखा होकर बोला, "जो करनी है, सब अपनी ही है! आप ही को जोश आ रहा था कि चढ़ाई शुरू हो गई है, लोग आने लगे हैं, कोई अच्छी चीज़ बनानी चाहिए। मैंने कहा था कि अभी आठ-दस दिन ठहर जाओ, ज़रा चढ़ाई का रुख देख लेने दो। पर नहीं माने! हठ करते रहे कि अच्छी चीज़ से मुहूरत करेंगे तो सीज़न अच्छा गुज़रेगा। लो, हो गया मुहूरत!"

उसी समय वह आदमी, जो कुछ घंटे पहले मुझे बेयरिंग क्रास पर मिला था, मेरे पास आकर खड़ा हो गया। अंधेरे में उसने मुझे नहीं पहचाना और छड़ी पर भार देकर नत्थासिंह से पूछा, "नत्थासिंह, एक ग्राहक भेजा था, आया था?"

"कौन ग्राहक?" नत्थासिंह चिढ़े-मुरझाए हुए स्वर में बोला।

"घुंघराले बालों वाला नौजवान था—मोटे शीशे का चश्मा लगाए हुए···?"

"ये भाई साहब खड़े हैं!" इससे पहले कि वह मेरा और वर्णन करता, नत्थासिंह ने उसे होशियार कर दिया।

"अच्छा आ गए हैं!" उसने मुझे लक्ष्य करके कहा और फिर नत्थासिंह की तरफ देखकर बोला, "तो ला नत्थासिंह, चाय की प्याली पिला।"

कहता हुआ वह सन्तुष्ट भाव से अन्दर टीन की कुरसी पर जा बैठा। बसन्ता भट्ठी पर केतली रखते हुए जिस तरह से बुदबुदाया उससे ज़ाहिर था कि वह आदमी चाय की प्याली ग्राहक भेजने के बदले में पीने जा रहा है!

परमात्मा का कुत्ता

बहुत-से लोग यहां-वहां सिर लटकाए बैठे थे जैसे किसी का मातम करने आए हों। कुछ लोग अपनी पोटलियां खोलकर खाना खा रहे थे। दो-एक व्यक्ति पगड़ियां सिर के नीचे रखकर कम्पाउण्ड के बाहर सड़क के किनारे बिखर गए थे। छोले-कुलचे वाले का रोज़गार गरम था, और कमेटी के नल के पास एक छोटा-मोटा क्यू लगा था। नल के पास कुर्सी डालकर बैठा अर्ज़ीनवीस धड़ाधड़ अर्जियां टाइप कर रहा था। उसके माथे से बहकर पसीना उसके होंठों पर आ रहा था, लेकिन उसे पोंछने की फ़ुरसत नहीं थी। सफ़ेद दाढ़ियों वाले दो-तीन लम्बे-ऊंचे जाट, अपनी लाठियों पर झुके हुए, उसके खाली होने का इंतज़ार कर रहे थे। धूप से बचने के लिए अर्ज़ीनवीस ने जो टाट का परदा लगा रखा था, वह हवा से उड़ा जा रहा था। थोड़ी दूर मोढ़े पर बैठा उसका लड़का अंग्रेज़ी प्राइमर को रट्टा लगा रहा था — सी ए टी कैट—कैट माने बिल्ली; बी ए टी बैट—बैट माने बल्ला; एफ ए टी फैट—फैट माने मोटा···। कमीज़ों के आधे बटन खोले और बगल में फ़ाइलें दबाए कुछ बाबू एक-दूसरे से छेड़खानी करते, रजिस्ट्रेशन ब्रांच से रिकार्ड ब्रांच की तरफ़ जा रहे थे। लाल बेल्ट वाला चपरासी, आस-पास की भीड़ से उदासीन, अपने स्टूल पर बैठा मन ही मन कुछ हिसाब कर रहा था। कभी उसके होंठ हिलते थे, और कभी सिर हिल जाता था। सारे कम्पाउण्ड में सितम्बर की खुली धूप फैली थी। चिड़ियों के कुछ बच्चे डाली से कूदने और फिर ऊपर को उड़ने का अभ्यास कर रहे थे और कई बड़े-बड़े कौए पोर्च के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहल कदमी कर रहे थे। एक सत्तर-पचहत्तर की बुढ़िया, जिसका सिर कांप रहा था और चेहरा झुर्रियों के गुंझल के सिवा कुछ नहीं था, लोगों से पूछ रही थी कि वह अपने लड़के के मरने के बाद उसके नाम एलाट हुई ज़मीन की हक़दार हो जाती है या नहीं···?

अन्दर हाल कमरे में फ़ाइलें धीरे-धीरे चल रही थीं। दो-चार बाबू बीच की मेज़ के पास जमा होकर चाय पी रहे थे। उनमें से एक दफ़्तरी कागज़ पर लिखी अपनी ताज़ा ग़ज़ल दोस्तों को सुना रहा था और दोस्त इस विश्वास के साथ सुन रहे थे कि वह ग़ज़ल उसने 'शमा' या 'बीसवीं सदी' के किसी पुराने अंक में से उड़ाई है।

"अज़ीज़ साहब, ये शेअर आपने आज ही कहे हैं, या पहले के कहे हुए शेअर आज अचानक याद हो आए हैं ?" सांवले चेहरे और घनी मूछों वाले एक बाबू ने बाईं आंख को ज़रा-सा दबाकर पूछा। आस-पास खड़े सब लोगों के चेहरे खिल गए।

"यह बिलकुल ताज़ा ग़ज़ल है," अज़ीज़ साहब ने अदालत में खड़े होकर हलफ़िया बयान देने के लहजे में कहा, "इससे पहले भी इसी वज़न पर कोई और चीज़ कही हो तो याद नहीं।" और फिर आंखों से सबके चेहरों को टटोलते हुए वे हल्की हंसी के साथ बोले, "अपना दीवान तो कोई रिसर्चदां ही मुरत्तब करेगा···।"

एक फ़रमायशी क़हक़हा लगा जिसे 'शी-शी' की आवाज़ों ने बीच में ही दबा दिया। क़हक़हे पर लगाई गई इस ब्रेक का मतलब था कि कमिश्नर साहब अपने कमरे में तशरीफ़ ले आए हैं। कुछ देर का वक़्फ़ा रहा, जिसमें सुरजीत सिंह वल्द गुरमीत सिंह की फ़ाइल एक मेज़ से एक्शन के लिए दूसरी मेज़ पर पहुंच गई, सुरजीत सिंह वल्द गुरमीत सिंह मुसकराता हुआ हाल से बाहर चला गया, और जिस बाबू की मेज़ से फ़ाइल गई थी, वह पांच रुपये के नोट को सहलाता हुआ चाय पीने वालों के जमघट में आ शामिल हुआ। अज़ीज़ साहब अब आवाज़ ज़रा धीमी करके ग़ज़ल का अगला शेअर

सुनाने लगे।

साहब के कमरे से घंटी हुई। चपरासी मुस्तैदी से उठकर अन्दर गया, और उसी मुस्तैदी से वापस आकर फिर अपने स्टूल पर बैठ गया।

चपरासी से खिड़की का पर्दा ठीक कराकर कमिश्नर साहब ने मेज पर रखे ढेर-से कागजों पर एक साथ दस्तखत किए और पाइप सुलगाकर 'रीडर्ज़ डाइजेस्ट' का ताजा अंक बैग से निकाल लिया। लेटीशिया बाल्ड्रिज का लेख कि उसे इतालवी मर्दों से क्यों प्यार है, वे पढ़ चुके थे। और लेखों में हृदय की शल्य चिकित्सा के सम्बन्ध में जे० डी० रैटक्लिफ का लेख उन्होंने सबसे पहले पढ़ने के लिए चुन रखा था। पृष्ठ एक सौ ग्यारह खोलकर वे हृदय के नये ऑपरेशन का ब्योरा पढ़ने लगे।

तभी बाहर से कुछ शोर सुनाई देने लगा।

कम्पाउण्ड में पेड़ के नीचे बिखरकर बैठे लोगों में चार नये चेहरे आ शामिल हुए थे। एक अधेड़ आदमी था जिसने अपनी पगड़ी ज़मीन पर बिछा ली थी और हाथ पीछे करके तथा टांगें फैलाकर उस पर बैठ गया था। पगड़ी के सिरे की तरफ उससे ज़रा बड़ी उम्र की एक स्त्री और एक जवान लड़की बैठी थी, और उनके पास खड़ा एक दुबला-सा लड़का आस-पास की हर चीज़ को घूरती नज़र से देख रहा था, अधेड़ मरद की फैली हुई टांगें धीरे-धीरे-पूरी खुल गई थीं और आवाज इतनी ऊंची हो गई थी कि कम्पाउण्ड के बाहर से भी बहुत-से लोगों का ध्यान उसकी तरफ खिंच गया था। वह बोलता हुआ साथ अपने घुटने पर हाथ मार रहा था। "सरकार वक्त ले रही है! दस-पांच साल में सरकार फैसला करेगी कि अर्जी मंजूर होनी चाहिए या नहीं। सालो, यमराज भी तो हमारा वक्त गिन रहा है। उधर वह वक्त पूरा होगा और इधर तुमसे पता चलेगा कि हमारी अर्जी मंजूर हो गई है।"

चपरासी की टांगें ज़मीन पर पुख्ता हो गईं, और वह सीधा खड़ा हो गया। कम्पाउण्ड में बिखरकर बैठे और लेटे हुए लोग अपनी-अपनी जगह पर कस गए। कई लोग उस पेड़ के पास आ जमा हुए।

"दो साल से अर्जी दे रखी है कि सालो, ज़मीन के नाम पर तुमने मुझे जो गड्ढा एलाट कर दिया है, उसकी जगह कोई दूसरी ज़मीन दो। मगर दो साल से अर्जी यहां के दो कमरे ही पार नहीं कर पाई!" वह आदमी अब जैसे एक मजमे में बैठकर तकरीर करने लगा, "इस कमरे से उस कमरे में अर्जी के जाने में वक्त लगता है! इस मेज से उस मेज़ तक जाने में भी वक्त लगता है! सरकार वक्त ले रही है! लो, मैं आ गया हूं आज यहीं पर अपना सारा घर-बार लेकर। ले लो जितना वक्त तुम्हें लेना है!···सात साल की भुखमरी के बाद सालों ने ज़मीन दी है मुझे—सौ मरले का गड्ढा! उसमें क्या मैं बाप-दादों की अस्थियां गाड़ूंगा? अर्जी दी थी कि मुझे सौ मरले की जगह पचास मरले दे दो—लेकिन ज़मीन तो दो! मगर अर्जी दो साल से वक्त ले रही है! मैं भूखा मर रहा हूं, और अर्जी वक्त ले रही है!"

चपरासी अपने हथियार लिए हुए आगे आया—माथे पर त्योरियां और आंखों में क्रोध। आस-पास की भीड़ को हटाता हुआ वह उसके पास आ गया।

"ए मिस्टर, चल हियां से बाहर!" उसने हथियारों की पूरी चोट के साथ कहा, "चल···उठ···!"

"मिस्टर आज यहां से नहीं उठ सकता!" वह आदमी अपनी टांगें थोड़ी और चौड़ी करके बोला, "मिस्टर आज यहां का बादशाह है। पहले मिस्टर देश के बेताज बादशाहों की जय बुलाता था। अब वह किसी की जय नहीं बुलाता। अब वह खुद यहां

का बादशाह है ''बेलाज बादशाह। उसे कोई लाज-शरम नही है। उस पर किसी का हुक्म नही चलता। समझे चपरासी बादशाह!''

''अभी तुझे पता चल जाएगा कि तुझ पर किसी का हुक्म चलता है या नही,'' चपरासी बादशाह और गरम हुआ, ''अभी पुलिस के सुपुर्द कर दिया जाएगा तो तेरी सारी बादशाही निकल जाएगी...।''

''हा-हा!'' बेलाज बादशाह हसा। ''तेरी पुलिस मेरी बादशाही निकालेगी? तू बुला पुलिस को। मैं पुलिस के सामने नगा हो जाऊगा और कहूंगा कि निकालो मेरी बादशाही! हममे से किस-किसकी बादशाही निकालेगी पुलिस? ये मेरे साथ तीन बादशाह और है। यह मेरे भाई की बेवा है—उस भाई की जिसे पाकिस्तान मे टागो से पकडकर चीर दिया गया था। यह मेरे भाई का लडका है जो अभी से तपेदिक का मरीज है। और यह मेरे भाई की लडकी है जो अब ब्याहने लायक हो गई है। इसकी बडी कुवारी बहन आज भी पाकिस्तान मे है। आज मैंने इन सबको बादशाही दे दी है। तू ले आ जाकर अपनी पुलिस, कि आकर इन सबकी बादशाही निकाल दे। कुत्ता साला...!''

अन्दर से कई-एक बाबू निकलकर बाहर आ गए थे। 'कुत्ता साला' सुनकर चपरासी आपे से बाहर हो गया। वह तैश मे उसे बाह से पकड़कर घसीटने लगा। ''तुझे अभी पता चल जाता है कि कौन साला कुत्ता है! मैं तुझे मार-मारकर...'' और उसने उसे अपने टूटे हुए बूट की एक ठोकर दी। स्त्री और लड़की सहमकर वहा से हट गईं। लड़का एक तरफ खडा होकर रोने लगा।

बाबू लोग भीड को हटाते हुए आगे बढ आए और उन्होने चपरासी को उस आदमी के पास से हटा लिया। चपरासी फिर भी बडबडाता रहा। ''कमीना आदमी, दफ्तर मे आकर गाली देता है। मैं अभी तुझे दिखा देता कि...''

''एक तुम्ही नही, यहा तुम सबके-सब कुत्ते हो,'' वह आदमी कहता रहा, ''तुम सब भी कुत्ते हो, और मैं भी कुत्ता हूं। फर्क सिर्फ इतना है कि तुम लोग सरकार के कुत्ते हो—हम लोगों की हड्डिया चूसते हो और सरकार की तरफ से भौंकते हो। मैं परमात्मा का कुत्ता हू। उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूं, और उसकी तरफ से भौंकता हू। उसका घर इन्साफ का घर है। मैं उसके घर की रखवाली करता हू। तुम सब उसके इन्साफ की दौलत के लुटेरे हो। तुम पर भौंकना मेरा फर्ज है, मेरे मालिक का फरमान है। मेरा तुमसे अजली बैर है। कुत्ते का बैरी कुत्ता होता है। तुम मेरे दुश्मन हो, मैं तुम्हारा दुश्मन हू। मैं अकेला हूं, इसलिए तुम सब मिलकर मुझे मारो। मुझे यहा से निकाल दो। लेकिन मैं फिर भी भौंकता रहूगा। तुम मेरा भौंकना बन्द नही कर सकते। मेरे अन्दर मेरे मालिक का नूर है, मेरे वाहगुरु का तेज है। मुझे जहा बन्द कर दोगे, मैं वहा भौंकूगा, और भौंक-भौंककर तुम सबके कान फाड़ दूगा। साले, आदमी के कुत्ते, जूठी हड्डी पर मरनेवाले कुत्ते दुम हिला-हिलाकर जीनेवाले कुत्ते...!''

''बाबा जी, बस करो,'' एक बाबू हाथ जोडकर बोला, ''हम लोगो पर रहम खाओ, और अपनी यह सन्तबानी बन्द करो। बताओ तुम्हारा नाम क्या है, तुम्हारा केस क्या है...?''

''मेरा नाम है बारह सौ छब्बीस बटा सात! मेरे मा-बाप का दिया हुआ नाम खा लिया कुत्तों ने। अब यही नाम है जो तुम्हारे दफ्तर का दिया हुआ है। मैं बारह सौ छब्बीस बटा सात हूं। मेरा और कोई नाम नही है। मेरा यह नाम याद कर लो। अपनी डायरी मे लिख लो। वाहगुरु का कुत्ता—बारह सौ छब्बीस बटा सात।''

''बाबा जी, आज जाओ, कल या परसो आ जाना। तुम्हारी अर्जी की कार्रवाई

तकरीबन-तकरीबन पूरी हो चुकी है···।"

"तकरीबन-तकरीबन पूरी हो चुकी है ! और मैं खुद ही तकरीबन-तकरीबन पूरा हो चुका हूं ! अब देखना यह है कि पहले कार्रवाई पूरी होती है, कि पहले मैं पूरा होता हूं ! एक तरफ सरकार का हुनर है और दूसरी तरफ परमात्मा का हुनर है ! तुम्हारा तकरीबन-तकरीबन अभी दफ्तर में ही रहेगा और मेरा तकरीबन-तकरीबन कफन में पहुंच जाएगा। सालो ने सारी पढ़ाई खर्च करके दो लफ्ज ईजाद किए हैं— शायद और तकरीबन। 'शायद आपके कागज ऊपर चले गए हैं' -तकरीबन-तकरीबन कार्रवाई पूरी हो चुकी है !' शायद से निकालो और तकरीबन में डाल दो ! तकरीबन से निकालो और शायद में गर्क कर दो। 'तकरीबन तीन-चार महीने में तहकीकात होगी। शायद महीने-दो महीने में रिपोर्ट आएगी।' मैं आज शायद और तकरीबन दोनों घर पर छोड आया हूं। मैं यहां बैठा हू और यहीं बैठा रहूगा। मेरा काम होना है, तो आज ही होगा और अभी होगा। तुम्हारे शायद और तकरीबन के गाहक ये सब खडे हैं। यह ठगी इनसे करो···।"

बाबू लोग अपनी सद्भावना के प्रभाव से निराश होकर एक-एक करके अन्दर लौटने लगे।

"बैठा है, बैठा रहने दो।"

"बकता है, बकने दो।"

"साला बदमाशी से काम निकालना चाहता है।"

"लेट हिम वार्क हिमसेल्फ टू डेथ।"

बाबुओं के साथ चपरासी भी बडबडाता हुआ अपने स्टूल पर लौट गया। "मैं साले के दांत तोड देता। अब बाबू लोग हाकिम है और हाकिमों का कहा मानना पडता है, वरना···"

"अरे बाबा, शान्ति से काम ले। यहां मिन्नत चलती है, पैसा चलता है, धौंस नही चलती," भीड में से कोई उसे समझाने लगा।

वह आदमी उठकर खड़ा हो गया।

"मगर परमात्मा का हुक्म हर जगह चलता है," वह अपनी कमीज उतारता हुआ बोला, "और परमात्मा के हुक्म से आज बेलाज बादशाह नगा होकर कमिश्नर साहब के कमरे में जाएगा। आज वह नगी पीठ पर साहब के डण्डे खाएगा। आज वह बूटों की ठोकरें खाकर प्रान देगा। लेकिन वह किसी की मिन्नत नही करेगा। किसी को पैसा नही चढाएगा। किसी की पूजा नही करेगा। जो वाहगुरु की पूजा करता है, वह और किसी की पूजा नही कर सकता। तो वाहगुरु का नाम लेकर···"

और इससे पहले कि वह अपने कहे को किए में परिणत करता, दो-एक आदमियो ने बढकर तहमद की गाठ पर रखे उसके हाथ को पकड लिया। बेलाज बादशाह अपना हाथ छुड़ाने के लिए संघर्ष करने लगा।

"मुझे जाकर पूछने दो कि क्या महात्मा गाधी ने इसीलिए इन्हें आजादी दिलाई थी कि ये आजादी के साथ इस तरह सम्भोग करें ? उसकी मिट्टी खराब करें ? उसके नाम पर कलक लगाएं ? उसे टके-टके की फाइलों में बाधकर जलील करें ? लोगों के दिलो में उसके लिए नफरत पैदा करें ? इन्सान के तन पर कपडे देखकर बात इन लोगो की समझ में नही आती। शरम तो उसे होती है जो इन्सान हो। मैं तो आप कहता हू कि मैं इन्सान नही, कुत्ता हू···!"

सहसा भीड में एक दहशत-सी फैल गई। कमिश्नर साहब अपने कमरे से बाहर

निकल आए थे। वे माथे की त्योरियों और चेहरे की झुर्रियों को गहरा किए भीड़ के बीच में आ गए।

"क्या बात है ? क्या चाहते हो तुम ?"

"आपसे मिलना चाहता हूं, साहब," वह आदमी साहब को घूरता हुआ बोला, "सौ मरले का एक गड्ढा मेरे नाम एलाट हुआ है। वह गड्ढा आपको वापस करना चाहता हूं ताकि सरकार उसमें एक तालाब बनवा दे, और अफसर लोग शाम को वहां जाकर मछलियां मारा करें। या उस गड्ढे में सरकार एक तहखाना बनवा दे और मेरे जैसे कुत्तों को उसमें बन्द कर दे•••।"

"ज्यादा बक बक मत करो, और अपना केस लेकर मेरे पास आओ।"

"मेरा केस मेरे पास नहीं है, साहब ! दो साल से सरकार के पास है—आपके पास है। मेरे पास अपना शरीर और दो कपड़े हैं। चार दिन बाद ये भी नहीं रहेंगे, इसलिए इन्हें भी आज ही उतारे दे रहा हूं। इसके बाद बाकी सिर्फ बारह सौ छब्बीस बटा सात रह जाएगा। बारह सौ छब्बीस बटा सात को मार-मारकर परमात्मा के हुजूर में भेज दिया जाएगा•••।"

"यह बकवास बन्द करो और मेरे साथ अन्दर आओ।"

और कमिश्नर साहब अपने कमरे में वापस चले गए। वह आदमी भी कमीज कंधे पर रखे उस कमरे की तरफ चल दिया।

"दो साल चक्कर लगाता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी। खुशामदें करता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी। वास्ते देता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी•••।"

चपरासी ने उसके लिए चिक उठा दी और वह कमिश्नर साहब के कमरे में दाखिल हो गया। घण्टी बजी, फाइलें हिलीं, बाबुओं की बुलाहट हुई, और आधे घण्टे के बाद बेताज बादशाह मुसकराता हुआ बाहर निकल आया। उत्सुक आंखों की भीड़ ने उसे आते देखा, तो वह फिर बोलने लगा, "चूहों की तरह बिटर-बिटर देखने में कुछ नहीं होता। भौंको, भौंको, सबके-सब भौंको। अपने-आप सालों के कान फट जाएंगे। भौंको कुत्तो, भौंको•••"

उसकी भौजाई दोनों बच्चों के साथ गेट के पास खड़ी इन्तजार कर रही थी। लड़के और लड़की के कंधों पर हाथ रखते हुए वह सचमुच बादशाह की तरह सड़क पर चलने लगा।

"हयादार हो, तो सालहा-साल मुंह लटकाए खड़े रहो। अर्जियां टाइप कराओ और नल का पानी पियो। सरकार वक्त ले रही है ! नहीं तो बेहया बनो। बेहयाई हज़ार बरकत है।"

वह सहसा रुका और ज़ोर से हंसा।

"यारो, बेहयाई हज़ार बरकत है।"

उसके चले जाने के बाद कम्पाउंड में और आस-पास मातमी वातावरण पहले से और गहरा हो गया। भीड़ धीरे-धीरे बिखरकर अपनी जगहों पर चली गई। चपरासी की टांगें फिर स्टूल पर झूलने लगीं। सामने के कैंटीन का लड़का बाबुओं के कमरे में एक सेट चाय ले गया। अर्ज़ीनवीस की मशीन चलने लगी और टिक-टिक की आवाज़ के साथ उसका लड़का फिर अपना सबक दोहराने लगा। "पी ई एन पेन—पेन माने कलम; एच ई एन हेन—हेन माने मुर्गी; डी ई ऐन डेन—डेन माने अंधेरी गुफा•••!"

एक आलोचना

चाय गरम है। धुआं उठ रहा है। हल्का-हल्का और लच्छेदार। मेरी प्याली पर नटराज नाच रहा है। धुआं उलझ गया। नटराज विलीन हो गया। प्याली से नाग-कन्या निकली। वह गई। वह एक नेता निकला। हाथ हिलाकर भाषण देने लगा। वह भी गया।

धुआं बल खा रहा है। हवा मे आकार बन रहे हैं—धुए का पहाड़, धुएं का वृक्ष, धुएं का बादल।

मेरे सामने नाश्ता रखा है। हाथ में भाई कैलाश की पुस्तक है। पुस्तक का शीर्षक है—'संघर्ष के सात वर्ष'।

पुस्तक में पहले बीस पृष्ठ की भूमिका है। उसके आगे सात अध्याय हैं। पहले अध्याय का शीर्षक है —'मेरी गरीबी।'

रामा बरतन मलता है, वह गरीब है। रूपा पानी भरती है, दाल पीसती है, उपले थापती है, वह गरीब है। उसका नन्हा बिज्जू नंग-धड़ंग कीचड मे लोटता है, गइया के बदन से बदन रगडता है, पांचों उंगलियां मुह मे चूसता हुआ अकालनृत्य नाचता है। वह गरीब है।

मगर गरीबी के दावेदार भाई कैलाश भी हैं जो रेशमी खादी का कुर्ता पहनकर अमरीकन कट के सुनहरे चश्मे के पीछे से झांकते हैं, अनन्नास के रस से अपने दिमाग को तर रखते हैं, और मोटे गद्दे पर बैठकर पार्कर 51 के कलम से लिखते हैं—'मेरी गरीबी'।

यह ठीक है, भाई कैलाश कभी गरीब थे। पर वह पुरानी बात है। आजकल उनके जीवन का विकास-खण्ड चल रहा है। भाई कैलाश शब्दों का व्यापार करते हैं। नकद माल लेते है, आकाश-चित्र बेचते हैं।

मेरी चाय की प्याली से धुआं कैनिबाल बनकर निकल रहा है। कैनिबाल एक पुरुष मे बदल रहा है। मुझे भाई कैलाश का वह रूप याद आ रहा है जिस रूप में मैं उन्हे सात साल पहले जानता था।

एक धुंधली सध्या थी। लगता था रात समय से पहले से उतर आएगी। कैलाश अपनी पत्नी तारा का शवदाह करके थोडी ही देर पहले श्मशान से लौटे थे। उनके सावले मुख पर पीडा, उग्रता और जलन के भाव थे।

मैं पास बैठा लालटेन की रोशनी में दीवार बनती छायाओं को देख रहा था। मटके की छाया का असुर बन रहा था, छाते की छाया का अजगर। खिड़की के किवाड़ की छाया वामन के चरण की तरह तिरछी ऊपर की ओर जा रही थी। सामने की दीवार को एक बडे गोलक ने घेर रखा था। यह मेरे सिर की छाया थी।

मुझे तारा की मृत्यु की सूचना अचानक ही मिली थी। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि मैं उनसे किस तरह मृत्यु के सम्बन्ध मे कोई बात पूछूं। बहुत देर तक खामोश बैठे रहने के बाद मैंने किसी तरह पूछा, "भाई साहब, भाभी को हुआ क्या था जो इस तरह अचानक…?"

उनकी आखें कुछ इस तरह से हिली जैसे उनका मन उन आंखों मे से झांककर कहना चाहता हो कि यही सवाल तो मैं भी पूछता हूं।

उनकी आखो मे यह भाव तारे की एक झिलमिल से अधिक नही रहा। उनकी मुद्रा बदल गई और उन्होने घायल स्वर में कहा, "होना क्या था शैलेन। जीनेवाली के

प्राण निकल गए, मौन हो गई।"

"फिर भी, रोग क्या था ?"

"रोग यह था कि वह मनुष्य थी। उसका शरीर रक्त, मांस और मेदा से बना था। उसे भूख लगती थी।"

मैं चुप हो गया। कैलाश भी कुछ देर चुप रहे। फिर लालटेन की लौ की ओर देखते हुए अचानक उन्होंने पूछा, "सैलेन, तुमने जंगल की आग देखी है ?

'नहीं," मैंने उत्तर दिया।

"एक चिनगारी, अगर वह ठीक जगह जा लगे, तो मीलों में फैले जंगल को जला देती है। पुराने सूखे जटाधारी पेड़ देखते-देखते कोयला हो जाते हैं।"

मैंने उनका खामोश समर्थन किया। उन्होंने नाखून से फटे लिहाफ के अन्दर से रुई निकाल ली, और उसका गोला बनाते हुए बोले, "हमारा समाज भी एक पुराना जंगल है। इसके जलने के दिन आ गए हैं, पर आग की चिनगारी अभी ठीक जगह नहीं लग रही। मुझे खेद उन लोगों के लिए है जो कच्ची लताओं की तरह पुराने पेड़ों में लिपटे हैं। वे डरपोक, कायर और नपुंसक सबसे पहले स्वाहा होंगे।"

उधर चारपाई पर नन्हा लाली रो उठा जिसे तारा पीछे छोड़ गई थी। उसे भूख लग आई थी। मां की बीमारी में भी उसे शायद ठीक समय पर दूध नहीं मिला था जिससे उसका शरीर सूखकर हड्डियों की एक मूठ रह गया था। मांस एक हल्के छिलके जितना ही था। लाली की आंखें तारा की आंखों से मिलती थीं। बाकी चेहरा कैलाश पर था। कैलाश उठे और उसे गोदी में लेकर पुचकारने लगे। मैंने भी पास जाकर बच्चे के सिर पर हाथ फेरा। मुझे उसके बाल खरगोश की तरह ठंडे और मुलायम लगे।

'संघर्ष के सात वर्ष' की कहानी तारा की मौत के दिन से ही शुरू होती है। इन सात सालों में कैलाश अब भाई कैलाश बन गए हैं। उन्होंने चार पुस्तकें पहले भी लिखी हैं। 'नई दुनिया और नई चेतना', 'हमारी समस्याएं', 'धरती रो रही है' और 'वे जो इन्सान नहीं'। पहली पुस्तक के बाद ही स्थानीय महापुरुषों ने, अर्थात् जूते, कपड़े, लोहे और लकड़ी के उन व्यापारियों ने जिन्हें राष्ट्र की चिंता थी, कैलाश के नये खून को अपने मंच पर जगह दे दी थी। शेष पुस्तकें उन्होंने उसी मंच की प्रेरणा से लिखी थीं। उस मंच पर रहकर उन्होंने जल्दी ही सीख लिया था कि इस दुनिया का एक ही देवता है और वह है अवसर; और उस देवता की उपासना का एक ही ढंग है—गीत गाना, फूल चढ़ाना और देवता के कंधों पर सवार होकर अपनी ही आरती उतारना।

'संघर्ष के सात वर्ष' भाई कैलाश की पांचवीं पुस्तक है। इस पुस्तक को प्रकाशित हुए दो ही महीने हुए हैं। संघर्ष के सातवें वर्ष में भाई कैलाश के जीवन में कितनी ही महत्त्वपूर्ण घटनाएं हुई हैं। पहली घटना थी, उनकी रेणु से मुलाकात। यह उन दिनों की बात है जिन दिनों देश के आर्थिक संकट का हल निकालने के लिए सरकार ने अर्थ-शास्त्र के पंडितों का सम्मेलन बुलाया था।

एक जगमगाते पंडाल में भाई कैलाश ने आर्थिक संकट पर भाषण दिया। बोलकर वे मंच से उतरे ही थे कि एक युवती उनके पास आई, और उनसे कापी में हस्ताक्षर देने के लिए कहा। फिर वह आर्थिक संकट पर बातचीत करती उन्हें अपने साथ एक रेस्तरां में ले गई। रेस्तरां में भाई कैलाश की पनपती कीर्ति ने उसे कुछ समझाया। सुन्दरी रेणु के सौंदर्य ने कुछ समझा। इससे दोनों में प्रेम हो गया। कुछ दिन बाद महाशय कैलाश ने रेणु से विवाह कर लिया।

रेणु की सुन्दरता से मिलकर महाशय कैलाश की योग्यता और भी निखर गई। सम्भ्रान्त मडलियों में इस जोड़ी की शिष्टता और प्रतिभा का बखान होने लगा। जल्दी ही भाई कैलाश को एक खास मिशन पर विदेश भेजने के लिए चुन लिया गया।

विदेश जाने से पहले भाई कैलाश ने अपने परिचितों और मित्रों को चाय पर बुलाया। मुझे इस अवसर पर दोहरा निमंत्रण मिला। एक तो व्यक्ति रूप मे, और दूसरे 'भारतीय जीवन' के सम्पादक के रूप मे।

चाय पर कोई सौ के लगभग व्यक्ति बुलाए गए थे। साज़-सामान और वेशभूषा में खादी और नाइलन का सुन्दर सम्मिश्रण था जो बतला रहा था कि उन सब लोगों की मंज़िल एक है, और खादी और नाइलन उस तक पहुचने के दो अलग-अलग रास्ते हैं।

वहा काफी चहल-पहल थी। रेणु अपने हाथो से लोगों की प्यालिया भर रही थी। ग्रामोफोन पर रिकार्ड बजाए जा रहे थे। कैलाश दूधिया खादी पहने थे और रेणु दूधिया ज्यॉर्जेट। प्रेस के फोटोग्राफर ने दोनों को पोज़ देकर उनकी फोटो उतारी। एक मित्र ने कविता पढनी शुरू की जिसके तुकान्त थे—'प्यार हो', 'हार हो', और 'अधिकार हो'।

उसी समय कैलाश मेरे पास आए और मेरे कंधे को छूकर बोले, "क्या सोच रहे हो ?"

"सोच कुछ नही रहा, केवल देख रहा हूं," मैंने कहा।

"दो मिनट के लिए ज़रा साथ के कमरे में चलो।"

और कैलाश, मैं, और नारंगी रस के दो गिलास साथ के कमरे में चले गए। वहां अपनी घूमनेवाली कुर्सी पर बैठकर उन्होने पूछा, "मेरी नई पुस्तक देखी है ?"

"नही। कौन-सी लिखी है ?" मैंने पूछा।

" 'संघर्ष के सात वर्ष'।"

और पुस्तक की एक प्रति शेल्फ से निकालकर उन्होंने मेरे हाथ मे दे दी। फिर बोले, "यह पुस्तक मेरे सात साल के अनुभवों का निचोड़ है।" कहकर उन्होंने नारंगी रस का एक घूट भरा और बोले, "तुमने पिछले महीने की 'आधुनिक आलोचना' देखी है ?"

"नही," मैंने कहा।

"उसमें इसकी आलोचना निकली है। उसने तो इसे एक हृदय की आत्मकथा कहा है।"

"पुस्तक देखने मे बहुत आकर्षक लगती है," मैंने कवर के छायापुरुष पर हाथ फेरते हुए कहा।

कैलाश 'आधुनिक आलोचना' का वह अंक ढूढ़ने लगे। मैंने पुस्तक का कवर पलटा। सामने लिखा देखा—अपनी ही आत्मा प्रिय रेणु को।

पुस्तक के साथ-साथ संघर्ष के सात वर्ष भी समर्पित—मेरे मन ने कहा।

कैलाश को 'आधुनिक आलोचना' का अंक नही मिला। वे इलायची छीलते हुए बोले, " 'सघर्ष' की यह प्रति तुम्हारे लिए है। हो सके तो इस पर अपनी पत्रिका मे कुछ पंक्तियां लिख देना और यदि झंझट न करना हो तो मैं ही लिखवाकर भेज दूगा।"

मैंने आख भरकर उनकी ओर देखा। ढूढना चाहा कि वह आग कहा है जो कभी जंगल जलाने की बात करती थी। मुझे लगा कि वह आग उनके पेट में चली गई है। उस आग में ऊपर से आहुतिया दी जा रही हैं और महाविश्वमेध यज्ञ हो रहा है।

"आलोचना मैं लिख दूगा," मैंने पुस्तक के पन्ने पलटते हुए कहा। उन्होने इलायची आगे की। मैंने मना कर दिया।

वे दूसरे शेल्फ की ओर जाकर 'आधुनिक आलोचना' का अंक ढूंढ़ने लगे। मैं पुस्तक की भूमिका पढ़ने लगा। शुरू-शुरू की पंक्तियां थीं—

[illegible] मुझे वह घर याद आता है जिसकी [illegible] किवाड़ टूटे हुए थे, और जिसकी [illegible]

मुझे पल-भर के लिए लगा कि मैं उसी घर में हूं, तारा आज ही मरी है, नन्हा लाली दूध के लिए रो रहा है और मेरी उंगलियां खरगोश के नरम-नरम बालों में से गुज़र रही हैं।

"लाली आजकल यहीं है?" मैंने सहसा पुस्तक पर से आंखें उठाकर पूछ लिया।

"तुम्हें लाली का पता नहीं?" उन्होंने ऐसे ठण्डे लहजे से कहा कि मुझे मौत की याद हो आई। मैंने प्रश्न-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखा।

"उसे गुज़रे साल हो गया।" उन्होंने कुछ ऐसा भाव बनाया कि यह संसार ही नश्वर है, इस पर आदमी का क्या वश है?

मेरे हाथों में से खरगोश निकल गया।

'संघर्ष के सात वर्ष'—वह एक हृदय की आत्मकथा मेरे हाथों में भारी हो गई।

"हुआ क्या था, जो इतनी-सी उम्र में ?"

ठीक ऐसा ही प्रश्न सात साल पहले भी तारा की मृत्यु के दिन मैंने उनसे पूछा था। उस दिन उन्होंने जो उत्तर दिया था वह मुझे याद था। आज भी याद है। मगर उस समय मेरा सवाल सुनकर वे कुछ देर खामोश रहे। टेबल लैंप के हरे शेड में मुझे उनका चेहरा तराशे हुए पत्थर के बुत जैसा लगा। आखिर उनके होंठ हिले और उनमें से ठण्डे-ठण्डे शब्द निकले, "ईश्वर की इच्छा ही समझो। और क्या कारण कह सकते हैं?"

मेरी आंखें नारंगी-रस के गिलास से टकराकर लौट आईं। ध्यान आया कि नारंगी का रस अन्दर जाकर लहू बनता है। लहू आदमी की रग-रग में दौड़ता है। जो उनके बुतनुमा शरीर के अन्दर दौड़ रहा है, वह यही रस है। जो बोल रहा है, वह यही पानी है।

उसी समय दरवाज़ा खुला और रेणु ने अंदर झांककर उनसे कहा, "मेहता साहब आपको बाहर बुला रहे हैं।"

और साथ ही बाहर की बहुत-सी आवाज़ें एकसाथ उस कमरे में चली आईं। उधर कुछ लड़कियां खिलखिला रही थीं, एक कुत्ता भौंक रहा था, दो युवक बहस कर रहे थे, और ग्रामोफोन पर रिकार्ड चल रहा था—

न हाथ रोक साकिया
पिलाए जा, पिलाए जा
अभी तो मैं जवान हूं,
अभी तो मैं जवान हूं।

'संघर्ष के सात वर्ष' में कुल तीन सौ पचीस पृष्ठ हैं। हर पृष्ठ पर पंक्तियां हैं: हर पंक्ति में शब्द हैं। और शब्दों के पीछे एक स्त्री रो रही है, एक बच्चा सिसक रहा है, और एक पुरुष गुनगुना रहा है—

अभी तो मैं जवान हूं,
अभी तो मैं जवान हूं।

कंबल

कल रात पिछले पहर कितनी ठंड हो गई थी। आज तो दिन-भर बूदा-पांदी भी होती रही। शरीर मे कपकपी उठती है। गंगादेई ने अधमैले घिसे जंपर की सीवनो को फटी साड़ी के पल्ले से ढक लिया। सिर ढकने की चेष्टा मे शरीर नीचे से उघड़ गया। बांहो को उसने समेट लिया। फिर पुकारा "बनारसी !"

लकडियो को फूकती हुई बनारसी उसकी आवाज़ सुनकर भी नही बोली। जतलाया कि उत्तर देने का अवकाश नही। मन मे उत्तर देने की आवश्यकता नही समझी। कहां तक सिर को ढककर रखे ? कितनी बार सलवार को एडियों तक खीचे ? मा दुहाई देती है ठंड लगने की, और सकेत करती है लोगों की नज़रो की ओर। क्या करे जो लोग उसे देखते हैं ? घर के चौके में जंपर और पेटीकोट से काम नही करती थी ? यहां मां बात-बात पर आवाज़ दे देती है, "बनारसी ?"

घर पीछे छूट गया। कैम्प में आए चार महीने हो चले। पहले दिनों में मा ने काम भी नही करने दिया। कई दिन नहा भी नही पाई। लोटा-भर पानी से कुल्ला भी कर लेती, मुंह-हाथ भी धो लेती। एक दिन चिढ़कर वह सिर से पैर तक नहा आई और गीले बाल बिखेरकर घूमती रही। पास कही कोई दिन-भर सीटी बजाता रहा मा ने उधर बांस के साथ फटे टाट का परदा लटका दिया।

तीस घरो की परिधियां, जिनके बीच एक भी दीवार नही। फिर भी सबका एक-एक घर अपना है। तामचीनी के बर्तन, टीन के पीपे, चारपाइयों पाये, पुराने जूते, टूटे बक्से, चूल्हे, चौकियां, ईंटें और जाने किन-किन वस्तुओ के घेरे मे हर परिवार ने अपने को दूसरो से अलग कर लिया है। अपनी परिधियों का उल्लंघन किसी को सहन नही। जब बनारसी लापरवाही से चलती हुई किसी दूसरे परिवार की परिधियो को छू लेती है, तब गंगादेई डेढ बरस के राजू को स्तन देकर बहलाने की वृथा चेष्टा को भूलकर मसली-सी कह उठती है, "बनारसी" !

कल रात बहुत ठंड थी। गंगादेई राजू को अपने साथ सटाकर सो गई थी। बनारसी की ठिठुरन में ईर्ष्या की सिहरन और भरी जा रही थी। क्यों नही मा राजू को बापू के साथ सुलाती ? बापू सरदी से कांपता है, खासता है। राजू बापू के पास सोए, तो बापू को थोड़ा आराम मिले।

फिर उसे अपने विचार दूषित लगने लगते। मां राजू को साथ सुलाती है तो रात को दूध पिलाने ''नही, दूध तो बहाना है। बूद तो उतरती नही दूध की।

टपटप-टपटप पानी ज़ोर से बरसने लगा। साय-साय करते हवा के झोंके। तीस परिवारों का घर भूल गया। एक ओर से बास निकल गया। लोग मिलकर उसे ठीक करने लगे। चाकू से आलू छीलती बनारसी भी देखने आ गई। आखें देख रही थी कान सुन रहे थे—पास ही कही सीटी की आवाज़। लौटने लगी तो किसी के कन्धे से छू गई। गंगादेई ने घूरकर देखा। इस दृष्टि को उसने महत्त्व नही दिया। घेरे में लौटकर आलू छीलने लगी।

वर्षा तेज़ हो रही थी। बिजली पैनी होकर कौंधती थी। बनारसी की आंखें बरबस उस घेरे की ओर उठ जाती जिसमे कल से एक नये परिवार ने अपने लिए नई परिधियां बना ली थी। दो व्यक्तियो का परिवार। युवक परसो तक छोर वाले बड़े परिवार मे था। युवती घेरे वाली बुढ़िया के साथ थी। कल बुढ़िया युवक की मा के पास

घडी-भर बैठी। फिर पंडित को बैठाया, पांच पैसे रखे और बेटी का वाग्दान कर दिया। प्रात. दोनो परिवारो की सापत्तिक दीवारें तोड़कर एक नये घेरे की सृष्टि कर दी गई। नव दम्पती का विवाहित जीवन आरम्भ हो गया।

बनारसी की आखें बार-बार देखती। नव विवाहिता लड़की की आंखों में उत्सुकता नही, लज्जा नही, सकोच नही। युवक भी अनमना-सा कभी बड़े घेरे मे चला जाता है, कभी अपने घेरे में आ जाता है। एक बार उसने पास जाकर पूछा, "पानी पियोगी ?"

पत्नी ने कहा, "नही।"

"कहो तो चाय ले जाऊ ?"

"नही।"

"बाहर आलू की टिकियां भी हैं।"

"नही।"

फिर उसने जेब से मूगफली निकालकर उसके आगे कर दी। पत्नी ने एक दाना उठाकर मुंह में रख लिया। युवक बाहर आकर टहलने लगा। पुन. धीरे-धीरे जाकर बक्से पर बैठ गया। सब मूगफली निकालकर कागज़ पर डाल दी। बोला, "आज बरसात न होती, तो घूमने चलते।"

"हां।"

"तूने किला देखा है ?"

"हा।"

"मैं अब किले के पास ही तरकारी वेचा करूंगा।"

"हूं।"

"लगता है रात को बहुत ठड पड़ेगी।"

"हूं।"

युवक फिर उठा। कहा, "कल तुझे घाट पर ले चलूंगा। वहां पर बहुत लोग सैर करने आते हैं।"

आलू छीलते बनारसी का हाथ कट गया। गंगादेई झुंझला उठी, "हाय री, क्या करूं मैं तुझको ! उठने-बैठने की तो बात ही गई, तुझे अपने शरीर का भी होश नही !"

बनारसी झल्लाई, "और क्या करना है मुझको ? गला घोंट दे मेरा। मां जो है तू···।" और वह रो पड़ी—रोने का-सा अभिनय किया। जैसे दिखलाया, मां की अवहेलना कर लेना कितना आसान है ! मा को चुप करा देना कितना साधारण है !

आलू धोकर वह आटे मे पानी मिलाने लगी। गंगादेई अपनी खीझ को समेट नही पाई थी। पति की ओर देखकर बोली, "देखते हो न इसके लच्छन !"

रामसरन ने सुन लिया। वह बाप है। कभी उसे अपने उत्तरदायित्व का पूरा ज्ञान था। अधिकार का पूरा दावा था। बच्चो को पीटकर बपौती का कर्तव्य उसने वर्षों तक निभाया। पर आज खासते-खासते देह दोहरी होने लगती है। ज़रा-सी कंपकंपी पसलियों में चुभन बनकर दौड़ती है। अब उसके कर्त्तव्य अपने तक ही सीमित हैं। गंगादेई और बनारसी से जब तक सहायता मिलती है, वह आपे से बाहर नही होता। मां-बेटी के ऊपर पहरेदार के से स्वत्व की बागडोर उसने अनजाने मे या जानबूझकर ढीली हो जाने दी है। जानता है कि ढहते घर की ईंटों पर गारे का लेप नही चलेगा।

बड़ा बेटा रामू मुसलमानों की भीड पर पत्थर फेंकते-फेंकते पुलिस की गोली द्वारा मारा गया। शव को पुलिस की लारी मे श्मशान तक ले जाकर वह अकेला ही जला

आया। मां-बेटी ने घर मे रो लिया। सांसारिकता पूरी हो गई। तब से आज तक वह सब कुछ देख लेता है, सुधारता कुछ भी नही। सोचता है—यों ही सही, इतना ही सही।

गंगादेई ने कहा, "देखते हो न इसके लच्छन!"

रामसरन ने आंख भरकर देखा बनारसी के आटे में सने हाथों को, हाथो की भरी हुई उंगलियों को, उन उंगलियों के लाल-लाल नाखूनों को। फिर देखा उसके गठे हुए शरीर के हिलते अंगो को। गगादेई के खाली झोले से ढीले अंगों तक आकर उसकी दृष्टि ने फिसल जाने की चेष्टा भी की, पर फिसल नही सकी। धीरे से उसने इतना ही कहा, "अरी, क्यो कोसती है उसे! दिन-भर तो तेरा काम करती है। बच्ची है अभी।"

रामसरन को अपनी बात पर स्वय ही विश्वास नही आया। लगा, उसने झूठ बोला है। बनारसी बच्ची नही है। वह तो उन दोनो से बडी है।

गगादेई आहत-सी बोली, "बच्चिया इस तरह सामने बोला करती हैं? क्या और घरों में नही हैं बेटियां?"

वाक्य मे अर्थ नही था। रामसरन ने जाना—गंगादेई का अतीत वर्तमान के आगे आत्मसमर्पण नही कर रहा। उसने बीत जाने दिया। कुछ इस तरह भी सही। आखिर तो हारना ही होगा।

शरीर की शिथिलता आज बढ़ती मालूम हुई। रामसरन ने कुहनियो का सहारा लिया। फिर सीधा होकर लेट गया।

दिन ढल चुका था। बादलो के नीचे सहमा हुआ आलोक भी अंधेरे में घुलता जा रहा था। कैंप का भावहीन जीवन धीरे-धीरे ऊघने लगा था। अधिकतर लोग मौन थे। बात चलाने के लिए विषय चाहिए, कुतूहल चाहिए, विचार चाहिए। यहा तो जी लेना ही एक विषय है, उसी मे कुतूहल है, और कुतूहल मे ही विचारो का लोप। पीछे और आगे—दोनों ओर काला शून्य।

सब ओर अधकार ही अधकार है। मद्धिम-सी लालटेन कैंप के अंधेरे को धुंधला मात्र कर पाती है। मैले उजाले मे जीवन रेंगता है, रेंगते हुए छिलता जाता है।

गंगादेई के एक ओर रामसरन निश्चल पड गया था। दूसरी ओर बनारसी सलवार-कमीज में सिमटने की चेष्टा करने लगी।

आग के पास वह सरदी की बात भूल रही थी। अब कैंप के बाहर बनते-मिटते बुलबुलों को देखकर अनायास ही सिहरन महसूस हुई। घर की बात याद आई। अंगीठी के पास बैठकर जाली बुनना, रजाई मे सिमटकर बातें करना, परन्तु अब यह नंगी रात की कंपकंपी···।

आकाश का गीलापन बोल रहा था। कोई सीटी बजा रहा था। एक उत्सुक लय, जिसमे संगीत से अधिक शब्द था। फिर भी शब्द में सरसता लगती थी—मीठी-मीठी सजीवता, जैसे दूर आम के बाग में आधी रात को रखवालों की आवाज। बनारसी उस शब्द मे खो-सी गई। रामसरन खास उठा। हिलोरित जल मे कंकड़ आ पड़े!

इसी तरह रात गहरी-सी हो चली। कोई करवट लेता था। कोई खास उठता था। कोई सोता-सोता बोल रहा था, "मार दूगा! जान ले लूगा! खून पी लूगा! कौन है तू? आ, सामने आ! गोली मार! पडित जी···पडितजी···'

बनारसी को नीद नही आई। वह सिहरती हुई कुछ सोच रही थी। कुछ अनुभव कर रही थी। लोग कैसे सो जाते हैं। राजू मां के साथ सट गया है। उधर उस घेरे में युवक के साथ युवती। इनका ब्याह हुआ···ओह, कितनी ठंड है!

बापू कैसा सिकुड़ रहा है? नीद तो नही आई होगी। कितनी खांसी हो गई है।

पानी निरन्तर बरस रहा है। क्या वर्षा रुकेगी नहीं ?

हल्की-सी भनभनाहट सुनी। उसकी आंखें घूम गईं। देखा, एक गट्ठर में कम्बल थे। कोई व्यक्ति संकेत कर रहा था। दूसरा उसकी बात समझ रहा था।

फिर दोनों चार-चार कम्बल उठाकर उधर की ओर बढ़ आए।

पहले वह उस नये घेरे में गए। युवक सो रहा था। युवती ने करवट ली। एक कम्बल फेंक दिया गया। फिर वह साथ के घेरे में गए। एक कम्बल वहां दिया। अब वह उस घेरे में आएंगे।

बनारसी ने आंखें मूंद लीं। जतलाना चाहा कि सो रही है। पर सोए व्यक्ति की तरह बिखर नहीं सकी। पैरों की आहट का ठीक अनुभव हुआ। पास जाकर कोई झुका किसी ने छातियों को छुआ। रामसरन ज़ोर से खांसा—तीखी विदारक खांसी। बनारसी कपकपाई। तभी सुखद सिहरन फैल गई। शरीर कम्बल से ढक गया। शीत का रोमांच बैठने लगा। नींद के अभिनय में जांघों-छातियों पर किसी के स्पर्श की उपेक्षा कर दी। इच्छा तो हुई कि आंखें खोलकर देखें पर रोंगटों की संभावित जड़ता ! नहीं, नहीं, बाहर हवा चल रही है। ठण्डी-ठण्डी हवा !

वर्षा का शब्द दूर चला गया। बापू पुन. खांसने लगा। वह स्वर अब उतना तीखा नहीं लगा। कम्बल के अन्दर कितनी नीरवता है !

कल्पना की कि बापू पर भी एक कम्बल अवश्य डाला गया होगा। पर सत्य को आंखों से देखने की अपेक्षा अंधियारी ओट में छिपे रहना अधिक उचित जान पड़ा।

पर यदि बापू पर कम्बल नहीं हुआ तो ? खैर, अभी तो पूरी रात शेष है आधी रात को अधिक ठण्ड पड़ेगी—तब देखेगी। नहीं हुआ, तो अपना कम्बल बापू पर डाल देगी।

और मां ? मां के पास राजू है। सोई है, तो सोई रहेगी।

कल्पित चित्र आंखों में उतरने लगे। सतरंगे बादलों जैसे आकार कम्बल में सिमट आए। वह उन्हें अपने में भरने लगी। कितने प्रिय, कितने रोचक, कितने आकर्षक !

कल्पना उसे अस्तव्यस्त समूह से परे ले गई। उस संसार में जहां किसी अन्य का प्रवेश नहीं। उसने अपने लिए चरित्र ढूंढ लिए। उन चरित्रों को जांघों और छातियों के आस-पास ठोस और वास्तविक बनाने में विचार केन्द्रित हो गए।

लगा, शरीर से एक और शरीर को अच्छी तरह सटा लिया है। आलू छीलने, आटा गूंधने का जीवन कहीं नीचे है। वह ऊपर उठ रही है। देह और मन में विरोध नहीं है। वह उद्रेक में भूल रही है···।

बापू अब खांसना बन्द क्यों नहीं करता ? खांसी कितनी भद्दी है। शब्द कानों को छूता है—चुभती हुई रस्सी की तरह, जो मचान से धरातल पर ला गिराना चाहती है।

वह एक मूर्त्त शब्द का निर्माण कर रही है। अस्पष्ट-सी मीठी आवाज़ कानों के बहुत पास आकर बोलती है और फिर कुहरे में विलीन हो जाती है। रोम-रोम में प्रतिध्वनियां होती हैं। एक-एक कंपन में वही स्वर बोलता है।

वह विचारों से भरती गई और यों ही बहुत कुछ पाकर सो गई।

भरी हुई नदी को बहते देखा। सपने में फैला उन्मादी जल। वह उसमें फिसल गई। सहमा रोम नुकीले हो गए। वह जाग गई।

आधा कम्बल शरीर से खिंच गया था। खामोश रात में वर्षा का तीव्र स्वर फैल

रहा था। बनारसी ने कम्बल को समेटने की चेष्टा की। झटके से कम्बल थोड़ा और हट गया। गंगादेई का स्वर नींद में भी कर्कश था, "डायन को अपने ही शरीर से मोह है। बच्चा पास पड़ा ठिठुर रहा है, उसे ढकने की चिंता नहीं। थोड़ा और छोड़ कम्बल, बच्चे को भी दो घड़ी सोने दे।"

बनारसी ने आवेश में पूरा कम्बल फेंक दिया। कहा, "ले ले कम्बल। अपने ऊपर भी ले ले। मुझे ठण्ड खाकर मौत नहीं आएगी।"

हवा चुभी। शरीर के रोम-रोम में धंस गई। अपनी पूंजी लुटा देने के लिए पश्चात्ताप हुआ। क्यों दे दिया कम्बल ? यह केवल उसी के लिए नहीं था ? देने वाले उसे टोहकर दे गए थे। पर अब क्या ? अब तो दे ही दिया।

गंगादेई ने भी उस पर फिर से कम्बल नहीं डाला। कम्बल लेकर इतना और कहा, "सारी रात पड़ी रही कम्बल में, अब लगी है अहसान दिखाने। मौत नहीं आती, तो पहले ही ढक देती बच्चे को। कुलच्छनी कहीं की।"

कम्बल फैल गया। नन्हे राजू का शरीर उसमें ढक गया। साथ गंगादेई का शरीर भी। गंगादेई ने स्वस्थ होना चाहा कि उसने मातृत्व निभाया है। पर कहीं और से मातृत्व छिल गया।

यह छिलन कहां है ? यहां कि वह मां होने से पहले पत्नी है। पति स्वस्थ नहीं। सर्दी से ठिठुर रहा है।

दूसरी छिलन और भी है। मातृत्व का उफनता व्यंग्य जो बोल पड़ता है। बनारसी की हर करवट बोलती है, ताना देती है। गंगादेई से कहे बिना नहीं रह गया, सर्दी लगती हो, तो एक कोना ले ले ऊपर।" और एक कोना फैला दिया।

बनारसी परे हट गई। बोली नहीं। गंगादेई झुंझलाई। फिर राजू को साथ सटाकर कम्बल में लिपट गई।

क्या करे इस परिवार को ? वह क्यों अब तक अपनों के बीच ही पिस रही है ? पैसा-पैसा जोड़कर घर बनाया—वह अब नहीं रहा। शरीर को मिट्टी करके बेटे को बड़ा किया। वह भी चला गया। क्या रह गया उसके लिए सिवाय राजू के ? अपने आराम की चिंता ही कब की है ? बनारसी की जबान कितनी खुल गई है। बात-बात पर सामने बोलती है। आज उसका रामू अगर जीवित होता···।

राजू को उसने आलिंगन में ले लिया। नन्हे बेटे को कैसे हवा लगने दे ? कुढ़ती रहे बनारसी। जरा भी तो मोह नहीं है भाई से।

पति अब नहीं खांसता। शायद उसे नींद आ गई। उसके लिए कहीं से एक कम्बल और मिल जाता ! अभी आधा कम्बल डाल दे। पर नींद उचट गई तो ? कच्ची नींद में विघ्न डालना ठीक नहीं। अभी तो सोया है। तड़के-तड़के तम्बाकू मांगा करता है। तभी उस पर कम्बल डाल देगी।

बोझिल आंखें अब खुल नहीं रही थीं। धीरे-धीरे झपकी गहरी हो गई।

तभी सीटी की आवाज सुनी। कौन सीटी बजाता है ? क्यों बजाता है ? फिर वही सीटी—स्पष्ट और तीखी। इस शब्द में क्यों इतनी शक्ति है ? परिवार की कमजोर परिधि हिल जाती है। बनारसी ? कहां है बनारसी ? घेरे की सीमा में तो है नहीं। उठकर चली गई ? क्यों चली गई ? कहां चली गई ? अन्धकार में अकेली ? नहीं।

गंगादेई कुनमुनाई। एक हाथ कम्बल में निकालकर टटोलने लगी। बनारसी का शरीर नहीं छुआ। हाथ और बढ़ाया। स्पर्श नहीं हुआ। निंदियाई चेतना घबराई। आंखें

खोलकर उसने कम्बल से बाहर देखा।

लालटेन की रोशनी और भी मद्धिम हो गई थी। बनारसी अपने-आपमें सिमटी-सिकुड़ी सो रही थी।

राजू छींकने लगा। आशंकित होकर गंगादेई ने कम्बल ओढ़ लिया। अभी तड़का होने वाला है। पति को ठण्ड लग रही होगी। खांसना चाहे बन्द है, फिर भी। राजू पुन छींकने लगा। उसे लिपटाए रही। कम्बल बिखेरना संभव नही हुआ।

तड़के ओले पड़े। गंगादेई सोती-सोती बड़बड़ाई, "चुड़ैल, मन में ज़रा मोह नही कि बच्चा पास मे पड़ा है, उस पर भी एक कोना डाल दूं। मौत नही आती, तो पहले ही क्यों नही…?"

नींद फिर उचट गई। कम्बल उठाकर उसने फिर देखा। अब के सचमुच बनारसी घेरे मे नही थी।

पुतलियां फैलाकर देखने लगी। इस ओर देखा, फिर उस ओर। बनारसी दिखाई नही दी। सिर और ऊंचा करके देखा। कैंप के कोने के पास वह उछलते ओले उठा रही थी। गंगादेई ने पुकारा, "बनारसी ?"

बनारसी ने सुनकर भी नही सुना। देखकर भी नही देखा। बरसते पानी में बाहर चली गई।

राजू फिर छींकने लगा। गंगादेई ने कम्बल फिर ओढ़ लिया। बांह निकालकर रामसरन को हिलाया, "जागते हो ?"

रामसरन जागता नही था। उसकी टांगें अकड़कर फैल गई थी। शरीर में सूजन उतर आई थी। मुंह आधा खुला था। आंखें भी। वह मर चुका था।

गंगादेई ने निर्जीव शरीर को पुनः जगाना चाहा। हिलाकर कहा, "मैंने कहा बनारसी को देखते हो ? बाहर अकेली चली गई है बरसात मे। मैं कहती हूं उठकर आप ही उसे बुलाओ। मेरी बात सुनते हो ?"

और जब दूसरी रात आई तो राजू कम्बल में सो रहा था और मां-बेटी एक-दूसरी से लिपटी हुई रो रही थी। नये कम्बल उस रात फिर बांटे गए। बांटने वाले खोज-खोजकर लोगों को कम्बल दे गए।

पर वे उनके घेरे मे नही आए।

मिस्टर भाटिया

भाटिया को इसमें सख्त एतराज़ है कि उसके नाम के साथ 'श्री' का प्रयोग किया जाए। उसकी भद्रता का परिचय केवल 'मिस्टर' या 'एस्क्वायर' द्वारा ही दिया जा सकता है।

भाटिया के पास पैसे हों तो वह इतवार को साढ़े तीन बजे का शो देखने जरूर जाता है। जाता तो वह सदा अकेला ही है, पर टिकट उसके पास तीन रहते हैं। बुकिंग आफिस की खिड़की बन्द हो जाने पर, बीच का टिकट अपने लिए रखकर दाएं-बाएं दोनों टिकट वह निराश भीड़ मे खड़ी किन्ही दो लड़कियों के हाथ बेच देता हैं। इस तरह अच्छा साथ पाने के लिए दैव के भरोसे नही रहना पड़ता।

टमाटर और अंडे खाने के बजाय चिट्ठियां लिखने के लिए आसमानी रंग का

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

"जब भी पैसे होते हैं चला जाता हूं," उसने बिना मेरी ओर देखे उत्तर दिया।

"कभी जीते हो ?"

भाटिया ने ड्राअर खोलकर तौलिया निकाला। तौलिये को गरदन से लपेट लिया और गरदन के निचले भाग मे खुजलाते हुए कहा, "आज पाज़िटिवली जीतूंगा।"

तभी किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। भाटिया ने कुण्डी खोल दी। एक मक्खी-कट मूछों वाला सांवला, दुबला, ठिगना व्यक्ति दरवाज़ा खोलकर अन्दर आ गया। आते ही वह अपने काले-पीले-कत्थई दांत उघाड़कर मुस्कराया। साथ ही उसने भाटिया को अधूरा-सा सलाम किया।

"बैठे हैं ?" उसने बगल से वही निकालते हुए पूछा।

"अगले महीने !" भाटिया ने खुश्क होते हुए गले से उत्तर दिया।

वह व्यक्ति फिर दांत निकालकर मुस्कराया। धोती से कुरसी झाड़कर बैठ कर वही के पन्ने पलटने लगा। कुछ देर गिनती करके बोला, "पांचवां महीना चल रहा है।"

"मुझे पता है," भाटिया ने उपेक्षा के साथ कहा।

"अब की किराया ज़रूर ले जाना है।" वह धोती से अपने को हवा करने लगा।

भाटिया का हाथ पतलून की पिछली जेब में चला गया। उसने एक पांच का नोट निकालकर उसकी तरफ़ फेंक दिया। मुंशी नोट का निरीक्षण करता हुआ जम्हाई लेकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "तो अगले हफ्ते आऊं ?"

"नहीं, पहली तारीख को," भाटिया ने तेज स्वर मे कहा और ठुड्डी के नीचे ब्लेड को उसी तेज़ी के साथ खींच दिया। लहू की हल्की-सी लकीर निकल आई और सफेद झाग मे मिलकर केसरिया होने लगी।

सीढियों पर मुंशी के पैरों की आहट समाप्त होते ही भाटिया बड़बड़ाने लगा, "सूअर का बच्चा ! पाजी !"

दाढ़ी बनाकर भाटिया मेरे पास आ बैठा और पांच-पांच के नोटों की गड्डी निकालकर उसने तास की तरह पलंग पर फैला दी।

"ये रुपये क्या होंगे ?" पूछा।

"छः घण्टे के अन्दर ये दो सौ से बीस सौ हो जाएगें।" और उसने वह पुलिन्दा समेटकर जेब मे डाल लिया।

"इतने रुपये कहा से मार लाए ?" मैंने पूछा। पिछली रात को उसकी जेब मे कुल सवा रुपया बाकी था।

भाटिया का निचला होंठ ढीला हुआ और उस पर हल्की-सी मुस्कराहट व्यक्त हुई। फिर मुस्कराहट को ढांपते हुए शब्द निकले, "गोपूमल से।"

गोपूमल को मैं दो-एक बार पहले देख चुका था। वह बहुत नाटा और मोटा व्यक्ति था, जिसके गले से शब्द घबराकर निकलते थे। दो-एक इंच और छोटा होता तो उसे बौना कहा जा सकता था।

"सब रुपये गिज़ाला पर लगाओगे ?" मैंने पूछा।

"येस् !" भाटिया ने होंठो को ठेठ अमरीकन ढंग से करवट देकर कहा। फिर किवी की डिबिया उठाकर जूते पर पालिश लगाने लगा।

उस दिन भाटिया का अनुमान वाकई सही निकला। दूसरी रेस गिज़ाला ने जीत ली। उस पर रुपया लगाने वालो को दस के बदले एक सौ पैंतीस रुपये प्राप्त हुए।

परन्तु भाटिया के साथ ट्रेजेडी हो गई।

पहली रेस पर भाटिया के पाव पर एक सज्जन का जूता आ गया। उनका नाम था कैप्टन केशव। कैप्टन केशव ने क्षमा मागी, परिचय किया, हाथ मिलाया और बातें करने लगे। फिर उन्होंने अपनी पत्नी शारदा और बहन लीना के साथ भी उनका परिचय कराया।

उनके आग्रह पर भाटिया को उनके साथ चाय पीने के लिए बैठना पड़ा। लीना ने अपने गोरे और मुलायम हाथों से चाय की प्याली उसकी ओर बढाते हुए विचार प्रकट किया कि दूसरी रेस गिज़ाला नही जीत सकता। भाटिया को उन सुन्दर होठों की कही हुई बात पर सहज ही विश्वास हो गया। लीना ने उसे टिप दिया कि वह जितना रुपया लगाना चाहे, नसरुल्लाह पर लगा दे, क्योंकि उन्हे विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि दूसरी रेस में नसरुल्लाह को जिताया जा रहा है। कैप्टन केशव नसरुल्लाह पर पाच सौ रुपया लगा रहे थे। भाटिया ने भी उनके कहने से अपनी दो सौ की पूजी नसरुल्लाह पर लगा दी। मगर नसरुल्लाह उस रेस मे दूसरा, तीसरा, चौथा भी नही आया। कैप्टन केशव ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "हाऊ अनलकी।" और अगली रेस का चार्ट देखने लगे। लीना ने भाटिया के साथ सहानुभूति प्रकट की और उसके सही अनुमान की प्रशसा की। भाटिया के खून का दबाव सिर की तरफ बढ़ रहा था, फिर भी वह किसी तरह मुस्कराता रहा। मगर घर आकर उसने लीना, कैप्टन केशव और नसरुल्लाह सबकी सात पुश्तों को जी खोलकर सिन्धी-अंग्रेज़ी में गालिया दी और रात-भर बेचैनी से करवटें बदलता रहा। दिन होने पर भी वह बिना नहाए-धोए बिस्तर में पड़ा रहा।

मैं उसे उसी तरह छोड़कर बाहर चला गया।

शाम को जब मैं लौटकर आया तो भाटिया कॉलर-टाई लगाए, शान से बैठा सेंट्रल बैंक की चेक-बुक मे से बड़ी-बड़ी रकमों के चेक काट रहा था।

मुझे देखकर उसने बड़े आदमियों के अन्दाज़ में बैठने का संकेत किया और एक दस हज़ार का चेक मेरे नाम लिखकर, हस्ताक्षर करके मेरी ओर बढ़ा दिया।

"क्यों भाटिया साहब, नशे के लिए पैसे आज कहां से मिल गए!" मैंने चेक लेकर पूछा।

"मैंने नशा नही किया," वह बोला, "मै बिलकुल होश में हूं।"

"तब तो मामला और भी खतरनाक है।" मै बैठ गया।

भाटिया ठहाका मारकर हंसा और बोला, "चेक पर तारीख भी देखी है?

मैंने देखा कि चेक पर पूरे पचास साल बाद की तारीख डाली गई है।

"यह चेक-बुक कहां से उड़ा लाए?" मैंने पूछा।

"यही पडी थी," उसने सहज भाव से कहा।

तुम्हारा बैंक मे हिसाब है?"

"नही।"

"फिर चेक-बुक कहां से आ गई?"

"भटनागर की है। वह पहले मेरे यहा पेइंग गेस्ट था। उस बेचारे को बेकारी ने बम्बई से भगा दिया।"

और उसने एक चेक सवा लाख रुपये का, कुमारी लीना कपूर के नाम काट दिया।

"आज इतनी जल्दी कैसे रंग बदल गया, भाटिया?" मैंने पूछा।

भाटिया ने लीना कपूर का चेक तह किया, खोला, फिर तह किया। फिर जेब से एक नीले रंग का लिफाफा निकालकर उसमे से पत्र निकाल लिया और चेक डाल दिया।

लिफाफा जेब मे रखकर उसने पत्र मेरी ओर बढा दिया।

पत्र कैप्टन केशव का था। उन्होने भाटिया से कुछ रेस-सम्बन्धी बातें करने की इच्छा प्रकट की थी और उस सिलसिले मे उसे शाम को खाने पर निमंत्रित किया था।

"क्या इरादा है ?" मैने पूछा।

"इरादा ठीक है, पर धोबी दूसरी पतलून नही दे गया।"

"तो ?"

"इसी पतलून को प्रेस करूंगा।"

"कमीज़ धुली हुई हो तो मैली पतलून साथ चल जाती है।"

"सो तो ठीक है, मगर जो कमीज धुली हुई है, वह कन्धे से फट रही है।

"फिर ?"

"ऊपर कोट पहनना पड़ेगा।"

बुलावा साढे सात बजे का था, मगर भाटिया पतलून प्रेस करके, जूते चमकाकर और शेव करके साढे छ बजे ही तैयार हो गया। नीचे जाकर वह दो पैसे मे 'ईवनिंग न्यूज' ले आया और पौन घटा कमरे में चहलकदमी करता रहा। सवा सात बजे वह शीशे पर आखिरी नज़र डालकर चला गया।

रात को वह मेरे आने से पहले ही लौट आया था। मैने देखा, उसके होंठ अकारण फैल रहे है और गालों मे चिकनाई भर रही है। वह व्यस्ततापूर्वक 'लाइफ' के नये अंक मे से तस्वीरें काट रहा था।

"यह क्या सनक है भाटिया ?" मैंने बैठते हुए पूछा।

"अपनी आने वाली ज़िन्दगी की रूपरेखा बना रहा हू," वह बोला।

"तस्वीरें काटकर ?"

भाटिया ने होठ सिकोड़कर सिर हिलाया और बोला, "तुम्हे पता है छः महीने बाद मेरी जिन्दगी क्या होगी ?"

मैं गम्भीर हो गया।

"एक ऐसा ड्राइग-रूम," और भाटिया ने ड्राइग-रूम की कटी हुई तस्वीर मेरे हाथ मे दी।

"एक ऐसी कार," और उसने ब्यूक कार की कतरन मेरी ओर बढा दी।

"और एक ऐसी लडकी !" उसने पल-भर प्यार की नज़र से देखकर वह चित्र मेरी ओर बढ़ाया। वह रीटा हेवर्थ का एक फिल्मी पोज़ था।

"रीटा हेवर्थ जैसी लड़की तुम्हें कहा मिलेगी ?" मैंने पूछा।

"यही, बम्बई मे—और एक नही दस-दस। सिर्फ पैसा चाहिए।"

"और पैसा कहा से तशरीफ लाएगा ?"

"भाटिया ने उगली से अपने माथे को छुआ, "इस दिमाग से।"

"तब मिल गई तुम्हे रीटा हेवर्थ !" और मैं उठने लगा।

"और बैठो," भाटिया आग्रह के साथ बोला, "बात यह है कि हम लोग रेस कार्ड निकाल रहे हैं।"

"हम लोग कौन-कौन ?"

"कैप्टन केशव और मैं। कैप्टन केशव का पैसा लगेगा और मेरा दिमाग। उन्हे मेरे कैल्क्युलेशन पर बहुत विश्वास है। तुम भी देख लेना, जिस घोडे पर पेंसिल रख दूगा, वही जीतेगा।"

फिर उसने 'लाइफ' मे से एक रेडियोग्राम की तस्वीर काटकर ड्राइग-रूम के

साथ रखते हुए कहा, "एक बात और भी है।"

मैं बिना कुछ कहे उसकी ओर देखता रहा।

"वह लीना है न?"

मैंने सिर हिलाया।

"वह मेरी तरफ कुछ···मेरा मतलब है कि कुछ ऐसी बात है और मैं उस पर विचार कर रहा हूं।"

"मतलब वे लोग खासा इन्वेस्टमेंट कर रहे हैं।"

भाटिया पल-भर गम्भीर रहा। फिर बोला, "भाई, कल्चर्ड तो वह है, पर सौंदर्य की दृष्टि से ज़रा साधारण-सी है। अपने अब के स्टैण्डर्ड से तो ठीक है, पर बाद के स्टैण्डर्ड से···खैर, ठीक ही है।"

"यह बाद का स्टैण्डर्ड कब से शुरू होता है?"

"देखते चलो," वह आगे की ओर झुककर बोला, "साल-भर मे हमारा फोर्ट मे दफ्तर खुल जाएगा। चार-चार चपरासी होंगे और एंग्लो-इंडियन लड़कियां टाइपिस्ट होंगी। बाहर बोर्ड लगा होगा—के० सी० भाटिया, एस्क्वायर। ताज में डास हुआ करेंगे और क्रिकेट क्लब मे डिनर।···"

"फिलहाल दफ्तर कहां खुल रहा है?"

"फिलहाल यही," उसने कमरे मे चारो ओर नज़र दौड़ाई। "यहा एक पार्टिशन लगा देंगे। एक हिस्सा बास का कमरा हो जाएगा। वहां मैं बैठूंगा। दूसरे हिस्से मे एक टाइपिस्ट बिठा देंगे। ड्योढ़ी में वेटिंग-रूम हो जाएगा। रहा कैप्टन केशव का सवाल, सो उनके लिए···" और वह गम्भीर होकर बालकनी की तरफ देखने लगा।

"काम शुरू किस दिन से कर रहे हो?" मैंने पूछा।

भाटिया ने इस अन्दाज़ से छत की ओर देखा जैसे उस सवाल का जवाब वहां पर लिखा हो और बोला, "बहुत जल्द। बस समझ लो पहली तारीख से।"

दूसरे दिन भाटिया का कैप्टन केशव के यहां चाय के लिए निमत्रण था। उन्हीके साथ रात को उसका पिक्चर देखने जाने का भी प्रोग्राम था। रात को पिक्चर के बाद वह उन्हीके घर पर रह गया। सुबह सात बजे लौटकर आया और आते ही पलग पर सीधा लेट गया। फिर एकाएक उठकर शीशे के सामने चला गया। शीशे मे चेहरा देखकर, फिर आकर बिस्तर पर पड़ गया।

"देखना, मुझे बुखार तो नही है?" उसने अपना दायां हाथ मेरी ओर बढ़ाया।

"क्यों, रात को उन्होने गरम चीज खिला दी है क्या?"

"नहीं," वह बोला, "बात यह है कि उसका बिस्तर बहुत गरम, गुदगुदा और मुलायम था। मुझे सारी रात नीद नही आई। ऐसा लगता रहा जैसे हल्का-हल्का बुखार चढ रहा हो?"

"मगर जिस्म मे तो बुखार नही है।"

भाटिया ने ठंडी सास ली और करवट बदलकर बोला, "बुखार हो जाता तो कोई खबर करने तो आता।" और वह धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा, "पग घुघरू बाध मीरा नाची रे, ! नाची रे, नाची रे, नाची रे···!"

मैं उसकी ओर देखता रहा।

"वह गीत उसने रात को सुनाया था।" वह सीधा हो गया।

"अच्छा गाती है?"

"अच्छा!···उसका गला बिलकुल रीटा हेवर्थ से मिलता है।"

"तो है आशा ?"

"आशा ?" वह बहुत ऊंचाई से मुस्कराया और उसकी आंखें रोमियो की तरह भावपूर्ण हो उठीं।

अगले दिन भाटिया की मेज पर घोड़ों की सूचियों, घुड़दौड़-सम्बन्धी पुस्तकों और छोटे-बड़े अखबारों का ढेर जमा होने लगा। भाटिया दिन-भर पेंसिल मुंह में चबाता हुआ पूना और बम्बई की पिछली रेसों के परिणाम मिलाता रहता, शाम को कैप्टन केशव के यहां चला जाता, और वहां से लौटकर आता तो उसे आधी रात तक वही बुखार चढ़ा रहता।

इतवार को मैं भाटिया को किशमिश, चिलगोज़ों और कागज़ों के बीच काम करते छोड़कर एक मित्र के यहां खाना खाने चला गया। शाम को मैं लौटकर आया तो सारे कमरे में धुआं भर रहा था। भाटिया बालकनी में बैठा आग में कागज़ जला रहा था। जले हुए कागज कमरे में इधर-उधर फैल रहे थे।

"घर जलाने के लिए इतना तरद्दुद करने की क्या जरूरत है, भाटिया ?" मैंने बालकनी की ओर बढ़ते हुए कहा। वैसे ही तेल छिड़ककर दियासलाई दिखा देते।"

"मैं कागज जला रहा हूं," भाटिया तीखे स्वर में बोला।

"यह तो मैं भी देख रहा हूं कि तुम कागज़ जला रहे हो। बाकी सब कुछ ये कागज जला देंगे।"

अब भाटिया को खतरे का एहसास हुआ। वह बालकनी का दरवाज़ा बन्द करके जूते से जलते हुए कागजों को मसलने लगा। इस चेष्टा में उसकी पतलून का पायंचा जल उठा। भाटिया चीखकर फर्श पर बैठ गया। बाकी कागजों को मैंने जूते से मसल दिया। अब मैंने लक्षित किया कि भाटिया की सप्ताह-भर की मेहनत उन अधजले कागजों में से झांक रही है।

"यह क्या किया, भाटिया ?" मैंने पूछा।

भाटिया अलमारी से पेटेंट मरहम निकाल लाया। उसे जली हुई खाल पर मलता हुआ बोला, "मुझे आज आत्महत्या कर लेनी चाहिए।"

"आत्महत्या तो बाद की चीज है," मैंने कहा, "पहले यह बताओ, हुआ क्या है ?"

"होना रह क्या गया है ?" वह मरहम और ज़ोर से रगड़ने लगा।

"कुछ बताओगे भी ?"

'बताऊं क्या ?" वह बोला, "यही समझ लो कि मैं कुचला गया, मारा गया और दफना दिया गया।"

"बहरहाल यह भी बता दो कि किस तरह कुचले, मारे और दफना दिए गए ?"

"कैप्टन केशव का दिल्ली तबादला हो गया।"

मैं भी उसके पास फर्श पर बैठ गया, क्योंकि यह वाकई मातम का मुकाम था।

"वे कब जा रहे हैं ?"

"इसी सप्ताह।"

"और रेस कार्ड ?"

"वह तुम्हारे सामने है," भाटिया ने जले हुए कागज़ों की ओर संकेत किया।

"वह भी जा रही है ?"

भाटिया ने मरहम की डिब्बी बन्द की और ठण्डी सांस ली। बोला, "वह भी चली जाती तो ज़हर खाना आसान हो जाता।"

हवा के झोंके से बहुत-सी कालिख उड़कर कमरे में फैल गई। उसी समय दर-

वाज़ा खुला और रंगमंच पर गोपूमल ने प्रवेश किया।

"आज मेरे लिए रुपया लाया है ?" उसने आते ही पूछा। फिर आस-पास फैली हुई कालिख को देखकर उसने नकारात्मक भाव से सिर हिलाया।

"अभी रुपया नही मिला," भाटिया बाहर की तरफ देखने लगा।

"आज भी नही मिला ?"

"नही।"

"किसी दिन मिलेगा भी ?"

"जिस दिन मिलेगा, उसी दिन तुझे दे दूगा।"

"मगर मिलेगा किस दिन, यह भी तो कुछ पता चले।"

भाटिया चुप रहा।

गोपूमल मुझे लक्ष्य करके बोला, "इस शख्स का भेजा खराब है !"

"मेरी तकदीर खराब है !" भाटिया ने सशोधन किया।

"एक ही बात है," गोपूमल ने निष्कर्ष निकला और क्षण-भर रुककर बोला, "तू मेरी बात मान, और ब्याह करा ले। ब्याह में लड़की मिलेगी और तीन हज़ार रुपया मिलेगा। कपड़े-लत्ते मिलेंगे सो अलग। बोल करूं बात ?"

"मैं ब्याह करूं, मैं ?" भाटिया की आखें गुस्से से चमक उठी। "मैं ब्याह करूंगा, तीन-तीन हज़ार रुपया मेरी रोज़ की आमदनी होगी। एक गोपूमल मेरे आगे चलेगा, और एक पीछे। तेरा दो सौ रुपया मेरे लिए दो कौड़ी के बराबर है। किसी भी दिन लाकर तेरे सामने फेंक दूगा।

"तो आज ही क्यो नही लाकर फेंक देता ?" गोपूमल भी गरम हुआ।

"आज मेरे पास नही है।"

"तो किसी दिन होगा भी ?"

"पता नही।" और भाटिया शीशे के सामने जाकर कंघी करने लगा। गोपूमल उसके पीछे जा खड़ा हुआ।

"क्या बात है ?" भाटिया खीजकर बोला।

"तेरी सूरत देख रहा हू।"

"मेरी सूरत मे देखने को क्या है ?"

"यही तो मेरी समझ मे नही आता," कहता हुआ गोपूमल सीढ़ियो में पहुंच गया। आधी सीढ़ियों से उसकी आवाज आई, "घर में नही भूसा, नाम मेरा मूसा।"

कुछ दिन बाद वह फ्लैट मुझे छोड़ देना पडा, क्योकि भाटिया एक मारवाड़ी से पाच हज़ार रुपया पगड़ी लेकर वह जगह उसे दे देने की सोच रहा था। उसके बाद छः महीने भाटिया से मुलाकात नही हुई। एक दिन अचानक वह एक पुस्तकों की दुकान में मिल गया। वह तीन पुस्तकें बेचने के लिए लाया था—बाल रूम डासिग, आर्ट आफ पब्लिसिटी, और इंश्योरेंस गाइड।

दुकानदार ने तीनो पुस्तकों के तीन रुपये देने को कहा।

"तीनो पुस्तकें बिलकुल नई हैं, भाटिया उससे तर्क करने लगा।

दुकानदार उसके तर्क का उत्तर न देकर दूसरे ग्राहक से बातें करने लगा।

"चार रुपये दोगे ?" भाटिया ने पूछा।

मगर दुकानदार दूसरे ग्राहक से बात करता रहा।

"अच्छा लाओ, साढ़े तीन मे सौदा कर लेते हैं," भाटिया कुछ क्षण प्रतीक्षा करने

के बाद बोला।

मगर दुकानदार ने ध्यान नहीं दिया।

"खैर, लाओ, तीन ही रुपये दे दो!" और भाटिया ने किताबें आगे बढ़ा दीं।

दुकानदार ने चुपचाप किताबें उठा लीं। और तीन रुपये निकालकर दे दिए। भाटिया दुकान से बाहर निकला तो मैं भी उसके साथ बाहर आ गया। उसके गालों पर खुश्की झलक रही थी। उसकी पतलून में क्रीज़ नाम की चीज़ थी नहीं, और कमीज़ का कॉलर सिरे से गायब था।

"क्या हाल है भाटिया?" मैंने उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा।

"फाइन!" और वह होठों पर एक अधूरी-सी मुस्कराहट ले आया।

"ये किताबें क्यों बेच रहे थे?"

"यूं ही···पैसों की ज़रूरत थी?"

"इन दिनों डांस सीखते रहे हो क्या?"

"नहीं, सिर्फ दो-एक दिन गया था।" और उसके चेहरे से मुसकराहट गायब हो गई।

"फिर?"

"लड़की के साथ नाचना अच्छा नहीं लगा, छोड़ दिया।"

"और पब्लिसिटी का क्या चक्कर था?"

"पब्लिसिटी ब्यूरो में नौकरी की आशा थी।"

"फिर?"

"नहीं मिली।"

"और कुछ?"

"इंश्योरेंस की एजेंसी ली थी।"

"कुछ काम किया?"

"एक दोस्त का केस मिल रहा था, पांच हज़ार का, मगर···"

"मगर···?"

"मगर उसकी बीवी नहीं मानी।"

"तो आजकल क्या कर रहे हो?"

"आजकल···आजकल आराम कर रहा हूं।"

बात करते-करते हम लोग फ्लोरा फाउण्टेन के ट्राम स्टैण्ड के पास पहुंच गए थे।

"यहां से ट्राम से जाओगे?" मैंने पूछा।

"हां, होटल की तरफ जा रहा हूं," वह बोला।

"किस होटल में रहते हो?"

"इम्पीरियल गेस्ट हाउस में।"

"फ्लैट दे दिया?"

"मुद्दत हो गई।"

"तो पगड़ी का रुपया नहीं मिला?"

"पांच हज़ार मिला था।"

"फिर किताबें क्यों बेच रहे थे।"

"वह पांच हज़ार तो कब का खर्च हो गया।"

"खर्च हो गया? चार-पांच महीने में तुमने पांच हज़ार खर्च कर दिया?"

"किया क्या, हो गया।"

"अपने-आप हो गया ?"

"कुछ रेस में चला गया, कुछ पिछला कर्जा चुकाने में, और कुछ होटल के बिल देने में। होटल का इस महीने का बिल अभी बाकी है।"

"उसके लिए अपना जिस्म नीलाम करोगे ?"

"नहीं, अंगूठी और घड़ी बेच दूगा।"

उसकी अंगूठी और घड़ी की तरफ मेरा ध्यान पहले नही गया था। अंगूठी के नग पर सुनहरा एल बना हुआ था।

"एल स्टैण्ड्स फार लव ?" मैंने पूछा।

"लीना के लिए बनवाई थी," भाटिया ने दूसरी ओर देखते हुए कहा।

"तो उसे दी नहीं ?"

"नहीं…वह…," उसने दोनों हाथ पतलून की जेबों में डाल दिए और होठों पर ज़बान फेरी।

मैं उसकी ओर देखता रहा।

"वह कहती थी कि वह सगाई की अंगूठी के अलावा और अंगूठी पहनना पसन्द नहीं करती।"

"तो तुम लोगों की सगाई हो गई ? कब हुई ?"

भाटिया ने आंखें दाईं ओर से बाईं ओर कर ली। फिर होंठो को ज़बान से और गीला करता हुआ बोला, "मेरी सगाई इसी महीने हुई है।…उसकी सगाई को दो साल हो गए।"

"क्या ?" मेरा चेहरा प्रश्नसूचक चिह्न-सा बन गया।

उसकी सगाई हवाई सेना के एक अफसर के साथ हो चुकी है।"

"पर तुम तो कहते थे कि …"

भाटिया ने निचले होंठ को दांतो से चबा लिया। हम दोनो कुछ क्षण खामोश रहे।

"कोल मोती, रेस कार्ड ! रेस कार्ड, कोल मोती !" यह आवाज़ सुनकर भाटिया चौंक गया। रुपये-रुपये के तीन नोटो मे से सबसे घिसा हुआ नोट निकालकर उसने दोनो कार्ड खरीद लिए, और उसकी नज़र घोडो की सूचियो पर दौड़ने लगी।

"अभी भी रेस पर जाने का इरादा है ?" मैंने पूछा।

एक तिरस्कार-सूचक 'हु' के साथ भाटिया ने दात भीच लिए।

"मेरा कहने का मतलब था कि…"

"जितना पैसा गया है, वह किसी तरह वापस भी तो आएगा…।" भाटिया का चेहरा सख्त हो गया।

"और उसे वापस लाने के लिए पैसा…?"

"उसके लिए भी आ रहा है, पन्द्रह दिन के अन्दर।"

"कोई लॉटरी निकली है ?"

"नही। ब्याह हो रहा है। तीन हजार रुपया नकद मिलेगा।"

मेरा ध्यान उसके माथे की फूली हुई नसों की ओर चला गया।

"लडकी देखी है ?"

भाटिया ने सिर हिलाया।

"कैसी है ?"

"ठीक है !" और उसका चेहरा और सख्त हो गया।

कोलावा की ट्राम आकर खड़ी हो गई थी। भाटिया ने हाथ बढ़ा दिया। मैंने उसका हाथ दबाते हुए पूछा, "तो ब्याह की पार्टी कब दे रहे हो ?"

ट्राम झटके से चल पड़ी और भाटिया दौड़कर उस पर सवार हो गया। चलती ट्राम से उसने हाथ हिलाते हुए कहा, "पहली तारीख को।"

और ट्राम के जरा आगे निकलते ही उसकी आंखें फिर रेसकार्ड पर स्थिर हो गईं।

शिकार

दादर, बादरा, सैंटाक्रुज, अंधेरी—अंधेरी, सैंटाक्रुज, बादरा, दादर—वही स्टेशन बार-बार आते और निकल जाते। पटवर्द्धन दरवाज़े के पास खड़ा-खड़ा चर्चगेट से अंधेरी तक गया था, अंधेरी से ग्रांट रोड तक आया था, ग्रांट रोड से फिर अंधेरी तक गया था और अब दूसरी बार अंधेरी से लौट रहा था। आज कुछ न कुछ हासिल करना उसके लिए जरूरी था। बृहस्पति, शुक्र और शनीचर तीन दिन खाली निकल गए थे। पैसे हाथ में रहते दस दिन भी मौके का इन्तजार करना पड़ता, तो उसे उतावली न होती। वह खामखाह अपने को मुसीबत मे डालने के हक में नहीं था। मगर बुधवार को पन्द्रह रुपये जुए मे हारकर उसके पास कुल डेढ़ रुपया बच रहा था, जिससे उसने किसी तरह अब तक का काम चलाया था। इस वक्त उसके पास सिर्फ दो इकन्नियां थी। रात की रोटी के लिए कुछ न कुछ पैदा करना जरूरी था।

पिछली दादर फास्ट गाड़ी मे उसका काम बनते-बनते रह गया था। ग्रांड रोड से उस गाड़ी में बहुत-से लोग चढ़े थे और दरवाज़े के पास इतनी भीड़ हो गई थी कि कंधा हिलाना भी मुश्किल था। उस भीड़ मे एक पारसी की जेब उसकी बांह के साथ सट गई थी। पटवर्द्धन ने स्पर्श से ही जान लिया था कि उस जेब मे चालीस-पचास के नोट हैं। वह तेज गाड़ी न होती, तो सेंट्रल स्टेशन पर ही वह पारसी की जेब साफ करके उतर गया होता। सिर्फ बाहर निकलने के लिए एक हल्ले की ज़रूरत थी। मगर गाड़ी सात स्टेशन छोड़कर बादरा रुकी, और इस बीच न जाने कैसे पारसी को कुछ संदेह-सा हो गया जिससे स्टेशन आने पर वह पैसों वाली जेब पर हाथ रखे हुए नीचे उतरा। पटवर्द्धन उसी तरह दरवाज़े से टेक लगाए खड़ा रह गया जैसे ग्रांट रोड से बादरा तक आया था।

इस बार अंधेरी स्टेशन पर उसने गाड़ी बदली, तो उसे टांगों मे थकान महसूस हो रही थी। उसे खड़े-खड़े सफर करते तीन घंटे से ज्यादा वक्त हो चुका था। अब भी उसे खड़े रहना था क्योंकि उसका काम गाड़ी के दरवाज़े के पास ही बन सकता था। काम का मौका वे कुछ ही क्षण होते थे जब अन्दर आने और बाहर जाने वालों के बीच संघर्ष होता था। थकान के कारण पटवर्द्धन ने निश्चय किया कि वह दादर स्टेशन से चाय पीकर फिर कोई दूसरी गाड़ी पकड़ेगा।

सैंटाक्रुज पर दरवाज़े के पास खासी भीड़ हो गई। पटवर्द्धन की आखें एक नवयुवक के चेहरे पर कुछ क्षणों के लिए रुकीं। नवयुवक उसके बहुत पास खड़ा था। पटवर्द्धन को नवयुवक के चेहरे की रेखाएं बहुत आकर्षक लगीं। उसके अस्तव्यस्त घुंघराले बालों और हैरानी-सी बड़ी-बड़ी आखों मे उसे कुछ खासियत लगी। वह ऐसे लोगों मे से था जिनके साथ खामखाह बात करने को मन हो आता है। उसे जैसे अपने चारों तरफ

हर चीज़ अच्छी लग रही थी। पटवर्द्धन उसके चेहरे से आखें हटाकर बाहर फली रेल की पटरियो को देखने लगा।

बांदरा निकल गया। गाड़ी माहिम स्टेशन पर रुकने लगी तो नवयुवक ने पास खडे एक व्यक्ति से पूछा कि माटुगा जाने के लिए उसे दादर से कौन-सी बस पकडनी चाहिए। पटवर्द्धन को उसका बात करने का लहजा भी आकर्षक लगा। उसे ईर्ष्या हुई कि नवयुवक उससे न पूछकर दूसरे व्यक्ति से क्यो पूछ रहा है। उससे पूछता, तो वह खुद जाकर उसे बस-स्टाप तक छोड़ आता।

नवयुवक ने जिससे पूछा था उसे खुद पता नही था कि दादर से माटुगा के लिए कौन-सी बस मिलती है। उस व्यक्ति ने पटवर्द्धन से पूछा। पटवर्द्धन ने सीधे नवयुवक को उत्तर दिया कि उसे स्टेशन से निकलकर 'जे' रूट की बस पकड़नी चाहिए। फिर कुछ क्षण रुककर उसने पूछा, "आप बम्बई मे नये आए हैं ?"

"हा, कल ही आया हूं," नवयुवक ने मुसकराकर उत्तर दिया।

"काम से या सिर्फ घूमने के लिए ?"

'काम की तलाश मे आया हू," कहते हुए नवयुवक ने अपना निचला होंठ ज़रा-सा काट लिया। फिर उसने पटवर्द्धन से पूछा, "आप यहीं रहते हैं ?"

"मैं पिछले पांच साल से यहां हूं," कहते हुए पटवर्द्धन थोड़ा अव्यवस्थित हो गया।

"क्या काम करते हैं ?"

"ग्रांट रोड पर मेरी जुराबो की फैक्टरी है।" यह उन अनेक उत्तरों मे से था जो यह सवाल पूछे जाने पर वह लोगो को दिया करता था। उसे इसके लिए सोचना नही होता था। अनायास ही कभी वह कह देता था कि वह एक दवाई कम्पनी का सेल्ज़मैन है। कभी कि जूते बनाने वालो को चमड़ा सप्लाई करता है। हर बात वह बहुत स्वाभाविक ढंग से कहता था। मगर उस समय उसे अपना स्वर कुछ अस्वाभाविक-सा लगा। उसकी आखें नवयुवक के चेहरे से हट गईं।

पास ही एक पांच-छः साल की बच्ची अपने पिता का हाथ पकड़े खड़ी थी। वह पटवर्द्धन के मैले कपड़ो से अपनी वायल की नई फ्राक बचाए रखने के लिए अपने पिता से सटी जा रही थी। बच्ची के होंठ बहुत पतले और सुन्दर थे। गरदन की हल्की रेखाए जीवित शखों की याद दिलाती थी। नवयुवक भी उस बच्ची को देख रहा था। बच्ची से आख मिलने पर एक बार उसने प्यार से उसकी ठोडी को सहला दिया। बच्ची मुस्कराई। पटवर्द्धन अन्दर से आंखें हटाकर फिर बाहर की तरफ देखने लगा। दूसरी तरफ से आती एक लोकल गाडी धडधडाती पास से निकल गई। रेल की पटरियां तेजी से पीछे की तरफ जा रही थी। कही-कही पटरियो मे बत्तियो के साये नजर आ जाते। एक पुल तेजी से निकल गया जिस पर दुनिया और ही गति से चल रही थी। गाड़ी की चाल धीमी होने लगी। दादर स्टेशन आ गया था।

गाडी के स्टेशन पर रुकते ही भीड़ का दबाव बढ गया। उतरने की कोशिश मे [illegible] के पहले ही क्षण पटवर्द्धन [illegible] जिसमे दस-दस या पाच- [illegible] के कारण गाड़ी से उतरना मुश्किल हो रहा था। नवयुवक बच्ची को हाथ का सहारा दिए हुए था। कुछ लोगों के टोकरिया लिए अन्दर आ जाने से धक्का-मुक्की और भी बढ गई। पटवर्द्धन नवयुवक से पहले प्लेटफार्म पर उतर गया। नवयुवक बच्ची को हाथों में उठाए हुए उतरा।

बच्चों को उसके पिता को सौंपकर उस आदमी से बता करता हुआ वह पुल की तरफ चलने लगा।

पटवर्द्धन चाय के स्टाल के पास खड़ा था। उसकी नजर नवयुवक का पीछा कर रही थी। गाडी झटके के साथ चल पडी। पटवर्द्धन के पैर गाड़ी की तरफ बढे, पर फुट-बोर्डों पर इतने लोग खडे थे कि दौडते हुए कही जगह बना लेना आसान नही था। गाड़ी की घडघडाहट हवा मे फैलकर विलीन हो गई। पटवर्द्धन की नजर पुल की तरफ गई। नवयुवक पुल पार कर रहा था। कुछ ही क्षणो मे वह भीड़ के रेले मे अदृश्य हो गया।

पटवर्द्धन की नजर चाय के स्टाल पर रुकी। एक आदमी जल्दी-जल्दी चाय की प्यालियां भरकर पत्थर के काउण्टर पर रखता जा रहा था। पटवर्द्धन को लगा जैसे आस-पास जरूरत से ज्यादा खामोशी छा रही है। सहसा दूर से एक गाडी का शब्द सुनाई देने लगा। एक दादर फास्ट गाडी तेजी से सामने से निकल गई। गाडी के निकल जाने पर पटवर्द्धन को लगा कि वह अपने आसपास लगातार गाड़ी की घडघड़ाहट चाहता है, साथ ही चारो तरफ से भीड का दबाव चाहता है, और···।

ग्राट रोड जाने वाली दूसरी गाडी मे छः-सात मिनट की देर थी। पटवर्द्धन पतलून की जेबो में हाथ डाले खडा था। उसका बायां हाथ दो इकन्नियों को सहला रहा था और दायां हाथ चमड़े के बटुए को जिसमे अन्दाजन दस-दस के या पांच-पाच के बारह-तेरह नोट थे।

सिग्नलो की रगीन रोशनिया जैसे एकटक उसी की तरफ देख रही थीं। आस-पास खडे लोगो के स्वर की गूज भी जैसे उसी के चारो तरफ मंडरा रही थी। उसे अच्छा लग रहा था कि स्टाल वाला लगातार चाय की प्यालिया भरकर काउण्टर पर रखता जा रहा था जिससे उडेली जा रही चाय में से निकलती भाप के हल्के-हल्के छल्ले बार-बार सामने आकर ओझल हो जाते थे और सफेद पत्थर से प्यालियो के टकराने का शब्द लगातार सुनाई देता रहता था।

बत्तियों की रोशनी मे प्लेटफार्म के पत्थर चमक रहे थे। पास से निकलते लोगो की ठिगनी-तिरछी छायाएं पत्थरो के अन्दर चलती प्रतीत होती थी। पटवर्द्धन के मस्तिष्क में भी कई-कई छायाए चल रही थी···।

बडी-बड़ी इमारतें, बसें, ट्रामें, इन्सान और शीशे के शो-केसो मे बन्द डबल रोटिया···।

फैली हुई सड़कें और गाड़ियो के घूमते हुए पहिये···।

रात को फुटपाथ पर इकट्ठे होते हुए लोग—मजदूर, भिखमगे जेबकतरे, रण्डियो के दलाल—पुरुष, स्त्रिया और बच्चे···।

एक बच्चा रो रहा है···।

एक व्यक्ति जिसके चेहरे का मास सूख गया है और जिसकी आखें गोल-गोल दिखाई देती है, खभे से टेक लगाए बीडी पी रहा है···।

एक किश्तीनुमा कार पास से फिसलती हुई निकल जाती है···।

बीडी पीनेवाला फैली हुई आखो से कार का पीछा करता है, और आधी पी हुई बीड़ी बुझाकर जेब मे रख लेता है।

"मजदूर!" कोई आवाज देता है।

फुटपाथ से दस-पन्द्रह आदमी दौड पडते है।

एक स्त्री, जिसकी उम्र का कुछ अनुमान नही होता, लेटी हुई कराह रही है···।

एक युवक, जिसकी बनियान में जगह-जगह सूराख है, बांह खुजलाता हुआ कह रहा है, "मधुबाला है प्यारे ! उसका एक क्लोजअप देखकर ही सब पैसे वसूल हो जाते हैं ···।"

एक तरफ से शोर सुनाई देता है—"महमूद ने निम्बोलकर के चाकू मार दिया ···।"

"ये लोग वहशी हैं," कोई किसी से कहता है।

एक पत्थर ट्राम की खिड़की से टकराता है···।

पुलिस का सिपाही उसे घसीटकर ले जा रहा है। वह चिल्ला रहा है, "नहीं, मैं नहीं था ! मैं नहीं था !"

गाडी मे भीड़ का दबाव बढ़ रहा है। घुघराले बालो वाले नवयुवक का शरीर उसके शरीर के साथ सट गया है। नवयुवक हाथ से बच्ची को सहारा दिए हुए है···।

सिग्नल की बत्ती का रंग बदल गया।

पटवर्द्धन का ध्यान फिर चाय के स्टाल की तरफ चला गया। स्टाल वाला उसी तरह चाय की प्यालियां भर-भरकर काउण्टर पर रखता जा रहा था। उंडेली जा रही चाय से निकलती भाप के हल्के-हल्के छल्ले बार-बार दिखाई देते और ओझल हो जाते थे।

गाडी आ रही थी।

पटवर्द्धन का हाथ बाईं जेब में पड़े हुए बटुए को सहला रहा था।

गाडी प्लेटफार्म पर आ गई।

गाडी ने सीटी दी और चल पडी।

पटवर्द्धन का मन चाह रहा था कि ज़िन्दगी लौटकर कुछ मिनट पहले के उस मुकाम पर चली जाए जब उसके चारो तरफ भीड़ का दबाव बढ़ रहा था, पर उसका हाथ अभी नवयुवक की जेब तक नही पहुंचा था।

गाडी के आधे डब्बे निकल गए थे।

तभी उसने देखा कि घुघराले बालो वाला नवयुवक घबराया-सा पुल की सीढ़ियां उतरकर आ रहा था।

गाडी का अन्तिम डब्बा निकल रहा था।

सहसा पटवर्द्धन की टांगो में जान आ गई। वह दौड़ा और गाड़ी के आखिरी डब्बे के फुटबोर्ड पर लटक गया। पल-भर मे पुल दूर हो गया, प्लेटफार्म पीछे रह गया, और नवयुवक का चेहरा आखों से ओझल हो गया।

अब फिर रेल की पटरिया तेजी से पीछे की तरफ जाती दिखाई दे रही थी। गाडी की एक बत्ती की पटरी पर पड़ती हुई रोशनी गाडी के साथ-साथ चल रही थी। पटवर्द्धन का दायां हाथ फुटबोर्ड के डंडे को पकडे था और बायां हाथ जेब मे पडे बटुए को सहला रहा था।

मगर अब उसका मन चाह रहा था कि ज़िन्दगी लौटकर उस मुकाम पर चली जाए जब गाड़ी का आखिरी डब्बा निकल रहा था और वह अभी प्लेटफार्म पर ही था।

अन्दर कोई किसी से कह रहा था कि वह फास्ट गाड़ी है जो सीधी ग्रांट रोड जाकर रुकेगी।

फटा हुआ जूता

टाइमपीस ने अलार्म दिया। राय की नींद टूट गई। उसने चादर टांगों से उतार फेंकी और बैठकर टाइमपीस आज को चाबी देने लगा। बारह साल पहले तीन रुपये में लिया हुआ वह जापानी टाइमपीस बुढ़ापे में भी बारह घंटे का सफर चौदह घंटे में तयकर ही लेता था और सवेरे पांच बजे का अलार्म पांच से सात के बीच किसी भी समय उसे जगा दिया करता था।

अभी टाइमपीस में पांच ही बजे थे, हालांकि धूप खिड़की से हटकर मेज पर से होती हुई उसके बिस्तर की सीमाओं तक पहुंच गई थी। राय ने अन्दाज़े से घड़ी में पौने सात बजाए और उसे खिड़की में कंघे-शीशे के पास रखकर उठ खड़ा हुआ।

खड़े होकर राय ने एक अंगड़ाई ली। फिर उसने गद्दे को गोल किया, उठाया और छज्जे पर टीन के ऊपर पटक दिया। उसके बाद उसने मेज को दीवार के पास से खींचकर कमरे के बीच कर दिया, कुर्सियों को मेज के इधर-उधर लगा दिया और 'एशिया सर्जिकल कम्पनी' का बोर्ड उठाकर बाहर पटक दिया। इस तरह शयनागार को कार्यालय में परिणत करके उसने सामने के औषधालय के चौकीदार से माचिस लेकर सिगरेट सुलगाया और छज्जे पर आकर पिछले घर की जालीदार खिड़की के पास हिलती हुई नारी-मूर्ति को देखने लगा।

राय, अर्थात् दामोदरदास चिन्तामणि राय, उन व्यक्तियों में से था जो ईश्वर की प्रयोगशाला से अकेले ही बनकर आते हैं। उसके दांत काफी आगे को उभरे हुए थे और आंखें पीछे को धंसी हुई थीं, और उसकी बांहों और टांगों में कुछ ऐसे खम पड़ते थे जिनसे किसी भी चीज की उपमा नहीं दी जा सकती। उसके कंधों से मिली हुई गरदन की रेखाएं इस बात की गवाही देती थीं कि उसके शरीर में मांस केवल नाम को ही है। वह हाथ हिलाता या होंठों पर ज़बान फेरता या सिगरेट का कश खींचता तो उसमें कुछ अस्वाभाविक-सा लगता था—कुछ ऐसे लगता था जैसे वह व्यक्ति हिलने-डुलने में ही एक तरह का मज़ाक कर रहा हो।

जब सिगरेट उस सीमा तक पिया जा चुका कि और कश खींचने से होंठ जल जाते तो राय ने बाकी टुकड़ा फेंक दिया। सिगरेट का टुकड़ा हवा में लकीर खींचता हुआ नीचे अखबार वाले के अखबार पर गिरा और वहां से धक्का खाकर गली में आम के छिल्के के पास जा लेटा।

खिड़की से हटकर राय ने एक लम्बी सांस ली। फिर उसने एक आलमारी के पीछे से तौलिया निकालकर कन्धे पर रख लिया और कमरे से बाहर चला गया।

नहाने, खाना खाने और दो-एक डाक्टरों की दुकानों के चक्कर लगाने के बाद जब राय अपनी कुर्सी पर आकर बैठा, उस समय साढ़े ग्यारह बज रहे थे। उसने पत्र लिखने के लिए पैड उठाया, पर वह 'डियर सर' से आगे नहीं बढ़ सका। फिर उसने एक फाइल उठाई, पर उसे भी देखने का उसका मन नहीं हुआ, उसकी आखें दूर की जालीदार खिड़की पर से होती हुई सामने दीवार पर लगे कैलेण्डर पर स्थित हो आईं जबकि उसका हाथ स्याहीदान पर पंचिंग मशीन और पंचिंग मशीन पर पेपरवेट रखता और हटाता रहा। फिर उसने कुर्सी की पीठ से टेक लगा ली और ऊपर छत की कड़ियां देखने लगा। एक बार ज़रा-सा खटका हुआ तो उसने चौंककर दरवाज़े की ओर देखा; मगर कोई आहट न पाकर फिर उसी तरह छत की ओर देखने लगा।

प्रतीक्षा करने से उसे बहुत झुंझलाहट होती थी। रोज उसे कहीं न कहीं किसी न किसी चीज के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। सुबह नहाने के लिए जाता तो अक्सर नल सू-सू की आवाज़ करके रह जाता था और वह तब तक इंतजार करता खड़ा रहता था जब तक कि निचली मंज़िल वाले न नहा चुकें। ढाबे में जाता तो तब तक कोई उसकी ओर ध्यान नहीं देता था जब तक वह बीस मिनट बैठे रहने के अनन्तर उठ जाने की धमकी न दे। बस के क्यू में भी अक्सर वह खड़ा रह जाता था और पीछे से भागकर आने वाले चढ़ जाते थे। अब दो दिन से यह पोस्टमैन था कि आने का नाम ही नहीं ले रहा था। रात को सपने में उसने कितनी ही बार पोस्टमैन को आते देखा था, पर वह हर बार दूर से ही मुसकराकर या सलाम करके चला गया था। राय ने सोते में भी पोस्टमैन को जी भरकर कोसा था और अब भी चाह रहा था कि एक मोटी-सी गाली देकर दिल का गुबार निकाल ले।

मेज़ के नीचे रद्दी की टोकरी के पास उसका जूता पड़ा था जो उसने बाहर से आते ही खोलकर रख दिया था। जूते के मैले सिकुड़े हुए तलुवे तिरछे होकर आधा-आधा इंच ऊपर को सरक आए थे। पीछे की दोनों ओर की सीवनें उधड़ रही थीं। उसे याद नहीं था कि यह जूता उसने कब खरीदा था—उसे खरीदे हुए कम से कम अढाई-तीन साल हो चुके थे। जूते के दांत बहुत पहले ही निकलने लगे थे, पर राय उसे ठोक पीटकर लटकाता आ रहा था। कुछ महीने पहले सामने से जूते के होंठ भी खुल गए थे, पर राय ने मोची को चव्वनी देकर उन्हें बन्द करा दिया था, मगर इसके बाद जब जूते की बगलें शिकायत करने लगीं तो राय को बैठकर गभीरतापूर्वक सोचना पड़ा और सोचने का परिणाम यह निकला कि उसे नकद तीस रुपये का पुरस्कार मिल गया।

घिसा हुआ जूता बम्बई की पटरियों पर बहुत सफ़ाई के साथ फिसलता है—और राय का जूता तो फिसलते समय शब्द भी किया करता था। पर यह रोज़-रोज़ की बात उसके लिए उतनी ही स्वाभाविक हो चुकी थी जितनी गुजराती ढाबे की रोटियां, पाउडर के दूध की चाय और पारसी लड़कियों की लटकेदार अंग्रेज़ी। परन्तु जब एक दिन जूते के फिसलने पर एक नोकदार कील जूते के तले में सूराख करके पांव में आ घुसी, तो पांव की पीड़ा स्नायुओं में से होती हुई उसके मस्तिष्क में पहुंची और मस्तिष्क के किसी कोने में सोई हुई चिंतनशक्ति झटका खाकर सहसा जाग उठी।

राय ने सोचा और सोचकर निश्चय किया कि जीना हो तो उसे ठीक से जीना चाहिए। यह अंग-अंग में ऊंघती हुई शिथिलता, यह खाना, सोना और बीतना, बरसों खेली हुई ताश की तरह घिसा हुआ जीवन, यह सब बदलना चाहिए।

निश्चय पर पहुंचकर उसने उपाय सोचना आरम्भ किया। नई नौकरी मिलना असम्भव था। मैट्रिक फेल होने के कारण एशिया सर्जिकल की नौकरी भी बहुत सिफ़ारिश के बाद मिली थी, उसे दो ही काम दिखाई दिए जो बिना किसी तरद्दुद के आसानी से किए जा सकते थे—एक, कहानियां लिखना और दूसरे, पहेलियां भरना। राय ने एक ही मुहूर्त में दोनों काम आरम्भ कर दिए।

राय की कहानी तो जहां गई, वहीं की हो रही—न छपी ही और न लौटकर आई। पर पहेली में किसी तरह उसका तीस रुपये का पुरस्कार निकल आया। राय ने पुरस्कार-विजेताओं की सूची में अपना नाम देखा तो उसे विश्वास हो गया कि उसकी छिपी हुई योग्यता को अपने लिए मार्ग मिल गया है—वह अब पहेलियां भरकर अपना जीवन-स्तर ऊंचा उठा सकता है।

प्रकाशित सूचना के अनुसार पुरस्कार छब्बीस तारीख को भेजे जा रहे थे और

उस दिन उनतीस तारीख थी। राय के लिए एक-एक क्षण काटना भारी हो रहा था। उसकी आंखें छत की दरारों को देखती, फिर दीवार पर लगे कैलेन्डर की ओर फिर दरवाज़े के चौखट पर स्थिर हो जाती, जहां एक मकड़ी अपने जाले में उलझी हुई कभी नीचे गिरती, फिर ऊपर उठने लगती और फिर नीचे गिर जाती थी।

आखिर जब पोस्टमैन आया तो राय का मन मकड़ी के जाले में इतना उलझा हुआ था कि वह पोस्टमैन को देखकर चौंक गया।

पोस्टमैन के हाथ से रजिस्ट्री का लिफ़ाफ़ा लेते हुए उसका हाथ ज़रा-सा कांप गया। रसीद पर उसके हस्ताक्षर बिगड़ गए। रसीद पोस्टमैन को देकर वह तुरन्त पोस्टमैन के विषय में भूल गया। उसने कांपती उंगलियों से लिफ़ाफ़े को खोला। अन्दर से छिपे हुए पत्र के साथ एक गहरे हरे रंग का चेक निकला। राय जल्दी-जल्दी पत्र को आरम्भ से अन्त तक देख गया। कई मोटे-मोटे शब्द उसे समझ नहीं आए। पत्र पढ़ने का जैसे उसने फ़र्ज़ पूरा किया और चेक को दोनों हाथों से मेज़ पर फैलाकर देखने लगा।

चेक का कागज बहुत चिकना था और उस पर बहुत सुन्दर इबारत में उसका नाम लिखा हुआ था। तीन और शून्य के अंक भी बहुत सधे हुए ढंग से लिखे गए थे, हरे कागज़ [illegible] ने हाथ हटा [illegible] और उनमें [illegible] उसके हाथ चेक के हाथ की नीली लिखावट की तरह सुन्दर और सुडौल होने चाहिए—भरे-भरे और कसाव लिए हुए। उसने दो-एक बार मुट्ठियां बांधकर खोलीं और हाथों को मला। पर वे उंगलियां वैसी की वैसी ही रहीं—जिनके एक पोर पर न जाने कितनी लकीरें खिंची थीं—जैसे वे कुहरे में ठिठुरी हुई उंगलियां हों।

राय ने दोनों हाथों की उंगलियां उलझाकर हथेलियां मिला लीं। उसका ध्यान रद्दी की टोकरी के पास रखे जूते की ओर चला गया। जूते का चमड़ा भी उसकी उंगलियों के चमड़े की तरह सूखा था। बहुत पहले वह चमड़ा शायद किसी हट्टे-कट्टे पशु के शरीर पर था। वहां से उतरकर वह भीगा, छिला, कटा, सिला और उसके पैर में आया। पैर में घिसा, फटा, सूखा और बेकार हो गया। मगर उसके हाथ का चमड़ा? वह उसके शरीर पर ही सूख जा रहा था—क्यों?

राय के मन में बगावत का भाव पैदा हुआ—अपने प्रति, उस कमरे की नीची छत और चारों ओर से कसती हुई दीवारों के प्रति, एशिया सर्जिकल की फ़ाइलों और आलमारियों में रखे चीरफाड़ के औज़ारों के प्रति और मालिक से लेकर गुजराती ढाबे के बैरों तक हरएक के प्रति। उसे कुछ क्षणों के लिए तो लगा कि वह अपने सारे वातावरण को तहस-नहस कर देगा, पर फिर उसकी आंखें हरे चेक की नीली इबारत पर स्थित हो गईं और तीन और शून्य के हिन्दसे अधिक मांसल होकर उसके सामने उभरने लगे। धीरे-धीरे उन हिन्दसों का अर्थ हो गया दस-दस के तीन नोट, नये या मैले, पर कुछ भी खरीदने में समर्थ। उन नोटों की आकृतियों के नीचे राय का बगावत का भाव दब गया।

ये तीस रुपये बिलकुल उसके अपने थे। हर मास उसे जो वेतन के साठ रुपये मिलते थे, वे कभी उसके अपने नहीं होते थे, उनमें से चालीस-पैंतालीस रुपये तो पहले दिन ही होटल और सिगरेट वाले का बिल चुकाने में चले जाते थे। और इस पर भी अर्से से उसका बकाया चला आ रहा था। बाकी रुपये भी तीन-चार दिन से अधिक जेब में नहीं रहते थे, क्योंकि उसकी कितनी इन्सानी ज़रूरतें उधार के सिर पर पूरी होती थीं, और जो

लोग देते थे वे महीने के पहले सात दिनों में किसी न किसी तरह सामने पड़ ही जाते थे, मगर वे तीन और शून्य के दोनों हिन्दसे आज उसके अपने थे—वह उनसे कुछ भी कर सकता था, कुछ भी खरीद सकता था। राय ने चेक हाथ में ले लिया और फिर कुर्सी के साथ टेक लगाकर थोड़ा पीछे की ओर झूल गया।

तीस रुपये—नकद तीस रुपये उसके पास थे जिनका वह जैसे चाहे उपयोग कर सकता था। उसने पैरों में फटे हुए जूते के स्थान पर चमकते हुए जूते की कल्पना की। शरीर पर शार्कस्किन की बुशर्ट और आर्टेलिन की पतलून की कल्पना की। परन्तु तभी उसके वे सूखे हुए हाथ सामने आ गए जिनकी उंगलियां बढ़े हुए नाखनों के अनुपात में छोटी प्रतीत होती थी, और वह विटामिन बी की गोलियों, नारंगियों और मक्खन की टिकियाओं की कल्पना करने लगा। जब ये सब कल्पनाएं एक-दूसरी में उलझ गईं तो वह फिर कुर्सी सीधी करके मेज़ पर झुक गया और चेक के सुडौल हिन्दसों को देखने लगा।

शाम को जिस समय कुर्सियां हटाकर और बिस्तर बिछाकर ताला हाथ में लिए हुए कमरे में बाहर निकला, उस समय तक वह चेक नीचे के इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट वाले दीनू भाई की सहायता से तीन नोटों में बदल चुका था। ताला लगाकर जब वह नीचे उतरा तो उसके होंठ हल्की-सी मुस्कराहट से अनायास फैल रहे थे और चुटकी बजाकर सिगरेट की राख झाड़ने में खासी बेपरवाही आ गई थी। चार मंज़िलों की सीढ़ियां उतरकर जब वह बाज़ार में आया तो कई क्षण सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश खींचता हुआ खड़ा रहा। कालबादेवी की तरफ कई ट्रामें एक-दूसरे के पीछे घिसटती जा रही थीं, और प्रिंसेस स्ट्रीट के मोड़ पर फ्लोरा फाउण्टेन को जानेवाली बस आकर रुकी ही थी। राय के देखते-देखते वह बस चली गई, लेकिन उसके कदम उसकी ओर नहीं बढ़े, हालांकि वह फ्लोरा फाउण्टेन जाने के इरादे से ही निकला था। उसने सिगरेट का आखिरी कश खींचकर उसके नाखून-भर के टुकड़े को पैर के नीचे मसल दिया और पैदल क्राफर्ड मार्केट की तरफ जानेवाली पगडंडी पर चल पड़ा।

क्राफर्ड मार्केट से ज़रा पहले ही बाईं ओर वह दुकान थी जिसके शो-केस में रखा सफेद ब्राउन जूता रोज़ उसकी आंखों को बरबस अपनी ओर खींच लिया करता था। जूता आज भी यथास्थान तिरछे कोण से रखा था और उसका टिप बहुत चमक रहा था। राय पल-भर जूते के टिप और गदगदाए हुए फीते को देखता रहा और फिर ज़रा चेष्टा से चेहरे को गम्भीर बनाकर और पतलून की बिगड़ी हुई लकीर को थोड़ी संवारकर दुकान के अन्दर चला गया।

पहले उसने वह सफेद-ब्राउन जूता ही निकलवाया। उसका चमड़ा बहुत मुलायम था और सोल डेढ़ उंगली मोटा था। राय ने पुकारा जूता उतारकर उसे पांव में पहन लिया और दुकान के मोटे गलीचे पर चहल-कदमी करने लगा। दुकानदार ने जूते का दाम उनतीस रुपये पंद्रह आने बतलाया था, राय ने चलते हुए शीशे में अपना प्रतिबिम्ब देखा। सिर पर उसके रूखे बालों की गांठें-सी बंध रही थीं। कमीज़ का कॉलर दोनों ओर से फट गया था और नीचे का कपड़ा बाहर निकल आया था। पतलून की लकीर को उसने बाहर से आते हुए ठीक करने की चेष्टा की थी, पर उसके समानान्तर एक और लकीर बन गई थी। उसके नीचे पैर में वह उनतीस रुपये पन्द्रह आने का जूता था, जिसका सोल चलते-चलते गलीचे पर से फिसल जाना चाहता था। एक बार उसने एक मन्दिर देखा था जिसके टूटे-फूटे कलश पर किसी ने सोने की झंडी लगवा दी थी। उस मन्दिर का ध्यान आते ही वह शीशे के सामने से हटकर कुरसी पर आ बैठा। उसके मन ने जल्दी-

जल्दी व्यवस्था दी कि तीस रुपये का जूता खरीदना बेकार है—सोलह-सत्रह का कोई गुज़ारे लायक जूता ले लिया जाए, और बाकी रुपयों से एक कमीज़ पतलून बनवा ली जाए, वेतन के रुपयो में से पैसे निकालकर कुछ बनवा पाना तो लगभग असम्भव ही था···

दुकानदार उसके अनिश्चिय को भांप रहा था। उसने जूता उसके पैर से उतार कर दो बार हाथ में उछाला और फिर फूंक मारकर कपड़े से पोंछते हुए कहा, "इसके अलावा आपको और क्या चाहिए ?" और उसके अपने लड़के को आवाज़ दी कि वह जूता बांध दे।

"अभी ठहरिए," राय कुछ अव्यवस्थित होकर बोला, "दो-एक इससे हल्के डिज़ाइन भी दिखा दीजिए, जरा देख लें तो···"

दुकानदार ने दस रुपये से लेकर पचीस रुपये तक के कई जूते उसके सामने खोल दिए। राय ने हरएक को हाथ मे लेकर उलट-पलटकर देखा, दो-एक को पैर मे पहनकर गालीचे पर चला, परन्तु कोई जूता उसके मन को नही जंचा। जब दुकानदार के पास कोई और चीज़ दिखाने लायक नही रही तो उसने धीरे से सिर हिला दिया।

"तो वही पहले वाला ले लीजिए, वही सबसे अच्छा है," दुकानदार कहने लगा।

राय ने फिर सिर हिला दिया और पुराना जूता पहनकर उसके फीते बांधने लगा।

"दूसरी जगह देख लूं, शायद कोई और चीज़ मिल जाए," उसने कहा।

नये जूतों के ढेर में उसका पुराना जूता बहुत ही बदनुमा लग रहा था। अपने तरुण सजातियों मे आकर वह जैसे लज्जा से कुण्ठित हो गया था और कह रहा था कि तुम्हारा अपना तो कुछ बनता-बिगड़ता नही, पर दूसरे के तो मान-अपमान की कुछ चिंता कर लिया करो। राय ने एक फीता ज़ोर से कसा तो वह टूटकर आधा उसके हाथ में आ गया। उसने उसे उंगली मे लपेट लिया और बाहर निकल आया।

बाहर आकर उसे कितनी ही चीज़ों का ध्यान आने लगा, जिन्हें उसने समय-समय पर खरीदना चाहा था। व्हाइटवेज़ में उसने एक बहुत खूबसूरत टेबल लैंप देखा था कि जिसका हल्का नीला शेड उसे बहुत पसंद था। आर्मी नेवी स्टोर में एक सफेद पलटे का चाकू रखा था जिसकी धार देखते हुए कुछ दिन हुए उसने अपनी उंगली पर ज़ख्म कर लिया था। फ्लोरा फाउण्टेन के फुटपाथ पर दो दिन पहले उसने एक लड़के के पास बहुत अच्छी नेकटाइयां देखी थीं। रास्ते में चलते हुए अब कई चीज़ें उसका ध्यान खींच रही थी। वह सोचने लगा कि वह अपनी चाय दानी खरीद ले तो उसकी चार-छ आने रोज की बचत हो सकती है, और उसकी टूटी हुई साबुनदानी भी उसके पास ज़रूर होनी चाहिए।

क्राफर्ड मार्केट में एक चक्कर लगाकर वह बोरीबदर की तरफ चल दिया। बोरीबंदर के ट्राम-जंक्शन पर आकर वह काफी देर ट्राम की प्रतीक्षा में खड़े लोगों को देखता रहा। उसे एक व्यक्ति के हाथ में बंधा हुआ घड़ी का जालीदार फीता बहुत पसन्द आया। एक लड़की सफेद डोरेदार रूमाल में नाक साफ कर रही थी। राय ने हाथ पतलून की जेब मे डालकर अपनी उंगलियो को मसला। उसे मालूम हुआ कि इंसान के पास एक रूमाल का होना भी बहुत ज़रूरी है।

एक ट्राम फ्लोरा फाउण्टेन की तरफ से आई और आधे से अधिक लोगों को लेकर चली गई। राय ट्राम-स्टैंड से हटकर फ्लोरा फाउण्टेन की तरफ चल पड़ा। हार्नबी रोड से गुज़रते हुए एक दुकान पर उसे बहुत भीड़ दिखाई दी तो वह अनजाने ही उस भीड में सम्मिलित हो गया। अन्दर पहुंचकर उसने देखा कि दुकान तो कपड़े की है, पर

अधिकांश लोग बरसातियां खरीद रहे हैं। चारो तरफ तरह-तरह की बरसातियों के ढेर लगे थे। सेल्ज़मैन बता रहा था कि गबार्डिन की बरसाती का दाम तीस रुपया है, रबड़ की बरसाती का दाम पन्द्रह रुपया है और प्लास्टिक की बरसातियां दस-दस रुपये मे है।

बरसातियों को देखकर राय को ध्यान आया कि आते हुए रास्ते मे उस पर हल्की-हल्की बूंदें पड रही थी। दो-तीन दिन पहले एक अच्छी बारिश हो चुकी थी। उसे याद आया कि पिछले साल बारिश में कही आने जाने मे उसे कितनी तकलीफ होती रही है। कभी उसने एक छाता खरीदा था जो खरीदने के पन्द्रह दिन बाद ही गुम हो गया था। महीना-बीस दिन की बात हो तो आदमी किसी तरह चला भी ले, पर बारिश के पूरे चार महीने बिना बरसाती के निकलना लगभग असम्भव ही था। उसने सोचा कि अगर वह जूते की बजाय आठ-दस रुपये की चप्पल ले ले और कमीज़-पतलून के लिए भी कोई कपडा आठ-दस रुपये का मिल जाए तो दस रुपये का बरसाती कोट लिया जा सकता था। उसे प्लास्टिक की बरसाती को हाथ मे मसला और कंधे पर रखकर देखा और उसे रखकर सेल्ज़मैन से कमीजों का कपडा दिखाने के लिए कहा।

"कैसा कपड़ा चाहिए ?" सेल्ज़मैन ने पूछा।

"कैसा भी हो, "कहते हुए राय ने चेष्टापूर्वक अपने दांतों को होंठों से ढाप लिया।

"सफेद पापलीन दिखाऊं ?"

राय ने सिर हिला दिया। सेल्ज़मैन ने बढ़िया सफेद पापलीन का थान उसके सामने खोल दिया। राय ने उस कपड़े का वज़न हाथ पर महसूस करते हुए उसका भाव पूछा।

"चार रुपया।"

"चार रुपया गज़ !" राय के मुह से अनायास निकल गया। कह चुकने के अगले क्षण उसे ध्यान आया कि उसके आश्चर्य की ध्वनि कुछ और भी व्यजित कर गई है।

सेल्ज़मैन ने गहरी नज़र से उसकी ओर देखा। उसकी आंखों से मिलते ही राय की आंखें दूसरी ओर घूम गई। सेल्ज़मैन के माथे पर बल पड़ गए और उसके दात आपस मे मिल गए। राय की कमीज के फटे हुए कॉलरो पर आंख स्थिर किए हुए उसने होंठ चबाकर कहा, "जी हां, चार रुपया गज।"

राय ने चुपचाप सिर हिलाया। सेल्ज़मैन अब सीधी आंखों से उसकी तरफ देख रहा था। राय कपड़े के थान के पास से हटकर फिर प्लास्टिक की बरसाती देखने लगा। बरसाती को छोडकर उसने एक उड़ती हुई नज़र ऊपर के खानों में रखे छीट के थानों पर डाली और जैसे कुछ विचार करता हुआ बाहर की तरफ चल पड़ा। चलते-चलते उसने लक्षित किया कि सेल्ज़मैन थान लपेटता हुआ उसी की तरफ देखे जा रहा था। उसने दुकान से उतरते हुए तीनों नोट जेब मे निकाल लिए और जैसे कोई कागज ढूढना हो, इस तरह जेब मे टटोलकर उन्हें फिर वापस जेब मे रख लिया उसके बाद फिर सेल्ज़मैन से नज़र मिलाकर वह आगे चल पड़ा।

बहुत हल्की-हल्की बूंदें अब भी पड़ रही थी। अंधेरा हो जाने से चारो तरफ सड़कों और दुकानों की बत्तियां जगमगाने लगी थी। राय फ्लोरा फाउण्टेन से आगे निकलकर दायें हाथ को मुड गया। रास्ते में दो-एक जगह रुककर उसने मोज़े का जोडा, मफलर, बिस्कुट का डब्बा, फाउण्टेन पेन और सिगरेट-केस जैसी कई छोटी-मोटी चीज़ों के भाव पूछे, परन्तु यह दिक्कत हर जगह बनी रही कि जहां दाम ठीक थे वहां चीज़ अच्छी नही थी और जहां चीज़ मनपसन्द थी, वहां दाम जरूरत से ज्यादा थे। जिस समय

वह उस बड़े रेस्तरां के सामने पहुंचा जिसके अन्दर से रंगीन कुर्सियां प्रायः उसे निमन्त्रण देती प्रतीत हुआ करती थीं, तो वह चलते-चलते और सोचते-सोचते काफी थक गया था। बहुत दिनों से उसकी उस रेस्तरां में बैठकर चाय पीने की इच्छा थी। गले के बटन के पास से कमीज़ को ठीक करता हुआ वह रेस्तरां के अन्दर चला गया।

रेस्तरां में उस समय काफी भीड़ थी। एक बैरा आकर उसे एक खाली मेज़ के पास ले गया। राय हरे रंग की बेंत की कुर्सी पर बैठकर वहां के वातावरण को चकाचौंध नज़रों से देखने लगा। एक तरफ आर्केस्ट्रा बज रहा था और दो-एक जोड़े नाच रहे थे। आसपास बहुत-से लोग शीशे के गिलासों में बियर या ह्विस्की लिए बैठे थे। काली और सफेद वर्दी वाले बैरे व्यवस्थापूर्वक इधर-उधर आ-जा रहे थे। उसके बैरे ने दूसरी जगह से मेन्यू उठाकर उसके सामने ला रखा। राय मेन्यू देखने लगा—उसकी आंखें पहले दाईं ओर छपी कीमतों पर पड़ती, फिर बाईं ओर छपे नामों पर। बैरा आर्डर लेने के लिए ज़रा झुक गया।

"अभी ठहरो," राय ने मेन्यू पर नज़र गड़ाते हुए कहा और चेष्टापूर्वक होंठ बन्द करके दांतों को छिपा लिया। बैरा चला गया।

मेन्यू को एक सिरे से दूसरे सिरे तक देखकर जब राय ने आंख उठाई तो एक एंग्लो-इण्डियन लड़की बाहर से अन्दर आ रही थी। राय की आंखें उसके शरीर पर स्थिर हो रहीं। उसने बिना बांह का ब्लाउज पहन रखा, जिनसे उसका गोरा मांस दूर तक दिखाई दे रहा था। वह उड़ती हुई नज़र चारों तरफ डालकर सीधी उसी की मेज़ के पास आ गई तो राय को कुछ आश्चर्य हुआ। जब उसने मुलायम स्वर में उससे पूछा, "मैं यहां बैठ सकती हूं?" तो उसने एक बार हड़बड़ाकर इधर उधर देखा और यह लक्षित करके कि आस-पास कहीं जगह खाली नहीं है, कुछ नम्रता, कुछ अभिलाषा और कुछ घबराहट के साथ कहा, "बैठिए।"

वह धन्यवाद देकर पास की कुर्सी पर बैठ गई। राय को उसका बैठने, पर्स खोलने और पर्स में से सिगरेट-केस निकालने का ढंग बहुत आकर्षक लगा। उसकी लंबी पतली उंगलियां बहुत ही सुन्दर थीं।

लड़की ने अपना सिगरेट-केस खोला और एक सिगरेट अपने मुंह में लगाकर सिगरेट-केस राय की ओर बढ़ाते हुए कहा, "सिगरेट लीजिए।"

राय ने धन्यवाद देकर सिगरेट ले लिया। अभ्यासवश उसका हाथ दियासलाई की डिबिया निकालने के लिए पतलून की जेब में चला गया, पर तब तक लड़की ने अपने सिगरेट सुलगाकर लाइटर उसकी तरफ बढ़ा दिया।

राय की समझ में नहीं आ रहा था कि उस दयामयी से किस तरह बात करनी चाहिए। बात करने को तो खैर कुछ नहीं था, कुछ भी बात की जा सकती थी, परन्तु बात को शुद्ध अंग्रेज़ी में कह पाना बहुत बड़ी समस्या थी। वह व्यस्त रहने के लिए लगातार सिगरेट के कश खींचता रहा। कुछ देर बाद लड़की ने आंख ज़रा कुंचित करके मुंह से धुआं निकालते हुए पूछा, "इस तम्बाकू की गंध आपको कैसी लगती है?"

"बहुत अच्छी गंध है," यह वाक्य अंग्रेज़ी में इतनी आसानी से बन गया कि राय को स्वयं अपनी योग्यता पर आश्चर्य हुआ।

"यह फ्रांसीसी तंबाकू है," लड़की सिगरेट की राख झाड़ती हुई बोली, "मेरा एक मित्र पेरिस से ये सिगरेट लाया था।"

"बहुत अच्छी गंध है," राय ने फिर कहा और आंखों में प्रशंसात्मक भाव लाकर सिर हिलाया। होंठों को ज़रा गोल करके उसने चेष्टा की कि उसके मुंह से भी धुआं

उसी तरह निकले जैसे उस रूपमी के मुंह से निकलता है।

"आप नौकरी करते हैं?" लड़की ने पूछा।

"नहीं, बिजनेस करता हूं," यह राय ने इसलिए कह दिया कि अंग्रेजी में यह उससे आसानी से कहा गया।

"किस चीज का बिजनेस?"

"चीड़-फाड़ के औज़ारों का।"

"उसमें तो काफी नफा होता होगा।"

राय ने कहना चाहा कि हां गुजारे लायक कुछ हो ही जाता है, पर जल्दी में वह इसका ठीक अनुवाद नही सोच पाया, इसलिए उसने कह दिया, "हां, काफी हो जाता है।"

दो क्षण चुप्पी के बाद राय ने अपनी ओर से प्रश्न किया, "मैं आपका नाम जान सकता हूं?"

"जेनी डि'सूजा। और आपका नाम?"

"राय।"

"सिर्फ राय?"

"नही, दामोदर दास चिंतामणि राय।"

"डामोडर डास चिंटामोनी राय?" जेनी ने दोहराया। राय को इस रूप में अपने नाम का उच्चारण बहुत अच्छा लगा और उसके होठ फैलने को हुए, पर दांतों का ध्यान आ जाने मे वह उन्हें संकुचित किए रहा।

"आप भी कहीं काम करती हैं?" उसने दूसरा प्रश्न पूछा।

जेनी उसे बतलाने लगी कि वह एक फर्म में असिस्टेंट के रूप में काम करती है। काम उसके मन का नहीं है, फिर भी पैसे की वजह से उसे करना पड़ता है। शाम को कुछ देर वह सैल्वेशन आर्मी का काम करती है। उसके बाद थकान दूर करने के लिए किसी रेस्तरां मे चली आती है। वहां कभी कोई साथी मिल जाता है तो शाम अच्छी बीत जाती है।

राय की आंखें उसके शरीर की गोलाइयों पर घूम रही थीं। चर्च गेट, रीगल के फुटपाथ और काला घोडा के चौराहे पर ऐसी युवतियों को उसने अनेक बार देखा था। उनके पास से गुजरते हुए शरीर की दबी हुई भूख जैसे अंग-अंग मे लहरा जाती थी। परन्तु कभी उसके पास इतने पैसे नही हुए थे कि वह उस भूख को शान्त कर सकता। आज जिन्दगी मे पहला अवसर था जब कि एक लड़की उसके बगल मे बैठी थी, और बैठी ही नही थी, उसकी आखें उससे प्रस्ताव कर रही थी और उसकी जेब में दस-दस के तीन नोट थे। जिनकी सामर्थ्य से वह उसे पा सकता था···

जेनी की गोरी पिंडलियों से हटाकर उसकी आखें पल-भर उसके हरे रंग के सैंडलो पर टिकी रहीं और वहां से उठकर सहसा अपने पांव में पड़े जूते से टकरा गईं, जो होटल के चिकने फर्श पर मटमैले दाग-सा लगता था। जूते के पंजे बीच से बल खाकर थोड़ा-थोड़ा ऊपर को उठ आए थे और मैल से भरी एड़ियां कोनो से तीन चौथाई घिस चुकी थी। पैरो के पास से ही पतलून के फुंदने निकल रहे थे, जिन्हें काटने के लिए ही ही उसने कैंची खरीदने की बात सोची थी। राय ने सिगरेट का टुकडा एश-ट्रे में डालकर मसल दिया और होंठो को जबान फेरकर गीला किया।

बैरा फिर उसके पास जाकर थोड़ा झुक गया। उसकी आंखें जेनी की आंखों से मिली।

"मेरे लिए जिन के साथ जिंजर," जेनी ने कोमल स्वर में कहा।

"इनके लिए जिन के साथ जिंजर," राय ने दोहराया।

और ?" बैरा उसी तरह झुका रहा।

"और अभी ठहर जाओ···" और वह फिर झुककर मेन्यू देखने लगा। बैरा चल गया।

जेनी ने दूसरा सिगरेट सुलगाकर सिगरेट-केस उसकी ओर बढ़ाया तो उसने धन्यवाद देकर मना कर दिया। जेनी के मुह से हल्का नीला धुआं बहता हुआ-सा निकलता और कुछ देर हवा मे लचककर विलीन हो जाता। राय के हाथ के पसीने से मेज़ का शीशा कुछ गदला हो गया था। उसने हथेली के कोने से उसे साफ किया और हटा लिया। बैरा जिन और जिंजर लाकर जेनी के सामने रख गया। जेनी छोटे-छोटे घूंट भरने लगी।

आर्केस्ट्रा पर नाच की धुन बजनी आरम्भ हुई तो जेनी ने फिर उसकी ओर देखा और पूछा, "आप नाचना पसन्द करेंगे ?"

"मैं नाचना नहीं जानता," राय ने एक हाथ की हथेली की उंगलियों को दूसरे हाथ से मसलते हुए उत्तर दिया उसकी आंखें झुककर फिर जूते पर जा टिकीं। आस-पास बहुत-से लोग नाचने के लिए उठ रहे थे। पास की एक टेबल से एक नवयुवक ने जेनी के पास आकर उससे नाचने का प्रस्ताव किया। जेनी गिलास उसी तरह छोड़कर उठ खड़ी हुई और उसके साथ नाचने लगी। दूर से उसके शरीर की लचक राय को और भी आकर्षक लगी। नाचती हुई एक बार उसकी तरफ देखकर मुसकराई तो राय के मस्तिष्क [illegible] निकालकर देखकर और दूसरी जे [illegible] उसने ऊपर छत के पंखे को देखा [illegible] उसका मन हुआ कि बैरे को बुलाकर उससे पंखा तेज़ करने को कहे, पर बैरे का ध्यान आते ही उसे मेन्यू का ध्यान हो आया। सामने जेनी का जिन का गिलास रखा था जिसमें से दो-चार घूंट ही भरे गए थे। लोगों के नाचने के लिए उठ जाने से आस-पास आधी से अधिक कुर्सियां खाली हो गई थीं। सामने दरवाज़े की जाली में से बाहर फुटपाथ की हल्की-हल्की झलक दिखाई दे रही थी। मेज़ का शीशा उसकी बांह के पसीने से फिर गदला हो गया था। आर्केस्ट्रा की धुन तेज़ हो गई थी, लेकिन छत पर पंखा बहुत धीमे-धीमे चल रहा था। बाईं ओर लगी घड़ी ने जल्दी-जल्दी आठ बजा दिए। राय सहसा जैसे चौंककर उठ खड़ा हुआ और दरवाज़े की ओर चल दिया।

जालीदार दरवाज़े से निकलकर जब वह फुटपाथ पर पहुंचा तो यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हल्की-हल्की बूंदें अब भी पड़ रही हैं। फुटपाथ गीला होकर और भी चिकना हो गया था। उसने पीछे की ओर देखा। जालीदार दरवाज़ा बंद था। अंदर पड़ी रंगीन कुर्सियों पर एक नज़र डालकर वह वहां से चल पड़ा। फ्लोरा फाउण्टेन के पास से ट्राम की पटरी पार करते हुए उसका पांव फिसल गया और बहुत बड़ी मुश्किल से गिरने से बचा। परन्तु फिसलने से दायें पैर के जूते का मुंह आगे से खुल गया और वह बोलने लगा—तपत् तपत् तपत्···

राय एक-एक करके उन सब दुकानों के पास से गुज़र गया जिनमें आते हुए वह एक दूसरी चीज़ का भाव पूछने के लिए रुका था। जूते की दुकान के बाहर शो-केस में रखे सफेद-ब्राउन जूते के पास से तो वह जैसे आंख चुराकर आगे निकला। किन्तु प्रिंसेस स्ट्रीट के मोड़ पर पहुंच वह भौंचक-सा होकर पटरियों और ट्रामों को देखने लगा।

सामने थोड़ी दूरी पर वह इमारत थी जिसकी चौथी मंजिल पर उसका कमरा था। उससे पहले बाईं ओर वह ढाबा था जहा वह रोटी खाया करता था। उसने मन ही मन हिसाब किया कि ढाबे वाले के उसकी ओर पुराने हिसाब मे तेईस-चौबीस रुपये के लगभग निकलते हैं। ढाबे के पास ही पनवाडी की दुकान थी जिसके नौ रुपये में से इस बार कुल पांच रुपये ही चुकाए गये थे। इसके अतिरिक्त कुछ पैसे बिसाती के रहते थे। और पंद्रह रुपये नकद उधार के थे, जो उसने चार महीने पहले तुलुजा से लिए थे। तुलुजा पिछले सप्ताह ही उससे अपने पैसों के लिए तकाजा कर रहा था।

राय के कदम ढाबे की ओर बढ गए। वहां से खाना खाकर और पान वाले से कैंची की डिबिया लेकर वह अपने कमरे मे आ गया। कमरे में आकर उसने मेज और कुर्सियो को कोने की तरफ हटा दिया और छज्जे से लगकर गद्दा फर्श पर बिछा दिया। तीनों नोट उसने जेब से निकालकर तकिये के नीचे रख दिए और जूता उतारकर गद्दे पर लेट गया। हवा बंद हो गई थी और कमरे मे बहुत उमस हो रही थी। उसने उठकर बत्ती बंदकर दी तो भी सामने के घर की खिड़की से रोशनी उसके कमरे मे आती रही। रोशनी उमस की और बढ़ा रही थी, जिससे उसकी तबीयत बेचैन हो रही थी। सामने की आलमारी मे चीर-फाड के औज़ार चमक रहे थे। उधर कोने मैं मैले कपड़े गोल किए थे जो सब के सब जर्जर हालत मे थे। कमरे मे उन कपड़ों की वजह से, या वैसे ही एक गन्ध-सी बस गई थी। और सामने फर्श पर उसका फटा हुआ जूता रखा था, जिसकी पिछली सीवनें पहले से ज्यादा उधडी हुई मालूम होती थी।

राय कई क्षण जूते की घिसी हुई एडियो और उघडी हुई सीवनो को देखता रहा। फिर उसने आखें मूद ली और वे सब चीजें एक-एक करके उसके सामने आने लगी जिन्हें वह थोड़ी देर पहले बहुत पास से देखकर आया। सफेद-ब्राउन जूता, बरसाती कोट, मोजा, सिगरेट-केस, रगीन कुर्सियां और···और जेनी डि'सूजा, जिसकी उगलियां बहुत पतली थी और जिसके होंठो में से निकलता हुआ नीला धुआं बहुत खूबसूरत मालूम होता था···।

उसने आख खोली तो वे उधड़ी हुई सीवनें और घिसी हुई एडियां ही सामने थी। उसने करवट बदलकर जूते की ओर पीठ कर ली और हाथ तकिये के नीचे नोटो तक पहुंचाकर आंख धीरे-धीरे फिर मूद ली और सब चीजो के बारे में नये सिरे से सोचने लगा···।

हक हलाल

पिछले सालो की तरह इस साल भी हमने कोठी की अखबार वाले पंडित को दे दी है। सितम्बर का आरम्भ होने से घास खूब लम्बी उग रही है और पंडित की पत्नी हर रोज आकर एक गट्ठर घास काटकर ले जाती है।

इन दिनों घास कटवा देना हमारे लिए जरूरी हो जाता है। सड़क से जो रास्ता कोठी मे उतरता है, उसके दोनों तरफ की घास अगर कटवाई न जाए, तो पूरा रास्ता घास से ढक जाता है। बीच मे कई तरह के फूल खिल आते हैं। विभाजन से पहले यह कोठी एक मुसलमान सौदागर की थी। सुना है वे बहुत शौकीन-मिजाज आदमी थे। 'उन्होने कोठी के लिए गलीचे चुनने में जितनी मेहनत की थी, उससे कही ज्यादा मेहनत

यहां देसी और विलायती फूलों की कलमें लगाने में की थी। विभाजन के समय कोठी के गलीचे तो लूट लिए गए, मगर फूल केवल पैरों के नीचे रौंदे ही जा सके। कोठी का बूढ़ा माली, जो मुसलमान नहीं था, विभाजन के बाद भी जीवित रहा और मालिक के दो कुत्तों के साथ नीचे के क्वार्टर में रहता रहा चाहे अब उसे वेतन नहीं मिलता था, फिर भी पहले के अभ्यास के अनुसार वह पौधों को संवारता रहता था और लॉन की घास को ठीक करता रहता था। कभी-कभी वह गुलदस्ते बनाकर भी कमरों में रख जाया करता था।

और एक दिन बिना किसी भूमिका के माली मर गया। उसके मरने के साथ ही दोनों कुत्ते आवारा हो गए। मैं पिछले अढ़ाई साल से कोठी के एक हिस्से में रह रहा हूं। देखता हूं कि हर साल माली के संवारे हुए फूलों का विन्यास अब बिगड़ता जा रहा है। ब्लूबेल गुलाब के साथ उलझ जाते हैं, और डेलिया की सुर्ख पत्तियां पत्थर की दीवार में से सिर निकाल लेती हैं।

दो साल पहले सितम्बर महीने की ही बात है। शाम को लौटकर घर आया, तो देखा कि एक पहाड़ी युवती रास्ते की घास काट-काटकर एक तरफ ढेर में फेंक रही है। उसकी उम्र अठारह से पचीस के बीच कुछ भी हो सकती थी। शरीर की रेखाओं को देखकर उसे केवल युवा कहा जा सकता था। उसने अपनी कमीज़ कुहनियों से और सलवार पिंडलियों से ऊपर तक उठा रखी थी। गोरे मास के उन स्वस्थ युवा पिंडों में निर्माण का कुछ ऐसा कौशल था कि एक क्षण के लिए तो कोई भी अपने को भूला रह जाता। सिर पर उसने अपने रंगीन दोपट्टे को पटके की तरह बांध रखा था। उसे पास से देखकर मुझे कुछ वैसा ही रोमांच हुआ जैसा भरी हुई नदी के तट से उसके मन्थर प्रवाह को देखकर होता है।

घास के साथ-साथ वह उलझे फूलों को भी काटकर घास के ढेर में फेंक रही थी। मेरे पास पहुंचने पर उसने एक उपेक्षा-भरी नज़र मुझ पर डाली और फिर डेलिया का एक गुच्छा काटकर घास के ढेर पर फेंक दिया। डेलिया की पत्तियां घास पर इधर उधर छिटक गईं।

"इन फूलों को क्यों काट रही हो?" मैंने पास रुककर उससे पूछा।

"पंडित ने कहा था कि आपने कहा है।" बात कहते हुए उसने चेहरे का भाव बदला, परन्तु उसकी आंखों के भाव में अन्तर नहीं आया।

"मैंने उससे कहा है?"

"हां, उसने कहा था कि आपने कहा है।"

"तुम पण्डित की···?"

"मैं उसके घर हूं," कहते हुए अचानक उसके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट आ गई। परन्तु अगले ही क्षण वह मुस्कराहट गम्भीर रेखाओं में बदल गई।

"हो सकता है गुलेरी साहब ने उससे कहा हो," कहकर मैं नीचे उतरने लगा।

"हां, उन्होंने ही कहा होगा," उसने पीछे से कहा और फिर अपने काम में व्यस्त हो गई।

गुलेरी साहब कोठी के दूसरे हिस्से में रहते हैं। वे गणित के अध्यापक हैं। उनके शरीर के साथ उनके जगह-जगह से उधड़े हुए सूट और सूट के साथ जगह-जगह से फटे हुए जूते का सामंजस्य देखकर अनायास याद हो आता है कि "ए इज़ ईक्वल टु बी, एण्ड बी इज़ ईक्वल टु सी, देयरफोर ए इज़ ईक्वल टु सी।" गुलेरी साहब स्वभाव से उपयोगितावादी हैं। वे हर चीज़ को इसी नज़र से देखते हैं कि उनके लिए वह कहां

तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उन्हे कोठी में उतने ही फूलों का उगाना पसंद है जितने हर रोज फूलदानो मे लगाए जा सकते है।

पंडित की पत्नी अब प्रायः हर रोज कोठी मे घास काटती दिखाई दे जाती। वह उसी तरह पटका बाधे और कमीज़ की बाहें ऊपर चढ़ाए अपना काम किया करती। कभी वह साथ खुले स्वर में आई पहाड़ी गीत गुनगुनाया करती। एक बार मैंने उसे सामने की पहाडी से उतरकर आते देखा। वह जिस तरह कूदती और फिरकती हुई आ रही थी, उससे उसके अग-अग मे बिजलियां-सी कौंधती प्रतीत होती थी। पहाडी घास की पीली हरियाली और उगे हुए डंठलों की हल्की लाली भी उस समय मुझे पृष्ठभूमि का उपयुक्त सौन्दर्य लिए प्रतीत हुई।

उसी समय मैंने पडित को भी दूसरी तरफ से आते देखा। मुझसे दो-तीन फुट के फासले पर आकर वह जैसे चौंककर मुस्कराया और फिर सलाम करके आगे बढ़ गया। चश्मा लगा रहने पर भी वह शायद दूर से व्यक्ति को नही पहचान पाता था। कुछ आगे जाकर उसने उसी तरह चौंककर अपनी पत्नी को देखा और अखबारो का बडल अपनी ढीली बाह मे सभाले हुए उससे बात करने लगा।

मैं उम समय पडित की उम्र के बारे में अनुमान लगाने लगा। क्षण-भर के लिए मुझे लगा कि उसकी उम्र पैंतीस-चालीस से अधिक नही है। गालो की झुर्रियो, निकले हुए घुटनों और मरी-मरी चाल के बावजूद उसके चेहरे मे कुछ ऐसा था जिससे यह आभास होता था। परन्तु फिर मैंने टूटे हुए चश्मे के पीछे उसकी आंखो को देखा, और मुझे लगा कि वर्षों को गिनती करने का कोई अर्थ नहीं, उसकी निश्चित उम्र बुढापा ही है।

कई महीने बीत गए। बरसात शुरू होने के दिन आ गए थे। हल्के-हल्के बादल घाटियों में भर रहे थे और आकाश मे फैल रहे थे। दोपहर से ही संध्या का आभास होने लगा था। हल्की-हल्की बूदा-बांदी भी चल रही थी। वातावरण मे वर्षा की ध्वनि एक सिहरन की तरह फैल रही थी। चीड़, देवदार, आलूचा और खुबानी, सब तरह के छोटे-बडे पेड रस की वर्षा मे सिहरते हुए खडे थे। वे नन्ही-नन्ही बूदें प्यास बुझानेवाली न होकर प्यास जगाने वाली ही थी। कभी-कभी घने झुरमुटों मे से हल्की-सी च्यो-च्यों की आवाज सुनाई दे जाती थी।

मैं चार बजे से पहले ही लौट आया था। मौसम को देखते हुए मन हो रहा था कि मेज़ पर टागें फैलाकर और कॉफी की प्याली सामने रखकर बैठा रहा जाए। स्टोव पर केतली रखकर मैं खिडकी के पास आ बैठा। बाहर नन्हे-नन्हे ओले पड़ रहे थे। कुछ ओले देवदार की छतरियो से टकराकर उछल जाते थे। ऊपर टीन की छत पर ओलो के गिरने की एकतार आवाज़ वातावरण मे एक रोमांचक संगीत भर रही थी।

केतली में पानी खौल गया, तो मैंने उठकर अपने लिए कॉफी की प्याली बना ली। प्याली मेज पर रखकर खिडकी के नीचे फर्श की तरफ देखा जहां पण्डित अखबार फेंक जाया करता था। अखबार नहीं था। वैसे तो रोज ही पडित अखबार देर से दे जाता था, मगर इतनी देर कभी नही हुई थी। मैं बैठकर कॉफी के घूंट भरने लगा। फिर दास्ताएव्स्की का उपन्यास 'ब्रदर्ज़ करेमैजॉफ' उठा लिया जिसके दो सौ के लगभग पन्ने पढने शेष थे।

कुछ देर बाद अंधेरा बढ जाने से टेबल लैम्प जला लिया। अदालत मे पब्लिक प्रॉसीक्यूटर द्वारा रूस की अनैतिकता पर दिया गया भाषण पढ रहा था, जब सहसा बाहर से पण्डित की आवाज़ सुनाई दी, "अखबार जी!" और खिड़की के रास्ते अख-

बार अन्दर आ गिरा।

"यह अखबार देने का वक्त है पण्डित ?" खिड़की से देखा कि पण्डित सिर पर एक बोरी ओढ़े हुए है, उसके कपड़े तीन-चौथाई भीग रहे हैं और उसके गीले बण्डल में कम से कम चालीस-पचास अखबार और हैं।

"आज तो जी कहीं भी अखबार नहीं दे पाया," पंडित ने कुछ दीनता के साथ कहा, "इधर की चार कोठियों के अखबार देकर यह पांचवां अखबार आपका देने आया हूं।'

मुझे लगा कि उसकी आवाज में वातावरण से कहीं ज्यादा नमी है।

"कोई खास बात थी क्या ?" मैंने पूछा।

"खास ही बात थी साहब," वह बोला, 'सवेरे से अब तक थाने की खाक छानकर आ रहा हूं।"

"क्यों, ऐसी क्या बात थी ?"

वह पल-भर जैसे असमंजस में चुप रहा। सर्दी से उसके दांत कटकटा रहे थे।

मैंने उससे कहा कि वह अन्दर आ जाए और चाय या कॉफी की एक प्याली पी ले।

वह अन्दर आ गया और अखबारों का बंडल फर्श पर रखकर उस पर बैठ गया। मैंने केतली फिर स्टोव पर रख दी। मेरा मन उस समय बंट गया था। मैं उपन्यास में पब्लिक प्रॉसीक्यूटर का भाषण भी पढ़ना चाहता था और पंडित की बात भी सुनना चाहता था। उपन्यास में अपनी पंक्ति ढूंढते हुए पंडित से पूछा, "हां, तो ऐसी क्या बात हो गई जो आज थाने में दिन बिताना पड़ा ?"

पण्डित ने अस्पष्ट स्वर में कुछ कहा जिसे मैं ठीक न सुन सका। मैंने पुस्तक से आंख उठाकर उसकी तरफ देखा। पहली बार बात न सुनी जाने पर उसे दोहराने में जो लहजा हो जाता है, उस लहजे में पण्डित ने कहा, "हांजी, मैंने कहा कि आज इस औरत ने पुलिसवालों के जूते भी सुधा दिए। यह काम करना भी तकदीर में लिखा था।"

"पर क्या बात हुई है ?"

"अब क्या बताऊं जी ?" वह बोला, "अपनी औरत की बात है, सो मुंह से कही भी नहीं जाती। जाने करम-जली के मन में क्या समा गया ! कल रात घर से भाग गई है।"

[illegible]

"यह पता चल जाता तो मैं उसे छोड़ता जी ?" वह बोला, "थाने में जाकर फरियाद करने की क्या जरूरत थी ? यही पता चल जाता तो मैं उसे बालों से घसीटकर घर न ले आता जी। आखिर वह मेरी ब्याहता औरत है।"

मैंने एक बार जरा तिरछे कोण से उसे देखा। उसका भाव उस समय ऐसा हो रहा था जैसे उसे सारे संसार से उस बात की शिकायत हो और खेद हो कि वह अभी तक इसका बदला क्यों नहीं ले सका।

"तुम्हारे ब्याह को कितने साल हो गए पण्डित ?" मैंने पूछा।

"यही दस-आठ साल समझ लीजिए," वह थोड़ा कुण्ठित होकर बोला।

"तब कितने साल के थे तुम ?"

इस सवाल से उसके चेहरे का रंग फीका पड़ गया। आवाज लम्बी करते हुए

उसने जरा रुक-रुककर उत्तर दिया, "यहीऽ जीऽऽ, समझ लीजिएऽ बस, जितने साल की उम्र में होता है ब्याह, वही उम्र थी। दो-चार साल शायद ज्यादा रही होगी। देखने मे तो मैं शुरू से ही ऐसा हूं, पता नही क्यों ? पर हड्डी मेरी बहुत मजबूत है।" और क्षण-भर रुककर वह बोला, "और जी, जब चार पैसे पास में हो जाए तभी तो होता है ब्याह ! हमारे यहां लड़की की कीमत लेते हैं। यह मैंने डेढ सौ रुपया देकर ब्याही थी।"

"डेढ़ सौ रुपया देकर ?" आश्चर्य के साथ मेरे मुह से निकला। मेरी बात का और ही मतलब लेते हुए पण्डित ने कहा, "इसकी बड़ी बहन सौ रुपये में मिल सकती थी जी ! पर यह ज़रा खूबसूरत थी। उम्र छोटी थी, पर मैंने सोचा कि इसकी कोई बात नही। मुझे यह थोडे ही पता था कि यह मेरे साथ इस तरह दगा करेगी ?"

पानी खौलने लगा था। मैंने उठकर दो प्यालियो मे कॉफी बनाई और चम्मच मे चीनी लेते हुए पण्डित से पूछा, "पण्डित, चीनी कम लेते हो या ज्यादा ?"

"कम जी !" पण्डित ने बिलकुल निर्लोभ व्यक्ति की तरह कहा। मैंने दो चम्मच चीनी मिलाकर प्याली उसे दे दी। पण्डित ने एक घूट भरा और गले से हल्का-सा खेदपूर्ण हसी का-सा स्वर निकाल कर बोला, "बहुत ही कम डाल दी जी !"

मैंने उसकी प्याली में एक चम्मच चीनी और मिला दी। पण्डित ने फिर एक घूट भरी और बोला, "कुछ-कुछ हो ही गई अब।"

मैंने चीनी की प्याली उसकी तरफ बढा दी। पण्डित ने एक चम्मच चीनी और मिला ली और फिर सन्तोष की 'हू' के साथ चाय के घूट भरने लगा। मैं अपनी प्याली लिए हुए अपनी जगह पर लौट आया।

"उसका बाप भी उसकी जान को रो रहा था," पंडित बोला।

"उसे पता चल गया कि उसकी लड़की घर से भाग गई है ?"

"हा जी। मैं उसके पास भी हो आया हू। मैंने उससे कहा कि तेरी लडकी मेरे घर से भाग गई है और तेरी रजामन्दी से भागी है—मैं तुझपर अढाई सौ रुपये का दावा करूगा। हां जी, डेढ सौ रुपया नकद दिया था और इतने दिन खिलाने-पिलाने के कम से कम भी लगाए तो सौ से कम क्या लगाएंगे ?"

"फिर उसने क्या कहा ?"

"गरीब आदमी है, बहुत मिन्नत करने लगा। मैंने भी सोचा कि इसे रुपये के लिए तंग करना ठीक नही। बेचारा देगा कहां से ? मैंने कहा कि यू कर कि जब तक वह लौटकर नही आती तब तक के लिए अपनी छोटी लडकी को मेरे यहा भेज दे। हां, कम से कम मेरे घर मे चूल्हा तो जलता रहे। मैं दावा नही करूंगा।"

"तो वह मान गया ?"

"अभी उसने हामी नही भरी, पर उम्मीद है मान जाएगा। नही तो रुपया कहा से देगा ?" और खाली प्याली फर्श पर रखकर मुह पोंछते हुए पण्डित ने कहा, "वैसे आदमी अच्छा है। नीयत का साफ है। दो आदमी समझाएंगे तो समझ जाएगा। यह बात उसके भी भले की है और मेरे भी। अदालत मे जाना कोई अच्छी बात थोड़े ही है !"

और उठकर अखबारो का बंडल संभालते हुए उसने कहा, "अब आगे देखिए क्या होता है !"

और हुआ यह कि कुछ दिनो मे पण्डित की पत्नी की जगह पण्डित की साली घास काटने आने लगी। उम्र कम होने पर भी वह देखने मे पण्डित की पत्नी की तरह सुन्दर नही थी। यू वह भी उसी तरह दोपट्टे को पटके की तरह बाधे हुए गीत गुन-

गुनाती हुई घास काटा करती। परन्तु उसकी आंखों मे न तो वैसी चंचलता थी और न ही संसार-भर के प्रति वैसी उपेक्षा का भाव। पडित की पत्नी के भाग जाने का हिस्सा धीरे-धीरे पुराना पडने लगा। दो, चार, छः महीने और इसी तरह पूरा साल निकल गया।

इतवार का दिन था। मैं खिड़की के पास बैठा कुछ पढने की चेष्टा कर रहा था। बाहर के एक पेड पर कुल्हाड़ी चलाने का शब्द सुनाई दे रहा था। गुलेरी साहब ने शायद अपने नौकर गुलाबसिंह को आदेश दिया था कि लॉन के उन वाले हिस्से मे जो छोटा-सा खूबानी का पेड है, उसे काट दिया जाए और उसकी लकडी जलाने के काम मे ले आई जाए क्योकि खूबानिया तो उसमे साल में सेर-भर ही उतरती थी जबकि उसकी लकडी से चार-छ: महीने चूल्हा जल सकता था। तो खूबानी का पेड कट रहा था। ठक्-ठक् की आवाज़ मेरे दिमाग मे बहुत अन्दर कही गूज पैदा कर रही थी।

मैं देवदारो मे भटकती हुई चिड़िया को देखने लगा। वह कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती और कभी उलझी हुई टहनियों मे गोल घूम जाती। सहसा पेड़ के कटकर ज़मीन पर गिरने का शब्द सुनाई दिया और साथ ही स्त्री-कण्ठ का यह शब्द, "गुलाबसिंह ऊपर की पतली टहनियां हमें तोड लेने दे।"

मैंने आवाज़ पहचान ली। वह आवाज़ पडित की पत्नी की थी। मैं उठकर खिडकी के पास चला गया। लॉन मे गिरे हुए पेड के पास पण्डित की पत्नी और साली दोनों खड़ी थी।

"तू इन टहनियो का क्या करेगी ?" गुलाबसिंह पूछ रहा था।

"टहनियां जला लेंगे और पत्तियां गाय को खिला देंगे।"

"तेरी मुन्नी सुना है बीमार थी। अब क्या हाल है ?" गुलाबसिंह ने पूछा।

"अब तो अच्छी है।"

"इसकी कौन-सी मुन्नी है ?" गुलेरी साहब ने अपने कमरे से बाहर निकलकर पूछा। यही सवाल मेरे मन मे भी उठा था। क्योंकि न जाने क्यों पण्डित की पत्नी के बच्चा हो[illegible] :

बोले, "ले लेने दे इसे दो-चार टहनिया। ऊपर-ऊपर से तोड़ ले पण्डितानी।" और पण्डितानी पर एक रसिकता-भरी नज़र डालकर वे वापस कमरे मे चले गए। पण्डित की पत्नी और साली मिलकर टहनियां तोडने लगी। गुलाबसिंह कुल्हाडी से पेड की मोटी डालें काटने लगा। बीच में एक बार उसने सिर उठाकर ऊपर सड़क की तरफ देखा और कहा, "लो पडित भी आ गया !"

पण्डित अखबारो का बंडल संभाले ऊपर की सडक से उतरकर आ रहा था। लॉन मे पहुंचकर वह कुछ देर अपनी पत्नी और साली के काम की जाच करता रहा। फिर अखबार देने मेरी खिड़की के पास आ गया। मैंने हाथ बढाकर अखबार ले लिया। पण्डित बाकी अखबारो का बांह मे संभालता हुआ पल-भर चुप रहा, फिर जरा खखारकर बोला, "जी, आ गई है।"

"अच्छा !" मैंने अखबार पर नज़र दौडाते हुए सरसरी तौर पर कहा।

पण्डित ने एक बार पीछे अपनी पत्नी और साली की तरफ देखा और फिर कमरे के अन्दर आ गया। मेरे बहुत पास आकर ऐसी आवाज़ में, जो उसके खयाल मे बहुत धीमी थी मगर दरअसल मे इतनी ऊची ज़रूर थी कि बाहर लॉन में सुनाई दे जाए,

बोला, "परसों थाने मे उन्होने मुझे शनाख्त के लिए बुलाया था। वे लोग इसे मंडी से पकड़कर लाए है। इसके यार को भी उन्होने गिरफ्तार कर लिया है। मैं तो जी, बिलकुल उम्मीद छोड बैठा था। इतने दिन हो गए थे। पर नही। सरकार के घर मे देर है, अंधेर नही। उन्होंने खोज-खबर छोड़ी नही। कहां शिमला, कहां मण्डी। पकड़कर ले ही आए।"

उसकी बात सुनते हुए मेरा ध्यान बार-बार बाहर की तरफ चला जाता था। पण्डित की पत्नी ने एक बार घृणा के साथ कमरे की तरफ देखा और फिर तोडी हुई टहनियो को समेटने लगी। अन्दर पण्डित कह रहा था, "कल जी, इसके बाप ने इसे खूब पीटा। पर ऐसी ढीठ औरत है कि चुपचाप मार खा गई, मुह से एक बात का जवाब नही दिया। वह तो मैं बीच मे पड गया, नही वह तो इतने गुस्से मे था कि इसकी चमड़ी उधेड़कर रख देता। मैंने उससे कहा कि अब मार-पीट करने से क्या फायदा है? जो मुह काला करना था, वह तो कर ही आई। आगे से अपनी निगरानी मे रखेंगे। क्या कहते हैं?"

पंडित की पत्नी और साली टहनियां उठाकर ऊपर सड़क की तरफ चल दी थी। मैं क्षण-भर पण्डित की आखों में देखता रहा। फिर मैंने पूछा, "तो अब तुम्हारी साली अपने बाप के घर लौट जाएगी?"

"वह अब कहां जाएगी जी?" पण्डित बोला, "मैंने आपसे कहा था, इसका बाप वहुत गरीब आदमी है। उसके पास इसे खिलाने के लिए एक पैसा भी नही है। उसको इसका सौ-सवा सौ चाहिए सो मैं ही उसे दे दूगा। इतने दिनो से घर मे रही है, सो अब छोडने को मन नही करता। आदमी को आदमी से मोह हो जाता है। और क्या पता कल को बड़ी फिर भाग जाए! ऐसी का कोई भरोसा थोड़े ही है!"

पण्डित की पत्नी और साली कोठी से निकलकर सड़क के मोड़ पर पहुच गई थीं। गुलाबसिंह कटी हुई डालों पर कुल्हाडी चला रहा था। गुलेरी साहब फिर बाहर निकलकर उसे आदेश दे रहे थे कि लकडिया खूब बारीक काटे जिससे जलाने मे आराम रहे।

"पण्डित, अखबार जरा जल्दी दे जाया करो," मैंने बात बदलकर कहा, "आजकल तुम बहुत देर कर देते हो। आज भी देखो दो बजने को है?"

"कल से जल्दी दे जाऊंगा जी!" पण्डित ने तत्परता के साथ कहा और अखबारों को संभालता हुआ बाहर की तरफ चल दिया। कुछ ही देर मे गुलेरी साहब के कमरे मे उसकी आवाज़ आने लगी। वहां भी वह उसी विषय मे बात कर रहा था।

पण्डित अब भी अखबार देर से लाता है। उसकी ज़िन्दगी उसी तरह चल रही है। वह पुराना कोट पहनता है जिसकी जेबो की जगह उधेड़े हुए धागे के निशान दिखाई देते हैं, और जिसका आगे का अकेला बटन अपनी जगह से आधा इंच नीचे लटकता रहता है। उसकी कमीज़ के बटन हमेशा की तरह खुले रहते हैं जिससे उसकी छाती की हड्डियां नीचे तक दिखाई देती हैं। हमेशा की तरह वह बाईं टांग पर दबाव देकर ठोड़ी को सहलाता हुआ रास्ते पर चला करता है। कभी वह अखबारो के बंडल पर बैठकर रिक्शा-स्टैंड के कुलियो के साथ तम्बाकू पीता है, तो कभी वह बंडल पगड़ी के नीचे रखकर पगडी पर सिर टिकाए किसी पेड के नीचे सोता रहता है। कभी अखबार रास्ते में पत्थर के नीचे रखे रहते हैं, और वह इधर-उधर झाड़ियों की पतली-पतली टहनियां चुन रहा होता है।

पण्डित की पत्नी भी प्राय: घास काटती दिखाई दे जाती है। अब उसके शरीर मे वह चमक नही रही और मांस का कसाव भी पहले से कम हो गया है, फिर भी जब वह चलती है, तो उसके अगो मे अब भी वे पहले की-सी बिजलियां कौंधती प्रतीत होती हैं। उसकी आखें पहले से लाल रहती हैं और वह चलती-चलती रुककर अकारण पत्थरो को ठोकरें लगाने लगती है।

पण्डित को लोग अक्सर उसकी पत्नी के लौट आने की मुबारकबाद देते हैं। पण्डित सलाम करके एक हल्की-सी हंसी हसता है और कहता है, "आपकी परवस्ती थी हुजूर, परमात्मा का इन्साफ था और मेरा हलाल का पैसा था। वरना, मैंने कोई उम्मीद थोडे ही रखी थी?"

और यह कहते हुए उसके चेहरे का भाव बहुत धार्मिक हो जाता है।

जानवर और जानवर

स्कूल की नई मेट्रन का नाम अनिता मुकर्जी था और उसकी आखें बहुत अच्छी थी। पर वह आंट सैली की जगह आई थी, इसलिए पहले दिन बैचलर्स डाइनिंग-रूम मे किसी ने उससे खुलकर बात नही की।

उसने जॉन से बात करने की कोशिश की, तो वह 'हूं-हां' मे उत्तर देकर टालता रहा। मणि नानावती को वह अपनी चायदानी में से चाय देने लगी, तो उसने हल्का-सा धन्यवाद देकर मना कर दिया। पीटर ने अपना चेहरा ऐसे गम्भीर बनाए रखा जैसे उसे बात करने की आदत ही न हो। किसी तरफ से लिफ्ट न मिलने पर वह भी चुप हो गई और जल्दी से खाना खाकर उठ गई।

"अब मेरी समझ मे आ रहा है कि पादरी ने सैली को क्यों निकाल दिया," वह चली गई, तो जॉन ने अपनी भूरी आखें पीटर के चेहरे पर स्थिर किए हुए कहा।

पीटर की आखें नानावती से मिल गईं। नानावती दूसरी तरफ देखने लगी।

वैसे उनमे से कोई नही जानता था कि आंट सैली को फादर फिशर ने क्यो निकाल दिया। उसके जाने के दिन से ही जॉन मुह ही मुह बडबडाकर अपना असन्तोष प्रकट करता रहता था। पीटर भी उसके साथ दबे-दबे कुढ लेता था।

"चलकर एक दिन सब लोग पादरी से बात क्यो नही करते?" एक बार हकीम ने तेज होकर कहा।

जॉन ने पीटर को आख मारी और वे दोनो चुप रहे। दूसरे दिन सुबह पादरी के सिर-दर्द की खबर पाकर हकीम उसकी मिजाजपुर्सी के लिए गया तो जॉन पीटर से बोला, "ए, देखा? पहुंच गया न उसके तलुवे सूघने? सन ऑव् ए गन! हमे उल्लू बनाता था।"

आंट सैली के चले जाने से बैचलर्स डाइनिंग-रूम का वातावरण बहुत रूखा-सा हो गया। आंट सैली के रहते वहा के वातावरण मे बहुत घरेलूपन-सा रहता था। सरदी मे तो खास तौर से आंटी के बीच आ बैठने से वह कमरा एक परिवार का भरा-पूरा घर-सा बन जाता था। वह अपनी कमर पर हाथ रखे बाहर से ही मजाक करती आती—

"पीटर के लिए आज मगज का शोरबा बना है, या वह मेरा ही मगज खाएगा?"

या—

"···हो हो हो ! मुझे नही पता था कि आज मणि इस तरह गजब ढा रही है। नही तो मैं भी ज़रा सज-संवरकर आतो।"

ऐसे मौके पर पाल उसके सफेद बालो पर बंधे लाल या नीले फीते की तरफ सकेत करके कहता, "आंटी, यह फीता बाधकर तो तुम बिलकुल दुलहिन जैसी लगती हो!"

"अच्छा, दुलहिन जैसी लगती हू ? तो कौन करेगा मुझसे शादी ?तुम करोगे !" और उसकी आंखें मिच जाती, होंठ फैल जाते और गले से छलछलाती हंसी का स्वर सुनाई देता।

एक बार पीटर ने कहा, "आटी, पाल कह रहा था कि वह आजकल में तुमसे ब्याह का प्रस्ताव करनेवाला है।"

आंटी ने चेहरा ज़रा तिरछा करके आखें पीटर के चेहरे पर स्थिर किए हुए उत्तर दिया, "तो मुझे और क्या चाहिए ? मुझे एकसाथ पति भी मिल जाएगा और बेटा भी।"

फिर वही हसी, जैसे बहते पानी के वेग मे छोटे-छोटे पत्थर फिसलते चले जाएं।

आंट सैली के चले जाने से अकेले लोगों का वह परिवार काफी उखड़ गया था। कुछ दिन पहले इसी तरह मीराशी चला गया था। उसके बाद पाल की छुट्टी कर दी गई थी। मीराशी तो खैर बिगड़ैल आदमी था, मगर पाल को बैचलर्स डाइनिंग-रूम के बैच-लर्स—जिनमे दो स्त्रिया भी सम्मिलित थी—बहुत चाहते थे। हालांकि जॉन को पाल का अंग्रेज़ी फिल्मों के बटलर की तरह अकड़कर चलना पसन्द नही था और उन दोनों मे प्रायः आपस में झड़प हो जाती थी, फिर भी उसकी पीठ पीछे वह उसकी तारीफ ही करता था। जिस दिन पाल गया, उस दिन जॉन खिड़की के पास बैठा सिर हिलाकर पीटर से कहता रहा, "अच्छा हुआ जो यह लड़का यहा से चला गया। अभी तो यह बाहर जाकर कुछ बन भी जाएगा, वरना यहा रहकर इसका क्या बनना था ? तुम भी जवान आदमी हो, तुम यहा किसलिए पड़े हो ?"

और पीटर घडी को चाबी देता हुआ चुपचाप दीवार की तरफ देखता रहा।

पाल और मीराशी के निकाले जाने की वजह का तो खैर सबको पता था। मीराशी का अपराध बिलकुल सीधा था। उसने फादर फिशर के माली को पीट दिया था। पाल का अपराध दूसरी तरह का था। उसने आवारा नस्ल का एक हिन्दुस्तानी कुत्ता पाल लिया था जिसे वह हर समय अपने साथ रखता था। हालाकि कुत्ते मे कोई खासियत नही थी—बहुत सादा-सी सूरत, फीका बादामी रंग और लम्बूतरा-सा उसका कद था—फिर भी क्योंकि पाल ने उसे पाल लिया था, इसलिए वह उसे बहुत लाड़ से रखता था। उसका नाम उसने 'बेबी' रख रखा था और कई बार उसे बगल मे लिए खाना खाने आ जाता था। जल्दी ही बेबी बैचलर्स डाइनिंग-रूम मे खाना खानेवाले सब लोगों का बेबी बन गया—एक मणि नानावती को छोडकर जो उसकी सूरत देखते ही घबरा जाती थी। घबराहट मे उसके चेहरे का रग सुर्ख हो जाता और उसका नाटा छरहरा शरीर काबू मे न रहता। एक बार बेबी उसके हाथ मे हड्डी देखकर उसके घुटने पर चढने की कोशिश करने लगा तो वह घबराकर कुरसी पर खड़ी हो गई और दोनों हाथ हवा में झटकती हुई चिल्लाने लगी, "ओई ओई हिश, गो अवे ! प्लीज पाल, टेक हिम अवे ! प्लीज़···!"

पाल पुलाव का चम्मच मुंह के पास रोककर धूर्तता के साथ मुस्कराया और बेबी

को डाटकर बोला, "चल इधर बेबी ! इस तरह खानदान को बदनाम करता है ?"

मगर बेबी को हड्डी का कुछ ऐसा शौक था कि वह डांट सुनकर भी नहीं हटा। वह नानावती की कुरसी पर चढ़कर उसके जिस्म के सहारे खड़ा होने की कोशिश करने लगा। इस जद्दोजहद मे नानावती कुरसी से गिरने ही जा रही थी कि पाल ने जल्दी से उठकर उसे बगल से पकड़कर नीचे उतार दिया। फिर उसने बेबी को दो चपत लगाई और उसे कान से खींचता हुआ अपनी सीट के पास ले आया। बेबी पाल की टांगों के आसपास मंडराने लगा।

"मेरा सारा ब्लाउज़ खराब कर दिया !" नानावती हांफती हुई रूमाल से अपना ब्लाउज़ साफ करने लगी। उसके उभार पर एकाध जगह बेबी का मुंह छू गया था।

बेबी अब पाल के घुटने से अपनी नाक रगड़ रहा था। पाल ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "नॉटी चाइल्ड ! ऐसी भी क्या शरारत कि इंसान एटिकेट तक भूल जाए !"

जॉन पीटर की तरफ देखकर मुस्कराया। नानावती भड़क उठी, "देखो पाल, मुझे इस तरह का मज़ाक कतई पसन्द नहीं।" गुस्से से उसका पूरा शरीर तमतमा गया था। अगर वह और शब्द बोलती तो साथ रो देती।

मगर उसे गम्भीर देखकर भी पाल गम्भीर नहीं हुआ। बोला, "मुझे खुद ऐसा मज़ाक पसन्द नहीं, मादाम ! मैं इसकी हरकत के लिए बहुत शर्मिन्दा हूं !" और उसके निचले होंठ पर हल्की-सी मुस्कराहट आ गई।

नानावती क्षण-भर रुंधे हुए आवेश के साथ पाल को देखती रही। फिर अपना नेपकिन मेज पर पटककर तेजी से कमरे से चली गई। उसके जाते ही जॉन ने अपनी भूरी आंखें फैलाकर सिर हिलाया और कहा, "आज तुम्हारे साथ कुछ न कुछ होकर रहेगा। वह अब सीधी उस शुतुरमुर्ग के पास शिकायत करने जाएगी···कुतिया !"

मगर नानावती ने कोई शिकायत नहीं की। बल्कि दूसरे दिन सुबह उसने पाल से अपने व्यवहार के लिए क्षमा माग ली। जॉन को अपनी भविष्यवाणी के गलत निकलने का खेद तो हुआ, पर इससे नानावती के प्रति उसका व्यवहार पहले से बदल गया। उसने उसकी अनुपस्थिति मे उसके लिए वेश्यावाचक शब्दों का प्रयोग बन्द कर दिया। यहां तक कि एक दिन वह एटकिन्सन के साथ इस सम्बन्ध में विचार करता रहा कि इतनी अच्छी और मेहनती लड़की को उसके पति ने घर से क्यों निकाल रखा है।

नानावती ने भी उसके बाद बेबी को देखते ही 'ओई ओई हिश्' करना बन्द कर दिया। गाहे-बगाहे वह उसे देखकर मुस्करा भी देती। एक बार तो उसने बेबी की पीठ पर हाथ भी फेर दिया, हालांकि ऐसा करते हुए वह सिर से पांव तक सिहर गई।

बैचलर्स डाईनिंग-रूम में पाल के ज़ोर-ज़ोर के कहकहे रात को दूर तक सुनाई देते। बेबी को लेकर नानावती से तरह-तरह के मज़ाक किए जाते। मज़ाक सुनकर जॉन की भूरी आंखों में चमक आ जाती और वह सिर हिलाता हुआ मुस्कराता रहता।

मगर एक दिन सुबह बैचलर्स डाइनिंग-रूम में सुना गया कि रात को फादर फिशर ने बेबी को गोली मार दी है।

जॉन अपनी चुंधियाई आंखों को मेज पर स्थिर किए चुपचाप आमलेट खाता रहा। नानावती का छुरी वाला हाथ ज़रा-ज़रा कांपने लगा। एक बार सहमी नज़र से जॉन और पीटर को देखकर वह अपनी नज़रें प्लेट पर गड़ाए रही। पीटर स्लाइस का टुकड़ा काटने मे इस तरह व्यस्त हो रहा जैसे बहुत महत्त्वपूर्ण काम कर रहा हो।

"पाल अभी नहीं आया, ए ?" जॉन ने किरपू से पूछा।

किरपू ने नमकदानी पीटर के पास से हटाकर जॉन के सामने रख दी।

"नहीं।"

"वह आज आएगा ? हि: !" जॉन ने आमलेट का बड़ा-सा टुकडा काटकर मुंह मे भर लिया।

"बेज़बान जानवर को इस तरह मारने से···मैं कहता हूं···मैं कहता हूं···," आमलेट जॉन के गले में अटक गया।

किरपू चटनी की बोतल रखने के बहाने जॉन के कान के पास फुसफुसाया, "पादरी आ रहा है !"

सबकी नज़रें प्लेटों पर जम गईं। पादरी लबादा पहने, बाइबल लिए, गिरजे की तरफ जा रहा था। वह खिड़की के पास से गुज़रा तो तीनों अपनी-अपनी कुरसी से आधा-आधा उठ गए।

"गुड मार्निंग, फादर !"

"गुड मार्निंग माई सन्ज़ !"

"आज अच्छा सुहाना दिन है !"

"परमात्मा का शुक्र करना चाहिए।"

पादरी खट्टी की बाड से आगे निकल गया, तो जॉन बोला, "यह अपने को पादरी कहता है ! सवेरे परमात्मा से ससार-भर का चरित्र सुधारने के लिए प्रार्थना करेगा और रात को···हरामज़ादा !"

नानावती सिहर गई।

"ऐसी गाली नहीं देनी चाहिए," वह दबे हुए और शंकित स्वर में बोली।

"तुम इसे गाली कहती हो ?" जॉन आवेश के साथ बोला, "मैं कहता हूं इसमे ज़रा भी गाली नहीं है। तुम्हें इसकी करतूतों का पता नहीं है ? यह पादरी है ?"

नानावती का चेहरा फीका पड गया। उसने शंकित नज़र से इधर-उधर देखा, पर चुप रही। जॉन के चौड़े माथे पर कई लकीरें खिच गई थी। वह बोतल से इस तरह चटनी उड़ेलने लगा, जैसे उसी पर अपना सारा गुस्सा निकाल लेना चाहता हो।

पीटर सारा समय खिड़की से बाहर देखता रहा।

डिंग-डांग ! डिंग-डांग ! गिरजे की घंटियां बजने लगी। नानावती जल्दी से नैपकिन से मुह पोंछकर उठ खड़ी हुई और और पल-भर दुविधा मे रहकर बाहर चली गई।

"चुहिया ! कितना डरती है, ए ?" जॉन बोला।

मिसेज़ मर्फी एटकिन्सन के साथ बात करती हुई खिड़की के पास से निकलकर चली गई। गिरजे की घटियां लगातार बज रही थी—डिंग-डांग ! डिंग-डांग ! डिंग-डांग !

जॉन जल्दी-जल्दी चाय के घूंट भरने लगा। जल्दी मे चाय की कुछ बूंदें उसके गाउन पर गिर गईं।

"गाश् !" वह प्याली रखकर रूमाल से गाउन साफ करने लगा।

"गिरजे नहीं चल रहे ?" पीटर ने उठते हुए पूछा।

जॉन ने जल्दी-जल्दी दो-तीन घूंट भरे और बाकी चाय छोडकर उठ खड़ा हुआ। उनके दरवाज़े से बाहर निकलते ही किरपू और ईसरसिंह मे बचे हुए मक्खन के लिए छीना-झपटी होने लगी, जिसमे एक प्याली गिरकर टूट गई। हकीम और बैरों को आते

देखकर ईसरसिंह जल्दी से पैंटी में चला गया और किरपू कपड़े से मेज़ साफ करने लगा।

हकीम कन्धे झुकाकर चलता हुआ वैरो को रात की घटना सुना रहा था। डाइनिंग-रूम के पास आकर उसका स्वर और धीमा हो गया—"यू सी, बेबी को डॉली के साथ देखते ही पादरी को एकदम गुस्सा आ गया और वह अन्दर जाकर अपनी राइफल निकाल लाया। एक ही फायर में उसने उसे चित कर दिया। डॉली कुछ देर बिटर-बिटर पादरी को देखती रही। फिर बाड़ के पीछे भाग गई। बाद में सुना है पादरी ने उसे गरम पानी से नहलवाया और डॉक्टर को बुलाकर उसे इंजेक्शन भी लगवाए···!"

"कहां पादरी की बिस्कुट और सैंडविच खाकर पली हुई कुतिया और कहां बेचारा बेबी!" वैरो मुस्कराया।

"मगर उस बेचारे को क्या पता था?"

वे दोनों हंस दिए।

"बेबी को मालूम होता कि यह कुतिया कैनेडा से आई है और इसकी कीमत तीन सौ रुपया है, तो शायद वह···।"

और वे दोनों फिर हंस दिए।

"यह तो था कि कल पादरी ने देख लिया, पर इससे पहले अगर···!"

"वैरो ने हकीम को आंख मारी। वह चुप कर गया। बाड़ के मोड़ के पास जॉन और पीटर खड़े थे। पीटर अपने जूते का फीता फिर से बांध रहा था।

"गुड मॉर्निंग, पीटर!"

"गुड मार्निंग, वैरो।"

"आज बहुत चुस्त लग रहे हो। बाल आज ही कटाए हैं?"

"नहीं, दो-तीन दिन हो गए।"

"बहुत अच्छे कटे हैं।"

"शुक्रिया!"

सहसा डिंग-डांग की आवाज़ रुक गई। वे सब तेज़ी से गिरजे के अन्दर चले गए।

पन्द्रहवां साम गाने के बाद प्रार्थना शुरू हुई। सब लोग घुटनों के बल होकर आंखों पर हाथ रखे पादरी के साथ-साथ बोलने लगे—

"···अवर फादर, हू आर्ट इन हैवन, हैलोड बी दाई नेम, दाई किंगडम कम, दाई विल बी डन, इन दिस वर्ल्ड एज़ इन हैवन···"

[illegible] कर कहा, "[illegible] लगी।

"···नाउ एण्ड फॉर एवर मोर, आमेन।"

गिरजे में उस दिन और उससे अगले दिन पाल की सीट खाली रही। इस बात को नोट हरएक ने किया, मगर किसी ने इस बारे में दूसरे से बात नहीं की। पाल ईसाई नहीं था, मगर फादर फिशर के आदेश के मुताबिक स्टाफ के हर आदमी का गिरजे में उपस्थित होना अनिवार्य था—जो ईसाई नहीं थे, उनका रोज़ आना और भी ज़रूरी था। पादरी गिरजे से निकलता हुआ उन लोगों की सीटों पर एक नज़र ज़रूर डाल लेता था। तीसरे दिन भी पाल अपनी सीट पर दिखाई नहीं दिया, तो पादरी गिरजे से निकलकर सीधा स्टाफ-रूम में पहुंच गया। वहां पाल एक कोने में मेज़ के पास खड़ा कोई मैगज़ीन देख रहा था। पादरी पास पहुंच गया, तो भी उसकी तनी हुई गरदन में खम नहीं

आया।

"गुड मार्निंग पादरी !" वह क्षण-भर के लिए आंख उठाकर फिर मैगज़ीन देखने लगा।

"तुम तीन दिन से गिरजे में नहीं आए," उत्तेजना में पादरी का हाथ पीठ के पीछे चला गया। वह बहुत कठिनाई से अपने स्वर को वश में रख पाया था।

"जी हां, मैं तीन दिन से नहीं आया," मैगज़ीन नीचे करके पाल ने गम्भीर नज़र से पादरी की तरफ देख लिया।

"मैं वजह जान सकता हूं ?"

"वजह कुछ भी नहीं है।"

पादरी ने उत्तेजना के मारे बाइबल को दोनों हाथों में भींच लिया और त्योरी को डालकर कहा, "तुम जानते हो कि जो अच्छा-भला होकर भी सुबह गिरजे में नहीं आता उसे यहां रहने का अधिकार नहीं है ?"

गुस्से के मारे पाल के जबड़ों के मांस में खिंचाव आ गया था। उसने मैगज़ीन मेज़ पर रखकर हाथ जेबों में डाल लिए और बिलकुल सीधा खड़ा हो गया। बड़ी खिड़की के पास जॉन नज़र झुकाए बैठा था और आठ-दस लोग नोटिस बोर्ड और चिट्ठियों वाले रैक के पास खड़े अपने को किसी न किसी तरह उदासीन ज़ाहिर करने की कोशिश कर रहे थे। उनमें से किसी ने पाल के साथ आंख नहीं मिलाई। पाल का गला ऐसे कांप गया जैसे वह कोई बहुत सख्त बात कहने जा रहा हो।

"पादरी, हम गिरजे में जो प्रार्थना करते हैं, उसका कोई मतलब भी होता है ?"

एक लकीर दूर तक खिंचती चली गई। पादरी का चेहरा गुस्से से स्याह हो गया।

"तुम्हारा कहने का मतलब है···" उसके दांत भिंच गए और वाक्य उससे पूरा नहीं हुआ। नोटिस बोर्ड के पास खड़े लोगों के चेहरे फक पड़ गए।

"मेरा मतलब है पादरी, कि रात को तो हम गरीब जानवरों को गोली मारते हैं, और सुबह गिरजे में उनकी रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं—इसका कुछ मतलब निकलता है ?"

पादरी पल-भर खून-भरी आंखों से पाल को देखता रहा। उसकी सांस तेज़ हो गई थी।

"मतलब निकलता है और वह यह कि हर जानवर एक-सा नहीं होता। जानवर और जानवर में फर्क होता है," उसने दांत भींचकर कहा और पास के दरवाज़े से बाहर चला गया—हालांकि उसके घर का रास्ता दूसरे दरवाज़े से था।

पन्द्रह मिनट बाद स्कूल का क्लर्क आकर पाल को चिट्ठी दे गया कि उसे उस दिन से नौकरी से बरखास्त कर दिया गया है। वह चौबीस घण्टे के अन्दर अपना क्वार्टर खाली करके चला जाए।

"यह पादरी नहीं, राक्षस है," जॉन मुंह में बड़बड़ाया।

पीटर को उस दिन शहर में काम निकल आया, इसलिए वह रात को देर से लौटा। हकीम और वैरो खेल के मैदानों की जांच में व्यस्त रहे। नानावती को हलका-सा बुखार हो आया। पाल को चलते वक्त सिर्फ जॉन ही अपने कमरे में मिला। वह अपनी खिड़की में रखे गमलों को ठीक कर रहा था।

"जा रहे हो ?" उसने पाल से पूछा।

"हां, तुमसे गुड बाई कहने आया हूं।"

जान गमलों को छोड़कर अपनी चारपाई पर जा बैठा।

"मैं जवान होता, तो मैं भी तुम्हारे साथ चला चलता," उसने कहा, "मगर मुझे यहा से निकलकर पता नही कब्र की राह भी मिलेगी या नही। मेरी हड्डियों मे दम-खम होता, तो तुम देखते · "

पाल ने मुस्कराकर उसका हाथ दबाया और उसके पास से चल दिया।

"विश यू बेस्ट आफ लक।"

"थैंक यू।"

पाल के चले जाने के बाद आंट सैली ने बैचलर्स डाइनिंग-रूम में आना बन्द कर दिया और कई दिन खाना अपने क्वार्टर मे ही मंगवाती रही। जॉन और पीटर भी अलग-अलग वक्त पर आते, जिससे बहुत कम उनमे मुलाकात हो पाती। नानावती अब पहले से भी सहमी हुई आती और जल्दी-जल्दी खाना खाकर उठ जाती। फादर फिशर ने उसे पाल वाला क्वार्टर दे दिया था। इसलिए वह अपने को अपराधिनी-सी महसूस करती थी। जॉन ने उसके बारे मे अपनी राय फिर बदल ली थी।

मगर धीरे-धीरे स्थिति फिर पुरानी सतह पर आने लगी थी। बैचलर्स डाइनिंग-रूम मे फिर कहकहे और बहस-मुबाहिसे सुनाई देने लगे थे जब एक रात सुना गया कि आंट सैली को भी नोटिस मिल गया है।

"सैली को ?" जॉन के होंठ खुले रह गए। "किस बात पर ?"

"बात का पता नही है," पीटर सूप में चम्मच चलाता रहा।

जॉन का चेहरा गम्भीर हो गया। वह मक्खन की टिकिया खोलता हुआ बोला, "मुझे लगता है कि इसके बाद अब मेरी बारी आएगी। मुझे पता है कि उसकी आंखों मे कौन-कौन खटकता है। सैली का कसूर यह था कि वह रोज उसकी हाजिरी नही देती थी और न ही वह···' और वह नानावती की तरफ देखकर चुप रह गया। पीटर कुछ कहने को हुआ, मगर बाहर से हकीम को आते देखकर चुपचाप नेपकिन से होंठ पोछने लगा।

हकीम के आने पर कई क्षण चुप्पी छाई रही। किरपू हकीम के सामने प्लेट और छुरी-काटे रख गया।

"तुम्हारे क्वार्टर में नये पर्दे बहुत अच्छे लगे हैं," जॉन हकीम से बोला।

"तुम्हे पसन्द हैं ?"

"बहुत।"

"शुक्रिया !"

"मेरा ख्याल है चॉप्स में नमक ज्यादा है।"

"अच्छा ?"

"लेकिन पुडिंग अच्छा है।"

खाना खाकर जॉन और पीटर लॉन मे टहलते रहे। आंट सैली के क्वार्टर को जानेवाले मोड के पास रुककर जॉन ने पूछा, "सैली से मिलने चलोगे ?"

"चलो।"

"उस हरामी ने हमे इस वक्त जाते देख लिया तो···।"

"तो कल सुबह न चलें ?"

"हां, इस वक्त देर भी हो गई है।"

"बेचारी सैली !"

"इस पादरी जैसा जालिम आदमी मैंने आज तक नही देखा। फौज में बड़े-बड़े

सख्त अफसर थे, मगर ऐसा आदमी कोई नहीं था।"

पीटर जंगले के पास घास पर बैठ गया।

"मुझे फिर से फौज की ज़िन्दगी मिल जाए तो मैं एक दिन भी यहां न रहूं···।"

घास पर बैठकर जॉन पीटर को अपनी फौज की ज़िन्दगी के वही किस्से सुनाने लगा जो वह पहले भी कई बार सुना चुका था।

"पूरी-पूरी बोतल, ए ! रोज़ रात को रम की एक पूरी बोतल मैं पी जाता था। मेरा एक साथी था जो पास के गाव से दो-दो लड़कियों को ले आया करता था।···कभी-कभी हम रात को निकलकर उसके गांव चले जाते थे। अफसर लोग देखते थे मगर कुछ कह नहीं सकते थे। वे खुद भी तो यही कुछ करते थे। वह ज़िन्दगी ज़िन्दगी थी। यह भी कोई ज़िन्दगी है, ए ?"

मगर पीटर उसकी बात न सुनकर बिना आवाज़ पैदा किए, मुंह ही मुंह एक गीत गुनगुना रहा था।

"वैसे दिन फिर से मिल जाएं, तो कुछ नहीं चाहिए, ए ?"

ऊपर देवदार की छतरियां हिल रही थीं। हवा से जंगल सायं-सायं कर रहा था। होस्टल की तरफ से आती पगडंडी पर पैरों की आवाज़ सुनकर जॉन थोड़ा चौंक गया।

"कोई आ रहा है, ए ?"

पीटर सिर उठाकर जंगले से नीचे देखने लगा।

पैरों की आहट के साथ सीटी की आवाज़ ऊपर आती गई।

"बैरो है !"

"यह भी एक हरामज़ादा है।"

पीटर ने उसका हाथ दबा दिया।

"अभी क्वार्टर में नहीं गए टैफी ?" बैरो ने अंधेरे से निकलकर सामने आते हुए पूछा।

"नहीं, यहां बैठकर ज़रा हवा ले रहे हैं।"

"आज हवा काफी ठण्डी है। पन्द्रह-बीस दिन में बर्फ पड़ने लगेगी।"

जान जंगले का सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा, गुड नाइट पीटर ! गुड नाइट बैरो !"

"गुड नाइट !"

कुछ रास्ता पीटर और बैरो साथ-साथ चलते रहे। बैरो चलते-चलते बोला, "जान अब काफी सठिया गया है, क्यों ? इसे अब रिटायर हो जाना चाहिए।"

"हां-आं !" पीटर के शरीर में एक सिहरन भर गई।

"मगर यह तो यहीं अपनी कब्र बनाएगा, नहीं ?"

पीटर ने मुंह तक आई गाली होठों में दबा ली।

बैरो का क्वार्टर आ गया।

"अच्छा, गुड नाइट !"

"गुड नाइट !"

सुबह नाश्ते के वक्त जॉन ने पीटर से पूछा, "सैली चली गई, ए ?"

"पता नहीं," पीटर बोला, "मेरा खयाल है, अभी नहीं गई।"

"वह आ रही है !" नानावती नेपकिन से मुंह पोंछकर उसे हाथ में मसलने लगी। जॉन और पीटर की आंखें झुक गईं।

आंट सैली का रिक्शा डाइनिंग-रूम के दरवाज़े के पास आकर रुक गया। वह

कन्धे पर झोला लटकाए उतरकर डाइनिंग-रूम में आ गई।

"गुड मार्निंग एवरीबडी !" उसने दहलीज लांघते ही हाथ हिलाया।

"गुड मार्निंग सैली !" जॉन ने भूरी आखें उसके चेहरे पर स्थिर किए हुए भारी आवाज में कहा। जो वह मुह से नहीं कह सका, वह उसने अपनी नजर से कह देने की चेष्टा की।

"बस, आज ही जा रही हो।" नानावती ने डरे-सहमे हुए स्वर मे पूछा और एक बार दाएं-बाए देख लिया। आंट सैली ने आखें झपकते हुए मुस्कराकर सिर हिला दिया।

"मैं सुबह मिलने आ रहा था," पीटर बोला, "मगर तैयार होने-होने में देर हो गई। मेरा खयाल था कि तुम शायद शाम को जा रही हो···।"

आट सैली ने धीरे-से उसका कन्धा थपथपा दिया और उसी तरह मुस्कराते हुए कहा, "मैं जानती हूं मेरे बच्चे ! मैं चाहती हू कि तुम खुश रहो।"

"आंटी, कभी-कभार खत लिख दिया करना," पीटर ने उसका मुरझाया हुआ नरम हाथ अपने मजबूत हाथ मे लेकर हिलाया। आट सैली की आखें डबडबा आई और उसने उन पर रूमाल रख लिया।

"अच्छा, गुड बाई !" कहकर वह दहलीज पार करके रिक्शा की तरफ चली गई।

"गुड बाई सैली !" जॉन ने पीछे से कहा।

"गुड बाई आंटी !"

"गुड बाई !"

आट सैली ने रिक्शा में बैठकर उनकी तरफ हाथ हिलाया। मजदूर रिक्शा खीचने लगे।

कुछ देर बाद नानावती ने कहा, "किरपू, एक बटर स्लाइस।"

जान पीछे की तरफ देखकर बोला, "मुझे चाय का थोड़ा गर्म पानी और दे दो।"

पीटर जैम के डिब्बे में से जैम निकालने लगा।

जिस दिन अनिता आई, उसी शाम से आकाश मे सलेटी बादल घिरने लगे। रात को हल्की-हल्की बरफ भी पड गई। अगले दिन शाम तक बादल और गहरे हो गए। पीटर खेतानी गाव तक घूमकर वापस आ रहा था, जब अनिता उसे ऊपर की पगडंडी पर टहलती दिखाई दे गई। वह उस ठण्ड में भी साड़ी के ऊपर सिर्फ एक शाल लिए थी। पीटर को देखकर वह मुसकराई। पीटर ने उसकी मुस्कराहट का उत्तर अभिवादन से दिया।

"घूमने जा रही हो ?" उसने पूछा।

"नही, यूं ही जरा टहलने के लिए निकल आई थी।"

"तुम्हें ठण्ड नही लग रही है ?"

"ठण्ड तो है ही, मगर क्वार्टर मे बन्द होकर बैठने को मन नही हुआ।" उसने शाल से अपनी बांहे भी ढाप ली।

"तुम तो ऐसे घूम रही हो जैसे मई का महीना हो।"

"मेरे लिए मई और नवम्बर दोनो बराबर हैं। मेरे पास ऊनी कपड़े हैं ही नही।" वह फिसलन पर से सभंलती हुई पगडंडी से उतरकर उसके पास आ गई।

ऊनी कपड़े तो तुमने पादरी के डिनर की रात के लिए सभालकर रख रखे होंगे।

तब तक सरदी से बीमार न पड़ जाना।" पीटर ने मजाक के अन्दाज में अपना निचला होंठ सिकोड़ लिया।

"सच, मेरे पास इस शाल के सिवा और कोई ऊनी कपड़ा है ही नही," अनिता उसके साथ-साथ चलती हुई बोली, "सच पूछो तो यह भी प्रेजेंट का है। हमे उधर गरम कपड़ो की जरूरत ही नही पडती।"

"तो परसो तक एक बढ़िया-सा कोट सिला लो। परसो फादर का डिनर है।"

"परसों तक ?...ओह ?" और वह मीठी-सी हसी हस दी।

"क्यो ? एक दिन मे यहा अच्छे से अच्छा कोट सिल जाएगा।"

"मेरे पास इतने पैसे होते तो मैं यहा नौकरी करने ही क्यो आती ?" तुम्हे पता है, मैं नौ सौ मील से यहां आई हू...अ..."

"पीटर—या सिर्फ विकी...।"

"मैं अपने घर मे अकेली कमानेवाली हू। मेरी मा पहले बटुए सिया करती थी, पर अब उसकी आखें बहुत कमजोर हो गई हैं। मेरा छोटा भाई अभी पढता है। उसके एम० एस-सी० करने तक मुझे नौकरी करनी है।"

पीटर ने रुककर एक सिगरेट सुलगा लिया। बरफ के हल्के-हल्के गाले पड़ने लगे थे। उसने आकाश की तरफ देखा। बादल बहुत गहरा था।

"आज काफी बरफ पडेगी," उसने कोट के कॉलर ऊचे उठाते हुए कहा। "चलो, तुम्हे तुम्हारे क्वार्टर तक छोड आऊ। तुम सी कॉटेज मे हो न ?"

"हा।...चलो मैं तुम्हे वहा चाय की प्याली बनाकर पिलाऊंगी।"

"इस मौसम मे चाय मिल जाए, तो और क्या चाहिए ?"

वे सी काटेज को जानेवाली पगडंडी पर उतरने लगे। कुहरा घना हो जाने से रास्ता दस कदम से आगे दिखाई नही दे रहा था। अनिता एक जगह पत्थर से ठोकर खा गई।

"चोट लगी ?"

"नही।"

"मेरे कधे का सहारा ले लो।"

अनिता ने बराबर आकर उसके कन्धे का सहारा ले लिया। जब वे सी काटेज के बरामदे मे पहुचे, तो बरफ के बड़े-बडे गाले गिरने लगे थे। घाटी मे जहा तक आख जाती थी, बादल ही बादल भरा था। एक बिल्ली दरवाजे से सटकर कांप रही थी। अनिता ने दरवाजा खोला, तो वह म्याऊ करके अन्दर घुस गई।

दरवाजा खुलने पर पीटर ने उसके सामान पर एक सरसरी नजर डाली। स्कूल के फर्नीचर के अलावा उसे एक टीन का ट्रंक और दो-चार कपड़े ही दिखाई दिए। मेज़ पर एक सस्ता टेबल लैम्प रखा था और उसके पास ही एक युवक का फोटोग्राफ था। पीटर चारपाई पर बैठ गया। अनिता स्टोव जलाने लगी।

चारपाई पर एक पुस्तक और आधा लिखा पत्र पड़ा था। पीटर ने पत्र जरा हटाकर रख दिया और पुस्तक उठा ली। पुस्तक पत्र-लेखन के सम्बन्ध में थी और उसमे हर तरह के पत्र दिए हुए थे। पीटर उसके पन्ने उलटने लगा।

अनिता ने स्टोव जलाकर केतली चढा दी। फिर उसने बाहर देखकर कहा, "बरफ पहले से तेज पड़ने लगी है।"

पीटर ने देखा कि बरामदे के बाहर ज़मीन पर सफेदी की हल्की तह बिछ गई है। उसने सिगरेट का टुकड़ा बाहर फेंका, तो वह धुन्ध मे जाते ही बुझ गया।

"आज सारी रात बरफ पड़ती रहेगी," उसने कहा।

अनिता स्टोव पर हाथ सेंकने लगी।

बरामदे मे पैरों की आहट सुनकर पीटर बाहर निकल आया। जॉन भारी कदमों से चलता आ रहा था।

"ए पीटर !"

"हलो टैफी ! ·· इस वक्त वर्फ में कैसे निकल पड़े ?"

"तुम्हारे क्वार्टर मे गया था। तुम वहा नही मिले तो सोचा, शायद यहां मिल जाओ।" और वह मुस्करा दिया।

"वैसे घूमने के लिए मौसम अच्छा है ?" पीटर ने कहा।

वे दोनों कमरे मे आ गए। अनिता प्यालियां धो रही थी। एक प्याली उसके हाथ से गिरकर टूट गई।

"ओह !"

"प्याली टूट गई ?"

"हां, दो थी, उनमे से भी एक टूट गई।"

"कोई बात नही। सासर तो हैं, उनसे प्यालियों का काम चल जाएगा।"

पीटर फिर चारपाई पर बैठ गया। जॉन मेज़ पर रखे फोटोग्राफ के पास चला गया।

"फिआसे—ए ?"

अनिता ने मुस्कराकर सिर हिला दिया।

"यह चिट्ठी भी उसी को लिखी जा रही थी ?"

जॉन ने चारपाई पर रखे पत्र की तरफ संकेत किया। पीटर पुस्तक का वह पृष्ठ पढने लगा जिस पर से वह पत्र नकल किया जा रहा था।

जॉन स्टोव के पास जा खड़ा हुआ और अनिता के शाल की तारीफ करने लगा।

चाय तैयार हो गई तो अनिता ने प्याली बनाकर जॉन को दे दी। अपने और पीटर के लिए सॉसर में चाय डालती हुई बोली, "हमारे घर मे कुल दो ही प्यालिया थी। वही मैं उठा लाई थी। आते ही एक टूट गई।"

जान और पीटर ने एक-दूसरे की तरफ देखकर आखें हटा ली।

"यह सी कॉटेज है तो अच्छी, मगर जरा दूर पड़ जाती है," पीटर दोनों हाथों से सॉसर सभालता हुआ बोला, "तुम पादरी से कहो कि तुम्हे डी या ई काटेज मे जगह दे दें। वे दोनों खाली पडी हैं। उनमें दो-दो बड़े कमरे हैं।"

"अच्छा ?" अनिता बोली, "वैसे मेरे लिए तो यही कमरा बहुत बडा है। घर मे हमारे पास इससे भी छोटा एक ही कमरा है जिसमे हम तीन जने रहते हैं···। उसमें से भी आधा कमरा मेरे भाई ने ले रखा है और आधे कमरे मे हम मां-बेटी गुज़ारा करती हैं। अब मैं आ गई हूं तो मां को जगह की कुछ सहूलियत हो गई होगी।···मैं अपनी मा को बहुत प्यार करती हू। पहला वेतन मिलने पर मैं उसके लिए कुछ अच्छे-अच्छे कपड़े भेजना चाहती हू। उसके पास अच्छे कपड़े नही हैं।"

पीटर और जान की आंखें पल-भर मिली रही। जान का निचला होंठ थोडा सिकुड़ गया।

"चाय बहुत अच्छी है !"

"खूब गरम है और फ्लेवर भी बहुत अच्छा है।"

"रोज़ बरफ पडे तो मैं रोज़ यहां आकर चाय पिया करूं।"

पीटर के सॉसर से चाय छलक गई।

"सॉरी !"

बरफ और कुहरे की वजह से बाहर बिलकुल अधेरा हो गया था। बरस के गाले दूध-फेन की तरह नि:शब्द गिर रहे थे। जान और पीटर अनिता के क्वार्टर से निकलकर ऊपर की तरफ चले, तो पगडंडी पर दो-दो इच बरफ जमा हो चुकी थी। अधेरे मे ठीक से रास्ता दिखाई नही दे रहा था, इसलिए जान ने पीटर की बाह पकड ली।

"अच्छी लडकी है, ए ?"

"बहुत सीधी है।"

"मुझे डर है कि यह भी कही नानावती की तरह ···।"

"रहने दो—तुम उसके साथ इसका मुकाबिला करते हो ?"

"वह आई थी तो वह भी ऐसी ही थी···।"

"मैं इसे इन लोगों के बारे में सब-कुछ बता दूगा।"

जान को थोडी खांसी आ गई। वे कुछ देर खामोश चलते रहे। उनके पैरों के नीचे कच्ची बरफ कचर-कचर करती रही।

कुछ फासले से आकर टार्च की रोशनी उनकी आंखो से टकराई। पल-भर के लिए उनकी आखें चुंधियाई रही। फिर उन्होंने ऊपर से उतरकर आती आकृति को देखा।

"गुड ईवनिंग वैरो !"

"गुड ईवनिंग टैफी ! किधर से घूमकर आ रहे हो ?"

"यू ही बरफ पडती देखकर थोडी दूर निकल गए थे।"

"बरफ में घूमना सेहत के लिए अच्छा है !"

पीटर ने जान की उंगली दबा दी।

"तुम भी सेहत बनाने निकले हो ?"

इस बार जॉन ने पीटर की उंगली दबा दी।

"हा, मौसम अच्छा है, मैंने भी सोचा, थोडा घूम लू।"

"अच्छा, गुड नाइट !"

"गुड नाइट !"

टार्च की रोशनी काफी नीचे पहुंच गई, तो जान पैर से रास्ता टटोलता हुआ बोला, "यह पादरी का खुफिया है खुफिया। मैं इस हरामी की रग-रग पहचानता हू।"

पीटर खामोश चलता रहा।

सुबह जिस समय पीटर की आख खुली, उसने देखा कि वह जान के क्वार्टर मे एक आराम-कुरसी पर पड़ा है—वही उस पर दो कम्बल डाल दिए गए हैं। सामने रम की खाली बोतल रखी है। वह उठा, तो उसकी गरदन दर्द कर रही थी। उसने खिड़की के पास आकर देखा कि जान चाय का पलास्क लिए डाईनिंग-रूम की तरफ से आ रहा है। वह ठण्डी सलाखों को पकड़े दूर तक फैली बरफ को देखता रहा।

जान कमरे में आ गया और भारी कदमो से तख्ते पर आवाज करता हुआ पीटर के पास आ खडा हुआ।

"कुछ सुना, ए ?"

पीटर ने उसकी तरफ देखा।

"रात को पादरी ने उसे अपने यहां बुलाया था···।"

"किसे, अनिता को ?"

जान ने सिर हिलाया। उसकी आंखें क्षण-भर पीटर की आंखों से मिली रही। पीटर गम्भीर होकर दीवार की तरफ देखने लगा।

"टैफी, मैं उससे कहूंगा कि वह यहां से नौकरी छोडकर चली जाए। उसे पता नहीं है कि यहा वह किन जानवरों के बीच आ गई है !"

जॉन फ्लास्क से प्यालियो मे चाय उडेलने लगा।

"उसमे खुद्दारी हो तो उसे आप ही चले जाना चाहिए," वह बोला, "किसी के कहने से क्या होगा ! कुछ नही।"

"हो या न हो, मगर मैं उससे कहूंगा जरूर···।"

"तुम पागल हुए हो ? हमें दूसरों से मतलब ? वह अनजान बच्ची तो है नही।"

पीटर कुछ न कहकर दीवार की तरफ देखता हुआ चाय के घूट भरने लगा।

"अब जल्दी से तैयार हो जाओ, गिरजे का वक्त हो रहा है !"

पीटर ने दो घूट मे ही चाय की प्याली खाली करके रख दी। "मैं गिरजे मे नही जाऊंगा।"

जॉन कुरसी की बांह पर बैठ गया।

"आज तुम्हारी सलाह क्या है ?"

"कुछ नही, मैं गिरजे मे नही जाऊंगा।"

जॉन मुह ही मुह बडबड़ाकर ठण्डी चाय की चुस्कियां लेता रहा।

दो दिन की बरफबारी के बाद फादर फिशर के डिनर की रात को मौसम खुल गया। डिनर से पहले घण्टा-भर सब लोग 'म्यूजिकल चेयर्स' का खेल खेलते रहे। उस खेल मे मणि नानावती को पहला पुरस्कार मिला। पुरस्कार मिलने पर उससे जो-जो मजाक किए गए, उनसे उसका चेहरा इतना सुर्ख हो गया कि वह थोडी देर के लिए कमरे से बाहर भाग गई। मिसेज मर्फी उस दिन बहुत सुन्दर हैट और रिबन लगाकर आई थी; उसकी बहुत प्रशंसा की गई। डिनर के बाद लोग काफी देर तक आग के पास खडे बातें करते रहे। पादरी ने सबसे नई मेट्रन का परिचय कराया। अनिता अपने शाल मे सिकुड़ी सबके अभिवादन का उत्तर मुसकराकर देती रही।

एटकिन्सन मिसेज मर्फी को आख से इशारा करके मुसकराया।

हिचकाक अपनी मुमकराहट जाहिर न होने देने के लिए सिगार के लम्बे-लम्बे कश खीचने लगा। जॉन उधर से नजर हटाकर हिचकाक से बात करने लगा।

"तुम्हें तली हुई मछली अच्छी लगी ?···मुझे तो जरा अच्छी नही लगी।"

"मुझे मछली हर तरह की अच्छी लगती है, कच्ची हो या तली हुई···हां मछली हो।"

जॉन ने मुंह बिचकाया।

"रम की बोतल साथ हो तो भी तुम्हे अच्छी नही लगती ?"

जॉन दात खोलकर मुसकराया और सिर हिलाने लगा।

मजलिस बरखास्त होने पर जब सब लोग बाहर निकले तो हिचकाक ने धीमे स्वर मे जॉन से पूछा, "क्या बात है, आज पीटर दिखाई नही दिया···?"

जॉन उसका हाथ दबाकर उसे जरा दूर ले गया और दबे हुए स्वर में बोला, "उसे पादरी ने जवाब दे दिया है।"

"पीटर को भी ?"

जॉन ने सिर हिलाया।

"वह कल सुबह यहा से चला जाएगा ।"

"क्या कोई खास बात हुई थी ?"

जॉन ने उसका हाथ दबा दिया। पादरी और बैरो के साथ-साथ अनिता सिर
काए शाल मे छिपी-मिमटी बरामदे से निकलकर चली गई। जान की भूरी आंखें कई
ज उनका पीछा करती रही।

"यह आप भी गरम पानी से नहाता है या नही ?"

"क्यो ?" बात हिचकाक की समझ मे नही आई।

"इसने डाली को गरम पानी से नहलाया था न—!"

हिचकाक हो-हो करके हंस दिया। बरामदे मे से गुजरते हुए हकीम ने आवाज
, "खूब कहकहे लग रहे हैं ?"

"मैं तली हुई मछली हजम कर रहा हूं," हिचकाक ने उत्तर दिया, और ऊंची
वाज़ मे जॉन को बतलाने लगा कि बगैर कांटे की मासेर मछली कितनी ताकतवर
ती है।

सुबह जॉन, अनिता, नानावती और हकीम बैचलर्स डाईनिंग-रूम में नाश्ता कर
हे थे, जब पीटर का रिक्शा दरवाजे के पास से निकलकर चला गया। पीटर रिक्शे
सीधा बैठा रहा। न उसे किसी ने अभिवादन किया, और न ही वह किसी को अभि-
दन करने के लिए रुका। अनिता की झुकी हुई आखें और झुक गईं—जॉन ऐसे गरदन
काए रहा जैसे उस तरफ उसका ध्यान ही न हो। बैचलर्स डाइनिंग-रूम मे कई क्षण
ामोशी छाई रही।

सहसा पादरी को खिड़की के पास से गुज़रते देखकर सब लोग अपनी-अपनी
ीट से आधा-आधा उठ गए।

"गुड मार्निंग फादर !"

"गुड मार्निंग माई सन्स !"

"कल रात का डिनर बहुत ही अच्छा रहा, "हकीम ने चेहरे पर विनीत
सकराहट लाकर कहा।

"सब तुम्ही लोगो की वजह से है।"

"मैं तो कहता हूं कि ऐसे डिनर रोज़ हुआ करें..."

पादरी आगे निकल गया, तो भी कुछ देर हकीम के चेहरे पर वह मुसकराहट
नी रही।

"मेरे लिए उबला हुआ अण्डा अभी तक क्यों नही आया ?" सहसा जॉन गुस्से
बड़बडाया। अनिता स्लाइस पर मक्खन लगाती हुई सिहर गई। किरपू ने एक प्लेट
उबला हुआ अण्डा लाकर जॉन के सामने रख दिया।

"छीलकर लाओ !" जॉन ने उसी तरह कहा और प्लेट को हाथ मार दिया।
लेट अण्डे समेत नीचे जा गिरी और टूट गई।

उधर गिरजे की घण्टियां बजने लगी...डिंग-डांग ! डिंग-डांग ! डिंग-डांग !"

जान ने सिर हिलाया। उसकी आखें क्षण-भर पीटर की आंखो से मिली रही। पीटर गम्भीर होकर दीवार की तरफ देखने लगा।

"टॅफी, मैं उससे कहूंगा कि वह यहा से नौकरी छोडकर चली जाए। उसे पता नही है कि यहा वह किन जानवरों के बीच आ गई है!"

जॉन फ्लास्क से प्यालियों मे चाय उंडेलने लगा।

"उसमें खुद्दारी हो तो उसे आप ही चले जाना चाहिए," वह बोला, "किसी के कहने से क्या होगा! कुछ नही।"

"हो या न हो, मगर मैं उससे कहूंगा जरूर''।"

"तुम पागल हुए हो? हमें दूसरो से मतलब? वह अनजान बच्ची तो है नही।"

पीटर कुछ न कहकर दीवार की तरफ देखता हुआ चाय के घूंट भरने लगा।

"अब जल्दी से तैयार हो जाओ, गिरजे का वक्त हो रहा है!"

पीटर ने दो घूट मे ही चाय की प्याली खाली करके रख दी। "मैं गिरजे मे नही जाऊंगा।"

जॉन कुरसी की बाह पर बैठ गया।

"आज तुम्हारी सलाह क्या है?"

"कुछ नही, मैं गिरजे में नही जाऊंगा।"

जॉन मुह ही मुह बडबड़ाकर ठण्डी चाय की चुस्किया लेता रहा।

दो दिन की बरफबारी के बाद फादर फिशर के डिनर की रात को मौसम खुल गया। डिनर से पहले घण्टा-भर सब लोग 'म्यूजिकल चेयर्स' का खेल खेलते रहे। उस खेल मे मणि नानावती को पहला पुरस्कार मिला। पुरस्कार मिलने पर उससे जो-जो मजाक किए गए, उनसे उसका चेहरा इतना सुर्ख हो गया कि वह थोड़ी देर के लिए कमरे से बाहर भाग गई। मिसेज मर्फी उस दिन बहुत सुन्दर हैट और रिबन लगाकर आई थी; उसकी बहुत प्रशंसा की गई। डिनर के बाद लोग काफी देर तक आग के पास खड़े बातें करते रहे। पादरी ने सबसे नई मेट्रन का परिचय कराया। अनिता अपने शाल मे सिकुड़ी सबके अभिवादन का उत्तर मुसकराकर देती रही।

एटकिन्सन मिसेज मर्फी को आख से इशारा करके मुसकराया।

हिचकाक अपनी मुसकराहट जाहिर न होने देने के लिए सिगार के लम्बे-लम्बे कश खीचने लगा। जॉन उधर से नजर हटाकर हिचकाक से बात करने लगा।

"तुम्हें तली हुई मछली अच्छी लगी?''मुझे तो जरा अच्छी नही लगी।"

"मुझे मछली हर तरह की अच्छी लगती है, कच्ची हो या तली हुई''हां मछली हो।"

जॉन ने मुंह बिचकाया।

"रम की बोतल साथ हो तो भी तुम्हें अच्छी नही लगती?"

जॉन दात खोलकर मुसकराया और सिर हिलाने लगा।

मजलिस बरखास्त होने पर जब सब लोग बाहर निकले तो हिचकाक ने धीमे स्वर में जॉन से पूछा, "क्या बात है, आज पीटर दिखाई नही दिया'''?"

जॉन उसका हाथ दबाकर उसे जरा दूर ले गया और दबे हुए स्वर में बोला, "उसे पादरी ने जवाब दे दिया है।"

"पीटर को भी?"

जॉन ने सिर हिलाया।

"वह कल सुवह यहां से चला जाएगा।"

"क्या कोई खास बात हुई थी ?"

जॉन ने उसका हाथ दवा दिया। पादरी और वैरो के साथ-साथ अनिता सिर झुकाए शाल में छिपी-सिमटी वरामदे से निकलकर चली गई। जान की भूरी आंखें कई गज उनका पीछा करती रहीं।

"यह आप भी गरम पानी से नहाता है या नहीं ?"

"क्यों ?" बात हिचकाक की समझ में नहीं आई।

"हमने डाली को गरम पानी में नहलाया था न—!"

हिचकाक हो-हो करके हंस दिया। बरामदे में से गुजरते हुए हकीम ने आवाज दी, "खूब कहकहे लग रहे हैं ?"

"मैं तली हुई मछली हजम कर रहा हूं," हिचकाक ने उत्तर दिया, और ऊंची आवाज़ में जॉन को वतलाने लगा कि बगैर काटे की मासेर मछली कितनी ताकतवर होती है।

सुवह जॉन, अनिता, नानावती और हकीम बैचलर्स डाईनिंग-रूम में नाश्ता कर रहे थे, जब पीटर का रिक्शा दरवाज़े के पास से निकलकर चला गया। पीटर रिक्शे में सीधा बैठा रहा। न उसे किसी ने अभिवादन किया, और न ही वह किसी को अभिवादन करने के लिए रुका। अनिता की झुकी हुई आंखें और झुक गईं—जॉन ऐसे गरदन झुकाए रहा जैसे उस तरफ उसका ध्यान ही न हो। बैचलर्स डाइनिंग-रूम में कई क्षण खामोशी छाई रही।

सहसा पादरी को खिड़की के पास से गुजरते देखकर सब लोग अपनी-अपनी सीट से आधा-आधा उठ गए।

"गुड मार्निंग फादर !"

"गुड मार्निंग माई सन्स !"

"कल रात का डिनर बहुत ही अच्छा रहा, "हकीम ने चेहरे पर विनीत मुसकराहट लाकर कहा।

"सब तुम्हीं लोगों की वजह से है।"

"मैं तो कहता हूं कि ऐसे डिनर रोज़ हुआ करें···"

पादरी आगे निकल गया, तो भी कुछ देर हकीम के चेहरे पर वह मुसकराहट बनी रही।

"मेरे लिए उबला हुआ अण्डा अभी तक क्यों नहीं आया ?" सहसा जॉन गुस्से से बड़बड़ाया। अनिता स्लाइस पर मक्खन लगाती हुई सिहर गई। किरपू ने एक प्लेट में उबला हुआ अण्डा लाकर जॉन के सामने रख दिया।

"छीलकर लाओ !" जॉन ने उसी तरह कहा और प्लेट को हाथ मार दिया। प्लेट अण्डे समेत नीचे जा गिरी और टूट गई।

उधर गिरजे की घण्टियां बजने लगीं···"डिंग-डांग ! डिंग-डांग ! डिंग-डांग !"

गुंझल

पूरे दिन का बस का सफर। एक ही सीट पर साथ-साथ बैठे हुए, फिर भी एक-दूसरे से कोसो दूर रहकर ·।

सुरंग पार करके बस बानिहाल कस्बे की तरफ उतरने लगी। आगे बिना कोलतार की सकरी सडक थी और साढे तीन हज़ार फुट की सीधी ढलान के नीचे बानिहाल की घाटी। सडक को हमवार रखने के लिए जगह-जगह नये पत्थर डाले जा रहे थे। छुक-छुक करते रोड रोलर और बेलचे चलाते मज़दूर। नीचे बानिहाल की घाटी चिनार के एक बड़े पत्ते की तरह फैली थी। किसी-किसी मोड से घाटी की ज़िन्दगी की एक झलक दिखाई दे जाती—टीन और सलेट की छतें, चिमनियो से निकलता धुआ और धान के खेतो मे चमकता पानी। जैसे वह सब यथार्थ न हो, यथार्थ की एक नकल हो। एक बड़े पैमाने पर आयोजित रगमंच। और निचान की सडक पर बस जैसे चल नही रही थी, लुढक रही थी। उसकी गति गति न होकर एक बेबसी थी। पहिये फिसल रहे थे और बस का जिस्म खड़खडा रहा था। घाटी का विस्तार धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था···।

नीचे और नीचे। पहाड़ को काटकर नई सुरंग बनाई जा रही थी। बडे-बडे क्रेन अपनी लम्बी गरदनें फैलाए सुरंग का मलवा ढोकर खड्ड मे डाल रहे थे। टनेल प्राजेक्ट की नई आबादी।

बस का हार्न एक बार जोर से बज उठा। एक बछडा और खरगोश बस के सामने पड़ गए थे। बछडा तेज़ी से कूदकर खड्ड की तरफ चला गया, मगर खरगोश आगे के पहिये के नीचे आकर कुचला गया। ड्राइवर ने पल-भर के लिए ब्रेक लगाया, मगर अगले ही क्षण बस उगी रफ्तार से आगे बढने लगी।

ब्रेक लगी, तो एक बार पति-पत्नी के शरीर आपस में छू गए। कुन्तल ने अपनी बाहे सिकोड ली और पहले से थोड़ा सिमटकर बैठ गई। उसके ब्लाउज के दो बटन खुल गए थे, मगर उसे बन्द करने का ध्यान नही था। उसके सोने के बुंदे काटे में फंसकर तड़पती मछलियों की तरह अस्थिर थे। साड़ी का पल्ला सीट से पीछे की तरफ निकल गया था और रह-रहकर फड़फडा उठता था। बस ज्यों ही किसी मोड के पास पहुंचती, वह आगे की सीट को पकडकर अपना भार सभाल लेती। शरीर से शरीर छूना नही चाहिए। एक ही सीट पर साथ-साथ बैठे हुए इतना लम्बा सफर- -सचमुच कितनी बडी मजबूरी थी।

सामने के शीशे मे बहुत-सी आकृतियां हिचकोले खाती नज़र आ रही थी। दो आंखें शीशे के अन्दर से बार-बार उसकी तरफ देखने लगती थी। वह जब आंखें हटाकर फिर उधर देखती, वे आखें उसी तरह से ताक रही होती। वह लडकी, स्नेह, जाने क्यों उसे ऐसे देख रही थी? उसके चेहरे मे ऐसा क्या था जो वह देखना चाहती थी? और ऐसे बेढब सफर में वह लडकी इस तरह बन-सवरकर क्यों आई थी? वह जैसे बस मे सफर नही कर रही थी, किसी पार्टी मे आई थी, जहा सबके सामने उसे अपने को उभारकर दिखाना था। उसके चेहरे से लग रहा था जैसे अभी-अभी वह कोई गीत गुनगुनाने लगेगी या सहसा खिलखिलाकर हंसने लगेगी। मोतिया कमीज़, लाल दुपट्टा और हरी कोटी; उसके दुबले शरीर पर ये रग कितने भडकीले लग रहे थे।

मटियाले रग के लहरिया साप की तरह बल खाई सड़क। बस बानिहाल के बाज़ार में आकर रुक गई। लोग एक-एक करके नीचे उतरने लगे। बस को आधा घंटा

वहां रुककर आगे चलना था। वे दोनों भी अपनी जगह से उठ खड़े हुए। स्नेह और उसके घर के लोग उनसे आगे उतर रहे थे। दरवाज़े के पास पहुंचकर स्नेह की आंखें एक बार पीछे को घूम गई, फिर वह कूदकर नीचे उतर गई। उसका भाई मनोहर अपनी मां की बांह को सहारा दिए बहुत आहिस्ता से उतरा और अपने घर के सब लोगों को साथ लिए सामने के ढाबे में चला गया।

वे दोनों बस से उतरकर बिजली के खंभे के पास खड़े हो गए और कुछ देर तक बिना बात किए, बिना एक-दूसरे की तरफ देखे, इस तरह खड़े रहे, जैसे वे पति-पत्नी न होकर दो ऐसे यात्री हों जिनका अभी तक आपस मे परिचय न हुआ हो। चन्दन ने दोनो हाथ पतलून की जेबों में डाल लिए और जूते की नोक से ज़मीन को कुरेदने लगा। कुन्तल ने अपने बटुए से ऊन और सलाइयां निकाल ली और अपना पुलोवर बुनने मे व्यस्त हो गई।

"खाना खाओगी ?" काफी देर की चुप्पी के बाद चन्दन ने पूछ लिया।

कई क्षण कुन्तल ने उसे कोई उत्तर नही दिया। उसकी आखें अपने हाथ की सलाइयों पर ही झुकी रहीं।

'आप खा लीजिए," फिर उसने कहा, "हमें भूख नही है।"

"खाना हो, थोडा-सा खा लो," चन्दन ने भी जैसे उससे न कहकर हवा से ही कहा "यहां से चलकर बस जाने कहा रुकेगी। और फिर जाने कही ढंग का खाने को मिलेगा भी या नही।"

कुन्तल ने सामने के ढाबे की तरफ देखा। चार-छः देगचियां और पतीलियां लगभग सड़क के छोर पर रखी थी और रास्ते से उडती धूल बार-बार उन्हे घेर लेती थी। एक आदमी, जिसके हाथ और कपड़े एक-से ही मैले थे, नल के नीचे से गीली थालियां उठाकर एक स्याह कपड़े से पोंछ रहा था और दूसरा मुसीबत ढोने के ढंग से उनमें दाल सब्ज़ी और रोटियां रखकर ग्राहकों के पास ले जा रहा था। जाने कितनी-कितनी कालिख की तहों मे ढके फ्राइंग पैन मे प्याज़ के टुकडे तड़क रहे थे।

"हमारा खाने को मन नही है," उसने अपनी सलाइयों मे व्यस्त होते हुए कहा, "और बस का सफर है, इस तरह का खाकर भी तबीयत खराब ही होगी।"

चन्दन ने फिर कुछ नही कहा। खम्भे से टेक लगाए जूते की नोक से मिट्टी कुरेदता खड़ा रहा। उसकी 'काडराय' की पतलून के घुटने बाहर को निकल आए थे और रोओं के घिस जाने से जगह-जगह उस पर चकत्तियां-सी पड़ी थी। पायंचों के टांके टूट गए थे जिससे उनका मुड़ा हुआ हिस्सा बाहर को खुला गया था। जूते की एड़ियां और तलुवे घिसे हुए थे और ऊपर के चमड़े मे गहरी-गहरी लकीरें पडी थी।

"आपको भूख हो, खा लीजिए," कुन्तल ने कुछ क्षण बाद उसकी तरफ देखकर कहा।

"भूख होगी, खा लूंगा," कहकर चन्दन वहा से हट गया और टहलता हुआ कुछ दूर उधर चला गया जिधर से उनकी बस अभी-अभी आई थी। सामने दूर तक पीर पंजाल की पहाडी शृंखला थी—रूखी, कठोर और पथरीली। बड़ी-बड़ी उभरी हुई चट्टानों की उस ऊंची दीवार को देखकर अनुमान भी नही होता था कि उसके दूसरी तरफ एक ऐसी घाटी है जहा मीलो के विस्तार मे हरियाली ही हरियाली फैली है और आख जहां भी जा पड़े कुछ देर के लिए वही ठिठककर रह जाती है।

वह बैरियर तक जाकर लौट पड़ा। जब वह कुन्तल के पास से होकर आगे निकलने लगा, तो कुन्तल ने आवाज़ से उसका रास्ता काट लिए, "सुनिए।"

वह रुक गया, मगर उसने कहा या पूछा कुछ नही। कुन्तल भी कुछ देर चुप रही। फिर आखें अपने हाथो पर स्थिर किए बोली, "देखिए, रात को जम्मू से हमे आगे के लिए कोई बस मिल जाएगी ?"

चन्दन कुछ न कहकर गम्भीर दृष्टि से उसकी तरफ देखता ही रहा तो उसने फिर कहा, "हम सोच रहे है, रात को पठानकोट से जो भी गाड़ी मिल जाए, हम उसी से चले जाए।"

"रात को जम्मू से तुम्हे कोई बस नही मिलेगी।" चन्दन अब पहले से और गम्भीर हो गया। "और कल से पहले शायद पठानकोट से कोई गाडी भी नही मिलेगी।"

कुन्तल पल-भर खामोश रहकर जैसे कुछ सोचती रही। फिर कुछ बेबसी के स्वर मे बोली, "तो कल सुबह पठानकोट से पहली गाड़ी कौन-सी मिलेगी ?"

"इसका पता पठानकोट चलकर ही लगेगा। मुझे सिर्फ इतना पता है कि कश्मीर मेल वहा से शाम को चलती है।"

"मगर हम वहा कल शाम को नही रुकना चाहते। अगर कोई गाड़ी उससे पहले जाती हो, तो हम उसी से चले जाना चाहेगे।"

चन्दन कुछ देर चुप रहकर अपना होंठ काटता रहा। फिर बोला, "तुम जो भी चाहोगी, उससे मैं तुम्हें मना नही करूगा। तुम जिस गाड़ी से चाहो, चली जाना। *मगर बात इतने से ही समाप्त नही हो जाती। हम लोगों के बीच कहने-समझने को अभी* बहुत कुछ बाकी है।"

कुन्तल की भौंहे कुछ खिच गईं और नाक जरा-ज़रा कांपने लगी। उसकी सलाइयां भी पहले से तेज़-तेज़ चलने लगीं। मगर उसने कहा कुछ नही, सिर्फ अपनी आखें हटाकर दूसरी तरफ देखने लगी।

"इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम्हारे जाने से पहले बात बिलकुल साफ कर ली जाए। कोई भी इंसान अपना पूरा जीवन इस तरह दुविधा में रहकर नही काट सकता। तुम आगे के लिए अपने मन में क्या सोचती और चाहती हो, यह तुम मुझसे साफ-साफ कह सकती हो।"

"हम आगे के लिए न तो कुछ सोचते हैं और न ही कुछ चाहते हैं।" कुन्तल की सलाइयां और भी तेज़ चलने लगी। "आप अपने मन मे जो कुछ सोचते हो, वह हमसे कह दीजिए।"

"मैं जो कुछ सोचता हू, उसकी बात तुम रहने दो। वह मैं पहले भी कितनी बार कह चुका हूं।" चन्दन की सांस जैसे शब्दो के लिए कम पड़ने लगी। "मगर मेरे सोचने का तो कोई अर्थ अब रहा नही। मुझे अब सिर्फ इतना जानना है कि तुम अपने मन में क्या चाहती हो, क्योंकि तुम्हारे मन की बात का मुझे अभी तक पता नही चल सका।"

"हमने आपसे कह दिया है, हम अपने लिए न तो कुछ चाहते हैं और न ही इस विषय में हमे कोई बात करनी है।"

"तो तुम्हारा मतलब है कि बात जहां आज है, आगे भी वही की वहीं बनी रहेगी ?"

"मतलब आप कुछ भी समझ लें। हम अभी सिर्फ इतना जानते हैं कि हमें पठानकोट से सीधे सुरजा चले जाना है।"

"यह बात मैं सुन चुका हूं," चन्दन अपने ही आवेश से स्तब्ध-सा बोला, "मगर जो बात हमें स्पष्ट जान लेनी है, वह है कि इसके बाद हम लोग आपस मे मिलते जा रहे

हैं या नहीं। इस बात के जितने पहलू हैं, उनके सम्बन्ध में हमें अच्छी तरह सोच लेना चाहिए। मैं चाहता हूं कि जम्मू से चलने तक स्थिति बिलकुल साफ हो जाए जिससे आगे के लिए किसी के मन में कोई दुविधा न रहे," और कुछ क्षण चुपचाप उसकी तरफ देखकर वह फिर टहलता हुआ वहां से आगे चला गया।

बस का हार्न बजा तो वे दोनों उसी तरह अपनी सीट पर आ बैठे। चन्दन फ़ैसला करने जा रहा था? क्या वह उस हठ के सामने इतना ही बेबस था कि उसे अपनी कुहनी खिड़की पर रख ली और बाहर देखने लगा। वही बल खाई सड़क। पहाड़ के शरीर के चिकने रोयें—हरी घास, चीड़, खुबानी। हवा के चलने से रोयें कांप जाते और पहाड़ जैसे पुलकित होकर 'सी-सी' कर उठता। जाने कहां से सैकड़ों चिड़िया चहकने लगतीं। कुछ मील आगे घाटी का आकाश हल्के हल्के बादलों से घिरा था। स्याह, सफेद और सुरमई गुब्बारे बाहों में बाहें डाले घाटी में भटक रहे थे। आसपास और ऊपर नीचे बस धुंध ही धुंध। हर चीज़ धुंध के अन्दर नम होती जा रही थी। उसे लग रहा था, जैसे वही धुंध उसके अन्दर भी भर रही हो और वह स्वयं भी उसमें खोया जा रहा हो। सड़क उसकी आंखों के सामने से फीते की तरह फिसल रही थी। इंजन की गुर्राहट और पहियों की आवाज़ के साथ फीता तेज़ी से घूम रहा था और वह जड़ होकर उसे घूमते देख रहा था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह कुछ सोच रहा है या नहीं। शायद वह कुछ भी नहीं सोच रहा था, या शायद इतनी तेज़ी से इतना कुछ सोच रहा था कि कोई भी विचार मन में स्पष्ट नहीं हो पा रहा था। मन की वह जड़ता जड़ता थी या जड़ता जैसी अस्थिरता? उस जड़ता या अस्थिरता का अनुभव उसे पहले भी कितनी ही बार हुआ था जबकि विचारों के छोटे-छोटे खंड आपस में उलझ जाते थे और उन्हें सुलझाकर देखने के प्रयत्न में हर चीज़ और गहरे गुंझल में उलझने लगी थी। परन्तु उस गुंझल में एक चीज़ फिर स्पष्ट रहती थी—एक दर्द या एक प्रश्नचिह्न—कि वह सब ऐसे क्यों था? क्यों उसी के जीवन में वह सब ऐसे घटित हुआ था? क्यों उससे, शायद अकेले उसी से, परिस्थितियां इस तरह आ टकराई थीं कि किसी भी तरह अब अपने को संभाले नहीं बनता था? और उस असमंजस, उस गुंझल में ही ज़िन्दगी हाथों से फिसलती जा रही थी और वह उस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कर पा रहा था। यह सब ऐसे क्यों था? क्यों जीवन वैसे नहीं ढला था जैसे कि उसने ढालना चाहा था, या जैसे उसने सोचा था कि उसे ढलना चाहिए। और अब? अब आगे जीवन का रूप क्या होने जा रहा था? क्या आगे के लिए वह उसे संभालकर ठीक दिशा दे सकता था? और यदि नहीं, तो आने वाले कल की रूपरेखा क्या होने जा रही थी? क्या एक लड़की का सोचने का ढंग और उसके अन्दर का हठ ही उसके जीवन की हर चीज़ को तोड़ने के लिए कुछ भी नहीं कर सकता था?

फीता तेज़ी से घूम रहा था और अतीत के कई छोटे-छोटे खंड, कई छोटे-छोटे चित्र एक साथ मस्तिष्क में उभर रहे थे। ऐसे कई-कई बातों के टुकड़े दिमाग में मंडरा रहे थे जो जब-तब उसने कही थीं, या जो उससे कही गई थीं, या जो कई बार चाहा था कि कही जाएं, मगर कही नहीं जा सकी थीं। और उस सारे द्वन्द्व के ऊपर घिरती कई एक छायाएं थीं। बम्बई की एक सुबह। शिमला की एक शाम। और उन छायाओं के बीच से गुज़रती कई एक लकीरें। कार्ट रोड से घाटी की तरफ उतरती पगडंडी। एक पसीने से भीगा चेहरा। घाटी के उस तरफ से आती रेलगाड़ी की आवाज़। गुसलखाने में गिरता पानी। शीशे से छनकर आती धूप। एक वाक्य, "यह आप अपनी अमानत देख लीजिए!"

आगे पूरी सडक बादलो से घिरी थी। चार हाथ आगे की हर चीज़ धुंधली दिखाई देती थी। पहाड़, पेड, घाटी और सड़क, सब कुछ अदृश्य होता जा रहा था। हुआ हुआ-हुआ हवा के थपेडे और टपटप्-टपटप् वर्षा की बूदें। उसने शीशा चढा दिया। कुछ देर लगता रहा जैसे चढाई का वह रास्ता उन्हे सीधा आकाश मे ले जा रहा हो—पहाड, पेडो और चिड़ियो से बहुत ऊपर। मगर धीरे-धीरे बादल ऊपर उठने लगा और पहले से कही तीखी बूदें शीशे से टकराने लगी। वह शीशे से सिर सटाए देखता रहा। धुध मे से बाहर आती सड़क। उस सड़क से बहुत दूर एक और सडक। उस सड़क की मुडेर, सडक से घाटी की तरफ उतरती पगडडी, हेडमास्टर बर्टन की त्योरियां, ज़ीने पर गूजती पैरों की आवाज़, चादी की घटियों जैसी हंसी और एक बहुत आत्मीय स्वर, "देखिए, आप खुद उन्हे लाने जाएंगे, जाएगे न ?"

"देखो," उसने कुन्तल की तरफ मुडकर कहा।

कुन्तल अपने मे ही खोई हुई बैठी थी। कुछ चौककर बोली, "कहिए।"

"मैं तुम्हे एक सुझाव देना चाहता हूं। अगर हम लोग आपस मे बात करके किसी निश्चय पर नही पहुच सकते, तो क्यों न सारी स्थिति को किसी तीसरे आदमी के सामने रखकर देख लिया जाए ? तुम चाहो, तो हम लोग यहा से सीधे लखनऊ चल सकते है। वहां तुम्हारे पिता के सामने बैठकर सारी बात की जा सकती है।"

"हमे किसी के सामने कोई बात नही करनी है।" कुन्तल के माथे की सलवटें पहले से गहरी हो गई। "हम लोग बच्चे तो हैं नही जो किसी तीसरे आदमी के सामने बैठकर बात करेंगे।" और उसकी तरफ से आखें हटाकर सामने की तरफ देखते हुए उसने कहा, "और पिताजी के सामने तो हम कभी भी कोई बात नही करेंगे।"

"तो ठीक है। मैंने यह बात तुम्हारी नज़र से कही थी।" कहकर चन्दन ने फिर शीशे मे चेहरा सटा लिया और बाहर देखने लगा।

रामबन के घातक मोड। गहरी खड्ड मे चनाव शोर करता बह रहा था। आवाज़ वातावरण मे गूज पैदा कर रही थी। धार इस तरह पत्थरों से टकरा रही थी और इतनी तेज़ी से आगे बढ़ रही थी कि लगता था, वह सारे पहाड़ को तोड़कर रहेगी। एक मोड पूरा होने से पहले दूसरा मोड, फिर तीसरा। वह फफकता हुआ खूनी नाला सामने आ गया, जो सडक पर से बहता हुआ चनाब मे गिरता है और जिसकी वजह से हर बरसात के दिनो मे सड़क कई-कई बार टूट जाती है। नाला पार करते हुए बस दो एक बार धचके खा गई। बहुत-से छीटे उड़े और क्षण-भर के लिए सबके दिल दहल गए। मगर बस सही-सलामत नाला पार करके मोड मुड गई। फिर रामबन की दुकानें, चनाव का झूलता पुल, दरिया के साथ-साथ जाती सडक की चढाई···। वर्षा और बादल अब पीछे रह गए थे और दरिया की सतह पर खुली धूप फैली थी।

कुन्तल ने अपनी साडी के पल्ले को अच्छी तरह बाहों के गिर्द लपेट लिया। उसके मन मे बहुत उलझन हो रही कि सफर पूरा होने मे क्यो नही आ रहा। घण्टों से वे लोग इसी तरह हिचकोले खाते बैठे थे और सफर था जैसे एक ही मुकाम के इर्द-गिर्द घूमते जा रहे हों, या जैसे सडक के अन्दर से ही और सडक निकलती आ रही हो और रास्ता मकडी के जाले की तरह अपना ताना-बाना और-और फैलाए जा रहा हो।

फिर अभी जम्मू पहुंचकर एक रात—जाने कैसी रात—जो उन लोगो के साथ-साथ काटनी थी और उसके बाद आगे खुरजा तक का सफर ··। क्या सफर किसी तरह छोटा नही हो सकता था ? कुछ ऐसा नही हो सकता था कि रास्ते के सब पड़ाव जल्दी-जल्दी तय हो जाएं और वह तुरन्त अपने उस 'क्वार्टर' मे जा पहुचे जो उसका अपना,

एकमात्र अपना घर था और जहां रहते रात-दिन उसे उन दो आंखों का सामना नहीं करना पड़ता था जो जब-तब स्थिर होकर एक अभियोगपूर्ण दृष्टि से उसे देखने लगती थी, देखती रहती थी···!

वह उन आंखों के अभियोग का क्या उत्तर दे सकती थी ? स्थिति क्या ऐसी थी कि उसे आपस में बात करके स्पष्ट किया जा सके ? कितने दिनों से उस स्थिति को अपने मन में स्पष्ट करने के लिए वह अन्दर ही अन्दर संघर्ष कर रही थी ? परन्तु वह संघर्ष क्या उसे किसी भी परिणाम तक ले जा सका था ? एक और जाल था जो जीवन को बाहर से अपने में कसे था। वह कितना चाहती थी कि अपने को दोनों में से किसी एक जाल से मुक्त कर सके, परन्तु उसके चाहने से कुछ भी तो नहीं होता था। और ऐसी स्थिति में वह किसी से बात कर ही क्या सकती थी ? क्या उसने कभी सोचा था कि उसे जीवन में अपने ही अन्दर के संघर्ष से इस तरह पिसना पड़ेगा ? कहां यूनिवर्सिटी के वे दिन, जीने का वह उत्साह और मन की बड़ी-बड़ी आकांक्षाएं, और कहां आज की यह घिसटती-छटपटाती ज़िन्दगी। क्या उसके अन्तर्द्वन्द्व को उसके अतिरिक्त और कोई भी समझ सकता था ?

उसने अपने विचारों को रोका और सिर को उठाकर मील के पत्थर की प्रतीक्षा करने लगी। एक पत्थर से दूसरे पत्थर तक जाने कितना फासला था कि तय होने में ही नहीं आता था। दूर से एक पत्थर आता दिखाई दिया, मगर पास आने पर वह ठीक से पढ़ा नहीं गया। ठीक से पढ़ने के लिए खिड़की की तरफ उचकना ज़रूरी था। उसने अपने अन्दर से उठती उसास को दबाया और दूसरे पत्थर की प्रतीक्षा करने लगी। जाने कितनी-कितनी प्रतीक्षा के बाद फिर दूसरा पत्थर आया। उस पर भी इतनी ही लिखाई पढ़ी जा सकी—कुद तीन मील। अभी कुद ही तीन मील था, तो जम्मू जाने कितनी दूर होगा ?

"वह कोठी है जहां शेख अब्दुल्ला और उसके साथी नजरबंद हैं," पीछे की सीट से किसी ने कहा।

लोग उचक-उचककर खिड़कियों से बाहर देखने लगे। स्नेह भी अपनी सीट से उठकर उनकी तरफ आ गई और उनके ऊपर झुककर बाहर देखने का प्रयत्न करने लगी। उसे कोठी नज़र नहीं आई, इसलिए वह और भी झुक गई। उसके वक्ष का उतार चढ़ाव चेहरे के बहुत पास आ जाने से चन्दन ने चेहरा एक तरफ हटा लिया। इससे पति-पत्नी के शरीर फिर एक बार आपस में छू गए। स्नेह जब वहां से हटकर अपनी सीट पर वापस चली गई, तो चन्दन को खिड़की के शीशे का ध्यान आया। शायद शीशा लगा रहने से ही स्नेह को इतना झुकना पड़ा था। और शीशा बिलकुल साफ भी नहीं था। वर्षा की कुछ एक बूंदें अभी तक उस पर ठहरी थीं। और शीशे की तरफ देखते हुए उसे लगने लगा जैसे वह भी शीशे के एक घर में कैद हो और नन्ही-नन्ही बूंदें शरारती आंखों की तरह बाहर से उसे देख रही हों। उसने शीशा नीचे गिरा दिया।

बस कुद पहुंचकर रुक गई। चाय के लिए पूछने वाले लड़कों ने बस को घेर लिया। कई-एक घिसी हुई आवाज़ें एक साथ सुनाई देने लगीं। चाय के गिलासों से उठता धुआं खिड़की के बहुत पास था और शरीर की जकड़ी नसों को एक निमन्त्रण देता जान पड़ता था।

"चाय पिओगी ?" उसने जकड़े-से स्वर में पूछ लिया।

कुन्तल ने सिर हिलाकर मना कर दिया। उसका सिर हल्का दर्द कर रहा था और उसका बहुत मन था कि चाय की एक प्याली पी ले, चाहे कैसी भी हो। मगर उस

मन स्थिति मे वह अपने को 'हां' कहने के लिए तैयार नहीं कर सकी। चन्दन ने भी उससे दूसरी बार नही पूछा और बस के चलने तक नाली में मे भरते चश्मे के पानी को देखता रहा, जो जाने कब से व्यर्थ बह रहा था और व्यर्थ ही आवाज कर रहा था···।

बस चली, तो धूप ढलने लगी थी। ढलती धूप से स्पर्श से छाबियां सुनहरी हो उठी थी। पक्षियो की डारें नन्हे-नन्हे पख फड़फड़ाती अपने बसेरों की तरफ लौट रही थी। उतरती साझ के वातावरण मे चन्दन के मन मे एक झुटपुटी-सी अनुभूति भरने लगी—सुख, घर, विश्राम की सारी कल्पनाओ और सारे अभावो की एक मिली-जुली अनुभूति। उसके मन में वह प्रश्न, वह दर्द अब और भी तीखा होकर चुभने लगा। क्या सचमुच पूरा जीवन उसे बिना घर के ही काटना था? बिना उस छोटे-से कोने के, जहा सास आए, तो मन उदास न हो और सुबह होते ही अपना-आप खाली और व्यर्थ न लगने लगे? क्या सचमुच घर की वह कल्पना जीवन-भर के लिए उससे छिन चुकी थी, और उसे वापस लाने के लिए वह कुछ भी नही कर सकता था? उसने कुन्तल की तरफ देखा।

"मैं सोचता हू कि तुम न भी चलना चाहो, तो मैं एकाध दिन लखनऊ हो आऊ," वह बोला, "तुम कभी भी इस विषय में स्पष्ट बात कर सकोगी, इसमें मुझे सन्देह है।"

"आपको जाना हो, हो आइएगा," कुन्तल ने उदासीन भाव से कहा, "मगर पिताजी आजकल वहा हैं नही, किसी काम मे बाहर गए हैं।" और होठ बद करके अपने अंदर के उबाल को रोके, वह फिर सामने देखने लगी। तो क्या सचमुच स्थिति आ गई थी जब एक न एक तरफ फैसला कर लेना अनिवार्य था? परन्तु एक तरह से यह फैसला क्या पहले ही नही हो चुका था? क्या बात मुह से कहने से ही कही जाती है और व्यक्ति बिना कहे उसे स्वीकार नही कर सकता? उन दोनो के सम्बन्ध में कहा और कैसी लकीर थी, क्या वे दोनो ही नही जानते थे? फिर उस बात को दुहराकर मुह से कह लेने मे क्या रखा था? जो स्थिति थी, वह थी ही। उस विषय में बात करके क्या उसे बदला जा सकता था?·· मगर वह उस विषय में सोच क्यों रही थी? क्या वह इस मन स्थिति मे थी कि उस विषय में कल से आगे सोच सके? उसके सामने तो इस समय केवल एक ही लक्ष्य था और वह यह कि जल्दी अपने 'क्वार्टर' मे वापस पहुंच जाए—वहा, जहा चारो ओर से दरवाजे बद करके कुछ देर आखें मूंदकर पडी रह सके। उसके बाद की बात? उसके बाद की बात बाद में ही···।

ज्यो-ज्यो अंधेरा उतर रहा था, बस की रफ्तार तेज होती जा रही थी। ड्राइवर [illegible] और [illegible] पहुंचती [illegible] उतनी तेजी से नही कट रहा था, जितनी तेजी से वह चाहती थी। बीच के पडाव, एक के बाद एक. पीछे छूटते जा रहे थे। कई छोटी-छोटी बस्तियां आई और निकल गई। ऊधमपुर भी जाने कब आया और कब निकल गया। माइलो-मीटर की सूई अब कभी-कभी पैंतीस को भी पार कर जाती थी। वह रफ्तार मन को सहारा दे रही थी, मगर साथ ही उससे कुछ घबराहट भी महसूस हो रही थी—जैसे कोई चीज अतड़ियों मे से उठकर ऊपर को आना चाह रही हो? शायद उसे बहुत भूख लग आई थी।

माइलो-मीटर की सूई सहसा पीछे की तरफ गिरने लगी और गिरते-गिरते सिफर के हिंदसे तक पहुच गई। नन्दिनी की सुरंग के बाहर बहुत-सी बसें और ट्रक रुके

हुए थे। दूसरी तरफ भी वही स्थिति होने से यातायात बंद हो गया था।

और बस वहां रुकी, तो जैसे रुक ही गई। दस मिनट, बीस मिनट, आधा घंटा। न जाने कितना समय बीत गया, मगर यातायात रुका ही रहा। बसों की बत्तियां कितनी ही बार जलीं और बुझ गईं। इंजन गुर्राए और खामोश हो गए। पीछे के ड्राइवर ज़ोर-ज़ोर से हार्न बजा रहे थे और आगे के ड्राइवर उतरकर आपस में बहस कर रहे थे। किसी एक तरफ की गाड़ियां पीछे हटतीं, तभी दूसरी तरफ की गाड़ियां सुरंग में से निकलकर आगे जा सकती थीं। मगर इधर के ड्राइवर समझते थे कि उधर वालों को पीछे हटना चाहिए और उधर के ड्राइवर सोचते थे कि इधर वालों को अपनी गाड़ियां पीछे हटानी चाहिए। परिणाम यह था कि दोनों तरफ और-और गाड़ियां आकर खड़ी होती जा रही थीं और जमघट बढ़ता जा रहा था। कुछ-एक ड्राइवर, जो कि उस बहस में नहीं पड़ना चाहते थे, अपने सिगरेट सुलगाकर एक तरफ जा बैठे थे और तमाशबीनों की तरह उस झगड़े को देखते हुए आपस में हंसी-मज़ाक कर रहे थे। बहस की स्थिति को देखते हुए लगता था कि सारी गाड़ियां रात-भर वहीं रुकी रहेंगी।

कुन्तल के लिए उतनी देर सीट पर बैठे रहना असम्भव हो रहा था। ज्यों ज्यों समय बीत रहा था उसका उतावलापन बढ़ता जा रहा था। उसे झुंझलाहट हो रही थी कि आस-पास उतनी भीड़ क्यों इकट्ठी हो गई है और क्यों उनकी बस उस भीड़ को चीरकर आगे नहीं जा सकती? वह स्थिति जैसे उसे चिढ़ाने के लिए खड़ी की गई थी और वह क्योंकि उसके सामने बिलकुल असमर्थ थी, इसलिए अपनी असमर्थता सामने शीशे में से उसे अपनी तरफ मुंह बिचकाती प्रतीत होती थी। उसका वश होता तो वह वहीं बस से उतर जाती और पैदल आगे चल देती। मगर पैदल चलकर वह कितना रास्ता तय कर सकती थी, और उस ठंडे अंधेरे में आखिर कहां, किस मुकाम पर जाकर पहुंच सकती थी?

घबराहट बहुत बढ़ने लगी, तो वह सीट से उठकर नीचे चली गई। सड़क पर दूर तक बसों और ट्रकों का जमघट था और उससे पीछे घना अंधेरा। किसी-किसी समय अंधेरे में दो सितारे-से चमक उठते जो धीरे-धीरे पास आते जाते और रुकी हुई गाड़ियों की लम्बी पंक्ति में एक और गाड़ी आकर शामिल हो जाती। पीछे खड्ड की ढलान भी थोड़ी दूर तक ही दिखाई देती थी और आगे घना अंधेरा जंगल सरसरा रहा था। उसे लग रहा था कि अभी-अभी उसका सिर चकराने लगेगा और वह चक्कर खाकर नीचे जा गिरेगी। पकड़ने की कोई चीज़ पास में होती, तो वह उसे पकड़ लेती या किसी पुल की मुंडेर वहां होती, तो कुछ देर के लिए उस पर बैठ जाती। मगर ऐसी कोई भी चीज़ या कोई भी जगह वहां आस-पास नहीं थी। वह बहुत कठिनाई से अपने को संभाले हुए वहां खड़ी रही और सामने के सुनसान अंधेरे को देखती रही। ड्राइवरों की बहस लम्बी होती जा रही थी—जाने उस बहस को कभी समाप्त भी होना था या नहीं!

और जंगल में दूर तक मेंढकों की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं—टुक टर्र, टुक टर्र, टुक टर्र। टर्र, टर्र, टर्र। टुक टुक टुक टर्र...।

बस जम्मू के टूरिस्ट सेंटर पर पहुंची, तो रात के साढ़े दस बज चुके थे। हालांकि बत्तियां जल रही थीं, फिर भी वहां का वातावरण देर से सो चुका लगता था।

बस की छत से सामान उतरवाकर चन्दन ने इधर-उधर देखा, तो कुन्तल उसे नज़र नहीं आई। मनोहर छत से अभी सामान उतरवा रहा था। स्नेह उतरते सामान को नीचे रखवा रही थी। उसके घर के और लोग जाकर बरामदे में बैठ गए थे। चन्दन कुछ देर असमंजस में खड़ा रहा। आते हुए वे लोग रात को कुद के रेस्ट-हाउस में ठहरे

थे और वह मनोहर के साथ उसके कमरे में रहा था। मगर इस बार उसे अपने और कुन्तल के लिए अलग ही कमरे का प्रबन्ध करना था। बहुत-सी बसें एकसाथ आई थी इसलिए उसे डर था कि देर करने से शायद टूरिस्ट सेंटर मे कमरा न मिल सके और उसे इधर-उधर होटलो की खाक छाननी पडे। उसने जेब में हाथ डालकर पैसो को गिना। अभी पचास-पचपन रुपये बाकी थे। वहा से घर पहुंचने तक तो काम चल ही सकता था। उसके बाद की बात बाद में सोची जा सकती थी। जब कुछ देर खड़े रहने पर भी कुन्तल उसे दिखाई नही दी, तो स्नेह से अपना सामान देखने के लिए कहकर वह कमरे का पता करने चल दिया।

"वह आए, तो उससे कहना, मैं कमरा देखकर आ रहा हू।"

'टूरिस्ट सेंटर' में उस समय एक ही कमरा खाली था जो थोड़ी हील-हुज्जत के बाद मैनेजर ने उसे दे दिया। जब वह लौटकर बस के पास आया, तो मनोहर भी वहा से चला गया था और स्नेह अकेली उसके और अपने सामान के पास खड़ी थी।

"और लोग कहा गए?" उसके पास आकर स्नेह से पूछ लिया।

"बहनजी शायद उधर खाने के कमरे में गई है," स्नेह ने कहा, "और मनोहर भाई साहब सामने के होटल मे कमरा देखने गए है।"

"अच्छा, मैं जाकर अपने कमरे में सामान रखवा दूं, "चन्दन कुछ खिसियाना पड़कर बोला, "मनोहर से कहना कि मैं यही तीन नम्बर मे हूं।"

और कुली देखने के लिए वह कुछ कदम आगे चला तो स्नेह ने पीछे से कहा, "देखिए आप जरा देर ठहर नही जाएगे? मनोहर भाई साहब लौट आए, तो चले जाइएगा। मैं यहा पर अकेली खडी हूं।"

"हां-हां, मनोहर के आने तक मैं रुक जाता हू।" चन्दन अब पहले से भी खिसियाना पड गया, "मुझे ध्यान नही रहा कि तुम यहां अकेली खड़ी हो। और वह लौटकर एक पैर अपने बिस्तर पर रखकर खडा हो गया। परन्तु उस तरह खड़े रहना उस समय उसके लिए आसान नही था। उसके मन की हलचल पहले से कही बढ गई थी और उसे महसूस हो रहा था जैसे वह उसी समय कुछ करना चाहता हो। उसकी उत्तेजना उसकी बाहो और पिंडलियों मे सरसरा रही थी और मन हो रहा था कि और कुछ नही तो वह बिस्तर को ही ठोकर लगाता कुछ दूर तक ले जाए।

"आप बहुत दिनों से लुधियाना नही आए," स्नेह के गले की महीन आवाज से वह चौंक गया। स्नेह बस की आड़ मे खड़ी थी, इसलिए बत्ती की रोशनी उसके चेहरे पर नही पड रही थी।

"हा, आने का मौका नही बना," कहते हुए चन्दन ने एक बार अहाते के गेट तक नजर दौड़ा ली। एक बीडी पीते कुली को छोड़कर अहाते में कोई भी नही था।

"मौका तो बनाने से बनता है," स्नेह आखें झुकाकर अपने हाथो के नाखूनो को देखती बोली, "घुरजा तो कितनी बार जाते होंगे। लुधियाना तो रास्ते में ही पड़ता है।"

"बहुत दिनो से खुरजा तो क्या, कही भी नही गया। इस बार भी मनोहर के कहने से ही उसके साथ कश्मीर चला आया था," कहते हुए चन्दन ने कठिनाई से अपनी उमागो को दबाया और बोला, "जितने दिन बेकार हू, उतने दिन तो कही जाने-आने की बात सोच भी नहीं सकता।"

स्नेह कुछ देर चुप रहकर अपने नाखूनों को देखती रही। फिर बोली, "तो इस बार आप बहनजी को छोड़ने उनके साथ खुरजा नही जाएगे? वह कह रही थी कि

पठानकोट से सीधी सुरजा चली जाएंगी ।"

"अभी कुछ कह नही सकता। शायद जाऊ, शायद न भी जाऊ।"

"लुधियाना तो आप बस एक ही बार आए हैं। किसी दिन भाई साहब के साथ ही चले आइए।"

चन्दन को सहसा कुछ महीने पहले का वह दिन याद हो आया। शिमला से लौटते हुए पहले वह अम्बाला रुका था, और वहा से चलकर कुछ देर के लिए लुधियाना रुक गया था। दिसम्बर की बाईस तारीख थी—उसके ब्याह की पहली वर्षगांठ। उसने सोचा था, मनोहर उस दिन लुधियाना मे ही होगा, क्योकि अपने एक पत्र मे मनोहर ने लिखा था कि बीस से क्रिसमस की छुट्टी हो रही है, और उसी दिन वह लुधियाना जा रहा है। मगर वहा पहुचकर पता चला था कि मनोहर अभी अमृतसर में ही है, वहा नही आया। वह उसी समय वहां से लौट पड़ने के लिए तैयार हो गया था, मगर स्नेह और उसके छोटे भाई जीत ने मिलकर उसका बैग और पेन कही छिपा दिए थे और तब वापस दिए थे जब वह रात को रोटी खा चुका। रात को उन लोगों से विदा लेकर जब वह स्टेशन पर पहुचा, तो उसकी गाडी निकल गई थी। दूसरी गाड़ी रात के दो बजे जाती थी, इसलिए वह सर्दी में ठिठुरता हुआ चार घंटे स्टेशन की बेंच पर बैठा रहा था और प्लेटफार्म पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलता रहा था, फिर भी उसे उस ठिठुरन मे कही एक उष्णता महसूस होती रही थी— उस घर के वातावरण की उष्णता जहा से वह आया था। मनोहर की मां सुभागी आग के पास बैठी जाने कितनी देर उससे बातें करती रही थी और उसे अपने घर के सम्बन्ध मे कितना कुछ बताती रही थी। उसे यह महसूस तक नही हुआ कि उस घर मे वह पहली बार आया है और उन लोगो से केवल एक बार का ही परिचय है।

"मनोहर भाई साहब दशहरे पर तो जरूर ही घर आएगे। आप उसके साथ आइएगा," स्नेह ने फिर कहा।

"अभी तो देखना है कि दशहरे तक क्या-क्या होता है," चन्दन ने अनायास कह दिया। उसे लगा जैसे स्नेह की बात का उत्तर न देकर वह बात उसने अपने से ही कही हो। दशहरे के दो महीने बाकी थे। उतने दिनों में सचमुच कुछ भी तो हो सकता था।

मनोहर के आने पर उसने अपना सामान वहां से उठवा लिया। जब वह सामान रखवाकर वापस आया, तो अहाता बिलकुल खाली हो चुका था। थोड़ी-थोडी हवा चल रही थी। हवा में सांय-सांय करते पेड वातावरण को और भी सुनसान बनाए दे रहे थे। वह अहाता पार करके बरामदे की सीढ़ियां चढ़ा और अन्दर खाने के कमरे मे चला गया। वहां उस समय ज्यादा लोग नही थे। चार-छह व्यक्ति ही एक तरफ बैठकर खाना खा रहे थे। कुन्तल खाना खा चुकी थी और बैरे की तश्तरी में पैसे रखकर वहा से उठ रही थी।

"यह कमरे की चाबी है," चन्दन ने पास जाकर चाबी उसकी मेज पर रख दी। "अहाते मे दाईं तरफ जाकर सामने तीन नम्बर का कमरा।"

कुन्तल ने चुपचाप चाबी मेज से उठा ली और बाहर चली गई। चन्दन जाकर कोने की एक मेज के पास बैठ गया। उसके मन में अस्थिरता के साथ-साथ अब एक शिथिलता और उदासी भी भर रही थी। जैसे वह बहुत तेजी से किसी ऊंची जगह की सीढ़िया चढ रहा था और चढते-चढ़ते थकान की वजह से उसके कदम भारी हो उठे थे। खाना सामने आ गया, तो वह इस तरह खाने लगा, जैसे खाकर अपने पर एहसान कर रहा हो। जैसे खाने का कोई स्वाद या अर्थ न हो, एक परिमाण में कुछ चीज़ें सामने पड़ी हों और उसे उन्हें गले से नीचे उतार लेना हो।

उसने पानी का गिलास उठाकर मुंह से लगाया, तो एक सवाल पानी के ठंडे जायके की तरह ही उसकी नस-नस में उतर गया—"क्या अब और इस तरह जिया जा सकता है ?" गिलास मेज पर रखते हुए उसका हाथ जरा-सा कांप गया। वह चावल चम्मच में भरकर चम्मच को मुंह के पास लाया, तो कई-एक दाने उसके कपड़ों पर बिखर गए। "कोई भी आदमी पूरी जिन्दगी इस तरह कैसे जी सकता है ?" वह जल्दी-जल्दी दाल-चावल मिलाने लगा। फिर उसने बहुत-सा चावल एक साथ मुंह में भर लिया। "नहीं, यह इस तरह नहीं चल सकता, और एक दिन भी इस तरह नहीं चल सकता। मगर हल इसका क्या हो सकता है ?" उसने मुंह के कौर को किसी तरह निगला और थोड़ा-सा पानी पी लिया। उसके हाथ धीमे पड़ गए और उसे लगने लगा कि चावल का यह ढेर वह कभी खाकर समाप्त नहीं कर सकता। वह धीरे-धीरे एक तरफ से थोड़ा-थोड़ा चावल लेकर खाने लगा। "मगर जैसे भी हो, कोई न कोई हल तो ढूंढना ही होगा। बात को ऐसे तो नहीं छोड़ा जा सकता।' एक बड़ी-सी मिर्च उसके मुंह में चली गई थी, जिसने उसकी जबान को जला दिया। उसने फिर पानी पिया और खाना छोड़कर गिलास को दोनों हथेलियों में घुमाने लगा। "मगर हल हो क्या सकता है ?"

वह बहुत देर तक उसी तरह बैठा रहा और धीरे-धीरे चावल निगलता सोचता रहा। प्लेट में चावल समाप्त हो गया, तो भी वह मेज पर कुहनियां रखे सामने देखता बैठा रहा, जैसे कि उस समस्या का हल अभी-अभी सामने दीवार पर लिखा जाना हो। कुछ देर में कमरे की बत्तियां बुझने लगीं, तो वह चौंक गया। उसने बिल मंगवाया, पैसे दिए और बाहर निकल आया।

अहाते की बत्तियां बुझ चुकी थीं, जिससे वह पहले से भी वीरान लग रहा था। बसें एक तरफ कतार में खड़ी थीं और उनके ड्राइवर और कंडक्टर वहां पास ही सोने के लिए बिस्तर बिछा रहे थे। वह कुछ क्षण बरामदे में खड़ा रहा, फिर अपने कमरे की तरह चल दिया। उनके कमरे को छोड़कर तब तक और सब कमरों की बत्तियां भी बुझ चुकी थीं।

वह कमरे में आया, तो कुन्तल खिड़की के पास एक कुरसी पर बैठी अपनी बुनाई में लगी थी। दोनों बिस्तर ज्यों के त्यों बंधे रखे थे। वह जाकर चुपचाप अपने बिस्तर की पेटियां खोलने लगा। पेटियां खोलकर उसने बिस्तर का सारा सामान एकसाथ ही बाहर निकाल लिया। लिहाफ, चादर और तकिये के अलावा मोजे, जूते और मैले कपड़े भी निकलकर फर्श पर बिखर गए। उन्हें समेटकर उसने बिस्तरबंद की पेटियां लपेटीं और जिस किसी तरह उल्टा-सीधा बिस्तर बिछाकर अपना पाजामा लिए गुसलखाने में चला गया। वहां से आकर वह पलंग पर बैठ गया और जूते उतारकर अपने पैर झटकने लगा।

कुन्तल की आंखें दूसरी तरफ थीं, फिर भी वह उसके हर काम को देख रही थी। [illegible]। शिमला में रहते हुए [illegible] ती थी। उसके मन में [illegible]। कुछ ही क्षणों में वह जैसे एक बार फिर उस जीवन की सारी कटुता और ऊब में से गुजर गई। उसने आंखें मूंदकर किसी तरह अपने उबाल को दबाया और सलाइयां गोले में फंसाकर कुर्सी से उठ खड़ी हुई। अपना बिस्तर खोलकर उसने उसमें से बिछाने का सामान निकाल लिया और एक-एक सलवट निकालती हुई इस तरह बिछाने लगी जैसे वह बिस्तर सोने के लिए न होकर केवल प्रदर्शन के लिए हो। बिस्तर बिछाकर वह कपड़े बदलने के लिए गुसलखाने

में चली गई और वहा से आकर अपने पलंग पर एक तरफ बैठ गई।

कुछ देर दोनों की आंखें आपस में मिली रही। उस नजर में एक चुनौती की आशंका भी थी, कुछ करने का आवेश भी और कुछ न कर पाने की खीझ भी।

"बत्ती बुझा दीजिए," कुन्तल ने अपनी आखें हटाते हुए कहा, "सुबह पाच बजे से पहले उठकर तैयार होना है। साढे पांच बजे बस यहा से चल देगी।" और उसने बिस्तर में लेटकर अपना आधा शरीर चादर से ढक लिया।

"मैंने तुमसे कहा था कि यहा से चलने से पहले हमे सारी बात साफ कर लेनी है।" चन्दन अपने दोनों हाथ पलंग के चौखटे पर रखे थोड़ा आगे को झुक गया। उसके माथे की नसें फड़क रही थी और कान गर्म हो रहे थे। उसके सिर के अदर उसे कोई हथौड़े चला रहा था।

कुन्तल पल-भर सीधी आंखो मे उसे देखती रही। चन्दन के झुके हुए कधो, फैले हुए घुटनों मे कुछ ऐसा अवहेलना का भाव था कि उसके मन की तुरशी सहसा कई गुना बढ गई।

"और हमने कह दिया था कि हमें कोई भी बात नही करनी है," उसने कहा और अपना सिर-मुंह चादर से ढांपकर करवट बदल ली। क्षण-भर बाद चादर के अदर से ही उसने कहा, "बत्ती बुझा दीजिए।"

"तो इसका मतलब है कि हम लोगो का सम्बन्ध आज से और इसी समय से समाप्त हो जाता है?" चन्दन ने अपने मुंह तक आया जहर बाहर उगल दिया और पल-भर की प्रतीक्षा के बाद उठकर एकदम से बत्ती बुझा दी। कुन्तल के बिस्तर से सिर्फ करवट बदलने की आवाज़ सुनाई दी और फिर वातावरण मे एक मनहूस खामोशी छा गई जो धीरे-धीरे अपने ही बोझ से और गहरी होती गई।

मवाली

उस लडके का परिचय केवल इतना ही है कि वह शाम के वक्त चौपाटी के मैदान मे जमा होनेवाली भीड मे घूम रहा था। चौपाटी का मैदान काफी खुला है, और जब समुद्र भाटे पर हो, तो और भी खुला हो जाता है। शाम के वक्त वहा पर सब तरह के लोग जमा होने हैं—वे जो वहा तफरीह के लिए आते हैं, और वे जो वहां आनेवालो के लिए तफरीह का सामान प्रस्तुत करते है, और वे जो दूसरो को तफरीह करते देखकर लुत्फ ले लेते है। वहा धार्मिक प्रवचनो से लेकर आदम और हौवा की परम्परा के पालन तक, सभी कुछ होता है। अधेरे और रोशनी में इतना सुन्दर समझौता और कही नही होगा जितना चौपाटी के मैदान मे है।

और वह लडका नगे पाव, नगे सिर, सिर्फ घुटनों तक की लम्बी मैली कमीज पहने, वहां एक सिरे से दूसरे सिरे की तरफ चल रहा था। एक जगह एक नेता का भाषण समाप्त हुआ था, और मजदूर शामियाना उखाड रहे थे। जमीन पर फैले शामियाने पर से गुजरते हुए, लडके ने रुककर चारों तरफ देखा, और हाथ उठाकर भाषण देने की मुद्रा से गले मे कुछ अस्पष्ट आवाज़ें पैदा की। जब एक मजदूर उसे हटाने के लिए उसकी तरफ लपका, तो वह उसे जीभ दिखाकर भाग खडा हुआ। भागते हुए वह एक ऐसे आदमी से टकरा गया, जो ज़मीन पर लेटकर कराहता हुआ भीख माग रहा था। वह आदमी ऊंची

आवाज़ में उसे गाली देने लगा। लड़के ने उसकी तरफ होंठ बिचका दिए, और एक पत्थर को पैर से ठोकर मारकर दूर उड़ा दिया। फिर उसकी नज़र मलाबार हिल की तरफ से आती बसों और कारों की पंक्ति पर स्थिर हो गई। उधर देखते हुए अनायास उसके पैरों का रुख बदल गया और वह दूसरी दिशा में चलने लगा।

उसकी उम्र तेरह या चौदह साल की होगी। रंग सांवला था और नक्श भी खास अच्छे नहीं थे। मगर उसकी आंखों में अजब बेबाकी और आवारगी थी। आंखें सड़क की तरफ रहने से वह एक रेत में पड़े बड़े-से पत्थर से ठोकर खा गया, जिससे उसका घुटना थोड़ा छिल गया। उसने छिले हुए घुटनों पर थोड़ी रेत डाल ली, और थोड़ी-सी रेत अपनी हथेली पर लेकर उसे फूंक से उड़ा दिया।

पचास गज़ दूर से समुद्र की उमड़ती लहरों का शब्द सुनाई दे रहा था। वह कुछ देर लहरों को किनारे की तरफ आते, और एक फेनिल लकीर छोड़कर वापस जाते देखता रहा। हर लहर के बाद दूसरी लहर और आगे तक बढ़ आती थी। पच्छिमी क्षितिज के पास बादलों के दो लम्बे सुरमई टुकड़े, समुद्र से निकले बड़े-बड़े मगरमच्छों की तरह, एक-दूसरे से उलझे हुए थे। लड़का उन मगरमच्छों को एक-दूसरे में विलीन होते देखता रहा। फिर वह बैठकर रेत में से सीपियां बटोरने लगा। केकड़े और उसी तरह के दूसरे जन्तु उछलते हुए समुद्र की तरफ से आते थे और पास से निकल जाते। लड़का टूटी हुई सीपियों को दूर फेंक देता, और साबुत सीपियों में से जो उसे खूबसूरत लगतीं उन्हें कमीज़ से साफ करके जेब में डाल लेता। अंधेरा धीरे-धीरे गहरा हो रहा था, इसलिए सीपियां ढूंढना कठिन हो रहा था। लड़का एक बड़ी-सी सुन्दर सीपी को, जो एक ओर से टूटी हुई थी, हाथ में लेकर अनिश्चित दृष्टि से देखता रहा कि उसे जेब में रख लेना चाहिए या नहीं? पर उसकी आंख ने टूटी हुई सीपी को स्वीकार नहीं किया। उसने उसे वहीं रेत में रख दिया और उठ खड़ा हुआ। उसकी आंखें कई पल गरजती हुई लहरों पर टिकी रहीं, फिर उधर को मुड़ गईं जिधर चौराहे की बत्ती का रंग लाल से पीला और पीले से हरा हो रहा था, और लाल रंग की बसें घरघराती हुई एक-दूसरी के पीछे दौड़ रही थीं।

एक बच्चा अपनी मां की उंगली पकड़े नाचता हुआ आ रहा था। वह उसकी तरफ देखकर मुसकराया। एक गुब्बारे वाले के पास से निकलते हुए उसने उसके गुब्बारों को छेड़ दिया। गुब्बारे वाले ने घूरकर गुस्से से उसे देखा, तो उसने उसकी तरफ मुंह करके ज़ोर की सीटी बजाई और हाथ से जेब में भरी हुई सीपियों का वज़न और फैलाव महसूस करता हुआ, तेज़-तेज़ चलने लगा।

सड़क के उस पार, चरनी रोड स्टेशन पर, एक लोकल गाड़ी मैरीन लाइन्ज़ से आकर रुकी थी, जो सीटी देकर अब ग्रांट रोड की तरफ चल दी। कुछ ही देर में गाड़ी से उतरे हुए लोगों की भीड़ चरनी रोड के पुल पर आ गई। भइया लोग दूध बेचकर खाली पीपे लिए आ रहे थे। कुछ घाटी युवतियां एक-दूसरी को छेड़ती हुई पुल की सीढ़ियां उतर रही थीं। लड़के की आंखें काफी देर पुल के उस हिस्से पर लगी रहीं, जहां से हर पल नये-नये चेहरे प्रकट होकर पास आने लगते थे, और कुछ ही देर में सीढ़ियों से उतरकर अदृश्य हो जाते थे।

"सिप्-सिप्-सिर्रर्र," लड़के ने मुंह में दो उंगलियां डालकर आवाज़ पैदा की और मुसकराकर चारों तरफ देखा कि लोगों पर उस आवाज़ की क्या प्रतिक्रिया हुई है। यह देखकर कि उसकी आवाज़ की तरफ किसी का ध्यान नहीं गया, उसने बाहें फैला लीं और तनकर चलने लगा। काले पत्थर के बुत के पास पहुंचकर उसने उसकी दो परि-

कमाएं ली, और भागता हुआ वहां पहुंच गया जहा एक परिवार के छः-सात लोगों मे एक गेंद को ऊंची-से-ऊंची उछालने की प्रतियोगिता चल रही थी। वह अपने रूखे बालो को खुजलाता और बीच-बीच में बाईं पिंडली को दाए पैर से मलता हुआ, उनका खेल देखने लगा। एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की, जिसने अपना नीला दोपट्टा कसकर कमर से लपेट रखा था, गेंद के साथ ऊपर को उछल ती, तो लड़के की एडिया भी जमीन से तीन-चार इंच ऊपर उठ जाती।

"ए लड़के !" किसी ने पास से उसे आवाज़ दी।

उसने घूमकर देखा। एक पारसी अपने सोए हुए बच्चे को कधे से लगाए खडा था और उसे हाथ के इशारे से बुला रहा था। उसने होठ गोल करके एक बार पारसी की तरफ देख लिया, फिर खेल देखने में व्यस्त हो गया।

"ए लड़के, इधर आ," पारसी ने फिर आवाज दी, "इस बच्चे को उठाकर सीतल बाग तक ले चल। एक आना मिलेगा।"

"खाली नही है," लड़के ने सिर और हाथ हिलाकर मना कर दिया।

"साले का दिमाग तो देखो," पारसी बड़बडाया, "खाली नही है।···चल, आ इधर, दो आना मिलेगा।"

"खाली नही है," लड़के ने और भी बेरुखी के साथ कहा, और जेब से एक सीपी निकालकर उसे हवा में उछाला और दबोच लिया।

"साला वदमाश है," पारसी ने अपनी पत्नी से, जो गरदन एक तरफ को झुकाए ढीले-ढाले ढंग से खडी थी, कहा। फिर बच्चे को उठाए वह सडक की तरफ चल दिया।

गेंद उछालने की प्रतियोगिता समाप्त हो गई थी। वह लड़की अब अकेली ही बांह घुमा-घुमाकर गेंद को पीछे की तरफ उछाल रही थी। एक बार बाह घुमाने में गेंद ज़्यादा घूम गई और तेज़ी से समुद्र की तरफ बढ़ चली। लड़की के मुह से हल्की-सी 'ओह' निकली। तभी वह लड़का तेज़ी से गेंद के पीछे भाग खड़ा हुआ। इससे पहले कि गेंद सामने से आती लहर की लपट मे चली जाती, उसने टखने-टखने पानी में जाकर उसे पकड लिया—हालाकि अंधेरा इतना हो चुका था कि गेंद और पत्थर मे फर्क कर पाना मुश्किल था। लडका गीली गेंद को ज़रा-ज़रा उछालता हुआ, उन लोगों के पास ले आया।

"बड़ी तेज़ आख है तेरी !" भारी गरदन वाले अधेड व्यक्ति ने, जो उस परिवार का पिता था, गेंद उसके हाथ से लेते हुए गिलगिली हंसी के साथ कहा।

"किस तरह चिमगादड की तरह लपका था !" नीले दोपट्टे वाली लड़की बोली। इन बातों के उत्तर में लडके के गले से सिर्फ खुश्क-सी हसी का स्वर सुनाई दिया।

"चल, हमारा सामान उठाकर ले चल," सूखी हड्डियों वाली स्त्री, जो शायद उस लड़की की मां थी, अहसास जताती हुई बोली।

"चलेगा ?" पुरुष ने उसे खामोश देखकर झिडकने के स्वर में पूछ लिया।

"चलेगा," लड़के ने उत्तर दिया।

"तो यह दरी तह कर ले और बाकी सामान समेटकर टोकरी मे रख ले," उस व्यक्ति ने दरी पर रखी प्लेटों और चम्मचों की तरफ इशारा किया।

लडके ने एक झिझक के साथ बिखरे हुए सामान को देखा, एक निगाह लड़की पर डाली, और झुककर वे चीज़ें इकट्ठी करने लगा।

"सब चीज़ें ठीक से रख, और जा, पहले प्लेटें और चम्मच धो ला," स्त्री ने उसे आदेश दिया।

आवाज में उसे गाली देने लगा। लड़के ने उसकी तरफ होंठ बिचका दिए, और एक पत्थर को पैर से ठोकर मारकर दूर उड़ा दिया। फिर उसकी नजर मलाबार हिल की तरफ से आती बसों और कारों की पंक्ति पर स्थिर हो गई। उधर देखते हुए अनायास उसके पैरों का रुख बदल गया और वह दूसरी दिशा में चलने लगा।

उसकी उम्र तेरह या चौदह साल की होगी। रंग सांवला था और नक्श भी खास अच्छे नहीं थे। मगर उसकी आंखों में अजब बेबाकी और आवारगी थी। आगे सड़क की तरफ रहने से वह एक रेत में पड़े बड़े-से पत्थर से ठोकर खा गया, जिससे उसका घुटना थोड़ा छिल गया। उसने छिले हुए घुटनों पर थोड़ी रेत डाल ली, और थोड़ी-सी रेत अपनी हथेली पर लेकर उसे फूंक से उड़ा दिया।

पचास गज दूर से समुद्र की उमड़ती लहरों का शब्द सुनाई दे रहा था। वह कुछ देर लहरों को किनारे की तरफ आते, और एक फेनिल लकीर छोड़कर वापस जाते देखता रहा। हर लहर के बाद दूसरी लहर और आगे तक बढ़ आती थी। पश्चिमी क्षितिज के पास बादलों के दो लम्बे सुरमई टुकड़े, समुद्र से निकले बड़े-बड़े मगरमच्छों की तरह, एक-दूसरे से उलझे हुए थे। लड़का उन मगरमच्छों को एक-दूसरे में विलीन होते देखता रहा। फिर वह बैठकर रेत में से सीपियां बटोरने लगा। केकड़े और उसी तरह के दूसरे जन्तु उछलते हुए समुद्र की तरफ से आते थे और पास से निकल जाते। लड़का टूटी हुई सीपियों को दूर फेंक देता, और साबुत सीपियों में से जो उसे खूबसूरत लगती उन्हें कमीज से साफ करके जेब में डाल लेता। अंधेरा धीरे-धीरे गहरा हो रहा था, इसलिए सीपियां ढूंढना कठिन हो रहा था। लड़का एक बड़ी-सी सुन्दर सीपी को, जो एक ओर से टूटी हुई थी, हाथ में लेकर अनिश्चित दृष्टि से देखता रहा कि उसे जेब में रख लेना चाहिए या नहीं? पर उसकी आंख ने टूटी हुई सीपी को स्वीकार नहीं किया। उसने उसे वहीं रेत में रख दिया और उठ खड़ा हुआ। उसकी आंखें कई पल गरजती हुई लहरों पर टिकी रहीं, फिर उधर को मुड़ गईं जिधर चौराहे की बत्ती का रंग लाल से पीला और पीले से हरा हो रहा था, और लाल रंग की बसें थरथराती हुई एक-दूसरी के पीछे दौड़ रही थीं।

एक बच्चा अपनी मां की उंगली पकड़े नाचता हुआ आ रहा था। वह उसकी तरफ देखकर मुसकराया। एक गुब्बारे वाले के पास से निकलते हुए उसने उसके गुब्बारों को छेड़ दिया। गुब्बारे वाले ने घूरकर गुस्से से उसे देखा, तो उसने उसकी तरफ मुंह करके जोर की सीटी बजाई और हाथ से जेब में भरी हुई सीपियों का वजन और फैलाव महसूस करता हुआ, तेज-तेज चलने लगा।

सड़क के उस पार, चरनी रोड स्टेशन पर, एक लोकल गाड़ी मैरीन लाइन्ज से आकर रुकी थी, जो सीटी देकर अब ग्रांट रोड की तरफ चल दी। कुछ ही देर में गाड़ी से उतरे हुए लोगों की भीड़ चरनी रोड के पुल पर आ गई। भइया लोग दूध बेचकर खाली पीपे लिए आ रहे थे। कुछ घाटी युवतियां एक-दूसरी को छेड़ती हुई पुल की सीढ़ियां उतर रही थीं। लड़के की आंखें काफी देर पुल के उस हिस्से पर लगी रहीं, जहां से हर पल नये-नये चेहरे प्रकट होकर पास आने लगते थे, और कुछ ही देर में सीढ़ियों से उतरकर अदृश्य हो जाते थे।

"खिर्र्‌खिर्र्‌-खिर्र्‌र्र्‌र," लड़के ने मुंह में दो उंगलियां डालकर आवाज पैदा की और मुसकराकर चारों तरफ देखा कि लोगों पर उस आवाज की क्या प्रतिक्रिया हुई है। यह देखकर कि उसकी आवाज की तरफ किसी का ध्यान नहीं गया, उसने बांहें फैला लीं और तनकर चलने लगा। काले पत्थर के बुत के पास पहुंचकर उसने उसकी दो परि-

कमाएं ली, और भागता हुआ वहां पहुंच गया जहां एक परिवार के छः-सात लोगों में एक गेंद को ऊंची-से-ऊंची उछालने की प्रतियोगिता चल रही थी। वह अपने रूखे बालों को खुजलाता और बीच-बीच में बाईं पिंडली को दाएं पैर से मलता हुआ, उनका खेल देखने लगा। एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की, जिसने अपना नीला दोपट्टा कसकर कमर से लपेट रखा था, गेंद के साथ ऊपर को उछलती, तो लड़के की एड़ियां भी जमीन से तीन-चार इंच ऊपर उठ जातीं।

"ए लड़के!" किसी ने पास से उसे आवाज़ दी।

उसने घूमकर देखा। एक पारसी अपने सोए हुए बच्चे को कंधे से लगाए खड़ा था और उसे हाथ के इशारे से बुला रहा था। उसने होंठ गोल करके एक बार पारसी की तरफ देख लिया, फिर खेल देखने में व्यस्त हो गया।

"ए लड़के, इधर आ," पारसी ने फिर आवाज़ दी, "इस बच्चे को उठाकर सीतल बाग तक ले चल। एक आना मिलेगा।"

"खाली नहीं है," लड़के ने सिर और हाथ हिलाकर मना कर दिया।

"साले का दिमाग तो देखो," पारसी बड़बड़ाया, "खाली नहीं है।···चल, आ इधर, दो आना मिलेगा।"

"खाली नहीं है," लड़के ने और भी बेरुखी के साथ कहा, और जेब से एक सीपी निकालकर उसे हवा में उछाला और दबोच लिया।

"साला बदमाश है," पारसी ने अपनी पत्नी से, जो गरदन एक तरफ को झुकाए ढीले-ढाले ढंग से खड़ी थी, कहा। फिर बच्चे को उठाए वह सड़क की तरफ चल दिया।

गेंद उछालने की प्रतियोगिता समाप्त हो गई थी। वह लड़की अब अकेली ही बांह घुमा-घुमाकर गेंद को पीछे की तरफ उछाल रही थी। एक बार बांह घुमाने में गेंद ज्यादा घूम गई और तेजी से समुद्र की तरफ बढ़ चली। लड़की के मुंह से हल्की-सी 'ओह' निकली। तभी वह लड़का तेजी से गेंद के पीछे भाग खड़ा हुआ। इससे पहले कि गेंद सामने से आती लहर की लपट में चली जाती, उसने टखने-टखने पानी में जाकर उसे पकड़ लिया—हालांकि अंधेरा इतना हो चुका था कि गेंद और पत्थर में फर्क कर पाना मुश्किल था। लड़का गीली गेंद को ज़रा-ज़रा उछालता हुआ, उन लोगों के पास ले आया।

"बड़ी तेज आंख है तेरी!" भारी गरदन वाले अधेड़ व्यक्ति ने, जो उस परिवार का पिता था, गेंद उसके हाथ से लेते हुए गिलगिली हंसी के साथ कहा।

"किस तरह चिमगादड़ की तरह लपका था!" नीले दोपट्टे वाली लड़की बोली। इन बातों के उत्तर में लड़के के गले से सिर्फ खुश्क-सी हंसी का स्वर सुनाई दिया।

"चल, हमारा सामान उठाकर ले चल," सूखी हड्डियों वाली स्त्री, जो शायद उस लड़की की मां थी, अहसास जताती हुई बोली।

"चलेगा?" पुरुष ने उसे खामोश देखकर झिड़कने के स्वर में पूछ लिया।

"चलेगा," लड़के ने उत्तर दिया।

"तो यह दरी तह कर ले और बाकी सामान समेटकर टोकरी में रख ले," उस व्यक्ति ने दरी पर रखी प्लेटों और चम्मचों की तरफ इशारा किया।

लड़के ने एक झिझक के साथ बिखरे हुए सामान को देखा, एक निगाह लड़की पर डाली, और झुककर वे चीज़ें इकट्ठी करने लगा।

"सब चीज़ें ठीक से रख, और जा, पहले प्लेटें और चम्मच धो ला," स्त्री ने उसे आदेश दिया।

उसने जूठी प्लेटें और चम्मच इकट्ठी कीं और समुद्र की तरफ चला गया। वहां उसने उन सबको रेत से मलकर साफ किया और अच्छी तरह अपनी कमीज़ से पोंछ लिया। एक प्लेट लौटती लहर के साथ बह चली, तो उसने झपटकर उसे पकड़ लिया, और फिर से साफ करने लगा। जब उसे तसल्ली हो गई कि सब चीज़ें ठीक से चमक गई हैं, तो वह सीटी बजाता हुआ उन्हें उन लोगों के पास ले आया।

"इतनी देर क्या करता रहा वहां?" स्त्री ने आते ही उसे झिड़क दिया। "हम लोग रात तक यहीं बैठे रहेंगे क्या? अब जल्दी कर!"

वह बैठकर प्लेटों को टोकरी में रखने लगा। स्त्री बिलकुल उसके पास आकर खड़ी हो गई, और बोली, "सब चीज़ें गिनकर रखना। प्लेटें पूरी छः हैं न?

लड़के ने प्लेटें गिनीं और सिर हिलाया।

"और चम्मच?" स्त्री झुककर देखती हुई बोली, "चम्मच तो मुझे पांच नज़र आ रही हैं।"

लड़के ने उन्हें गिना और कहा, "हां, चम्मच पांच ही हैं।"

"पांच कैसे हैं?" स्त्री ने कुछ सख्त स्वर में बोली, "पूरी छः हैं। एक चम्मच कहां छोड़ आया है?"

"छोड़ कहां आया होगा, जेब में रख ली होगी। इसकी जेब में देखो," पुरुष ने पास आते हुए कहा।

लड़के का हाथ सहसा अपनी जेब पर चला गया, और सीपियों के फैलाव को छूकर, उनके बचाव के लिए वहीं रुका रहा।

"निकाल चम्मच, जेब पर हाथ क्यों रखे हुए है?" पुरुष ने उसे डांटा। लड़का सहमा-सा टोकरी के पास से उठकर दो कदम पीछे हट गया।

"मैंने चम्मच नहीं ली," उसने कमज़ोर आवाज़ में कहा, "मुझे नहीं पता वह चम्मच कहां है।"

"तुझे नहीं तो तेरे बाप को पता है?" कहते हुए उस व्यक्ति ने लड़के को बालों से पकड़ लिया और उसके मुंह पर एक तमाचा जड़ दिया।

"दे दे चम्मच, तुझसे कुछ भी नहीं कहेंगे," स्त्री ने जैसे उस पर तरस खाकर कहा।

"मेरे पास चम्मच नहीं है," लड़का उसी स्वर में बोला, "मेरी जेब में मेरी अपनी चीज़ें हैं।"

"तेरी अपनी चीज़ें हैं!" पुरुष बड़बड़ाया। अभी देखता हूं तेरी कौन-सी अपनी चीज़ें हैं! और उसके लड़के के बालों को अच्छी तरह झिंझोड़कर उसका जेब पर रखा हाथ अपने मोटे हाथ में कस लिया। उस हाथ के दबाव से लड़के ने महसूस किया कि उसकी जेब में सीपियां टूट रही हैं। उसे जैसे उन सब सीपियों के चेहरे याद थे, और उसका हाथ पहचान रहा था कि उनमें कौन-कौन सी सीपी टूट रही है। उसने झटके से पुरुष के हाथ से अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश की। मगर हाथ तो क्या छूट पाता, पुरुष ने गर्दन को और दबोच लिया।

"साले, भागना चाहता है?" पुरुष होंठ चबाता हुआ बोला, "देखो, मैं कैसे अभी तेरी गत बनाता हूं! हटा हाथ!"

लड़के का हाथ उस मोटे हाथ के शिकंजे में निर्जीव-सा होकर हट गया। पुरुष ने उसकी जेब को बाहर से दबाया, जिससे कितनी ही सीपियां टूट गईं।

"है चम्मच।" उसने स्त्री की तरफ देखकर कहा, "हरामी ने अपने जेब में और

क्या-क्या चीजें भर रखी हैं !"

"चोर कहीं का !" लड़की, अपने छोटे भाइयों को लेकर अलग खड़ी थी, बोली।

लड़के का संघर्ष समाप्त हो गया था। पुरुष ने उसकी जेब में हाथ डालकर जेब की सब चीजें बाहर निकाल लीं। अधिकांश टूटी हुई सीपियां ही थीं। उनके अलावा और जो माल बरामद हुआ, वह था एक तांबे का तावीज, एक आधा खाया हुआ अमरूद, कुछ कौड़ियां और एक पैसा···।

"नहीं निकली ?" स्त्री ने सब चीजों पर नजर डालकर पूछा।

"नहीं," पुरुष खिसियाने स्वर में बोला, "जाने सूअर का बच्चा कहां छिप आया है !"

"उधर धोने ले गया था, वहीं कहीं रख आया होगा।" लड़की दूर से बोली।

"जरा-सी उम्र में साले सब कुछ सीख जाते हैं !" पुरुष ने लड़के की चीजें गुस्से में दूर फेंकते हुए कहा, "जा, ले जा अपनी चीजें मां के पास।"

अंधेरे में तांबे की चमक कुछ दूर तक दिखाई दी, फिर पता नहीं क्या कहां जा गिरा। सीपियां हल्की थीं इसलिए वे अधिक दूर नहीं गईं।

लड़का तेजी से उस तरफ भागा जिधर उसकी चीजें फेंकी गई थीं। वह अंधेरे में आंखें गड़ा-गड़ाकर देखने लगा। लोगों के फेंके हुए जूठे दोने, खाली नारियल और बहुत-सी मसली हुई थैलियां जहां-तहां पड़ी थीं। एक चमकती चीज को देखकर वह उसे उठाने के लिए झुका। वह सिगरेट का वरक था। एक जगह एक पत्थर को देखकर भी उसे तावीज का भ्रम हुआ। उसे उठाकर उसने जोर से वापस पटक दिया। फिर वह थैलियों और पत्तों को पैरों से दबा दबाकर टटोलने लगा। दो-एक खाली नारियलों को भी उसने झटककर देखा। काफी देर देखने पर भी कुछ नहीं मिला, तो वह सीधा खड़ा हो गया। वह पुरुष समुद्र के पास होकर वापस आ रहा था। लड़का तेजी से उसकी तरफ लपका।

"मेरा टिक्का दो !" उसने पुरुष के पास पहुंचकर गुस्से के साथ कहा।

"हट !" पुरुष उसे बांह से धकेलकर आगे बढ़ गया।

लड़के ने पीछे उसकी बांह पकड़ ली। बोला, "पहले मेरा टिक्का दो। मैं तुम्हें ऐसे नहीं जाने दूंगा।"

"हट जा, नहीं तेरा सिर फोड़ दूंगा," पुरुष बांह छुड़ाने की चेष्टा करने लगा। "भैन·· मवालीगीरी करता है ?"

"बहन की गाली मत दो !" लड़के का स्वर बहुत तीखा हो गया।

"कह रहा हूं हट जा, नहीं तो···" पुरुष ने उससे बांह छुड़ाकर उसे धक्का दे दिया। लड़के ने गिरते-गिरते किसी तरह अपने को संभाल लिया और झपटकर उसकी बांह में दांत गड़ा दिए। इससे वह पुरुष एक बार तड़प गया। फिर लड़के को जमीन पर गिराकर वह उसे जूते से ठोकरें लगाने लगा। उसकी स्त्री और बच्चे पास आ गए। आस-पास और भी कई लोग जमा हो गए। लड़का चिल्ला रहा था, 'मार दे। मेरी जान ले ले, लेकिन मैं अपना टिक्का लिए बिना नहीं छोड़ूंगा। तू मार, और मार···।"

तीन-चार व्यक्तियों के रोकने पर वह व्यक्ति मारने से हटा। उसकी पत्नी लोगों को सुनाकर कहने लगी, "इतना-सा है, मगर है पक्का चोर। हमने इसे सामान उठाने के लिए तय किया और सामान टोकरी में रखने को कहा। पर हमारे देखते-देखते ही इसने एक चम्मच गायब कर दी। पूछा, तो भाग खड़ा हुआ। अब उनकी बांह पर दांत काट रहा था। दुनिया में ऐसे-ऐसे नालायक भी होते हैं !"

और वह व्यक्ति रोकने वालो से कह रहा था, "मैंने तो इसे कुछ ठोकरें ही लगाई है। ऐसे हरामी को तो गोली से उड़ा देना चाहिए। साले एक तो चोरी करते हैं, ऊपर से मवालीगीरी करके दिखाते हैं।"

लड़का रो रहा था। दो व्यक्तियों की पकड़ मे छटपटाता हुआ कह रहा था, "मेरा टिक्का मेरी मा ने मुझे दिया था। मेरी मां मर चुकी है। अब मुझे वह टिक्का कहा से मिलेगा ? मैं इससे अपना टिक्का लेकर रहूगा। या यह मेरी जान ले ले, या मैं इसकी जान ले लूगा।" और वह पकड से छूटने के लिए और भी सघर्ष करने लगा।

उधर वह व्यक्ति कह रहा था, "मैं कहता हू इसे हवालात में दे देना चाहिए। इसकी तलाशी ली, तो इसकी जेब से ताबे का एक तावीज़-सा निकला। यह भी साले ने किसी का उठाया होगा। अब भी वह यहीं कही पड़ा है, पर उसके बहाने यह खून करने पर उतारू हो रहा है।"

"छोड़िए भाई साहब," कोई उसे समझाता हुआ बोला "आप शरीफ आदमी है। आप क्यो इसे मुह लगाते है ? चोरी करना और जेब काटना तो इन लोगो का धन्धा ही है। आपके साथ बाल-बच्चे हैं, आप चलिए यहा से।"

पास से गुजरते एक व्यक्ति ने दूसरे से पूछा, "क्या बात हुई है यहा ?"

"पता नही," उसे उत्तर मिला, "एक लड़के ने कुछ चोरी-ओरी की है। उसी के लिए उसे मार-आर पड रही है।"

"बम्बई मे इन लोगो के मारे नाक मे दम है।" उस व्यक्ति ने कहा।

"चौपाटी तो इन लोगो का खास अड्डा है!" दूसरे ने समर्थन किया।

"देखो कैसे गालियां बक रहा है!"

"बकने दीजिए। आप क्यो अपना वक्त खराब करते हैं ?"

वह व्यक्ति दूसरो के कहने-कहाने से स्त्री और बच्चों को साथ लेकर वहा से चल दिया। चलते हुए वह दूसरों को समझाने लगा कि ऐसे लडको के साथ सख्ती का बर्ताव करना क्यो जरूरी है। दो व्यक्ति अब भी लड़के को पकड़े हुए थे और वह उनके हाथ से छूटने की चेष्टा करता हुआ सबको गालिया दे रहा था। लोग उसे खीचते हुए दूसरी तरफ ले गए। जब उसे छोड़ा गया, तो वह थोड़ी दूर जाकर और ज़ोर से गालिया देने लगा। फिर वह सिसकिया भरता हुआ रेत पर औंधा पड़ गया।

चौपाटी के अधेरे भागो मे अधेरा पहले से गहरा हो गया था। मैदान मे टहलने वाले लोगों की सख्या बहुत कम हो गई थी। कही-कही कोई इक्का-दुक्का आदमी ही नजर आता था। दूर कोने मे एक आदमी एक लड़की की कमर मे बाह डाले बेंच पर बैठा उसे चूम रहा था। धीरे-धीरे समुद्र की लहरो और किनारे की बेंचों के बीच का फासला कम हो रहा था। 'स्पाश् शो' की आवाज़ के साथ हर लहर दूसरी लहर से आगे बढ़ आती थी। दूर क्षितिज के पास मछुआ-नावो की बत्तिया टिमटिमा रही थी। टिट् टिट् टिट्···टिट् टिट् टिट्···टिट् टिट् टिट्! वातावरण मे तरह-तरह की आवाज़ें फैली थी। अरब सागर की हवा 'हुआ-हुआं' करती सामने की इमारतो से टकरा रही थी।

काफी देर पडे रहने के बाद लडका रेत से उठ खड़ा हुआ, और आखो से ज़मीन को टटोलता घिसटते पैरों से चलने लगा। सहसा उसका पैर एक नारियल पर से उलटा हो गया। उसने नारियल को कसकर गाली दी और ज़ोर की एक ठोकर लगाई। नारियल लुढकता हुआ समुद्र की लहरों की तरफ चला गया। उसने पास जाकर उसे दूसरी ठोकर लगाई। नारियल सामने से आती लहर मे खो गया। उस लहर के लौटते-लौटते उसे नारियल फिर दिखाई दे गया। एक और लहर उमड़ती आ रही थी। इसलिए पास

न जाकर उसने वहीं से एक पत्थर नारियल को मारा, और साथ भरपूर गाली दी, "तेरी मां को···"

और फिर वह सामने से आती हर लहर को ज़ोर-ज़ोर से पत्थर मारने लगा, "तेरी मां को···तेरी बहन को···।"

हवामुर्ग

अप्रैल महीने में बर्फ गिरना अस्वाभाविक नही था, फिर भी रेस्ट-हाउस का चौकीदार संतराम सवेरे से कितनी ही बार हर मिलनेवाले से कह चुका था, "देखो जी, कैसी अनहोनी हो रही है ! ये कोई बर्फ पड़ने के दिन हैं ? मेरा ख़याल है, आज के इलेक्शन पर इसका ज़रूर असर पड़ेगा। आज घर से निकालना ही मुश्किल है, वोट देने कौन आएगा ?" वैसे उसे स्वयं विश्वास नही था कि लोग वोट देने नही आएंगे। पर बार-बार यह बात कहकर उसे कुछ सन्तोष ज़रूर मिल रहा था। तीन बजे के लगभग एक भारी-भरकम बाबू रेस्ट-हाउस के दो नम्बर कमरे मे आकर ठहरा, तो उसका सामान खोलते हुए भी उसने कहा, "बाबूजी, आगे कभी अप्रैल महीने में आपने इतनी बर्फ पडती देखी है ?"

पर इससे पहले कि वह बात के अगले हिस्से तक पहुंच पाता, बाबू ने उसे आदेश दिया कि वह भागकर उसके लिए एक गिलास गर्म पानी ले आए, उसे दांत साफ करने हैं। संतराम 'अभी लाया जी' कहकर चला गया, और जब वह लौटकर आया तो बाबू ने उसे चाय लाने का आदेश दे दिया।

चाय लाकर प्याली मे उंडेलते हुए संतराम ने दूसरी तरह बात शुरू की। "बाबूजी, आज यहां पर म्युनिसिपल कमेटी का इलेक्शन हो रहा है।" और अपनी बात मे बाबू की दिलचस्पी जगाने के लिए उसने तत्परता के साथ पूछा, "चीनी एक चम्मच लेंगे कि दो चम्मच ?"

"डेढ़ चम्मच !" बाबू ने बिना ज़रा भी दिलचस्पी ज़ाहिर किए कहा। संतराम ने चाय मे चीनी मिलाई और प्याली बाबू के हाथ में देते हुए कहा, "इस बार हमारे रेस्ट-हाउस का जमादार हरिजन टिकट पर इलेक्शन के लिए खड़ा हुआ है।"

"अच्छा ?" बाबू ने चाय के घूंट भरते हुए कहा, "देखो, वह मेरा जूता रखा है, उस पर अभी पालिश कर देना।"

संतराम बैठकर जूते पर ब्रश से पालिश लगाने लगा। पालिश लगाते हुए उसने कहा, "पर जी, न तो यह जमादार ख़ास पढ़ा-लिखा है और न ही यह कभी जेल गया है। वैसे भी जात का भंगी है—भला ऐसे आदमी का कमेटी मे लिया जाना कहां तक मुनासिब है ?"

बाबू बिना कुछ कहे अपना कम्बल लेकर बिस्तर पर लेट गया और एक पुस्तक के पन्ने पलटने लगा। संतराम ने जूते के फीते निकाल दिए और एक पैर को ब्रश से रगडता हुआ बोला, "वैसे जी, सब मेहतर इसे वोट दें, तो यह चुना भी जा सकता है। सरकार ने भी हद कर दी। कल तक ये जमादार कमेटी की नालियां साफ करते थे, आज जाकर कमेटी की कुर्सी पर बैठा करेंगे।"

वह पैर चमक गया था। उसे रखकर दूसरा पैर उठाते हुए उसने कहा, "आज

अगर यह चुन लिया गया तो मेरे लिए तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। पहले ही हम दोनों की अनबन रहती है, फिर तो एक दिन भी साथ काटना नामुमकिन होगा।"

कुछ क्षण वह चुपचाप जूते को रगड़ता रहा। फिर उसमें फीता डालता हुआ बोला, "अगर आज यह चुना गया, तो मैं सोचता हूं मैं नौकरी से इस्तीफा ही दे दूं। यह, साहब, मेरी इज्जत का सवाल है। क्या कहते हैं ?"

और बाबू के कुछ भी न कहने पर उसने जूता बाबू के सामने लाकर पूछा, "क्यों जी, ठीक चमक गया ?"

"हां, इधर रख दे," बाबू ने कहा, "और जाकर मेरे लिए एक कैप्स्टन की डिबिया ले आ।"

सिगरेट लाने का आदेश पाकर जब संतराम बाहर निकला, तो उसने देखा कि जमादार की बीवी बंतो लॉन के पौधों से फूल तोड़ रही है। अभी तीन दिन पहले उसकी बीवी शान्ति ने बंतो को फूल तोड़ने से रोका था। संतराम को लगा कि आज बंतो जान-बूझकर उसे चिढ़ान [illegible] पर उससे कुछ कहते नहीं बना। [illegible] नहीं मिल रहा था। दूस [illegible] सुन्दर लग रही थी। संतराम को जमादार माधो से इस बात की भी ईर्ष्या थी कि उसकी पत्नी इतनी सुन्दर थी, और तीन बच्चों की मां होकर अभी लड़की-सी नजर आती थी। दूसरी तरफ उसकी अपनी पत्नी शान्ति थी, जो अभी एक बच्चे की मां थी, पर लगता था उसकी जवानी दस साल पीछे रह गई है — सुन्दरता तो खैर वह कभी थी ही नहीं। जब शान्ति बंतो को कोई आदेश देती, तो खुद संतराम को उसका आदेश देना अस्वाभाविक लगता, हालांकि शान्ति के शिकायत करने पर कि बंतो बात-बात में उसकी अवहेलना करती है, वह मुंह से उसके अधिकार का समर्थन कर दिया करता। पर कभी शान्ति बंतो के सामने ही उसकी शिकायत करने लगती, तो वह निष्पक्ष मध्यस्थ की तरह कहता, "पता नहीं तुम लोग आपस में झगड़ती क्यों रहती हो ? यह सरकारी काम है, और हम सबका साझा फर्ज है। हमें आपस में मेल-जोल के साथ रहना चाहिए।"

बंतो के पास से निकलकर संतराम अपने क्वार्टर के पास पहुंचा तो उसने देखा कि वहां शान्ति किसी वजह से बच्चे पर झुंझला रही है। उसका ढीला-ढाला शरीर, फिर उससे भी ढीले-ढाले कपड़े और उस पर यह झुंझलाहट का भाव देखकर संतराम का अपना मन झुंझलाहट से भर गया। उसका मन हुआ कि उसे डांट दे, पर फिर कुछ सोचकर वह आगे बढ़ गया। पर सड़क पर आकर भी उसकी झुंझलाहट कम नहीं हुई। उसने बाबू के लिए कैप्स्टन की डिबिया खरीदी और एक लैंप की डिबिया अपने लिए ले ली। उसमें से एक सिगरेट सुलगाए हुए वह रेस्ट-हाउस की तरफ लौटा। चलते हुए उसके दिमाग में उन दिनों की धुंधली तसवीरें उभरने लगीं जब वह दिल्ली में बाबू गनपतलाल के थियेटर में काम करता था। वहां उसका काम बिजली की फिटिंग करने का था, पर दो-एक बार बाबू गनपतलाल ने उसे पार्ट करने का मौका भी दे दिया था। उस थियेटर में लगातार छह महीने तनख्वाह नहीं मिलती थी। फिर भी जिस दिन थियेटर बन्द हुआ, उस दिन उसे यही लगा था कि जैसे उसके जीवन का आधार उससे छिन गया हो। तनख्वाह तो कहीं भी काम करने से मिल सकती थी, पर थियेटर में जो कुछ एक्स्ट्रा मिलता था, वह और कहां मिल सकता था ? वहां मिन्ना थी, रूपा थी, सकीना थी ! वह वक्त अब बारह साल पीछे रह गया था। यह सोचकर उसे एक विचित्र गुदगुदी हुई कि मिन्ना की बेटी चंदा, जो तब आठ साल की थी, अब बीस

साल की होगी। उसके कदम कुछ तेज हो गए और वह इस विश्वास के साथ चलने लगा कि उसका असली क्षेत्र थियेटर ही है—वह यू ही रेस्ट-हाउस की चौकीदारी मे अपना जीवन नष्ट कर रहा है !

जब उसने दो नंबर कमरे में पहुचकर कैप्स्टन की डिबिया बाबू को दी, तब भी उसका मन थियेटर के वातावरण से बाहर नही निकला था। दियासलाई जलाकर बाबू का सिगरेट सुलगाते हुए उसने पूछ लिया, "क्यों बाबूजी, आजकल उधर कोई थियेटर कम्पनी नही रही ?"

"मुझे पता नही है," बाबू ने सिगरेट का कश खीचकर कहा।

"दरअसल बात यह है कि मेरी असली लाइन वही है," संतराम जरूरत न होने पर भी झाड़न उठाकर कुर्सी झाड़ने लगा, "चौकीदारी मे तो मैं ऐसे ही आ फंसा हूं। वरना पहले मैं दिल्ली में थियेटर मे ही काम करता था।"

"यहां तुम कब से काम कर रहे हो ?" बाबू ने पूछ लिया।

"यहां काम करते मुझे यही कोई दस-ग्यारह साल हुए हैं।"

"तब तो तुम यहां के पुराने आदमी हो !"

"जी हां।" ये शब्द संतराम ने आदतन ही कह दिए, वैसे वहां का पुराना आदमी कहलाना उस वक्त उसे अच्छा नही लगा।

"थियेटर में तुम कितने साल रहे ?" बाबू ने दूसरा सवाल पूछा। संतराम इस सवाल का सही जवाब अच्छी तरह जानता था। उस 'अपनी लाइन' में उसने कुल मिलाकर एक साल और सात महीने काम किया था, जिनमे से तनख्वाह सिर्फ आठ महीने की ही मिली थी। पर जवाब देने से पहले वह जैसे मन ही मन गिनती गिनने के लिए रुका, फिर बोला, "बस जी, यहां आने से पहले मैं वहीं था।" और उसके होंठो पर खिसियानी हंसी की एक रेखा दिखाई दे गई।

कुर्सी से हटकर अब अलमारी के शीशे झाड़न से साफ करता हुआ संतराम बाबू को अपने थियेटर के दिनों के अनुभव सुनाने लगा, तो बाबू ने उसे बीच में ही रोक दिया। कहा कि वह जल्दी से जाकर डाकखाने से दो लिफाफे और चार पोस्टकार्ड ला दे, उसे कुछ जरूरी चिट्ठियां लिखनी हैं।

डाकखाने से लिफाफे और पोस्टकार्ड खरीदते हुए उसने सुना कि जमादार माधो इलेक्शन जीत गया है—और लोग उसे मालाएं पहनाकर रेस्ट-हाउस की तरफ ला रहे हैं। उसने लैंप का नया सिगरेट सुलगाया और बाहर आकर उस तरफ देखा जिधर बर्फ से ढके रास्ते पर, तीन-चार सौ गज दूर लोग जमादार माधो को घेरे उसके साथ आ रहे थे। उनके रंगीन कपड़े बर्फ की सफेदी पर और भी रंगीन लग रहे थे। वे बाहें उठा-उठाकर उत्साह के साथ नारे लगा रहे थे। संतराम ने उधर से आते हुए एक नवयुवक से पूछा, "क्यों भाई, कितने वोटों से जीता है जमादार ?"

"सवा दो सौ वोटों से !" उस नवयुवक ने यह भी बताया कि रात को कमेटी के चेयरमैन ने जमादार को खाने पर बुलाया है।

"अच्छा !" संतराम की आखे फैल गई। उसने फिर उधर देखा, जिधर से लोग माधो को साथ लिए आ रहे थे। पल-भर वह इस अनिश्चय मे रहा कि उसे वहां रुकना चाहिए या रेस्ट-हाउस की तरफ चल देना चाहिए। फिर हाथ के कार्ड-लिफाफों से बहाना पाकर वह रेस्ट-हाउस की तरफ चल दिया।

वंतो अपने क्वार्टर के बाहर खड़ी माधो को दूर से आते देख रही थी। उसके चेहरे की चमक उस समय और बढ़ गई थी। कुछ और मेहतरानियां भी उसके पास

खड़ी थी। संतराम ने पास से निकलते हुए उससे कहा, "सुना है दो सौ वोटों से जीता है माधोराम !"

उसने आवाज़ में काफी मिठास लाने की कोशिश की थी, पर बंतो ने उसकी तरफ ध्यान ही नहीं दिया। उपेक्षा के साथ बोली, "हां, राजू अभी हमें बता गया है।"

संतराम मन ही मन उसे गाली देकर दो नम्बर कमरे की तरफ चल दिया। जब उसने कार्ड-लिफाफे बाबू को दिए, तो उसे आदेश मिला कि वह वहीं ठहरे, अभी उसे चिट्ठियां पोस्ट करने के लिए ले जानी होंगी। कुछ देर बाद जब वह चिट्ठियां लेकर निकला, माधो के साथी रेस्ट-हाउस के बाहर ज़ोर-ज़ोर से नारे लगा रहे थे, "हरिजन यूनियन ज़िन्दाबाद !" "माधोराम जमादार ज़िन्दाबाद !"

संतराम डाकखाने की तरफ न जाकर पीछे के रास्ते से डेरी फार्म के लेटर-बक्स की तरफ चल दिया, हालांकि वह जानता था कि डेरी फार्म के लेटर-बक्स में दिन की आखिरी डाक चार बजे निकल जाती है और उस वक्त साढ़े चार बज चुके थे।

दूसरे दिन सवेरे संतराम की पत्नी शान्ति की सूरत कुछ और-सी हो रही थी—उसकी आखें सूज रही थीं और चेहरे पर झाइयां पड़ी थीं। संतराम चाय लेकर दो नम्बर कमरे में आया, तो चाय उंडेलते हुए उसने बाबू से पूछा, "क्यों साहब, जमादार कमरा साफ कर गया है ?"

"उसकी बीवी साफ कर गई।" बाबू ने जवाब दिया।

"मेरे बारे में उसने कोई बात तो नहीं की ?" सन्तराम ने सिसियाने-से स्वर में पूछ लिया।

"नहीं !" बाबू ने एक शब्द में उत्तर देकर चाय की प्याली उठा ली।

अब सन्तराम व्याख्या करता हुआ कहने लगा, "साहब, आपको पता है, कल जमादार इलेक्शन जीत गया है ? बड़े साहब ने रात को इसे और इसकी बीवी को खाने पर बुलाया था। पता नहीं, इन लोगों ने वहां मेरी क्या-क्या शिकायत की होगी। मैंने सोचा शायद आपसे भी जमादारिन ने कुछ कहा हो।"

"मुझसे किसी ने कोई बात नहीं की !" बाबू ने हल्के से उसे झिड़क दिया।

सन्तराम कुछ क्षण चुप रहा। फिर बोला, "साहब, मेरा स्वभाव ऐसा है कि मैं किसी से लड़ना-झगड़ना पसन्द नहीं करता। पर मेरी घरवाली का अपनी ज़बान पर काबू नहीं है। वह रोज़-रोज़ जमादारिन से लड़ पड़ती थी, जिससे जमादार की मेरे साथ लड़ाई हो जाती थी। मैंने इसे कई बार समझाया, पर यह समझती ही नहीं थी। आज रात फिर मुझसे नहीं रहा गया। मैंने दो हाथ ऐसे लगा दिए हैं कि अब आगे कभी उनसे उलटी बात नहीं करेगी।"

बाबू ने चाय की प्याली ट्रे में रखते हुए कहा कि वह ट्रे उठाकर ले जाए। संतराम ट्रे उठाता हुआ बोला, "अब तो बड़ा साहब भी जमादार की ही सुनेगा। उसने साहब से मेरी कोई उलटी-सीधी शिकायत कर दी, तो बताइए मैं कहां का रहूंगा? औरत जात इन चीज़ों को नहीं समझती। मुसीबत तो आदमी की होती है, जिसकी नौकरी का सवाल होता है।"

और ट्रे उठाए हुए वह बाहर निकल आया। बरामदे के सिरे पर उसे जमादार माधो दिखाई दे गया। उसके पास पहुंचकर सन्तराम बोला, "क्यों भई, जीत लिया इलेक्शन माधोराम? कल सुनकर बहुत ही खुशी हुई। हम गरीब लोगों की भी अब कमेटी में सुनवाई हो जाएगी। अब लगता है कि हां, सचमुच में ही मुल्क आज़ाद हुआ है।"

और क्षण-भर रुके रहने पर भी जब और कुछ कहने को नही मिला, तो वह ट्रे संभाले अपने क्वार्टर की तरफ बढ़ गया। वहां उस समय शान्ति एक हाथ से बच्चे का कान पकड़े गालियां देती हुई दूसरे हाथ से उसे पीट रही थी।

उलझते धागे

घंटाघर की घड़ी ने अभी-अभी नौ बजाए हैं।

थोड़ी देर पहले रिज पर काफी चहल-पहल थी। सैर करनेवालो के झुण्ड के झुण्ड नीचे माल रोड की तरफ जा रहे थे और उधर मे ऊपर की तरफ आ रहे थे। अब वहां पर खामोशी छा गई है। किनारे की बेंचों पर बैठकर इस लोक से उस लोक तक की चर्चा करने वाली बूढो की मण्डली भी उठकर चली गई है। वह अफगानी टोपी वाला डाक्टर, जो रेलिंग के सहारे खड़ा होकर सिगरेट के कश खींच रहा था, अब बड़े अस्पताल की गोरी नर्स के साथ बातें करता हुआ कैंथू के रास्ते पर चला गया है।

माल रोड सुनसान हो गई है। वैसे माल रोड इसका पुराना नाम है। अब सरकार ने इसका नाम बदलकर लाजपतराय रोड कर दिया है। परन्तु नया नाम पाकर भी इस सड़क का रंग-ढंग वही पुराना है। वही लोग आते है और रोज़ उसी तरह चहलकदमी करके चले जाते हैं। पर खैर, माल रोड अब सुनसान हो गई है। रिज पर वीरानी छा गई है। थोड़ी देर पहले घण्टाघर की घडी सूइयां बहुत तेज़-तेज चल रही थीं मगर अब जैसे एक ही जगह पर जम गई हैं। ऊपर के सिनेमाघर से आवाज़ें आ रही हैं, जैसे पहाड की चोटी पर कोई भटकी हुई रूह जोर-जोर से चिल्ला रही हो।

हवाघर के बाहर इस वक्त हम चार आदमियों के सिवा और कोई नही है। हमारे आगे हमारा खाली रिक्शा है और फिर दूर तक कोलतार की लम्बी सडक है। हमें यहां बैठे सवा-डेढ घण्टा हो गया है। आज सारा दिन कोई भी सवारी नही मिली। अड्डे से संजौली और सजौली से यहां तक बस खाली रिक्शा ही खीचा है। अब तो नौ बज गए हैं, अब सवारी मिलने की कोई उम्मीद भी नही है। फिर भी बैठकर इंतजार तो करेंगे ही। कहते हैं, सवारी और मौत का कोई पता होता। सवारी और मौत !··· मेरा बाप फेफडो के बुखार में मरा था। अब तो उसे मरे भी पांच साल हो गए। पांच साल से मैं सवारियां खींच रहा हूं। मेरा बाप सत्रह बरस का था जब वह इस काम मे लगा था। मैं जब लगा था तो मैं पूरे चौदह का भी नही था। हमारा यह पुश्तैनी धंधा है। लेकिन एक बात मेरी समझ में नही आती—हम सवारियां ढोते हैं कि पेट भरें और पेट भरते हैं कि सवारियां ढोएं—बड़ी अजीब बात लगती है।

हम चारो ने बीड़ियां सुलगा रखी हैं। बीड़ी का लम्बा कश खीचना मुझे बहुत अच्छा लगता है। बीड़ी का आगे का हिस्सा एकदम से चमक उठता है, जैसे उसमें जान आ जाती है। मुंह से हटाते ही बीडी फिर बेजान हो जाती है। बहुत-सी बातें हैं जो मेरी समझ में नहीं आतीं। कभी कोई बात समझ मे आ जाती है और फिर एकदम से निकल जाती है।···रिक्शा खीचने में मुझे एक बात अच्छी लगती है। आदमी दिन-भर एक जगह से दूसरी जगह की तरफ चलता रहता है। एक जगह टिककर मजा नही आता। मगर जब कभी भरी हुई घास पर लेटने को मन हो या चीड़ की टहनियां तोड़ने को मन हो, तो भी रिक्शे के आगे जुते रहो, यह बुरा लगता है। जब मेह बरसता है या ओले

पड़ते हैं और बरफ गिरती है तो गांव की दुकान के अंधेरे की याद करके बड़ा हिरस होता है। मन होता है कि घर जाकर एक कोने में दुबक जाएं और तम्बाकू पीते हुए आग तपाते रहें। मगर कहा ? घर बैठे रहें तो धंधा कौन करेगा और रोटी कौन कमाएगा ? कभी-कभी तो पैर बरफ से सुन्न हो जाते हैं, नीचे में पैर में पत्थर गड़ने हैं, एक-एक कदम उठाना मुश्किल हो जाता है, फिर भी रिक्शा लिए भागते रहते हैं—आखिर रोटी का मामला है, काम नही करें तो खाना कहां से खाएं ?

हवाघर के अन्दर एक बाबू बीवी के साथ बैठा है। लगता है कि दोनों का नया-नया ब्याह हुआ है। दोनों एक-दूसरे से सटकर बैठे हैं, पर बिलकुल नावाकिफों की तरह कभी-कभार ही एकाध बात कर लेते हैं। कभी दोनों की आंख मिली रहती हैं और कभी हाथ। दोनों बड़े मग्न होकर बैठे हैं।

"ठंड हो गई है !" बीवी ज़रा कांपकर कह रही है।

बाबू होंठो में से सिर्फ चूमने की आवाज़ निकालकर चुप हो गया है। उसका ध्यान शायद दूसरी तरफ है।

"देखो, मेरे पैर के तलुवे पर कितना बड़ा छाला पड़ गया है !" बीवी अपना सैंडल उतारकर बाबू को अपना पैर दिखा रही है, "मुझे पैदल चलने की ज़रा आदत नही है।"

मगर बाबू का ध्यान कही और है—शायद माल रोड पर, या वहां से भी दूर, बहुत दूर, न जाने पहाड़ो से भी आगे—वह जाने किस सोच में पड़ा हुआ है।

यहा पैरो मे कितने ही सूराख हो रहे हैं। पैरो को छूकर मुझे वैसी ही झुरझुरी होती है जैसी दीमक-खाई लकड़ी को छूकर होती है। यह अगूठे के नीचे एक बड़ा सूराख है, इसके आस-पास कितने ही छोटे-छोटे सूराख और हैं। अब तो पैरों की चमड़ी बिलकुल मर गई है। बर्फ और पत्थर को छोड़कर और किसी चीज़ का पैरों के नीचे पता ही नहीं चलता। शिब्बी मेरे पैरो के सूराखो पर उंगलियां फेरती है तो उन ... । मगर जब वह देर तक हाथ फेरती रहती है तो ... और हल्की-हल्की सिहरन महसूस होने लगती ... पो मे लेकर मलना मुझे बहुत अच्छा लगता है। पहले उसकी उगलियां बड़ी मुलायम थी। अब तो रोज़-रोज़ घास छीलने मे उसकी उंगलियां भी कड़ी हो गई हैं और उसका मास फटा-सा रहने लगा है। उसके पैरों में भी अब सूराख हो गए हैं। बेचारी रोज़ एक गट्ठर घास काटती है और ऊपर मंडी मे बेचने के लिए लाती है। उसका बाप बड़ा हरामखोर है। बुड्ढा आप हाथ तक नही हिलाता और सारा काम उसी से कराता है। शिब्बी कहीं मेरे घर में आ जाए तो मैं कभी उसे घास बेचने के लिए न जाने दूं। मंडी वालो की नजर कौन रोक सकता है ? मगर उसके बाप को तो उसका सौ रुपया चाहिए, इतना रुपया कहा से आए ? और जब तक रुपया नही, उससे ब्याह भी नही हो सकता। मैं कहता हूं, बुड्ढे को छोड़ हम यहा से कहीं और चले चलते है, पर उसकी समझ मे बात आती ही नहीं। मूरख बुड्ढे को रोटियां खिला-खिलाकर परान दे देगी।

रात को गाव भी पहुचना है। शिब्बी ने कहा था, आज रात वह तिरसूल वाले शिखर के नीचे मिलेगी। गाव है तो अड्डे से दो ही मील मगर रास्ता बड़ा बेढब है। है। हम तीन आदमी अक्सर साथ ही जाते हैं इसलिए रास्ता ज़रा ठीक से कट जाता है। लौटते समय कभी आधी रात हो जाती है। उस वक्त हम चलते नही, पत्थरो पर लुढ़कते जाते हैं। मगर गाव पहुंचकर सारी थकान दूर हो जाती है। गांव की मिट्टी की खुशबू

कुछ और-सी है। घर के पास से जो झरना बहता है उसके पानी की छल-छल सारे शरीर को थपकिया-सी देती है। घर की दहलीज के बाहर दूर तक खूब अंधेरा फैला होता है। उसमें भटकते हुए कीड़ों की आवाजें ऐसे आती हैं जैसे कोई पानी मे डुबकिया लगा रहा हो। कालू और दयालू दोनों झरने की ढलान के पास बैठकर गीत गाते रहते हैं। वह झरना गीतों का घर-सा है। अड्डे पर या और कही बैठकर वही गीत गाए तो बहुत बेगाना-सा लगता है।

"कियां बोलदाऽ ओऽऽऽऽ कियांऽऽ बोलदाऽऽ ?
कियां बोलदाऽ मोरी जऽान भाबी कुक्कू कियां बोलदां ?"

"यह पहाड़ी गीत कितना अच्छा है ?" हवाघर में बैठी बीवी कह रही है।

बाबू मुंह से सिर्फ 'पिच्' की आवाज़ करके कोट का कॉलर ऊंचा कर रहा है।

"भूख तो नही लगी ?" यह पूछता है।

"नही, अभी नही।" और वह हवा के झोंके से सिहरकर उसके साथ और सट गई है।

सामने घाटी के पार तारादेवी का मन्दिर है। उसकी दो बत्तियां सुनहरी कबूतरियो की तरह कांप रही हैं। पहाड़ों के पीछे से गहरा बादल उठ रहा है। जब बिजली चमकती है तो घाटी मे दूर-दूर तक बिखरे हुए कितने ही घर दिखाई दे जाते हैं।

एक लम्बे कानो वाला कुत्ता हवाघर की तरफ मुह करके भौंक रहा है। एक बार हवाघर का चक्कर लगाकर वह बाहर निकल आया और लगातार भौंके जा रहा है। बाबू अपनी बीवी के कोट के बालो पर हाथ फेर रहा है। उसके कोट के बाल बड़े मुलायम लगते हैं। और यह कालू यहा अपने रीछ जैसे बालों को खुजला रहा है। सामने स्कैंडल पाइंट की नीली बत्ती धुंधली होती जा रही है। तारादेवी की तरफ से उठता हुआ बादल हमारे आस-पास घिर आया है। इधर घण्टाघर कैसा भूत-सा लगने लगा है! सामने होटल की चिमनी और खिड़कियां बादल मे घिरकर ओझल हुई जा रही हैं। सब तरफ बादल ही बादल घिर आया है। आसमान पर भी बादल है और चारों तरफ घाटियो में भी। बस्तियो की रोशनी छोटे-छोटे दायरों में बन्द हो गई है। कोलतार की सड़क दो-तीन गज़ दूर तक दिखाई देती है, बस। बादल गहरा होकर धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा है। हल्की-हल्की बूंदें टीन की छतो से टकराने लगी हैं।

"ओ कियां बोलदाऽऽ मेरी जान भाबीऽ
कुक्कू कियांऽऽऽ बोलदाऽऽऽ ?
मढ़ियां सुकेता भाबी सोणे साणे राऽजे, ओऽऽऽऽ
मढ़ियां सुकेतां भबी···"

रिज की खामोशी टूट गई है। नीचे वाले सिनीमा की खड्ड से एक औरत और मर्द भागते हुए आ रहे हैं। औरत बहुत भारी है, भरकम है और छोटा-सा रेशमी छाता लिए हुए आगे-आगे आ रही है। मर्द भी मोटा और नाटा है और तेज़ भागकर उसके बराबर आने की कोशिश कर रहा है। ज्यो-ज्यों बादल ऊपर उठता जाता है, कोलतार की सड़क दूर तक निकलती आती है। पानी भी ज़ोर पकड़ रहा है। बृहस्पत की झड़ी है, शायद पूरे सात दिन बरसेगा।

औरत और मर्द कैसे तेज़ भागे आ रहे है ?

"रिक्शा सा'ब ?"

"रिक्शा मेम सा'ब ?"

वे बिना बोले भागते ही जा रहे हैं। औरत बड़ी तेजी-से अंग्रेज़ी बोल रही है--

वट एट इट फिट फिट फिट टू मच । वेल गिट गिट चेंग चिंग होम आल राइट !

उसी तरफ से ये दो नौजवान लड़के बाह में बाह डाले आ रहे हैं। इनके पास छाता या बरसाती कोट कुछ भी नहीं है फिर भी वे कैसे आराम से बात करते आ रहे हैं ? दोनों दुबले-पतले हैं, सिर्फ एक जरा छुटकू है और दूसरा लम्बू है। छुटकू बड़ा झूम-झूमकर चल रहा है और कोई शेर सुना रहा है :

"—जब खलाओं में उभरती हो अबाबील कोई···
हाय हाय हाय, हुस्न देखा, उड़ती नहीं, तैरती
नहीं, उभरती हो अबाबील कोई—"

लम्बू वाह-वाह कर रहा है जाने किस बात पर दोनों जोर से ठहाका लगा उठे हैं ?

"रिक्शा सा'ब ?"

"रिक्शा मांगता है सा'ब ?"

वे बिना इधर की ओर देखे ही जा रहे हैं। कोलतार की सड़क पर उनके जूते तपत्-तपत् की आवाज़ कर रहे हैं।

"इन बेचारों की भी क्या जिन्दगी है ?" छुटकू कह रहा है।

"मजदूर की ज़िन्दगी हो ही क्या सकती है ?"

"हम भी तो मज़दूर हैं।"

"हमारी भी क्या जिन्दगी है ?"

"चार आदमी मिलकर एक आदमी को खींचें, यह हैवानियत है।"

"तेरे पास सिगरेट के लिए एक आना है ?"

"नहीं। तेरे पास ?"

"नहीं।"

"इस मुल्क में आर्ट इस तरह भूखा मरता है।"

और वह फिर गुनगुना रहा है—

"जब खलाओं में उभरती हो अबाबील कोई·····"

आगे पता नहीं वह क्या कह रहा है, मैं तेरे कालुको रुखसार में कि काकुलो मुश्तार मे क्या हो जाता हूं।

कुछ लडकियां दोपट्टों में सिर और मुंह लपेटे और हाथों में अपनी सलवार उठाए लक्कड मंडी की तरफ भागी जा रही है।

पानी बहुत जोर से पड रहा है। रिज पर नाखून-भर का दरिया बह रहा है। पानी के पर्दे के उस तरफ तारादेवी की पहाडी पर दो सुनहरी कबूतरियां फिर दिखाई देने लगी हैं।

"पानी इतने जोर से बरस रहा है, आज घर कैसे पहुंचेंगे ?"

हवाघर मे बैठी बीवी कह रही है, मुझे पता होता तो मैं यह साड़ी पहनकर कभी न आती। आज रास्ते मे इसका सारा बार्डर खराब हो जाएगा।"

"रिक्शा सा'ब ?"

बाबू ने सिर हिला दिया है। बेचारे के पास शायद पैसे नहीं होंगे !

"थोडी देर बाद ?"

बाबू ने सिर हिला दिया है। बेचारा बाबू !

बारिश कुछ हल्की हो रही है। अब शायद कोई सवारी नहीं मिलेगी। रिक्शा को चलकर शेड मे छोड दें। वहां से मैं घण्टे-भर मे गाव पहुच जाऊंगा। कालू और दयालू तो शायद आज शेड मे ही सोएगे। गांव पहुचने तक बारिश भी रुक जाएगी।

शिब्बी तिरशूल वाले शिखर के नीचे जरूर मिलेगी। वह शायद कुछ भुने हुए दाने लेकर आए। बारिश की रात में गुड़ के साथ भुने हुए दाने मिल जाएं, तो बस···

"कालुआ !"

"हो।"

"चलना है कि अभी बैठे रहना है ?"

"चलो।"

कालू के दांत कटकटा रहे हैं। इसे जरा-सी सर्दी से बुखार हो जाता है। शेड मे इसके पास कुछ ओढ़ने को नही है। पिछली रात घरमे की लोई के साथ सटकर सो रहा था, सुबह उठते ही कहता था कि शरीर टूट रहा है। आज दिन भर दौडना नही पडा, नही तो यह तो उलटा हो जाता। अब इसके दात कटकटा रहे हैं, रात को इसे फिर बुखार हो आया तो···

"ए रिक्शा !"

"लाया मेम सा'ब !"

फिर वही बूढी मेम ! कही न कही, किसी न किसी चढाई या उतराई पर यह रोज दिखाई दे जाती है इसका घर शिमले की खड्ड मे है—अब इसे लेकर छोटे शिमले जाना पड़ेगा।

रिक्शा के पहिये तेजी से घूम रहे हैं। हमारे पैर कोलतार की सड़क पर धमक पैदा कर रहे हैं···

हवाघर पीछे छूट रहा है। लम्बे कानो वाला कुत्ता फिर हवाघर की तरफ मुंह करके भौंक रहा है। नाले मे बहुत पानी आ गया है, वह आज फुफकारता हुआ बह रहा है। दूर किसी घर से हल्की-हल्की बंसरी की आवाज सुनाई पड़ रही है।

क्लारक होटल···

मरीना होटल···

पटियाला हौस···

मेम रिक्शे मे बहुत अकड़कर बैठी है। अक्सर यह बैठी-बैठी नाहक मुसकराती रहती है। रिक्शे मे बैठती है तो मुसकराती है, उतरती है तो मुसकराती है। रास्ते मे कोई वाकिफ दिखाई दे जाए तो उसकी तरफ देखकर मुसकराती है और सिर हिलाती है। इसकी मुसकराहट जैसे होंठों मे से ही पैदा हो जाती है।

सामने कच्ची उतराई है। अगले मोड़ पर गहरी ढलान है। अगर हम लोग रिक्शा छोड़कर हट जाएं और रिक्शा को अपने-आप लुढकने दें तो···? रिक्शा लुढ़कता हुआ सामने की चट्टान से जा टकराएगा और मेम रिक्शा मे उछलकर खड्ड में जा गिरेगी। खड्ड में गिरकर भी क्या वह एक बार उसी तरह मुसकराएगी···

पैर के नीचे शायद केंचुआ दब गया है। एक ही पल मे मरकर वह शायद परलोक चला गया। अब वह वहा से नई जून को लेकर आएगा। हो सकता है अब यह आदमी बनकर जनम ले। आदमी के रूप मे जनम लेकर इसको भी रोटी के लिए काम करना पड़ेगा। यह क्या काम करेगा ? शायद यह भी बड़ा होकर हमारी तरह मेम का रिक्शा खींचेगा। फिर ढलान पर आकर इसका भी मन करेगा कि मेम का रिक्शा लुढकने के लिए छोड दे। वह भी हो सकता है कि यह मरकर मेम की जून मे पड़े और हमे इसे रिक्शे मे बिठाकर खींचना पडे। फिर यह भी मेम की तरह तनकर बैठेगा और मेम की तरह ही मुसकराया।

यह मेम की कोठी आ गई। मेम का कुत्ता जीभ लपलपाता हुआ अन्दर से भागा

आ रहा है। मेम कुत्ते की तरफ देखकर मुसकरा रही है। मुसकराहट काफी लम्बी है और होठो मे से ही पैदा हुई नही लगती।

"कालुआ।"

"हो।"

"तेरे दातो की किटकिटी बज रही है ?"

"ठड लगती है।"

"बुखार तो नही ?"

"क्या मालूम ? पता नही बुखार ही हो...।"

अब तू अड्डे मे जाते ही सो जा। आज धरमे की लोई में इसके साथ सो जाना। बाहर नही पड़े रहना। समझा ?"

"धरमे पर है, धरमा अगर सुला ले तो..."

"क्यो धरमे ?"

"सो जाए, रात ही काटनी है। मुझे इसकी कुछ गर्मी ही रहेगी।"

सामने वापसी की लम्बी चढाई है। कच्ची सड़क की चढाई चढ़ते हुए बहुत जोर लगता है। पक्की सडक आ जाए तो दूसरी तरफ मे गांव चला जाऊं। ये लोग रात रोड में ही काटेंगे। बारिश बिलकुल रुक गई है। शिब्बी जरूर तिरशूल वाले शिखर के नीचे पहुच गई होगी। तेज चलूंगा तो पौन घण्टे मे पहुच जाऊंगा। आज शिब्बी से फिर कहूगा कि उस बुड्ढे का कजिया छोड दे। वह कही बात मान ले और मेरे साथ चले चले तो...

"रिक्शा।"

"बैठिए सा'ब।"

"बालूरगंज।"

मनीजर सा'ब को आज फिर बालूरगज जाना है। बालूरगंज में इसकी एक रखैल रहती है। पैर कोलतार की फिसलनी सड़क पर आकर बहुत धमक पैदा करते हैं। पहले यह शायद अपने होटल मे रुककर शराब पिएगा। घण्टा-पौन घण्टा रिक्शा होटल के बाहर खडा रहेगा। फिर बालूरगज पहुचकर लाल कोठी के बाहर घण्टा-दो घण्टा रुकना पड़ेगा। आधी रात को कही यह वापस लौटकर आएगा। कालू आज रात को जरूर दांत कटकटाकर मर जाएगा।

अपने पैरो की धमक की आवाज भी कभी-कभी अच्छी लगती है। थप् थप् थप् थप् थप् थप्। हवा से हिलकर दियार के गुच्छे बीच-बीच मे बूंदें बरसा देते हैं। आज की हवा बहुत जालिम है...

हो-ओ ! पैर उलटा पड़ जाने से सारी की सारी नाड़ियां खिच गई। हा-हा ! एड़ी एक कदम भी सीधी नही धरी जाती। अभी इस होटल से काफी दूर जाना है। पजे के बल उतनी दूर तक कैसे जाया जा सकता है ? मगर...

"तेज चलाओ !"

"अच्छा सा'ब !"

मनीजर सा'ब को शायद नशे की टोट आ गई है। इस समय एड़ी लगाकर भागते ही चलना ठीक है। भागते-भागते पैर अपने-आप ठीक हो जाएगा। अभी चार मील दौड़ना है, पैर दबाकर कैसे दौडा जा सकता है ?

कालू को खासी उठ रही है। दौडते-दौडते उसकी जबान बाहर को निकल आती है। बूंदें फिर पड़ने लगी है...

नीचे की खाली सड़क पर जगुआ, फागन और हीरा अपना खाली रिक्शा लेकर आ रहे हैं। ये लोग शायद घर वापस जा रहे हैं। जगुआ को इस वक्त क्या गाने की मस्ती सूझी है ?

"कियां बोलदाऽऽ मेरी जान भावोऽऽ कुक्कू कियां बोलदाऽऽऽ ?
ओ,ऽऽऽऽकियां बोलदाऽ···"

"ए और तेज चलाओ।"

"अच्छा सा'व !"

कोलतार की सड़क पर पैर बहुत ज़ोर से धमक पैदा कर रहे हैं—थप् थप् थप् थप् थप् थप्···

जीनियस

जीनियस कॉफी की प्याली आगे रखे मेरे सामने बैठा था।

मैं उस आदमी को ध्यान से देख रहा था। मेरे साथी ने बताया था कि यह जीनियस है और मैंने सहज ही इस बात पर विश्वास कर लिया था। उससे पहले मेरा जीनियस से प्रत्यक्ष परिचय कभी नहीं हुआ था। इतना मैं जानता था कि अब वह पहला ज़माना नहीं है जब एक सदी में कोई एकाध ही जीनियस हुआ करता था। आज के ज़माने को जीनियस पैदा करने की नज़र से कमाल हासिल है। रोज कहीं न कहीं किसी न किसी जीनियस की चर्चा सुनने को मिल जाती है। मगर जीनियस की चर्चा सुनना और बात है, और एक जीनियस को अपने सामने देखना बिलकुल दूसरी बात। तो मैं उसे गौर से देख रहा था। उसके भूरे बाल उलझकर माथे पर आ गए थे। चेहरे पर हल्की-हल्की झुर्रियां थी, हालांकि उम्र सत्ताईस-अट्ठाईस साल से ज्यादा नहीं थी। होंठों पर एक स्थायी मुसकराहट दिखाई देती थी, फिर भी चेहरे का भाव गम्भीर था। वह सिगरेट का कश खींचकर नीचे का होंठ जरा आगे को फैला देता था जिससे धुआं बजाय सीधा जाने के ऊपर की तरफ उठ जाता था। उसकी आंखें निर्विकार भाव से सामने देख रही थीं। हाथ मशीनी ढंग से कॉफी की प्याली को होंठों तक ले जाते थे, हल्का-सा घूंट अन्दर जाता था और प्याली वापस सॉसर में पहुंच जाती थी।

"हूं !" कई क्षणों के बाद उसके मुंह से यह स्वर निकला। मुझे लगा कि उसकी 'हूं' साधारण आदमी की 'हूं' से बहुत भिन्न है।

"मेरे मित्र आपकी बहुत प्रशंसा कर रहे थे," मैंने वक्त की जरूरत समझते हुए बात आरम्भ की। जीनियस के माथे के बल गहरे हो गए और उसके होंठों पर मुसकराहट जरा और फैल गई।

"मैंने इनसे कहा था कि चलिए आपका परिचय करा दूं," मेरे साथी ने कहा। साथ ही उसकी आंखें झपकी और उसके दो-एक दांत बाहर दिखाई देगए। मुझे एक क्षण के लिए संदेह हुआ कि कहीं यह संकेत स्वयं उसी के जीनियस होने का परिचायक तो नहीं ? परन्तु दूसरे ही क्षण उसकी सधी हुई मुद्रा देखकर मेरा संदेह जाता रहा। जीनियस एक पल आंखें मूंदे रहा। फिर उसने इस तरह विस्मय के साथ आंखें खोली जैसे वह यह निश्चय न कर पा रहा हो कि अपने आसपास बैठे हुए लोगों के साथ उसका क्या सम्बन्ध हो सकता है। उसके फैले हुए होंठ जरा सिकुड़ गए। उसने सिगरेट का एक कश

और तम्बाकू का धुआं सरसराता हुआ ऊपर को उठने लगा, तो उसने कहा, "देखिए, ये सिर्फ आपको बना रहे है। मैं जीनियस-वीनियस कुछ नही, साधारण आदमी हूं।"

मैंने अपने साथी की तरफ देखा कि शायद उसके किसी संकेत से पता चले कि मुझे क्या कहना चाहिए। मगर वह दम साधे पत्थर के बुत की तरह गम्भीर बैठा था। मैंने फिर जीनियस की तरफ देखा। वह भी अपनी जगह निश्चल था। बुशर्ट के खुले होने से उसकी बालों से भरी छाती का काफी भाग बाहर दिखाई दे रहा था।

वह कहवाखाने का काफी अंधेरा कोना था। आसपास धुआं जमा हो रहा था। दूर ज़ोर-ज़ोर के कहकहे लग रहे थे और हाथों मे थालियां लिए छायाएं इधर-उधर घूम रही थीं।

"मैं आज तक नहीं समझ सका कि कुछ लोग जीनियस क्यों माने जाते है?" जीनियस ने फिर कहना आरम्भ किया, 'मैंने बड़े-बड़े जीनियसों के विषय में पढ़ा है और जिन्हे लोग जीनियस समझते हैं, उनकी रचनाएं भी पढ़ी हैं। उनमें कुछ नाम हैं—शेक्सपियर, टॉल्स्टाय, गोर्की और टैगोर। मैं इन सबको हेय समझता हूं।"

मैं अब और भी ध्यान मे उसे देखने लगा। उसके माथे के ठीक बीच मे एक फूली हुई नाड़ी थी जिसकी धड़कन दूर से ही नज़र आती थी। उसकी गलौटी बाहर को निकली हुई थी। बाईं आंख के नीचे हल्का-सा फफोला था। मैं उसके नक्श अच्छी तरह ज़हन मे बिठा लेना चाहता था। डर था कि हो सकता है फिर ज़िन्दगी-भर किसी जीनियस से मिलने का सौभाग्य प्राप्त न हो।

"शेक्सपियर सिर्फ एक बार्ड था," दो कश खींचकर उसने फिर कहना आरम्भ किया "और अगर मर्लोवाली कहानी सच है, तो इस बात में ही संदेह है कि शेक्सपियर था। टॉल्स्टाय, गोर्की और चेखव जैसे लेखकों को मैं अच्छे कॉपीइस्ट समझता हूं—केवल कॉपीइस्ट, और कुछ नहीं। जो जैसा अपने आसपास देखा उसका हूबहू चित्रण करते गए। इसके लिए विशेष प्रतिभा की आवश्यकता नहीं। टैगोर मे हां, थोड़ी कविता ज़रूर थी।"

वह खुलकर मुसकराया। मेरे लिए उस मुसकराहट का थाह पाना बहुत कठिन था। पास ही कहीं दो-एक प्यालियां गिरकर टूट गईं। एक कबूतर पंख फड़फड़ाता हुआ कहवाखाने के अन्दर आया और कुछ लोग मिलकर उसे बाहर निकालने की कोशिश करने लगे। जीनियस की आंखें भी कबूतर की तरफ मुड़ गईं और वह कुछ देर के लिए हमारे अस्तित्व को बिलकुल भूल गया। जब उसने कबूतर की तरफ से आंखें हटाईं तो उसे जैसे ये सिरे से हमारी मौजूदगी का एहसास हुआ।

"मैं एक निहायत ही अदना इन्सान हूं," उसने हमारे कन्धों से ऊपर दीवार की तरफ देखते हुए कहा, "लेकिन यह मैं ज़रूर जानता हूं कि जीनियस कहते किसे हैं—माफ कीजिए, कहते नहीं, जीनियस कहना किसे चाहिए।" उसने प्याली रख दी और शब्दों के साथ-साथ उसकी उंगलियां हवा मे खाके बनाने लगीं। "आप जानते हैं—या शायद नहीं जानते—कि जीनियस एक व्यक्ति नहीं होता। वह एक फिनोमेना होता है, एक परिस्थिति जिसे केवल महसूस किया जा सकता है। उसका अपना एक रेडिएशन, एक प्रकाश होता है। उस रेडिएशन का अनुमान उसके चेहरे की लकीरों से, उसके हाव-भाव से, या उसकी बातों से नहीं होता। वह एक फिनोमेना है जिसके अन्दर एक अपनी हलचल होती है, परन्तु जो हलचल उसकी आंखों मे देखने से नहीं होती। वह स्वयं भी अपने सम्बन्ध मे नहीं जानता, परन्तु जिस व्यक्ति का उसके साथ सम्पर्क हो, उस व्यक्ति को उसे पहचानने में कठिनाई नहीं होती। जीनियस को जीनियस के रूप मे जानने के लिए उसकी लिखी

हुई पुस्तकों या उसके बनाए हुए चित्रों को सामने रखने की आवश्यकता नहीं होती। जीनियस एक फिनोमेना है, जो अपना प्रमाण स्वयं होता है। उसके अस्तित्व मे एक चीज़ होती है, जो अपने-आप बाहर महसूस हो जाती है। मैं यह इसलिए कह सकता हू कि मैं एक ऐसे फिनोमेना से परिचित हूं। मेरा-उसका हर रोज़ का साथ है, और मैं अपने को उसके सामने बहुत तुच्छ, बहुत हीन अनुभव करता हू।"

उसकी मुस्कराहट फिर लम्बी हो गई थी। उसने नया सिगरेट सुलगाकर एक और बड़ा-सा कश खींच लिया। कॉफी की प्याली उठाकर उसने एक घूंट मे ही समाप्त कर दी। मैं अवाक् भाव से उसके माथे की उभरी हुई नाड़ी को देखता रहा।

"मुझे उसके साथ के कारण एक आत्मिक प्रसन्नता प्राप्त होती है," वह फिर बोला, "मुझे उसके सम्पर्क से अपना-आप भी जीवन की साधारण सतह से उठता हुआ महसूस होता है। उसमें सचमुच वह चीज़ है जो दूसरे को ऊंचा उठा सकती है। मैं तब उसका रेडिएशन देख सकता हूं। उसके अन्दर की हलचल महसूस कर सकता हू। जिस तरह अभी-अभी वह कबूतर पंख फड़फड़ा रहा था, उसी तरह उसकी आत्मा मे हर समय एक फड़फड़ाहट, एक छटपटाहट-भरी रहती है। उस छटपटाहट मे ऐसा कुछ है जो यदि बाहर आ जाए, तो चाहे ज़िन्दगी का नक्शा बदल दे। मगर उसे उस चीज़ को बाहर लाने का मोह नही है। उसकी दृष्टि मे अपने को बाहर व्यक्त करने की चेष्टा करना व्यवसाय-बुद्धि है, बनियापन है। और इसलिए मैं उसका इतना सम्मान करता हू। मैं उससे बहुत छोटा हू, बहुत-बहुत छोटा हू, परन्तु मुझे गर्व है कि मुझे उससे स्नेह मिलता है। मैं भी उसके लिए अपने प्राणो का बलिदान दे सकता हूं। मैंने जीवन मे बहुत भूख देखी है—हर वक्त की भूख—और अपनी भूख से प्राय: मैं व्याकुल हो जाता रहा हू। परन्तु जब उसे देखता हू तो मैं शर्मिन्दा हो जाता हूं, भूख उसने भी देखी है, और मुझसे कही ज्यादा भूख देखी है—परन्तु मैंने कभी उसे ज़रा भी विचलित या व्याकुल होते नही देखा। वह कठिन से कठिन अवसर पर भी मुस्कराता रहता है। मेरा सिर उसके सामने झुक जाता है। मैं जीवन के हरएक मामले में उससे राय लेता हूं, और हमेशा उसकी बताई हुई राह पर चलने की चेष्टा करता हूं। कई बार तो उसके सामने मुझे महसूस होता है कि मैं तो हूं ही नही, बस वही वह है, क्योंकि उसके रेडिएशन के सामने मेरा व्यक्तित्व बहुत फीका पड़ जाता है। परन्तु मैं अपनी सीमाएं जानता हूं। मैं लाख चेष्टा करूं फिर भी उसकी बराबरी तक नही उठ सकता।

उसके दांत आपस में मिल गए और चेहरा काफी सख्त हो गया। चेहरे की लकीरें पहले से भी गहरी हो गईं। फिर उसने दोनो हाथो की उंगलियां आपस मे उलझाईं और एक बार उन्हे चटका दिया। धीरे-धीरे उसके चेहरे का तनाव फिर मुस्कराहट मे बदलने लगा।

"खैर!" उसने उठने की तैयारी मे अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। मैं अब आपसे इजाज़त लूंगा। मैं भूल गया था कि मुझे एक जगह जाना है···।

"मगर···" मैं इतना ही कह पाया। मैं तब तक उसी अवाक् भाव से उसे देख रहा था। उसका इस तरह एकदम उठकर चल देना मुझे ठीक नही लग रहा था। अभी तो उसने बात आरम्भ ही की थी।

"आप शायद सोच रहे है कि वह व्यक्ति कौन है जिसकी मैं बात कर रहा था···" वह उसी तरह हाथ बढाए हुए बोला, "मुझे खेद है कि मैं आपका या किसीका भी उससे परिचय नही करा सकता। मैंने आपसे कहा था न कि वह एक व्यक्ति नही, एक फिनोमेना है। अपने से बाहर वह मुझे भी दिखाई नहीं देता। मैं केवल अपने अन्दर उसका रेडिए-

सन ही महसूस कर सकता हूं।"

और वह हाथ मिलाकर उठ खड़ा हुआ। चलने से पहले उसकी आंखों में क्षण-भर के लिए एक चमक आ गई और उसने कहा, "वह मेरा इनरसेल्फ है।"

और क्षण-भर स्थिर दृष्टि से हमें देखकर वह दरवाज़े की तरफ चल दिया।

ज़ख्म

हाथ पर खून का लोंदा"'सूखे और चिपके हुए गुलाब की तरह। फुटपाथ पर औंधे पीपे से गिरा गाढ़ा कोलतार"'सर्दी से ठिठुरा और सहमा हुआ। एक-दूसरे से चिपके पुराने कागज़"'भीगकर सड़क पर बिखरे हुए। खोदी हुई नाली का मलबा"'झड़कर नाली में गिरता हुआ। बिजली के तारों से ढका आकाश"'रात के रंग में रंगता हुआ। चिकने माथे पर गाढ़ी काली भौंहें"'उंगली और अंगूठे से सहलाई जा रही।

आवाज़ों का समन्दर"'जिसमें कभी-कभी तूफान-सा उठ आता। एक मिला-जुला शोर फुटपाथ की रेलिंग से, स्टालों की रोशनियों से, इससे, उससे और जिस-किसी से आ टकराता। कुछ देर की कसमसाहट"'और फिर बैठते शोर का हल्का फेन जो कि मुंह के स्वाद में घुल-मिल जाता"'या सिगरेट के कश के साथ बाहर उड़ा दिया जाता।

सोचते होंठों को सोचने से रोकती सिगरेट थामे उंगलियां। कारिडोर पर एक छोटे कदों का रेला"'ऊंचे कदों को धकेलता हुआ। एक ऊंचे कदों का रेला"'छोटे कदों को रगेदता हुआ। उस तरफ छोटे और ऊंचे कदों का एक मिला-जुला कहकहा। बालकनी पर झटके जाते बाल। एक दरम्याना कद की सीटी। सड़क पर पहियों से उड़ते छींटे।

एक-एक सांस खींचने और छोड़ने के साथ उसकी नाक के बाल हिल जाते थे। वह हर बार जैसे अन्दर जाती हवा को सूंघता था। उसका आना-जाना महसूस करता था।

उसके कॉलर का बटन टूटा हुआ था। शेव की दाढ़ी का हरा रंग गर्दन की गोराई से अलग नज़र आता था। जहां से हड्डी शुरू होती थी, वहां एक गड्ढा पड़ जाता था जो थूक निगलने या जबड़े के कसने से गहरा हो जाता था। कभी, जब उसकी खामोशी ज़्यादा गाढ़ी होती, वह गड्ढा लगातार कांपता। कॉलर के नीचे के दो बटन हमेशा की तरह खुले थे। अन्दर बनियान नहीं थी, इसलिए घने बालों से ढकी खाल दूर तक नज़र आती थी। इतनी लाल कि जैसे किसी बिच्छू ने वहां काटा हो। छाती के कुछ बाल स्याह थे, कुछ सुनहरे। पर जो बटनों को लांघकर बाहर नज़र आ रहे थे, वे ज़्यादातर सफेद थे।

सड़क के उस तरफ पत्थर के खम्भों से डोलचों की तरह लटकते कुमकुमे एक-सी रोशनी नहीं दे रहे थे। रोशनी उनके अन्दर से लहरों में उतरती जान पड़ती थी जो कभी हल्की, कभी गहरी हो जाती थी। रोशनी के साथ-साथ कारिडोर की दीवारों, आदमियों और पार्क की गई गाड़ियों के रंग हल्के-गहरे होने लगते थे। बिजली के तारों से ऊपर, आसमान से सटकर, अंधेरा हल्की धूल की तरह इधर से उधर मंडरा रहा था। कुछ अंधेरा पास के कोने में बच्चे की तरह दुबका था। ठण्डी हवा पतलून के पायचों से ऊपर को सरसरा रही थी।

"तो?" मैंने दूसरी या तीसरी बार उसकी आंखों में देखते हुए कहा। लगा जैसे

वह मेरी नहीं, किसी घूमती हुई गरारी की आवाज़ हो जो हर दो मिनट के बाद 'तो' के झटके पर आकर लौट जाती हो।

उसका सिर ज़रा-सा हिला। घने घुघराले बालों में कुछ सफ़ेद लकीरें रोशन होकर बुझ गईं। चकोतरे की फांकों जैसे भरे हुए लाल होंठ पल-भर के लिए एक-दूसरे से अलग हुए और फिर आपस में मिल गए। माथे पर उसके चिलगोजे जितनी एक शिकन पड़ गई थी।

"तुम और भी कुछ कहना चाहते थे न !" मैंने गरारी का फीता तोड़ा। उसने रेलिंग पर रखी बांह पर पहले से ज़्यादा भार डाल लिया। कहा कुछ नहीं। सिर्फ़ सिर हिलाकर मना कर दिया।

कई-कई दोमुंहां रोशनियां आगे-पीछे दौड़ती पास से निकल रही थीं। रोशनियों से बचने के लिए बहुत से पांव और साइकिलों के पहिये तिरछे होने लगते थे। रेलिंग में कई-कई ठण्डे सूरज एकसाथ चमक जाते थे।

मैं समझने की कोशिश कर रहा था। अभी-अभी कोई आध घण्टा पहले घर से निकलकर बाल कटाने जा रहा था, तो पूसा रोड के फुटपाथ पर किसी ने दौड़ते हुए पीछे से आकर रोका था। कहा था कि उस तरफ़ टू-सीटर में कोई साहब बुला रहे हैं। दौड़कर आनेवाला टू-सीटर का ड्राइवर था। मैंने घूमकर देखा, तो टू-सीटर में पीछे से घुघराले बालों के गुच्छे ही दिखाई दिए। ड्राइवर ने वहीं से सड़क को पार कर लिया, पर मैंने कुछ दूर तक फुटपाथ पर वापस जाने के बाद पार किया। पार करते हुए रोज़ से ज़्यादा ख़तरे का एहसास हुआ क्योंकि तब तक मैं उसे देख नहीं पाया था। टू-सीटर के पास पहुंचने तक कई तरह की आशंकाएं मन को घेरे रहीं।

मेरे पास पहुंच जाने पर भी वह पीछे टेक लगाए बैठा रहा। हुड के अन्दर देखने तक मुझे पता नहीं चला कि कौन है···घुघराले बालों से हल्का-सा अन्दाज़ा हालांकि मुझे हो रहा था। जब पता चल गया कि वही है, तो ख़तरे का एहसास मन से जाता रहा।

"मुझे लग रहा था कि तुम्हीं हो," मैंने कहा। पर मुस्कराया नहीं। सिर्फ़ कोने की तरफ़ को थोड़ा सरक गया।

"कहीं जा रहे थे तुम ?" मैं पास बैठ गया, तो उसने पूछा।

"बाल कटाने," मैंने कहा, "इस वक़्त सैलून में ज़्यादा भीड़ नहीं होती।" वह सुनकर ख़ामोश रहा, तो मैंने कहा, "बाल मैं फिर किसी दिन कटा सकता हूं। इस वक़्त तुम जहां कहो, वहां चलते हैं।"

"मैं नहीं, तुम जहां कहो···," उसने जिस तरह कहा, उससे मुझे कुछ अजीब-सा लगा···हालांकि बात वह अक्सर इसी तरह करता था। उसका पिए होना भी उस वक़्त मुझे ख़ास तौर से महसूस हुआ, हालांकि ऐसा बहुत कम होता था कि वह पिए हुए न हो। उसके होंठ खुले थे और एक बांह टू-सीटर की खिड़की पर रखकर वह इस तरह कोने की तरफ़ फैल गया था कि डर लगता था, झटके से नीचे न जा गिरे।

"घर चलें ?" मैंने कहा। वह पल-भर सीधी नज़र से मुझे देखता रहा। फिर जवाब देने की जगह होंठ गोल करके ज़बान ऊपर को उठाए हुए हंस दिया।

"कुछ देर बाहर ही कहीं बैठना चाहो, तो कनाट प्लेस चले चलते हैं।"

जवाब उसने फिर भी नहीं दिया। सिर्फ़ ड्राइवर को इशारा किया कि टू-सीटर को पीछे की तरफ़ मोड़ ले।

सड़क के गड्ढों पर से हिचकोले खाता टू-सीटर नाले से आगे बढ़ आया, तो एक बार वह मुश्किल से गिरते-गिरते सम्भला। मैंने अपनी बांह उसके कन्धे पर रखते हुए कहा, "आज तुमने फिर बहुत पी है।"

"नहीं," उसने मेरी बांह हटा दी, "पी है पर बहुत नहीं। सिर्फ...मैं बहुत खुश हूं।"

मैं थोड़ा सतर्क हो गया। वह जब भी पीकर धुत हो जाता था, तभी कहता था, "मैं बहुत खुश हूं।"

मैंने हंसने की कोशिश की ...बहुत कुछ मन को घेरती आशंका और उससे पैदा हुई अस्थिरता की वजह से। उसका हाथ भी उसी वजह से अपने हाथों में ले लिया और कहा, "मुझे पता है तुम जब बहुत खुश होते हो, तो उसका क्या मतलब होता है।"

उसका सिर टू-सीटर के कोने से सटा हुआ था। उसने वहीं से उसे हिलाया और कहा, "तुम समझते हो कि तुम्हें पता है...तुम हर चीज के बारे में यही समझते हो कि तुम्हें पता है।"

मुझे अब भी लग रहा था कि वह झटके से बाहर न जा गिरे, पर अब उसके कन्धे पर मैंने बांह नहीं रखी। अपने हाथों में लिए हुए उसके हाथ को थोड़ा और कस लिया...।"

आती-जाती बसों, कारों और साइकिलों के बीच रास्ता बनाता टू-सीटर लगभग सीधा चल रहा था। खड़खड़ाहट के साथ गुर्र-गुर्र की आवाज ऊंची उठकर धीमी पड़ने लगती थी। बीच में किसी खुमचे या घोड़ा-गाड़ी के सामने पड़ जाने से ब्रेक लगता और हम सीट से ऊपर को उछल जाते। आर्यसमाज रोड के बड़े दायरे पर एक बस के झपाटे से बचकर टू-सीटर फुदकता हुआ गोल घूमने लगा। घूमकर लिंक रोड पर आने तक मैं बाईं तरफ के पोस्टर पढ़ता रहा...जिससे मन इर्द गिर्द के बड़े ट्रैफिक की दहशत से बचा रहे।

पर वह उस बीच एकटक ट्रैफिक की तरफ देखता रहा। लिंक रोड पर आ जाने पर उसने अपना हाथ मेरे हाथों से छुड़ा लिया।

"मैं आज तुमसे एक बात करने आया था," उसने कहा। आंखें उसकी अब सड़क को बीच से काटती पटरी को देख रही थीं...और उससे आगे पैट्रोल पम्प के अहाते को।

मैं क्षण-भर उसे और अपने को जैसे पैट्रोल पम्प के अहाते में खड़ा होकर देखता रहा...टू-सीटर के साथ-साथ बैठे और हिचकोले खाते हुए। लगा जैसे हम लोगों के उस वक्त उस तरह वहां से गुजरकर जाने में कुछ अलग-सी बात हो जिसे बाहर खड़े होकर पैट्रोल पम्प की दूरी से ही देखा और समझा जा सकता हो।

"तुम बात अभी करना चाहोगे या पहले कहीं चलकर बैठ जाएं?" मैंने पूछा। दूसरी जगह का जिक्र इसलिए किया कि अच्छा है बात कुछ देर और टली रहे।

"तुम जब जहां चाहो," उसने दोनों हाथ घुटनों पर रख लिए और कोने से थोड़ा आगे को झुक गया। "बात सिर्फ इतनी है कि आज से मैं और तुम...मैं और तुम आज से...दोस्त नहीं हैं।"

इतनी देर से मन में जो तनाव महसूस हो रहा था वह सहसा कम हो गया... शायद इसलिए कि वह बात मुझे सुनने में ज्यादा गम्भीर नहीं जान पड़ी। कुछ वैसी ही बात थी जैसी बचपन में कई बार कई दूसरों के मुंह से सुनी थी। यह भी लगा था कि शायद वह नशे की बहक में ही ऐसा कह रहा है। मैं पहले से ज्यादा खुलकर बैठ

गया। अपना हाथ मैंने टू-सीटर की खिड़की पर फैल जाने दिया।

पंचकुइयां रोड पर टू-सीटर को कहीं भी रुकना नहीं पड़ा। सड़क उसे साफ मिलती रही। बत्तियां भी दोनों जगह हरी मिलीं। मैंने अपना ध्यान दुकानों के बाहर रखे फर्नीचर की आड़ी-तिरछी बांहों और लैंप शेड्स के गोल और लम्बूतरे चेहरों में उलझाए रखा। ऊपर से ज़ाहिर नहीं होने दिया कि मैंने उसकी बात को ज़्यादा गंभीरता-पूर्वक नहीं लिया। एकाध बार बल्कि इस तरह उसकी तरफ देख लिया जैसे मुझे आगे की बात सुनने की उत्सुकता हो···और उत्सुकता ही नहीं, साथ गिला भी हो कि उसने ऐसी बात क्यों कही।

पंचकुइयां रोड पार करके अन्दर के दायरे में आते ही उसने ड्राइवर से रुक जाने को कहा। फिर मुझसे बोला, "आओ, यहीं उतर जाएं।" मैं जेब से पैसे निकालने लगा, तो उसने मेरा हाथ रोक दिया और अपना बटुआ निकाल लिया।

कुछ देर हम लोग खामोश चलते रहे। मैं अपने पैरों को और सामने की पटरी को देखता रहा। लगा कि पैरों के नाखून बहुत बढ़ गए हैं···कि इतनी ठंड में मुझे सिर्फ चप्पल पहनकर घर से नहीं निकलना चाहिए था। कुछ गीली मिट्टी चप्पलों में घुसकर पैरों से चिपक गई थी। पैर ठण्ड के बावजूद पसीने में तर थे···हमेशा की तरह। मैंने सोचा कि इन दिनों मोज़ा तो कम से कम मुझे पहनना ही चाहिए।

चलते-चलते एक क्रॉसिंग के पास आकर वह रेलिंग के सहारे रुक गया। तब मैंने पहली बार देखा कि उसकी पतलून और बुश्शर्ट पर लहू के दाग हैं। दाईं हथेली पर छिगुनी के नीचे डेढ़ इंच का ज़ख्म मुझे कुछ बाद में दिखाई दिया।

"तुम्हारी बुश्शर्ट पर ये दाग कैसे हैं ?" मैंने पूछा।

उसने भी एक नज़र उन दागों पर डाली—ऐसे जैसे उन्हें पहली बार देख रहा हो। "कैसे हैं ?" उसने ऐसे कहा जैसे मैंने उस पर कोई इल्ज़ाम लगाया हो। "हाथ कट गया था, उसी के दाग होंगे।"

"हाथ कैसे कट गया ?"

उसका चेहरा कस गया। "कैसे कट गया ?" वह बोला, "कैसे भी कटा हो, तुम्हें इससे क्या है ?"

कुछ देर खामोश रहकर हम इधर-उधर देखते रहे···बीच-बीच में एक-दूसरे की तरफ भी। नियॉन साइनस की जलती-बुझती रोशनियां गीली सड़क में दूर अन्दर तक चमक जाती थीं। पहियों की कई-कई फिरकियां उसके ऊपर से फिसलती हुई निकल जाती थीं। जब वह मेरी तरफ न देख रहा होता, तो सड़क पर फिसलती रोशनियां उसकी आंखों में भी बनती-टूटती नज़र आतीं।

मैं मन ही मन कल के ताने-बाने को आज से जोड़ रहा था। कल वह सिन्धिया हाउस के चौराहे पर मेरे साथ खड़ा हंस रहा था। दस आदमियों के घेरे में से खुद ही मुझे उठाकर ले आया था। फुटपाथ पर चलते हुए ज़िद के साथ उसने मेरा सिगरेट सुलगाया था। फिर मुझे अपने कमरे में चलने और चलकर बियर पीने को कहा था। मेरे कहने पर कि उस वक्त मैं नहीं चल सकूंगा, उसने बुरा भी नहीं माना था। मुझे छोड़ने बस-स्टाप तक आया था। क्यू में मेरे साथ खड़ा रहा था। बस की भीड़ में मेरे फुटबोर्ड पर पांव उठा लेने पर उसने दूर से हाथ हिलाया था। मैं जवाब में हाथ नहीं हिला सका क्योंकि मेरे दोनों हाथ भीड़ के कब्ज़े में थे। बस चल दी, तब वह स्टाप से थोड़ा हटकर अंधेरे में खड़ा मेरी तरफ देखता रहा था। मुझसे आंख मिलने पर हल्के से मुस्करा

सडक के गड्ढो पर से हिचकोले खाता टू-सीटर नाले मे आगे बढ़ आया, तो एक बार वह मुश्किल से गिरते-गिरते सभला। मैंने अपनी बांह उसके कन्धे पर रखते हुए कहा, "आज तुमने फिर बहुत पी है।"

"नही," उसने मेरी बाह हटा दी, "पी है पर बहुत नही। सिर्फ···मैं बहुत खुश हूं।"

मैं थोडा सतर्क हो गया। वह जब भी पीकर धुत हो जाता था, तभी कहता था, "मैं बहुत खुश हू।"

मैंने हसने की कोशिश की···बहुत कुछ मन को घेरती आशंका और उससे पैदा हुई अस्थिरता की वजह से। उसका हाथ भी उसी वजह से अपने हाथों में ले लिया और कहा, "मुझे पता है तुम जब बहुत खुश होते हो, तो उसका क्या मतलब होता है।"

उसका सिर टू-सीटर के कोने से सटा हुआ था। उसने वही से उसे हिलाया और कहा, "तुम समझते हो कि तुम्हे पता है···तुम हर चीज़ के बारे मे यही समझते हो कि तुम्हें पता है।"

मुझे अब भी लग रहा था कि वह झटके से बाहर न जा गिरे, पर अब उसके कन्धे पर मैंने बाह नही रखी। अपने हाथो मे लिए हुए उसके हाथ को थोड़ा और कस लिया···।"

आती-जाती बसो, कारो और साइकिलो के बीच रास्ता बनाता टू-सीटर लगभग सीधा चल रहा था। खडखडाहट के साथ गुर्र-गुर्र की आवाज़ ऊंची उठकर धीमी पड़ने लगती थी। बीच मे किसी खुमचे या घोडा-गाड़ी के सामने पड जाने से ब्रेक लगता और हम सीट से ऊपर को उछल जाते। आर्यसमाज रोड के वडे दायरे पर एक बस के झपाटे से बचकर टू-सीटर फुदकता हुआ गोल घूमने लगा। घूमकर लिंक रोड पर आने तक मैं बाईं तरफ के पोस्टर पढ़ता रहा···जिससे मन इर्द गिर्द के बड़े ट्रैफिक की दहशत से बचा रहे।

पर वह उस बीच एकटक ट्रैफिक की तरफ देखता रहा। लिंक रोड पर आ जाने पर उसने अपना हाथ मेरे हाथो मे छुड़ा लिया।

"मैं आज तुमसे एक बात करने आया था," उसने कहा। आखें उसकी अब सडक को बीच से काटती पटरी को देख रही थीं···और उससे आगे पैंट्रोल पम्प के अहाते को।

मैं क्षण-भर उसे और अपने को जैसे पैंट्रोल पम्प के अहाते में खडा होकर देखता रहा···टू-सीटर के साथ-साथ बैठे और हिचकोले खाते हुए। लगा जैसे हम लोगो के उस वक्त उस तरह वहा से गुज़रकर जाने मे कुछ अलग-सी बात हो जिसे बाहर खड़े होकर पैंट्रोल पम्प की दूरी से ही देखा और समझा जा सकता हो।

"तुम बात अभी करना चाहोगे या पहले कहीं चलकर बैठ जाएं?" मैंने पूछा।

[illegible] ेर और टली रहे।

[illegible] ·ख लिए और कोने से थोड़ा [illegible] तुम···मैं और तुम आज से···दोस्त नही है।

इतनी देर मे मन में जो तनाव महसूस हो रहा था वह सहसा कम हो गया··· शायद इसलिए कि वह बात मुझे सुनने मे ज्यादा गम्भीर नही जान पडी। कुछ वैसी ही बात थी जैसी बचपन में कई बार कई दूसरो के मुह से सुनी थी। यह भी लगा था कि शायद वह नशे की बहक में ही ऐसा कह रहा है। मैं पहले से ज्यादा खुलकर बैठ

गया। अपना हाथ मैंने टू-सीटर की खिड़की पर फैल जाने दिया।

पचकुइयां रोड पर टू-सीटर को कहीं भी रुकना नहीं पड़ा। सड़क उसे साफ मिलती रही। बत्तियां भी दोनों जगह हरी मिलीं। मैंने अपना ध्यान दुकानों के बाहर रखे फर्नीचर की आड़ी-तिरछी बांहों और लैंप शेड्स के गोल और लम्बूतरे चेहरों में उलझाए रखा। ऊपर से जाहिर नहीं होने दिया कि मैंने उसकी बात को ज्यादा गंभीरता-पूर्वक नहीं लिया। एकाध बार बल्कि इस तरह उसकी तरफ देख लिया जैसे मुझे आगे की बात सुनने की उत्सुकता हो···और उत्सुकता ही नहीं, साथ गिला भी हो कि उसने ऐसी बात क्यों कही।

पचकुइयां रोड पार करके अन्दर के दायरे में आते ही उसने ड्राइवर से रुक जाने को कहा। फिर मुझसे बोला, "आओ, यहीं उतर जाएं।" मैं जेब से पैसे निकालने लगा, तो उसने मेरा हाथ रोक दिया और अपना बटुआ निकाल लिया।

कुछ देर हम लोग खामोश चलते रहे। मैं अपने पैरों को और सामने की पटरी [illegible]

पहली बार देखा कि उसकी पतलून और बुशशर्ट पर लहू के दाग हैं। दाईं हथेली पर छिगुनी के नीचे डेढ़ इंच का ज़ख्म मुझे कुछ बाद में दिखाई दिया।

"तुम्हारी बुशशर्ट पर ये दाग कैसे हैं?" मैंने पूछा।

उसने भी एक नज़र उन दागों पर डाली—ऐसे जैसे उन्हें पहली बार देख रहा हो। "कैसे हैं?" उसने ऐसे कहा जैसे मैंने उस पर कोई इल्ज़ाम लगाया हो। "हाथ कट गया था, उसी के दाग होंगे।"

"हाथ कैसे कट गया?"

उसका चेहरा कस गया। "कैसे कट गया?" वह बोला, "कैसे भी कटा हो, तुम्हें इससे क्या है?"

कुछ देर खामोश रहकर हम इधर-उधर देखते रहे···बीच-बीच में एक-दूसरे की तरफ भी। नियॉन साइन्स की जलती-बुझती रोशनियां गीली सड़क में दूर अन्दर तक चमक जाती थीं। पहियों की कई-कई फिरकियां उसके ऊपर से फिसलती हुई निकल जाती थीं। जब वह मेरी तरफ न देख रहा होता, तो सड़क पर फिसलती रोशनियां उसकी आंखों में भी बनती-टूटती नज़र आतीं।

मैं मन ही मन कल के ताने-बाने को आज से जोड़ रहा था। कल वह सिन्धिया हाउस के चौराहे पर मेरे साथ खड़ा हंस रहा था। दस आदमियों के घेरे में से खुद ही मुझे उठाकर ले आया था। फुटपाथ पर चलते हुए ज़िद के साथ उसने मेरा सिगरेट सुलगाया था। फिर मुझे अपने कमरे में चलने और चलकर बियर पीने को कहा था। मेरे कहने पर कि उस वक्त मैं नहीं चल सकूंगा, उसने बुरा भी नहीं माना था। मुझे छोड़ने बस-स्टाप तक आया था। क्यू में मेरे साथ खड़ा रहा था। बस की भीड़ में मेरे फुटबोर्ड पर पांव उठा लेने पर उसने दूर से हाथ हिलाया था। मैं जवाब में हाथ नहीं हिला सका क्योंकि मेरे दोनों हाथ भीड़ के कब्ज़े में थे। बस चल दी, तब वह स्टाप से थोड़ा हटकर अंधेरे में खड़ा मेरी तरफ देखता रहा था। मुझसे आंख मिलने पर हल्के से मुस्करा

दिया था।

कल हम घण्टा-भर साथ थे, पर उस दौरान हमारे बीच कोई खास बात नहीं हुई थी। उसने कहा था कि अब जल्दी ही कोई अच्छी-सी लड़की देखकर वह शादी कर लेना चाहता है···अकेलेपन की जिन्दगी उससे और बर्दाश्त नहीं होती। पर यह बात उसने पिछले हफ्ते भी कही थी, महीना-भर पहले भी कही थी, और चार साल पहले भी। मैंने हमेशा की तरह सरसरी तौर पर हामी भर दी थी। हमेशा की तरह यह भी कहा था कि पहले ठीक से सोच ले कि कहा तक वह उस जिन्दगी को निभा सकेगा। कहीं ऐसा न हो कि बाद में आज से ज्यादा छटपटाहट महसूस करे। सिन्धिया हाउस के चौराहे पर इसी बात पर वह हंसा था। "मुझे मालूम था" उसने कहा था, "कि तुम मुझसे यही कहोगे। यह बात तुम आज पहली बार नहीं कह रहे।" मुझे इससे थोड़ी शरम आई थी, क्योंकि सचमुच मैं उससे यह बात कई बार कह चुका था···शिमला में डेविकोज की पिछली खिड़की के पास बैठकर बियर पीते हुए··· जमशेदपुर में उसके होटल के कमरे में बिस्तर में लेटे हुए··· इलाहाबाद में गजदर के लान में चहलकदमी करते हुए···और बम्बई में कफ परेड पर समन्दर में जाती गन्दी नालों की उस संकरी डण्डी पर चलते हुए, जहां नाजायज शराब पीना और नाजायज प्रेम करना दोनों ही नाजायज नहीं हैं। इनके अलावा और भी कई जगह यह बात मैंने उससे कही होगी क्योंकि नौ साल की दोस्ती में ज्यादातर हमारी बात स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों को लेकर ही होती रही थी।

"कल रात तक तो हमारे बीच ऐसी कोई बात नहीं थी," मैंने कहा, "उसके बाद इस बीच ऐसा क्या हो गया जिससे···?"

वह हंसा। "क्या हो सकता था उसके बाद?···उसके बाद मैं अपने कमरे में चला गया और जाकर सो गया।" रेलिंग पर रखी उसकी बांह शरीर के बोझ से एक बार फिसल गई। वह जिस तरह रेलिंग से सटकर खड़ा था उससे लग रहा था कि अब आगे चलने का उसका इरादा नहीं है।

"आज दिन-भर कहां रहे?"

"वहीं अपने कमरे में। इसके बाद अगर पूछोगे कि क्या करता रहा, तो जवाब है कि टहलता रहा, किताब पढ़ता रहा, शराब पीता रहा।"

उसका जख्मी हाथ अब मेरे सामने था। नियॉन साइन्स के बदलते रंगों में लहू का रंग हरा-नीला होकर गहरा-भूरा हो जाता था।

किसी-किसी क्षण मुझे लगता कि शायद वह मजाक कर रहा है, कि अभी वह ठहाका लगाकर हंसा और बात वहीं समाप्त हो जाएगी। मगर उसकी आंखों में मजाक की कोई छाया नहीं थी। जिस हाथ पर जख्म नहीं था उससे वह लगातार अपनी भौंहों को सहला रहा था। इस तरह भौंहों को वह तभी सहलाता था जब 'बहुत खुश' होता था।

इस तरह 'बहुत खुश' उसे मैंने कितनी ही बार देखा था। एक बार शिमला में, जब कम्बरमियर पोस्ट ऑफिस के बाहर उसने अपने एक साथी को पीट दिया था। वह आदमी इसके दफ्तर का स्टेनो था···और इसका पीने और उधार लेने का साथी था। उस घटना के बाद दोनों की डिपार्टमेंटल इन्क्वायरी हुई और उन्हें शिमला से ट्रान्सफर कर दिया गया। फिर इलाहाबाद के एक बार में, जब किसी ने पास आकर अपने गिलास की शराब इसके मुंह पर उछाल दी थी। यह उसके बाद रात-भर अपनी चारपाई के गिर्द चक्कर काटता रहा और कहता रहा कि उस आदमी की जान लिए बग़ैर अब यह नहीं सो सकेगा। बम्बई के दिनों में तो यह अक्सर ही 'बहुत खुश' रहता था। मैं उन दिनों

चर्चगेट के एक गेस्टहाउस में रहता था। यह दिन में या रात में किसी भी वक्त मेरे पास चला आता···दो मे से एक बार अपनी भौंहों को सहलाता हुआ। कभी झगड़ा उस घर के लोगों से हुआ होता जिनके यहां यह पेइंग गेस्ट था···कभी कोलाबा के बूट-लेगर्ज़ से जो नौ बजने के साथ ही अपने दरवाज़े बन्द कर लेना चाहते थे। एकाध बार जब इसे लगा कि उस तरह पीकर आने पर मैं भी इससे कतराता हूं, तो यह मेरे पास न आकर रात-भर कफ परेड के खुले पेवमेण्ट पर सोया रहा।

वह जिस ढंग से जीता था, उससे कई बार खतरा महसूस करते हुए भी मुझे उसके व्यक्तित्व मे एक आकर्षण लगता था। वह बिना लाग-लिहाज़ के किसी के भी मुह पर सच बात कह सकता था···दस आदमियो के बीच अलफ-नगा होकर नहा सकता था ···अपनी जेब का आखिरी पैसा तक किसी को भी दे सकता था। पर दूसरी तरफ यह भी था कि किसी लड़की या स्त्री के साथ दस दिन के प्रेम मे जान देने और लेने की स्थिति तक पहुंचकर चार दिन बाद वह उससे बिलकुल उदासीन हो सकता था। अक्सर कहा करता था कि किसी ऐसी स्त्री के साथ ही उसकी पट सकती है जो एक मा की तरह उसकी देखभाल कर सके। यह शायद इसलिए कि बचपन में मां का प्यार उसके बड़े भाई को उससे ज्यादा मिला था। इसी वजह से शायद ज्यादातर उसका प्रेम विवाहित स्त्रियो से ही होता था···पर उसमें उसे यह बात सालती थी कि वह स्त्री उसके सामने अपने पति से बात भी क्यों करती है···बच्चों के पास न होने पर भी उनका ज़िक्र ज़बान पर क्यों लाती है! "मुझे यह बर्दाश्त नहीं" वह कहता, "कि मेरी मौजूदगी में वह मेरे सिवा किसी और के बारे में सोचे, या मुझसे उसका ज़िक्र करे।"

नौ साल में मैं उसे उतना जान गया था जितना कि कोई भी किसी को जान सकता है। उसकी ज़िन्दगी जितनी दुर्घटनापूर्ण होती गई थी, उतना ही मेरा उससे लगाव बढ़ता गया था। यह लगाव उसकी दुर्घटनाओ के कारण शायद उतना नही था जितना अपनी दुर्घटनाओ को बचाकर चलने के कारण। मेरी जानकारीमें वह अकेला आदमी था जो दायें-बायें का खयाल न करके सड़क के बीचोबीच चलने का साहस रखता था। सिर्फ हठ या ज़िद की वजह से ऐसा नहीं करता था···उसका स्वभाव ही यह था। कई बार जब गहरी चोट खा जाता, तो यह भी कोशिश करता कि अपने इस स्वभाव को बदल सके। तब वह बड़े-बड़े मनसूबे बांधता, योजनाएं बनाता और अपने इरादों की घोषणा करता। कहता कि उसे समझ आ गया है कि ज़िन्दगी के बारे में उसका अब तक का नज़रिया कितना गलत था। कि अब से वह एक निश्चित लकीर पकड़कर चलने की कोशिश करेगा···कि अब अपने को ज़िन्दगी से और निर्वासित नही करेगा···कि अब जल्दी ही शादी करके सही ढंग से जीना शुरू करेगा। जब तक नौकरी लगी रहती और पीने को काफी शराब मिल जाती, तब तक वह कहता, "नहीं, मैं तुम लोगो की तरह नही जी सकता···मैं अपने वक्त का हिस्सा नही, उसका निगहबान हूं। मैं जीता नहीं, देखता हूं···क्योंकि जीना अपने में बहुत घटिया चीज़ है। जीने के नाम पर तो पेड़-पौधे भी जीते हैं···पशु-पक्षी भी जीते हैं।" पर जब कभी लम्बी बेकारी के दौर से गुज़रना पड़ता, और कई-कई दिन शराब छूने को न मिलती, तो वह भूलभुलैया मे खोए आदमी की तरह कहता, "मुझे समझ आ रहा है कि मैं बिलकुल कट गया हूं···हर चीज़ से बहुत दूर हो गया हूं।" अभी चन्द महीने पहले नई नौकरी मिलने पर उसने कहा था, "मुझे खुशी है, मैं अपनी दुनिया में लौट आया हूं। इस बार बेकारी में तो मुझे लग रहा था कि मैं तुमसे भी कट गया हूं···अपने में बिलकुल अकेला पड़ गया हू। मुझे यह भी एहसास हो रहा था कि तुम सब लोगों ने मुझे बीता हुआ मान लिया है···बीता हुआ और गुमशुदा।"

उसके बाद मैंने उसे लगातार कोशिश करते देखा था—अपने को वक्त का निगहबान बनने से रोकने की। अब काम के वक्त के बाद वह अपने को कमरे मे बन्द करता या··· इधर-उधर लोगो से मिलने चला जाता था। जिन लोगों के नाम से ही कभी भड़क उठता था, उनके साथ बैठकर चाय-कॉफी पी लेता था। उनके मज़ाक में शामिल होकर साथ मज़ाक करने की कोशिश भी करता था। इसी बीच दो-एक मैट्रिमोनियल विज्ञापनो के उत्तर मे उसने पत्र भी लिखे थे ··दो-एक लड़कियों को जाकर देख भी आया था। एक लड़की देखने मे साधारण थी···दूसरी साधारण भी नही थी। वैसे दोनों लड़कियां नौकरी मे थीं। "मैं किसी ऐसी ही लड़की से शादी करना चाहता हूं," उसने कहा था, "जो अपना भार खुद सभाल सकती हो। ताकि आगे कभी बेकारी आए, तो मुझे दुहरी तकलीफ में से न गुज़रना पड़े।"

पर दोनो में से किसी भी जगह वह बात तय नही कर पाया···बात सिरे पर पहुंचने से पहले ही किसी बहाने उसने उन्हे टाल दिया। अभी दस दिन हुए, एक चायघर में बैठे हुए अचानक ही वह लोगो के बीच से उठ खड़ा हुआ था। "मैं जाऊंगा," उसने कहा था, "मेरी तबीयत ठीक नही है। लग रहा है मेरा दिन 'सिंक' कर रहा है।" चेहरा उसका सचमुच ज़र्द हो रहा था। सर्दी के बावजूद माथे पर पसीने की बूंदें झलक रही थीं।

मैं तब उसके साथ उठकर बाहर चला आया था। बाहर फुटपाथ पर आकर वह खोई नजर से इधर-उधर देखता रहा था। "किसी डॉक्टर के यहां चलें ?" मैंने उससे पूछा, तो वह जैसे चौंक गया। बोला, "नहीं-नहीं, डॉक्टर को दिखाने की ज़रूरत नही। मैं अपने कमरे मे जाकर लेट रहूगा, तो सुबह तक ठीक हो जाऊगा।" दूसरे-तीसरे दिन मैं उसके कमरे मे उसे देखने गया, तो वह वहा नही था। ताले मे किसी के नाम उसकी चिट लगी थी, "मैं रात को देर से आऊंगा। मेरा इन्तज़ार मत करना।" तीन दिन बाद मैं फिर गया, तो पता चला कि उसके मालिक-मकान ने एक रात अपनी बीवी को बुरी तरह पीट दिया था···उस औरत के रोने-चिल्लाने की आवाज सुनकर यह मालिक-मकान को पीटने जा पहुचा था। उसके बाद से बहुत कम अपने कमरे मे नज़र आया था। यह अस्वाभाविक नही लगा क्योंकि एक बार जब दफ्तर में उसके सामने की कुर्सी पर बैठनेवाले अधेड़ बैचलर की हार्ट-फेल से मौत हो गई थी, तो यह कई दिन दफ्तर नही गया था और कोशिश करता रहा था कि उसकी मेज़ उस कमरे से उठवाकर दूसरे कमरे मे रखवा दी जाए।

पर कल मुलाकात होने पर वह मुझे हमेशा की तरह मिला था। न उसने अपने मालिक-मकान का जिक्र किया था, न ही अपनी सेहत की शिकायत की थी। बल्कि मैंने पूछा कि अब तबीयत कैसी है, तो उसने आखें मूदकर सिर हिला दिया था कि बिलकुल ठीक है···हालांकि जिस तरह वह मुझे उठाकर लाया था, उससे मुझे लगा था कि वह कोई खास बात करना चाहता है। क्या बात होगी···यह मैं बस मे चढ़ने के बाद भी सोचता रहा था।

एक परिचित चेहरा सामने की भीड़ से हमारी तरफ आ रहा था। सफेद बाल और नुकीली ठोडी। आखें बचाने पर भी वह व्यक्ति मुस्कराता हुआ पास आ खड़ा हुआ। "क्या हो रहा है ?" उसने बारी-बारी से दोनो को देखते हुए पूछा।

"कुछ नही, ऐसे ही खड़े थे," मैंने कहा। इस पर वह हाथ मिलाकर चलने को हुआ, तो अचानक उसकी नजर जख्मी हाथ पर पड़ गई। "यह क्या हुआ है यहां ?" उससे पूछ लिया।

"यह कुछ नही है," जख्मी हाथ रेलिंग से कटकर नीचे चला गया। "कल

खिड़की खोलते हुए कट गया था···खिड़की के कांच से। बन्द खिड़की थी···खुल नहीं रही थी। उसीका ज़ख्म है···खिड़की के कांच का।"

"पर यह ज़ख्म कल का तो नहीं लगता," उस व्यक्ति ने अविश्वास के साथ हम दोनों की तरफ देख लिया।

"नहीं लगता ? नहीं लगता, तो आज का होगा, इसी वक्त का। यह ठीक है ?"

उस व्यक्ति की आंखें पल-भर के लिए चौकन्नी-सी हो रहीं। फिर एक बार सन्देह की नज़र उस हाथ पर डालकर और कुछ हमदर्दी के साथ मेरी तरफ देखकर वह भीड़ में आगे बढ़ गया। उसके सफेद बाल सलेटी-से होकर कुछ दूर तक नज़र आते रहे।

"तो ?"

वह हिला नहीं। और भी गहरी नज़र से मेरी तरफ देखने लगा। जैसे आंखों से मेरी चीड़-फाड़ कर रहा हो।

"कुछ देर कहीं चलकर बैठें ?" मैंने पूछा।

उसने सिर हिला दिया। "मैं अब जा रहा हूं," उसने कहा।

"कहां जाओगे ?

"अपने कमरे में···या जहां भी मन होगा।"

"पर मेरा खयाल था कि तुम अभी कुछ और बात करना चाहोगे।"

"मैं और बात करना चाहूंगा ?" वह हंसा। "मैं अब किसी से भी और बात करना चाहूंगा ?"

"पर मैं तुमसे बात करना चाहूंगा," मैंने कहा, "तुम कहो, तो यहीं कहीं बैठते हैं। नहीं तो कुछ देर के लिए मेरे घर चल सकते हैं।

"तुम्हारे घर ?" नियॉनलाइट्स के रंग उसकी आंखों में चमककर बुझ गए। "तुम्हारा घर कल से आज में कुछ और हो गया है ?"

बात मेरी समझ में नहीं आई। मैं चुपचाप उसकी तरफ देखता रहा। वह पहले से थोड़ा और मेरी तरफ को झुककर बोला, "तुम्हारा घर वही है न जहां तुम कल भी गए थे···अकेले ? बस के फुटबोर्ड पर लटके हुए···? कल तुम्हें मेरे साथ रहने से···मुझे साथ ले जाने से—डर लगता था···आज नहीं लगता ? मैं जैसा बेकार कल था वैसा ही आज भी हूं···बिलकुल उतना ही बेकार और उतना ही बदचलन।"

ट्रैफिक की आवाज़ से हटकर एक और आवाज़—आसमान में बादल की हल्की गड़गड़ाहट। मैंने ऊपर की तरफ देखा···जैसे कि देखने से ही पता चल सकता हो कि बारिश फिर तो नहीं होने लगेगी। बिजली के तारों के ऊपर धुंधला अंधेरा था और उससे भी ऊपर हल्की-हल्की सफेदी। मुझे लगा कि मेरे पैर पहले से ज़्यादा चिपचिपा रहे हैं, और चप्पल के अन्दर गई मिट्टी की परतें दोनों तलवों से चिपक गई हैं। मेरे दोनों होंठ भी आपस में चिपक रहे थे। उन्हें कोशिश से अलग करके मैंने कहा, "तुमने कल नहीं बताया कि तुमने यह नौकरी भी छोड़ दी है।"

"तुम्हारा खयाल है, मैं नौकरी छूटने की वजह से यह बात कर रहा हूं ?" वह अपनी आंखें अब और पास ले आया। "तुम समझते हो कि इसी वजह से कल मैं तुमसे चिपका रहना चाहता था ?···पर खातिर जमा रखो, नौकरी न रहने पर भी मैं दस आदमियों को खिला सकता हूं···खाता मैं कभी किसी से नहीं। और यह भी विश्वास रखो कि मुझे अभी बीस साल और जीना है···कम से कम बीस साल।"

नीचे से चिपचिपाते पैर ऊपर से मुझे बहुत नंगे और ठण्डे महसूस हो रहे थे। सामने रोशनी का एक दायरा था जिसमे कई-एक स्याह बिन्दु हिल-डुल रहे थे। उस दायरे मे घिरा एक और दायरा था'''तारीकी का'''जिसमें कोई बिन्दु अलग नज़र नही आता था, पर जो पूरा का पूरा हल्के-हल्के काप रहा था।

उसने पास से गुज़रते एक टू-सीटर को हाथ के इशारे से रोका, तो मैंने फिर कहा, 'चलो, घर चलते हैं। वही चलकर बात करेंगे।"

"तुम जाओ अपने घर," उसने मेरा हाथ अपने ज़ख्मी हाथ में लेकर हिला दिया। "'''क्योकि तुम्हारे लिए एक ही जगह है जहां तुम जा सकते हो। पर जहां तक मेरा सवाल है, मेरे लिए एक ही जगह नही है "मैं कहीं भी जा सकता हूं।" और रेलिंग के नीचे से निकलकर वह टू-सीटर मे जा बैठा। टू-सीटर स्टार्ट होने लगा, तो उसने बाहर की तरफ झुककर कहा, "पर इतना तुम्हे बता दू, कि मुझे कम से कम बीस साल और जीना है। तुम्हारे या दूसरे लोगो के बारे मे मैं नही कह सकता'''पर अपने बारे मे कह सकता हू कि मुझे ज़रूर जीना है।"

मेरे हाथ पर ठण्डा-सा जज़ीरा बन गया था'''वहां जहां वह उसके ज़ख्म से छुआ था। उसका टू-सीटर दायरे मे घूमता हुआ काफी आगे निकल गया, तो भी मैं कुछ देर रेलिंग के सहारे वही खडा हाथ के जज़ीरे को सहलाता रहा। दो-एक और खाली टू-सीटर सामने से निकले, पर मैंने उन्हें रोका नही। जब अचानक एहसास हुआ कि मैं बेमतलब वहां खडा हूं, तो वहा से हटकर कॉरिडोर मे आ गया और शीशे के शो-केसों मे रखे सामान को देखता हुआ चलने लगा। कुछ देर बाद मैंने पाया कि कनाट प्लेस पीछे छोडकर मैं पार्लियामेंट स्ट्रीट के फुटपाथ पर चल रहा हूं'''उस स्टॉप से कही आगे जहां से कि रोज घर के लिए बस पकडा करता था।

वारिस

घडी में तीन बजते ही सीढियों पर लाठी की खट्-खट् होने लगती और मास्टरजी अपने गेरुआ बाने मे ऊपर आते दिखाई देते। खट्-खट् आवाज़ सुनते ही हम भागकर बैठक मे पहुंच जाते और अपनी कापिया और किताबें ठीक करते हुए ड्योढी की तरफ देखने लगते, घडी तीन बजा न चुकी होती, तो उसके ऊपर पहुंचते-पहुंचते बजा देती। मैं बहन के कान के पास मुह ले जाकर, कहता, "एक-दो-तीन'''।"

और मास्टरजी बैठक मे पहुच जाते। अगर घडी उनके वहा पहुंचने से दो-तीन मिनट पहले तीन बजा चुकी होती, तो वे उस पर शिकायत की एक नज़र डालते, भरकर रखे हुए गिलास मे से दो घूंट पानी पीते और पढाने बैठ जाते। मगर बैठकर भी दो-एक बार उनकी नज़र ऊपर हमारी दीवार-घडी की तरफ उठती, फिर अपने हाथ पर लगी हुई बडे गोल डायल की पुरानी पीली-सी घडी पर पडती और वे 'हूं' या 'त्चत्' की आवाज़ से अपना असतोष प्रकट करते—जाने अपने प्रति, अपनी घडी के प्रति या हमारी घडी के प्रति।

हमे मैट्रिक की परीक्षा देनी थी और वे हमे पढाने के लिए आते थे। बहन मुझसे एक साल बडी थी, मगर उसने उसी साल ए, बी, सी, से अंग्रेज़ी सीखी थी। मैं भी अंग्रेज़ी इतनी ही जानता था कि बिना हिचकिचाहट के 'वंडरफुल' के ये हिज्जे बता देता

था—डब्लू ए एन्, डी ओ आर, एफ यू डबल एल—वंडरफुल। मास्टरजी कविता बहुत उत्साह के साथ पढ़ाते थे। वे टेनीसन, ब्राउनिंग और स्काट की पंक्तियों की व्याख्या करते हुए जैसे वहीं और ही पहुंच जाते थे। उनकी आखें चमकने लगती थीं और दोनों हाथ हिलने लगते थे। भाषा उनके मुह से ऐसी निकलती थी जैसे खुद कविता कर रहे हों। मुझे कई बार कविता की पंक्ति तो समझ में आ जाती थी, उनकी व्याख्या समझ मे नही आती। मैं मेज के नीचे से बहन के टखनो पर ठोकर मारने लगता। ऊपर से चेहरा गभीर बनाए रहता। ठोकर मारना इसलिए जरूरी था कि अगर मैं उसे ध्यान से पढ़ने देता, तो वह बीच में मास्टर जी से कोई सवाल पूछ लेती थी जिससे जाहिर होता था कि बात उसकी समझ में आ रही है, और इस तरह अपनी हतक होती थी।

कविता पढ़ाकर मास्टरजी हमसे अनुवाद कराते। अनुवाद के 'पैसेज' वे किसी किताब में से नही देते थे, जबानी लिखाते थे। उनमे कई बड़े-बडे शब्द होते जो अपनी समझ मे ही न आते। वे लिखाते :

"भावना जीवन की हरियाली है। भावना-विहीन जीवन एक मरुस्थल है जहा कोई अकुर नही फूटता।"

हम पहले उनसे भावना की अंग्रेज़ी पूछते, फिर अनुवाद करते :

"सेंटीमेंट इज़ लाइफ़'स् वेज़ीटेबल। सेंटीमेंटलेस लाइफ इज़ ए डेजर्ट व्हेयर ग्रास इज नाट ग्रो।"

बहन सशोधन करती कि 'इज़ नाट ग्रो' नही 'डू नाट ग्रो' होना चाहिए, ग्रास 'सिंगुलर' नही 'प्लूरल' है। मैं उसके हाथ पर मुक्का मार देता कि कल ए-बी-सी सीखने वाली लड़की आज मेरी अंग्रेजी दुरुस्त करती है। वह मेरे बाल पकड़ लेती कि एक साल छोटा होकर यह लड़का बड़ी बहन के हाथ पर मुक्का मारता है! मगर जब मास्टरजी फैसला कर देते कि 'डू नाट ग्रो' नहीं 'इज़ नाट ग्रो' ठीक है, तो मैं अपने अंग्रेजी के ज्ञान पर फूल उठता और बहन का चेहरा लटक जाता हालांकि मारपीट के मामले मे डांट मुझीको पड़ती।

मास्टरजी के आने का समय जितना निश्चित था, जाने का समय उतना ही अनिश्चित था। वे कभी डेढ घण्टा और कभी दो घण्टे पढ़ाते रहते थे। पढ़ते-पढ़ते पाच बजने को आ जाते तो मेरे लिए 'नाउन' और 'एडजेक्टिव' में फर्क करना मुश्किल हो जाता। मैं जम्हुइयां लेता और बार-बार ऊबकर घडी की तरफ देखता। मगर मास्टरजी उस समय 'पास्ट पार्टीसिपल' और 'परफेक्ट पार्टीसिपल' जैसी चीज़ों के बारे में जाने क्या-क्या बता रहे होते। पढाई हो चुकने के बाद वे दस मिनट हमें जीवन के सबध मे शिक्षा दिया करते थे। वे दस मिनट बिताना मुझे सबसे मुश्किल लगता था। वे पानी के छोटे-छोटे घंट भरते और जोश में आकर सुन्दर और असुन्दर के विषय में जाने क्या कह रहे होते, और मैं अपनी कापी घुटनो पर रखे हुए उसमें लिखने लगता :

सुन्दर मुन्दरियो, हो!
तेरा कौन बिचारा, हो!
दुल्ला भट्टीवाला, हो!

बहन का ध्यान भी मेरी कापी पर होता क्योंकि वह आंख के इशारे मे मुझे यह सब करने से मना करती। कभी वह इशारे से धमकी देती कि मास्टरजी से मेरी शिकायत कर देगी। मैं आंखो ही आंखो मे उसकी खुशामद कर लेता। जब मास्टरजी का सबक खत्म होता और उनकी कुर्सी 'च्या' की आवाज करती हुई पीछे को हटती, तो मेरा दिल खुशी से उछलने लगता। सीढ़ियों पर खट्-खट् की आवाज समाप्त होने से

पहले ही मैं पतग और डोर लिए हुए ऊपर कोठे पर पहुंच जाता और 'आ बोऽऽ काटा काटाऽऽ ईऽऽ बोऽऽ !' का नारा लगा देता।

मास्टरजी के बारे मे हम ज्यादा नही जानते थे—यहा तक कि उनके नाम का भी हमे नही पता था। एक दिन अचानक ही वे पिताजी के पास बैठक मे आ पहुंचे थे। उन्होने कहा था कि एक भी पैसा पास न होने से वे बहुत तंगी मे हैं मगर वे किसी से खैरात नही लेना चाहते, काम करके रोटी खाना चाहते हैं। उन्होने बताया कि उन्होने कलकत्ता यूनिवर्सिटी से बी० एल् किया है और बच्चों को बगला और पंजाबी पढा सकते हैं। पिताजी हम दोनों की अग्रेजी की योग्यता से पहले ही आतकित थे, इसलिए उन्होने उसी समय से उन्हे हमे पढाने के लिए रख लिया। कुछ दिनों बाद वे उन्हें और ट्यूशन दिलाने लगे, तो मास्टरजी ने मना कर दिया। वे हमारे घर से थोड़ी दूर एक गंदी-सी गली में चार रुपये महीने की एक कोठरी लेकर रहने लगे थे। यह वे पूछने पर भी नही बताते थे कि बी० एल्० करने के बाद उन्होने प्रैक्टिस क्यों नही की और घर-बार छोडकर गेरुआ क्यों धारण कर लिया। वे बस उत्तेजित-से पढाने आते, और उसी तरह उत्तेजित-से उठकर चले जाते।

एक दिन घडी ने तीन बजाए तो हम लोग रोज की तरह भागकर बैठक में पहुच गए और दम साधकर अपनी-अपनी कुर्सी पर बैठ गए। मगर काफी समय गुजर जाने पर भी सीढियो पर खट्-खट् की आवाज सुनाई नही दी। एक मिनट, दो मिनट, दस मिनट। हम लोगो को हैरानी हुई—मुझे खुशी भी हुई। चार महीने मे मास्टरजी ने पहली बार छुट्टी की थी। इस खुशी मे मैं अग्रेज़ी की कापी में थोड़ी ड्राइंग करने लगा। बहन से 'बी' और 'एफ्' हमेशा एक-से लिखे जाते थे—वह उनके अन्तर को पकाने लगी। मगर यह खुशी ज्यादा देर न रही। सहसा सीढियों पर खट्-खट् सुनाई देने लगी, जिससे हम चौंक गए और निराश भी हुए। मास्टरजी अपने रोज़ के कपडों के ऊपर एक मोटा गेरुआ कम्बल लिए बैठक में पहुंच गए। मैंने उन्हे देखते ही अपनी बनाई हुई ड्राइंग फाड़ दी। वे हाफते-से आकर आराम-कुर्सी पर बैठ गए और दो घूट पानी पीने के बाद 'पोयट्री' की किताब खोलकर पढाने लगे :

"टैल मी नाट इन मोर्नफुल नंबर्ज़
लाइफ इज़ बट ऐन एम्प्टी ड्रीम···"

मैंने देखा, उनका सारा चेहरा एक बार पसीने से भीग गया और वे सिर से पैर तक काप गए। कुछ देर वे चुप रहे। फिर उन्होंने गिलास को छुआ, मगर उठाया नही। उनका सिर झुककर बाहो मे आ गया और कुछ देर वही पडा रहा। उस समय मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे सामने सिर्फ कम्बल मे लिपटी हुई एक गाठ ही पडी हो। जब उन्होंने चेहरा उठाया, तो मुझे उनकी नाक और आखो के बीच की झुरिया बहुत गहरी लगी। उनकी आखें झपती और कुछ देर बद ही रहती, फिर जैसे प्रयत्न से खुलती। वे होठो पर ज़बान फेरकर फिर पढाने लगते :

"फार द सोल इज़ डेड दैट स्लबर्ज़,
एंड थिंग्ज़ आर नाट वाट दे सीम।"

मगर उसके साथ उनका सिर फिर झुक जाता। मैंने डरी हुई सी नज़र से बहन की तरफ देखा।

"मास्टरजी, आज आपकी तबीयत ठीक नही है," बहन ने कहा, "आज हम और नही पढ़ेंगे।"

नही पढ़ेंगे—यह सुनकर मेरे दिल मे खुशी की लहर दौड़ गई। मगर उस

हिलती हुई गठरी को देखकर डर भी लग रहा था। मास्टरजी ने आंखें उठाईं और धीरे से कुछ कहा। फिर उन्होंने पुस्तक की तरफ हाथ बढाया, तो बहन ने पुस्तक खीच ली। कुछ देर मास्टरजी हम लोगो की तरफ देखते रहे—जैसे हम उनमे बहुत दूर बैठे हो और वे हमें ठीक से पहचान न पा रहे हो। फिर एक लम्बी सास लेकर चलने के लिए उठ खड़े हुए।

पूरे चार सप्ताह वे टाइफाइड मे पडे रहे।

उन दिनों मेरी ड्यूटी लगाई कि मैं कोठरी मे जाकर उन्हें सूप वगैरह दे आया करूं। वैद्यजी के पास जाकर उनकी दवाई-अवाई भी मुझे ही लानी होती थी। मेरा काफी समय उनकी कोठरी मे बीतता। वे अपने कम्बल म लिपटकर चारपाई पर [illegible] ोयो को देखता [illegible] तस्वीरें बनाने [illegible] सीलन की गध आती थी। दीवारों का पलस्तर जगह-जगह से उखड गया था और कुछ जगह उखडने की तैयारी मे ईंटों से आगे को उभर आया था। मुझे उस पलस्तर में तरह-तरह के चेहरे नज़र आते। पलस्तर का कोई टुकड़ा झड़कर खप से नीचे आ गिरता, तो मैं ऐसे चौंक जाता जैसे मेरी आखों के सामने किसी मुर्दा चीज़ मे जान आ गई हो। कभी मैं उठकर खिड़की के पास चला जाता। खिडकी में सलाखों की जगह बास के टुकडे लगे थे। गली से उठती हुई भयानक दुर्गन्ध से दिमाग फटने लगता। वह गली जैसे शहर का कूडा-घर थी। एक मुर्गा गली के कूड़े को अपने पैरो मे बिखेरता रहता और हर आठ-दस मिनट के बाद ज़ोर से वाग दे देता।

मास्टरजी के पास ज्यादा सामान नही था, पर जो कुछ भी था उसे देखने को मेरे मन में बहुत उत्सुकता रहती थी। एक दिन जब थोड़ी देर के लिए मास्टरजी की आंख लगी, तो मैंने कोठरी के सारे सामान की जांच कर डाली। कपडों के नाम पर वही चंद चीथडे थे जो हम उनके शरीर पर देखा करते थे। डंडे और कमडल के अतिरिक्त उनकी सम्पत्ति मे कुछ पुरानी फटी हुई पुस्तकें थी जिनमे से केवल भगवद्गीता का शीर्षक ही मैं पढ सका। शेष पुस्तकें बगला मे थी। एक पुस्तक के बीच में एक लिफाफा रखा था जिसपर सात साल पहले की हावड़ा और मिदनापुर की मोहरें लगी थी। मैंने डरते-डरते लिफाफे में से पत्र निकाल लिया। यह भी बंगला में था। बीच मे कोई-कोई शब्द अंग्रेज़ी का था—स्टैंडर्ड···मीन्ज···ओवर कान्फिडेंस···डिसगस्टिंग···हेल··। मैंने जल्दी से पत्र वापस लिफाफे मे रख दिया। पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ पुराने और नये फुलस्केप कागज़ थे जिनपर बंगला और अंग्रेजी मे बहुत कुछ लिखा हुआ था। वे कागज़ अभी मेरे हाथो मे ही थे कि मास्टरजी की आख खुल गई और वे खांसते हुए उठकर बैठ गए। मैं कांपते हुए हाथों से कागज रखने लगा तो वे पहले मुस्कराए और फिर हंसने लगे।

"इन्हे इधर ले आओ," वे बोले।

मैं अपराधी की तरह कागज़ लिए हुए उनके पास चला गया। उन्होंने कागज़ मुझसे ले लिए और मुझे पास बिठाकर मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगे।

"जानते हो, इन कागज़ों में क्या है?" उन्होंने बुखार के कारण कमज़ोर आवाज़ में पूछा।

"नही।" मैंने सिर हिलाया।

"यह मेरी सारी ज़िन्दगी की पूंजी है," उन्होंने कहा और उन कागज़ो को छाती

पर रखे हुए लेट गए। लेटे-लेटे [illegible] रहे, फिर उन्होंने उन्हे अपनी दाईं ओर रख लिया [illegible] जाने क्या सोचते रहे। फिर बोले, "बच्चे, जानते [illegible] ?"

मैंने सिर हिला दिया कि नही जानता।

"अच्छा, मैं तुम्हे बताऊगा कि मनुष्य क्यो जीवित रहना चाहता है और कैसे जीवित रहता है। मैं तुम्हे और भी बहुत कुछ बताना चाहता हूं, मगर अभी तुम छोटे हो। जरा बडे होते तो ' ।" खैर···अब भी जो कुछ बता सकता हूं, जरूर बताऊंगा। तुम मेरे लिए मेरे अपने बच्चे की तरह हो···तुम दोनो···दोनो ही मेरे बच्चे हो।"

उन्होने मेरा हाथ पकड लिया। मेरा दिल बैठने लगा कि वे जो कुछ बताना चाहते हैं, उसी समय न बताने लगें क्योकि मैं जानता था कि वे जो कुछ भी बताएंगे वह ऐसी मुश्किल बात होगी कि मेरी समझ मे नही आएगी। समझने की कोशिश करूंगा, तो कई मुश्किल शब्दो के अर्थ सीखने पडेंगे। मेरा अनुभव कहता था कि शब्द खुद जितना मुश्किल होता है, उसके हिज्जे उससे भी ज्यादा मुश्किल होते हैं। हिज्जों से मैं बहुत घबराता था।

मगर उस समय उन्होने कुछ नहीं कहा। सिर्फ मेरा हाथ पकड़कर लेटे रहे।

अच्छे होकर जब वे हमे फिर पढ़ाने आने लगे, तो उन्होंने कहा कि अब से वे अग्रेजी के अतिरिक्त हमे थोड़ी-थोडी बंगला भी सिखाएं क्योकि बंगला सीखकर ही हम उनके विचारो को ठीक से समझ सकेंगे। अब वे तीन बजे आते और साढ़े पांच-छ बजे तक बैठे रहते। मैं साढ़े तीन-चार बजे ही घड़ी की तरफ देखना आरम्भ कर देता और जाने किस मुश्किल से वह सारा वक्त काटता। उनकी दो महीने की जी-तोड़ मेहनत से हम बहन-भाई इतनी बगला सीख पाए कि एक-दूसरे को बजाय तुम के 'तूमि' कहने लगे। वह कहती, "तूमि मेरी कापी का वरका मत फाड़ो।"

और मैं कहता, "तूमि बकवास मत करो।"

हमारी इस प्रगति से मास्टरजी बहुत निराश हुए और कुछ दिनों बाद उन्होंने हमे बगला सिखाने का विचार छोड दिया। अनुवाद के लिए अब वे पहले से भी मुश्किल 'पैसेज' लिखाने लगे, मगर इससे सारा अनुवाद उन्हें खुद ही करना पड़ता। उस माध्यम से भी हमे बडी-बड़ी बातें सिखाने का प्रयत्न करके जब वे हार गए, तो उन्होंने एक और उपाय सोचा। वे फुलस्केप कागज बीच में से आधे-आधे फाड़कर उन पर दोनो ओर पेंसिल मे अग्रेज़ी में बहुत कुछ लिखकर लाने लगे। बहन के लिए वे अलग कागज़ लाते और मेरे लिए अलग। उनका कहना था कि वे रोज उन कागज़ों मे हमको एक-एक नया विचार देते हैं, जिसे हम अभी चाहे न समझें, बड़े होने पर ज़रूरी समझ सकेंगे, इसलिए हम उन कागज़ो को अपने पास संभालकर रखते जाए। पहले छ-आठ दिन तो हमने कागज़ो की बहुत संभाल रखी, मगर बाद मे उन्हें संभालकर रखना मुश्किल होने लगा। अक्सर बहन मेरे कागज कही से गिरे हुए उठा लाती और कहती कि कल वह मास्टरजी से शिकायत करेगी। मैं मुह बिचका देता। एक दिन मैंने देखा, अलमारी मे सिर्फ बहन के कागज़ ही तह किए रखे है, मेरा कोई कागज नही है। चारों तरफ खोज करने पर भी जब मुझे अपने कागज़ नहीं मिले, तो मैंने बहन के सब पुलिंदे उठाकर फाड दिए। इस पर बहन ने मेरे बाल नोच लिए। मैंने उसके बाल नोच लिए। उस दिन से हम दोनों इस ताक में रहने लगे कि कल मास्टरजी के दिए हुए एक के कागज़ दूसरे के हाथ मे लगें कि वह उन्हें फाड दे। मास्टरजी से कागज़ लेते हुए हम चोर आख से एक-दूसरे की तरफ देखते और मुश्किल से अपनी मुस्कराहट दबाते। मास्टरजी किसी किसी दिन अपने

पुराने कागज़ों के पुलिंदे साथ ले आते थे और वहीं बैठकर उनमे से हमारे लिए कुछ हिस्से नकल करने लगते थे। हम दोनो उतनी देर कापियो पर इधर-उधर के रिमार्क लिखकर आपस में कापियां तबदील करते रहते। इधर मास्टरजी वे पुलिंदे हमारे हाथों में देकर सीढियों से उतरते, उधर हमारी आपस में छीना-झपटी आरम्भ हो जाती और हम एक-दूसरे के कागज को मसलने और नोचने लगते। अक्सर इस बात पर हमारी लड़ाई हो जाती कि मास्टरजी एक को अठारह और दूसरे को चौदह पन्ने क्यों दे गए है।

परीक्षा मे अब थोड़े ही दिन रह गए थे। पिताजी ने एक दिन हमसे कहा कि हम मास्टरजी को अभी से सूचित कर दें कि जिस दिन हमारा अंग्रेजी का 'बी' पेपर होगा उस दिन तक तो हम उनसे पढते रहेंगे मगर उसके बाद...। उस दिन मास्टरजी के आने तक हम आपस से झगड़ते रहे कि हममें से कौन उनसे यह बात कहेगा। आखिर तीन बज गए और मास्टरजी आ गए। उन्होंने हमेशा की तरह घडी की तरफ देखा, 'च्चत् च्चत्' की आवाज़ के साथ सिर को झटका दिया और पानी का एक घूट पीकर 'पोयट्री' की किताब खोल ली। हम दोनो ने एक-दूसरे की तरफ देखा और आखें झुका ली।

"मास्टरजी !" बहन ने धीरे से कहा।

उन्होंने आंखें उठाकर उसकी तरफ देखा और पूछा कि क्या बात है—उसकी तबीयत तो ठीक है ?

बहन ने एक बार मेरी तरफ देखा, मगर मेरी आंखें ज़मीन में धसी रहीं।

"मास्टरजी, पिताजी ने कहा है..." और उसने रुकते-रुकते बात उन्हे बता दी।

"क्या मैं नहीं जानता ?" माथे पर त्यौरियां डालकर सहसा उन्होने कडे शब्दो मे कहा, "मुझे यह बताने की क्या ज़रूरत थी ?" और वे जल्दी-जल्दी कविता की पंक्ति पढ़ने लगे :

शेड्स आफ नाइट वर फालिंग फास्ट।
व्हेन थ्रू ऐन एल्पाइन विलेज पास्ट।
ए यूथ...

सहसा उनका गला भर्रा गया। उन्होंने जल्दी से दो घूंट पानी पिया और फिर से पढने लगे :

शेड्स आफ नाइट वर फालिंग फास्ट...

उस दिन पहली बार उन्होने जाने का समय जानने के लिए भी घड़ी की तरफ देखा। पूरे चार बजते ही वे कागज़ समेटते हुए उठ खड़े हुए। अगले दिन आए, तो आते ही उन्होने हमारी परीक्षा की 'डेट शीट' देखी और बताया कि जिस दिन हमारा 'बी' पेपर होगा उसी दिन वे यहा से चले जाएंगे। उन्होने निश्चय किया था कि वे कुछ दिन जाकर गरुड़चट्टी में रहेंगे, फिर उससे आगे घने पहाड़ों मे चले जाएंगे, जहां से फिर कभी लौटकर नही आएंगे। उस दिन उनमे पढ़ते हुए न जाने क्यों मुझे उनके चेहरे से डर लगता रहा।

हमारा 'बी' पेपर हो गया। मास्टरजी ने कापते हाथो से हमा. : पर्चा देखा। उन्होने जो-जो कुछ पूछा, मैंने उसका सही जवाब बता दिया। मैं हाल से निकलकर हर सवाल के सही जवाब का पता कर आया था। बहन जवाब देने मे अटकती रही। मास्टरजी ने मेरी पीठ थपथपाई, पानी पिया और चले गए। मगर शाम को वे फिर आए। पिताजी से उन्होंने कहा कि वे जाने मे पहले एक बार बच्चों से मिलने आए हैं। हम दोनो को अन्दर से बुलाया गया। मास्टरजी ने हमसे कोई बात नही की, सिर्फ हमारे सिर पर हाथ फेरा और "अच्छा" कहकर चल दिए। हम लोग उनके साथ-साथ ड्योढ़ी तक आए।

वहां रुककर उन्होने मेरी ठोडी को छुआ और कहा, "अच्छा, मेरे बच्चे !" और कांपते हाथ से उन्होने किसी तरह अपना भूरा-सा फाउंटेन पेन जेब से निकाला और मेरे हाथ में दे दिया।

"रख लो, रख लो," उन्होने ऐसे कहा जैसे मैंने उसे लेने से इन्कार किया हो। "बहुत अच्छा तो नही है, मगर काम करता है। मुझे तो अब इसकी जरूरत नही पडेगी। तुम अपने पास रख छोडना···या फेंक देना···।"

उनकी आखें भर आई थी इसलिए उन्होंने मुस्कराने का प्रयत्न किया और मेरा कधा थपथपाकर खट्-खट् सीढियां उतर गए। बहन स्पर्द्धा की दृष्टि से मेरे हाथ मे उस फाउण्टेन पेन को देख रही थी। मैंने उसे अंगूठा दिखाया और पेन खोलकर उसके निब की जाच करने लगा।

मगर उसके कुछ ही दिन बाद वह निब मुझसे टूट गया—और फिर वह पेन भी जाने कहा खो गया !

नन्ही[1]

मा—वह उठ बैठी, मां-मां, बिस्तर से गिर चली वह। जब ले लिया बुआ ने गोद में। पता नही था उसको कि मा ने आधी रात के समय उसी के लिए बाहें बढ़ा दी थी, उसका नाम लेना चाहा था, उसीको चूमना चाहा था, जब कंठ और कान दोनों ने साथ न दिया—मा उनसे अलग हो गई। मां उससे भी अलग हो गई, अपनी नन्ही से।

नन्ही बेखबर बिस्तर पर सोई, एक बार काप उठी थी, बेखबर। फिर सो गई थी वह—यह सब हुआ घनी रात में, जहां हर रोज नन्ही सोया करती थी, मां के वक्ष के साथ पर जहा वह आज जो, कल भी, परसों भी, सोई थी अकेली, शायद ऐसा ही अभ्यास डालने के लिए। बुआ उसे सुला देती—जगा देती रवि की किरणें। वह उठकर कहती—मा-मा। पर मा चली गई थी। चली गई थी मधु-समीरण छोड़कर, नवकलिका को लू के भरोसे···

दिन लगे नन्ही को यह जानते, समझते, मस्तिष्क में बिठाते कि मां चली गई जहा कही भी, जिस किसी भी काम के लिए और जब कभी भी लौटने के लिए। नन्ही को लगता सारा घर मिट्टी का, रोटी आटे की, पानी पानी-सा, फीका-फीका। सब कुछ ऐसा पहले नही था। पहले इन सबमें मां थी। दुलार-प्यार भी मिलता, ऐसा जैसा मां का नही होता। ऐसा-वैसा लगता···लगता ही बस ! यह भी न जान पाती, क्या लगता है, क्यों लगता है, कैसे लगता है। खिलौने लेती सामने, फिर पाती धुंधली-सी मा—समझ न सकती क्या है, क्यों है, कैसे है।

औरों के लिए मां मर गई थी—धीरे-धीरे नन्ही के लिए भी मर गई वह ! जैसे वह कभी थी ही नही, यदि थी भी तो कुछ करती ही नहीं थी जैसे। सब कुछ ऐसा ही था

---

1. यह राकेश जी की शायद प्रथम कहानी है। उन्हीं की हस्तलिपि में प्राप्त स्कूल की परीक्षाओं की लम्बी कापी के कागजों पर लिखी हुई। यह 7 मई, सन् '44 में लाहौर में लिखी गई। इसकी पांडुलिपि पर तरह-तरह से 'राकेश' लिखकर देखा गया है। सभवत: यह प्रक्रिया उपनाम चुनने की रही है, जो बाद मे उनका नाम ही हो गया।

जसा अब था। बुआ थी, बाबू थे, नौकर थे। मां यदि कभी थी तो बस रोटी खिलाती थी—और बस नन्ही खेलने लगती खिलौने से। कोई घर में कुछ कहता तो वह अन्दर भागकर चलती कुछ कहने। बुआ को देखती, ठिठकती क्षण-भर, सोचती—हां, बुआ के पास ही तो आई थी वह। वह दौड़कर पहुंच जाती बुआ की गोद मे। बुआ उसे चूम लेती। नन्ही को लगता था यही—अच्छा-सा भला-सा। वह क्या था धुधला-सा, मद्धम-सा—कुछ भी नही।

और मां सचमुच मर गई। नन्ही की नन्ही-सी स्मृति मे रह गए खिलौने, वही उसका स्वत्व—प्यार-दुलार का आश्रय, बुआ। खेलती वह, खाती वह, गाती भी कभी—हसती खूब। टूट जाता कोई खिलौना अपने ही हाथ से गिरकर तो रो भी देती। बुआ मना लेती—पुचकारकर। नये के चाव मे पुराने को खो देती वह। मिल भी जाता उसे नया। पुराने से सुन्दर लगता। दिन, दो दिन बीतते पुराना खिलौना याद भी न रहता। जैसा था ही नही कभी। बनते और बिगडते खेल—जैसे होता ही ऐसा हो। और सबमे उलझी रहती वह। एक-सी गति से बीतता समय।

एक दिन लगा, कुछ असाधारण-सा नन्ही को। बुआ ने उसे बुलाया, चूमा आखो मे आसू भरकर और फिर जाने दिया। फिर एक बार उसे उठा लिया और थोडा-सा हस दिया आखों में आंसू लेकर। जैसे हंसना ही हो आंसू, आसू हसना। समझ न सकी वह खुद भी। बुआ के गले में बाहे डाल-भर दी।

रात को थपथपाकर सुलाते हुए उसे बुआ ने बताया। निंदियाई हुई-सी नन्ही ने सुना—उसके बाबू उसे ला देगे नई मां। चौंक-सी पड़ी एक बार'''सोचा मां, फिर एक अस्पष्ट-सी रेखा, उसने सोचना चाहा, कुछ समझ में आया यही। एक छाया-सी, वात्सल्य लिए। नन्ही नही समझी। अपनी बुआ से चिपट गई थी वह। फिर सोचा—सोचा मा! एक अव्यक्त-सा अभाव घेरने लगा उसे। बुआ के और निकट हो गई वह। वह सोचना भी न चाहती, पर सोचा तो जाता ही है। अपनी ही तसल्ली के लिए उसने सोचा, जैसे कुछ याद हो आया। चमक-सी गई। नये माल जैछी नई मां बू ? बुआ ने प्रश्न का उत्तर न देकर उसे फिर थपथपा दिया। नन्ही समझी यही सब कुछ। जैसे उसने जान ही लिया हो, नई मां क्या ? नई मां कैसी ?

दूसरे दिन उठी भी वह बुआ के साथ ही। नन्ही भी नहा-धो ली। अपने सारे खिलौने कतार में रखते हुए उसे ख्याल आया, 'नई मां'। फिर कुछ सोचने-सी लगी। कुछ बिखरे-से विचार बने तो बिखरे ही रहे। फिर अस्पष्ट स्पष्ट-सी मूर्ति, उसे गोद में लिए उसे खिलाती, हसाती, चूमती, जगाती, सुलाती, कपडे पहनाती, प्यार देती। उसे धुंधली-सी मा याद हो आई। मा की आकृति नही, मां-भर। अपने खिलौने को अस्त-व्यस्त रखते हुए उसने न जाने क्या-क्या देखा। जब रोटी के लिए बुआ ने बुलाया तो नन्ही को लगा जैसे मा ने "अन्दर झांकी, बुआ को देखा। याद आया कोई चीज़ जो वहा होनी चाहिए, है नही वहां। क्या नही है ? समझ मे नही आया। रोटी खाई जैसे खा ही ली। मा उसे याद आ रही थी। वह सोचती बुआ ही मां थी या—या वह तस्वीर-सी। पर उसने अंदर देखा, बुआ में मां।

जब बुआ ने नन्ही के बाल सहेज दिए तो उसे सचमुच की मां याद आ गई, वैसे ही जैसी वह थी। अनायास ही पूछा उसने—वो मा आएगी बू ?

बुआ हैरान-सी उसे देखने लगी और देखती रही, क्षण-भर—कौन मा ?

उसने पूछा। नन्ही क्या बताती—वो लोती वाली मां बू। उसने कुछ सोचकर

कहा।

बुआ ने उसे चूम लिया—क्या सोचती है बच्ची ! नई मां आएगी तेरी। बुआ ने कहा जैसे अपने ही दिल पर धक्का-सा लगा हो। नन्ही चुप रह गई। सोचा उसने नया मोर पुराने मोर जैसा होता है। रग उसका चमकता—इतना ही अतर। मोर सब एक ही तो हैं। मा—मा सब एक ही तो। एक को ही तो कहते हैं मा ! उसने सोचा जो मां है खुशी-सी झलकने लगी चेहरे अद्भुत-सा। रोज पूछती—आ जाए मा —मा जैसी मा।

और एक दिन खूब चहल-पहल, खुशिया, बाजे—और उनके साथ आ ही गई नई मा। नये ढग के कपड़े पहने देखा नन्ही ने अपने बाबू को। सोचा बाबू भी नये हो गए शायद—और ऐसी ही तो नई मा—मां, नई कपड़ों में। वह उतावली हो उठी—मा के पास दाऊगी।

घर मे आ गई थी नई मां। अपने विचारों और सपनों में खोई-सी युवती। देखा था जिसने बचपन, यौवन से तो परिचय ही उसका नया था। कुछ दिन पहले वह खेला करती थी। पर आज ? वह सोचती ही जा रही थी। भय, आशंका, दु:ख, शोक, हर्ष, उल्लास क्या था हृदय मे ? सब ही, एक भी नही। भावना व्यक्त भी अपने आप को छुपाए रहती है कभी-कभी। भावना के क्षण कितने पृथक्-पृथक् होते हुए भी मंजे-सधे-से रहते हैं। हम उनका विभाजन नही कर पाते।

और वह सोचती जाती। जानना चाहती, क्या परिवर्तन आ गया उस मे। बाहर से देखा—वस्त्र, आभूषण, जैसे वह वह नहीं थी। कोई खिलौना थी, जिसे खूब सजा-भर दिया गया था खरीदार के हवाले करने को। अदर भी देखा उसने। वहां क्या ? ऐसा ही लगता था जैसे पहले, पर ऐसा तो नही लगता था। चाह उमंग—यह पहले इतने कहां थे। फिर भी, दिल अभी चाहता था, उसकी मा उसे बुलाए—वह झुंझलाकर उत्तर दे—पढ रही हू मैं, अभी नहीं खाना खाना मुझे। और यहा…

—मा, उसने शायद सुना भी नही। नहा-धोकर कपड़े पहनकर हाथ मे नया मोर लिए नन्ही आ गई थी नई मा के पास। मा—और वह अपने सपनों से चौंक उठी, जाग पड़ी जैसे। देखा वह घर भी नही, मां भी नही—एक नन्ही-सी बच्ची उसी को कहती मा। कल तक 'बेटी' सुनने का अभ्यास था उसे। इतना परिचित था यह शब्द इतना कि उसे यह इतना बदला हुआ सबोधन अच्छा नही लगा। कितना अंतर था, कल तक बेटी और आज मां। धीरे से नन्ही को पीछे हटा दिया उसने।

नन्ही कुछ सहमी, कुछ झिझकी पर मा से डरना क्या ? वह फिर उसके हाथ को पकडते हुए बोली—मा तुम तो—नई मां ने उसकी तरफ देखा नही तो लगा यह मा नही है। यह मा-सी तो लगती ही न थी। वह चुप रह गई—मा ऐसी तो नही होती।

युवती का दिल घबरा-सा गया—दिल कुछ भर-भर-सा आ रहा था। अपना हाथ खीच लिया उसने झटककर।

नन्ही कोशिश कर रही थी यह समझने की कि यही मां है तभी उसका हाथ झटक दिया गया। वह रुआसी-सी दो कदम पीछे और न जाने कैसे गिर गई। क्या मोर हाथ से गिरकर टूट गया ? सुबक-सुबककर रोने लगी नन्ही।

भोजन-गृह से दौड पड़ी बुआ। नन्ही को उठा लिया। पूछा—क्या हुआ ? युवती ने तिरछा नजर से देखा। नन्ही ने बुआ से चिपटकर जोर से रोते हुए इतना-भर कहा—

ौर और भी ज़ोर से रोने लगी।

बुआ उसे ले आई। नरम-से बिस्तर पर उसे लिटाते हुए उसकी अपनी आंखों में छलछला आए। सिर पर हाथ फेरते हुए कहा बुआ ने—रो मत, तुझे नया मोर ला र नन्ही ने सुना ही नही। वह सुबकती रही। बुआ रोटी बनाने चली गई। घर मे ुलहिन आई थी। किसी तरह की कमी न रहनी चाहिए थी। दो-एक घटे मे जब । हुई तो नन्ही को खाने के लिए बुलाने चली। बुआ पास गई। नन्ही सो रही थी। पर हाथ रखा, कांप गई बुआ। आग की तरह जल रहा था माथा। नन्ही को ज्वर ाया था।

नई दुलहिन के लिए खाना जा रहा था। बुआ ने अपने हाथ से सजाकर रखा मेहरी ने बुआ को बुलाया। बुआ चुपचाप वहीं बैठी रही। दुलहिन का खाना भेज । गया। बुआ उठी। बाहर निकली। मेहरी ने आवाज़ दी—बहू ऐसे क्या खाएगी ? ही न जाकर खिलाओ बीबी !

बुआ ने जैसे सुना ही नही। नौकर को आवाज़ दी उसने—रन्नू !

—रन्नू, जा वैद्यजी को बुला ला···नन्ही को बुखार हो आया है।

—बहू पहले ही दिन भूखी रहेगी बीवी ?—मेहरी ने कहा।

बुआ ने कुछ नही सोचा—तुम्ही जाकर खिला दो न। मुझे कौर तोड़कर तो । डालने मुह मे उसके।—मुह भुझलाकर कहा बुआ ने और जा बैठी नन्ही के पास। ्ी का बदन आग की तरह जल रहा था।

मेहरी के हज़ार कहने पर भी दुलहिन ने खाना नही खाया। वह सोचती थी । तक की बात—जब तक वह खाने-पीने में स्वतन्त्र थी। मा कुछ भी खिलाती, तना अच्छा लगता था वह। आज कितनी ही चीज़ें थी। आग्रह कर रही थी एक ्री—कितनी नीरसता। खाना खाने के ही लिए नही खाया जाता। जब मेहरी उठकर ्हर गई तो दुलहिन ने रूमाल से आंखें पोछ ली। धीरे से अपना सिर उसने टिका दिया ार न जाने कितने-कितने विचार।

वैद्यजी आए—नन्ही का बुखार कम नही हुआ। डाक्टर बुलाए गए। डाक्टर ने क हल्का-सा इंजेक्शन दिया। एक बार नन्ही ने आखें खोली। बुआ ने उमडते प्यार से ाल सहेजते हुए धीरे से कहा—क्यों मेरी मुन्नी, तेरे लिए देख कितने नये खिलौने ंगवाए हैं।—बुआ को एक बार देख-भर लिया नन्ही ने। आई थोड़ी-सी स्मिति रेखा र—फिर घबरा उठी। फिर क्षीण-सी आवाज़ मे वह चिल्लाई—नये नई। नन्ही फिर ्होश हो गई।

दो-तीन घटे मे उसने फिर आख खोली। डाक्टर इंजेक्शन तैयार कर रहे थे। न्ही ने बुआ को ताका, कहा—मां।—बुआ की आखों मे आसू छलछला आए।

डाक्टर ने धीरे से बुआ से कहा—यह बिस्तर बदल दीजिए, नए कपड़े मंगवा-कर बिछा दीजिए।

दो-एक क्षण की निस्तब्धता के बाद नन्ही फिर चिल्ला उठी—नये नई। और एक बार फिर उसने आंख मूद ली।

मेहरी दौड़ती हुई आई, हांफती-सी। बुआ से कहा उसने—जल्दी चलो बीवी, जल्दी। बहू को बुखार हो आया है। शरीर तप रहा है।

डाक्टर ने नन्ही की बाह थाम ली तो नब्ज नहीं मिल रही थी।

भिक्षु[1]

विदिशा से विहार पाच कोस पर था। इसकी भी एक कहानी है। जहां पर विहार था, विदिशा के आसपास सबसे रमणीय स्थान यही था। पर दस वर्ष पहले लोग उधर जाने से डरते थे। श्रुति-परम्परा ऐसी थी कि जो अभागे कभी उधर गए, लौटकर नही आए। बडे-बड़े साहसी उस ओर कदम बढ़ाते कतरा जाते थे। दस ही वर्ष पहले बौद्ध भिक्षुणी विपाला अन्यान्य भिक्षु-भिक्षुणियो के साथ विदिशा मे आई थी। उन्होंने इसी स्थान पर विहार-निर्माण करने का निश्चय किया। भिक्षुओ और भिक्षुणियो की विपाला मा पर असीम श्रद्धा थी। जिस दिन वे सब उधर गए, लोगों को उनमे से एक के भी जीवित वापस आने में सन्देह था। पर दूसरे ही दिन अमित और अजित दो भिक्षु नगर में भिक्षा के लिए आए हुए थे। देखने वालों ने समझा विपाला मां कोई देवी हैं—योगिनी। कहने वालो ने तो यहा तक कह डाला कि सभी सिद्धिया उनके वश में हैं।

विपाला मां विहार की अधिष्ठात्री थीं। दस वर्ष वे विहार के अन्दर ही रहीं। अब वे बूढ़ी हो चली थीं। इन दस वर्षों मे विदिशा का विहार विशेष ख्याति प्राप्त कर चुका था। विपाला मा के प्रति श्रद्धा लिए हुए पाटलिपुत्र तथा अन्यान्य विहारों से भिक्षु-भिक्षुणियां वहा आते। कई बार बडे-बड़े धर्माचार्यों के दर्शन करके विपाला मां का हृदय गद्‌गद् हो उठता।

उपासना-मन्दिर मे प्रवेश करते हुए मृत्युंजय ने देखा—एक देवी-प्रतिमा बिखरे-से पत्रों को समेटती हुई। भिक्षु की आखें अपने-आप झुक गईं। वह शारदा विहार से आ रहा था। विहार मे पहुंच, स्नान आदि से निवृत्त हो वह विपाला मां के दर्शनों को चला। पूछने पर भिक्षुओ ने उपासना-मन्दिर की ओर सकेत कर दिया। पर वह उपासना-मंदिर की देहली पर ही रुक गया। पत्रों को बटोरकर भिक्षुणी ने प्रश्न-भरी आंखों से उसकी ओर देखा। सरल निष्कपट दृष्टि ने भिक्षु के सकोच को बहुत कुछ दूर कर दिया। मृत्युंजय ने जलद गम्भीर कण्ठ से प्रश्न किया—विपाला मा के दर्शन कहा होंगे, देवि ? —सिर से पांव तक मृत्युंजय को देखकर भिक्षुणी ने पूछा—किस विहार से, भिक्षु ?

—शारदा—कहकर उसने फिर चारों ओर देखा और कहा—उपासना-मन्दिर यही है, देवि ?

—हां, मा अभी आ जाएगी बैठो।—अब भिक्षुणी ने एक आसन डाल दिया और धीरे-धीरे पीछे के पर्ण-द्वार से चली गई।

मृत्युंजय आसन के पास आकर खड़ा हो गया। एक उड़ती हुई दृष्टि उसने 'धम्म पद' के पात्रों पर डाली जिन्हें भिक्षुणी ने समेट दिया था।

—बैठ जाओ, भिक्षु—उसके कानों ने सुना। आखें उठाकर विपाला मा की सौम्य-गम्भीर मूर्ति को मृत्युंजय ने देखा। हृदय उमड पड़ा। दोनों हाथ जोडकर उसने नमस्कार किया। विपाला मा आकर चौकी पर बैठ गई। सकेत पर मृत्युंजय ने भी आसन ग्रहण किया।

—शारदा विहार से ?

भिक्षु ने सिर हिला दिया।

---

1. राकेश जी की यह कहानी 'सरस्वती' के भाग 46 मे प्रकाशित हुई थी। राकेश जी की डायरियों के अनुसार यह उनकी पहली प्रकाशित कहानी है।

—यहां रहोगे ?

—यदि मां की अनुज्ञा हो—और उसका सिर झुक गया। कुछ देर मौन रहकर विपाला मां ने गम्भीर कण्ठ से पूछा—आज अपने लिए भिक्षाटन कर चुके ?

मृत्युंजय चौंक उठा। उसे जैसे कर्त्तव्य का बोध हुआ। वह उठा और मा को प्रणाम करते हुए बोला—जा रहा हूं मां।—वह चला गया।

पर्णद्वार से भिक्षुणी फिर अन्दर आ गई। विपाला मा ने स्नेहपूर्ण दृष्टि उस पर डालते हुए बैठने के लिए संकेत किया और पूछा—तुम्हारे मुख पर चिन्ता की रेखाएं क्यों बनती जा रही हैं, तारा ?—तारा ने बैठते हुए मा की ओर देखा। मां ने फिर कहा—कई दिनों से मैंने तुम्हें देखा है, तारा ! भिक्षुणी के हृदय पर कैसा बोझ ?

आंखें नीची करके तारा ने उत्तर दिया—तुम तो सब जानती हो, मां !

—इन गहरी स्पष्ट रेखाओं को तो कोई भी पढ सकता है, तारा !—मा ने उसके सिर पर हाथ फेरा।

—मां !—तारा ने एक गहरी सांस ली ?

—कहो न बेटी ! मां से छिपाकर क्या रखोगी ?—मा ने तारा का मुंह ऊपर उठाया। तारा रो पड़ी। उसका सिर मा की छाती से जा लगा। किसी तरह अपने को संभालकर धीरे से उसने कहा—मुझे किसी दूसरे विहार मे भेज दो मा, यद्यपि तुम्हारे चरणों से पृथक् होना मेरे लिए मृत्यु से कम नहीं।

विपाला मा चौंक उठी। उन्होंने कहा—स्पष्ट कहो तारा !

कुछ रुककर तारा ने कहा—मा, तुम्हारे औरस पुत्र संघ मित्र—जिन्होंने बचपन से तारा को छोटी बहन की तरह प्यार किया—अपनी दृष्टि मे अन्तर ला रहे हैं। उन्होने एक-आध बार जो कुछ कहा, वह तारा के हृदय को मसल देने के लिए पर्याप्त था। कभी-कभी मैं रात्रि को अपनी कुटी के पास पैरों की आवाज सुनती हूं तो सिहर उठती हूं। मुझे उनसे डर [illegible]

[illegible] न्त मे उन्होने कहा—तुझे भ्रम है तारा। संघमित्र मेरे पेट से पैदा हुआ है। उससे किसी प्रकार की दुराशा तुम्हे न होनी चाहिए। फिर भी तुम्हारे कथन को मैं निराधार नहीं कहना चाहती। संघमित्र की उचित परीक्षा हो जाएगी। तुम्हे विहार छोडने की आवश्यकता नहीं।

तारा सिर झुकाए बैठी रही। विपाला मा ने 'धम्मपद' के पृष्ठों को पलटना शुरू किया।

तारा के शब्दो ने विपाला मां की नैसर्गिक शांति को भग कर दिया। संघमित्र के लिए उनके हृदय मे मातृ-स्नेह या वात्सल्य ही हो, ऐसी बात नहीं। विहार के सब भिक्षुओं मे संघमित्र धम्म और संघ के सिद्धान्तों मे सर्वाधिक प्रवीण था। यही नही, उसकी वक्तृता-शक्ति—सरल भाषा में निज सिद्धान्तो को समझाने की क्षमता—अद्वितीय थी। विपाला मा के हृदय में उसके लिए सम्मान भी था। पर उसका तारा पर स्नेह कम नही था और न उस पर अविश्वास करने का कोई कारण था। विपाला मा की अपनी धारणा थी कि तारा को किसी बात से भ्रम हो गया है। फिर भी संघमित्र पर दृष्टि रखना आवश्यक था। अपने हृदय के भाव को उन्होंने संघमित्र पर प्रकट न होने देने की पूर्ण चेष्टा की।

मृत्युंजय को विहार मे आए कई सप्ताह हो चले थे। इतने ही समय मे सब भिक्षु भिक्षुणिओं के हृदय मे उसके प्रति सहज-सौहार्द पैदा हो चला था। वह जितना ही नम्र-हंसमुख था उतना ही प्रतिभासम्पन्न और विचारवान। अभिमान तो उसमें नाममात्र

को न था। तारा का अधिक समय विपाला मां के पास ही व्यतीत होता था। भिक्षु-भिक्षुणियो मे वह रहती ही कम थी। मृत्युजय को उसने कई बार देखा, उसकी प्रशंसा भी सुनी। पर विशेषतया उसे व्यक्तिगत रूप से जानने का न तो उसे अवसर मिला न आवश्यकता ही हुई।

मृत्युजय विपाला मा पर अटूट आस्था रखता। उनके बाद वह सम्मान करता था, भिक्षु सघमित्र का। भिक्षुओं मे चर्चा थी कि विपाला मा के उपरान्त विहार का अधिष्ठातृत्व भिक्षु संघमित्र को ही सौंपा जाएगा। पर मृत्युजय के विनम्र होते हुए भी भिक्षु संघमित्र न जाने क्यों उससे चिढने लगा था। वह बात-बात पर उसे अल्पज्ञ प्रमाणित कर उसकी हंसी उडा देना चाहता। एक दिन तो उसने कुछ ऐसे शब्द कह दिए जिनसे मृत्युजय के आत्माभिमान को काफी ठेस लगी। धम्म की परिभाषा पर विवाद था। व्यक्तिगत आक्षेप को मृत्युजय सहन न कर सका। वह विचलित हो उठा।

बात विपाला मा के कानों तक पहुंची। यह संघमित्र की दूसरी शिकायत थी। आज भी उन्होंने सघमित्र को कुछ नहीं कहा। पर उसकी कठिन परीक्षा का निश्चय मन ही मन कर लिया।

मृत्युजय को जीवन मे पहली बार अपमान सहन करना पड़ा था। उसने शीघ्र ही वहा से चल देने का निश्चय किया। विहार की कुछ चीजों के प्रति उसका विशेष आकर्षण हो गया था। विहार के सब जड-चेतन उसे अपने सगे-से लगते थे। उसे डर था कि प्रत्यक्ष रूप से कई अन्य भिक्षु उसके साथ न हो लें। इस प्रकार विपाला मां के हृदय को चोट लगने की सम्भावना थी। अत. उसने अर्द्धरात्रि को चल देने का निश्चय किया।

रात्रि को जब सब सो चुके, मृत्युंजय धीरे से उठा। मन ही मन विपाला मा को प्रणाम कर वह निकल पड़ा। मृत्युजय के पैर आगे चलते थे तो हृदय पीछे खीच ले जाना चाहता, हृदय आगे बढने को उत्साह देता तो पाव रुक-रुक जाते। वह चलता तो रुकने के लिए, रुकता तो चलने के लिए। इसी असमजस मे वह कुछ ही कदम बढ़ा था कि पत्तो की खडखडाहट ने उसके पाव बाध दिए। इस भय से कि कोई देख न ले, वह मूर्तिवत् खडा हो गया। उसने इधर-उधर देखा। फिर पत्तो मे खड़खडाहट हुई। साथ ही स्त्री-कण्ठ की क्षण अस्पष्ट-सी आवाज़ सुनाई दी। मृत्युजय चौकन्ना हो गया। उसने ध्यान से सुना। इस बार शब्द स्पष्ट थे—मा की अस्वस्थता का बहाना करके तुमने मुझे क्यों बुलाया? तारा तुम्हारी बहन है, उसे जाने दो, सघमित्र!—स्वर तारा का ही था। मृत्युंजय को खडा रहना भारी हो गया। पत्रो की ओट मे दो मूर्तियो को हिलते उसने देखा। उसने देखा पुरुष-मूर्ति ने तारा के दोनों हाथ पकड लिए। तारा के मुह से हल्की-सी चीख निकली जिसमे रुदन का करुण स्वर मिश्रित था। मृत्युजय के गम्भीर कण्ठ से निकला—ठहरो!—सघमित्र चौक उठा। तारा के हाथ उसके हाथो से छूट गए। मृत्युंजय ने उसे देख लिया था। अत: भागने से कोई लाभ न था। मृत्युंजय की ओर उसने घूमकर देखा और दात पीसकर कहा—तू यहा!—एकदम उसने मृत्युजय की कनपटी पर मुष्टि-प्रहार किया। मृत्युजय ने वार बचा लिया। दोनों परस्पर गुथ गए।

तारा ने दूर से उस मुष्टि-युद्ध को देखा। उसने यह भी देखा कि लडते-लडते दोनो गिरे, सघमित्र भी मृत्युजय भी। वह विपाला मा की कुटी को भाग चली।

विपाला मा ने सब कुछ सुना। आधी रात को मृत्युंजय के निकल पडने के कारण का अनुमान भी बहुत कुछ उन्होने कर लिया। वे धैर्य के साथ उठी पर साथ ही अचेत होकर गिर पड़ी। तारा ने भिक्षु-भिक्षुणियो को जगा दिया। झाड़ियों से सघमित्र

एवं मृत्युंजय को चिकित्सा-शाला में पहुंचाया गया। सबने इस घटना को दोनों के परस्पर मनमुटाव का ही फल समझा। संघमित्र का सिर बुरी तरह फट गया था। मृत्युंजय को भी गहरी चोट लगी थी। विपाला मा की शुश्रूषा उनकी कुटी मे होने लगी।

शारीरिक एवं मानसिक आघात से प्रातःकाल से पहले ही संघमित्र के प्राण निकल गए। मृत्युंजय अभी तक बेहोश था। विपाला मा एक बार होश में आ, संघमित्र की मृत्यु का समाचार सुन फिर बेहोश हो गई थी। पर सबका ध्यान विशेष रूप से मृत्युंजय की ओर लगा था, क्योंकि उसके प्राण किसी भी समय निकल सकते थे। तारा ने उसकी शुश्रूषा अपने हाथ मे ले ली थी।

सायंकाल होने तक संघमित्र का शव जलाया जा चुका था। विपाला मां कांपते पैरों से आ, एक बार मृत्युंजय की अवस्था देख गई थीं। वह अभी तक बिलकुल निश्चेष्ट पड़ा था। जीवन का कोई लक्षण था तो रुक-रुककर चलता हुआ श्वास-निश्वास। तारा निरन्तर उसके पास रही। सबके कहने पर भी न उसने कुछ खाया न विश्राम किया। आधी रात को मृत्युंजय ने आंखें खोली। उसका सिर तारा की गोद में था। तारा ने आंखों में आंसू भरकर उसकी ओर देखा। मृत्युंजय ने फिर आंखे मूंद ली। अब तारा ने पहली बार कुछ विश्राम करने की सोची, उसका शरीर शिथिल पड़ रहा था। वह धीरे से उठकर चली गई।

मृत्युंजय ने अपनी चेतना में पहली बार किसी युवती के अंग-स्पर्श का अनुभव किया था। उसके हृदय में न जाने क्यो एक भावना-सी उठी जो अन्तराल को बेध गई। उसका शरीर दर्द कर रहा था। फिर भी बिना चाहे ही वह तारा के विषय में सोचता जा रहा था। वह चिन्तन उसे अपनी पीडा के लिए लेपन-सा लग रहा था। मस्तिष्क पर अधिक दबाव डालने से वह फिर बेहोश हो गया।

तारा को वहां से जाकर भी विश्राम नही मिला। विपाला मां की दशा बिगड रही थी। सूचना पा, तारा सीधी उनके पास पहुंची। पर वे तो अंतिम श्वासों पर थीं। तारा ने उनके पैरो मे सिर रख दिया। विपाला मा ने कठिनता से कहा—क्षमा करना तारा बेटी ! मैंने समयानुसार तुम्हारी बातो पर ध्यान नहीं दिया, नहीं तो ··और उनका गला रुंध गया। तारा मा के पैरों मे मुंह छिपाए रोती रही। कुछ ही देर बाद धम्मं शरणं गच्छामि की ध्वनि ने जैसे उसे जगा दिया। विपाला मां जा चुकी थी।

विपाला मा का अंत्येष्टि संस्कार हो जाने के अनन्तर तारा खूब जी भरकर रोई। रो चुकने पर वह उठ बैठी। उसका कर्तव्य उसके सामने था। वह मृत्युंजय की ओर चली जो अभी तक बेहोश था। तारा आंखे पोंछकर उसके उसके पास बैठ गई।

शोक की घडियां एकाकीपन मे इतनी लम्बी हो जाती हैं, इसका तारा को अब अनुभव हुआ। इस बार मृत्युंजय दो दिन और दो रात बेहोश ही रहा। तारा के लिए जैसे दो वर्ष बीत गए। आंखें भर आती तो वह पोंछ लेती। हृदय भारी होने लगता तो 'धम्मपद' के पृष्ठ उठा लेती। दो दिन के बाद मृत्युंजय की आंख जिस समय खुली, उसका सिर तारा की गोद में ही था। बेहोशी की अवस्था में संजीवनी की जो मात्राएं उसके अन्दर डाली गई थीं, उनसे उसका मुख अभी तक कड़ुआ था। तारा ने उसके सिर पर हाथ फेरना शुरू किया। मृत्युंजय को गत घटनाएं याद आने लगीं। उसने तारा की ओर देखा। तारा की आंखें रो-रोकर लाल हो गई थीं। चेहरा पीला पड़ गया था। पर मृत्युंजय को लगा, तारा सुन्दरी है— बहुत सुन्दरी। वह नही जानता था कि, ऐसे विचार उसके हृदय मे क्यो उठ रहे थे। आज तक किसी स्त्री के विषय में उसने ऐसा नही सोचा था। आज उसका सिर तारा की गोद मे था, उसके अपने ही विचार वश

से बाहर होते जा रहे थे। शरीर भारी और शिथिल था। अन्दर से उसे एक धिक्कार-पूर्ण-सा स्वर निकलता सुन पडता था—मृत्युंजय ! यह रास्ता मृत्यु का है।—पर वह इस मीठे अनुभव मे ही विलीन हो जाता था। मृत्युंजय ने कांपते स्वर से कहा—तारा !

तारा का आवेग जैसे आश्वासन पाकर फूट पडा। आंसुओं से रुंधे कण्ठ से उसने कहा—भैया !

मृत्युजय के शिथिल शरीर एव शिथिल हृदय को जैसे धक्का लगा। शरीर में सिर से लेकर पाव तक झनझनाहट हुई। उसने फिर धीरे-से कंपित स्वर मे कहा—नहीं तारा !

तारा ने आंसू पोंछ लिए थे। मृत्युजय ने क्या कहा, वह नही समझी। उसने भोलेपन से प्रश्न किया—क्या नहीं भैया ?

मृत्युंजय ने तारा की आखो में देखा। तारा ने उन आंखों में वासना की विभीषिका को पढ़ा। ऐसे ही एक दिन उसने सघमित्र की आंखों मे देखा था। वह डर गई। वह मुंह फेरकर उठी और वहा से चली गई। मृत्युजय को लगा जैसे किसी ने उसे गहरे अतल में ढकेल दिया हो। उसकी आंखो मे आसू आ गए। वह फिर बेहोश हो गया।

मृत्युंजय में अब शिथिलता ही बाकी थी। इस बार जब उसकी आंख खुली, रात बहुत जा चुकी थी। तारा उसके पास नही थी। थोड़ी ही दूर एक भिक्षु ऊघ रहा था। उसे तारा के वहां न रहने का कारण समझते देर नही लगी। उसका हृदय क्षोभ और ग्लानि से भर आया। उसे अपने-आपसे ही घृणा होने लगी। इन्ही विचारों मे प्रात.काल हो गया। वह पश्चात्ताप की आग से जल रहा था। उसका हृदय विपाला मां के चरणों पर सिर रखकर रो देने के लिए उतावला हो उठा। इतने दिनों के बाद पहली बार वह पैरो पर खड़ा हुआ। सिर चकराने लगा। भिक्षु अभी तक सो रहा था। उसने कठिनता से मृत-सजीवनी की एक मात्रा ढालकर पी और उपासना मदिर की ओर चला। उपासना-मंदिर तक उसे कोई नही मिला। मार्ग में दो-तीन बार उसने विश्राम किया। कठिनता से वह उपासना मदिर की देहली तक पहुचा। उसका सिर चकरा रहा था तथा आखों मे अंधेरा छा रहा था। अन्दर चौकी पर विपाला मा की अस्पष्ट-सी मूर्ति उसने देखी। बाहर से ही उसने झुककर प्रणाम किया। माथे को देहली से छुलाते हुए उसने रुंधे स्वर में कहा—मुझे क्षमा कर दो, मां, मैंने पाप किया है।—इतना कह मृत्युंजय ने सिर उठाया। सामने विपाला मा की चौकी पर तारा गंभीर मुद्रा मे बैठी थी। वह अब सर्व-सम्मति से मठ की अधिष्ठात्री बना दी गई थी। मृत्युंजय के उठते ही उसने गभीर पर सौम्य वाणी मे कहा—विपाला मां का निर्वाण हो चुका। उनकी समाधि पर फूल चढा आओ, भिक्षु !

मृत्युजय ने आंखें नहीं उठाईं, आसू झरझर गिर रहे थे। उसने कापते हाथों को जोडकर प्रणाम किया और विपाला मां की समाधि की ओर कापते पैरों से चल पड़ा।

मंदिर-मंदिर की देवी[1]

मेहर कौर मुस्कराई। मुस्कराने से उसके मुख की झुर्रियां दूर हो गईं, उसकी भवें फैल गईं और उसने होंठों को सिकोड़कर मुस्कराहट को रोका तो मुस्कराहट उसकी नासिकाओं में से फूट निकली।

माया भी मुस्कराई। या ठीक से कहें तो उसने बड़ी बहन की मुस्कराहट का अनुमोदन किया। उसके चेचक-भरे चेहरे पर जो विषाद की कालिमा सदा घिरी रहती थी, वह पल-भर के लिए दूर हुई और तुरन्त ही फिर लौट आई।

पुरुषोत्तमदास के मंदिर का पुजारी भी इन दोनों को मुस्कराते देखकर मुस्कराया। उसने घण्टा-भर पहले चिरे हुए अमरूद की दो फांकें दोनों बहनों को प्रसाद के रूप में दीं और उनकी चढ़ाई हुई चवन्नी के लिए भगवान् की ओर से कृतज्ञता प्रकट की।

अमरूद की दो फांकें, जो एक सिरे से दूसरे सिरे तक काली पड़ चुकी थीं, दोनों बहनों ने अपने-अपने आंचलों में बांध लीं, जिससे न केवल उनका, बल्कि और भी कइयों का कल्याण हो सके। घण्टे-भर बाद जब उन फांकों के टुकड़े बांटे गए, तो उनमें अमरूद की गंध उतनी नहीं थी, जितनी आंचलों के पसीने की।

पुरुषोत्तम के मंदिर से निकलकर मेहर कौर और माया श्री महावीरजी के मंदिर की ओर आईं। मंदिर के बाहर के कुएं पर रामू साईं बैठा था, जो अपने पागलपन के कारण सिद्ध पुरुष की पदवी पाए हुए था। रामू साईं चारों ओर मैले-कुचैले चीथड़े बिखेरकर 'आ—वा आ वा' करता बैठा रहता था और उसके मुंह से टपकता हुआ लार धारा-प्रवाह से उसके मुनिवेश तथा योगासन को गीला करता रहता था। रामू साईं की विशेष सिद्धि यह थी कि वह मनुष्यों की भाषा में नहीं बोलता था और कुएं के पास से निकलनेवाली आकृतियों को देखकर वह जो चेष्टाएं करता था, उसका स्थूल अर्थ समझ में आ जाने पर भी सूक्ष्म अर्थ किसी की समझ में नहीं आता था। जिस कुएं पर बैठता था, उस कुएं का जल नाना रोगों की सिद्ध औषधि समझा जाता था और उस औषधि पर विश्वास रखनेवाले उसमें से सड़े हुए फूल-पत्ते निकाले बिना ही उसका सेवन कर जाते थे।

माया और मेहर कौर ने रामू साईं को देखकर सिर नवाए। रामू साईं जो केला खा रहा था, उसका शेष भाग उसने छिलके समेत माया के सिर पर फेंक दिया। माया के सिर का जो भाग चिपचिपा हो गया, उसे आंचल से पोंछती हुई मेहर कौर बोली—साईंजी की कृपा हुई है। देखो इससे क्या फल निकलता है।

और वे दोनों मंदिर के अन्दर चली गईं। महावीरजी का बूढ़ा पुजारी जिसकी हुंकती हुई खांसी उसके घुन-खाए शरीर के खोखलेपन को विज्ञप्त कर रही थी, मेहर कौर को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ और आनेवाली *'हनुमान जयंती'* *का स्मरण करके* उसने उसे बहुत-सा गेरू भेंट किया।

महावीरजी के मंदिर से वे दोनों श्री गोवर्द्धननाथजी के ठाकुरद्वारे की ओर आईं। ठाकुरद्वारे की गोशाला में से पुराने गोबर की गंध सारे वातावरण में फैल रही थी। पिछले

---

1. हस्तलिखित पांडुलिपि से यह कहानी राकेश जी की आरम्भिक कहानियों में से जान पड़ती है। इसपर पेंसिल से उन्हीं के हाथों अंग्रेजी में लिखा है—'रिवाइज्ड कापी, बाई राकेश' और नीचे पता इस प्रकार दिया है—'प्रेषक : श्री मोहन राकेश; बी० सी० एस० शिमला-2'। इससे जान पड़ता है कि यह किसी पत्र-पत्रिका को प्रकाशनार्थ भेजी गई है।

अन्नकूट में जो लम्बे-लम्बे पत्ते द्वार पर सजाए गए थे, वे महीना-भर सूखकर भी भक्तों के स्वागत-कर्त्तव्य से मुक्त नहीं हुए थे, और अपनी तपस्या से कृष्णवर्ण होकर भी रस्सी के साथ मरे हुए चिमगादडों की तरह लटक रहे थे। मंदिर की दीवार पर बनी श्री चरणों की केसरिया छाप को प्रणाम करके माया और मेहर कौर ने अन्दर प्रवेश किया। श्री गोवर्द्धननाथजी का बड़ा पुजारी शुकदेव स्वामी, जिसकी पत्नी हुई देह में एक अश्व की शक्ति थी, नाभि को खुजलाता हुआ, मेहर कौर को देखकर गद्गद हो गया। उसके इस भाव को देखकर मेहर कौर भी गद्गद हो गई। शुकदेव स्वामी ने दोनों को पंचगव्य का चरणामृत दिया और सत्ययुग की देवी माता मेहर कौर के हृदय की विशालता और दानशीलता की प्रशसा करके समय की महिमा और भगवान् श्री गोवर्द्धननाथजी के पास सब समुचित वस्त्रों के अभाव की चर्चा करने लगा।

वहां पर वस्त्रदान का वचन देकर मेहर कौर माया के साथ लल्लू भगत के मंदिर में गई और वहां के राधाकृष्ण को अंधेरी कोठरी में विराजमान देखकर उसने उनके कक्ष में दिया जलाने के लिए सवा रुपया प्रदान किया।

वहां से लौटते हुए रास्ते मे श्री राधागोविंदजी का मंदिर आया। वहा के गोविंदजी की मुरलीवाली भुजा टूट गई थी। राधेजी की अनन्य लावण्यमयी मूर्ति के पास टूटी हुई भुजावाले गोविंदजी मेहर कौर को अच्छे नही लगे। उसने उनके स्थान पर नये गोविंदजी की स्थापना के लिए दस रुपये अर्पण करने की कामना की और समय अधिक हो जाने के कारण वल्लभदेवजी के मंदिर मे न जाकर सीधी घर लौट आई।

घर आकर मेहर कौर ने माया को तीर्थयात्रा का माहात्म्य सुनाया और उसे [illegible]

[illegible] लिए यदि उसे अपने वैधव्य का एकमात्र आश्रय अपना घर भी बेचना पडे, तो उसमें सकोच नही करना चाहिए। उसने स्वय अपने वैधव्य की पूंजी तीर्थों में ही समाप्त की थी और गोकुल से लेकर बद्रिकाश्रम तक की भगवन्मण्डली मे उसकी ख्याति थी। माया के नये वैधव्य ने उसके लिए भी यह अलभ्य अवसर ला दिया था कि वह वहन की पद-परंपरा पर चलकर अपने जीवन को सार्थक बना ले।

माया अपनी बहन के उपदेशों से वही कृतार्थ हुई जा रही थी, पर घर बेचकर वृन्दावन जाने की कल्पना उसे कुछ अखर रही थी। वह मन ही मन धागे उलझा रही थी और 'जो करें ठाकुरजी' कहकर बहन की बातों का अनुमोदन करती जा रही थी।

वृन्दावन का विस्तार और यात्रा का माहात्म्य सुनकर जिस समय माया मेहर कौर के घर से निकली, उस समय दिन के आठ बज रहे थे। पडित बेलीराम अपनी तम्बाकू की दूकान खोलने से पूर्व दूकान के चौंतरे को नमस्कार कर रहा था। वैद्यराज राजाराम की रोगिणियां उसके आने की प्रतीक्षा मे शीशियां लिए दूकान के बाहर उसके हाथों की शफा का गुणगान कर रही थीं। पर माया को न उनकी पीली आकृतियों से मतलब था, न अर्जुनसिंह की कडाही मे पडी पूरियों की गंध से। वह चलती हुई भी मुक्ति तथा परलोक की ही बात सोच रही थी।

माया के चले जाने के बाद मेहर कौर ने खाना बनाकर खाया और चटाई पर लेटकर धूप की उस किरण को देखने लगी जो धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ रही थी।

धूप की किरण जिस समय कमरे के अन्त तक होकर पुनः लौटने लगी और कोने की ओर आधी दीवार से भी ऊपर चली गई, उस समय मेहर कौर ने अपनी चादर ओढ़ी,

और शीतला मंदिर चलने के लिए तैयार हो गई।

उसी समय सीढ़ियों के नीचे से किसी ने पुकारा—माई जी।

मेहर कौर ठिठककर रह गई। आवाज़ उस सर्राफ की थी, जिससे सोने का हार लेकर उसने चार महीने पहले श्री गोबर्द्धननाथजी के पुजारी को कन्या के विवाह पर दिया था। दो चूड़ियां पहले भी उसी से लेकर वर्षायज्ञ के समय श्री गोस्वामीजी महाराज को अर्पण की थीं। सर्राफ के कुल उसे पांच सौ रुपये देने थे जो उसने तीन महीने में दे देने का वचन दे रखा था। मेहर कौर का हृदय उछलने लगा क्योंकि निचली मंज़िल के किरायेदारों का छोटा बेटा जग्गू जिसे वह लेनदारों को सीढ़ियों में से टालने के लिए प्रतिदिन एक पैसा पुरस्कार दिया करती थी, सर्राफ की पुकार का उत्तर देने सीढ़ियों में नहीं पहुंचा। सर्राफ सीढ़ियां चढ़ने लगा।

मेहर कौर ने आनन्द कन्द प्रभु को स्मरण किया। और प्रभु की कृपा से सर्राफ ने आधी सीढ़ियां चढ़कर ही पुन. आवाज़ दी—माई जी।

अब के जग्गू अपनी कोठरी में से दौड़ता हुआ आया और उसने चिल्लाकर कहा—माई जी बिंदराबन गई हैं।

—कब गई है बिंदराबन ? लौटकर कब आएगी ?—सर्राफ ने अनुपस्थिति में उसके लिए बहुवचन का प्रयोग अनावश्यक समझा।

—महीनें दो महीनें तक।—जग्गू ने अपनी प्रतिभा से केवल दूसरे ही प्रश्न का उत्तर दिया।

—वह मरेगी बिंदराबन में ही।—कहता हुआ सर्राफ सीढ़ियों से नीचे उतर गया।

मेहर कौर का रोम-रोम जल उठा। वह सर्राफ के लिए उस समय वृन्दावन न गई रहती तो वहीं उसका कलेजा नोच डालती।

सर्राफ के चले जाने पर जग्गू भागता हुआ ऊपर आया। पर आज प्रतिदिन की तरह न तो मेहर कौर ने उसे प्यार दिया, न पैसा। वह अपनी गीता खोलकर बैठ गई और आंखें गड़ा-गड़ाकर पढ़ने लगी—भगवानुवाच ' हे कुंतीनंदन अर्जुन···

जग्गू कुछ देर तो चुपचाप खड़ा रहा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या भूल हो गई है, जो उसे पैसा नहीं मिल रहा। जब मेहर कौर ने क्षण-भर के लिए भी गीता से आंख नहीं उठाई तो उसने साहस करके अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया और कहा—पैसा।

—जा, आज नहीं है पैसा।—मेहर कौर ने उसे झिड़क दिया और पढ़ने लगी। जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का उत्थान होता है, हे भारत···

जग्गू हाथ खुजलाता हुआ नीचे उतर आया।

रात को नौ बजते-बजते अमृतसर के बाज़ार बन्द हो जाते हैं और दूकानदार घरों में आकर पत्नियों को सबेरे के समाचार, नगर की अफवाहें और सट्टा मार्केट के भाव सुनाया करते हैं। नौ बजे के बाद किसी के घर जाना अपशगुन समझा जाता है, क्योंकि नागरिकों का विश्वास है कि अंधेरा और मृत्यु दोनों भगवान शिव की संतान हैं, और नौ बजे का अशुभ समय आ जाने पर किसी के घर जाना उसकी मृत्यु की कामना करना है। परन्तु मेहर कौर का यह विश्वास किंचित् बदल गया, क्योंकि माया नौ बजे के बाद उसके पास आई और उसके चेहरे के लक्षणों से मेहर कौर को निश्चय हो गया कि उस रात के ग्रह बुरे नहीं।

माया ने आते ही अपने आचल की गांठ खोलकर एक हरा कागज निकाला और उसमें से एक सोने की चूडी निकालकर मेहर कौर के आगे रख दी ।

—मकान का सौदा तो होते ही होगा; अभी मैं यह देवरानी से मांग लाई हूं। इसके सौ रुपये मिल जाएं तो मैं कल ही चलती हूं वृन्दावन ।—वह बोली।

क्योकि चूडी वास्तव मे उसकी अपनी थी और यह बात कि उसके पास सोना भी है, वह अपनी बहन से छिपाकर रखना चाहती थी, माया ने चेहरे को इस तरह से गंभीर बनाया कि उसके शब्दो की सत्यता पर सदेह न किया जा सके।

मेहर कौर कई क्षण चुप रहकर कुछ सोचती रही। जिस बात को माया छिपा रही थी, वह उससे छिपी नही रही। उसने गंभीरतापूर्वक चूडी हाथ में उठाई और उसे हथेली पर तौलते हुए पारखी के ढग से कहा—सौ पूरे तो शायद ही मिलें।

—नब्वे-पिचानबे ही सही।—माया उत्सुकतापूर्वक बोली।

—कल बाजार मे पूछकर पता चलेगा। कहकर मेहर कौर ने चूडी को हरे कागज में लपेट लिया और वृन्दावन मे होनेवाले 'लट्ठ' के मेले की बात सुनाने लगी।

घण्टे-भर बाद जब माया सीढियां उतरी तो जग्गू सीढियो में प्रतीक्षा कर रहा था। कभी मेहर कौर के पास टूटा हुआ पैसा नही रहता था तो वह माया से उसे पैसा देने के लिए कह दिया करती थी। पर आज माया भी जब अपने पारलौकिक उत्साह में बिना उसकी ओर देखे ही पास से निकल गई, तो आखें निदियाई रहने पर भी जग्गू को सोचना पडा कि भूल कहां हुई है जो अब की उसे पैसा नही मिल रहा।

उस रात माया पूरी तरह सो नही सकी। जब-जब भी उसकी आंख लगी, उसने कोई न कोई स्वप्न देखा। एक स्वप्न मे श्रीनाथजी ने प्रकट होकर अपने हाथो से उसे अपना चरणामृत पिलाया। दूसरे स्वप्न मे गरुड भगवान उसे अपने पखो पर बैठाकर बैकुण्ठ धाम में ले गए। तीसरे स्वप्न मे साक्षात् नारायण ने चतुर्भुज होकर उसके सिर के सारे सफेद बालों को काला कर दिया। चौथे स्वप्न मे देवी लक्ष्मी ने कमलासन से उस पर रुपये-रुपये वाले नोटो की वर्षा की।

सवेरे नहा-धोकर माया ने श्री गोवर्द्धननाथजी के दर्शन किए और शीघ्रता से भोजन बना-खाकर, दस बजते-बजते मेहर कौर को रात के स्वप्न सुनाने उसके घर पहुंच गई। आधी सीढिया चढकर उसने अभ्यास के अनुसार आवाज दी—जीजी।

पर विपरीत इसके कि मेहर कौर ऊपर से प्रतिदिन की तरह कहती—आ जा माया।—नन्हा जग्गू अपनी कोठरी से भागता हुआ आया और उत्साह के साथ बोला—मौसी, वह तो बिंदराबन चली गई है।

—जा निकम्मा,— कहकर माया ऊपर चढ़ी पर मेहर कौर के कमरे के बाहर बडा-सा ताला देखकर ठिठक गई। सीढिया उतरते हुए उसने अविश्वास के स्वर में पूछा —बिंदराबन गई है ?

—हां, मौसी, सवेरे आठ बजे की गाड़ी से गई है।—जग्गू ने विश्वास दिलाने के स्वर मे उत्तर दिया।

और माया जब अंधेरे ज़ीने मे बंधी हुई रस्सी को पकड़-पकडकर नीचे उतरी तो जग्गू ने उसके आगे हाथ तो फैलाया, पर मुह से नही कहा—पैसा।—पर जब माया मुह मे कुछ बडबडाती हुई बिना उसकी ओर ध्यान दिए दूसरा ज़ीना भी उतर गई तो जग्गू को विश्वास हो गया कि अवश्य कही न कही भूल हो गई है जो अब के उसे पैसा नहीं मिल रहा।

सतयुग के लोग[1]

ग्यारह सौ ग्यारह नम्बर की जीप गली के बाहर रुकती है। ताली घुमाकर हज़ारासिंह ड्राइवर जीप से उतरता है, तो नंदू हलवाई के तीनों कुत्ते कर्मभूमि में उतर आए हैं और उसके गली में कदम रखते ही बेतहाशा भूकने लगे है। पहलवान, उपनाम पलटा, सामने से उसकी तरफ लपकता है और डब्बू और कालू दो तरफ से उसकी टांगो के गिर्द हो लिए हैं। नंदू ने पैतृक गर्व से कुत्तों के कर्तव्य-पालन को देखा है और ढीले हाथ से दूध हिलाता हुआ बोला है—निकल जाइए, निकल जाइए, सरदार साहब ! ये कुत्ते भूकते ही हैं, काटते नही। बहुत असील कुत्ते हैं।—और रस्सी के सहारे आगे को उचककर वह कुत्तों को पुचकारने लगता है—चल इधर डब्बू ! आ कालू ! चलो इधर…।

डब्बू और कालू उसकी आवाज़ सुनकर लौटने को होते हैं, परन्तु यह देखकर कि उनका लीडर पलटा आगंतुक को आगे तक पहुंचाने जा रहा है, वे भी भूकते हुए उसके साथ-साथ कुएं तक चले गए हैं। वहां से बाल कौर की घुड़की खाकर वे लौट पड़े हैं और आकर नंदू की गद्दी के नीचे जूठी बाटियों के ढेर मे दुबककर बैठ गए है।

मक्खनसिंह अपनी गौएं लिए हुए अभी नही पहुंचा है, परन्तु उससे दूध लेनेवाले लोग निहाल के चौतरे के पास जमा होने लगे हैं। अभी बाल कौर ब्राह्मणी पल्ले से चौतरे की धूल झाड़ ही रही है कि शाहनी राम कौर हाफती हुई आ पहुंची है और केवल मलमल की एक धोती मे लिपटे हुए अपने शरीर को उसने चौतरे के अधिक से अधिक भाग मे फैल जाने दिया है। बाल कौर के अन्दर से विद्रोह की सांस उठी है, परन्तु शाहनी की कलह-शक्ति का स्मरण करके वह चुप रह गई है। उसने माथे का पसीना पोछकर ओठों पर ज़बान फेरी है और एक ओर कोने मे बैठकर स्तोत्र-पाठ करने लगी है :

शिरी रामजी के कमल नेतर कटि पीताम्बर अधर मुरली, धीरज धरम्
मुकुट कुंडल कर लकुटिया, सांवरे राधे वरम्।

—अच्छा, अच्छा, शाहनीजी पहले ही आई हुई है ? वाह-वाह ! वाह-वाह ! जय गोपाल ! जय गोपाल !—कुए के पीछे की गली से लाला राम दिगमल खन्ना की आकृति प्रकट हुई है। शाहनी को अभी भी सास ठीक से नही आ रही है, इसलिए उत्तर में उसके ओठ थोड़ा हिलकर रह गए हैं। खन्नाजी गद्गद् भाव से चारों ओर दृष्टि डालकर नम्रता की मूर्ति बने, और जैसे अपने अस्तित्व के लिए संसार-भर से क्षमा-याचना करते हुए एक ओर खड़े हो गए हैं। जीतो दाई उनके सामने ही बैठी है और लाखा सिंह दलाल, जिसकी कुहनियां कमीज से तथा घुटने पाजामे से बाहर निकले पड़ रहे हैं, घूर-घूरकर उसकी ओर देख रहा है। खन्नाजी की आंखें झुकी, उठी और फिर झुक गई हैं। अपनी भूरी खादी की टोपी उतारकर उन्होंने सिर पर हाथ फेरा है और एक लम्बी सास ली है। पैंतीसवें साल मे पहुचकर भी जीतो के छरहरे शरीर की रेखाएं अभी वैसी ही हैं। उसके चेहरे का तिल अब भी उतना ही सुन्दर लगता है, जितना बीस साल पहले। वह अपनी तीखी आखो से एक बार देख लेती है, तो शरीर मे दूर तक कुछ चुभता चला जाता है। खन्नाजी ने पैर के अंगूठे को दो-एक बार हिलाया है।

---

1. कहानी और रिपोर्ताज का मिला-जुला रूप राकेश जी की इस रचना में मिलता है। इसकी पांडुलिपि भी टाइप की हुई है।

—श्री हरि, श्री हरि, श्री हरि !—और उनके चेहरे पर क्षमा-याचना का भाव और गहरा हो गया है।

भगतरामजी दास को आते देखकर नंदू ने दूध हिलाना छोड़कर फिर रस्सी को पकड़ लिया है भगत कंधे झुकाए हुए इस तरह राम नाम का उच्चारण करता आ रहा है, जैसे दर्द से कराह रहा हो। उसकी रूखी पीली आंखें जैसे आसपास कुछ खोज रही हैं। क्यों रामजी ···? उसके सामने आने पर नंदू की दोनों आखें हिली हैं और चेहरे पर लम्बी मुसकराहट फैल गई है। भगत ने कराहना बन्द कर दिया है और उसके पीले दांत बाहर निकल आए हैं।

आ गया पुष्पक विमान ?—उसने एक बार जीप की ओर देख लिया है—दुनिया तरक्की कर गई है रामजी।—नंदू फिर दूध हिलाने लगा है। तुम्हारी तरह नहीं कि जो राम का नाम पचास साल पहले लेते थे, वही आज भी लेते हो।

भगत के ओठ फैल गए हैं और आंखें रसपूर्ण हो उठी हैं—सब प्रभु की अपरंपार माया है, नंदू शाह ! देख, क्या-क्या खेल खेल रहा है !

नंदू ने एक बार दायें-बायें देखा है। फिर थोड़ा आगे को झुक गया है—मैंने तो सुना है कि बंसी इसके सख्त खिलाफ है।

भगत फिर चुंधी आंखों से जीप की ओर देख रहा है। उधर से आंखें हटाकर उसने अपना खाली गिलास दुकान के तख्ते पर रख दिया है और थोड़ा और नंदू के नज़दीक हो गया है।

—कल इसी बात को लेकर घर में बहुत लड़ाई हुई है। चंचला देई ने कल वो-वो कही हैं, वो-वो कही हैं कि बस···।

—अच्छा ?—नंदू का हाथ क्षण-भर के लिए रुका है और फिर अनासक्त भाव से दूध को हिलाने लगा है—चंचला देई कह देती है। वह नहीं दिल में रखती। क्या-क्या कहीं उसने।

—यही कही कि लड़की को ऐसी नौकरी करानी है, तो कम्पनी बाग में कोठी ले लो।

नंदू का फूला हुआ पेट हंसी से थलथलाया है और उसकी मुछें फैल गई हैं। भगत ने अंदर से उमड़कर आती हुई हंसी को दो बार रोका है। और फिर खिलखिला उठा है।

—शाहजी, मावा हो गया है।—नंदू का नौकर परमा कड़ाही लिए हुए पास आ गया है। उसकी जांघों तक स्याही चढ़ी है और आधी कमीज स्याह हो रही है। तौलिए की जिन टाकियों से वह कड़ाही पकड़े है, वे भी स्याह हैं। उसने कड़ाही छोटी अंगीठी पर रख दी है।

—रामजी, अभी जाना नहीं।—और हाथ से भी उसे रुकने का संकेत करके नंदू मावा देखने लगा है। तीन-चार बार अच्छी तरह खुरपे से हिलाकर उसने आग उगलती आंखों से परमे की ओर देखा है—मेरी मां का सिर हुआ है ! ले जा, अभी और हिला !

परमा क्षण-भर चुप खड़ा रहा है। उसकी चुप्पी ऐसी है, जैसे गाली दे रहा हो। फिर वह झटके से कड़ाही उठाकर अंदर ले गया है। दूसरा नौकर नरोत्तम बर्तन मलता हुआ बिल्ली की-सी हंसी हंसा है।

—चुप रह बे बिल्ली के बच्चे !—नंदू उसकी ओर देखकर गरजा है दही के कूंडे निकालकर बाहर रख और बर्फ वाले को देख अभी लस्सी के ग्राहक आने

—इसमे क्या संदेह है—उन्होंने कहा है, जैसे भगत की बात का एक और ही अर्थ रहा हो—जिन बातों की कल्पना भी नही करते थे, वे सब बातें आज अपनी आंखों से देखते है। ऐसा समय भी आना था कि लरकिया कमाएं औड़ धड़ वाले बैठ कर खाएं।

भगत का ध्यान भी लाखासिंह से हट गया है और उसके मस्तिष्क मे जीप के पहिये घूम गए हैं—देख लो तुम्हारी स्त्री-शिक्षा क्या कर रही है?—वह अंगोछे से गले का पसीना पोछने लगा है—शास्त्रों मे कहा है कि कलजुग मे धर्म एक पैर पर खडा रहता है, अब वह भी नहीं रहेगा। आजकल स्कूल-कालेजो में इन लड़के-लड़कियो को क्या साहित्य पढाया जाता है! वह साहित्य, जो भ्रष्टाचार की शिक्षा देता है। उस दिन एक पुस्तक पढ़ रहे थे। क्या पढ़ा उस पुस्तक में?

भगत ने आंखो मे प्रश्नात्मक भाव लिए हुए आसपास खडे दो-एक और व्यक्तियो की ओर भी देखा है, जो थोड़ा-थोड़ा तख्त के निकट आ गए हैं। भगत ने अगोछे से गले का पसीना पोछते हुए क्षण-भर के लिए एक नाटकीय विराम दिया है और बोला है—पढा कि एक पुरुष स्वयं···महाराज स्वय···स्वयं अपनी पत्नी को अपने मित्र के लिए छोडकर घर से चला गया। पीछे वह पति के उस मित्र के साथ जंगल मे चली गई। और वहा? वहा जाकर क्या हुआ? वहा जाकर उसने पति के मित्र के सामने अपने सब वस्त्र उतार दिए···। हे जानकी वल्लभ रघुनाथ स्वामी···। तो बोलो। यह आजकल का साहित्य है! कभी रामायण-महाभारत साहित्य था, आजकल यह साहित्य है। द्वापर मे दु:शासन ने द्रौपती का चीर-हरण किया तो महाभारत हो गया और आज? स्कूलों-कालेजो मे इस सबकी शिक्षा दी जाती है। यह इस देश की स्वतन्त्रता है! आज जिनके हाथों मे इस देश का राज-काज है, उनकी भी गाथा सुन लीजिए··· क्यो महाराज, सुनाए उनकी गाथा?

भगत के आसपास लोगो का घेरा खडा हो रहा है। भगत के चेहरे पर चमक आ गई है। उसने टोपी उतारकर तख्त पर रख दी है और टागें नीचे लटकाकर थोडा आगे को झुक गया है।

—जब भगवान रामचन्द्र वनों को चले, तो अजुध्यावासी उनके साथ हो लिए ···ध्यान से सुनो खन्ना जी, पते की बात सुना रहे हैं। यह मत समझना कि रामायण सुनाने लगे हैं। तो आगे-आगे भगवान् चल रहे है और पीछे-पीछे सब अजुध्यावासी। कहते हैं कि भगवन, हम भी आपके साथ ही वनों मे जाकर रहेगे। जब अजुध्या से निकल आए, तो भगवान को बहुत चिन्ता हुई। चिन्ता यह हुई कि यह सारी जनता यदि साथ चली तो वनो में जाकर निर्वाह कैसे होगा? हा महाराज, इतनी जनता कि एक समय भी खाय तो सौ योजन के कंद-मूल-फल खा जाए। तो भगवान मर्यादा-पुरुषोत्तम ने उन्हे मर्यादा का उपदेश दिया और अजुध्या लौट जाने को कहा। कहा कि मेरे चरणों में तुम्हे तनिक भी अनुराग है, तो सब नर-नारी यहां से लौट जाओ। तो महाराज, भगवान का आदेश सिर-आंखों पर धरकर सब नर-नारी यहा से लौट जाते हैं और भगवान वनों को चले जाते हैं।

भगत से लक्षित किया कि उसके प्रवचन में लोगो की रुचि लगभग समाप्त हो चली है। उसने तख्त पर हाथ मारा है और थोड़ा और आगे को सरक गया है।

—एक-एक कर चौदह बरस बीत जाते हैं। भगवान राक्षसो का दमन करके लक्ष्मण और भगवती सीता के साथ वनो से लौटकर आते हैं तो क्या देखते हैं?

भगत ने फिर क्षण-भर का विराम दिया है और श्रोताओ की ओर देखकर मुसकराया है।

—देखते हैं कि जहा से उन्होने अजुध्यावासियों को लौटने को कहा था, वहा पर बहुत-से हिजडे एकत्र हैं। भगवान ने समझा कि वे लोग उनके स्वागत के लिए आए हैं, सो बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु निकट जाकर उनसे पूछते हैं, तो क्या पता चलता है—? पता चलता है कि वे पन्द्रह बरस से वही पर बैठे हैं। भगवान सुनकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं और पूछते हैं कि वे पन्द्रह बरस से वहा किसलिए बैठे हैं। इस पर उनका मुखिया हाथ जोड़े हुए कहता है क्या कहता है ? कहता है कि हे प्रभु, दीनबंधु, अंतर्यामी, आपने आदेश दिया था कि सब नर-नारी लौटकर अजुध्या चले जाएं। परन्तु हमारे लिए प्रभु, आपने कोई आदेश नही दिया था। सो हम आपके सेवक, दासानुदास, तब से आदेश की प्रतीक्षा में यहीं बैठे हैं। भगवान ने सुना, तो चित्त प्रेम से गद्गद् हो गया। प्रसन्न होकर कहते है कि भक्तो, तुम्हारी इस भावना ने मेरा हृदय और तन-मन-प्राण सब कुछ जीत लिया है, मागो, क्या मांगते हो ? भगवान ने कहा, मागो, क्या मांगते हो, तो उनमे आपस में कलह छिड गया। किसी को धन चाहिए, किसी को पद चाहिए, किसी को पुत्र-कलत्र चाहिए। बहुत समय व्यतीत हो गया, परन्तु कोई निश्चय नही कर सके कि क्या मागे, क्या नही मागे। एक कहता है, यह दो, तो दूसरा कहता है कि यह नही, यह दो। जब कलह शात करने का कोई उपाय दृष्टिगोचर नही होता, तो भगवान अंतर्यामी उनसे कहते हैं—क्या कहते हैं···? कहते हैं, जाओ भक्तो, तुम्हें मैं यह वरदान देता हू कि कलजुग मे एक समय आएगा, तब सम्पूर्ण भारतवर्ष में तुम्हारा राज होगा और तुममे से प्रत्येक की मनोकामना पूरी होगी। तो महाराज, भगवान का वरदान वृथा नहीं जाता। अब देख लो, कलिकाल मे आकर संपूर्ण भारतवर्ष मे उनका राज हो गया है और प्रत्येक की मनोकामना पूरी हो रही है। क्यों लाखासिंह, हो रही है कि नहीं ?

लाखासिंह को सम्बोधित करते हुए भगत का स्वर ऊचा हो गया है। बाईं आंख को ज़रा-सा दबाकर उसने श्रोताओं को देखा है और सीधा हो गया है। लोग खिलखिला उठे हैं। अपनी बात के प्रभाव को लक्षित करते हुए भगत के ओठो पर हंसी की रेखा धीरे-धीरे फैली है। दो-एक बार उसने उसे फैलने से रोका है, फिर अपेक्षित प्रभाव का विश्वास हो जाने पर पूरी तरह फैल जाने दिया है। श्रोताओं की आंखों में तथा नासिकाओं के अग्रभाग पर देर तक हंसी की थिरकन बनी रही है। भगत टोपी मे गले को हवा करने लगा है।

— तो महाराज, इसीलिए इस राज को रामराज कहते हैं। इस राज मे स्त्रियों के कर्म पुरुषो ने ले लिए हैं और पुरुषो के कर्म स्त्रियो ने। इसलिए न स्त्रियो में स्त्रीत्व रहा है, न पुरुषो में पुरुषत्व। सतजुग मे क्या स्त्रियों को शिक्षा नही दी जाती थी? परन्तु उस काल की शिक्षा क्या होती थी···? क्या होती थी उस काल की शिक्षा···?

— तत् तत् ! तत् तत् !—गौओं को रस्सी से सहलाता हुआ मक्खनसिंह गली मे आ पहुंचा है। उसे देखते ही भगत के आस-पास से श्रोताओ का जमघट सहसा बिखर गया है। भगत कई पल इधर-उधर देखता रहा है कि कोई एक-आध श्रोता भी हो, तो वह अपनी बात जारी रखे, परन्तु किसी के भी आख न मिलाने पर उसने क्षोभ और निराशा की लम्बी सास लेकर टोपी सिर पर रख ली है। अंगोछा कन्धे पर डाल लिया है और रूखी आंखों से शून्य में देखता हुआ राम-नाम का उच्चारण करने लगा है। बाल कौर ब्राह्मणी इस समय उसके प्रवचन पर टिप्पणी कर रही है।

भगवान सरब अन्तर्यामी थे। उन्हें नही पता चला कि हिजडे वहां पर क्यो बैठे हैं···? निरा झूठ ! भगवान के नाम पर झूठ बोलते लोगों को शर्म नही आती। भगत बने फिरते हैं।

भगत ने क्रोधपूर्ण दृष्टि से बाल कौर को देखा है और आखें दूसरी ओर फेर ली हैं। पहले एक बार 'विधिहू न नारि हृदय गति जानी' की व्याख्या करते हुए उसकी बाल कौर से लड़ाई हो चुकी है। प्रभु कृपा से भगत की एक आख कुछ भेंगी है जिससे कई बार यह पता नही चलता कि वह किसे लक्षित करके बात कह रहा है। बाल कौर का कहना है कि वह उसकी ओर देख रहा था और उसीकी हृदय-गति की चर्चा कर रहा था जब कि भगत की आख उस समय जीतो के चेहरे पर टिकी थी और हृदय-गति के सम्बन्ध में वह अपनी पत्नी कंती की बात सोच रहा था।

सपरेटा दूध की बटलोई सिर पर रखे तनकर चलता हुआ मक्खनसिंह निहाल के चौतरे पर पहुच गया है। छाती उभरी होने से उसके कन्धे पीछे को हटे-से लगते हैं।

—शाहनी, बटलोई के लिए तो जगह छोड़ दिया कर—उसने बटलोई सिर से उतारते हुए कहा।

—मुए पोस्ती, इतनी देर क्यो कर देता है ?—शाहनी थोड़ा एक ओर को हट गई है।

—मैं देर नही करता, शाहनी माता, तू जल्दी आ जाती है। तू आप न आया कर, शाह को भेजा कर।

—मुए, शाह तुझे खरे पैसे देता है, मैं खोटे देती हूं?—शाहनी के माथे पर क्रोध की रेखा भी है और ओठों पर मुस्कराहट भी। यह निश्चय नहीं कर पाई है कि उसे क्रोध करना चाहिए, या प्रसन्न होना चाहिए।

मक्खनसिंह शाहनी के भाव को देखकर मुस्कराया है और उसने दो बार मूछों पर हाथ फेरा है नही शाहनी माता, तेरा रुपया तो सत्रह आने का होता है। मगर शाह को आध सेर का डेढ पाव भी दे दो, तो वह ले जाता है और तू आध सेर का अढ़ाई पाव लेती है। तू उसे ही भेजा कर।

इस निश्चय पर पहुचकर कि उसकी प्रशंसा हो रही है, शाहनी प्रसन्न हो गई है और उसके मुह के चारो दात दिखाई दे गए हैं—यह मुआ मुझे आध सेर का अढाई पाव दूध देता है।—वह जीतो की ओर देखकर बोली है—यह नही कहता कि रोज़ मुझे ठग लेता है।

—शाहनी माता, तू तो ब्रह्मा को ठगकर धरती पर आई है, तुझे कौन ठगेगा ?

शाहनी को लगा है कि इस बार उसकी प्रशंसा नही निंदा की गई है। उसने मक्खनसिंह की धूर्ततापूर्ण मुस्कराहट को भी देखा है। उसके मुह से अमृत वर्षा होने लगी —मुए, जबान खीच लूंगी। छोटी जात, जो मुह मे आए, बकता जाता है। मैं तेरे बाप का दिया खाती हूं, जो तेरी जान पर भारी हू ? तेरी मां चुड़ैल आई होगी ब्रह्मा को ठगकर। नीच जात। जितना मुह लगाओ, उतना ही खुलते जाते हैं। तुझे नही पुजता, तो न दिया कर दूध। इतना बढ़-बढ़कर बातें क्यो करता है ?

—छिमा कर माता, छिमा कर।—मक्खनसिंह ने अपनी ढीली पगड़ी उतारकर चौतरे पर रख दी है—तू आध सेर का तीन पाव दूध लिया कर, मगर इस तरह गुस्सा न कर। तेरी तो सारी बरकत है। तू न आएगी, तो बरकत कहा रहेगी ?

—मुआ कमजात। शाहनी फिर प्रसन्न हो गई है और उसके चारो दात बाहर निकल आए हैं।

मक्खनसिंह ने कमीज भी उतारकर एक ओर रख दी है और बटलोई धोने के लिए कुएं की ओर चला गया है। वहां से लौटकर उसने भूरी गाय के थन सहलाने शुरू किए, तो आधे लोग जाकर उसके इर्द-गिर्द खड़े हो गए हैं।

—मक्खनसिंह, मुझे पहली गाय का दूध दे देना।—रोशन सराफ ने उसके सिर पर पहुंचकर ऐसे स्वर में कहा है, जैसे वही उनका एकमात्र आत्मीय हो। वह रोज़ की तरह नया पजामा-कुरता पहनकर दूध लेने आया है और मक्खनसिंह के ऊपर झुके हुए भी उसकी आंखें कहीं और देख रही हैं। पालसिंह दरजी की दुकान के पास खड़ी निर्मला के चेहरे पर हलकी-सी लाली फैल गई है।

—सबसे पहले तुम्हें दूंगा।—मक्खनसिंह बटलोई में धारें निकालने लगा।

—और हम जो तड़के से खड़े हैं? लाखासिंह बैठे हुए गले से चिल्लाया है। उसका चेहरा ऐसे हो गया है जैसे कोई मरने-मारने की समस्या खड़ी हो गई हो।

—इससे पहले तुम्हारी बारी है।

बटलोई में झाग बनने लगा है।

—और हमारी?—भगत भी राम नाम का उच्चारण छोड़कर आगे आ गया है।

—पहले तुम्हारी, फिर लाखासिंह की।

—मैं सबसे पहले आकर बैठी हूं, मक्खनसिंह।—बाल कौर ब्राह्मणी ने दूर से फरियाद की है।

—तेरा नाम भी रजिस्टर मे लिखा है, कौरा। बैठी रह, फिक्र न कर।

मक्खनसिंह के दूध दुहकर उठने पर आसपास खड़े लोगों में कन्धेबाज़ी आरम्भ हो गई है। मक्खनसिंह ने गाय की रस्सी खोलकर कन्धे पर डाल ली है और उस जमघट से निकलकर चौतरे पर आ गया है। उसके वहां पहुंचते न पहुंचते उसके चारों ओर बाहों का घेरा बन गया है। मक्खनसिंह ने दूध का पौवा भरकर पलभर सबको सन्देह में रखा है, फिर शाहनी राम कौर के गिलास मे डाल दिया है। दूध लेकर भी शाहनी का हाथ पीछे नही हटा है।

—मुए, यह दूध है? सारा झाग ही झाग है।—वह अन्य हाथों से अपना हाथ आगे रखने के लिए संघर्ष करती रही है।

रोशन सराफ का हाथ घेरे में होते हुए भी आगे नही बढ़ रहा है। उसकी बाह निर्मला की बांह से छू रही है और उस संगति ने धीरे-धीरे और भी कोमल और पुलकमय स्पर्श का अवकाश प्रस्तुत कर दिया है।

दूध चुक जाने पर मक्खनसिंह ने पगड़ी से मुंह और गले का पसीना पोंछा है और सेर-सवा सेर सपरेटा दूध बटलोई मे डालकर झाग बैठाकर और दूध मांगनेवाले ग्राहकों को निपटाने लगा है। लगातार गिलास हिलाने से शाहनी राम कौर की धोती यथास्थान नही रही है और उसके हिलते हुए मांस-पिंड बाहर दिखाई दे रहे हैं। मक्खनसिंह ने एक घूंट दूध उसके गिलास मे डाला और चिल्लाया है—ले, खुले भण्डारों वाली माता, तेरे भंडार भरे रहें।

मुए, अभी झाग ही झाग है। शाहनी फिर भी गिलास हिलाकर झाग बैठाती रही है।

—ले माता, और ले। मक्खनसिंह ने आधा घूट दूध और डाल दिया है।—कहे, तो बटलोई ही तेरे घर पर छोड आऊं।

—मुआ, कमजात।—और शाहनी दूध हिलाती रही है।

लाखासिंह को दूध नही मिला है, इसीलिए वह उसका दूध छोड देने की धमकी दे रहा था।

—तेरे आसरे हैं, लाखासिंह छोड़ जाएगा, तो हम भी गली छोड़ देंगे। कल से

साइकल पर दो टीन लगाकर बेच लिया करेंगे। हम यहां दूध बेचने के लिए थोड़े ही आते है। हम इसीलिए आते हैं कि यहां तुम लोगों के दर्शन-पर्शन हो जाते हैं। बस दो मिनट ठहर जा, अभी दुहकर देता हूं। और लाखासिंह की दाढ़ी को हाथ लगाकर मक्खनसिंह काली गाय के थन सहलाने लगा है और आंख दबाकर इधर-उधर देखते हुए जैसे जाप करता जा रहा है—ऐ खुले भंडारों वाली माता, तेरे भंडार भरे रहें…।

चांदनी और स्याह दाग[1]

मेहर के बाल बिखरकर उसके घुटनो पर आ गए थे। हवा के स्पर्श से सफेदा की दूर तक की पत्तियां कांप रही थी। पीछे बेंत का झुरमुट था, जिसके साये चांदनी मे जालियां बुन रहे थे। मेहरा का चेहरा उन जालियो में लिपटा था। समदू हाथ पीछे किए घास पर बैठा था। घास के ठडे स्पर्श से उसकी हथेलियो मे चुनचुनाहट हो रही थी। वातावरण में तिगलियो की सोंधी गंध व्याप्त थी, और मेहर के शरीर की भीनी गंध जिसे कई बार उसने बहुत पास मे सूंघा था।

तेरही की रात थी और चादनी खूब निखरकर फैली थी। जेहलम के उस पार अखरोट, बादाम, बेंत और सफेदा के झुड दूर तक फैले थे, धुंधले-धुंधले, प्रेत छायाओं जैसे। उधर का गीला कगार चादी की तरह चमक रहा था। दरिया मे कभी-कभी कोई मछली उछल जाती थी…चिलुक्-चिल्क् चिलुक। बल खाती हुई लहरें किनारे के पत्थरों पर आ टूटती थी।

सायों के जाल मे मेहर का चेहरा बहुत पीला लग रहा था। चेहरे की नीली नसें त्वचा के नीचे से झलक जाती थी। समदू एकटक देख रहा था। मेहर के चेहरे की हल्की नामालूम रेखाओ से वह अच्छी तरह परिचित था। गरदन के नीचे मास की गोलाइयो के पास वे रेखाएं अधिक गहरी हो गई थी। वे रेखाएं वैसी ही थी, जैसे संगमरमर के रेशे, जो संगमरमर की चिकनाहट को व्यक्त करते हैं। समदू देख रहा था—वह पीलापन, वे नीली-धारियां और दो बड़ी-बड़ी काली आखें…।

वह पास को सरक गया—मेहर के शरीर की गंध के उस घेरे मे, जहा घास और मक्की की गध लुप्त हो गई।

—मेहर।

मेहर का चेहरा झुककर बांहो मे छिप गया।

—मेहर, तू मुझसे शादी करेगी। करेगी न ? तू क्यों मुझसे दूर-दूर रहती है ? क्यो मुझसे आंखें बचाकर निकल जाती है ? मैं तुझे अपने पास रखना चाहता हूं मेहर, हमेशा-हमेशा के लिए। मैं तुझे हरगिज़-हरगिज़ अपने से दूर नहीं होने दूंगा। देख मेहर, मेरी तरफ देख।

उसने मेहर का चेहरा ऊपर उठाने की चेष्टा की, परतु मेहर उसी तरह कसी रही। समूद ने उसे अपने निकट खीच लिया। मेहर उसके सीने मे मुंह छिपाकर सिसकने लगी।

---

1. इस कहानी की पाडुलिपि टाइप की हुई है और शीर्षक 'कौड़ियों वाले साप' को पेंसिल से काटकर प्रस्तुत नया शीर्षक दिया हुआ है।

—मेहर।—समद्‌ का दायां गाल मेहर के कोमल बालों पर टिक गया। उसने क्षण भर के लिए आंखें मूंद ली। उस क्षण के लिए उसे महसूस हुआ कि वह दरिया के किनारे पर नहीं, धार के बीच में है, और धार का शब्द उसे आगे, और आगे धकेल रहा है।

—मेहर।

हवा तेज थी। हर झोंके के साथ दूर तक झुरमुटों मे सरसराहट फैल जाती थी। धार पर चांद का सीधा प्रतिबिम्ब पड रहा था, इसलिए वहां सोने की जालिया बिछी थी। किनारे के पास धुंधले-धुंधले प्रतिबिम्ब हिल रहे थे। बहुत नीचे एक डूंगे की लालटेन की लौ दिखाई दे रही थी। वातावरण के स्पन्दन से लगता था रात अपने एकान्त मे गुनगुना रही है।

—मेहर।

समद्‌ ने फिर आंखें मूंद ली और जैसे दरिया में बहने लगा। बहुत दिन पहले ऐसी ही एक रात मेहर के साथ डूंगे मे बिनाकर वह वहा से मैदान में मजदूरी करने के लिए गया था। तीन साल की मेहनत के बाद वह इस लायक हुआ था कि शादी के लिए पांच सौ रुपया जमा करके घर ला सके। कुछ रुपया उसने और भी जोडा था, जिससे घर की मरम्मत हो जाए और वह अपने बाप के लिए दस्तार और मेहर के लिए नये कनवाज खरीद सके।

परतु उसके लौटकर आने तक जिंदगी बदल गई थी।

जुम्मन, खालका और कादिरा मांझी से काश्तकार हो गए थे। कादिरा फिरन की बजाय सलवार-कमीज पहनने लगा था। गांव के एक ओर के सब घर जल गए थे। उनके साथ वे दोनों चिनार भी जल गए थे जिनके नीचे बैठकर वह और उसके दोस्त मक्की भूना करते थे। मुहम्मद यार लंगडाकर चलने लगा था। उसके पैर में गोली लगी थी। उन दिनों वह कुश्ती लड़ने में अपना सानी नही रखता था, परंतु अब उसका शरीर ढीला पड गया था और आधे बाल सफेद हो गए थे।

उसके पीछे गांव पर कबाइलियों का आक्रमण हुआ था।

अब्दुल गनी को लकवा मार गया था। उसके घर का सारा सोना कबाइलियो ने लूट लिया था। उसकी बीवी के पीतल के कडे भी सोना समझकर ले गए थे।

गांव के कई घरो मे कबाइली चार-चार, पाच-पाच दिन तक टिके रहे थे। उन घरों की लडकियों की आंखें बदल गई थी। उनमे एक अस्वाभाविक पीलापन आ गया था। वे उसी तरह लकड़ियां काटती थी, जेहलम से पानी भरती थी और सिंघाड़े बीनने के लिए जाती थी, मगर···।

उन लड़कियों में उसकी महबूबा मेहर भी थी। उनके घर मे सात-आठ कबाइलियों का एक गिरोह कई दिनो तक रहा था।

मेहर अब उससे दूर-दूर रहती थी। वह कई बार चेष्टा करके भी उसकी खामोशी को नही तोड पाया। उसकी अपनी जबान मेहर से बात करते लडखड़ा जाती थी। परन्तु धीरे-धीरे उसका मन निश्चिन्त हो गया। जले हुए घरो की जगह नये घरो की नीवें खुद गई थी। मस्जिद के इर्द-गिर्द नई दीवार खडी हो रही थी। उस साल फसल पिछले कई सालों से अच्छी हुई थी। पुराने दाग एक-एक करके मिट रहे थे। एक दिन जब वह जफरू के डूगे मे बैठा था जफरू कुलचे पकाता हुआ सुना रहा था कि किस तरह उसकी बुढिया उसके कुलचों पर कुर्बान होकर उसमे शादी करने के लिए लालायित हो उठी थी। बुढ़िया ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी कि वह सारा मन-घड़ंत किस्सा

हैं, जफरू के सौ खुशामद करने पर उसके बाप ने उनकी शादी की हामी भरी थी। विवाहित जीवन के उस रूप को देखकर अनायास उसने मन मे निर्णय कर लिया था कि कुछ भी हुआ हो, वह मेहर से शादी जरूर करेगा। समय के दाग समय के साथ मिट जाएगे। कबाइलियो के वहा रह जाने से मेहर की मासूमियत मे क्या अन्तर आया था ? पीलेपन के बावजूद उसकी आखो मे वही कोमलता थी और उसके नन्हे-नन्हे दात उसी तरह चमकते थे। मेहर आज भी गाव की सबमे हसीन लडकी थी।

मेहर के कोमल शरीर के स्पर्श से समदू का सारा शरीर रोमांचित हो रहा था। जैसे वह चिकनाहट उसके शरीर मे ढलती जा रही थी। उसके ओठ कई क्षण मेहर के बालो से खेलते रहे। सहसा उसने पकड़कर मेहर का चेहरा अपनी ओर कर लिया और उसके ओठो पर झुक गया। मेहर तडपकर उससे अलग हो गई।

एक कौडियो वाला भूरा सांप रेंगता हुआ पास से निकल गया। समदू ने पांव समेट लिए। साप बहुत बलिष्ठ और लचकीला था।

कुछ क्षणो की चुप्पी मे वे एक-दूसरे की आंखो में देखते रहे, समदू छिले हुए भाव से, मेहर व्यथापूर्ण ममता से।

—घास से उठ जा समदू, यहा बहुत सांप हैं।—मेहर की दृष्टि का भाव शब्दों में उतर आया।

—*मैं साप से नही डरता।*—*समदू घास पर पीछे को फैलता हुआ बोला*—सांप काट ही तो लेगा ! क्या होगा सांप के काटने से ?

मेहर की आखों की व्यथा गहरी हो गई।

—क्या होगा साप के काटने से ? मौत ही तो होगी।— समदू फिर बोला—यह ज़िन्दगी जीने से तो अच्छा है कि···।

मेहर ने हाथ से उसका मुह बन्द कर दिया।

—तू जानता है समदू—वह बोली—मैं दिलोजान से तुझसे मुहब्बत करती हूं। तेरे साथ ज़िन्दगी बिताने की कितनी हसरत मेरे दिल मे है ! लेकिन समदू···।

—लेकिन-एकिन कुछ नही। - समदू एक विश्वास के साथ उसके और निकट सरक गया—जो कुछ तेरे साथ हुआ है, उसमे तेरा क्या दोष है ? ज़िन्दगी इस तरह बर्बाद कर देने की चीज़ नही है। कबाइलियोको यहा से गए अर्सा हो गया। दिनो के दाग धीरे-धीरे मिट रहे हैं। मेरी नज़रो मे तू आज भी इस चादनी की तरह पाक और हसीन है।

उसने मेहर के चेहरे को दोनों हाथों मे ले लिया। मेहर ने उन हाथो के खिंचाव को रोकने के लिए उसकी कलाइयां पकड ली।

—नही समदू,— *उसने हांफते हुए कहा— यह नही होगा, कभी नही।*

—क्यो ?—समदू के हाथ उसका हठ तोड़ने के लिए सख्त हो गए— क्यो नहीं होगा ? जरूर होगा।

—नही होगा।—मेहर की उसकी कलाइयों की पकड़ भी सख्त हो गई।—तू समझता क्यो नही है, समदू ? मैं तेरी जान की दुश्मन नही हू···मेरे होंठो मे सांप से कम ज़हर नही है।

उसके चेहरे पर समदू के हाथो का दवाब कम हो गया। वह विमूढ-सा उसकी ओर देखता रहा।

—तू मुझे क्यो अपनी तरफ खीचता है ?—मेहर कहती रही—मैं वह मेहर नही हू, जिसे तू पाना चाहता है, इस ज़िन्दगी मे। अब मैं वह मेहर हो भी नही सकती।

मैं एक गला हुआ बीमार जिस्म हूं और कुछ नहीं, जिसमें अब जहर ही जहर है'''।

समदू के हाथ मेहर के चेहरे से हट गए। मेहर के हाथों की पकड़ भी क्षण-भर के लिए और मजबूत होकर ढीली पड़ गई। समदू को महसूस हुआ जैसे बड़े-बड़े फौजी बूटों से कोई उसके माथे पर ठोकरें लगा रहा है, बंदूक का कुन्दा उसके सिर में जड़ रहा है, और कौड़ियों वाला सांप उसकी जांघों से लिपटकर उसे लगातार डंक मार रहा है। उसने पेड़ के तने से टेक लगा ली।

चांदनी में चमकती हुई सफेदा की पंक्तियां दूर तक जंगल के पहरेदारों की तरह खड़ी थीं। चांद ऊंचा उठ आने पर दरिया की सतह बिल्लौर की तरह चमक रही थी। कुछ घास के लोंदे दूर से दरिया में तैरते आ रहे थे। शायद उनमें कोई मरा हुआ पशु उलझा था।

बेंत के वृक्षों का झुरमुट हिल रहा था, और उसमें से गुजरती हुई हवा एक डरावनी गूंज पैदा कर रही थी।

समदू स्थिर दृष्टि से मेहर के चेहरे को देखता रहा। उसके चेहरे की रेखाओं में जरा भी तो अन्तर नहीं आया था। त्वचा का कसाव वैसा ही था और भौंहें तथा आंखें उतनी ही गहरी थीं।

क्या उसकी बात सच हो सकती थी ? और हो भी तो'''।

समदू ने आसमान की ओर देखा। तेरहीं का कोने से टूटा हुआ चांद पूरी आभा बरसा रहा था। वह सीधा हो गया। मेहर की गहरी काली आंखें उसी व्यथा और ममता के साथ उसे देख रही थीं। समदू का हारा हुआ विश्वास लौटने लगा।

—मुझे किसी जहर की परवाह नहीं,—उसने धीमे मगर निश्चित स्वर में कहा और मेहर का चेहरा अपने पास लाकर उसके ओंठ चूम लिए—जहर-भरे।

एक घटना[1]

लुधियाने के पास वह छोटी-सी बस्ती है। रिटायर होने के बाद डाक्टर हरिवंश वहीं बस्ती में ही जा बसे थे, क्योंकि उनका जन्म स्थान वहीं था, और पुरातत्त्व के विद्वान होते हुए भी उनके हृदय में इतनी भावुकता थी ही कि जीवन के अंतिम दिन उसी वातावरण में रहकर बिताएं, जिस वातावरण के साथ उनके जीवन की पहली स्मृतियां सम्बद्ध थीं। वहां जाने के चौथे वर्ष ही उनका देहांत हो गया, हृदय की गति रुक जाने से, और उनके हितचिंतकों तक यह समाचार, एक-एक करके, दिनों-महीनों में ही पहुंच पाया। जब वह समाचार मुझे मिला, उन्हें गुजरे चार महीने हो चुके थे। मुझे सहसा झटका लगा। केवल इसलिए ही नहीं कि डाक्टर हरिवंश मेरे अच्छे मित्र थे, बल्कि इसलिए भी कि एक इतना बड़ा विद्वान उठ गया और कहीं कोई चर्चा नहीं; यहां तक कि उनके निकट परिचय के व्यक्तियों में भी जाना नहीं। वे नगर में रहते तो शोकसभाएं होतीं, सहानुभूति के संदेश भेजे जाते, परंतु'''

1. यह कहानी से ज्यादा एक जीवित लेखक की 'चिंता' है कि वह किस तरह की चिंताओं में एक बक्त घिरा रहा है। यह कहानी राकेश की हस्तलिपि में प्राप्त हुई, पर लेखन काल का कोई संकेत पाण्डुलिपि पर नहीं है। राकेश की हस्तलिपि बदलती रही है। उनकी डायरियों की तिथिबद्ध हस्तलिपि से मिलाने पर यह सन् 50 के आस-पास की या उससे दो वर्ष पहले की कहानी साबित होती है।

मैंने एक बार उनके परिवार से मिल आने का निश्चय किया। उनका परिवार केवल दो प्राणियो का था। एक उनकी स्त्री, और दूसरी उनकी कन्या, जो उनके नगर छोडकर बस्ती मे जाने के समय लगभग बारह वर्ष की थी। उस आयु मे भी वह बालिका चतुराई के साथ तर्क करना सीख गई थी और जब-तब गम्भीर विषयो मे अपनी सम्मति दिए बिना नही मानती थी। नीलिमा आगे चलकर एक बहुत बड़ी विदुषी होगी,—यह एक बार मैंने ही कहा था। फिर तो वह कभी भी अपनी बात को पुष्ट करने के लिए कह दिया करती—जानते नही, नीलिमा आगे चलकर एक बहुत बड़ी विदुषी होगी।

जिस दिन मैं सहसा बिना सूचना दिए बस्ती मे उनके जर्जर घर के द्वार पर जा खडा हुआ, मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस धृष्ट बालिका के स्थान पर एक शालीन नवयुवती ने विस्मय-भरी आखें उठाकर मुझे देखा और अत्यन्त संयत स्वर मे कहा-·आ जाइए, चाचाजी। मा अन्दर रसोईघर मे है। अभी बुलाती हूं।—वह नीलिमा थी, नाम और देह से; स्वभाव मे वह कोई और ही लगी, बिलकुल अपरिचित।

उसकी मा अन्दर से आ गई। उनकी वेशभूषा सदैव साधारण ही रही थी, पर इस समय की वेश-भूषा पर दैन्य और मलिनता की स्पष्ट छाप थी। उन्होने ऐसे आग्रह से, जिसमे आत्मीयता का शायद विश्वास नही था, मुझे बैठने को कहा और मेरे बैठ जाने पर भी स्वय अनिश्चित भाव से खड़ी रही। मुझे क्षण-भर के लिए तो लगा कि मैं सच-मुच उनके लिए अपरिचित हो गया हू, परन्तु उस अनुभूति को वश मे करके मैंने पुराने ही सौहार्द के साथ उन्हे पास बैठाया और स्नेह के साथ नीलिमा के सिर पर हाथ फेरा। इससे पहले कि मैं कुछ कहता, नीलिमा की आखें अश्रुपूर्ण हो आईं और उसकी मां ने रुलाई रोकने के लिए आखें दूसरी ओर फेर ली। उनकी करुणा इतनी पास से देखकर मेरा भी हृदय अस्थिर हो उठा। मेरी आंखो मे जो आसू आए, उनसे पुरानी आत्मीयता समय का व्यवधान तोड़कर जाग्रत हो उठी और नीलिमा मेरे घुटनो पर सिर रखकर बुरी तरह रो उठी।

—चाचाजी!—उसके रोते हुए कण्ठ से निकले ये शब्द मेरे लहू की बूद-बूंद मे अपनी प्रतिध्वनि भर गए।

वह देर तक इसी तरह रोती रही और मैं उसके सिर पर हाथ फेरता रहा। उसकी मां ने सजल नेत्रों से मेरी ओर देखकर कहा—उनके बाद यह आज इस तरह रोई है।

मैं कल्पना कर पाया कि उसका जीवन कितना सवेदनाहीन रहा होगा।

जब नीलिमा रो-रोकर शान्त हो गई तो उसने शीघ्रता से अपनी आंखें पोंछ ली, स्वाभाविक रूप मे आने की उसने अस्वाभाविक चेष्टा की, और थोड़ी देर चुप रह-कर बोली—चाचाजी, आप समझ रहे होगे कि आपकी बिटिया पागल हो गई है।

—पागल हो नही गई, पागल करने जा रही है,—मैंने वात्सल्य के आक्षेप के साथ कहा।

वह चुप रही।

—बोल विदुषी, चुप क्यों हो गई?—मैंने फिर दुलारा।

वह फिर चुप रही।

—नीलिमा आगे चलकर एक बहुत बड़ी विदुषी होगी, है न?

—अब नीलिमा अनपढ ही रहेगी, चाचाजी?—यह बात जैसे असावधानी से उसके मुह से निकल गई। विषयातर मे अपने को डालने के लिए झटपट कहा—मा, मैं चाचाजी के लिए चाय तो बना दू,—और चली गई।

मैं जितनी देर उसकी मां से बातें करता रहा, मेरे हृदय में रह-रहकर वह बात खटकती रही—अब नीलिमा अनपढ़ ही रहेगी। वह, जो एक बहुत बड़ी विदुषी हो सकती थी, शायद अब कुछ भी नहीं होगी। बात उतनी महत्त्वपूर्ण न होती, यदि वह स्वयं उसे न जानती। ट्रैजेडी यही थी कि वह जानती थी। वह बहुत छोटी आयु में ही अपने को पहचानना सीख गई थी, और आज वह पहचान ही उसके जीवन को कसम बन रही थी।

वह चाय ले आई।

मैंने चाय की प्याली को गौर से देखा। फिर नीलिमा के चेहरे को देखा। उन दोनों में एक साम्य था। दोनों की उज्ज्वलता धुंधली हो रही थी, असमय ही। चाय की प्याली शायद दिनों के बाद उपयोग में लाई जा रही थी।

—तू भी तो मेरे साथ पिएगी, बिटिया,—मैंने प्याला उसके हाथ से लेते हुए कहा।

वह क्षण-भर मौन रही। फिर बोली—आप पी लीजिए, मैं बाद में पिऊंगी।

—साथ ही क्यों नहीं ?

वह फिर क्षण-भर मौन रही। फिर बोली—इसी प्याली को धोकर इसमें लूंगी।

मेरा हाथ थोड़ा-सा कांप गया। उसके घर में दूसरी प्याली नहीं थी।

—हम साथ ही साथ पिएंगे, मैंने कहा,—और आधी चाय सॉसर में डालकर अपने लिए रख ली, और प्याली उसकी ओर बढ़ा दी।

—नहीं, आप यह लीजिए,—कहकर नीलिमा ने सॉसर मेरे हाथ में ले ली और एक घूंट पी भी लिया।

घर की दशा शोचनीय हो रही थी। एक दीवार में दरार पड़ गई थी और उस ओर से घन की कड़ियां यूं ही हलका-हलका चिरमिराती रहती थीं। बाहर का आंगन ही घर में रहने का एकमात्र सुरक्षित स्थान दिखाई देता था। वहां भी चिड़ियों और कबूतरों ने अपने रैन-बसेरे की डौल कर रखी थी। नीलिमा की मां, प्राणिदया के वशीभूत, उन्हें वहां से हटा देने के पक्ष में न थीं। वैसे शायद अपने जीवन के एकान्त में, उन्हें उन पक्षियों में ही निजत्व का परितोष मिल जाता था।

धीरे-धीरे उनकी अवस्था खुलकर मेरे सामने आ गई। डाक्टर हरिवंश ने अपने जीवन-काल में कुछ भी धन संचित नहीं किया था। उनका विचार था कि वे अपनी बेटी को इतना योग्य बना जाएंगे कि वह हर तरह से स्वावलंबिनी बन सके। उन्होंने यह नहीं सोचा कि पैंतीस वर्ष की आयु में विवाह करने वाले व्यक्ति की सन्तान इस देश में पिता की छत्रछाया में थोड़ा ही जीवन-काल बिता पाती है।

—चाचाजी, पुराने हस्तलिखित ग्रन्थ कहीं बिक सकते हैं ?—सहसा नीलिमा ने कहा।

मुझे याद आया कि डाक्टर हरिवंश ने अपने जीवन-काल में देश के विभिन्न भागों से बहुत-से हस्तलिखित ग्रन्थ एकत्रित किए थे और उन्हें वे अपनी एक अमूल्य सम्पत्ति समझा करते थे। यदि उनकी मृत्यु आकस्मिक न होती तो निःसन्देह वे ये किसी पुस्तकालय को भेंट कर जाते। पर अब परिस्थिति भिन्न थी, और उस प को इने गौरव की अपेक्षा धन की अधिक आवश्यकता थी।

—चेष्टा की जा सकती है, मैं पुस्तकालयों से पता करूंगा,—

—मां उन्हें रद्दी में बेचने जा रही थीं, पर मैंने बेचने नहीं दि

—रद्दी में ?—मेरे हृदय पर सहसा एक और आघात लगा

की वास्तविकता और भी उघडकर सामने खड़ी हो गई।

—रद्दी मे इनका क्या मिल जाता, भला?—मैंने कहा—इन पन्नो में तो पुड़ियां भी नही बध सकती।

—रद्दीवाला एक मन के तीन रुपये दे रहा था। कुल मिलाकर सवा मन के लगभग हैं।

इस कल्पना से मेरा अन्तर काप उठा कि शताब्दियो का परिश्रम और शताब्दियों की प्रतिभा, जिसके संचय में भी कई वर्ष लगे, केवल साढ़े तीन रुपये मे बेच दिए जाते।

—और किसी से नहीं पूछा?

—मन्दिर के पुजारीजी को एक दिन सब ग्रंथ दिखलाए थे। वे श्रीमद्भागवत दो रुपये में ले गए, और ग्रंथ उन्होने कहा, उनके काम के नही। पर उन्होने यह भी कहा था कि कोई खरीदनेवाला मिल जाए तो पूरी किताबो के पचास-साठ रुपये दे देगा।

—इतने मिल जाएंगे?—नीलिमा की मां ने पूछा। उनकी ध्वनि में निराश उत्सुकता झलक आई।

—इतने ही नही, इससे कही अधिक मिल जाने चाहिए। यदि ग्रन्थ किसी पुस्तकालय ने ले लिए,—मैंने कहा। नीलिमा की मां की आखो में एक हल्की-सी किरण चमककर रह गई।

संध्या हो रही थी और मुझे आखिरी बस से लौटना था। जब मैंने उनसे विदा ली, उन दोनों की आखें पुन. अश्रुपूर्ण हो आईं। मैंने बार-बार चाहा कि नीलिमा से कहूं कि बेटी चल, मैं तुझे पढाऊंगा, तुझे वैसी ही विदुषी बनाऊंगा, जैसी तेरे पिता की कामना थी, पर तुरन्त अंकुश के रूप मे भविष्य के चित्र खड़े हो जाते—उसे पढाना ही नही, उसके विवाह का भी प्रबन्ध करना होगा, और अभी मुझ पर अपनी बेटी के विवाह का ऋण बाकी है, जिसे चुकाने में कई वर्ष लगेंगे, और मैं भी बूढा हो रहा हूं, और मेरी पत्नी चिड़चिड़े स्वभाव की है, और मेरी पेंशन कुल साठ रुपये है।

—बेटी, मुझे ग्रन्थ की सूची बनाकर भेज देना। मैं पता करके तुम्हें लिखूगा। मैंने चलते हुए कहा।—मेरी आंखो मे जो आसू आए, उन्हे मैंने ढुलकने दिया।

मैं जालन्धर आ गया। लगभग एक सप्ताह बाद नीलिमा का पत्र मिला, जिसमे साथ उसने हस्तलिखित ग्रन्थो की सूची भी भेजी थी। उस सूची मे लगभग दो सौ ग्रंथ थे। मैंने वह सूची एक सस्कृत के विद्वान को दिखलाई। उन्होंने बताया कि उस सग्रह मे कई अमूल्य पुस्तकें हैं और आठ-दस तो ऐसी हैं जिनकी कोई एक भी प्रति अन्यत्र प्राप्य नही।

मेरा हृदय उल्लसित हो उठा। यदि उस संग्रह के पाच-छः सौ रुपये प्राप्त हो तो उस परिवार के लिए यह ठोस आय होगी। मैंने उस संस्कृतज्ञ के आदेश से देश के भिन्न-भिन्न पुस्तकालयो मे पत्र लिखे। ग्रंथ-सूची की प्रतिलिपियां भी तैयार करके साथ भेज दी।

दो-तीन सप्ताह तक कोई उत्तर नही आया। मैं निराश होने लगा।

एक दिन एक प्रातीय पब्लिक लाइब्रेरी से पत्र आ गया। वे पूरे संग्रह को (यदि वह खडित न हो तो) दो हज़ार रुपये मे खरीदने को तैयार थे।

दो हज़ार रुपये। नीलिमा की शिक्षा, उसका विदुषी के रूप मे चमकना, उसका विवाह, उसका सुखी जीवन'''

पहले तो मन मे आया कि तुरन्त ही स्वीकृति लिख दू, पर फिर सोचा कि शायद और भी कही से उत्तर आ जाए; शायद इससे भी अधिक धन-राशि प्राप्त हो सके।

मैंने बड़े-बड़े पुस्तकालयों को दूसरी बार पत्र लिखे। दो-एक के उत्तर आए कि उन्हें आवश्यकता नही। पर बम्बई के एक पुस्तकालय ने चुने हुए सौ ग्रन्थो की सूची भेजी और लिखा कि वे केवल उतने ही ग्रन्थ लेने के लिए तैयार हैं, और उनके लिए सात-आठ सौ रुपये दे सकते है। उसके अनन्तर कोई पत्र नही आया। मैंने निश्चय किया कि पूरा सग्रह दो हजार रुपये मे दे दिया जाए।

जिस दिन मैंने उस पुस्कालय को पत्र लिखा, उसके दो या तीन रोज बाद मुझे नीलिमा का पत्र मिला। हस्तलिखित ग्रन्थ उन्होने बेच दिए थे ''पुजारीजी अपने साथ किसी धार्मिक विद्वान् को लेकर आए थे, जिसने पहले तो सौ रुपये देने को कहे, पर धीरे-धीरे दो सौ रुपये तक आ गया। उसने यह भी कहा कि वह उतनी रकम उनके परिवार के प्रति सहानुभूति के कारण ही दिए जा रहा है।

—इससे अधिक तो नही मिल सकता था न, चाचाजी ? —नीलिमा ने पत्र मे लिखा था। मैं देर तक सिर पर हाथ रखकर सोचता रहा कि उसे उत्तर में क्या लिखू ?

दूसरे दिन जो मैंने उसे पत्र लिखा, उसमें सकेत तक नही किया कि उन ग्रंथों के लिए उन्हे दो हजार रुपये प्राप्त हो सकते थे। उनकी उस नन्ही-सी खुशी को, जो उनके उदास जीवन मे आई थी, यू मसल देने का साहस नही हुआ।

एक बार उबाल उठा कि नीलिमा की क्षतिपूर्ति मुझे करनी चाहिए। मुझे उसको अपने पास ले आना चाहिए, क्षण, बुढापे, और अपनी पत्नी के बावजूद'''

परन्तु वह भी नही हो सका।

वनिया बनाम इश्क[1]

रात के साढे ग्यारह बजे, किसी भले आदमी का किसी भले आदमी के यहां आने-जाने का वक्त नही। मगर मेरे मेहरबान, इन्द्रदेव, जात सिंधी, का ध्यान इन छोटी-छोटी चीजों की तरफ नही जाता था। अपनी दोस्ती और बेतकल्लुफी का सबूत देने के लिए इससे अच्छा और कौन-सा वक्त हो सकता था ?

इसलिए उसे देखकर मुसकराना और बैठने के लिए कुर्सी की तरफ इशारा करना लाजिमी था।

मगर वह बैठने के लिए नहीं, मुझे अपने साथ बाहर ले जाने के लिए आया था।

जोधपुर जैसे शहर मे जब रात के ग्यारह बज चुकते हैं, तो लगता है कि धरती अपनी आकाश-यात्रा के किसी नये मोड़ पर पहुच गई है, क्योंकि जीवन की गति बिल्कुल थम जाती है और ठडी रेत सारे वातावरण को निर्जीव बना देती है। उस समय आस-पास कुछ ऐसी निःस्तब्धता थी कि बाहर निकलना तो क्या, दो ज़िन्दा इनसानों की तरफ बातचीत करना भी विचित्र लग रहा था।

मगर मुझे क्या कैसा लगता है, इससे मेरे मेहरबान को कतई कोई वास्ता नहीं था।

---

1. यह कहानी जनवरी 1951 में इलाहाबाद में लिखी गई। इसका पूर्व शीर्षक 'अन्धा देवता' था।

वह इस विश्वास के साथ कमरे मे टहल रहा था कि मैं अभी तैयार हुआ जाता हू और मैं इस आशा के साथ बांहें सिकोड़े बैठा था कि वह अब भी तरस खाकर मुझे छोड जाएगा, मगर उसका विश्वास पक्का था और मेरी आशा कमज़ोर थी।

यू मेरा उससे परिचय पूरे पाच दिन का भी नही था। मगर अपनी जान की एक कमज़ोरी थी। इन्द्र के पास एक बहुत बढिया तागा था। इस अरसे मे उसने मुझे जोधपुर के आसपास के सभी इलाको की सैर करा दी और कई दूर-दराज़ इलाकों मे ले जाने के वायदे कर रखे थे। इसलिए इनसानी फ़ितरत की कमज़ोरी की वजह से मुझे उसकी हर बेतकल्लुफ़ी बरदाश्त करनी पडती थी और इस बात की भी हामी भरनी पड़ती थी कि हम दोनो बहुत जल्दी एक-दूसरे के बहुत नज़दीक आ गए हैं।

इन्द्र तीन कमाने वाले चाचाओ का एकमात्र खर्च करने वाला भतीजा था और कुछ न करता हुआ भी कुछ भी करना अपने लिए असम्भव नही समझता था। उसे बात करने और कुछ अपनी की हुई बात सुनाने का बहुत शौक था। हर चौबीस घण्टे मे मुझे उससे कम से कम चौरासी हज़ार शब्द सुनने पड़ते थे। अभी सध्या को ही उसने बाल-समंद की सुन्दरता पर एक लम्बी कविता सुनाई थी और राजा जसवर्तसिंह की छतरी के सम्बन्ध मे इतिहासकार क्या नही जानते, इस विषय पर एक बड़ा-सा भाषण दिया था।

और अब वह फिर से तरोताज़ा होकर आया था।

दो-तीन बार आंखो से थकान, नीद और परेशानी व्यक्त करने के बाद मैं चुप-चाप तैयार होने लगा। इन्द्र खिडकी से कूदकर बाहर चला गया। मेरे भी खिड़की से कूदने पर उसने आगे बढकर खिडकी के किवाड मिला दिए।

फाटक के पास तागे की बत्तिया दिखाई दी, जो अधेरे की आरती उतारती हुई एक दिशा से दूसरी दिशा की तरफ घूम गई। हमारे बैठ जाने पर तागा सरपट दौड़ने लगा।

मगर एक माजरा मेरी समझ में नही आ रहा था। इन्द्र आज रहस्यमय रूप से खामोश था। वह पिछली सीट पर आखें मूंदकर लेट गया था, जैसे किसी साधना में लीन हो। मैंने उसके घुटने को थोडा हिलाया। उसने आंखें खोल ली।

—क्या माजरा है भाई ? —मैंने पूछा।

वह व्यथा की मुसकराहट, जो अकसर हताश बुद्धिवादियो के चेहरो पर दिखाई देती है, प्रकट हुई और विलीन हो गई। साथ ही आखें भी बन्द हो गईं।

कोलतार की सड़क, घोडो की टप-टप और पहियों की घुरड'''घुरड'''उचटी हुई नीद और मन मे बढ़ती हुई खीज ''मैंने फिर उसका घुटना हिलाया। उसने फिर आंखें खोली।

—यह तो बता दो कि चल कहां रहे हैं ?—मैंने पूछा।

आखें आधी मुद गईं।

—जहां मैंने तुमसे कहा था। —उसने उत्तर दिया और आखें पूरी मुंद गईं।

मैंने सहनशीलता के सम्बन्ध मे पुस्तको में जितने उपदेश पढ़े थे, उन्हे मन में दोहराने लगा। मगर उन उपदेशों का कोई असर नही हुआ।

अलग-अलग अवसरो पर उसने मुझे न जाने कहा-कहां ले जाने के वायदे किए थे। अगर मुझे पहले बताया गया होता कि कोई ऐसी भी जगह है, जहां रात के बारह बजे ही जाया जा सकता है, तो मैंने जाने का उत्साह प्रकट करने मे कोताही की होती। मगर अब बेबसी थी और गरदन झुकाकर ऊंघने के सिवा कोई चारा नही था।

सहसा तांगे के रुक जाने पर मैंने आंखें खोली।

दूर तक इनसान के रहने की कोई जगह नजर नही आ रही थी। सुनसान सड़क की रेखा भी कुछ दूर जाकर अंधेरे में डूब गई थी, मैंने घूमकर इन्द्र की तरफ देखा।

—थोडी देर यहा ठहरेंगे।—कहकर वह एक छोटी-सी पोटली लिए हुए तांगे से उतर पडा। शराफत के तकाजे से मुझे भी साथ उतरना पडा।

फरलांग-भर उसके पीछे जाकर काले पत्थर की एक छोटी-सी पहाड़ी दिखाई दी। पहाड़ी पर एक शिवालय था, जो डरावने भूत जैसा दिखाई दे रहा था। एक तरफ एक छप्पर या तालाब या उनका एक जात भाई-सा था। इन्द्र एक पत्थर पर बैठ गया और उसने मुझे दूसरे पत्थर पर बैठने का इशारा किया। पत्थर का सिरा नुकीला था, इसलिए मुझे पत्थर बदलना पड़ा।

किसी अज्ञात कोने में एक मेढक मरी हुई आवाज में टर्रा रहा था। तालाब की सतह पर अनेक सूखे पत्ते तैर रहे थे।

मैंने इन्द्र की तरफ देखकर आंखों से हताशा का भाव व्यक्त किया, जो इन्द्र को अधेरे मे दिखाई नही दिया। वह कई क्षण भावपूर्ण आंखों से मेरी तरफ देखता रहा। फिर उसने मुंह हाथो में छिपा लिया और कहा—आज मैं तुमसे एक जिगर की बात कहना चाहता हू।

मेरी आखो का भाव सवालिया हो गया। मगर वह चुप रहा।

—कहो! —मैंने कहा।

—मुझे एक लडकी से मुहब्बत है।--उसने उसी तरह मुंह छिपाए हुए कहा।

मैंने अपनी जबान पर आए हुए एक्सक्लेमेशन मार्क को वही रोक लिया। उस समय मुझे लगा कि मैं एक अच्छा संपादक हो सकता हूं।

—बड़ी हैरानी की बात है···! — मैंने कहा।

उसने हैरानी से मेरी तरफ देखा।

—क्यों ?

—कि तुमने यह चीज अब तक मुझसे पोशीदा रखी !

वह फिर भावुक हो गया।

और भावुक होकर उसने बताया कि उसे किसी आम लड़की से नही, बाजार की एक वेश्या की लडकी से मुहब्बत है। और वह वेश्या की लड़की भी आम वेश्याओं की लड़कियो जैसी नही, राजस्थानी सौन्दर्य का एक अछूता उदाहरण है। और फिर उसने उसका वही नख-शिख वर्णन किया, जो कवि लोग एक जमाने से करते आए हैं और बताया कि वह आज रावलो की गोठ पर मुजरा करने आ रही है और मुझे उसके साथ वही चलना है।

रावलों की गोठ का जिक्र पहले भी हुआ था और मुझे याद आया कि मैंने वहा चलने का इश्तियाक भी प्रकट किया था।

इन्द्र एक-एक कपड़े उतारने लगा, तो उसके वहां आने का मकसद मेरी समझ में आ गया। कपडे उतारकर वह पानी में उतर गया। पानी की सतह पर जमी हुई काई छितरा गई और कुछ मच्छर उडकर आस-पास मंडराने लगे।

नहाकर इन्द्र ने नया रेशमी पाजामा-कुरता पहना और इत्र की शीशी निकालकर बहुत-सा इत्र कपड़ों पर मल लिया। जब लौटकर तांगे में आए, तो उसने अगली सीट पर बैठते हुए कहा कि अब मैं अपने को पिछली सीट पर फैला लूं, ५ मील और जाना है।

मैं सोचने लगा कि जिंदगी में हर स्थिति का एक दार्शनिक पहलू भी होता है।

जल्दी ही कोलतार की सड़क, समाप्त हो गई और तांगा कच्चे रास्ते पर चलने लगा। ऊपर दोनों तरफ वृक्ष आपस में गुथे हुए थे। कहीं-कहीं ही कोई तारा झिलमिलाता दिखाई दे जाता था। कई जगह वृक्ष बहुत नीचे तक झुके हुए थे और तांगे का टब पत्तियों और टहनियों में उलझ जाता था। कई जगह पत्ते सिर, मुंह, आंखों से छेड़खानी कर जाते थे। एक जगह एक टहनी टूटकर साथ चली आई।

मुझे अहसास हुआ कि दार्शनिकता से मनुष्य को कितना सन्तोष मिलता है।

—आज मैं उसमें एक फैसला करने जा रहा हूं।—इन्द्र सहसा मेरी तरफ मुंह कर बोला—मुझे यह बरदाश्त नहीं कि वह हर आम-खास जगह पर आए-जाए और सबके सामने मुजरा करे। मैं उसे अपनी रखैल बनाकर रखना चाहता हूं। मैं शहर बाहर उसे एक जगह ले दूंगा और उसके आराम का हर इंतज़ाम कर दूंगा। उसे किसी पर मोहताज रहने की जरूरत नहीं।

वह उस शहीद की तरह मेरी तरफ देख रहा था, जो अपने धर्म के लिए सूली पर चढ़ने जा रहा हो। मैंने आंखों से उसकी बात का समर्थन किया।

तांगा अब कीचड़ और पानी में चल रहा था। ऊपर से कांटेदार झाड़ियों में उलझता और नीचे से किसी गड्ढे में हिचकोला खा जाता। उड़ते हुए कीड़ों और कीचड़ के जीवों के स्वर एक जान होकर नये विश्वमय स्वर की सृष्टि कर रहे थे। गाहे-बगाहे कीचड़ के छींटे माथे पर आ पड़ते थे।

सामने एक लोहे का फाटक आ रहा था। उस पर रखी हुई लालटेन की लौ इतनी मद्धम थी कि लौ की स्थिरता से ही उसके लालटेन होने का अनुमान लगाया जा सकता था। हम लोग अपनी मंजिल पर पहुंच गए थे।

कुत्ते और जूठी पत्तलों के ढेर में से गुज़रकर हम लोग जिस आंगन में पहुंचे, वहां अभी तक खाना-पीना चल रहा था। ऊपर एक कमरे में गैस जल रहे थे और घुंघरू छनक रहे थे। मुझे एक पत्तल के पास बैठाकर और दो मिनट में आने के लिए कहकर इन्द्र कहीं गायब हो गया।

बाहर जूठी पत्तलों का माल चुक गया था, इसलिए कुछ कुत्ते अंदर चले आए थे। वे जीभें निकाले हुए दूर खड़े लंबी सांसें खींच रहे थे। मैं कुछ देर उनका मनोरंजन करता रहा। गृहपतियों को मेरा यह समवितरण का सिद्धांत पसंद नहीं आया, इसलिए उन्होंने कुत्तों को बाहर खदेड़ दिया।

इन्द्र कोई आध घंटे के बाद लौटकर आया। उसके कदम लड़खड़ा रहे थे। उसके कुरते पर दो-तीन जगह शराब गिर जाने से बड़े-बड़े दाग बन गए थे। मेरा हाथ पकड़कर जीने की ओर बढ़ते हुए उसने कहा—मैंने उससे'''हुक्'''साफ कह दिया है'''आज के बाद'''हुक्'''वह किसी गोठ पर मुजरा नहीं करेगी! मैं यह'''हुक्'''

और वाक्य पूरा होने तक हम गैसों की चकाचौंध में पहुंच गए।

मुजरा चल रहा था। कितनी ही बाइयां एक कोने में बैठी पान चबा रही थीं। आसपास बैठे हुए लोग चुहल कर रहे थे। एक बाई का दोपट्टा खींच लिया गया। उधर से 'हाय-ऊई' की आवाज़ सुनाई देने लगी। मुजरा करने वाली बाई को औरों से की जाने वाली छेड़-छाड़ पसंद नहीं थी। उसने शिकायत-भरी नज़र से उधर देखा, तो चुहल करने वालों का रुख उसकी तरफ हो गया। उधर से एक नोट दिखाया गया और वह लेने के लिए गई, तो उसका हाथ वहीं जकड़ लिया गया। क्षण-भर की हाय-हाय सी-सी के बाद

मुजरा फिर आरम्भ हो गया। एक बुड्ढा रावल आनन्द-विह्वल होकर नीचे को झूल गया।

—वाह, बाईजी वाह ! क्या लोच है ! क्या अदा है ! वाह !

बाई गोल थुलथुल बाहों से भाव मुद्रा बनाए हुए स्वर को और लोच देने लगी···पी-ई-या मीलन को जा-आ-ने-दे वैरन मा !

तबले की थाप तेज़ हो गई। पैर जल्दी-जल्दी थिरकने लगे···बैरन मां ! बैरन मां ! बैरन मां !

चुहलबाजों ने एक जोर का नारा लगा दिया—जियो छम्मियां, वाह !

जब इन्द्र की महबूबा मुजरा करने के लिए उठी, तो इन्द्र ने चिकुटी काटकर मुझे सचेत कर दिया। मैंने आंखों से उसे विश्वास दिलाया कि मैं पहले से सचेत हूं।

मुजरा आरम्भ हुआ।

साथ तान उठाई गई···एरी मैं तो प्रेम दीवानी मेरो दरद न जाने कोय !

मैं प्रोफैशनल अंदाज़ से उसकी तरफ देखने लगा।

मैंने पहले उसके शरीर का नीचे से ऊपर तक अध्ययन किया और इन्द्र को इशारा किया कि मैं उसके चॉयस का प्रशंसा करता हूं।

इन्द्र ने इशारा किया कि वह मेरी पारखी नज़र पर कुरबान है।

वह भाव के साथ भौंहें नचा रही थी। उसकी आंखें तेज़ी के साथ कमरे के हर भाग की तरफ घूम रही थीं। उसे जैसे उस समय आंखों से कइयों की साख रखनी थी।

उसकी कलाइयों के पास हलके-हलके रोयें थे और उसकी चोली की बाहें पूरी कसी हुई नहीं थीं। उसकी भौंहें हिल रही थीं, जैसे चील हवा में पंख मारती है। और आंखें···तह-दर-तह उन आंखों की न जाने कितनी सतहें थीं। हर सतह पर उनका एक अलग भाव था।

मुझे अपनी तरफ घूरते देखकर उसकी आंख हलके से कटाक्ष के साथ फैल गई। किसी का फेंका हुआ फूल उसके वक्ष के साथ टकराया। एक साथ तड़प, तर्जना, शिकायत और कृतज्ञता की मुसकराहट···घुंघरूओं की तेज़-तेज़ छनक···

···किस विध मिलणो होय ?

ए री मैं तो प्रेम दीवानी मेरो दरद न जाने कोय !

ए री मैं तो ··

—तेरो दरद मन्ने मालम सो···ही ही ही···मन्ने मालम सो तेरो दरद !

कटाक्ष, तर्जना और एक मदिर संकेत।

इन्द्र उठकर वहां से चला गया। मेरी समझ में नहीं आया कि मुझे पारखी का फर्ज अदा करना चाहिए, या जाकर उसे दिलासा देना चाहिए।

मेरे विवेक ने फैसला दिया कि पहला फर्ज पहले पूरा करना चाहिए। इसलिए मैं बैठा रहा। उसका मुजरा समाप्त होने पर दूसरा फर्ज पूरा करने की ज़रूरत ही नहीं रही, क्योंकि उस काम के लिए वह आप उठकर चली गई।

मैं रसमग्न होकर दूसरी बाई का नृत्याभिनय देखने लगा।

प्रभात होने के कुछ ही देर पहले मजलिस बरखास्त हुई। तांगा इन्तज़ार कर रहा था। इन्द्र पर खासा डिप्रेशन आ रहा था, इसलिए मैंने उसे पिछली सीट पर लेट जाने दिया। तांगा टहनियों में उलझता हुआ फिर कीचड़-भरा रास्ता पार करने लगा।

हवा पहले से बहुत ठंडी हो गई थी, जिससे कीड़ों की आवाज़ें भी मंद पड़ गई थीं। मैंने सीट पर घुटने सिकोड़ लिए और बाहें बगलों में दबा लीं।

इन्द्र गंभीर योगमुद्रा में आकाश की तरफ देख रहा था।

—औरत जात प्यार की कद्र नहीं कर सकती ! — उसने कहा।

—क्यों ?

त्रिकाल सिद्ध विराम। मैंने मन ही मन कुढ़कर अपना 'क्यों' वापस ले लिया।

अब इन्द्र ने आंखों से पुन. 'क्यों' की याचना की। मैंने आंखों से 'क्यों' की स्वीकृति दे दी।

—रुपया बड़ी चीज है !—उसने ठंडी सांस लेकर कहा। ध्वनि ऐसी थी, जैसे एक गंभीर [illegible]

— [illegible]

— [illegible] ना चाहिए ! इतने से कम मे उसका गुज़ारा नहीं हो सकता !

गंभीर होने का मुकाम समझकर मैं भी गंभीर हो गया।

— हज़ार रुपया महीना तो बहुत ज़्यादा है !

इन्द्र ने पल-भर के लिए आंखें मूंद ली। फिर आंखें खोलकर बोला—दो-सौ-चार सौ-पांच सौ तक हो, तो इन्सान खर्च कर सकता है, मगर हज़ार रुपया···

—बहुत ज़्यादा है ! — मैंने फिर अनुमोदन किया।

—मानता हूं, खूबसूरत है।—वह बोला—मगर इतनी खूबसूरत नहीं है कि···

मैं उसकी प्रशंसा के सारे वाक्य दिमाग से निकाल दिए और सिर हिलाकर इन्द्र की बात का समर्थन किया।

इन्द्र ने आंखें मूंद ली। मैं हिचकोला खाकर सीधा हो गया।

अभी छह-सात मील का सफर बाकी था।

कटी हुई पतंगें[1]

लाल पतंग आकाश मे कट गई थी। हवा की लहरो मे डगमगाती और चक्कर खाती हुई वह नीचे की ओर आ रही थी। बहुत-से बच्चे इधर-उधर से भागकर सड़क के बीचो-बीच जमा हो गए थे और इस आशा में थे कि पतंग गिरे और उसे दबोचें। एक बच्चा, जिसके कपड़े औरो की अपेक्षा अधिक साफ थे, सड़क के किनारे ही आकर रुक गया था और वहीं से बाहें उठा-उठाकर चिल्ला रहा था—छीपो ! मेरा ई माल ! छीपो ! मेरा ई माल ! (पंजाब में कटी हुई पतंगो को देखकर बच्चे इस तरह चिल्लाने लगते हैं और उनका विश्वास रहता है कि इस तरह कहने से कटी हुई पतंग उनके ही हाथ आ जाएगी !)

पतंग अभी धरती से कई फुट ऊपर ही थी कि लूटने वालो के हाथों ने उसे एक साथ दबोचा और निमिष-भर मे ही उसकी धज्जियां करके उसके मसले हुए कलेवर को कीच मे फेंककर भाग गए।

---

1. यह कहानी अक्तूबर 1951 मे शिमला में राकेश ने लिखी थी। इसका पहला ड्राफ्ट उन्हीं की हस्तलिपि में उपलब्ध है। शीर्षक उसी से लिया गया है। इसकी संशोधित प्रति उन्होंने स्वयं प्रारूप के आधार पर तैयार की थी।

उनके चले जाने पर वह बच्चा, जो सड़क के किनारे खड़ा था, मसली हुई पतंग के पास आया। नीचे झुककर उसने पतंग को ध्यान से देखा, फिर उस पर अपने पैरों की छाप लगाकर नाचता-डगमगाता वापस लौट गया।

रवि मुसकराया। जब बच्चा आंखों से अदृश्य हो गया, तो उसने पुनः उड़ती हुई पतंगों की ओर देखा। नीली और जामुनी पतंगों का पेच लड रहा था। वे पतंगें जिस दिशा में बढ रही थी, उसी दिशा में कुछ और ऊपर जनवरी महीने के ऊदे बादल अपने-आपको कई-कई तरह के चित्रों में बदल रहे थे। वे हलके और प्रसन्न थे, क्योंकि वे बूंदें बरसा चुके थे। उनके पीछे कुछ और भी गहरे-गहरे बादल थे, जो अभी बरसे नही थे। उन पर से हटकर रवि की आंखें उस दिशा में घूम गईं, जिधर से उसकी बस आने वाली थी। समय हो चुका था, पर बस अभी भी आ नही रही थी।

उस दिन जनवरी सन्' 51 की 26 तारीख थी। भारत के गणराज्य घोषित होने के दूसरे वर्ष दिन के उपलक्ष्य में जो उत्सव मनाया जा रहा था, वह उसके बीच से ही उठकर चला आया था, क्योंकि उसे भूख लग आई थी। आते समय रास्ते में उस पर बूंदें उतर आई थी, जिससे उसका कोट, जो गहरा भूरा होने के कारण कभी मैला नही होता, पूरा भीग गया था। कोट की जेब के अन्दर रुपये वाला वह नोट भी भीग गया था, जिसकी खाल कई जगह से उधड रही थी। भीगकर नोट की अवस्था विचित्र हो गई थी, परन्तु उस अवस्था में भी उसमें भूख मिटाने की सामर्थ्य तो थी ही।

प्रोफेसर सत्यमूर्ति विद्यालंकार ने रवि के कंधे पर हाथ रखा। दोनों बांहों में पुस्तकें, एक हाथ में परचे और एक हाथ में छाता लिए प्रोफेसर सत्यमूर्ति विद्यालंकार सचमुच ही विद्या के अलंकार लग रहे थे।

—पैदल नही चलते?—प्रोफेसर विद्यालंकार ने अपने गोल और चिकने चेहरे को प्रश्नसूचक बनाकर पूछा।

रवि बस की प्रतीक्षा करते-करते दो पतंगों के पेच देख चुका था। वह तुरंत प्रोफेसर विद्यालंकार का साथ देने के लिए तैयार हो गया। मन ही मन उसने रास्ते को मंजिलों में बांट लिया—गांधी कैंप, पटेल चौक, अड्डा कपूरथला और रैनक बाजार। एक ही लंबा रास्ता तय करने की अपेक्षा वह पांच-छह छोटे-छोटे रास्ते तय किया करता था। इससे थकान कुछ कम महसूस होती थी। चलते-चलते वह अपने कदम गिनने लगा।

सहसा एक बूंद उसके सिर पर गिरी। फिर दो बूंदें उसके कॉलर पर गिरीं। फिर कितनी ही मोटी-मोटी बूंदें चारों ओर गिरने लगीं।

प्रोफेसर सत्यमूर्ति विद्यालंकार ने जल्दी से अपनी पुस्तकें और परचे उस पर लादकर छाता खोलने की चेष्टा की। छाता खोलने में उन्होंने सत्य और मूर्ति, दोनों का जोर लगा दिया पर छाता नही खुला। छाता वास्तव में जंग खाए हुए था और मनुष्य न होने के कारण विवश नही था कि जैसे भी हो सके, अपने स्वामी की इच्छा का पालन करे।

छाता दबाने, झटकने और ठोकरें मारने पर भी नही खुला, तो हारकर वे दोनो पक्की ईंटों के बने गांधी गेट की ओर भागे, जिसके न इस ओर कोई दीवार है, न उस ओर, और जो गांधी कैंप के तम्बुओं के आगे दिन-रात मन मारे खड़ा रहता है। जब कड़ी धूप पड़ती है, या तेज आंधी आती है, मूसलाधार वर्षा होती है, तब गांधी गेट उन सबके सामने सत्याग्रह करके कहता है कि हे आकाश की शक्तियों, स्वतंत्र भारत के इन स्वतंत्र शरणार्थियों पर आक्रमण करने के पहले तुम मुझ पर वार करो, क्योंकि मेरा नाम

गाधी गेट है और मैं महात्मा गाधी का स्मारक हूं।

गांधी गेट के नीचे आकर रवि ने सिर के बालों को निचोड़ा। गेट की छाया में उस समय और भी बहुत-से लोग थे। परन्तु उन्हें देखकर यह नहीं लगता था कि वे वर्षा के कारण भागकर वहा आए है। वे वहा थे, जैसे कंकड-पत्थर और कागज़ वहां थे। रवि कि दृष्टि पुरुषो वाली पक्ति के पीछे एक किवाड़ के ऊपर लगे हुए टीन के बोर्ड से टकराई, जिस पर लिखा था—आटे का डिपो।

आटे का डिपो - ईश्वर और शैतान, दोनो की भाईचारे की दुकान। रवि को अपनी भूख याद हो आई। वर्षा तेज़ होती जा रही थी। बहुत-से लोग तबुओं में से निकलकर गाधी गेट की शरण मे आते जा रहे थे। थोडी ही देर मे रवि के चारो ओर इतने व्यक्ति एकत्र हो गए कि वह दूसरो की सासें सूघने के लिए विवश हो गया। जब दबाव कुछ और भी बढा, तो उसने देखा कि न जाने कैसे प्रोफेसर विद्यालकार ने अपना छाता खोल लिया है और टूटे हुए जूते को घसीटते हुए सडक की सीध मे चले जा रहे हैं।

जब उसकी आखें प्रोफेसर विद्यालकार के ऊचे तग पायजामे, नीले कोट और काली टोपी से हटकर समूह की ओर आई, तो वहा उसने एक युवती की आखों को अपनी ओर देखते पाया।

युवती की त्वचा भूरे रग की थी। भूरा रग उसके कोट जितना भूरा तो नही, हा, इतना भूरा अवश्य था कि उससे चेहरे का मैल सहसा दिखाई न दे। वह उसकी ओर ऐसी दृष्टि से देख रही थी, जैसे आकाश मे उड़ती हुई किसी चील को देख रही हो।

पहले तो रवि को लगा कि उस युवती की आकृति किसी परिचित, पर भूली हुई आकृति मे मिलती-जुलती है, फिर सहसा ही वह उसे पहचान गया। वह राजकरनी थी—वही राजकरनी, जो आदत न होने पर भी उसे देखकर सकुचाने की चेष्टा करती थी। लाहौर कृष्णानगर के जिस कबूतरखाने मे वह किरायेदार था, उसी कबूतरखाने की बीच वाली कोठरी मे धाया लज्जावती रहती थी, जिसकी वह लड़की थी। वह उसे जानता था, पर उसका परिचित नही था। कबूतरखाने की सीढिया चढते-उतरते वे कई बार आमने-सामने पड जाया करते थे। वह एक ओर को हट जाती और वह निकल जाता, या वह एक ओर हट जाता और वह निकल जाती। दो साल तक वे इस तरह सीढ़ियो में एक-दूसरे को रास्ता देते रहे, परन्तु उसकी ओर वह एक विचित्र सकोच के साथ देखा करती थी। राजकरनी का वह सकोच उसे बहुत मीठा लगा करता था।

परन्तु आज वह जिस दृष्टि से देख रही थी, उसमें न वह सकोच था और न वह मिठास। उसका शरीर स्त्री-पुरुषो की भीड़ मे भिचा जा रहा था। उसे इसकी चिंता नही थी। शरीर को दूसरो के स्पर्श से बचाकर रखना है, ऐसा कोई भाव उसके चेहरे पर नही था। वह उसकी ओर केवल देखने ही के लिए देख रही थी, यद्यपि उसकी आखो में एक घायल इतिहास झांक रहा था। तेज नाखून, विकराल पंजे, मांस की बोटियां, लहू की लकीरें, उबली हुई हवा, उबली हुई ज़मीन, उबला हुआ आकाश, चीत्कार-चीत्कार और शेप दो टिमटिमाती हुई मौन आखें।

वह उसे उन्ही टिमटिमाती हुई आखो से देख रही थी। रवि के मन मे आया कि वह उसके पास जाकर उससे बातें करे। परन्तु…

गधे सहसा बिदक उठे और किसी राष्ट्रीय अतःप्रेरणा से सीधे गांधी गेट की ओर भागे। गेट के नीचे एकत्र भीड़, जो अपनी इकाइयों से उदासीन थी, इन नई इकाइयों के समावेश से बौखला उठी और उन्हें रास्ता देने के लिए दो भागों में बंट गई।

दो-तीन गधे अपने इस सम्मान को गंभीरतापूर्वक ग्रहण करके सधी हुई चाल से चलते हुए गेट के दूसरी ओर निकल गए। उनके पीछे तीन-चार गधे दोनों ओर की भीड़ को देखकर प्रसन्नतापूर्वक सिर हिलाते हुए ऐसे निकल कर गए, जैसे किसी अभिनदन-पत्र का उत्तर दे रहे हों। एक गधा, जो स्वयं बाहर ठहरकर दूसरों को पहले निकलने का अवसर दे रहा था, सबके अंत में पुलिस-इन्स्पेक्टर की तरह प्रविष्ट हुआ और एक बार अपने शरीर को चारों ओर घुमाकर, रुककर और जाते हुए गरदन ऐंठकर नथूने फुलाता हुआ यह व्यक्त कर गया कि उसे इस तरह के डिसिप्लिन से तनिक भी संतोष नहीं। उस गधे के निकल जाने पर बीच की दरार फिर से मिल गई। परन्तु उस दरार के मिलते न मिलते एक कर्कश स्वर उभरकर सुनाई देने लगा। यह स्वर किसी अभ्यस्त स्त्री-कंठ से निकलने का था—रंडी ! कुत्ती ! खसमां नूं खानी !

रवि ने देखा कि गालियां देने वाली की बुझी हुई आंखें राजकरनी को घूरकर देख रही हैं। वे आखें, जो लाल होने की असफल चेष्टा कर रही थीं, वास्तव में इतनी बुझी हुई थीं कि उनमें कोई भी भावना अपनी झलक नहीं दिखा सकती थी। गालियां देने वाली की आयु तीस-बत्तीस से अधिक नहीं थी, परंतु उसके सूखे और काले होंठों में जीवन नाममात्र को भी नहीं था। फिर भी वह इतने आवेश में आकर गालियां दे रही थी, मानो उन गालियों पर ही उसके जीवन की विजय या पराजय निर्भर करती हो।

—अंधी हो गई है रंडी ! बहुत मस्ती चढ़ी है, तो जाकर अपने यारों को दिखा !

परंतु राजकरनी चुपचाप थी, वह लड़की, जिसे कृष्णानगर के उस मोहल्ले की लड़कियां 'बिल्ली', 'बाघन', 'रीछनी', कहा करती थीं, आज मरे हुए शिकार की तरह न कुछ सुन रही थी, न समझ रही थी।

राजकरनी की चुप्पी से गालियां देने वाली और भी उत्तेजित होती जा रही थी—मां रंडी मर गई सौदे करती…!

सहसा राजकरनी भड़क उठी—मां को गाली मत दे री, नहीं तो यहीं पर भुरता कर डालूंगी !

उत्तेजना में उसका जो स्वर रवि ने सुना, वह वही था, जो वह लाहौर में सुना करता था। रवि ने महसूस किया कि उसके अंदर आज भी वही लहू है, जीवन है और जीने की शक्ति है—वह क्रोध में उबलकर फिर से वही हो गई है, जो पांच साल पहले थी।

—कर दे भुरता, तुझे जवानी की मार ! कुछ आजादी ने किया है, कुछ तू कर दे !—और गालियां देने वाली रोने लगी।

राजकरनी फिर मुरझा गई। क्षण-भर के लिए जो लाली उसके चेहरे पर आई थी, वह अदृश्य हो गई, और उसके स्थान पर वही निर्जीविता फैल गई, जो पांच साल से उसकी कोमलता को, उसके शरीर की चिकनाहट को, उसके कपड़ों की सफेदी को और उसकी रोटियों के स्वाद को खा रही थी। परन्तु उस क्षण-भर की लाली ने जिन-जिन आंखों को अपनी ओर खींचा, वे आखें उसके चेहरे पर जमी रह गईं। रवि ने देखा कि उन आंखों में वही लूटने वाला भाव है, जो पतंग लूटने वाले बच्चों की आंखों में था। उसने

चाहा कि वह उसे बांह से पकड़कर उन आंखों से परे ले जाए, परन्तु···फिर वही प्रश्न सामने आया कि किस संबंध से ? और संबंध से नहीं, तो किस उद्देश्य से ?

वर्षा थम जाने पर जब रवि सडक पर आया, तो उसने महसूस किया कि वह उसे एक कटी हुई पतंग को लूटने वालों की भीड़ में छोड़ आया है, परन्तु जब वह उस भीड से दूर पहुच गया, तो उसे महसूस हुआ कि उसकी अपनी स्थिति भी उस बालक जैसी है, जो सडक के किनारे खड़ा होकर पुकार रहा था—छीपो ! मेरा ई माल ! छीपो ! मेरा ई माल !

लड़ाई[1]

उसका बायां पैर लगडा रहा था और वह कितनी ही आस्थाएं और कितने ही विश्वास पीछे छोड़कर स्टेशन की ओर चल रहा था।

वह कहीं जाना चाहता था। कहीं, जहां वह अपने चारो ओर मंडराती हुई कड़वी अनुभूतियों से दूर पहुंच जाए, जहां उसके भटके हुए हृदय को शरण मिल जाए। वह अपने मानसिक सन्ताप से परे भागना चाहता था और उसके लिए ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसे किसी भी दिशा मे चलते जाना चाहिए—किसी ऐसी दिशा मे, जहां से और भी कहीं आगे जाया जा सकता हो। और वह बिना किसी निश्चय के स्टेशन की ओर चलता जा रहा था।

तांगे, बसें, मोटरें पास से निकल रही थीं। उसे लग रहा था कि ज़िन्दगी उसका मज़ाक उड़ा रही है। उसके बायें पैर के टखने की हड्डी, जो दो सप्ताह पहले टूट गई थी, अब चलते समय बुरी तरह से दर्द कर रही थी। फिर भी पैर घसीटता हुआ वह चला जा रहा था, क्योंकि चलने से बैठे रहना उस समय उसके लिए असह्य था। बैठ जाने का मतलब था हार जाना, मान लेना और परिस्थितियों के सामने आत्मसमर्पण कर देना। वह अभी इसके लिए तैयार नहीं था।

स्टेशन पर पहुंचकर उसने पल-भर के लिए विमर्श किया कि कहां का टिकट ले। वह किसी ऐसे घर मे जाना चाहता था, जहा का वातावरण उसके लिए नवीन हो। अपने अधिकतर मित्रों से वह कई-कई बार मिल चुका था और जानता था कि वे वर्तमान परिस्थिति मे उससे किस-किस तरह मिलेंगे और कौन-कौन-सी बातें कहेंगे। वह ऐसा कुछ नहीं चाहता था, जिसकी वह कल्पना कर सकता हो। शायद इसलिए कि उनमे से किसी भी कल्पना मे उसे शरण दिखाई नहीं देती थी। इसलिए वह कहीं ऐसी जगह जाना चाहता था, जहा जाकर उसे यह अनुभव न हो कि वही हुआ, जिसकी उसे आशा थी। उसका एक मित्र था, जिससे मिले उसे वर्षों हो गए थे। इन वर्षों में वह एक पति और फिर एक पिता भी बन चुका था। उस मित्र का विचार आते ही उसने उसी के वहां चलने का निश्चय कर लिया और थर्ड क्लास के टिकटघर की खिड़की के पास जाकर उसने कहा—एक लुधियाना।

---

1 यह कहानी श्री राकेश की हस्तलिपि में उनकी फाइलों से ही मिली है। यह शायद उन दिनों लिखी गई है, जब वह जालंधर में पहली बार प्राध्यापक होकर डी॰ ए॰ वी॰ कालेज में पहुंचे थे और 'टीचर्ज यूनियन' के गठन को लेकर सक्रिय हुए थे, और इसी कारण उन्हें वहां से इस्तीफा देना पड़ा था।

टिकट लेकर वह प्लेटफार्म पर आ गया। गाडी आने में अभी देर थी। वह एक बेंच पर बैठकर रेल की पटरियों और उनके साथ-साथ चलते हुए जंगलों और तारों को देखने लगा। एक एंजिन शंटिंग कर रहा था। उसकी विकराल चीख जैसे रात्रि के अन्तर में दूर तक चुभती चली जाती थी। फिर कुछ नाचते हुए शोले, कुछ फफकता हुआ धुआं, एक ड्राइवर और एक मज़दूर के शरीर, घूमते हुए पहिये और गति—केवल गति के अतिरिक्त उसके चलने का कोई उद्देश्य ही नहीं था।

सहसा उसकी आखों के सामने 'अन्ना करेनिना' का वह दृश्य आ गया, जिसमे अन्ना अपने जीवन की चरम निराशा में अपने-आपको भूलकर एंजिन के घूमते हुए पहियों के नीचे कुचली जाती है। एंजिन के लहू से लथपथ पहियों का स्मरण करके उसने एक ऐसी दृष्टि से शंटिंग करते हुए एंजिन की ओर देखा, जैसे वह वही एंजिन हो, जिसने अन्ना करेनिना को कुचल दिया था, जैसे आज वह उसे भी एक तरह का निमन्त्रण दे रहा हो।

वह उठकर प्लेटफार्म पर टहलने लगा। यह उसके जीवन में पांचवा अवसर था कि उसे बेकारी का सामना करना पड रहा था। पहले वह एक दैनिक पत्र का सहायक सम्पादक था। वह पत्र घाटे में चला गया और उसे वहां से अलग कर दिया गया। फिर दो बार दूसरे पत्रों में उसे स्थान मिला, परन्तु एक जगह से अपने 'उग्र विचारों' के कारण और दूसरी जगह से नि शुल्क लेख न ला पाने के कारण उसे निकाल दिया गया। फिर पत्रकारिता से उकताकर उसने एक स्कूल में नौकरी कर ली। परन्तु शीघ्र ही उसे पता चल गया कि स्कूल में पढाने के लिए यह आवश्यक है कि वह मनुष्य के रूप में अपनी हत्या करके शब्दों के अर्थ और उच्चारण बतलाने वाली मशीन मे बदल जाए। वह बत्तीस रुपये मासिक की नौकरी उसने अपने-आप छोड़ दी, और उस बार उसे गर्व हुआ कि वह अपनी ओर से भी कोई नौकरी छोड़ सकता है। स्वाभिमान की इस प्रेरणा में उसने दो वर्ष लगाकर एम० ए० कर लिया और अधिक दबाव के कारण इसी बीच में उसकी छोटी बहन, जो अकेली ही उसका परिवार थी, मर गई। फिर भी जिस दिन उसे एक अच्छे कालेज में लेक्चरार के रूप में नियुक्ति मिली, उस दिन उसने समझा कि आखिर वह अपने जीवन-संघर्ष की मंजिल पर पहुंच गया है, और आगे उसके रास्ते मे शिखर ही आ सकते हैं, खाइयां नहीं।

परंतु यह भ्रांति थी, जो शीघ्र ही दूर हो गई। पहले उसका जीवन और संघर्ष केवल अपने-आप तक ही सीमित था, परंतु कालेज में आकर उसने पाया कि वह एक समुदाय के सामूहिक संघर्ष में आ गया है, जहां व्याकुलता अधिक स्पष्ट है और असंतोष अधिक मुखरित। उसने देखा कि वहां यह असंभव है कि मौन रहकर अपने-आपको एक पृथक् व्यक्ति के रूप मे देखा जाए। वहां वह कइयों के एक समूह का अंश था, जहां उसे प्रभावित करना भी था और प्रभावित होना भी था। उसने उत्साह के साथ इस स्थिति को स्वीकार किया और शीघ्र ही टीचर्ज यूनियन के कार्यक्रमों मे प्रमुख रूप मे भाग लेने लगा। टीचर्ज यूनियन के अधिकांश कार्यकर्ता नौजवान थे और वे जिस तरह की बातें किया करते थे, उनसे यह आभास होता था कि शीघ्र ही शिक्षापद्धति और शिक्षकों की अवस्था में एक क्रांति हो जाएगी और वह इस क्रांति के अग्रदूतों में से एक होना चाहता था। दो व्यक्ति थे, जिनका लहू सबसे अधिक गरम था—बलदेव और जगदीश। वे दोनों प्रांतीय यूनियन में कालेज के प्रतिनिधि होकर जाना चाहते थे। वह उनके लिए वोट एकत्र करने के लिए सरगर्मी के साथ काम करने लगा। उसके अपने विभाग के अध्यक्ष भी प्रतिनिधि के रूप मे निर्वाचित होने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने उसे आदेश देकर

उस सरगर्मी से रोकना चाहा, परंतु उसने महत्त्व नहीं दिया। वह जानता था कि वह अधिकारी वर्ग के पिट्ठू हैं और अधिकारी वर्ग चाहता है कि किसी भी तरह टीचर्ज़ यूनियन पर उसका प्रभाव बना रहे। वह उन्हें शांति, त्याग और संतोष की बातें कहते सुन चुका था। जब उन्होंने उससे स्पष्ट पूछा कि वह उन्हें वोट देगा या नहीं, तो उसने स्पष्ट ही उत्तर दिया—नहीं।

निर्वाचन हो गया, बलदेव और जगदीश प्रांतीय यूनियन के लिए प्रतिनिधि चुन लिए गए। परंतु निर्वाचन के दो ही सप्ताह के अंदर उसे कालेज से नोटिस मिल गया।

उस दिन उन्हीं के कालेज में प्रांतीय यूनियन का अधिवेशन होने वाला था। वह बाहर से आने वाले प्रतिनिधियों को लाने के लिए स्टेशन की बस पर चढ़ने लगा, जब झटके से बस चल पड़ी और वह पीछे गिर गया। उसके बायें पैर के टखने की हड्डी टूट गई। जब वह कठिनता से टूटे हुए पैर को घसीटता, दो व्यक्तियों का सहारा लेकर कालेज में वापस आया, तो उसे प्रिंसिपल का चपरासी साहब के सलाम के साथ एक चिट्ठी दे गया, जिसमें लिखा था कि उसी दिन से उसकी नौकरी समाप्त की जा रही है और एक महीने का अतिरिक्त वेतन उसे साथ दिया जा रहा है।

पीड़ा के कारण उससे बोला नहीं जा रहा था, अतः चिट्ठी उसने बलदेव को बुलाकर उसके हाथ में दे दी। बलदेव पढ़ते ही उत्तेजित होकर अधिकारियों को गालियां देने लगा। उसने उसे विश्वास दिलाया कि विषय अवश्य टीचर्ज़ यूनियन के अधिवेशन में लाया जाएगा। पीड़ा असह्य हो रही थी, अतः वह तांगा लेकर घर चला आया। दो दिन तक उसकी चिकित्सा होती रही।

दो दिन बाद उसे पता चला कि वह विषय स्थानीय यूनियन के अधिकार-क्षेत्र का होने के कारण प्रांतीय यूनियन में नहीं रखा जा सका, और स्थानीय यूनियन की मीटिंग में यह निर्णय किया गया है कि जो चीज़ सामूहिक रूप में सभी इकाइयों को प्रभावित नहीं करती और केवल एक व्यक्ति की ही समस्या है, उसके संबंध में कोई सामूहिक कदम नहीं उठाया जा सकता। परंतु सहानुभूति के रूप में वहां एक प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें प्रिंसिपल तथा अधिकारियों की इस अनुचित कार्य के लिए निंदा की गई।

गुमशुदा[1]

दरम्याने कद का आदमी था वह, कुछ दुबला, मगर बहुत दुबला नहीं। बाल ठीक ढंग से कटे हुए थे, मगर कुछ इस तरह उलझे हुए थे कि लगता था, जैसे ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ गए हों। आंखें बहुत पैनी थीं, और बहुत ही अस्थिर। किसी एक जगह वे दस सेकेंड से ज़्यादा टिक ही नहीं पाती थीं। एकाध बार मैंने उसे पहले भी देखा था, कनाट प्लेस के किसी बरामदे में से गुज़रते हुए। यूं हज़ारों आदमी उन बरामदों में पास से निकल जाते हैं, मगर मन पर उनकी कोई छाप ही नहीं रहती। उन्हें देखना एक दरिया की लहरें देखने की तरह होता है। मगर इसकी बात अलग थी। तब भी, जब मैंने इसे देखा था, तो

1. यह कहानी भी राकेश की फाइलों में से प्राप्त हुई है। कहानी टाइप की हुई है और इसमें राकेश की ही हस्तलिपि में कुछ संशोधन किए हुए हैं। शीर्षक भी उन्हीं का दिया हुआ है।

मुझे लगा था, जैसे कोई चीज़ मुझसे कंधा छीलकर निकल गई हो, या गर्द का कोई ज़र्रा आकर आंख मे अटक गया हो और हज़ार कोशिश करने पर भी निकल न रहा हो।

और इस बार वह मेरे बिल्कुल पास ही बैठा था। बीच में एक शीशे की मेज़ थी और उसके एक तरफ वह था और दूसरी तरफ मैं। उसके हाथ में शाम का अखबार था, जिसे वह पढ़ नहीं रहा था। कॉफी हाऊस में उस समय काफी भीड़ थी, शोर था और कहकहे लग रहे थे। हम दोनों अपनी-अपनी कॉफी पी चुके थे और मैं वहां से उठने की बात सोच रहा था। वह आदमी मेरे लिए अजनबी था और किसी अजनबी के साथ ज्यादा देर एक मेज़ पर बैठे रहना बहुत अजीब लगता है। और मैं उठ भी गया होता, अगर अचानक ही उसने बात शुरू न कर दी होती।

—काफी गर्मी हो गई है,—उसने एक नज़र छत पर डालकर कहा—अब तो इन लोगों को यहां पंखे चला देने चाहिए।—और उसके स्वर से मुझे ऐसा लगा कि अगर पंखे चल रहे होते, तो भी वह छत पर नज़र डालकर कहता—अभी इतनी गर्मी कहां हुई है? और इन कमबख्तों ने अभी से पंखे चला दिए हैं।

बात का जाल ऐसा होता है कि एक बार ऊपर आ पडे, तो उसमे से अपने को निकाल लेना बहुत कठिन हो जाता है! मैंने उसकी बात के उत्तर मे कहा—जी हां, गर्मी तो इस साल काफ़ी जल्दी ही उतर आई है, और उसने झट से मुझे अपनी बातो के जाल में ले लिया। दो मिनट मौसम की बात करके वह राजनीति की बात करने लगा और फिर साहित्य के रास्ते से होता हुआ रंगमंच की बात पर आ गया। वह बहुत तेज़ी से बात कर रहा था, जैसे उसे डर हो कि कही उसका जाल ढीला न पड जाए और मैं उसमें से निकलकर चल न दूं।

मुझे भी कोई काम नही था, इसलिए मैं उससे बात करता बैठा रहा। मगर आध-पौन घंटे के बाद जब मैंने फिर चलने के इरादे से अपनी कमर सीधी की, तो वह बोला—आप शायद बहुत जल्दी में हैं।

—नही, जल्दी मे तो नही हूं,—मैंने कहा—मगर अब यहां बैठे काफी देर हो गई, इसलिए सोचता हूं कि अब यहां से चलना चाहिए।

—मैं भी अब यहां से उठने की सोच रहा हूं,—वह बोला—आपको फुरसत हो, तो चलिए, चलकर कोई पिक्चर देखी जाए। मुझे अकेले पिक्चर देखना कभी अच्छा नही लगता। वैसे तो पिक्चर-इक्चर सब ऐसी ही होती हैं, मगर दो-अढ़ाई घंटे तो बीत ही जाते हैं, फुरसत हो, तो चलिए। मुझे कहने का हक नही है, फिर भी मैं कह रहा हूं। चल सकते हो, तो ज़रूर चलिए।

—देखिए, इस समय..., मैं टालने की कोशिश करने लगा।

—आप टालिए नहीं,—वह झट से बोला—मुझे अकेले जाना अच्छा नही लगता और कोई बात नही। यही समझिएगा कि दो-तीन घंटे किसी के लिए ज़ाया कर दिए। हां तो, जहां तक हमारे रंगमंच की तकनीक का सवाल है...

और उसने इस तरह आगे बात शुरू कर दी, जैसे मेरे साथ चलने की बात तय हो ही गई हो। मुझे उस समय फुरसत ही फुरसत थी और मैं पिक्चर देखने न जाता, तो घर जाकर कोई किताब पढ़ता। मैं उसके साथ पिक्चर देखने चला गया। मगर हाल मे बैठे हुए मुझे लगता रहा कि वह सामने पर्दे पर जो कुछ हो रहा है, उसे नही देख रहा, अपने ही अन्दर के पर्दे की किन्ही तसवीरों में उलझा हुआ है। सारे समय वहा भी वह इतना अस्थिर लग रहा था कि लगता था किसी भी समय वहां से उठकर बाहर चल देगा। जब हम सिनेमाघर से बाहर निकले; तो वह हठ करने लगा कि मैं खाना भी उसके

साथ खाऊं और घंटे-भर में जब हम एक रेस्तरां से खाना खाकर बाहर आए, तो वह अनुरोध करने लगा कि थोड़ी देर लॉन में बैठकर कुछ बातचीत की जाए। मुझे सचमुच उसके साथ रहना भारी था, मगर उसके साथ सिनेमा देखने और खाना खाने के बाद मैं एकदम से दामन छुड़ाकर जा भी नहीं सकता था।

—मैंने आज आपका बहुत समय बर्बाद किया है,—कनाट प्लेस के बीच के लॉन में बैठकर उसने बांहें पीछे को फैलाए हुए कहा। उन कुछ घंटों में मुझे इस तरह लगने लगा था जैसे व : गर्द का जर्रा इस बुरी तरह मेरी आंख में गड़ रहा हो कि मेरी आंख फूलने को आ गई हो। एक तो उसका हुलिया ही ऐसा था, फिर उसने कपड़े बहुत ढीले-ढाले पहन रखे थे और सबसे चुभने वाली बात यह थी कि वह बात करते हुए चारों तरफ इस तरह देखता रहता था, जैसे उसकी कोई चीज़ वहां पर खो गई हो और उसे हर आदमी पर चोर होने का संदेह हो— सचमुच मैंने आपका बहुत ही समय बर्बाद किया है, वह कहता रहा—मगर मैं सोचता हूं कि हम ज़िंदगी में कुछ भी करें, उसमें समय बर्बाद ही तो होता है। समय का उपयोग क्या है ? और इन्सान की ज़िंदगी का ही उपयोग क्या है ?

अच्छा खाना खा चुकने के बाद बहुत-से लोगों पर निराशावाद का भूत सवार हो जाता है, मगर मुझे यह भरे हुए पेट का निराशावाद न लगकर उससे कहीं गहरी चीज़ लग रही थी। वह अचानक सीधा होकर बैठ गया और कहने लगा—मैं अपनी ज़िंदगी को ही देखता हूं। मेरी कुछ समझ में नहीं आता कि मैं क्यों जी रहा हूं। मेरे पास अच्छी नौकरी है, अच्छा सजा हुआ घर है, सुन्दर पत्नी है जो मुझसे काफी प्रेम करती है, काम करने के लिए नौकर हैं, सब कुछ है, मगर फिर भी मुझे ज़िंदगी फीकी-फीकी और अर्थहीन-सी लगती है। मेरी कुछ समझ में ही नहीं आता कि मैं क्यों जी रहा हूं ? मैंने अपनी ज़िंदगी में कई तरह के काम करके देखे हैं। एक ज़माना था, जब मुझे कला का शौक था और मैं अपने को रंगमंच और चित्रकला में खो देना चाहता था। मगर थोड़े दिनों ही बाद मुझे वह सब निरर्थक लगने लगा और मैंने एक बीमा कम्पनी में नौकरी कर ली। उसके बाद मैं विदेश चला गया और कुछ दिन वहां एक पत्र का संवाददाता रहा। यहां लौटकर और कुछ करने को नहीं मिला, तो एक होटल में मैनेजर लग गया। आजकल मैं एक इम्पोर्ट और एक्सपोर्ट के दफ्तर में नौकर हूं और मुझे बारह सौ के लगभग तनखाह मिलती है। मगर फिर भी मुझे हर चीज बेकार लगती है और पांच बजे जब मैं दफ्तर से निकलता हूं, तो मुझे कुछ समझ ही नहीं आता कि मुझे क्या करना चाहिए। क्लब मुझे बकवास लगते हैं, घर में बंद होकर मुझसे नहीं बैठा जाता, कहीं जाना-आना मुझे अच्छा नहीं लगता। समय बिताना मुझे इतनी बड़ी समस्या लगती है कि मैं आपको बता नहीं सकता।

एक तो मुझे उससे सहानुभूति हो रही थी और दूसरे उसने मेरे ऊपर इतना खर्च किया था, इसलिए मैं भी बदले में उसके लिए कुछ करना चाहता था। मैं उससे इस विषय में बात करने लगा कि इनसान का ज़िंदगी को देखने का नज़रिया ठीक हो, तो ज़िंदगी कभी उसे निरर्थक नहीं लग सकती क्योंकि व्यक्ति या समय की परिस्थितियां कितनी भी खराब क्यों न हों, जीवन अपने में निरर्थक नहीं है। और अपनी बात उसके दिमाग में बैठाने के लिए मैं अपना आज तक का पढ़ा-सुना-सोचा हुआ सब कुछ काम में ले आया।

वह बांहें पीछे फैलाए और आंखें बंद किए हुए चुपचाप मेरी बातें सुनता रहा। बीच-बीच में वह कभी कह देता—मगर क्यों ? मगर कैसे ?—और फिर चुप होकर

सुनता रहता। यह सोचकर कि मैं एक व्यक्ति के जीवन से निराशावाद को निकालने में सहायक हो रहा हूं, मैं बहुत उत्साह से अपनी बात स्पष्ट करने का प्रयत्न करता रहा, यहां तक कि बोलते-बोलते मेरा गला थक गया। शायद मैं डेढ घंटे से ज्यादा बोल गया था।

जब मैंने अपनी बात समाप्त की, तो उसने आखें खोली, और थोड़ा मुसकराया।

—मैं आपसे एक बात कहूं ?—वह बोला—इस तरह की जितनी भी बातें लोग कहते हैं, या कह सकते हैं, मैं उन्हें भी बिल्कुल निरर्थक समझता हूं। ये बातें भी समय काटने का एक बहाना ही है···आइए, अब चला जाए।

और वह उठा, तो मैं भी खिसियाना-सा उसके साथ ही उठ खड़ा हुआ। लॉन से बाहर फुटपाथ पर आकर उसने अपना हाथ मेरी तरफ बढा दिया—मैं आपका बहुत ही शुक्रगुजार हूं,—उसने कहा—आज मेरी बीवी भी घर मे नही है और मेरे लिए समय काटना सचमुच बहुत ही कठिन हो रहा था। आपकी वजह से इतना अच्छा समय बीत गया। अब मैं समझता हूं कि घर जाकर मुझे ठीक से नीद आ जाएगी। अच्छा···

और उसके चले जाने के बाद काफी देर मैं सड़क पार करके सामने के फुटपाथ तक भी नहीं जा सका। रात के बारह बज रहे थे, इक्का-दुक्का गाड़ियां सड़क से गुज़र रही थी और मैं अनायास ही हाथ से अपने थके हुए गले को सहला रहा था···

अर्द्ध विराम[1]

जब हम तीनों साथ-साथ होते हैं, तो ठीक से कोई बात नही होती। होती है, ऐसे ही छिटपुट। मदन कहता है—इस साल कितनी बारिश हुई है! मैं बारिश की ओट में होने वाली चोरियों की बात करता हूं, तारा बातचीत से बाहर न रहने के लिए सड़कों मे पडे गड्ढो का जिक्र कर देती है। फिर हम तीनों आगे बात कर सकने के लिए किसी नये विषय की खोज में लग जाते हैं। थोडी देर तारा उठकर किचन मे चली जाती है। मदन अपने बुझे पाइप को फिर से सुलगाने के लिए तीलिया बरबाद करने लगता है। मैं अपनी जेबें टटोलता हूं, जैसे कोई जरूरी कागज खोजना हो। बीच-बीच मे मदन की आंखें मुझसे मिल जाती हैं। हर समय एक धुआं-सा घुला रहता है, उसकी आखों मे। फिर भी, वह उन्हें सहज रखने की कोशिश करता है—मैं सोचता हूं, संदीप को अब होस्टल से घर ले आए। यह अकेली परेशान होती रहती है यहां। कोशिश करनी है कि दो-एक महीने में मेरी बदली यहीं हो जाए।

—अच्छा ही है, वह घर पर रहे तो।—मैं कोशिश करता हूं, मेरा स्वर एक अजनबी का लगे···ज्यादा से ज्यादा परिवार के एक मित्र का। जेब से निकाले कागज मैं वापस जेब मे भर लेता हू, जैसे उनसे अन्दाजा लगाया हो कि अभी कितनी देर और वहां बैठ सकता हूं। खिड़की से आती ठण्डी हवा मुझे अपने कालरो मे नीचे उतरती महसूस होती है। सडक से गुज़रती किसी गाडी की आवाज़ किवाडों को झनझना जाती है।

---

1. राकेश की फाइलो में ही प्राप्त हुई यह कहानी लगता है, उनके उपन्यास 'अन्धेरे बद कमरे' से पहले लिखी गई थी—सभवतः सन् 61 में। 'अन्धेरे बद कमरे' से पहले की मनःस्थिति इस कहानी मे स्पष्टतः लक्षित है। इस कहानी को भी थोड़ा-सा संशोधित किया गया है।

मुझे हर बार लगता है कि अगली बार झनझनाहट होने हर एकाध काच जरूर टूट जाएगा। मन होता है, उठकर चटखनी लगा दू। मगर यह अपनी हद से आगे जाने की बात लगती है। मदन के बाहर रहने पर उस घर में जो सहूलियत महसूस होती है, वह उसके वहां रहने पर नही होती। वही खिड़कियां-परदे, जो उसकी गैर हाजिरी मे अपने जान पडते हैं, उसकी मौजूदगी मे बेगाने महसूस होते हैं।

तारा के किचन से लौट आने पर फिर थोडी सुविधा हो जाती है। वह जैसे हम दोनों से उदासीन बीच की एक कुर्सी पर बैठकर सिर पीछे को डाल लेती है—वह सितम्बर है।—यह मन ही मन किसी चीज का हिसाब लगाती कहती है—इसके बाद अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर···तीन महीने।

—दिसम्बर मे क्या होगा ?—मदन अपने बुझे पाइप से किसी तरह कश खीच लेने की कोशिश करता है।

—होगा कुछ नही। ऐसे ही सोच रही थी। सुमित्रा ने लिखा था, दिसम्बर मे वे लोग बाहर चले जाएगे।

—इसमे नई बात क्या है ? बाहर तो वे लोग हर साल जाते है।

—हा···जाते तो हर साल ही है। इस साल दिसम्बर में जाएगे।

—तो तुम क्या दिसम्बर से पहले कुछ दिनों के लिए जाना चाहती हो उनके पास ?

—नही। पिछले साल गई थी। इस साल नही जाऊंगी।

उनके इस तरह बात करने से मुझे उतावली-सी महसूस होने लगती है···वहा से उठकर चल देने की। उनकी जिन्दगी में बहुत कुछ ऐसा है, जिसमे मैं नहीं आता। बहुत-से लोग हैं, जिन्हे वे पहले से जानते हैं···उनकी जिन्दगी के उस दौर के साझीदार, जिसमे मैं नही था। तारा मेरी उतावली भापकर मुस्करा देती है। उसके पीले चेहरे पर हल्का-सा रग उभर आता है—तुम्हे फिर कोई काम याद आ रहा है अपना ?—इस तरह पकड़ लिए जाने से मैं थोडा झेंप जाता हूं। क्षण-भर के लिए मेरी आंखें उससे मिली रहती हैं। तब मदन अपने को हम दोनो से बाहर महसूस करता है, उसके माथे पर एक शिकन पडने लगती है, जिसे वह अपनी व्यस्तता से ढाप लेता है—मैं माचिस लेकर आता हू, उधर से,—कहकर वह कमरे से चला जाता है। थोडी देर में वापस आता है, तो तारा सिर पर बांह रखे कुछ सोच रही होती है। मैं मुंह में अधजला सिगरेट लिए इस तरह उसे आते देखता हू, जैसे इस बीच उसके माचिस लेकर आने का इन्तजार ही करता रहा होऊं। मदन आकर पहले मेरा सिगरेट सुलगवाता है, फिर अपने पाइप के लिए तीलियां घिसने लगता है।

—तुमसे पाइप सुलगता तो है नही ठीक से !—तारा हल्की खीज के साथ कहती है—फिर भी, पता नही क्यों तुम हर वक्त तीलियां घिसते रहते हो ! क्यो इसे छोड़कर फिर से सिगरेट पीने लगते ?

मदन के कन्धे ऐसे हिलते हैं, जैसे वह इस बात का कोई तीखा जवाब देने जा रहा हो। मगर उसका जवाब उसकी आखो मे ही बुझ जाता है। वह तीली को दोनो हाथों की ओट दे एक लम्बे कश के साथ पाइप सुलगा लेता है। फिर आखों मे पाइप के जल जाने का सन्तोष लिए कहता है—सिगरेट क्या है, फुसफुसी चीज ! कश खीचने का मजा है पाइप में ! इसे आदमी हड्डी की तरह दांतो में भी लिए रह सकता है। सिगरेट मुह मे लिए हुए तो ऐसे लगता है जैसे···

—जैसे ?—तारा आंखों के अलावा स्वर से भी उपहास उड़ाती है। मदन हम

दोनों की तरफ देखता हुआ अब अपने को पहले मे भी अकेला महसूस करता है—मुझे पाइप पीना पसंद है।—वह अपनी दातों तक आई झुंझलाहट को पाइप पर निकालता हुआ कहता है—मेरे लिए इतना ही काफी है।

तारा उसकी झुंझलाहट के उत्तर मे बहुत दूर हो जाती है। मुझसे पूछती है—अच्छा, तुम बताओ, इसके चेहरे के साथ पाइप मेल खाता है ?

मैं पल-भर का वकफा लेता हूं। ऐसे मदन की तरफ देखता हू, जैसे सचमुच मुझे फैसला करना हो। अपने दिमाग को ऐसे शब्दो के लिए कुरेदता हू, जिनसे दोनों का मन रखा जा सके—सवाल पाइप का नही, खास तरह के पाइप का है। मै कहता हू ''अगर पाइप दूसरी तरह का हो'''रोमन लिखाई की 'बी' जैसा'''तो शायद'''

—मुझे उस तरह के पाइप से नफरत है!—अब मदन अपने को रोक नहीं पाता। मेरा चेहरा अन्दर की सकपकाहट से सुर्ख हो जाता है, तारा के उमडते गुस्से से—तुम्हें हर ऐसी चीज़ से नफरत है, जिसे कोई दूसरा अच्छी समझता हो'—वह कहती है—तुम्हारे लिए अपनेपन का बस इतना ही तो मतलब है!

मदन पाइप मुह से निकालकर हाथ मे ले लेता है। पल-भर निश्चय नही कर पाता कि उसे इसके जवाब मे कोई सख्त बात कहनी चाहिए, या चुप रहकर बात को टाल जाना चाहिए। फिर वह दबे स्वर मे 'अच्छा, छोड़ो' कहकर पाइप मुह मे डाल लेता है। तारा भी अपने गुस्सें के लिए अपराधी महसूस करती हुई पल-भर आखें मूदे रहती है। फिर अपने को झटककर जबरदस्ती की मुस्कराहट के साथ कहती है—हा, छोड़ो'''अब कोई और बात करनी चाहिए।

मुझे लगता है कि कोई और बात शुरू करने की जिम्मेदारी अब मेरे ऊपर है। मैं दिमाग में बातचीत के विषयो की फाइल पलटता हू। ऐसा कोई विषय नही मिलता, जिस पर हम तीनों आदमी, बिना किसी उलझन के आगे बढ़ें, बात कर सके। आखिर वही एक विषय, जो बातचीत के और हर विषय को पीछे डाल देता है, मेरी जबान पर आ जाता है—क्या ख्याल है'''क्यों न डिनर के लिए कही बाहर चला जाए ?

तारा मदन की तरफ देखती है। मदन हाथ और होठ हिलाकर अपनी तटस्थता जाहिर करता है। उसे अच्छा खाने का शौक है, यह तारा और मैं, दोनों जानते हैं। तारा उठकर अन्दर कपड़े बदलने चली जाती है। मदन अपने बुझे पाइप को फिर से जलाने की कोशिश करने लगता है। मैं अपनी घडी उतारकर उसे चाबी देने लगता हू।

जब मदन और मैं अकेले होते हैं, तो कम से कम बात न कर सकने की उलझन नही होती है। वह और कुछ नही, तो अपने काम-काज के बारे मे ही मुझे बताने लगता है। अपने पोर्टफोलियो से कुछ कागज निकालकर सामने रख लेता है और उन पर लिखे आंकड़ों की बारीकिया समझाने लगता है। मुझे वे बारीकिया समझ नही आती, पर मैं 'हूं-हा' करता हुआ उसे पन्ने पलटते देखता रहता हूं। कुछ देर मे जब वह खुद ही अपने आंकडों से थक जाता है, तो पोर्टफोलियो बन्द कर लेता है—मैं चाहता हू कि मेरी बदली किसी तरह हेड आफिस में हो जाए।—वह कहता है—दो साल से इन्होंने मुझे बाहर पटक रखा है! अगर मैं वहा रहू, तो इससे कहीं ज्यादा काम कर सकता हू।

मुझे लगता है, वह मुझे किसी चीज का विश्वास दिलाना चाहता है, अपना काम वह मेहनत से करता है, यह बताकर मुझसे महानुभूति पाना चाहता है। पर मुझे उससे सहानुभूति नही होती। सिर्फ यह अपना फर्ज लगता है कि उसकी बातो में थोड़ी दिलचस्पी दिखाता हू। मन में मैं उस वक्त उसे और अपने को कोसता रहता हूं। क्यों वह अपना दफ्तर मेरे सामने खोलकर बैठ जाता है ? क्यों मैं उसके दफ्तर मे से उसके साथ

गुजरने के लिए अपने को मजबूर पाता हूं ? क्यों वह मुझसे अतिरिक्त कोमलता के साथ बात करता है ? क्यो मैं उस कोमलता का उत्तर उसी भाषा मे देने की यन्त्रणा सहता हूं ? क्यो नही हम साफ़-साफ एक-दूसरे के दुश्मन हो जाते और चुनौतियों की भाषा मे बात करते? जब उसकी उंगलियां अपने कागज़ों पर घूम रही होती हैं, तो मैं उनके पोरों पर उगे रोयों को देखता रहता हूं। उनमें से कुछ ही रोएं अब तक सफेद हुए हैं, वे सब के सब कब तक सफेद हो जाएंगे ? उसकी और मेरी उम्र में आठ साल का फर्क है''' इसका मतलब है, आठ साल का हैंडीकैप तो उसे है ही। परक्या वह भी मेरी तरह अपनी उम्र के साल गिनता और इस हैंडीकैप की बात सोचता है ?

मैं देखता हू कि उसकी आंखें अपने कागजों मे व्यस्त रहकर भी मेरी आंखो में कुछ पढने-तलाशने की कोशिश करती रहती है। उसके साथ अकेले बैठने मे मुझे सबसे ज्यादा असुविधा होती है, तो इसीसे। सारा वक्त लगता रहता है कि वह मुझसे कुछ चीज चाहता है, जिसके लिए मुझे अन्दर-बाहर से टटोलता रहता है। हेड आफिस में अपनी बदली करा लेने की बात वह इतनी बार करता है कि उसका भी सम्बन्ध मुझे अपने से ही जान पड़ता है। अपनी अनुपस्थिति मे मेरा अपने यहा आना उसे गवारा नही, इसी-लिए वह चाहता है कि हर समय यहा मौजूद रह सके। यह बात कहते हुए कभी-कभी वह बहुत उत्तेजित भी हो उठता है—आज सुबह सेक्रेटरी ने मुझे बुलाया था। मैंने साफ कह दिया उससे कि आपको मेरी रिपोर्ट तैयार करा के अगर तहखाने मे ही डालनी है, तो क्यों खामखाह मुझे घर से इतनी दूर डाल रखा है ? मेरी सारी मेहनत का अन्त मे यही नतीजा निकालना है, तो क्यो न मैं त्यागपत्र देकर अभी से इस झंझट से छुटकारा पा लू ?

उसकी त्यागपत्र देने की बात भी मुझे घर में मौजूद रहने की इच्छा का ही एक विकृत रूप लगती है। वह जो काम करता है, उसकी सार्थकता के सम्बन्ध मे अपने अधि-कारियों को विश्वास न दिला पाने का तनाव भी हर समय उसके अन्दर बना रहता है —या तो मेरी बात इनकी समझ में नही आती, या ये जानबूझकर समझना नही चाहते, इनका खयाल है कि मैं करना-धरता कुछ नही, ऐसे ही आठ-दस कागज हर बार काले करके ले आता हूं।

हर बार उसके मुंह से वही-वही बातें सुनते हुए, कभी-कभी मुझे भी ऐसा ही लगता है, पर यह बात मेरे भाव से ज़ाहिर न हो, इसीलिए मैं कहता हूं —तो तुम क्यो नहीं कोशिश करते अपनी बदली यहां कराने की ? मैं जानता हूं कि यह बात खामखाह की है, उसकी बदली अभी कम से कम 'दो साल और यहा नही हो सकती। ज्यादा से ज्यादा उसे नागपुर से आसनसोल भेजा जा सकता है। पर वह मेरी बात को गम्भीरतापूर्वक लेकर थोडी देर के लिए उत्साहित हो उठता है। कहता है—कोशिश तो मैं कर ही रहा हूं, मगर जो काम मैंने वहां शुरू कर रखा है, उसे मेरे सिवा कोई पूरा नही कर सकता। इन्हें इसके लिए दूसरा आदमी मिल जाए, तो ये कल ले आएं मुझे यहा। लेकिन दूसरा आदमी कोई है ही नही—और वह अपने पाइप को सुलगाने के लिए फिर तीलिया जला-जलाकर फेंकना शुरू कर देता है, बीच-बीच मे मुझे देखता जाता है ''कि मैं उसकी बात को किस तरह ले रहा हूं ! उसकी वे टटोलती हुई निगाहें कभी मुझे देखती हैं, कभी उधर कमरे की तरफ और कभी धीरे से सुलगकर फिर बुझ जाने वाले पाइप की तरफ।

मुझे लगता है कि तारा तैयार होकर आ जाए, तो डिनर के लिए जल्दी निकल जाना बेहतर होगा। शायद तब कोई और बात शुरू की जा सके।

लेकिन इस तरह···[1]

रवि को इस एहसास से चोट-सी लग रही थी कि हर चीज ज्यों की त्यों है। ईंटें, सीखचे और किवाड़ सब अपनी जगह पर है, दीवार पर चीटियो की पक्तिया उसी तरह रेंग रही हैं, सिल-बट्टा वैसी ही आवाज कर रहा है और चौक मे दौलत इक्के वाला अपनी मरियल घोड़ी की लगाम पकड़े रोज की तरह ही फटी हुई आवाज मे सवारियो को बुला रहा है —चाली नियामी हाडिया आले कोई इकला सवार, आ जाओ भई, चाली नियामी हाड़िया आले—हालांकि राजकरनी मर गई है।

मां ममाला पीस रही थी। कुंतल दीदी चारपाई पर खामोश बैठी थी और स्कूल की माई जीतो पास फर्श पर बैठी हाथ मल रही थी—बहनजी, आपको क्या-क्या बताऊ यह तो वहां रोज-रोज की बात थी। रात को इनके घर जाओ तो भी वह वहीं पर होता, दिन मे जाओ तो भी। आज मास्टरजी के लिए हलुआ बना रहा है तो आज उनके लिए मालपुए बन रहे हैं। मैं तो अचरज से देखती रह जाती थी। कोई किसी सगे-सबंधी की क्या खातिरदारी करेगा जो इनके घर मे मास्टरजी की होती थी! मगर हम छोटे लोग हैं, छोटों का मुंह अपना नही होता है। मैं दातो से जबान काट लेती थी मगर मैंने आज तक किसी से बात नहीं की। मैं कहती थी कि किसी तरह उसके कान तक बात पहुच गई कि माई बाहर जाकर बाते करती है तो मेरी तो रोजी पर लात पड़ सकती है। मेरी अपनी ब्याहने लायक जवान लड़की है, मैं उसे लेकर कहा जाऊगी?

सिल और बट्टे के बीच में कच्चे प्याज किच-किच कर रहे थे। मा के माथे से बहती हुई पसीने की धारें उसके गले तक उतर आई थी। उसके चेहरे पर ऐसे गहरी लकीरें खिच गई थी जैसे वह कई दिनों से अस्वस्थ हो। बीच-बीच में उसकी पीली आंखें रवि की ओर उठ जाती थीं जैसे उसका महत्त्व और दिनो की अपेक्षा आज बढ़ गया हो, जैसे वह छोटे से एकदम बड़ा हो गया हो और वह उसके कधे पर हाथ रखकर कहना चाहती हो कि हमारे घर में तू मर्द है, तेरे रहते हमें कोई खतरा नहीं। रवि इस तरह निःसंग भाव से खिड़की के पास बैठा था जैसे उसके लिए इसमे विशेष अतर न हो कि राजकरनी की मृत्यु हुई है या सामने के पनवाड़ी की जो वर्षों से दमा से पीड़ित था। मां उसकी ओर देखती तो वह या तो बाहर की ओर देखने लगता या पुस्तक के पन्ने पलटने लगता।

—और उससे पूछो,—जीतो कह रही थी।—तू ब्याहा हुआ आदमी है, तू सारा-सारा दिन उसके घर क्यों बैठा रहता था? सारा मुहल्ला मुह में उगली डालता था कि इसकी मां अंधी है जो उसे दिखाई नहीं देता कि घर मे क्या हो रहा है?

—इसीलिए मैं उसका घर मे आना पसंद नही करती थी,—कहते हुए कुंतल ने रवि की ओर देखा। रवि ने पुस्तक का पन्ना ऐसे पलट दिया जैसे पहले का पन्ना पूरा पढ लिया हो। उसकी कनपटियों की नसें पकड़ने लगी।

—स्कूल मे भी दिन-भर भाईजी की ही चर्चा करती रहती थी,—कुतल कहती रही।—सत्याजी के सामने तो खास तौर मे और नवी-दसवी की लड़कियों मे इस तरह

1 यह कहानी भी राकेश की पाण्डुलिपियों मे प्राप्त हुई है। कहानी टाइप की हुई है। इस कहानी को थोड़ा सम्पादित किया गया है, क्योंकि लगता है राकेश स्वय भी इसका परिमार्जन करने के लिए इसे अप्रकाशित रखे हुए थे।

घुल-मिल जाती थी जैसे अध्यापिका न होकर उन्ही में से एक हो। मैं तो डर रही थी कि इस तरह स्कूल का डिसिप्लिन बिगड जाएगा और बाद मे दोष मुझ पर आएगा कि हेड मिस्ट्रेस ठीक से कट्रोल नही करती। हम लोग सादगी की दुहाई देते मर जाते हैं, और यह रोज़ जूडे मे फूल लगा आती थी...!

—ना कुतल, मरे हुए की निंदा नही करते,—मां ने हाथ रोककर उसे टोका और बाह से माथे का पसीना पोछकर आकाश की ओर हाथ जोड दिए कि हे प्रभु, लड़की से कोई ऐसी-वैसी बात कही गई हो तो क्षमा करना, त्रुटियां किसमे नही होती, हम सब त्रटियो के भडार हैं, तू हमारे अपराधों को क्षमा कर और मृत आत्मा को शाति दे। और पसीने के कारण शरीर से चिपकी हुई धोती से ही शरीर का पसीना पोछकर वह फिर सिल-बट्टे के साथ व्यस्त हो गई।

कुतल के गोल चेहरे पर धार्मिक गभीरता छा गई और वह क्षति-पूर्ति के रूप मे राजकरनी के गुणो की चर्चा करने लगी—वैसे काम में अच्छी थी, मेहनत से पढ़ाती थी, सफाई की देखभाल भी ठीक से कर लेती थी मगर किसी की आदत होती है न...

रवि जैसे सुनता हुआ भी नही सुन रहा था और जैसे न सुनता हुआ ही उठ खड़ा हुआ और पिछले कमरे मे चला गया। उस कमरे मे दिन-भर अधेरा रहता था। वहा एक ओर मा के ठाकुरजी का सिंहासन था और दूसरी ओर बिंदु की गुड़िया का घर।

उसे पिछले साल के वे दिन याद हो आए जब वह इसी तरह गर्मी की छुट्टी में घर आया था और इसी तरह कमरे मे बैठकर बिंदु और उसकी गुड़िया के साथ खेला करता था। कुन्तल स्कूल चली जाती थी और दिन भर घर मे कुछ भी करने को नही होता था। वह गुडिया से नही खेलता तो चारपाई पर लेटा छत के शहतीरो और उनके बीच से दिखाई देती लाल ईंटों को देखता रहता या बिंदु का घोडा बनकर उसे सवारी कराता। मा बीच-बीच मे पूछ लेती कि क्या बजा है, अभी खाने का समय हुआ या नही। वही सिल-बट्टे की घरड़-घरड और दौलत इक्के वाले की आवाज़...चाली नियामी हाडिया वाले आले, कोई इकल्ला सवार, आ जाओ भई, चाली नियामी हाडियां आले... सफेद दीवारें, नीली खिडकियां और नीचे धूल भरी वीरान सड़क जिसका नाम तो था रावी रोड मगर जो जाती थी एक पतली-सी नहर तक जिसमें एक बार नहा लिया जाए तो दो बार घर आकर नहाना पड़ता था। उसमे दिन काटे नही कटते थे।

और उन्ही दिनो बड़े आकस्मिक ढंग से उसका राजकरनी से निहायत छोटा-सा परिचय हुआ था।

कुन्तल ही प्रेरणा से स्कूल की कमेटी के सदस्यो ने वहा एक साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया था। दिल्ली से गंगादेवी उसके अन्तर्गत महिला सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए आ रही थी। दिनो से कुतल का उनके साथ पत्र-व्यवहार था और वह बहुत प्रसन्न थी कि उसके अनुरोध पर गगादेवी ने उस साधारण कस्बे में आना स्वीकार कर लिया है। उनका बडा लडका, जो एक कपड़े की मिल मे चीफ इंजीनियर था, साथ आ रहा था। उन दोनों के ठहरने का प्रबंध अलग बंगले में किया गया था जो अभी पूरा नही बना था परन्तु उस अवसर के लिए ठीक कर लिया गया था। स्कूल की कमेटी के मंत्री भाई रूडमल सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे। उन्होने कुन्तल से कहकर रवि को यह भार सौंपा था कि वह सम्मेलन के दिनो मे उन दो अतिथियों के पास रहे। उनके भोजन इत्यादि का प्रबंध भाईजी के घर से होना था।

उन लोगों को चार बजे की मेल से आना था। स्टेशन पर रवि को पता चला

कि वहां से भाईजी की कार उन्हें बंगले पर ले जाएगी। उसके बंगले पर पहुंचने से पहले ही वे लोग वहा पहुंच गए।

दरवाजे से अंदर पाव रखते ही उसका राजकरनी के तमतमाए हुए चेहरे से सामना हुआ। वह ठिठक गया। राजकरनी तेजी से बढकर उसके निकट आ गई।

—आप लोगो ने यह जगह उनके लिए ठीक की है ?

—क्यो ?—रवि ने पूछा।

—उन्हे मुंह-हाथ धोने का पानी चाहिए और यहा नल ही नही है। उन्हे चाय चाहिए और यहा न आग है, न दूध-पत्ती है और न कोई आदमी है।

रवि वही से लौट पड़ा।

—ठहरिए, मैं भाईजी के घर से पता करता हूं,—उसने कहा।

—आप अभी पता करेंगे ! किसी को पहले यह ख्याल नही आया कि जो लोग आ रहे हैं, उनके लिए हर चीज का प्रबंध होना चाहिए ? अब वे लोग घटा-भर मुह देखते बैठे रहेगे ?

रवि जल्दी-जल्दी चलकर भाईजी के घर पहुंचा। वहा पर बीस-बाईस मेहमान ठहरे हुए थे और सब लोग उन्हें चाय पहुचाने के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। मन्दिर के मुखिया विश्वभरदास अपने पोपले मुह से एक साथ कई-कई आदेश दे रहे थे। वहां लगता था कि हर आदमी भाग रहा है। फिर भी कोई काम नही हो रहा। भाईजी वहा नही थे। रवि के तीन-चार बार कहने पर उसकी बात मुखियाजी की समझ मे आई तो वे झल्लाकर बोलने लगे—मेरे पास नही है आदमी। मैं कहां से दू ? बोलिए कहा से लाऊ आदमी ? बताइए। जमीन खोदकर निकलते हो आदमी तो निकाल लू। यहा मेरे पास कोई नही है। उन्हें कहिए यही पर आ जाएं। यही नल पर हाथ-मुंह धो लें और एक-एक प्याली चाय की पी लें।

काफी देर मुखिया के इर्द-गिर्द घूमकर रवि ज्यो का त्यो लौट आया। राजकरनी उसे गेट के पास ही मिल गई।

—देखिए, मैं आपसे माफी चाहती हू,—उसने उसे देखते ही कहा।

—क्यों ?—रवि ने आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखा।

—मैंने उस समय गुस्से मे कुछ कह दिया था। मुझे नही पता था आप कुन्तलजी के भाई हैं।

—आपने कोई ऐसी बात तो नही कही।

—फिर भी आपको बुरा तो लगा ही होगा। उस समय एक लड़की अन्दर थी। उसने मुझे बाद मे बताया कि आप कुन्तलजी के भाई···

रवि को लगा कि उसकी आखो मे क्षमा-याचना के अतिरिक्त एक और भी भाव है।

—मेरी चार दिन यहां पर ड्यूटी है,—उसने कहा।—परन्तु अब तक मुझे यह नही बताया गया कि मुझे करना क्या है।

—आपकी चारो दिन यहां पर ड्यूटी है ?

रवि ने सिर हिलाया।

—मेरी भी चारो दिन ड्यूटी है। आपकी यहां है, मेरी पता नहीं यहां है या कहा है ?

कहकर वह फीकी-सी हसी हसी और एक क्षण के लिए उसे गौर से देखती रही।

—चाय का प्रबन्ध नही हुआ ?—राजकरनी ने क्षण-भर के उस मौन विराम को जैसे तोड़ते हुए पूछा।

रवि ने उसे मुखिया का किस्सा सुना दिया।

—अजब मुसीबत है,—वह बोली—इजीनियर साहब अभी बडबडाते हुए भाईजी को ढूढने गए है। वे कहते हैं कि वे सात बजे की मेल से वापस चले जाएगे।

—सफर से आकर इन्सान को पानी तक न मिले तो वह और क्या करे ?

कई क्षण वे लोग खामोश रहे।

—आप सम्भवतः मुझे नही जानते,—सहसा राजकरनी की आखें उससे मिल गईं। मैं कुन्तलजी के स्कूल में ही पढ़ाती हू। सम्भव है आपने कुन्तलजी से नाम सुना हो। राजकरनी।

और जैसे तभी उनका परिचय हुआ ऐसे उन्होने एक-दूसरे को हाथ जोड़ दिए।

—आप शायद इसी वर्ष आई है ?

राजकरनी ने सिर हिलाया।

—कैसी लगी, यह जगह आपको ?

—नौकरी करनी हो तो बुरी जगह भी अच्छी है और अच्छी जगह भी अच्छी नही।—साथ ही उसके गले से मीठी हसी का स्वर उत्पन्न हुआ। उसके दात बहुत सफेद और छोटे-छोटे थे।

—यह तो टालने की बात है।—वह भी मुस्कराया। जैसे शब्दों और भाव-भंगिमाओ मे वे अलग-अलग बातें कर रहे हो।

—कुन्तलजी तो चार साल से पढाती हैं। उनसे आपने नही पूछा ?

रवि ने महसूस किया कि उस 'तो' में कही व्यग्य की भी रेखा है।

—दीदी तो अब अभ्यस्त हो गई है,—उसने कहा।—और यू भी वे जहा कही भी रह सकती हैं।

—हां, उनका स्वभाव बहुत सीधा है।

—लगता है, आपका दिल नही लगा।

—नही, जगह ऐसी बुरी नही है।

सहसा वे लोग चौंक गए। चीफ इजीनियर साहब, भाईजी और सत्याजी गली का मोड़ मुड़कर आ रहे थे।

—आप लोगो की यहा बातें करने के लिए ड्यूटी लगाई गई थी ?—निकट आते हुए भाईजी ने क्रोध से कांपते हुए स्वर मे पूछा।

रवि के होंठ क्रोध से कांपे परन्तु इससे पहले कि वह कुछ कहता, राजकरनी भाईजी के सामने चली गई।

—देखिए, यहां न नल मे पानी है और न चाय का सामान है।

—तो सामान से आप घर नही ला सकती थी ?—सत्याजी बैठे हुए स्वर में बोल उठी,—ऐसे अवसर पर आदमी से कुछ काम अपनी समझ से भी कर लेता है। ये घण्टे-भर मे आए बैठे हैं। इतनी देर मे तो नया सामान खरीदकर चाय बनाई जा सकती है।

खादी के सलवार-कमीज और दोपट्टे में सत्याजी का दुबला शरीर और भी दुबला लग रहा था। स्वर मे अधिकार-भावना के अतिरिक्त तिरस्कार करने की भावना भी थी। उनकी आंखें जैसे राजकरनी की आंखो मे चुभ जाना चाहती थी।

—आप अन्दर चलकर बैठिए, मैं अभी सब प्रबन्ध करता हूं।—भाईजी ने

इंजीनियर साहब से कहा। मेरी लड़की दस मिनट में आपके लिए चाय बना देती है। अभी मैं घर से सब सामान भेजता हूं। यहां वही काम होता है जो अपने हाथों से किया जाए। यह लोग तो समझते हैं कि बस···

और उन्हें पिटे हुए मोहरों की तरह छोडकर वे घर की ओर चले गए। सत्याजी इंजीनियर साहब के साथ अन्दर चली गईं। रवि ने राजकरनी की ओर देखा। वह कठिनता से अपनी रुलाई रोके हुए थी।

—चलिए, अब हम लोगों की यहां से छुट्टी हो गई—उसने रूखी-सी मुस्कराहट के साथ कहा।

राजकरनी ने अपना निचला ओंठ काटकर, आंखें झपका लीं।

—यहां ऐसे छुट्टी नहीं होती, लेकिन इस तरह ··उसने कहा और सिर को एक बार झटककर अन्दर चली गई।

फिर जब तक वह छुट्टियों में रहा, राजकरनी से मिलना नहीं हुआ था। और इस बार आते ही पता चल गया था कि अब उससे मिलना नहीं होगा। कुछ हो गया था जो उसे पता नहीं था। अंधेरे कमरे में चुपचाप उसी चारपाई पर लेटे हुए वह देख रहा था—राजकरनी कुछ कहते हुए बीच-बीच में एक क्षण के लिए उसे गौर से देखती रह जाती थी और फिर खुद ही उस क्षणिक मौन-विराम को तोड़कर कुछ ऐसी बात शुरू कर देती थी, जिसका कोई सन्दर्भ नहीं होता था। वह शायद चाहती तो कुछ भी नहीं थी, सिर्फ कुछ कहना चाहती थी···कि यों तो यहां या कहीं भी सब कुछ ठीक है, लेकिन इस तरह···

●●●

प्रथम प्रकाशित संग्रह

इन्सान के खंडहर [1950]

इन्सान के खंडहर [खंडहर]
धुंधला दीप
मरुस्थल
ऊर्मिल जीवन
एक आलोचना
लक्ष्यहीन
सीमाएं
कंवल
दोराहा
वासना की छाया में
मिट्टी के रंग

नये बादल [1957]

नये बादल
मलबे का मालिक
अपरिचित
शिकार
एक पंखयुक्त ट्रैजेडी
उसकी रोटी
मंदी
हवामुर्ग
उलझते धागे
सौदा
फटा हुआ जूता
भूखे
छोटी-सी चीज

जानवर और जानवर [1958]

काला रोजगार [रोजगार]
परमात्मा का कुत्ता
मवाली
आर्द्रा
आखिरी सामान
जानवर और जानवर
मिस्टर भाटिया
क्लेम

एक और जिन्दगी [1961]

सुहागिनें
आदमी और दीवार
हक हलाल
गुनाह बेलज्जत
जीनियस
बस-स्टैंड की एक रात
मिस पाल
वारिस
एक और जिंदगी

फौलाद का आकाश [1966]

ग्लास टैंक
पांचवें माले का फ्लैट
सेफ्टी पिन
सोया हुआ शहर
फौलाद का आकाश
जख्म
जंगला
चौगान
एक ठहरा हुआ चाकू

रहती है, कि जब हमारे पास चड्ढी तक के लिए कपड़ा नहीं है तब 'इन्हें' क्या हक है कि ये सर को कफन से सजाए।

उन कफन-खसोटों ने राकेश के साथ भी अपने दस्तूर के मुताबिक सलूक किया, जो कि उनकी मजबूरी है, और कुछ लोग फिलहाल चड्ढिया और जाधिये पहने नजर आ रहे हैं।

राकेश ने एक पूरे दौर मे कथ्य की आत्मा को निरन्तर खोजा था और आत्मिक कथा की खोज को निरन्तरता दी थी। इस खोज और निरन्तरता की पूरी पहचान इन शुरू की सब कहानियो मे कही न कहीं विद्यमान है—वह चाहे बहुत साफ न हो, जो कि प्रारम्भिक रचनाओ मे हो भी नही सकती, पर राकेश के साहित्य के गम्भीर अध्येताओं के लिए वह छुपी हुई या अमूर्त भी नही रह सकती।

राकेश ने जिन्दगी, स्थिति-परिस्थिति और माहौल की किन-किन मजिलो को कब और कैसे पार किया ? रचना-सीमाओं को कैसे तोडा, किस तरह और बडी तथा और भी व्यापक सीमान्तो मे राकेश की रचनाए जुडती गईं ? किस मानसिक उथल-पुथल से उसे गुजरना पडा ? जिन्दगी मे किस महत् के लिए उसने लडना स्वीकार किया और अपने आसपास की जिन्दगी मे राकेश की संलग्नता और नये मूल्यों के प्रति सम्बद्धता कितनी गहरी थी ? आज के आदमी की सश्लिष्ट तकलीफो की अमूर्त परतों को पकड़ पाने की क्षमता का रचनात्मक विकास-क्रम क्या था ? इन सब बातो का स्पष्ट सकेत इन प्रारम्भिक कहानियों से ही मिलने लगता है। ये कहानियां राकेश की विकास-यात्रा की सही शुरुआत की पहचान देती है और इसी कारण इनका महत्त्व बहुत है।

'अर्द्ध विराम' और 'लेकिन इस तरह'—इन दो कहानियो के अन्त तथा बीच के कुछ स्थल राकेश के शब्दों-पक्तियो के सहारे ही संवर्द्धित किए गए हैं। यह कहा जाए कि ये अधूरी थी, तो गलत होगा—केवल कुछ पंक्तिया या शब्द उसी कहानी में से, कही और से उठाकर ज़रूरत की जगह लाकर रख दिए गए हैं, ताकि कथ्य की अन्विति अपना उतना रूप ग्रहण कर सके जो उपलब्ध 'टैक्स्ट' की अर्थ-सम्भावनाओं मे मौजूद था।

हरीकृष्ण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032 4892